'धन्वन्तरि' के पाठकों–सदस्यों–लेखकों

की सेवा में

एवं

निवेदन

धन्वन्तरि परिवार में विभाजन के फलस्वरूप 'धन्वन्तरि' का प्रकाशन अब निर्मल आयुर्वेद संस्थान, मामू भांजा रोड, अलीगढ़ से हो रहा है। कृपालु पाठकों-ग्राहकों से निवेदन है कि 'धन्वन्तरि' के विषय में आप किसी भी प्रकार का पत्र लिखें-नये ग्राहक बनें या ग्राहक शुल्क भेजें पता सावधानीपूर्वक इस प्रकार लिखें—

निर्मल आयुर्वेद संस्थान

मामू भांजा रोड, अलीगढ़–२०२००१

यदि आप पत्र पुराने पते पर लिखेंगे या पुराने पते पर मनियार्डर भेजेंगे तो हमें पत्र या मनियार्डर बिलम्ब से मिलेंगे तथा उत्तर देने में या उपयुक्त कार्यवाही में विलम्ब होगा। कृपया नवीन पता सावधानीपूर्वक नोट करलें।

'निर्मल आयुर्वेद संस्थान' की नवीन सुव्यवस्थित आयुर्वेदिक फैक्टरी का निर्माण तेज़ी से चल रहा है। आशा है कि मई माह में उत्पादन आरम्भ हो जायेगा। आपसे साग्रह निवेदन है कि आवश्यकतानुसार अपनी औषधियों की पूर्ति के लिए हमें आदेश प्रदान करें।

'निर्मल आयुर्वेद संस्थान' में चिकित्सकोपयोगी हिन्दी में छपी पुस्तकों का वि ल संग्रह किया गया है। आयुर्वेदिक ग्रन्थों-पुस्तकों का आदेश आप कृपया 'निर्मल आयुर्वेद संस न' के पते पर ही भेजें ऐसा हमारा विनम्र निवेदन है।

'धन्वन्तरि' के पुराने विशेषांकों का आदेश आप "निर्मल आयुर्वेद संस्थान" को ही दें। जो विशेषांक उपलब्ध हैं उनका विवरण इसी विशेषांक में दिया है। यह विशेषांक आयुर्वेद गत की अमूल्य निधि हैं। चिकित्सा में नित्यप्रति इनकी आवश्यकता पड़ती है। उपलब्ध विशेषां में से जो आपके पास न हों उन्हें आप **"निर्मल आयुर्वेद संस्थान"** को पत्र भेजकर मंगा लें।

आशा है कि 'धन्वन्तरि' को आपका पूरा-पूरा सहयोग मिलेगा। वर्तमान विषम रि-स्थिति में 'धन्वन्तरि' को आपसे अधिकाधिक सहयोग की अपेक्षा है। अपनी आवश्यकता का अधिक सामान 'निर्मल आयुर्वेद संस्थान' से मंगाकर तथा 'धन्वन्तरि' के अधिकाधिक नवीन क बनाकर आप हमें सहयोग प्रदान कर सकते हैं। आपके इस सहयोग के लिए हम आभारी रहेंगे।

भवदीय

दाऊदयाल गर्ग

सम्पादक–"धन्वन्तरि"

पु स [2426]
शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगाङ्क
द्वितीय भाग
विशेष सम्पादक
वैद्य मुन्ना लाल गुप्त
बी.आई.एम.
सम्पादक:
ज्वाला प्रसाद अग्रवाल
दाऊ दयाल गर्ग
आयु. बृह. ए.एम.बी.एस.
फरवरी-मार्च
१९७९

आवश्यक निवेदन—

१. इस वर्ष कतिपय ग्राहकों के नम्बर बदल गये हैं। इस कारण सभी ग्राहकों से निवेदन है कि इस विशेषांक के ऊपर रैंपर पर लिखा ग्राहक नम्बर तथा पोस्ट आफिस का नम्बर नोट करलें तथा भविष्य में किसी भी प्रकार का पत्र व्यवहार करते समय उसे अवश्य लिख दिया करें।

२. 'धन्वन्तरि' का कोई भी अंक मिलने पर देख लिया करें कि उससे पहिले माह का अंक मिला है या नहीं। यदि न मिला हो तो कृपया पोस्ट आफिस में तलाश करें। पोस्ट आफिस में भी नहीं मिलने पर पोस्ट मास्टर के उत्तर के साथ हमें लिखें। न मिलने वाला अंक अगले माह में आपकी शिकायत मिलने पर पुनः भेज दिया जायेगा। बाद में एक साथ कई अंकों की पूर्ति करना हमारे लिये सम्भव नहीं होगा।

३. इस विशेषांक के ऊपर रैंपर पर आपका जो पता लिखा है उसमें कोई अशुद्धि या गलती होवे तो कृपया पत्र लिखकर ठीक करा लीजियेगा।

४. 'धन्वन्तरि' का प्रकाशन अब श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन से नहीं हो रहा। इसका प्रकाशन अब **"निर्मल आयुर्वेद संस्थान, मामू भांजा रोड, अलीगढ़"** से हो रहा है। इस कारण किसी भी प्रकार का पत्राचार आप इसी पते पर करें। 'धन्वन्तरि' का ग्राहक शुल्क भी इसी पते पर भेजें।

निवेदक—
दाऊदयाल गर्ग
अध्यक्ष—निर्मल आयुर्वेद संस्थान
सम्पादक—"धन्वन्तरि"
मामू भांजा रोड, अलीगढ़

समाचार पत्र पञ्जीयन कानून (केन्द्रीय) १९५६ के नियम नं० ८ के अन्तर्गत अपेक्षित

'धन्वन्तरि' से सम्बद्ध विवरण—फार्म ४ (रूल ८)

* प्रकाशन का स्थान—मामू भांजा रोड, अलीगढ़।
* प्रकाशन का काल—मासिक
* मुद्रक का नाम—श्रीनाथ अग्रवाल, मीरा प्रिंटिंग प्रेस, अलीगढ़। राष्ट्रीयता—भारतीय
  पता—मीरा प्रिंटिंग प्रेस, मामू भांजा रोड, अलीगढ़
* प्रकाशक का नाम—दाऊदयाल गर्ग। राष्ट्रीयता—भारतीय
  पता—श्री निर्मल आयुर्वेद संस्थान, मामू भांजा रोड, अलीगढ़
* सम्पादक का नाम—दाऊदयाल गर्ग, राष्ट्रीयता—भारतीय
  पता—श्री निर्मल आयुर्वेद संस्थान, मामू भांजा रोड, अलीगढ़
* भागीदार—दाऊदयाल गर्ग, मामू भांजा रोड, अलीगढ़

मैं, दाऊदयाल गर्ग, घोषित करता हूं कि ऊपर दिया गया सभी विवरण जहां तक मैं जानता तथा विश्वास करता हूँ सत्य है।

ह० दाऊदयाल गर्ग
२८ फरवरी १९७९

प्रकाशकीय निवेदन–

'धन्वन्तरि' के सदस्यों, पाठकों, लेखक बन्धुओं को 'धन्वन्तरि' के प्रकाशन परिवर्तन का समाचार जानकर आश्चर्य होगा। प्रस्तुत विशेषांक "शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगांक–द्वितीय भाग" के प्रकाशन से पूर्व हम आप तक यह सूचना नहीं पहुँचा सके इसका हमें हार्दिक खेद है तथा क्षमाप्रार्थी हैं लेकिन परिस्थितियों ने मोड़ उस समय लिया तथा इसका निर्णय उस समय हुआ जबकि 'धन्वन्तरि' का जनवरी १९७९ का अंक छापकर भेजा जा चुका था। "निर्मल आयुर्वेद संस्थान" द्वारा प्रकाशित 'धन्वन्तरि' का यह सर्वप्रथम अंक या विशेषांक है। इसे प्रस्तुत करते हुये मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है। "शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगांक" का प्रथम भाग सन् १९७७ में प्रकाशित किया गया था तथा उसे सभी ग्राहकों, पाठकों ने अत्यधिक पसन्द किया था एवं आग्रह किया था कि प्रथम भाग में जिन योगों का समावेश नहीं किया जा सका उन्हें द्वितीय भाग में स्थान देकर इस साहित्य को पूर्ण किया जाये। आप सभी के आग्रह को दृष्टिगत रखकर ही "शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगांक" का द्वितीय भाग प्रकाशित किया जा रहा है।

इस विशेषांक में बहुप्रचलित २४९ शास्त्रीय औषधियों के प्रयोग, निर्माण विधि, मात्रा, अनुपान, घटकों के गुणधर्म तथा योगों के गुणधर्म आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। अनुपान भेद से विभिन्न रोगों पर औषधि प्रयोग भी दिये हैं। इस विशेषांक के लेखन सम्पादन में इसके विशेष सम्पादक श्री वैद्य मुन्नालाल जी गुप्त ने कठोर परिश्रम किया है। उनके इस कठोर परिश्रम का ही परिणाम है कि आपको इसके लेखन-सम्पादन काल में रक्त-चाप का दौरा पड़ा। इससे आप अत्यन्त अशक्त हो गये। उस समय आपने जो भी कार्य कर लिया था तथा जो लेख आपके पास पहुँच चुके थे सभी आप ने भेज दिये। यह सामिग्री मुझे अपर्याप्त लगी तथा सभी लेखक बन्धुओं से मैंने पुनः लेख आदि भेजने की प्रार्थना की जिसको कि सहृदय लेखक बन्धुओं ने स्वीकार कर तुरन्त लेख भेजे एवं यह विशेषांक इस रूप में प्रस्तुत करने में मैं सक्षम हो सका। लेखक बन्धुओं की इस कृपा के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ।

यह विशेषांक कैसा बन पड़ा है इसका निर्णय तो पाठक-ग्राहक समुदाय ही सही रूप से कर सकेगा लेकिन जहाँ तक मेरी समझ है मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि जिस प्रकार इसका प्रथम भाग पसन्द किया था उससे भी बढ़कर यह अवश्य ही पसन्द किया जायेगा। शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगांक के दोनों भागों का यह सैट चिकित्सक बन्धुओं के चिकित्सा व्यवसाय में मार्गदर्शन करेगा। मेरी विनम्र प्रार्थना है कि चिकित्सक बन्धु इसका अध्ययन करें तथा

एलोपैथी का अत्यधिक मोह त्यागकर चिर-परीक्षित आयुर्वेदिक औषधियों द्वारा आरोग्य प्रदान करते हुये आयुर्वेद की कीर्ति में वृद्धि करें तथा स्वयं भी यश एवं धन के भागी बनें।

'धन्वन्तरि' का वार्षिक मूल्य—

'धन्वन्तरि' का वार्षिक मूल्य अग्रिम भेजने पर १४ रुपये तथा वी० पी० द्वारा मंगाने पर १५ रुपये है। इसमें से ५ रुपये पोस्ट व्यय के तथा दो रुपये आफिस व्यवस्था आदि का निकल जाता है। इस प्रकार हमें मात्र आठ रुपये ही प्राप्त होते हैं। अब आप स्वयं विचार करें कि आठ रुपये मात्र में हम आपको कितना साहित्य प्रतिवर्ष देते हैं। कागज-स्याही पर होने वाला व्यय भार निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। गतवर्ष कागज की एक रिम ४४ रुपये की आ रही थी वह इस वर्ष ५३ रुपये की आई है तथा 'धन्वन्तरि' के प्रकाशन में हमको निरंतर घाटा रहता आ रहा है तथा दिन प्रतिदिन यह घाटा बढ़ता ही जाता है। अब तक 'धन्वन्तरि' का घाटा औषधियों के निर्माण एवं सप्लाई से होने वाले मुनाफे से पूरा होता रहा है लेकिन अब 'धन्वन्तरि' का वह आधार भी नहीं रहा। ऐसी विषम परिस्थिति में या तो मुझे 'धन्वन्तरि' का पृष्ठ संख्या कम करने के लिए, या फिर वार्षिक मूल्य में वृद्धि के लिये विवश होना पड़ेगा। यद्यपि दोनों में से कोई भी पग उठाना पाठकों-ग्राहकों को अप्रिय ही होगा लेकिन आजकल की दिन प्रतिदिन बढ़ती जाने वाली महर्घता के कारण विवश हो कोई पग उठाना ही पड़ेगा।

आपसे हमारा आग्रह—

उपरोक्त कोई भी पग अत्यन्त विवश होकर ही उठायेंगे। जहाँ तक सम्भव होगा इन दोनों पगों से 'धन्वन्तरि' को बचायेंगे। लेकिन 'धन्वन्तरि' को निरन्तर होने वाले घाटे की पूर्ति हेतु आपसे भी निम्न नम्र निवेदन है—

१. 'धन्वन्तरि' के अधिकाधिक नवीन ग्राहक बनायें। 'धन्वन्तरि' के जितने अधिक ग्राहक होंगे उतना ही घाटा कम होगा।
२. आयुर्वेदिक पुस्तकों एवं आयुर्वेदिक औषधियों का आप अपना आदेश पत्र (आर्डर) निर्मल आयुर्वेद संस्थान, मामू भांजा रोड, अलीगढ़ के पते पर ही भेजें।
३. "दाऊ मेडीकल स्टोर्स" का कार्यभार भी मेरे पास है। जिस किसी यंत्र शस्त्र उपकरण आदि की आवश्यकता होवे, पूर्ववत् आदेश प्रदान करते रहें।
४. 'पत्राचार द्वारा चिकित्सा' हेतु मेरी सेवायें स्वीकार करें। नियम आदि इसी विशेषांक में अन्यत्र देखें।

कुछ अपने विषय में—

'धन्वन्तरि' के सम्पादन में मैं गत २० वर्षों से लगा रहा हूँ तथा इस दीर्घ अवधि में मेरा जीवन ही धन्वन्तरि-मय हो गया है। 'धन्वन्तरि' मासिक पत्र से मुझे इतना लगाव हो गया है कि मैंने एक सुव्यवस्थित एवं सोना उगलने-वाली संस्था को छोड़कर 'धन्वन्तरि' को सहर्ष स्वीकार किया। इस विभाजन में, जोकि ४ फरवरी १९७९ को सम्पन्न हुआ तथा ५ फरवरी १९७९ से लागू हुआ, इससे पूर्व एक समय यह निश्चित हुआ कि श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन मुझे मिलेगा एवं 'धन्वन्तरि' से मेरा सम्बन्ध विच्छेद हो जायेगा। उस समय मुझे अपार दुःख हुआ यद्यपि वह एक लाभ का सौदा था। उस दुःख का कारण केवल मात्र 'धन्वन्तरि' के प्रति मेरा असीम प्रेम था। आप विश्वास करें या न करें "धन्वन्तरि" मासिक

पत्र के प्रकाशन में न कभी लाभ रहा है और न रहेगा। आयुर्वेद विद्वानों तथा कृपालु ग्राहकों के सहयोग के भरोसे पर ही मैंने यह दुःसाहस किया है। मैं नहीं जानता कि इसका परिणाम क्या होगा लेकिन मैं जीवन पर्यन्त "धन्वन्तरि" के माध्यम से आयुर्वेद एवं चिकित्सक समाज की सेवा करता रहूँ बस यही मेरी भावना है।

यह विशेषांक लेट हो गया—

'धन्वन्तरि' के ग्राहक यह अनुभव कर रहे होंगे कि 'धन्वन्तरि' देरी से मिल रहा है। सितम्बर १९७८ तक 'धन्वन्तरि' का प्रकाशन सुव्यस्थित रूप से एवं ठीक समय से चल रहा था। ५ अक्टूबर, ६ नवम्बर तथा १५ दिसम्बर को अलीगढ़ में व्यापक साम्प्रदायिक दंगे हुए एवं तीन माह लगातार कर्फ्यू चलता रहा। बीच-बीच में प्रतिदिन कुछ समय को कर्फ्यू खुल जाता था लेकिन उसमें कार्य कुछ भी नहीं हो पाता था, मात्र दैनिक उपयोग की वस्तुयें ही खरीद पाते थे। कर्मचारी भी कार्य पर नहीं आते थे। डाक भी अव्यवस्थित एवं पर्याप्त देरी से मिलती थी। येन-केन प्रकारेण उस समय भी 'धन्वन्तरि' प्रकाशित होता रहा। आकार भी नहीं घटाया लेकिन देरी अवश्य हुई। उसी का यह परिणाम है कि 'धन्वन्तरि' का यह विशेषांक १ माह देरी से प्रकाशित हो रहा है। कृपालु पाठक विश्वास करें कि विभाजन के कारण 'धन्वन्तरि' का लेट प्रकाशन नहीं हुआ। अब इसके प्रकाशन को क्रमशः ठीक समय पर लायेंगे। कृपया पाठक भी हमारी विवशता समझकर हमें क्षमा करेंगे।

पत्र व्यवहार का पता—

'धन्वन्तरि' के विषय में सभी प्रकार का पत्र व्यवहार इसके प्रकाशक **'निर्मल आयुर्वेद संस्थान, मामू भांजा रोड, अलीगढ़'** के पते से ही करें। धन्वन्तरि का वार्षिक चंदा भी इसी पते पर भेजें। इस सूचना से अपने अन्य परिचितों को भी अवगत करा दीजियेगा।

'धन्वन्तरि' के आगामी लघु विशेषांक—

इस वर्ष "काम विज्ञानांक-तृतीय भाग", "मानसिक रोग विज्ञानांक" तथा "पथ्यापथ्य विवेचनांक" प्रकाशित किये जायेंगे। इनका सम्पादन क्रमशः श्री चांदप्रकाश मेहरा, श्री डा० जहानसिंह चौहान एवं श्री शिवकुमार जी व्यास कर रहे हैं। आप सभी से 'धन्वन्तरि' के सभी पाठक भली प्रकार सुपरिचित हैं। आप इनके विशेष सम्पादन में भली प्रकार जुट गये हैं तथा यह सभी विशेषांक चिकित्सकों के लिये अत्युपयोगी होंगे।

अन्त में—

विद्वान लेखकों, कृपालु ग्राहकों एवं अपने हितैषुओं से मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे 'धन्वन्तरि' एवं इसकेप्रकाशक 'निर्मल आयुर्वेद संस्थान' को अपना ही समझते हुए जो भी बन पड़े अपना सहयोग अवश्य दें। "धन्वन्तरि" के अधिकाधिक नवीन ग्राहक अवश्य बनाकर हमारी सहायता करें।

२५-३-१९७९

भवदीय

दाऊदयाल गर्ग

निर्मल आयुर्वेद संस्थान मामू भांजा रोड, अलीगढ़-२०२००१

शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगाङ्क

के

विशेष सम्पादक

वैद्य श्री मुन्नालाल जी गुप्त का परिचय

आपका जन्म सम्वत् १९६४ वि० फाल्गुन शुक्ला १० तदनुसार दिनांक १२ मार्च १९०८ ई० को हुआ था। आप अग्रवाल गोयल गोत्रीय वैश्य हैं। आपका पैतृक स्थान महेन्द्रगढ़ (हरियाणा) है। आप कोई ५२-५३ वर्षों से कानपुर में निवास कर रहे हैं। यदा-कदा आप अपने पैतृक स्थान महेन्द्रगढ़ भी जाते रहते हैं। आपके पूज्य पिताजी का शुभनाम श्री बाबूलाल जी था। वे सम्वत् १९९४ में परलोक सिधार गये।

आरम्भ में आपने आयुर्वेद की शिक्षा सन् १९२४ में, माननीय आचार्य पं० मनोहर लाल जी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, प्रधानाध्यापक श्री ताराचन्द आयुर्वेद विद्यालय महेन्द्रगढ़ (हरियाणा) में प्राप्त कर कानपुर में पदार्पण किया और पंडित काशीनाथ जी मिश्र, नयागंज एवं पंडित रामप्रिय जी त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य से शिक्षा प्राप्त कर अ० भा० विद्यापीठ की परीक्षा सन् १९२८ में उत्तीर्ण कर आयुर्वेद क्षेत्र में, विशेष रूप से कार्य करने लगे, जो अभी तक कार्यरत हैं। आप कई भाषाओं के ज्ञाता हैं।

गुप्त जी सर्व प्रथम "अनुभूत योग माला" पत्र के लेखक के रूप में सन् १९२ में आयुर्वेद जगत के सामने आये थे। सन् १९३३ में उनको (अनुभूत योगमाला का) सम्पादन

विशेष सम्पादन का भार भी विशेष योग्यता के साथ सम्पन्न किया है। शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगांक के प्रथम भाग का सफल सम्पादन आपने किया है। इसके द्वितीय भाग इस विशाल विशेषांक के विशेष सम्पादक भी आप ही हैं। आपने आयुर्वेद सम्बन्धी अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं। कुछ अभी अप्रकाशित रूप में हैं। आप अध्ययनशील, औषधि निर्माता तथा जटिल रोगों के विशेषज्ञ एवं चिकित्सक हैं। विशेषतया आयुर्वेद में अन्वेषण किया करते हैं। आयुर्वेद को आपने व्यवसाय रूप में न अपनाकर, जनहित में खोज किया करते हैं।

वैद्य जी का एक चिकित्सालय व निर्माणशाला "पीयूष रसायनशाला" के नाम से नील वाली गली, कानपुर में स्थित है। जिसमें स्वनिर्मित आयुर्वेदीय औषधियों का पर्याप्त मात्रा में संग्रह रहता है तथा वैद्यजी रोगियों की तनमन से चिकित्सा सेवा करते हैं तथा साथ ही साथ एक कर्मठ समाज सेवी भी हैं। आप अत्यन्त ही मिलनसार लेकिन संकोची स्वभाव के व्यक्ति हैं। प्रसिद्धि से दूर भागते हैं। आपकी ७ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जो निम्न हैं:—

१. नूतन रोग चिकित्सा विज्ञान
२. सिद्ध प्रयोगाङ्की कुंजी
३. छति विज्ञान
४. विषम ज्वर चिकित्सा
५. प्रेम पीयूष
६. सफल प्रयोग संग्रह
७. होम्यो मेटेरिया मेडिका

इसके अतिरिक्त आपकी अनेक अप्रकाशित पुस्तकें हैं। मैं कानपुर २ वर्ष पूर्व आपके औषधालय में गया तथा आपके दर्शन किये। आपकी हस्तलिखित अनेक पुस्तकों से अलमारी भरी पड़ी थी। आपकी शुद्ध आयुर्वेद के लेखन में एवं अनुसंधान में तीव्र रुचि है। धार्मिक ग्रंथों में आपने आयुर्वेद की पर्याप्त खोज की है। यकृत् रोग, हृदय रोग एवं ज्वर चिकित्सा के आप विशेषज्ञ हैं। कैंसर तथा दूसरे असाध्य रोगों पर आप अनुसन्धान करते रहते हैं। आप प्रायः जीर्ण रोगियों की, जो प्रायः सब ओर से निराश हो गया हो, सफल चिकित्सा करते हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि आपको शतायु बनाये।

—दाऊदयाल गर्ग
प्रधान सम्पादक 'धन्वन्तरि'
मामू भांजा रोड, अलीगढ़

निर्मल आयुर्वेद संस्थान

द्वारा प्रकाशित

'धन्वन्तरि' का यह प्रथम पुष्प

सस्नेह समर्पित है

स्नेहमयी मेरी छोटी बहिन

स्व० कृष्णकांता तायल को

जिनका ६-४-७६ शुक्रवार को हुई कार दुर्घटना में
मात्र ३० वर्ष की आयु में आकस्मिक स्वर्गवास हो गया।

आपके इस आकस्मिक निधन से 'धन्वन्तरि' परिवार स्तम्भित एवं शोक विह्वल है तथा भगवान से आपकी आत्मिक शान्ति के लिये प्रार्थनारत है एवं अश्रुपूरित नेत्रों से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है।

आपकी स्मृति में शोक विह्वल
दाऊ दयाल गर्ग
एवं समस्त परिवार

आयुर्वेद के ५ सुपरीक्षित एवं अनुभूत योग...
KAMINI
कामिनी पुष्पा
स्त्री रोगों में लाभ-प्रद
BABY TONIC
एजीटोन
बेबी टॉनिक
यकृत रोग नाशक एवं पौष्टिक मीठी औषधि
AGAMCO
A. G. AYURVEDIC MANUFACTURING CO.
कफारिन
खाँसीनाशक मीठा शर्बत
कफ निस्सारक
कफ सीरप
छालेना
जीभ, ओंठ, मुँह हलक के छालों के लिये
डौली
बेबी ड्राप्स
कैलशियम लौह एवं विटामिन युक्त
'आर्ट-स्पॉट'
अगमको मानिक चौक, अलीगढ़ २०२००१

धन्वन्तरि

शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगांक

(द्वितीय भाग)

की

विषयानुक्रमणिका

—०—

आसवारिष्ट प्रकरण

नस्य-अञ्जन-वर्ति प्रकरण

घृत प्रकरण

तैल प्रकरण

चूर्ण प्रकरण

लेप प्रकरण

क्वाथ प्रकरण

अवलेह प्रकरण

रस प्रकरण

लौह माण्डूर प्रकरण

गुग्गुल प्रकरण

आविर्बभूव कलशं दधदर्ण वाद्यः पीयूष पूर्णममरत्व कृते सुराणाम् ।
रुग्जाल जीर्ण जनता जनितः प्रशंसो धन्वन्तरिः स भगवान भविकाय भूयात् ॥

भाग ५३
अङ्क २-३

* शास्त्रीय-सिद्ध प्रयोगाङ्क *
(द्वितीय भाग)

फरवरी+मार्च
१९७९

॥ मंगलाचरणम् ॥

सर्वसिद्धिकरं देवम्, सर्व विघ्नहरं तथा ।
ज्ञान विज्ञान दातारम्, श्री गणेशं नमाम्यहम् ॥ १ ॥

× × × ×

वेद्यानाम् सहयोगेन, मानवानान्तु श्रेयसे ।
शास्त्रीय सिद्ध योगाङ्कम्, संग्रहे नातिविस्तरम् ॥ २ ॥

× × × ×

तमिमंमुन्नालालोऽहम्, हस्ताब्जेषु सुधीमताम् ।
जनतायाः हित कामेन, अर्पयामि सुखावहम् ॥ ३ ॥

—वैद्य मुन्नालाल गुप्त
५१/६८ नीलवाली गली, कानपुर

॥ मंगलाचरणम् ॥

रचयिता—आचार्य ब्रह्ममूर्ति त्रिपाठी साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम.ए.,पी-एच. डी., कानपुर

पीयूष पाणिं सकिरीट कुण्डलं ।
चतुर्भुजञ्चारुविशाल नेत्रम् ॥
सरुग्जनानां सुखशान्तिदायिनं ।
धन्वन्तरिं त्वां शिरसा नमामः ॥१॥

संसार शल्योद्धरणाय सिन्धो ।
स्तत्याज शय्यां रभसा स्वकीयां ॥
विज्ञानमायुष्यकरं दधानम् ।
धन्वन्तरिस्त्वामभिनन्दयामः ॥२॥

ज्ञानामृतेन परिषिञ्चति दोषदग्धं ।
व्यर्थङ्करोति नितरां भवतापतपम् ॥
संसार सागर समुद्धरणे समर्थ ।
धन्वन्तरिं भवतरिंत्वभिनन्दयामः ॥३॥

संसार रोगशमनाय धृतावतारं ।
स्नेहास्पदं गुणनिधि भिषजां वरेण्यम् ॥
आनन्द सिन्धुसरसीरुहरागसारं ।
धन्वन्तरिं भवपयोधितरिं नताःस्मः ॥४॥

देहि प्रभो ! नव बलं प्रतिभां नवीनाम् ।
शास्त्रावलोकन विधि सकलां कलाञ्च ॥
सिद्धि प्रदेहि भगवन् रससार भूताम् ।
ज्ञानं नवं नव नवौषधि कल्पनाञ्च ॥५॥

भक्ति प्रदेहि भगवन् ! भयभावितेभ्यः ।
शान्तिं सुखञ्च कुरुशासन शासितेभ्यः ॥
सिद्धि समुह्य सुतरां निज कुण्डिकायां ।
दुश्शासनप्रमथितेभ्य इमां प्रयच्छ ॥६॥

ये शास्त्रमानस जले विहरन्ति हंसाः ।
तेषांकृते तवकृपा न कथं प्रयाति ॥
ये चञ्चुचुम्बन विधौखलतां भजन्ते ।
तेभ्यस्तुमौक्तिकमलं तनुपे वकेभ्यः ॥७॥

ये पूजयन्ति सततं तव पादपद्मम् ।
ध्यायन्ति ते प्रतिदिन प्रतिमाममोघाम् ॥
ये त्वां स्तुवन्ति नितरां शुभगीतिगीतैः ।
रोगाः तदैव विमुखाः प्रमुखाः व्रजन्ति ॥८॥

आयुर्वेद शास्त्र, वेदों की देन है। इसमें जीवन में घटने वाली प्रत्येक घटनाओं का समावेश है, यह मात्र एक चिकित्सा शास्त्र नहीं है, ऐसा क्यों ? इसके अतिरिक्त यह शास्त्र किसी जाति विशेष, धर्म विशेष, काल विशेष, देश विशेष का भी नहीं। सभी के लिए समान रूप से उपयोगी है।

उक्त प्रश्नों का उत्तर देना अभीष्ट नहीं है। मेरे समक्ष कुछ अन्य प्रश्न हैं, जिनका उत्तर खोजना आवश्यक है। वे प्रश्न हैं—

योगों की रचना किस आधार पर, कैसे की जाती है, इस सम्बन्ध में तत्वज्ञ कौन हैं ?

ऐसे तत्व कौन-कौन हैं, जिनका जानना जरूरी है ? चूँकि प्रत्येक द्रव्य औषधि हो सकते हैं। किन्तु जब तक उनके सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी न हो, उन्हें उपयोग कैसे किया जा सकता है ? कोई भी अविज्ञातव्य द्रव्य घातक सिद्ध हो सकता है। महर्षि आत्रेय लिखते हैं कि—

औषधं ह्यनभिज्ञातं नामरूप गुणैस्त्रिभिः। विज्ञातं चापि दुर्युक्तं मनर्था चोपपद्यते॥ —च. सू. अ. १।१२६

अर्थात्—जिस औषधि का नाम, स्वरूप तथा गुण—ये तीनों ही अज्ञात हो, इनका सम्यक् ज्ञान न हो, उसका उपयोग किस तरह, किस काल में, कैसे किया जा सकता है ? इनका ज्ञान न होने से तो यह अनर्थकारी होती है ? महर्षि आगे कहते हैं कि तेज विष का भी सम्यक् ज्ञान होने से, उपयोग किया जाय तो वह भी उत्तम औषधि बन जाती है। महर्षि आगे कहते हैं कि श्रेष्ठ औषधि भी सम्यक् ज्ञान के अभाव में तीक्ष्ण विषवत् बन जाती है। इस लिए जीवन और आरोग्य के इच्छुक बुद्धिमान व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि यह उचित होगा कि वह सम्यक् प्रयोग न जानने वाले चिकित्सक से कोई भी औषधि न लें।[1]

उदाहरण स्वरूप वत्सनाभ विष का बहुत से योगों में उपयोग होता है। बुद्धिमान चिकित्सक उनका प्रयोग करते ही हैं। इसी प्रकार छद्मचर चिकित्सक से भी चिकित्सा कराने का निषेध किया गया है। छद्मचर तो धोखा देना, ठगने का ही ध्यान रखता है। उत्तम चिकित्सक तो सदैव अपने गुणरूपी सम्पत्ति का बढ़ाने में ही दत्त-चित्त रहता है।

---

[1] योगादपि विषं तीक्ष्णमुत्तमं भेषजं भवेत्। भेषजं चापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं सम्पद्यते विषम्॥
तस्मान्न भिषजा युक्तं युक्ति बाह्येन भेषजम्। धीमता किञ्चिदा देवे जीवितारोग्यकांक्षिणा॥ —च.सु.अ. १।१२

श्रेष्ठ औषधि और चिकित्सक—

वही औषधि श्रेष्ठ है जिसका प्रयोग करने पर रोगी को आरोग्यता दे सके। वही चिकित्सक भी श्रेष्ठ है जो रोगी को रोगमुक्त कर सके। सभी कर्मों में सिद्धि[१]—सफलता का प्राप्त होना ही यह सूचित करता है कि इस क्रिया का उचित रूप से उपयोग किया गया है। वही चिकित्सक सम्पूर्ण चिकित्सकोचित गुणों से युक्त है। यह बात क्रिया की सिद्धि द्वारा सूचित हो जाती है।

फिर भी वही औषधि श्रेष्ठ होती है जो अच्छी भूमि में उत्पन्न हुई हो। अच्छे दिन में उखाड़ी गई हो, योग्य मात्रा में बनाई गई हो, योग्य मात्रा में उपयोग की गई हो। मनको प्रसन्न करने वाली, गन्ध, वर्ण तथा रस से युक्त हो, ग्लानि रहित, दोष शामक, पथ्यादि विपरीत होने पर भी अन्य विकार न करने वाली हो। परीक्षा के समय दी गई औषधि अपना सम्यक् प्रभाव दिखाने वाली हो, उसे श्रेष्ठ औषधि जानना चाहिये।

चिकित्सा सम्बन्धी कुछ निर्देश—

मूल व्याधि की चिकित्सा प्रथम करनी चाहिए। यदि मूल व्याधि से उत्पन्न उपद्रव, परस्पर में विरोधी न हो तो, मूल व्याधि की चिकित्सा से ही शमन हो जाता है। यदि उपद्रव बलवान हो तो उपद्रव की चिकित्सा प्रथम करना आवश्यक होता है।

मूल व्याधि की चिकित्सा दोषानुसार की जाती है। यथासम्भव रोग के पूर्वरूप, पूर्वावस्था (Premonitary Stage) में ही चिकित्सा करनी चाहिए। आचार्य सुश्रुत ने पूर्वरूप को अन्य लक्षण व्याधि कहा है। जो भविष्य में होने वाली व्याधि का सूचक होता है और उपद्रव को औपसर्गिक बताया है। प्रथम व्याधि के मूल से ही जिसका प्रादुर्भाव होता है।

आयुर्वेद मतानुसार सम्पूर्ण रोगों की उत्पत्ति दोषों (वात, पित्त और कफ के क्षीण व वृद्धि) से मानी जाती है। अतः अज्ञात रोगों की भी चिकित्सा तदनुसार ही करने का निर्देश किया गया है। यह व्यवस्था इसलिए दी गई है कि जहां रोग का नाम, लक्षण का सम्यक् ज्ञान का निर्णय शास्त्र से न होता हो, वहां यह पद्धति उपयोगी प्रमाणित होगी। आजकल अधिकतर मिश्रित रोगों के कारण यथार्थ निदान नहीं हो पाता, उस समय दोष विज्ञान या प्रकृति विज्ञान की सहायता से आवस्थिकी या लाक्षणिक चिकित्सा की जा सकती है।

योग्य चिकित्सक समय का उल्लंघन नहीं करते। वह शीत ऋतु में शीत का, उष्ण काल में उष्मा का तथा वर्षा काल में वर्षा का प्रतिकार करने का पूरा-पूरा ध्यान रखता है।

सम्यक् उपचार उसे ही कहते हैं जो बढ़े हुए दोषों को शान्त करें, अन्य उपद्रवों को उत्पन्न न होने दें। जिस चिकित्सा से मूल रोग नष्ट होता हो, अन्य रोग की उत्पत्ति होती हो वह प्रयोग सम्यक् उचित नहीं माना जाता। इस सम्बन्ध में आचार्य सुश्रुत के निम्न शब्द हैं—

> **या ह्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च।**
> **सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥** —सु. सू. अ. ३५/२७

आचार्य चरक—और वाग्भट्टाचार्य के निम्न शब्द हैं—

> प्रयोगः शमयेद्व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।
> नाऽसौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्योन कोपयेत् ॥ —च.नि.अ. ८/२३, अ.हृ.सू.अ. १३/१६

---

[१] तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते। स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगोभ्यो यः प्रयोज्येत् ॥
सम्यक् प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्याति कर्मणाम्। सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणैर्युक्तं भिषक्तमम् ॥
— च. सू. अ. १।१३५,१३६

सम्मिलित दोषों में चिकित्सा—

यदि तीनों दोषों ने मिलकर रोग को उत्पन्न किया है, तो सबका एक साथ शमन का ध्यान रखकर चिकित्सा करनी चाहिए। फिर भी कुछ निर्देश इस प्रकार हैं—

यदि दोष वृद्धि समान भाव से हो तो प्रथम कफ को जीतना चाहिए, जिससे स्रोतों का अवरोध समाप्त हो जाय। यदि दूसरा दोष (वायु या पित्त) अधिक बलवान हो तो, अविरोधि क्रिया द्वारा, इन्हें प्रथम जो बलवान हो उसे ही जीतना चाहिए।

एक नियम यह भी है कि दोषों की साम-अवस्था में प्रथम कफ को और निरामावस्था में प्रथम पित्त को तथा ज्वर आदि की जीर्ण अवस्था में प्रथम वायु को शमन करने का यत्न करना चाहिए। फिर भी इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए, कि जिस दोष को शमन किया जा रहा है, उस क्रिया से दूसरा दोष तो नहीं बढ़ेगा या विकृत होकर अन्य व्याधि का कारण तो नहीं बनेगा। चूंकि विरोधी चिकित्सा किसी भी काल में उपादेय नहीं होती। रोगी का रोग पूर्ण रूप से शमन हो और स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करे चिकित्सा का यही उद्देश्य होना चाहिए।

इसके विपरीत आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का यह मत रहा है कि प्रत्यक्ष में जो व्याधि है उसे जैसे-तैसे दवा दी जाय। यदि उससे अन्य व्याधि तत्काल या भविष्य में उत्पन्न होती हो तो उसे बाद में देखा जायगा। किन्तु यह सिद्धान्त आयुर्वेद को मान्य नहीं है।

आम किसे कहते हैं ?

कच्चे रस को आम कहते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरा मत यह भी है कि द्रवों के मन्थन से जिस प्रकार विष उत्पन्न होता है उसी प्रकार कुपित दोषों के परस्पर संघर्ष से आम विष उत्पन्न होता है।

साम की परिभाषा यही है जो दोष या धातु आमदोष युक्त हों उसे साम विकार कहते हैं जैसे—सामवात, सामकफ, सामपित्त, या सामरस, सामरक्त, साम मास आदि आदि।

यदि आमयुक्त वायु विकार हो तो वह वायु उदर में शूल और आध्मान करती हुई, सारे शरीर में विचरती हैं। इसी प्रकार सामपित्त है तो वह पित्त दुर्गन्धित, नीलवर्ण, कटुरस, बहल और भारी हो जाता है और सामपित्त जनित विकारों को करता है। इसी प्रकार सामकफ भी गंधला, तन्तु युक्त, प्रलेपी, पिच्छिल और भारी हो जाता है और सामकफ जनित विकारों को उत्पन्न करता है। इनका विस्तृत विवेचन अष्टांग हृदय, चरक संहिता तथा सुश्रुत में देखें। यहां इसके विवेचन के लिए स्थान नहीं हैं। हां, चिकित्सा सम्बन्धी कुछ निर्देशों पर प्रकाश डाल रहा था। अत: जहां दोष साम हो वहाँ दोषों को वमन विरेचन द्वारा निकालने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार दूष्यों (साम रसादि) का भी शोधन नहीं करना चाहिए। अत: साम दोष हो, चाहे दूष्य, उन्हें पाचन, दीपन, स्नेहन और स्वेदन क्रिया से ही परिपाक करें, और यथाकाल बलानुसार वमन विरेचन आदि से जो बढ़ा दोष, जिस मार्ग से निकालना उचित हो, उसी मार्ग से निकाल देना चाहिए।

आमाशय में स्थित दोषों को वमन द्वारा, ऊर्ध्व जत्रु स्थित दोषों को नस्य द्वारा और पक्वाशय में स्थित दोषों को अधोमार्ग गुदा व मूत्रेन्द्रियादि से निकाल देना चाहिए।

यदि आमयुक्त दोष स्वयं उत्क्लेशित होकर ऊर्ध्व मार्ग से वमन द्वारा या अधोमार्ग से रेचन द्वारा निकलते हों तो उन्हें शीघ्र स्तम्भन नहीं करना चाहिए। उस समय हित पथ्य, लघु आहार का सेवन कराते हुए, स्वयं शुद्ध होने दें। यदि उससे निर्बलता बढ़ रही हो तो उन्हें तत्काल रोकने का भी यत्न करना चाहिये। चूंकि निर्बलता का होना उससे अधिक कष्टकर हो जाता है। यदि दोष विबद्ध हो जाय (रुक जाय) तो उनको पाचन द्रव्यों द्वारा पाचन कर देना चाहिए या उन्हें उत्क्लेशित कर शोधन कर देना चाहिए।

आयुर्वेदीय चिकित्सा कर्म दो प्रकार का है। दोष जब वृद्धि को प्राप्त होते हैं तो उन्हें अपतर्पण चिकित्सा से और दोष या दूष्य जब क्षीण होते हैं तब उन्हें संतर्पण से चिकित्सा की जाती है। संतर्पण को बृंहण भी कहते हैं।

अपतर्पण को लङ्घन कहते हैं। अपतर्पण में शरीर हल्का होता है। वह भी दो प्रकार का होता है, जिसमें शोधन और शमन, ये दो क्रम अपनाने होते हैं।

शोधन पाँच प्रकार का होता है जहां जैसी आवश्यकता होती है वहाँ उसे ही उपयोग किया जाता है। पाँच संशोधन इस प्रकार के होते हैं—

१. निरूहण वस्तिकर्म, २. वमन, ३. विरेचन, ४. शिरो विरेचन व नस्य कर्म तथा ५. रक्तस्रुति, रक्तमोक्ष कर्म। शमन के सात प्रकार हैं—१. दीपन, २. पाचन, ३. लङ्घन (अन्न न खाना), ४. जल न पीना, ५. व्यायाम ६. सूर्य की धूप का सेवन, ७. हवा का सेवन।

किन्तु वात (पवन) की वृद्धि में बृंहण ही शमन कहलाता है। वायु का शोधन पित्तयुक्त वायु का शमन होता है। इनका विस्तृत विवेचन चरकादि ग्रन्थों में ही देखना चाहिये।

योगों की रचना के सम्बन्ध में साधारण विवेचन

यदि किसी योग में परस्पर विरुद्ध वीर्य द्रव्य की योजना हो तो उसका प्रभाव कैसा होगा? इस सम्बन्ध में महर्षि आत्रेय उत्तर देते हुए लिखते हैं कि—

विरुद्ध वीर्यमप्येषां प्रधानानाम् बाधकम्।
अधिकं तुल्य वीर्यं हि क्रिया सामर्थ्यमिष्यते॥

अन्तिम पंक्ति में कहीं-कहीं इस प्रकार भी है यथा—

समान वीर्ये त्वधिकं क्रिया सामान्यमिष्यते॥ —चरक कल्पस्थान अ. १२।४५

अर्थात् प्रधान गुणों को बाधित न करने वाले, विरुद्ध वीर्य द्रव्यों की योजना योग में की जा सकती है। पर ऐसे द्रव्यों का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि वे वमन या विरेचन या जिस कार्य के लिए प्रयुक्त होते हैं उसमें तो बाधक नहीं हैं। तुल्य वीर्य द्रव्यों के प्रयोग से योगों की कार्य कर सकने की क्षमता बढ़ जाती है।

एक उदाहरण उपस्थित किया जैसे वामक मदनफल के साथ हृद्य एला का उपयोग, जिसका विरोध, में गणना नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त एक और भी कारण विरुद्ध वीर्य द्रव्य की योजना का बताया गया, वह यह है कि योग के ऊपरी रंग, रस, स्पर्श (मृदु व कठोर करणादि हेतु) तथा गन्ध जो रोगी को अप्रिय हो, उसे बदलने के लिए रंग स्वादादि की योजना विरुद्ध वीर्य द्रव्य से करनी होती है तो उसका उपयोग भी किया जाता है। ऐसा आत्रेय महर्षि का आदेश है यथा—

इष्ट वर्ण रस स्पर्श गंधार्थं प्रति चामयम्।
अतो विरुद्ध वीर्याना प्रयोग इति निश्चितम्॥ —च. क. अ. १२।४६

फिर भी प्रत्येक योग का निर्माण उद्देश्य को सामने रखकर ही किया जाता है। जितने भी गण चरकादि ग्रन्थों में कहे गये हैं उनके सम्बन्ध में यह स्पष्ट निर्देश है कि जिस गण में कोई द्रव्य न मिले तो उसके समान गुणवाले दूसरे द्रव्य की योजना की जा सकती है। यही नहीं यदि उस गण में कोई द्रव्य ऐसा हो जो रोगी के लिए हितकर न हो, तो उसे उस गण से निकाल कर उसके स्थान पर एक उपयोगी द्रव्य की योजना की जा सकती है। इसके अतिरिक्त उस गण में से जो भी द्रव्य हितकर हो, उसमें से किसी एक द्रव्य का भी उपयोग किया जा सकता है। आवश्यक हो तो उस गण में और द्रव्य भी मिलाया जा सकता है। फिर भी प्रधान द्रव्य को नहीं निकाला जा सकता। **युंज्यात्तद्विधमन्यच्च द्रव्यं जह्यादयौगिकम्। —अ. हृ. सूत्र स्थान १५।४६**

योगों के निर्माण में अन्य विचारणीय बातें—

जिस योग की रचना की जाय उसमें कौन द्रव्य मुख्य है, उसका प्रधान कार्य क्या है, उसकी गुण वृद्धि हेतु कौन-कौन द्रव्यों की योजना उसके साथ आवश्यक है, गुण वृद्धि हेतु किन-किन द्रव्यों की भावना देनी चाहिए।

उसका उपयोग किस रूप में करना हितकर होगा। यह सभी बातें जानना चिकित्सक के लिए परमावश्यक है।

२. जिन अन्य द्रव्यों की योजना की जायगी वे तत्सम वीर्य, गुण वाले होने चाहिए। इसी प्रकार जिन द्रव्यों के रस या कषाय की भावना दी जायगी वह भी तत्सम वीर्य और गुण वाले ही द्रव्य होने चाहिए।

३. प्रभूत मात्रा वाले द्रव्य व योग को अल्प मात्रा में ही उपयोग किया जासके, इसलिए उसकी विश्लेषणता आवश्यक होती है। उस विश्लेषणता से उसके गुणकारी तत्व से विशेषलाभ, अल्प मात्रा में ही उठाया जा सकता है। साथ ही उस द्रव्य में जो मुख्य गुणका बाधक अन्य तत्व होता है उसे उससे निकाला जा सकता है। या किसी द्रव्य विशेष की भावना से उस अनोपयोगी तत्व को अल्प गुण वाला या हीन प्रभाव वाला भी किया जा सकता है। भावना द्वारा उस मुख्य द्रव्य की कार्यकारी शक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

४. रोगी पर योग की किस मात्रा में योजना करनी है उस का निर्णय दोष, काल, प्रकृति, आयु, दोष की प्रबलता–अल्पता का ध्यान करके करना होता है। औषध निर्माण के समय भी इसका ज्ञान आवश्यक होता है।

५. संस्कार के आधान से भी योगों में सामान्य, विशिष्ट वा गुणों में अल्पता तथा महानता लाई जाती है। चूंकि द्रव्यों में गुणान्तर करना संस्कार के आधीन है। जैसे कहा है:—

संस्कारोहि गुणान्तराधानमुच्यते ।

जल से, अग्निके संयोग से, शौच से, मंथन से, देश, काल, पात्र एवं भावना आदि से उत्पन्न गुणान्तर होता है। कुछ उदाहरण यथा—जलका प्रभाव, और अग्नि का प्रभाव—

सुधौतः प्रस्रुतः स्विन्नः सन्तप्त श्चौदनो लघुः ।

अर्थात्—तण्डुल को जल अग्नि संयोग से उबाल लेने पर वह लघु हो जाता है।

मंथन का प्रभाव—शोथकृद्दधि शोथघ्नं सस्नेहमपि मंथनात् ।

अर्थात्—दधि शोथ उत्पन्न करता है किन्तु उसे मथ लिया जाय तो वह शोथघ्न हो जाता है।

देश का प्रभाव—**"भस्मरा शेरथः स्थापयेत्"** तथा

द्रव्यों के उत्पन्न होने के स्थान को देश कहते है जैसे हिमालय सौम्य होने से वहां उत्पन्न हुआ द्रव्य शीत मधुर और वात पित्त नाशक होता है। विन्ध्याचलादि पर्वतदेशीय स्थान आग्नेय होने से, वहां उत्पन्न हुए द्रव्य उष्ण, कटु, तिक्तादि रस प्रधान एवं कफ नाशक होगें।

कहा है—**आग्नेया विन्ध्य शैलाद्याः सौम्यो हिम गिरिर्मतः ।**
हिमवति जातं गुणवद्भवति/मरौ जातं लघु भवति ॥

काल का प्रभाव—काल दो हैं (१) नित्यग (२) आवस्थिक।

नित्यग काल ऋतु की दृष्टि से सात्म्य की अपेक्षा करता है।

अवास्थिक काल—बाल, वृद्ध आदि अवस्थाकृत होते हैं, जैसे बाल अवस्था में कफ विकार और वृद्ध अवस्था में वात विकार विशेषकर होते हैं।

औषधि सेवन काल—(१) अभक्त–बिना भोजन किये। (२) प्राग्भक्त–भोजन से पूर्व। (३) अधोभक्त भोजन के पश्चात्। (४) मध्यभक्त–भोजन के मध्य में। (५) अन्तराभक्त–भोजन के अन्त में। (६) समक्त–भोजन के साथ-साथ। (७) सामुग्द मूंग के साथ। (८) मुहुर्मुह–बारम्बार। (९) ग्रासभक्त–हरग्रास के साथ। (१०) ग्रासान्तर भक्त–ग्रास-ग्रास के पश्चात्।

अभक्त काल—जिसमें केवल औषध का ही सेवन किया जाता है। उस काल को अभक्त काल कहते हैं। जिस काल में सेवन की हुई औषध अधिक शक्तिशाली होती है। ऐसी अवस्था में सेवन की गई औषध निश्चयपूर्वक

रोगों को नष्ट कर देती है। यदि बालक, वृद्ध और अन्य भी कोई कोमल प्रकृति के व्यक्ति ऐसी अभक्त अवस्था में सेवन करते हैं तो अत्यन्त ग्लानि तथा बलक्षय को प्राप्त होते हैं।

प्राग्भक्त औषध सेवन काल—जो औषध भोजन के पूर्व रोगी को दी जाती है उसका फल यह है कि उसका पाचन शीघ्र होता है। वह शरीर के बल को नष्ट नहीं करती, उसके पश्चात् अन्न सेवन करने से अन्न का उस पर आवरण हो जाने से, वह पुनः मुँह से बाहर नहीं निकलती। प्राग्भक्त औषध वृद्ध, बालक, डरपोक, दुर्बल तथा स्त्रियों के लिये विशेष हितकर होती है।

अधोभक्त—जो औषध भोजन करने के पश्चात् सेवन की जाती है उसे अधोभक्त कहते हैं। वह औषध शरीर के ऊर्ध्व भागों जैसे शिर, आंख, नाक, कान, मुख तथा वक्षस्थल के रोगों को नष्ट कर देती है। साथ ही बल प्रदान करती है।

मध्येभक्त—भोजन के मध्य में सेवित औषध इधर-उधर न फैलकर, मध्यदेह के (कोष्ठगत) रोगों को नष्ट करती है। कोष्ठ का स्पष्टीकरण—

स्थानान्यामग्नि पक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ।
हृदुण्डुकः फुफ्फुसौ च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥

अन्तराभक्त—जो औषध प्रातः काल और सायंकाल और भोजन के मध्य में सेवन की जाती है उसे अन्तराभक्त कहते हैं।

सभक्त—जो औषध भोज्य पदार्थों में मिश्रित करके पकाकर सेवन की जाय अथवा सिद्ध हुये भोजन में मिश्रित करके सेवन की जाय उसे सभक्त कहते हैं। यह स्त्रियों, दुर्बल पुरुषों तथा औषध सेवन से द्वेष या अनेच्छा रखने वाले व्यक्ति एवं बालक तथा पुरुषों के लिए सदा पथ्य होती है। इसी प्रकार पूर्व और अपर भोजन के मध्य में सेवन की हुई औषध हृदय के लिए हितकर, मन के बल को बढ़ाने वाली एवं पाचकाग्नि को सदा दीपन रखती है।

सामुग्दम्—जो औषध भोजन के आरम्भ में तथा भोजन के अन्त में, ऐसे दो बार सेवन की जाती है। उसे सामुद्ग्म कहते हैं। जब शरीर में दोष ऊर्ध्व और अधो दोनों भागों में फैले रहते हैं तब भोजन के आदि और अन्त में सेवन की गई औषधि उन दोनों का शमन करती है।

मुहुर्मुह—जो सभक्त, भोजन के बिना बार-बार सेवन की जाती है उसे—मुहुर्मुह कहते हैं। जिस रोगी को बारम्बार श्वास-कास का आवेग—दौरा आता है या बार-बार हिक्का चलती है या बार-बार वमन होती है तब बार-बार औषधि सेवन कराई जाती है।

ग्रासान्तर—जो औषध दो ग्रासों (कौर) के बीच में सेवन की जाती है उसे ग्रासान्तर कहते हैं। उस औषध का सेवन दुर्बल व्यक्ति को ही जिसकी पाचकाग्नि मंद हो उसे हिंग्वाष्टकादि, या चित्रकादि चूर्ण भोजन के दो कवल (ग्रास) के मध्य या ग्रास में मिलाकर देना चाहिए। इसी प्रकार बाजीकरण औषध को भी भोजन के कवलों में मिश्रित करके सेवन कराना चाहिए। श्वासादि रोगों में, वमनकारक औषधियों का धूम्र ग्रासान्तर देना चाहिए।

इस प्रकार औषध सेवन के काल बताये गये। यथा आवश्यक, औषध का प्रयोग किया जाय तो विशेष लाभ मिलता है।

भावना—

किसी एक ही द्रव्य में उसके रस या क्वाथ की भावना जितनी दी जाती है उसमें उतनी ही अधिक गुण की वृद्धि होती है। उसी प्रकार किसी भी योग में आवश्यकतानुसार जिस द्रव्य के रस या क्वाथ की भावना वह भी जितनी बार दी जायगी उतनी ही उसमें गुण की वृद्धि होती है। भावना देने का यही अभिप्राय होता है।

युक्ति—किसी भी औषध की योजना उसकी मात्रा और काल पर निर्भर करती है तथा युक्ति से सफलता मिलती है। द्रव्य का ज्ञान रखने वाले वैद्य से युक्ति को जानने वाला वैद्य सदा श्रेष्ठ होता है। युक्तिज्ञ को सर्वश्रेष्ठ वैद्य माना जाता है। चूंकि औषध का प्रयोग करने की योजना में वह दक्ष होता है। उसे मात्रा, काल, युक्ति, सिद्धि का पूर्ण ज्ञान होता है। इस सम्बन्ध में प्राचार्य आत्रेय के शब्द इस प्रकार से हैं—

मात्रा कालाश्रया युक्तिः सिद्धियुक्तौ प्रतिष्ठिता।

तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्य ज्ञानवतां सदा॥ —च. सू. अ. २।१६

युक्तिज्ञ वैद्य द्वारा की गई औषध की योजना ही उत्तम बताई गई है। अन्यथा औषध के युक्तियुक्त सम्यक् प्रयोग न होने से निम्न व्यापत्तियों का कारण होता है, यथा—

(१) औषध असमय व अकाल में दी जाय।

(२) अल्प मात्रा में दी जाय।

(३) अधिक मात्रा में दी जाय।

(४) जो औषध गुणहीन हो गई हो।

(५) जो औषध अपने समान गुणों से युक्त औषध की भावना से भावित न हो।

६. जिस औषध का संस्कार. निर्माण उचित रूप से न किया गया हो, उसका प्रयोग निश्चय ही उपद्रवकारी होता है। इसी प्रकार जो औषध सेवन कराई गई हो, वह शरीर में जाकर परिपाक को प्राप्त न होकर क्लम, दाह, अंगों में शैथिल्यता, चक्कर, मूर्च्छा, शिर में वेदना, बेचैनी वल की हानि उत्पन्न करे, उसे युक्तियुक्त औषध सेवन नहीं कहा जा सकता।

७. व्यापत्तियां—

(१) आध्मान (२) परिकर्तिका (३) परिस्राव (४) हृदयग्रह (५) गात्रग्रह (६) जीवदान (७) विभ्रंश (८) स्तम्भ (९) उपद्रव और (१०) क्लम। उक्त १० व्यापत्तियां भी परिचारक, भैषज्य चिकित्सक और रोगी की असावधानी व विगुणता से उत्पन्न होती हैं। इसका शीघ्र ही उपचार न हो तो रोगी संकट में पड़कर प्राण भी त्याग सकता है।

इस सम्बन्ध में महर्षि आत्रेय ने परिस्राव नामक एक रोग का कारण, लक्षण और चिकित्सा का उदाहरण उपस्थित किया।

परिस्राव रोग का कारण—जिन व्यक्तियों के शरीर में दोष अधिक रूप में बढ़े हुये हों, पर उसे अल्प मात्रा में या अल्प गुण सम्पन्न औषध दी जावे, तो वह औषध दोष को उभाड़कर, थोड़े-थोड़े रूप में भारीपन, अग्नि का नाश, बल की हानि, उत्क्लेश, शरीर शैथिल्य, अरुचि और पाण्डुपन को उत्पन्न कर देगी। इसे ही परिस्राव नामक रोग कहते हैं।

ऐसी अवस्था में उपद्रव करने वाले, उस दोष की शान्ति करनी चाहिए अथवा वमन करना चाहिए अथवा स्नेहन कराकर पुनः तीक्ष्ण विरेचक औषध का पान कराना चाहिए। जब भली प्रकार शरीर की शुद्धि हो जाय, तब चूर्ण, आसव, अरिष्ट को संस्कृत कर रोगी को देना चाहिये। आचार्य आत्रेय का एक सुझाव यह भी है कि चिकित्सकों की एक गोष्ठी व सम्भाषा परिषद होनी चाहिये। जिससे कठिन अवस्था में चिकित्सक परस्पर विचार विनिमय कर सकें। इसी उद्देश्य को सामने रखकर अ.भा. आयुर्वेद सेवा मण्डल का हर क्षेत्र में कार्यालय व गोष्ठी का आयोजन हो, इस संस्था की योजना की गई है। प्रत्येक धन्वन्तरि का पाठक अपने यहाँ कार्यालय खोल सकता है। नियमावली हमसे मंगवालें।

आचार्य आत्रेय ने अपने सम्भाषा परिषद में विचारार्थ रखा कि—मदनफलादि द्रव्यों में कौन फल श्रेष्ठ है?

१. सर्वप्रथम शौनक जी ने कहा कि फलों में जीमूतक (देवदाली) श्रेष्ठ है। चूंकि यह कफ और पित्त को नष्ट करता है।

२. महर्षि वामक ने कहा—जीमूतक मृदु वीर्य होने के कारण मल का सम्यक् प्रकार भेदन नहीं करता। मुझे यह स्वीकार है कि कटुतुम्बी का फल उत्तम है। वमन में दोषों को उखाड़कर निकालने वाला भी है। यह भी ठीक है कि यह कफ पित्त को उखाड़कर बाहर निकालने वाला भी है।

३. महर्षि गौतम ने कहा—कि, यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि कटुतुम्बी अशीत (उष्ण), तीक्ष्ण, कटु और रूक्ष गुणवाली होने से अवृष्य है। फलों में धामार्गव श्रेष्ठ है। यह कफ पित्तनाशक भी है।

४. महर्षि वडिश ने कहा कि—धामार्गव वात वर्द्धक, ग्लानि उत्पन्न करने वाला और बलनाशक है। महर्षि वडिश ने कुटज की प्रशंसा की, यह बलनाशक नहीं होता। कफ पित्त को दूर करता है।

५. महर्षि काप्य ने कहा कि—कुटज (इन्द्रजौ) अति पिच्छिल है तथा अधिक वमन करने वाला तथा वायु में क्षोभ लाने वाला है। यह श्रेष्ठ नहीं, इससे तो उत्तम कृतवेधन है। चूंकि यह प्रबल कफपित्त को नष्ट करने वाला है।

६. महर्षि भद्रशौनक ने कहा कि—आपका कहना ठीक नहीं है। क्योंकि कृतवेधन अत्यधिक कटु होता है और बल को नष्ट करने वाला है।

७. महर्षि पुनर्वसु आत्रेय ने कहा कि आप लोगों ने जीमूतक फल आदि के सम्बन्ध में जो गुण दोषों का निरूपण किया है उसमें कोई संदेह नहीं, वे परम निश्चय ही हैं। किन्तु कोई भी द्रव्य ऐसा नहीं, जिसमें दोष नहीं हो, या गुणहीन हो। विचारणीय विषय यह कि किस द्रव्य में गुण अधिक रूप में पाया जाता है ? इन फलों के गुणों को निश्चयकरण में बताये गुणों को भी ध्यान में रखते हुये—जैसे जीमूतक कुष्ठ में श्रेष्ठ है। कटुतुम्बी प्रमेह में हितकर है। इन्द्रजौ हृदय रोग में ठीक है। धामार्गव का फल पाण्डुरोग में श्रेष्ठ है। कृतवेधन उदर रोग में हितकर है। मदनफल सभी रोगों में कषाय और तिक्त रस के साथ-साथ मधुर भी होता है, रूक्ष नहीं होता, कटु, उष्ण और पिच्छिल होता है, कफपित्त को नष्ट करता है, अपने कर्म को शीघ्र ही करता है, इसके सेवन से किसी प्रकार की हानि नहीं होती, वायु को अनुलोम करता है, इसलिये अनेक फलों के रहते हुए भी उन सब फलों में मदनफल श्रेष्ठ और प्रधान है। उपस्थित सभी मुनि समुदाय ने महर्षि आत्रेय के मत का अभिनन्दन किया और आदरपूर्वक उनके कथन को स्वीकार किया। इसी प्रकार रोगों के सम्बन्ध में भी विचार गोष्ठी होती थी। आज वैद्यों में यह नहीं देखी जाती, जिस की परम आवश्यकता है। अतः वैद्य समाज से अनुरोध है कि आप भी अपने यहाँ गोष्ठी का अवश्य प्रबन्ध करें।

एक उदाहरण आध्मान रोग का भी आपके समक्ष है। चूंकि अधिकतर रोगी आध्मान के उपद्रव से, ठीक-ठीक उपचार न होने से प्राण त्याग करते देखे जाते हैं।

इस रोगोपद्रव का कारण—जिस रोगी के शरीर में दोष की विकृति अधिक होती है, रूक्षता अधिक हो, मंदाग्नि हो, साथ ही उदावर्त भी रहता हो, ऐसे रोगी को अल्प मात्रा में या अल्प गुणवाली औषध, या रोग के अनुसार औषध न होने से वह औषध दो दोषों को उभाड़कर, मार्गों को रुद्ध करके, अधिक आध्मान उत्पन्न करके, पीठ, पार्श्व, शिरा प्रदेश में अधिक वेदना उत्पन्न करती है। श्वास, मल-मूत्र, अपान वायु की भयंकर रुकावट हो जाती है, ऐसी अवस्था में तत्काल अभ्यङ्ग, स्वेदन, फलवर्ति, निरुह व अनुवासन वस्ति का आश्रय लेना चाहिए। साथ ही उदावर्तहर तीक्ष्ण प्रभावशाली औषध से चिकित्सा करनी चाहिए। इसमें जरा भी देर न करें।

दूसरा उदाहरण—परिकर्तिका का है। जिस व्यक्ति ने घृत व तेल की वस्तु खाई हो या स्नेहनपान किया हो, उसका कोष्ठ भारी हो, सामदोष से उदर भारी हो या तीव्र औषध दी गई हो या, (२) शरीर रूक्ष हो, मृदु

कोष्ठ हो, थका हुआ हो, निर्बल हो, यदि ऐसे व्यक्ति को तीक्ष्ण विरेचन दे दिया गया हो तो वह औषध सामदोष को शीघ्र ही निकालकर, उदर में तीव्रशूल, झागदार रक्त के साथ परिकर्तिका रोग को उत्पन्न कर देती है।

उपचार—सामदोष में लंघन, पाचन, रूक्ष, लघु, आहार द्रव्यों से चिकित्सा करनी चाहिये।

(१) शुष्क शरीर में मधुर रस बृंहण होता है, यहां बृंहण क्रिया उपयोगी सिद्ध होगी। यदि आमदोष का पाचन हो गया हो फिर भी परिकर्तिका का अनुबन्ध बना हो तो क्षारीय अम्ल और लघु आहार लाभकर होगा।

यदि वायु की अधिकता हो, तो शुद्ध कासीस भस्म के साथ क्षार व नमक मिलाकर, अनार के रस के साथ-साथ देशी गौघृत मिला कर पीना चाहिए। योग इस प्रकार है—

अनार का रस ४ तोला, घृत १ तोला, कासीस भस्म १ रत्ती, यवक्षार २ रत्ती। पूर्ण मात्रा।

२. अनार के छिलके का चूर्ण ३ माशे की मात्रा में दही मिलाकर सेवन करावें।

३. अश्वत्थ वृक्ष (पीपल वृक्ष) गूलर, पाकड़ और कदम्ब, इनकी छाल से सिद्ध दूध भी हितकर होता है।

४. मुलैठी के कल्क और क्वाथ से विधिपूर्वक सिद्ध स्नेह की अनुवासन वस्ति देनी चाहिए।

तीसरा उदाहरण—हृदग्रह (हृदय की गति में रुकावट) वमन, विरेचन अथवा किसी औषधि के कुप्रभाव के कारण शरीर में उत्पन्न वेग को धारण कर लिया जाय तो, उस वेग से उत्पन्न हुए दोष, हृदय में जाकर भयंकर हृद्ग्रह (हृद्गति में रुकावट) को उत्पन्न करते हैं। हिचकी, कास, पार्श्वशूल, दीनता, लालास्राव, नेत्रों में भयंकर भ्रम उत्पन्न हो जाता है। रोगी अपनी जिह्वा को काटने लगता है। ज्ञान शून्य हो जाता है, दाँत किटकिटाने लगता है। यह अवस्था भयङ्कर होती है। ऐसी अवस्था में शीघ्र ही उपचार न किया जाय तो रोगी प्राण त्याग कर देता है।

उपचार—हृदय को वल देने वाली, तत्काल प्रभावप्रद औषधि का उपयोग करना चाहिए। मकरध्वज, जवाहर मोहरा, कस्तूरी, केशर प्रभृति दवा भी प्रभावशाली होती हैं। कोरामिन का प्रयोग इंजेक्शन द्वारा किया जाता है। यदि रोगी पित्तजन्य मूर्च्छा से पीड़ित हो तो मुक्ता भस्म या प्रवालपिष्टी दें। कफजन्य मूर्च्छा हो तो कट फल की नस्य देकर कटु द्रव्य से वमन करा दें। शेष दोषों को पाचन औषधियों से पचा देना चाहिए। समुचित चिकित्सा से जठराग्नि को प्रदीप्त कर क्रमशः वल को बढ़ाना चाहिए। यदि वमन से वायु कुपित होने की आशंका हो तो या वमन से वायु कुपित हो चुका हो और हृदय में पीड़ा उत्पन्न हो तो उसे स्निग्ध, अम्ल और लवण मिश्रित द्रव्यों से चिकित्सा करें। यदि वमन अधिक हो, उससे पित्त और कफ कुपित होकर हृदय में पीड़ा उत्पन्न करे तो रूक्ष, तिक्त और कटु द्रव्यों से चिकित्सा करनी चाहिए। पित्त कुपित अवस्था में मधुर रसयुक्त द्रव्यों से चिकित्सा करनी चाहिये।

चौथा उदाहरण—अंग ग्रह-शरीर में स्थित दोष किसी भी कारण से कुपित होकर अङ्गों में जकड़ाहट उत्पन्न कर देते हैं। शरीर में स्तम्भन, कम्प, सूचिभेदन वात पीड़ा, शिथिलता, शरीर में ऐंठन तथा मथने की तरह पीड़ा उत्पन्न होती है। ऐसी दशा में वातनाशक स्नेहन, स्वेदन आदि क्रिया हितकर होती है।

पाँचवां उदाहरण—जीवनदान, अति तीव्र औषधि के कुप्रभाव से या अन्य किसी कारण से रोगी को शुद्ध रक्त का स्राव होने लगता है तो रोगी का प्राण संकट में आ जाता है। उस समय तत्काल उपचार की आवश्यकता होती है। रक्तपित्त रोग में भी रक्तस्राव होता है, दोनों के पार्थक्य को अवश्य जान लेना चाहिये।

रक्त परीक्षा विधि—१. निकलते रक्त को अन्न में मिला कर कौआ या कुत्ता को खिलाया जाय तो यदि रक्त शुद्ध होगा तो वे उसे तत्काल खा लेंगे, अशुद्ध होगा तो वे नहीं खायेंगे, उसे रक्तपित्त का रक्तस्राव जानें।

२. श्वेत वस्त्र को रक्त में भिगोकर सुखालें, कपड़े के सूखने पर गर्म जल से कपड़े को धोवें। धोने के बाद यदि कपड़ा विवर्ण हो जाय तो रक्तपित्त समझना चाहिए। यदि धोने से दाग छूट जाय तो उसे शुद्ध रक्त जानें।
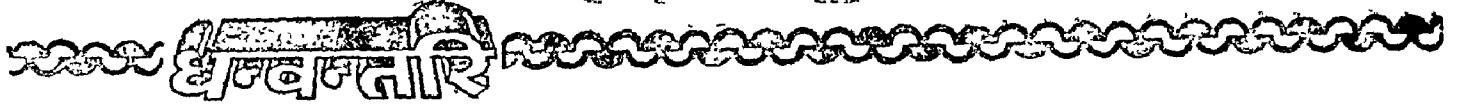
३. आजकल आधुनिक वैज्ञानिक परीक्षण से भी परीक्षण कराया जा सकता है । और रोगी को तत्काल रक्तदान देकर तत्काल उसका प्राण बचाया जा सकता है। रक्तदान में तत्सम खून का इन्जेक्शन देकर खून शरीर में चढ़ा दिया जाता है उससे उस की प्राण रक्षा हो जाती है।

रक्तदान क्रिया का उपयोग प्राचीनकालमें भी होता था ऐसा स्पष्ट वर्णन चरक के निम्न सूत्र से विदित होता है—

मृग गो महिषाजानां सद्यस्क जीवतामसृक् ।
पिवेज्जीवाभिसंधानं जीवं तद्ध्याशु गच्छति ॥
तदेव दर्भमृदितं रक्तं वस्तिं प्रदापयेत् ।
श्यामा काश्मर्य बदरी दूर्वो शीरैः श्रतं पयः ॥
घृत मण्डाञ्जन युक्तं शीतं वस्तिं प्रदापयेत् ।
पिच्छावस्तिं सुशीतं वा घृतमण्डानु वासनम् ॥

—च. सिद्ध स्थान. अ. ६।८२,८३ और ८४

अर्थात्—जीवित मृग, गौ, भैंस, और बकरे के ताजे रक्त को प्राण धारण करने के लिए पीना चाहिए। तत्काल निकाले हुए रक्त का पान करने से वह रक्त शीघ्र ही जीव रक्त के साथ मिलकर शोणित एक रूपता को प्राप्त करता है। अथवा मृग आदि के ताजे रक्त में कुशा को रख, मलकर रक्त की वस्ति देनी चाहिए । या काली निशोथ, गम्भारी, बेर, दूब और खस इनसे बनाया हुआ दूध, घृत के मण्ड में अञ्जन मिलाकर औषधि के शीतल होने पर वस्ति देनी चाहिये। अथवा शीतल पिच्छा वस्ति प्रयोग करनी चाहिये। अथवा घृत मण्ड से अनुवासन वस्ति देनी चाहिए। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण चरक के सिद्ध स्थान में दिये गये हैं। ये सब उदाहरण अयोग्य चिकित्सकों द्वारा उत्पन्न विकारों तथा उनके उपचारों से सम्बन्धित हैं।

चिकित्सक के गुण—

चिकित्सक कैसा हो इस सम्बन्ध में लिखा है कि वह स्मृतिमान, रोग हेतु विशेषज्ञ, युक्तिज्ञ, जितेन्द्रिय और प्रतिपत्तिमान (समय के अनुसार शीघ्र निर्णय करने वाला) तथा औषधियों का संयोग किस तरह से किया जाय ऐसा भिषज ही योग्य होता है। आचार्य के शब्द इस प्रकार हैं—

स्मृतिमान् हेतुयुक्तिज्ञो जितात्मा प्रतिपत्तिमान् ।
भिषगौषध संयोगैश्चिकित्सां कर्तुमर्हति ॥ —च. सू. अ २।६

आचार्यों का यह भी कहना कि चिकित्सक को चिकित्सा सम्बन्धित घटकों का ज्ञान भी आवश्यक होता है। वे घटक इस प्रकार हैं—

(१) देश (२) काल (३) प्रमाण (४) सात्म्य (५) असात्म्य, (६) द्रव्यों का योग का उपयोग समुचित रूप में करना चाहिये अन्यथा वे अहितकर हो सकते हैं। रोगी के लिए चिकित्सा का कोई कर्म अहितकर न हो इसका ध्यान रखना चिकित्सक का प्रथम कर्तव्य होता है। क्योंकि चिकित्सा का उद्देश्य भूत-दया है। अन्य प्राणियों पर दया करना ही उत्तम कार्य है। यह समझकर जो चिकित्सा में प्रवृत होता है वह सफल मनोरथ और अत्यन्त सुख भोगी होता है। महर्षि चरक के निम्न शब्द में पढ़ें—

परोभूत दया धर्म इतिमत्वा चिकित्सया ।
वर्तते यः स सिद्धार्थः सुख मत्यन्तमश्नते ॥ —च. चि. अ. २ सूत्र६२

इसी प्रकार सूत्र ५७ से ६२ तक ऐसा ही उपदेश दिया है।

योग और उनका प्रभाव

अनुभवी पाठक जानते हैं कि सभी योगों के गुण शास्त्र में लिखे हैं तदनुसार ही चिकित्सकजन उनका

उपयोग भी करते हैं। किन्तु जिन्हें अनुभव करते-करते अधिक समय बीत जाता है, उन्हें उन्हीं योगों में ऐसे गुणों का अनुभव भी मिल जाता है जिनके सम्बन्ध में कभी किसी का ध्यान भी नहीं गया होता।

इसी से आचार्य चरक ने कहा कि द्रव्य और औषध योग के प्रभावों के सम्बन्ध में निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता, चूंकि उनमें जो प्रभाव होता है वह अचिन्त्य होता है।

प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते।

औषध के दोष व रोग हरण शक्ति, प्रभाव की कल्पना नहीं की जा सकती। साधारण प्रतीत होने वाली वस्तु भी, कभी-कभी ऐसा चमत्कार दिखाती है, जिससे आश्चर्यचकित होना पड़ता है।

प्रभाव के सम्बन्ध में व्याख्या करते हुए आचार्य आत्रेयलिखते हैं कि—

रस वीर्य विपाकां सामान्यं यत्र लक्ष्यते। विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य स स्मृतः॥

अर्थात्—जिन द्रव्यों में रस, वीर्य, विपाक के समान रहने पर कर्म में जो विशेषता पाई जाती है, वह विशेष कर्म प्रभाव कहा जाता है। वह विचार शक्ति से परे होता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने कुछ उदाहरण उपस्थित किए हैं, वे उदाहरण पाठकों के लिए हितकर जानकर यहाँ भी उधृद्त किए जाते हैं। जैसे—

चित्रक और दन्ती दोनों रस में कटु, विपाक में कटु और वीर्य में उष्ण होते हैं। अपने विशेष प्रभाव के कारण दन्ती रेचन करने वाली होती है, किन्तु चित्रक रेचक नहीं होती है वह तो मल को बाँधने वाली होती है। चूंकि आग्नेय गुण जल का शोषण करता है यथा—"आग्नेय गुण भूयिष्ठं तोयांश परिशोषयेत्" फिर भी दन्ती विरेचक होती है। विष को विषघ्न बताया गया यह भी उसका प्रभाव ही है। जंगम विष स्थावर विष का नाश करता है और स्थावर विष का नाश जंगम विष से होता है। इसमें भी विशेष कारण यह है कि जंगम विष की गति ऊपर की ओर होती है और स्थावर विष की गति नीचे की तरफ होती है। इस विपरीत गति के कारण ही यह प्रभाव बताया गया है। मदनफल की गति ऊर्ध्व है और त्रिवृत (निशोथ) की गति नीचे की ओर है। यह गति प्रभाव से प्रभावित है। इसी प्रकार मणियों का प्रभाव भी प्रभाव से प्रभावित होकर ग्रह पीड़ा शान्ति के लिए उनका उपयोग किया जाता है।

"वीर्यं तु क्रियते येन या क्रिया"

द्रव्य जिस विशेष शक्ति से कर्म करता है, उसे वीर्य कहा जाता है। तब तो प्रभाव भी इस लक्षण के अनुसार वीर्य ही है। किन्तु आचार्यों ने वीर्य के भी दो भेद माने है एक चिन्त्य और दूसरा अचिन्त्य। जिसके गुण धर्म का विवेचन बुद्धिगम्य है उसे चिन्त्य वीर्य या केवल वीर्य कहा जाता है। जिसके गुणधर्म का विवेचन बुद्धिगम्य न हो उसे अचिन्त्य वीर्य या केवल प्रभाव कहा जाता है। इस बात का संकेत उक्त "प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते" आचार्य ने किया है।

आचार्यो ने बताया कि द्रव्यगत पदार्थो की कार्य प्रणाली के अन्तर्गत सामान्य बात यह है कि कुछ द्रव्य रस के द्वारा, कुछ द्रव्य वीर्य द्वारा, कुछ द्रव्य गुण द्वारा और कुछ द्रव्य विपाक द्वारा और कुछ द्रव्य प्रभाव द्वारा, अपने कार्य करते हैं। उनके शब्द इस प्रकार हैं यथा—

किंचिद्रसेन कुरुते कर्म, किंचिद् वीर्येण चापरम्।
द्रव्यं गुणेन पाकेन प्रभावेण च किंचन॥ —च. सू. अ. २६।७१-७२

आचार्य सुश्रुत ने भी इसकी पुष्टी में कहा है कि—

तद् द्रव्यमात्मना किंचित् किञ्चिद् वीर्येण सेवितम्।
किञ्चिद रस पाकाभ्यां दोषं हन्ति करोति वा॥ —सु० सू० अ० ४०

अष्टांग संग्रहकार वाग्भट्ट ने सू. अ. १० में कहा है कि—

यद्यद् द्रव्ये रसादीनां बलवत्त्वेन वर्तते।
अभिभूयेतरांस्तत्तत् कारणत्वं प्रपद्यते॥

यही बात आचार्य चरक ने भी कही, यथा—

रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तान पोहति ।
बलसाम्ये (गुणसाम्ये ग.) रसाहीनामिति नैसर्गिकं बलम् ॥ —च. सू. अ. २६ ७२।७

विशेष बात यह है कि द्रव्यों में रहने वाले रस को विपाक नष्ट कर देता है । रस और विपाक को वीर्य नष्ट कर देता है । रस, वीर्य तथा विपाक के गुण को प्रभाव अप्रभावित कर देता है । ये सब कर्म इन चारों में बल की समानता होने पर स्वाभाविक (कर्म) होता है । अधिकता होने पर अपने गुण को करते हैं इसके चन्द उदाहरण इस प्रकार हैं—यथा

(१) मधु का रस मधुर होता है, इसे नियमतः कफ की वृद्धि करनी चाहिये । पर इसका विपाक कटु होता है, इसलिए यह कफ नाशक है । मधुर रस कटु विपाक से दुर्बल होता है ।

(१)आनूप और जलीय मांस रस में मधुर और विपाक में भी मधुर होते हैं किन्तु इनका वीर्य उष्ण होता है। और वीर्य रस, विपाक से प्रबल है अतः यह पित्त को शान्त न करके पित्त की वृद्धि करते हैं ।

(३) दन्ती रस, विपाक और वीर्य में कटु और उष्ण होने से प्रभाव से विरेचक है ।

अतः पाठक योगों में रस, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव का जहाँ जहाँ उल्लेख है वहाँ-वहाँ बहुत ही बुद्धिमानी से समझकर, योगों को रोगी की रोग अवस्था पर पूर्ण विचार करके प्रयोग करेगे तो निश्चित ही उन्हें सफलता प्राप्त होगी ।

आचार्य चरक का भी ऐसा ही आदेश है यथा—

तस्मात् प्रागेव रोगभ्यो रोगेषु तरुणेषु वा ।
भैषजैः प्रति कुर्वीत य इच्छेत् सुखमात्मनः ॥ —च. सू. अ. ११ सू. ६३

एक समीक्षा

पाठक भली प्रकार जानते हैं कि एक रोग, दूसरे रोग का कारण बन जाता है । उन्होंने निदान ग्रन्थ में भी पढ़ा है कि--

निदानार्थकरो रोगो, रोगस्याप्युपलभ्यते ॥

निदानकार ने चन्द्र उदाहरण भी उपस्थित किये हैं । इसके अतिरिक्त निदानकार ने यह भी स्पष्ट लिखा है कि—

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ।
न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपिच ॥

अर्थात् कोई रोग अन्य रोग का कारण होकर स्वयं शान्त हो जाता है । कई रोग ऐसे होते हैं जो स्वयं भी बने रहते हैं और अन्य रोग का भी कारण बन जाता है । इनके कारणों का उल्लेख करते हुए आचार्य आत्रेय ने बताया कि इस प्रकार रोग का मिश्रण (संकरता) चिकित्सा के शुद्ध न होने के कारण या रोग अन्य रोग का कारण होने से अधिक देखे जाते हैं यथा—

एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यन्ते व्याधिसंकराः ।
प्रयोगापरि शुद्धत्वात्तथा चान्योन्य सम्भवात् ॥ —च. नि. अ. ८/२२

इसी प्रकार अनेक व्याधियों की एक चिकित्सा और एक व्याधि की एक ही चिकित्सा तथा एक व्याधि के अनेक उपाय और अनेक व्याधियों की अनेक चिकित्सा भी देखी जाती हैं । आचार्य के वचन इस प्रकार हैं—

एका शान्तिरनेकस्य तथैवैकस्य लक्ष्यते ।
व्याधेरेकस्य चानेका बहूना बह्य एव च ॥

उदाहरण उपस्थित करते हुए लिखा यथा—

शान्तिरामाशयोत्थानां व्याधीनां लंघन क्रिया ।
ज्वरस्यैकस्य चाप्येका शान्तिर्लंघिन मुच्यते ।।
तथा लघ्वशनाद्यश्च ज्वरस्यैकस्य शान्तयः ।
एताश्चैव ज्वर श्वास हिक्कादीनां प्रशान्तयः ।। —च. नि. अ. ८/३०/३१

अर्थात्—आमाशय से उत्पन्न होने वाली अनेक व्याधियों की केवल लंघन करना ही चिकित्सा है। ज्वर की चिकित्सा केवल लंघन करना ही कही जाती है और ज्वर की अनेक चिकित्सा के रूप में हल्का भोजन आदि है। यही चिकित्सा ज्वर प्रवास, हिक्का आदि अनेक रोगों की होती है।

अतः ऐसी अवस्था में समीक्षा करने के पश्चात् ही शुद्ध योग का प्रयोग करना चिकित्सक के लिए आवश्यक होता है।

प्रयोग शुद्ध है या नहीं इस सम्बन्ध में उसकी समीक्षा उसे बहुत ही बुद्धिपूर्वक करनी होती है।

आप जानते हैं कि योग में भी द्रव्य ही प्रधान होते हैं। द्रव्यों में रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव होता है। उनकी जानकारी की परमावश्यकता होती है। यह भी जानना जरूरी होता है कि किस द्रव्य का, योग का उपयोग किस अवस्था में, किस देश, काल, परिस्थिति में किस अधिकार के साथ किया जा सकता है। वह द्रव्य का योग किस रोगाधिकार का है।

इसके अतिरिक्त यह भी जानना उसके लिए आवश्यक होता है कि योग का निर्माण किस प्रकार, शुद्ध व अशुद्ध रीति से, अमुक अमुक द्रव्यों से किया गया है या नहीं। यदि योग अशुद्ध होगा, निर्माण में पूरे द्रव्यों से युक्त परिमाण में ठीक-ठीक नहीं बना होगा तो उससे लाभ की अपेक्षा हानि भी हो सकती है।

इसी प्रकार रोग के कारण, लक्षण, उपद्रव, उसकी साध्यता, असाध्यता, संचय, प्रसार, प्रकोपक दोष, इत्यादि का ज्ञान भी आवश्यक होता है।

सभी जानते हैं कि चिकित्सक का कार्य जीवन रक्षक का होता है। क्षण-क्षण में उसे भयङ्कर परिस्थितियों में से गुजरना होता है। यदि वह अपने कार्य में दक्ष नहीं है तो उसे इस चिकित्सा सम्बन्धी कार्य से अपने को प्रथक कर लेना चाहिए। धन के लालच से किया गया चिकित्सा कार्य भविष्य में उसके लिए महान् दुःखदायी सिद्ध हो सकता है। शास्त्रकारों ने उनकी खुलकर निन्दा की है। यहाँ हमें उसकी व्याख्या नहीं करनी है।

वैद्य का कर्त्तव्य है कि सभी रोगी व्यक्तियों की चिकित्सा अपने पुत्र के समान यत्नपूर्वक कर जनता की रक्षा रोगरूपी बाधा से अवश्य करे। यदि उसे धर्म की इच्छा है तो। चूँकि धर्म कार्य में तत्पर ब्रह्म प्राप्ति की इच्छा रखने वाले महर्षियों ने धर्म के लिए आयुर्वेद का प्रकाश (उपदेश) किया है। आयुर्वेद का उपदेश धन अर्जित करने के लिए या अपनी विशेष कामना की सिद्धि के लिए नहीं किया था।

यह आयुर्वेद जीवका के लिये नहीं है—जो चिकित्सक अपनी जीवका के लिए चिकित्सा को व्यवसाय बना कर बाजार में बेचते हैं, वे सुवर्ण राशि को छोड़कर धूलि राशि को एकत्र करते हैं। चूँकि जीवनदान से बढ़कर कोई दान नहीं। इस संसार में धर्म अर्थ को दान देने वाला सबसे बड़ा वैद्य ही कहा जाता है। इस शास्त्र का मुख्य उद्देश्य भूतदया है।—(देखो चरक सूत्र स्थान का दूसरा अध्याय)

रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही चिकित्सा का औचित्य

बुद्धिमान व्यक्ति वह है जो रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही आवश्यकतानुसार रोग शमन में सचेष्ट हो जाता है। जो व्यक्ति अज्ञानता से, अपनी लापरवाही से उत्पन्न हुए रोग की उपेक्षा करता है और अणुवत रोग को

बढ़ने देता है, तब तक ध्यान नहीं देता, जब तक रोग अत्यन्त बलवान होकर उसकी आयु और बल का शत्रु नहीं बन जाता। बाद में अपने कुटुम्बीजन को बुलाकर दुःख को रोता है और सम्पूर्ण धन व्यय करके भी अच्छा होना चाहता है। किन्तु जब रोग ने शरीर को क्षीणकर अच्छे होने में असमर्थ बना दिया है ऐसे समय में कौन क्या कर सकता है? अतः पूर्ण सावधान रहकर, रोग के आरम्भ में ही उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। यही उपदेश भगवान आत्रेय ने दिया है यथा—

तस्मात् प्रागेव रोगेभ्यो रोगेषु तरुणेषुवा। भेषजैः प्रति कुर्वीत य इच्छेत् सुखमात्मनः॥ —च.सू.अ. ११/६३

विशेषांक का उद्देश्य

प्रस्तुत शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगाङ्क का दूसरा भाग पाठकों के समक्ष है। इस अङ्क में यथासम्भव उन्हीं योगों को स्थान दिया गया है जिनका वर्णन प्रथम भाग में नहीं हुआ है।

शास्त्रों में हजारों प्रयोग हैं, फिर भी नवीन चिकित्सक ही नहीं, पुरातन वैद्य भी अनुभूत योगों के लिए [illegible] रहते हैं, का[illegible]ष्ट है कि ग्रन्थों में जितने भी योग हैं उन पर अनुभवी वैद्यों ने अपने अनुभव की मोहर नहीं लगाई। उनके गुण, गुण का विश्लेषण व अनुसंधान किया भी हो तिस पर भी जैसे पूर्व में लिखे हुए थे, वैसे ही बने रहने दिया, उन्होंने उनका कभी उपयोग भी किया था या नहीं, विवरण प्रस्तुत नहीं मिलता। गुरुजन, या पूर्व वैद्यों ने यहाँ तक अपने लड़के से भी छिपाव किया, उसी का परिणाम यह रहा। आज का वैद्य अनुभूत योगों के लिए भटकता रहता है। उसे रास्ता नहीं मिलने से वे आयुर्वेदीय शास्त्रीय योगों को छोड़ एलोपैथिक योगों की ओर अग्रसर हो उन्हें वर्तने लगे। हमने अनुभव किया कि उनकी आवश्यकता पूर्ति हेतु आयुर्वेदीय शास्त्रीय योगों पर विद्वान अनुभवी वैद्यों से उनका निजी अनुभव लिखाकर पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जाय, तो निश्चय ही वैद्यजन आयुर्वेदीय योगों को उपयोग में लाने के लिए दत्तचित होगें। इसी उद्देश्य से ये दो शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगाङ्क सेवा में प्रस्तुत हैं।

यद्यपि ये दोनों अङ्क आशा के अनुरूप तो नहीं बन पड़े हैं फिर भी पाठकों को इनसे बहुत कुछ लाभ अवश्य मिलेगा। इस आशा से ये पाठकों की सेवा में प्रस्तुत हैं। भविष्य में हमारे लेखक विद्वज्जन विशेष उत्तम बनाने के लिए प्रयत्न करेंगे। ऐसे कार्य में सभी अनुभवी जनों को अपना-अपना सहयोग खुले हृदय से देना चाहिए।

निवेदक—

वैद्य मुन्नालाल गुप्त (विशेष सम्पादक)
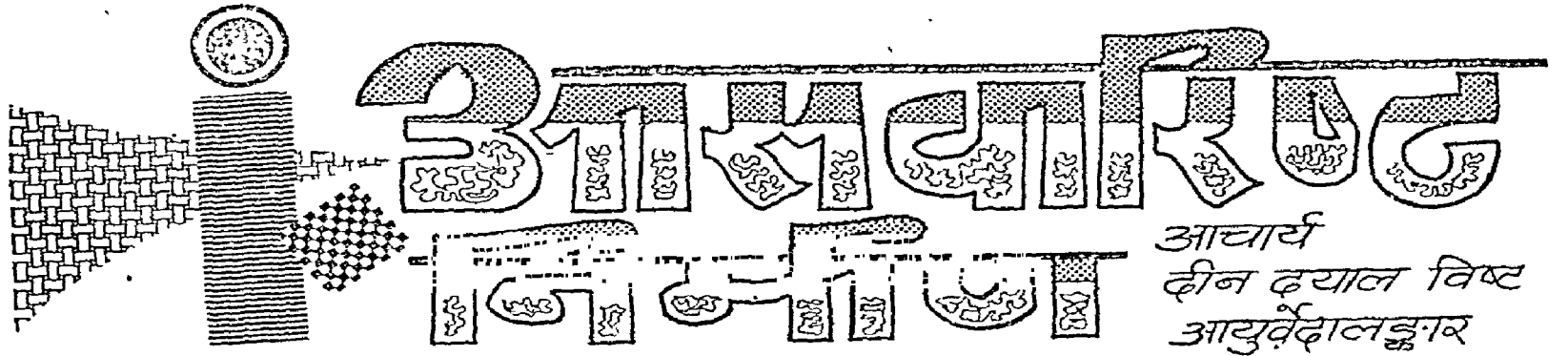
आसवशाला भवन—

देश—भवन निर्माण के लिए सीलनरहित, समशीतोष्ण जलवायु वाला देश उपयुक्ततम रहेगा, जहां ऋतु परिवर्तन एवं दिन रात के प्रभाव का तापमान पर न्यून से न्यून प्रभाव पड़े। इससे निर्माण के लिये उपयुक्ततम तापमान बनाये रखने में कम से कम प्रयत्न एवं व्यय की आवश्यकता होगी।

स्थान—भवन के लिए सीलनरहित प्रकाश और धूपवाली जगह अच्छी रहेगी। इसके अलावा यह स्थान गन्दगी से दूर होना चाहिए। इस भूमि में पहिले भी कभी गन्दगी न रही हो, क्योंकि गन्दगी में विद्यमान अनेक प्रकार के जीवाणु सन्धान प्रक्रिया में विघ्न पैदा कर इसे विकृत कर सकते हैं। स्थान निश्चित करते समय साधनों की सुलभ प्राप्ति का ध्यान रखना भी आवश्यक होगा।

भवन—आसव निर्माण के सम्पूर्ण कार्य को ध्यान में रखते हुए हम विचार करें, तो इसमें कई कक्ष आपस में इस तरह जुड़े होने चाहिए कि कार्य में ज्यादा से ज्यादा सुविधा हो सके और दक्षतापूर्वक शीघ्रता से कार्य

आसवशाला भवन का रेखांकन
वनस्पलि उद्यान
या
फार्मेसी बनाने के लिये रिक्त स्थान
निरीक्षक कक्ष
प्रयोगशाला एवं पुस्तकालय
वैद्य कक्ष
कार्यालय (लिपिक)
प्रदर्शन व विक्रय कक्ष
निर्मित भन्डार
मुख्य द्वार
गुड रखने के लिये टंकी
वृक्षावली के लिये स्थान
वृक्षावली के लिये स्थान
चार दिवारी पश्चिम दिशा
चार दिवारी १८०' दिशा
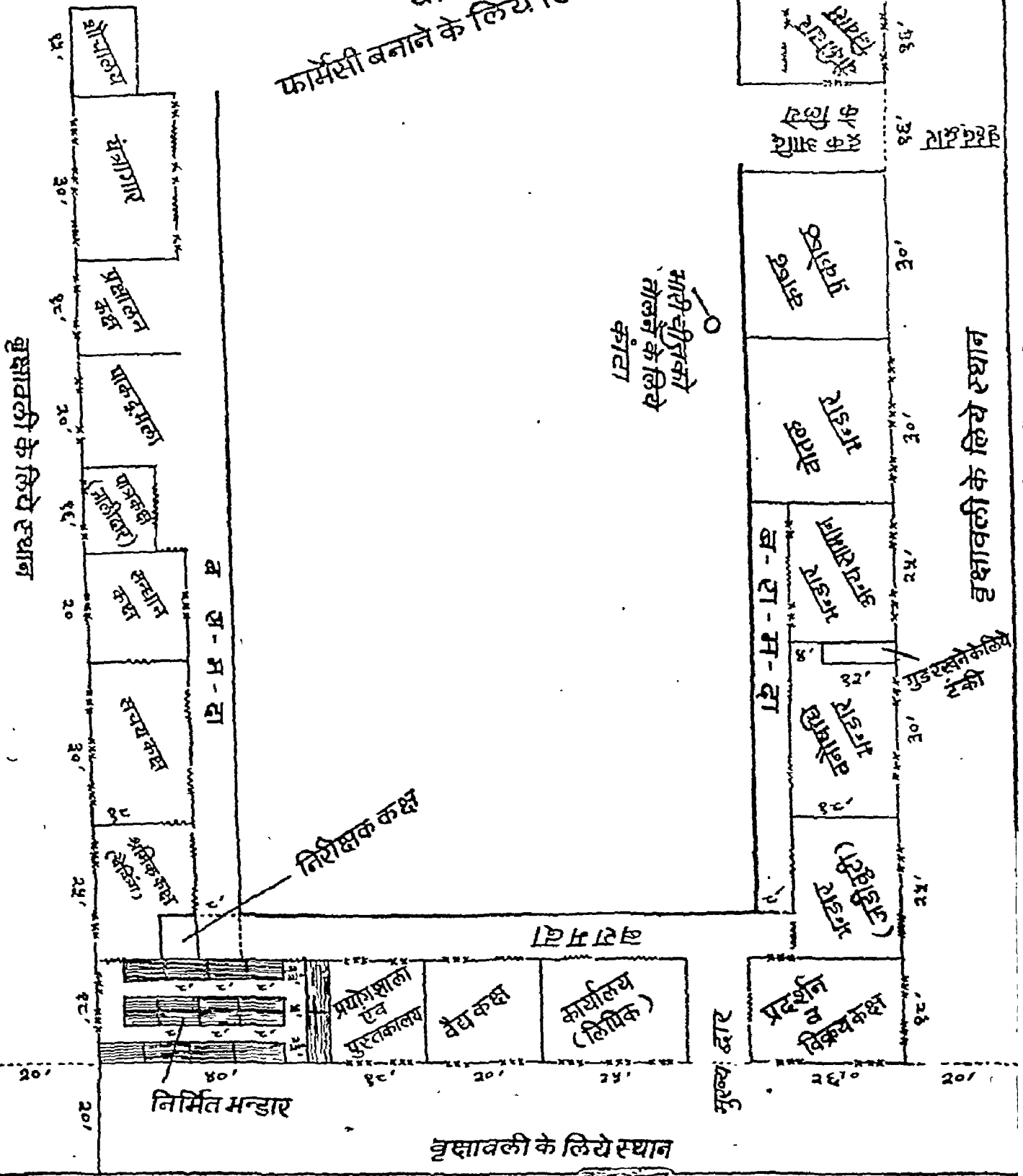
सम्पन्न किया जा सके। इस दृष्टि से भवन निर्माण की अनेक विधियां हो सकती हैं। इनमें से एक का रेखांकन प्रस्तुत है। इसमें निर्माण की दृष्टि से यथासम्भव सभी सुविधाओं का ध्यान रक्खा गया है, जो अनुभव पर आधारित है। इसमें भवन निर्माण-कला की दृष्टि से रही त्रुटियों का निराकरण किया जा सकता है।

इसमें कार्य की सुविधा की दृष्टि से विभिन्न कक्षों के कमरों का आकार निर्धारित किया गया है और इन्हें एक दूसरे से निकट रखा गया है। लेकिन कार्य की अधिकता या न्यूनता को देखते हुए, इन्हें छोटा या वड़ा वनाया जा सकता है। उपरोक्त रेखांकन १० से १५ हजार लीटर आसव निर्माण के लिए पर्याप्त होगा।

यह मात्र आसवशाला का रेखांकन है, परन्तु पूर्ण फार्मेसी का निर्माण करते समय आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर इसे फार्मेसी के साथ संलग्न किया जा सकता है।
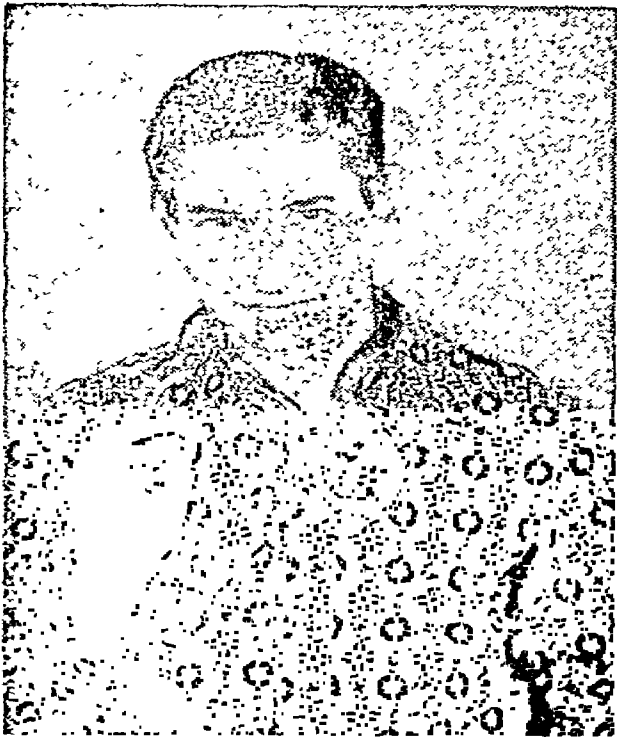
रेखांकन के सामने के हिस्से में आप देखेंगे, कि वैद्य कक्ष रखा गया है। इसके एक ओर प्रयोगशाला एवं पुस्तकालय का कमरा है और लिपिक कार्यालय है। इसके साथ ही मुख्य द्वार रखा गया है। द्वार के दूसरी ओर निर्मित आसवों का प्रदर्शन एवं विक्रय कक्ष है। इसके वाद जड़ी वूटी भण्डार है, इसमें वहुमूल्य पदार्थ टीन के विभिन्न आकार के ड्रमों में सुरक्षित रखे जायेंगे। इस हेतु १०० लीटर के ५०,५० लीटर के १००, २५ लीटर के ५० और १० लीटर आयतन के ४० ड्रम पर्याप्त होंगे। १० से १५ हजार लीटर आसव में पड़ने वाली ४० से ५० क्विन्टल चीनी भी इसी भण्डार में रखी जा सकेगी।

इसके वाद दूसरा वड़ा भण्डार का कमरा है इसमें मोटी वनौषधियां, विभिन्न छालें एवं काष्ठादि मोटा सामान रखा जायेगा। इस हेतु इस कमरे में विभिन्न ऊंचाइयों पर लोहे की शलाकाओं के रेक्स होने चाहिए, ताकि वनौषधियों की वोरियाँ अलग-अलग रखी जा सकें और इन्हें रखने निकालने में सुविधा हो। इस कमरे के एक पार्श्व में १२×४×४ फुट का सीमेन्ट का हौज वना होना चाहिए जो लकड़ी के ढक्कनों से ढका जा सके। इसमें ५० से ७५ कुन्टल गुड़ रखा जा सकेगा, जो १० से १५ हजार लीटर आसव के लिए पर्याप्त होगा।

इस भण्डार के पार्श्व में एक अन्य भण्डार का कमरा है, जो साज सामान या अन्य वस्तुओं के काम आ सकेगा। आवश्यकतानुसार इसे अन्य कार्यों के लिए प्रयुक्त किया जा सकेगा। इसके वाद २० से ३० हजार खाली वोतलों की वोरियों को रखने के लिए शेड है और इसके पश्चात् ईंधन या और अन्य कार्यों के लिए एक और वड़ा शेड है। इसके साथ ही वृहत् द्वार रखा गया है, जिससे ट्रक आदि अन्दर आ सकें, और वड़ी मात्रा में सामान अन्दर वाहर आ जा सके। इस द्वार के दूसरे पार्श्व में चौकीदार के निवास की व्यवस्था है।

भवन के दूसरे वाजू के अन्त में शौचालय के लिए स्थान रखा गया है। इसके वाद यन्त्रागार है, जिसमें विद्युत से चलने वाली मशीनें लगाई जायेंगी। यन्त्रागार विशेष रूप से कार्यालय से दूर रखा गया है, ताकि मशीनों की आवाज से कार्यालय कार्य में वाधा न पड़े। पुनः इसके साथ ही प्रक्षालन कक्ष है, जिसमें वड़े पात्र आदि धोने की व्यवस्था है। इसका फर्श विशेष रूप से ढलवां होना चाहिए, ताकि स्वच्छता रह सके। प्रक्षालन कक्ष के साथ ही पाकशाला है, इसमें अरिष्टों का क्वाथ वनाने के लिए चार वड़ी भट्टियाँ ५×३×१½ फुट की होनी चाहिए। भट्टियों का एक सिरा दीवार के वाहर निकला हो, जिन्हें मोटे लोहे के जालीदार ढक्कनों से

ताला लगाकर बन्द किया जा सके। इससे राख निकालने में सुविधा होगी और स्वच्छता रहेगी। वायु का आवागमन तीव्रता से होगा और धुआँ कम होगा। आवश्यकतानुसार भट्टियों के साथ चिमनियों का आयोजन किया जा सकेगा। भट्टियाँ जमीन की सतह के साथ ही बनाई जायें, तो अच्छा रहेगा। क्योंकि इससे बड़ी ड्रम कुण्डियों पर कार्य करने में सुविधा रहेगी और भारी ड्रमों के गिरने का भय कम रहेगा। अच्छा हो कि भट्टियां ढलवां लोहे की बनाई जायें, और इन्हें जमीन के अन्दर ही स्थाई रूप से स्थापित कर दिया जाये। यदि सम्भव हो सके तो क्वाथ-ड्रम कुण्डियों को भट्टी से उतारने चढ़ाने के लिए पाकशाला की सुदृढ़ छत पर पुलियां लगा दी जायें।

अनेक फार्मेसियां इस कार्य के लिए बायलर का प्रयोग कर रही हैं। यह एक उत्तम साधन है, लेकिन यह हर एक के लिए सुलभ साधन नहीं। यदि बायलर उपलब्ध किया जा सके, तो इसे अपने वर्तनों के साथ इसी कक्ष में स्थापित किया जा सकता है।

इसी कक्ष के साथ एक अन्य कक्ष रखा गया है, इसमें निर्मित क्वाथ संचित किया जायेगा। गुड़ आदि मधुर द्रव्य घोलने का विद्युत चालित पात्र, आयतन मापक पात्र और पम्पिंग सैट स्थापित किया जायेगा। यह कक्ष दोनों तरफ से जालीदार होना चाहिए, ताकि पर्याप्त प्रकाश रहे परन्तु मक्खियां आदि न आ सकें।

इसके बाद सन्धान कक्ष है। यह विशेष रूप से छोटा और कम दरवाजे-खिड़कियों वाला रखा गया है, ताकि तापमान को स्थिर बनाये रखने में सुविधा हो। शीत ऋतु में तापमान को बनाए रखने के लिए व्यवस्था होनी चाहिए। इस कार्य के लिए विद्युत हीटर लगे होने चाहिए। अभाव में कोयले की अङ्गीठियों का प्रयोग किया जा सकता है। ग्रीष्म काल में तापमान को निम्न रखने के लिये व्यवस्था होनी चाहिए। इस कार्य के लिए बर्फ की सिल्लियों का प्रयोग किया जा सकता है, जो एक सुलभ साधन है। इस कक्ष का फर्श ड्रम रखने के लिए सीढ़ीनुमा बनाया जाना सुविधाजनक रहेगा।

सन्धान कक्ष के बाद संचय कक्ष रखा गया है। इसमें आसव कम से कम ६ मास तक ड्रमों में संचित रहेंगे, ताकि गाद नीचे बैठ जावे और आसव पूर्णतः निर्मल हो जावें। यह कक्ष भी सीढ़ीनुमा बना हो तो साईफन द्वारा आसव निकालने-भरने में सुविधा रहेगी। यह कक्ष विशेष रूप से ठण्डा होना चाहिए ताकि दीर्घकाल तक संचय के दौरान मद्य की कम से कम हानि होवे।

इसके बाद आसव निर्मल हो जाने पर पार्श्व के पैकिंग कक्ष में जाकर अन्तिम रूप से बोतलों में भरा जायेगा। इसमें श्रमिक भरने एवं पैकिङ्ग का कार्य करेंगे। अतः इसके एक सिरे में निरीक्षक का कक्ष होना जरूरी होगा, जो दोनों ओर से कांच के शीशों का बना हो। संवेष्टन (पैकिङ्ग) के बाद आसव संलग्न निर्मित भण्डार में चला जाएगा। यह कमरा विशेष रूप से आसव संचय के लिए बनाया गया है। इसमें दीवार की दोनों तरफ बोतलें रखने के लिये सीमेंट के स्थाई रेक्स की एक पंक्ति कमरे के मध्य में भी होगी, जिसके दोनों तरफ बोतलें रखी जा सकेंगी। रेक्स (८×२½×१½ फुट) के खानों के रूप में बनाए जा सकेंगे। इसमें १८ से २० हजार बोतलें रखी जा सकेंगी।

यन्त्रागार, पाकशाला, प्रक्षालन कक्ष, बोतल भण्डार और ईंधन प्रकोष्ठ पर टीन या एसबैक्स की चादर डाली जा सकती है। शेष सम्पूर्ण भवन पर सीमेन्ट का लेण्टर डालना उपयुक्त रहेगा। सीमेण्ट की छत वाले सम्पूर्ण कमरों के आगे ८ फुट का बरामदा रखा गया है।

पूरे आसव-शाला के बाहर की तरफ केवल खिड़कियां रखी गई हैं। सभी कमरों के दरवाजे केवल अन्दर की तरफ ही रक्खे गये हैं। भवन के विभिन्न कमरों में प्रकाश की उचित व्यवस्था के लिए रोशनदान होंगे। सभी खिड़कियों पर लोहे की पतली जाली लगी होगी और आवश्यकतानुसार संधान, संचय, श्रमिक कक्ष के दरवाजे भी जालीदार होंगे। क्योंकि आसव निर्माण में मधुर द्रव्य का प्रयोग बहुलता से होता है, जिससे मक्खी आदि से गंदगी होने का भय रहता है।

सम्पूर्ण भवन के चारों ओर २० फुट की दूरी पर एक चारदिवारी होगी, इसमें सफेदा आदि की वृक्षावली लगाई जा सकेगी। रेखाङ्कन के पिछले हिस्से में वनौषधि-वाटिका लगाने के लिए पर्याप्त स्थान रखा गया है। आवश्यकतानुसार इसे बढ़ाया जा सकता है। भविष्य

में इस स्थान का उपयोग अन्य भवनों के लिये भी किया जा सकता है।

सम्पूर्ण भवन में स्वच्छता, प्रकाश, विद्युत, वायु का आवागमन (वैन्टीलेशन) और जल निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

निर्माण यन्त्र एवं पात्र—

यन्त्रागार में २ डिसेन्टीग्रेटर, २ चट्टू मशीन, एक छाल आदि काष्ठ द्रव्यों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट सकने वाली मशीन अत्यावश्यक है। इनकी विद्युत-मोटरें यथासम्भव प्रत्येक के साथ पृथक-पृथक होनी चाहिये। आवश्यकतानुसार अन्य मशीनों की स्थापना भी की जा सकती है।

इसके अतिरिक्त कुछ मशीनें ऐसी हैं जो कार्य की सुविधा की दृष्टि से विभिन्न स्थानों में लगाई जानी चाहिए। जैसे पी.पी. ढक्कन लगाने की मशीन (कैप सीलिंग मशीन) और बोतल फिलिंग मशीनें श्रमिक-कक्ष (पैकिङ्ग) में होनी चाहिए। बोतलें धोने की मशीन प्रक्षालन कक्ष में एक प्रथक स्थान में स्थित होनी चाहिये।

इसके अलावा वृहत् मात्रा में आसव-निर्माण को सरल एवं व्यवस्थित ढङ्ग से करने के लिए तीन चीजें आवश्यक होंगी—

प्रथम पम्पिङ्ग-मशीन—यह मशीन वायलर पात्र से अथवा भट्टी के पात्र से आसव के क्वाथ द्रव्य को आयतन मापक पात्र, पुनः गुड़ आदि मिलाने के पात्र, पुनः आयतन मापक पात्र और पुनः सन्धान पात्र तथा वहां से संचय पात्र में पम्प कर सकेगी। अर्थात् यह "पम्पिङ्ग सेट" आवश्यकतानुसार आसव द्रव को विभिन्न पात्रों में फेंक सकेगा। इससे कार्य अत्यन्त सरल हो जायेगा, आसव द्रव्य बाह्य वायु के सम्पर्क में आने से बचेगा और उत्पन्न मद्य की हानि भी नहीं होगी। पम्पिङ्ग मशीन के साथ आवश्यकतानुसार दोनों तरफ पौन इञ्च के २५ से ५० फुट लम्बे रवड़ या पोलीथीन की ट्यूब लगी होनी चाहिये।

इसके अभाव में क्वाथ निर्माण पात्र सन्धान संचय मधुर द्रव्य घोलने के पात्रों को अपने-अपने कक्ष में सीढ़ियों पर इस तरह स्थापित किया जाना चाहिए ताकि द्रव साइफन द्वारा सरलता से एक पात्र से दूसरे पात्र में बदला जा सके। इस हेतु इन पात्रों में विभिन्न ऊँचाइयों पर टूटियाँ भी लगाई जा सकती हैं।

द्वितीय—आयतन-मापक पात्र—इसे आवश्यकतानुसार २००-४०० या ५०० लीटर का बनाया जा सकता है। इससे हम बिलकुल ठीक ठीक ज्ञात कर सकेंगे कि क्वाथ बनाने के बाद कितना द्रव शेष रहा, गुड़ आदि मधुर द्रव्य घोलने के बाद वह कितना हो गया, फिर संधान के बाद देखेंगे कि कितना आसव निर्मित हुआ। इसके बाद गाद बैठकर कितना निर्मित आसव प्राप्त हुआ, जो बोतलों में संवेष्टित किया गया, यह हमें बोतल-फिलिंग मशीन से ज्ञात हो जायेगा।

इस तरह हम इतनी वृहत मात्रा से भी बिलकुल सही सही आँकड़े निकाल सकेंगे कि किस स्थिति में आसव के आयतन में क्या परिवर्तन हुआ। इस तरह से पुनः हम वैज्ञानिक ढंग से यदि किसी नतीजे पर पहुँचना चाहेंगे, तो इसे हम सही मान सकते हैं, क्योंकि इसका आधार सही होगा।

आयतन मापने का कार्य एक स्थाई पात्र में द्रव भर कर चिह्नित शलाका से भी किया जा सकता है, कि इस पात्र में कितना द्रव किस चिह्न तक आवेगा।

तृतीय—इसके अतिरिक्त तीसरा आवश्यक पात्र गुड़ घोलने का पात्र होगा। इसका आयतन आवश्यकतानुसार १ से १॥ हजार लीटर होना चाहिए। इसके अन्दर गुड़ आदि मधुर द्रव्यों को घोलने के लिए विद्युत-चालित पंखे होने चाहिये जो वृहद मात्रा में गुड़ को शीघ्रता से क्वाथ में घोल दें। यह पात्र मुख्यरूप से पाकशाला और संधान कक्ष के मध्य स्थापित किया जाना चाहिए।

क्वाथ निर्माण के लिए पात्र मोटी पीतल की चादर के होने चाहिए। इसका तला विशेष रूप से मोटा रखा जाना चाहिये। इन पर अन्दर की ओर समय-समय पर कलई की जानी चाहिये। इनका आयतन आवश्यकतानुसार ५०० से १ हजार लीटर तक होना चाहिए। इनकी चौड़ाई तथा गहराई क्रमशः ३ या ४ फुट तक होनी चाहिये।

अन्य वड़े पात्र सैंगौन की लकड़ी के या पुनः कुछ सीमेंट के हौज के रूप में बनाये जा सकते हैं। छोटे पात्र यथा आवश्यक स्टेनलेस स्टील के होने चाहिए।

कहने की आवश्यकता नहीं, कि कार्य कर चुकने के

ताला लगाकर बन्द किया जा सके। इससे राख निकालने में सुविधा होगी और स्वच्छता रहेगी। वायु का आवागमन तीव्रता से होगा और धुआँ कम होगा। आवश्यकतानुसार भट्टियों के साथ चिमनियों का आयोजन किया जा सकेगा। भट्टियाँ जमीन की सतह के साथ ही बनाई जायें, तो अच्छा रहेगा। क्योंकि इससे बड़ी ड्रम कुण्डियों पर कार्य करने में सुविधा रहेगी और भारी ड्रमों के गिरने का भय कम रहेगा। अच्छा हो कि भट्टियां ढलवाँ लोहे की बनाई जायें, और इन्हें जमीन के अन्दर ही स्थाई रूप से स्थापित कर दिया जाये। यदि सम्भव हो सके तो क्वाथ-ड्रम कुण्डियों को भट्टी से उतारने चढ़ाने के लिए पाकशाला की सुदृढ़ छत पर पुलियां लगा दी जावें।

अनेक फार्मेसियां इस कार्य के लिए बायलर का प्रयोग कर रही हैं। यह एक उत्तम साधन है, लेकिन यह हर एक के लिए सुलभ साधन नहीं। यदि बायलर उपलब्ध किया जा सके, तो इसे अपने बर्तनों के साथ इसी कक्ष में स्थापित किया जा सकता है।

इसी कक्ष के साथ एक अन्य कक्ष रखा गया है, इसमें निर्मित क्वाथ संचित किया जायेगा। गुड़ आदि मधुर द्रव्य घोलने का विद्युत चालित पात्र, आयतन मापक पात्र और पम्पिंग सैट स्थापित किया जायेगा। यह कक्ष दोनों तरफ से जालीदार होना चाहिए, ताकि पर्याप्त प्रकाश रहे परन्तु मक्खियाँ आदि न आ सकें।

इसके बाद सन्धान कक्ष है। यह विशेष रूप से छोटा और कम दरवाजे-खिड़कियों वाला रखा गया है, ताकि तापमान को स्थिर बनाये रखने में सुविधा हो। शीत ऋतु में तापमान को बनाए रखने के लिए व्यवस्था होनी चाहिए। इस कार्य के लिए विद्युत हीटर लगे होने चाहिए। अभाव में कोयले की अङ्गीठियों का प्रयोग किया जा सकता है। ग्रीष्म काल में तापमान को निम्न रखने के लिये व्यवस्था होनी चाहिए। इस कार्य के लिए बर्फ की सिल्लियों का प्रयोग किया जा सकता है, जो एक सुलभ साधन है। इस कक्ष का फर्श ड्रम रखने के लिए सीढ़ीनुमा बनाया जाना सुविधाजनक रहेगा।

सन्धान कक्ष के बाद संचय कक्ष रखा गया है। इसमें आसव कम से कम ६ मास तक ड्रमों में संचित रहेंगे, ताकि गाद नीचे बैठ जावे और आसव पूर्णतः निर्मल हो जावें। यह कक्ष भी सीढ़ीनुमा बना हो तो साइफन द्वारा आसव निकालने-भरने में सुविधा रहेगी। यह कक्ष विशेष रूप से ठण्डा होना चाहिए ताकि दीर्घकाल तक संचय के दौरान मद्य की कम से कम हानि होवे।

इसके बाद आसव निर्मल हो जाने पर पार्श्व के पैकिंग कक्ष में जाकर अन्तिम रूप से बोतलों में भरा जायेगा। इसमें श्रमिक भरने एवं पैकिङ्ग का कार्य करेंगे। अतः इसके एक सिरे में निरीक्षक का कक्ष होना जरूरी होगा, जो दोनों ओर से कांच के शीशों का बना हो। संवेष्टन (पैकिङ्ग) के बाद आसव संलग्न निर्मित भण्डार में चला जाएगा। यह कमरा विशेष रूप से आसव संचय के लिए बनाया गया है। इसमें दीवार की दोनों तरफ बोतलें रखने के लिये सीमेंट के स्थाई रैक्स की एक पंक्ति कमरे के मध्य में भी होगी, जिसके दोनों तरफ बोतलें रखी जा सकेंगी। रैक्स (८ × २½ × १½ फुट) के खानों के रूप में बनाए जा सकेंगे। इसमें १८ से २० हजार बोतलें रखी जा सकेंगी।

यन्त्रागार, पाकशाला, प्रक्षालन कक्ष, बोतल भण्डार और ईंधन प्रकोष्ठ पर टीन या एसबैस्टस की चादर डाली जा सकती है। शेष सम्पूर्ण भवन पर सीमेन्ट का लेण्टर डालना उपयुक्त रहेगा। सीमेण्ट की छत वाले सम्पूर्ण कमरों के आगे ८ फुट का बरामदा रखा गया है।

पूरे आसव-शाला के बाहर की तरफ केवल खिड़कियां रखी गई हैं। सभी कमरों के दरवाजे केवल अन्दर की तरफ ही रक्खे गये हैं। भवन के विभिन्न कमरों में प्रकाश की उचित व्यवस्था के लिए रोशनदान होंगे। सभी खिड़कियों पर लोहे की पतली जाली लगी होगी और आवश्यकतानुसार संधान, संचय, श्रमिक कक्ष के दरवाजे भी जालीदार होंगे। क्योंकि आसव निर्माण में मधुर द्रव्य का प्रयोग बहुलता से होता है, जिससे मक्खी आदि से गंदगी होने का भय रहता है।

सम्पूर्ण भवन के चारों ओर २० फुट की दूरी पर एक चारदिवारी होगी, इसमें सफेदा आदि की वृक्षावली लगाई जा सकेगी। रेखाङ्कन के पिछले हिस्से में वनौषधि-वाटिका लगाने के लिए पर्याप्त स्थान रखा गया है। आवश्यकतानुसार इसे बढ़ाया जा सकता है। भविष्य

में इस स्थान का उपयोग अन्य भवनों के लिये भी किया जा सकता है।

सम्पूर्ण भवन में स्वच्छता, प्रकाश, विद्युत, वायु का आवागमन (वैन्टीलेशन) और जल निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

निर्माण यन्त्र एवं पात्र—

यन्त्रागार में २ डिसेन्टीग्रेटर, २ चट्टू मशीन, एक छाल आदि काष्ठ द्रव्यों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट सकने वाली मशीन अत्यावश्यक है। इनकी विद्युत-मोटरें यथासम्भव प्रत्येक के साथ पृथक-पृथक होनी चाहिये। आवश्यकतानुसार अन्य मशीनों की स्थापना भी की जा सकती है।

इसके अतिरिक्त कुछ मशीनें ऐसी हैं जो कार्य की सुविधा की दृष्टि से विभिन्न स्थानों में लगाई जानी चाहिए। जैसे पी.पी. ढक्कन लगाने की मशीन (कैप सीलिंग मशीन) और बोतल फिलिंग मशीनें श्रमिक-कक्ष (पैंकिङ्ग) में होनी चाहिए। बोतलें धोने की मशीन प्रक्षालन कक्ष में एक प्रथक स्थान में स्थित होनी चाहिये।

इसके अलावा वृहत् मात्रा में आसव-निर्माण को सरल एवं व्यवस्थित ढङ्ग से करने के लिए तीन चीजें आवश्यक होंगी—

प्रथम पम्पिङ्ग-मशीन—यह मशीन वायलर पात्र से अथवा भट्टी के पात्र से आसव के क्वाथ द्रव्य को आयतन मापक पात्र, पुनः गुड़ आदि मिलाने के पात्र, पुनः आयतन मापक पात्र और पुनः सन्धान पात्र तथा वहां से संचय पात्र में पम्प कर सकेगी। अर्थात् यह "पम्पिङ्ग सेट" आवश्यकतानुसार आसव द्रव को विभिन्न पात्रों में फेंक सकेगा। इससे कार्य अत्यन्त सरल हो जायेगा, आसव द्रव्य वाह्य वायु के सम्पर्क में आने से वचेगा और उत्पन्न मद्य की हानि भी नहीं होगी। पम्पिङ्ग मशीन के साथ आवश्यकतानुसार दोनों तरफ पौन इन्च के २५ से ५० फुट लम्बे रवड़ या पोलीथीन की ट्यूब लगी होनी चाहिये।

इसके अभाव में क्वाथ निर्माण पात्र सन्धान संचय मधुर द्रव्य घोलने के पात्रों को अपने-अपने कक्ष में सीढ़ियों पर इस तरह स्थापित किया जाना चाहिए ताकि द्रव साइफन द्वारा सरलता से एक पात्र से दूसरे पात्र में वदला जा सके। इस हेतु इन पात्रों में विभिन्न ऊँचाइयों पर टूटियाँ भी लगाई जा सकती हैं।

द्वितीय—आयतन-मापक पात्र—इसे आवश्यकतानुसार २००-४०० या ५०० लीटर का बनाया जा सकता है। इससे हम विलकुल ठीक ठीक ज्ञात कर सकेंगे कि क्वाथ बनाने के वाद कितना द्रव शेष रहा, गुड़ आदि मधुर द्रव्य घोलने के वाद वह कितना हो गया, फिर संधान के वाद देखेंगे कि कितना आसव निर्मित हुआ। इसके वाद गाद बैठकर कितना निर्मित आसव प्राप्त हुआ, जो वोतलों में संवेष्टित किया गया, यह हमें वोतल-फिलिंग मशीन से ज्ञात हो जायेगा।

इस तरह हम इतनी वृहत मात्रा से भी विलकुल सही सही आँकड़े निकाल सकेंगे कि किस स्थिति में आसव के आयतन में क्या परिवर्तन हुआ। इस तरह से पुनः हम वैज्ञानिक ढंग से यदि किसी नतीजे पर पहुँचना चाहेंगे, तो इसे हम सही मान सकते हैं, क्योंकि इसका आधार सही होगा।

आयतन मापने का कार्य एक स्थाई पात्र में द्रव भर कर चिह्नित शलाका से भी किया जा सकता है, कि इस पात्र में कितना द्रव किस चिह्न तक आवेगा।

तृतीय—इसके अतिरिक्त तीसरा आवश्यक पात्र गुड़ घोलने का पात्र होगा। इसका आयतन आवश्यकतानुसार १ से १॥ हजार लीटर होना चाहिए। इसके अन्दर गुड़ आदि मधुर द्रव्यों को घोलने के लिए विद्युत-चालित पंखे होने चाहिये जो वृहद मात्रा में गुड़ को शीघ्रता से क्वाथ में घोल दें। यह पात्र मुख्यरूप से पाकशाला और संधान कक्ष के मध्य स्थापित किया जाना चाहिए।

क्वाथ निर्माण के लिए पात्र मोटी पीतल की चादर के होने चाहिए। इसका तला विशेष रूप से मोटा रखा जाना चाहिये। इन पर अन्दर की ओर समय-समय पर कलई की जानी चाहिये। इनका आयतन आवश्यतकानुसार ५०० से १ हजार लीटर तक होना चाहिए। इनकी चौड़ाई तथा गहराई क्रमशः ३ या ४ फुट तक होनी चाहिये।

अन्य वड़े पात्र सँगौन की लकड़ी के या पुनः कुछ सीमेंट के हौज के रूप में बनाये जा सकते हैं। छोटे पात्र यथा आवश्यक स्टेनलेस स्टील के होने चाहिए।

कहने की आवश्यकता नहीं, कि कार्य कर चुकने के

बाद इन्हें अच्छी तरह साफ कर दिया जाना चाहिये। स्वच्छता का ध्यान रखा जाना नितान्त आवश्यक है क्योंकि संधान जीवाणुजन्य प्रक्रिया है।

आवश्यकतानुसार क्वाथ निर्माण के काम आने वाले पात्रों में कुछ ऊँचाई पर टूटियाँ लगा सकते हैं। इसके अन्दर एक फिल्टर के ऐसे पाइप को खड़ा किया जाना चाहिये, जिसके किनारे चारों तरफ अनेक छोटे-छोटे छेद हों। इनका निचला सिरा नुकीला हो, ताकि इसे क्वाथ द्रव से भरे ड्राम में डालने में आसानी रहे। इस पाइप के मध्यवर्ती भाग में क्वाथ छनकर एकत्रित हो जायेगा। पुनः वहाँ से पम्पिङ्ग मशीन या साइफन ट्यूब से सरलता से निकाला जा सकेगा।

इतनी वृहद मात्रा में शास्त्रानुसार अरिष्टों के क्वाथ निर्माण के लिए प्रायः एक से दो दिन तक लगातार भट्टियों को जलाये रखना जरूरी होता है। अतः पूर्व संध्या को क्वाथ द्रव्यों को स्विन्न करने के लिए डाल देना चाहिये और पुनः अगले दिन प्रातःकाल अग्नि प्रज्वलित की जानी चाहिये। इस तरह आसव लगातार १२ से २४ घण्टे पकता रहेगा। पुनः संध्याकाल को भट्टियाँ बुझा देनी चाहिये। अगले दिन प्रातः क्वाथ द्रव ठण्डा मिलेगा। इसे आसानी से पृथक कर, उसी दिन गुड़ आदि मधुर द्रव्य घोलकर संधान पात्रों में डाल देना चाहिए।

यदि क्वाथ निर्माण पात्रों के अन्दर की तरफ तली में एक जालीदार प्लेट रख दी जाय तो उत्तम रहेगा। क्योंकि इससे पात्र की तली में पानी रहेगा और तीव्र अग्नि से क्वाथ द्रव्य जलेंगे नहीं।

घटक और उनका अनुपात—

अरिष्टों में चार प्रकार के घटक द्रव्य होते हैं। (क) क्वाथ द्रव्य और आधार रूप जल (ख) मधुर द्रव्य (ग) प्रक्षेप द्रव्य (घ) सन्धान द्रव्य। आसवों का क्वाथ नहीं बनाया जाता, अपितु सम्पूर्ण घटक प्रक्षेप रूप में प्रयोग होते हैं।

(क) क्वाथ द्रव्य और जल—इसमें अरिष्ट का मुख्य कार्यकारी द्रव्य होता है। अतः प्रायः अन्य घटकों की अपेक्षा इसकी मात्रा भी ज्यादा होती है। प्रायः अरिष्ट का नामकरण इसी के आधार पर होता है। अन्य सहायक द्रव्य होते हैं, जो मुख्य घटक के गुणों को बढ़ाने के साथ-साथ उसके अवगुणों को भी दूर करते हैं।

क्वाथ निर्माण से पूर्व इन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में काट या तोड़ लिया जाता है। पुनः कुछ काल तक जल स्विन्न करते हैं, ताकि क्वाथ बनाने में सरलता हो और द्रव्यों का पूर्ण कार्यकारी भाग क्वाथ में आ सके। स्विन्न करने के लिये शीत काल में बीस घन्टे और ग्रीष्म में १० घण्टे पर्याप्त होते हैं। ज्यादा देर तक पानी में पड़े रहने से प्रायः देखा जाता है कि द्रव्यों में सड़न आने के कारण अनेक रासायनिक परिवर्तन होने लगते हैं। इससे अरिष्ट के कार्यकारी अंश की हानि तो होती ही है, साथ ही संधान काल में विकृति आने की सम्भावनायें प्रबल हो जाती हैं। स्विन्न करने के पश्चात् मध्य अग्नि में इनका क्वाथ बनाया जाता है। अवशिष्ट जल की अभीष्ट मात्रा प्राप्त होने पर इसे नितार कर छान लेते हैं और ठण्डा होने पर मधुर द्रव्य घोलकर संधान पात्रों में डाल देते हैं। शीत काल में सिल-गर्म और ग्रीष्म काल में बिल्कुल ठण्डा द्रव संधान के लिये डाला जाना चाहिये। क्योंकि संधान प्रारम्भ होने पर भी पर्याप्त उष्णता उत्पन्न होती है।

क्वाथ निर्माण के लिये शास्त्रानुसार प्रायः १० गुणा जल डालकर चतुर्थांश शेष रखा जाता है। लेकिन यदि आवश्यक जान पड़े तो जल की मात्रा ज्यादा भी की जा सकती है। क्योंकि जल एक माध्यम का कार्य करता है और अग्नि संयोग से द्रव्यों का कार्यकारी अंश इसमें पूर्णतः आ जाता है। वैसे तो प्रत्येक अरिष्ट के साथ क्वाथ जल और अवशेष जल की मात्रा का निर्देश होता है, परन्तु अनेक बार क्रियात्मक रूप से यह अनुपात ठीक नहीं बैठता ऐसी स्थिति में क्वाथ बनाने के बाद भी शेष घटक निर्वीर्य नहीं हो पाते। मेरे विचार से क्वाथ करने के लिये १० से १२ किलो घटक द्रव्यों में १०० लीटर जल डाल कर २० लीटर शेष रखा जाना चाहिये। यह अनुपात अधिकांश अरिष्टों पर ठीक बैठ जाता है। परन्तु जब क्वाथ द्रव्य १५ किलो से ऊपर हों तो अरिष्ट निर्माण में जल की मात्रा को परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव होती है। यह परिवर्तन क्या हो ? शास्त्रानुसार तो द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार निर्माण होना चाहिए।

(ख) मधुर द्रव्य—आसवों में मधुर द्रव्यों का प्रयोग गुड़, चीनी या मधु के रूप में होता है। औषधि के रूप में इनकी कोई विशेष उपयोगिता नहीं है। ये संधान द्वारा आसव में मद्य उत्पन्न कर आसव द्रव्य को चिरकाल तक संरक्षित रखते हैं और उसके गुणों को स्थिर रखते हैं। मद्य अपने योगवाहि, आशुकारी आदि विशिष्ट गुणों के कारण औषधि के कार्य को बढ़ाता है तथा शरीर में शीघ्र पहुँचकर उसे आशुकारी बनाता है। इसके अलावा आसवों में मधुर द्रव्य इसे मधुर पेय का रूप भी प्रदान करते हैं। मधुर द्रव्य छने क्वाथ में शीतल होने पर मिलाये जाने चाहिए।

कई आसवारिष्टों से क्वाथ द्रव्यों में मुनक्का या मधुपुष्प होते हैं। ये आसवों को गुण सम्पन्न करने के मुख्य कार्य के साथ-साथ मधुर भी बनाते हैं, और सन्धान में भी सहायक होते हैं। मधुर द्रव्य आसव में कब और किस मात्रा में मिलाये जाने चाहिए ? इस विषय पर भी निमार्ता विद्वानों के विचारों में भिन्नता है। कुछ का विचार है, कि शास्त्र परम्परा के अनुसार सम्पूर्ण मधुर द्रव्य पूर्ण मात्रा में संधान से पूर्व ही मिला दिये जाने चाहिए। दूसरा विचार है, कि कुछ मात्रा संधान से पूर्व और पुनः कुछ संधान के मध्य में, इस प्रकार दो-तीन बार मिलाई जानी चाहिये। अन्य विचार है कि संधान के बाद भी कुछ मात्रा मधुर द्रव्यों की मिलाई जानी चाहिए। इससे आसव मधुर हो जायेगा और उसमें खटास पैदा होने की सम्भावनायें नहीं रहेंगी।

भिन्न परिस्थितियों के अनुरूप तीनों विचार संगत हैं। जिन आसवों में मधुर द्रव्य अत्यधिक हों उनमें संधानकाल में मिठास कम होने पर दो तीन बार में मिलाना चाहिए, और जिन आसवों में संधान के पश्चात् द्रव में मिठास कम रहती है, उनमें सन्धान के पश्चात् भी मीठा मिलाया जा सकता है।

वास्तव में उत्तम संधान के लिए मधुर द्रव्यों को संधान से पूर्व एक बार ही मिला देना ठीक रहता है, जिससे द्रव की मिठास २० से २५ प्रतिशत हो जाय। संधान के लिए यह उपयुक्ततम मिठास है। इससे ज्यादा या कम होने पर संधान तीव्र और उत्तम नहीं होता। हाँ, यदि किसी आसव विशेष में कुछ परिस्थितियों के कारण सामान्य से ज्यादा मद्योद्गम अभीष्ट हो, तो संधान काल के मध्य में मिठास कम होने पर पुनः और मीठा मिलाया जा सकता है। जिन आसवों में सन्धान के पश्चात् मधुरांश १५ से २० प्रतिशत से कम हो जाता है, उसमें आसव को स्वादिष्ट मधुर-पेय का रूप प्रदान करने के लिए संधान के पश्चात् भी मीठा मिलाया जा सकता है। इस सम्पूर्ण कार्यसिद्धि के लिए यदि ग्रन्थ निर्देशानुसार मधुर द्रव्य कम या ज्यादा भी मिलाये जाते हैं तो आसव में कार्यकारी गुण सम्पन्नता की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं आता।

मधु के विषय में उल्लेखनीय बात यह है, कि यदि मधु शुद्ध उत्तम हो तभी मिलाया जाना चाहिये। लेकिन प्रायः इतनी वृहद मात्रा में शुद्ध मधु प्राप्त कर पाना सम्भव नहीं हो पाता। अतः जितना मधु प्राप्त हो, मिला दें और शेष के अभाव में उत्तम गुड़ या चीनी का प्रयोग करना चाहिये। गुड़ मलिनतारहित, स्वच्छ, खटास या नमकीन स्वादरहित उत्तम प्रकार का लेना चाहिए। कुछ विद्वानों के विचारों के अनुसार उत्तम आसव निर्माणार्थ सभी आसवों में केवल चीनी का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। इससे आसव स्वच्छ, सुन्दर, पारदर्शक और सुस्वाद बनेगा। लेकिन देखा गया है कि गुड़ से संधान उत्तम होता है, क्योंकि इसमें मद्योद्गम के लिये प्रथम श्रेणी की शर्करा की मात्रा ज्यादा होती है। तथा यह अपेक्षाकृत सस्ता, शास्त्र सम्मत प्राकृतिक मधुर द्रव्य है। आधुनिक तरीकों से चीनी के निर्माण में स्वच्छता के लिए जिन क्षारीय द्रव्यों का प्रयोग होता है, आयुर्वेद मतानुसार इससे चीनी के संतर्पण-शीतल-मधुर आदि गुणों की हानि होती है।

मोटे अनुमान के अनुसार आसवों में मधुर द्रव्य अवशेष जल से आधा मिलाना पर्याप्त रहता है। चौथाई से कम नहीं मिलाया जाना चाहिए और विशेष परिस्थितियों में पौना मिलाया जा सकता है, परन्तु इससे ज्यादा नहीं मिलाना चाहिए।

(ग) प्रक्षेप द्रव्य—इसमें अपेक्षाकृत अल्प मात्रा में कुछ द्रव्य होते हैं, जो संधान काल से पूर्व या मध्य में

आसव में मिलाये जाते है। इसका कार्य आसव के मुख्य द्रव्य के गुणों में वृद्धि करना तथा उसके अवगुणों को दूर करना होता है। इनमें प्राय: उड़नशील तैल वाले द्रव्यों का वाहुल्य होता है, जो प्राय: मद्य में घुलनशील होते हैं। इन्हें यव-कुट कर या जायफल, जाविती, लवंग आदि वहुमूल्य द्रव्यों को दरदरा कूटकर मिलाना चाहिए।

प्रक्षेप द्रव्य आसव में किस समय मिलाये जाने चाहिए, इस विषय पर निर्माता विद्वानों के विचारों में भिन्नता है। कुछ का विचार है कि शास्त्रानुसार सन्धान से पूर्व ही मिला दिये जाने चाहिए। दूसरा विचार है कि सन्धान प्रारम्भ होने पर डाले जाने चाहिए और तीसरा विचार यह भी है कि संधान समाप्ति पर आसव छानने के बाद संचय काल में मिलाने चाहिए। इनमें शास्त्र सम्मत प्रथम विचार ही संगत है, क्योकि इनमें कुछेक द्रव्य संधान सहायक भी होते है। इसके अलावा सन्धान काल में ये पात्र के मुख पर आकर रूई की डाट की तरह कार्य करते है। इससे आसव वाह्य वायु-कृमि धूल आदि के सम्पर्क से वचा रहता है। इस तरह की डाट उत्पन्न होने वाली गैस को वाहर निकलने में भी वाधक नहीं होती और संधान से उत्पन्न ऊष्मा को वनाए रखती है। धातकी पुष्प भी इस कार्य में सहायक होते है। इस तरह प्रक्षेप को सन्धान के मध्य या पश्चात् मिलाये जाने का कोई औचित्य दृष्टिगत नहीं होता। हां, केशर-कस्तूरी स्वर्ण आदि द्रव्य सन्धान के पश्चात् मिलाये जा सकते है।

(व) धातकी पुष्प, किण्व आदि सन्धान सहायक द्रव्य— [illegible]की पुष्प के विषय में कुछ विद्वानों का विचार है कि [illegible]न मे सहायता नही करते। परन्तु अनुभवों से यह [illegible] रूप से कहा जा सकता है कि ये सन्धान क्रिया [illegible]यक है और [illegible]न आसवों में इनके डालने का निर्देश [illegible] होता, उनमे भी डाले जाने चाहिए। इन पुष्पों के मधुर पुष्प रस में संधान करने वाले जीवाणु पर्याप्त मात्रा में विद्यमान होते है। इसकी सत्यता की परीक्षा अणुवीक्षण यन्त्र [illegible] जा सकती है। इसके अतिरिक्त सुपारी, वेर की छाल, कीकर की छाल आदि की तरह इसमें कषाय रस होता है, जो सन्धान में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

अनेक अरिष्टों में मधु पुष्प क्वाथ द्रव्यों के साथ होते है, परन्तु इन्हें प्रक्षेप रूप में डालना चाहिए क्योंकि इनके मधुरांश में भी सन्धान करने वाले जीवाणु प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते है और इस तरह ये पुष्प का कार्य करते हैं।

आसव में सन्धान क्रिया ठीक हो, अन्य प्रकार के जीवाणु वढ़ कर सन्धान क्रिया को विकृत न कर सकें, इस हेतु किण्व के रूप में सन्धानकारक जीवाणुओं का मिलाना भी आवश्यक होता है। किण्व के रूप में पहले वने उसी आसव की गाद या प्राप्त होने पर सभी आसवों में द्राक्षासव की गाद का प्रयोग किया जा सकता है। किण्व डालने से पूर्व इस वात के लिये आश्वस्त हो जाना नितान्त आवश्यक है कि किण्व पूर्णतया ठीक है ? इसमें खटास या अन्य प्रकार की विकृतियां तो नहीं है। १० लिटर आसव द्रव के लिए चौथाई से आधा लिटर किण्व पर्याप्त होगा। गाद के अभाव में वाजार में मिलने वाला ईस्ट १० लीटर आसव में ६० ग्राम की मात्रा में मिलाया जाना चाहिये। इसे प्रथम हल्के गर्म पानी में घोल कर पुन: सम्पूर्ण आसव द्रव में भली भांति मिला देना चाहिये। यदि सन्धान के लिए आसव के पुराने पात्रों का ही प्रयोग हो रहा है, तो विना किण्व मिलाये भी काम चल सकता है। क्योंकि इन पात्रों में पहले ही प्रचुर मात्रा में किण्व कीटाणु विद्यमान होते हैं। परन्तु फिर भी किण्व मिला देना उचित रहेगा।

इस सन्दर्भ में शेष विचार—

आसवों में क्वाथ द्रव्य नहीं होते और सम्पूर्ण घटक प्रक्षेप घटक रूप में ही डाले जाते है। प्रयोग में लाने से पूर्व इन्हें धूप में सुखा लिया जाना चाहिए और पुन: यव-कुट कर डाला जाना चाहिए। अच्छा हो कि पूर्व वर्णित तरीके से एक उवाल दे दिया जाय। अन्यथा प्रयोग में आने वाले जल को हमेशा उवाल दे कर ठण्डा कर व्यवहार में लाना चाहिए। इससे सन्धान काल में अवाञ्छित जीवाणुओं की वृद्धि से आसव विकृत होने की सम्भावनायें वनी रहेंगी। आसवों के विषय में विशेष विवरण अरिष्टों के समान ही होगा।

(क) घटकों का अनुपात—जिन आसवारिष्टों में घटकों

का अनुपात ठीक न हो या निर्दिष्ट न हो, उनमें निम्न आधार सहायक हो सकेगा—

१. क्वाथ्य द्रव्य	४ से ६ लिटर
२. क्वाथ्य जल	४० लिटर
३. अवशेष जल	३० लिटर
४. मधुर द्रव्य	४ से ५ किलो
५. प्रक्षेप द्रव्य	५०० ग्राम से १ किलो
६. धातकी पुष्प	३०० से ४०० ग्राम

ऐसी स्थिति में आधार रूप से निम्न उद्धरण सहायक होगा—

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रव द्रोणे तुला गुड़म्।
क्षौद्र क्षिपेद् गुड़ादर्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥

अर्थात् २५६ किलो आसव द्रव में १०० किलो गुड़, ५० किलो मधु और १० किलो प्रक्षेप डालना चाहिए।

यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं कि प्रयोग में आने वाले सम्पूर्ण घटक द्रव्य पुराने, सड़े-गले, फफूंदी लगे या कृमियों से भक्षित नहीं होने चाहिए। क्योंकि विकृत घटक द्रव्यों से गुण सम्पन्न आसव निर्मित नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त ये विकृत द्रव्य सन्धान क्रिया में बाधा उत्पन्न कर आसव को विकृत कर सकते हैं। शास्त्र के अनुसार वनौषधियां एक वर्ष से ज्यादा पुरानी नहीं ली जानी चाहिए।

(ख) निर्माण पात्रों का आयतन—क्वाथ निर्माण के लिये मोटी तली का कलई किया हुआ बड़ा पात्र लिया जाना चाहिए। १०० लिटर आसव के लिए कम से कम ५०० या ६०० लिटर आयतन का पात्र उपयुक्त होगा। इसी प्रकार १०० लिटर आसव सन्धान के लिए १५० लिटर का पात्र ठीक रहेगा। सन्धान पात्र को पूरा नहीं भरना चाहिए, अन्यथा उफान आने पर आसव के गिरने का भय रहेगा। परन्तु ज्यादा खाली भी नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि इससे आसव द्रव बाह्य वायु तथा जीवाणुओं के सम्पर्क में आकर विकृत हो जायगा।

(ग) आसव कितना बनेगा—निर्माण के बाद कोई आसव कितना बनेगा, यह बहुत कुछ घोले जाने वाले मधुर द्रव्य, प्रक्षेप द्रव्य, धातकी पुष्प और गाद पर निर्भर करता है। गुड़ आसव द्रव के आयतन को बढ़ाता है, जब कि प्रक्षेप द्रव्य-धातकी पुष्प आदि द्रव की हानि करते हैं। मधुर द्रव्य ६० प्रतिशत आयतन बढ़ाते हैं, जबकि प्रक्षेप द्रव्य और धातकी पुष्प अपने भार के बराबर या दुगुना द्रव चूस लेते हैं। इसके अतिरिक्त यदि प्रक्षेप द्रव्य बहुत बारीक कूटकर मिलाये जाते हैं, तो गाद ज्यादा बनेगी और उसी अनुपात में आसव द्रव की न्यूनता हो जायगी। इसके अलावा सन्धान काल में मद्योद्गम के फलस्वरूप तथा वाष्पी भवन से भी आसव द्रव में न्यूनता आ जाती है। इस तरह यदि आसव २५ दिन सन्धान पात्रों में और इसके पश्चात् ४ मास संचय पात्र में पड़ा रहता है, तो इसमें १० लिटर के पीछे २०० से ३०० मि० लि० द्रव की हानि हो जाएगी।

इस सारे को उदाहरण के रूप में देखिए। १०० लिटर आसव क्वाथ है, इसमें ५० किलो गुड़ घोला गया तो यह १३० लिटर हो जायेगा। अब इसमें ११ किलो० प्रक्षेप द्रव्य-धातकी पुष्प डालने पर करीब १५ लिटर की न्यूनता आ जायेगी। इसके अतिरिक्त ५ लिटर न्यूनता गाद से तथा ५ लिटर न्यूनता सन्धान क्रिया और वाष्पीभवन से आ जाएगी। इस तरह अन्त में करीब १०५ लीटर निर्मित आसव प्राप्त होगा।

इस प्रकार अनुभव से देखा गया है कि जिन आसवों में घटकों का अनुपात ठीक होता है, वे प्रायः निर्माण के बाद उतने ही या कुछ ज्यादा बनते हैं, जितना कि क्वाथ द्रव प्रयोग हुआ था। हाँ, यदि किसी आसव में मधुर द्रव्य अत्यधिक या अतिन्यून हैं, तो निर्माण के बाद उसी अनुपात में आसव कम या ज्यादा प्राप्त होगा। जैसे यदि अमृतारिष्ट या अश्वगन्धारिष्ट को द्रवद्वैगुण्य से नहीं बनाया जाता, तो उसमें मधुर द्रव्य अत्यधिक होने से आसव ज्यादा बनेगा। इसके अलावा पुनर्नवारिष्ट, अरविन्दासव आदि में मधुर द्रव्य सामान्य मात्रा में है, परन्तु प्रक्षेप द्रव्य न्यून हैं, तो इस स्थिति में भी आसव अधिक बनेगा। इस तरह देखा गया है कि यदि उक्त आसव १०० लिटर शेष जल में बनाए जाते हैं, तो इससे १३० से १४० लिटर आसव प्राप्त होगा। फिर भी इनका मोटा अनुमान उपरोक्त उदाहरण के अनुसार हिसाब लगाकर किया जा सकता है।

(घ) घृत कुमारी स्वरस—कुमार्यासव के लिये घृतकुमारी के पत्रों का स्वरस प्राप्त करने का उत्तम तरीका यह है, कि प्रथम पत्रों को स्वच्छ जल से धो डालें, पश्चात् इन्हें छोटे छोटे टुकड़ों में काट कर पीतल के पात्र में डाल दें। इसमें १०० किलो कुमारी के पीछे १० लिटर पानी डालकर मन्द अग्नि पर रख दें। कुमारी पत्र मृदु हो जायेंगे, इन्हें पात्र में ही मोटे डण्डे से कुचल डालें, और पुनः नितार-निचोड़ कर रस प्राप्त करें। इस तरह ६० लीटर रस प्राप्त होगा। यदि विना गर्म किये ही रस प्राप्त करने का यत्न किया गया, तो रस बहुत कम, गाढ़ा और चिपचिपा (लेसदार) निकलेगा, जो सन्धान क्रिया के लिए भी उत्तम नहीं होगा।

मेरे विचार से घृत कुमारी का रस प्राप्त करने के लिए समान जल का प्रयोग किया जाना चाहिए। क्योंकि सभी आसवों की प्रयोज्य मात्रा १५ से ३० मि. लि. है, वास्तव में यह उनमें प्रयुक्त हुये क्वाथ की मात्रा के आधार पर है। जबकि घृतकुमारी से आसव स्वरस से बनता है। स्वरस भारी होते हैं, अतः उनकी मात्रा भी अपेक्षाकृत कम होती है। यदि समान जल का प्रयोग किया जाय, तो कुमार्यासव की मात्रा १५ से ३० मि. लि. ठीक रहेगी। अन्यथा प्रयोज्य मात्रा कम निर्दिष्ट की जानी चाहिए।

(ङ) आसवों में लोह मिलाना—लोहासव कुमार्यासव आदि कुछ आसवों के निर्माण में धातुओं का प्रयोग होता है। आसवों में इसकी घुलनशीलता पर सदा शंका रहती है। लोहे का प्रयोग लोह या लोहचूर्ण के रूप में उपयुक्त नहीं रहता। अतः लोहचूर्ण को शुद्ध करने के बाद भानुपाक तथा स्थालीपाक कर प्रयोग करना चाहिए। इस हेतु लौह भस्म का प्रयोग भी उत्तम रहता है। प्रयोग से पूर्व इसे प्रथम सजल हरीतकी चूर्ण में घोटकर ४-५ दिन रखना चाहिए और इसके बाद विभीतक-आमलकी चूर्ण मिलाकर पुनः ४-५ दिन रखना चाहिए। इस तरह यह आसव में प्रयुक्त करने के लिए उपयुक्ततम हो जाएगा। भस्म का प्रयोग कुमार्यासव में ८ ग्राम प्रति लीटर और लोहासव में शास्त्रानुसार ४ ग्राम प्रति लीटर के हिसाब से करना चाहिए।

आसवों में लोह की घुलनशीलता पर सामान्य परीक्षण किए गए, इन्हें आप भी करके देख सकते हैं—

परीक्षण नं० १—५०० लीटर लोहासव में ४ किलो लोह भस्म का प्रयोग किया गया। सन्धान के बाद आसव के प्रक्षेप आदि द्रव्यों को मल-निचोड़ कर पृथक कर लिया गया। आसव को ६ मास के लिये संचय पात्रों में रख दिया गया। पुनः ऊपर के आसव द्रव को साइफन से बोतलों में भर दिया गया और नीचे की समस्त गाद को एकत्रकर सुखा लिया गया। इसका भार ६. ६० किलो निकला। इसकी टिक्कियाँ बनाकर दो गजपुट दिए गये, भार ३.१२५ किलो रह गया। इस सम्पूर्ण चूर्ण को चुम्बक से खींचने का यत्न किया गया, परन्तु चुम्बक पर बहुत नगण्य अंश आया। इसका अर्थ यह लगाया गया, कि गाद में लोह अंश नहीं है और यह आसव द्रव में आ गया है। इसका निश्चय करने के लिये दूसरा परीक्षण किया गया।

परीक्षण नं० २—१० लिटर बिलकुल गादरहित स्वच्छ पारदर्शक उपरोक्त लोहासव लिया गया। इसको एक पात्र में रखकर उबाला गया और सम्पूर्ण द्रव भाग को उड़ाकर इसे शुष्क कर लिया गया। इस तरह ६०-१२० ग्राम चूर्ण प्राप्त हुआ। इसे तीव्र अग्नि से एक गजपुट दिया गया, अब इसका भार ४०.१०० ग्राम रह गया। इसे चुम्बक से देखा गया तो सम्पूर्ण चूर्ण चुम्बक पर खिंच गया।

इसी तरह का प्रयोग कुमार्यासव पर किया गया। इससे ६०.२०० ग्राम चूर्ण चुम्बक पर खिंचने वाला प्राप्त हुआ। दोनों आसवों में लोहभस्म का प्रयोग किया गया था।

परीक्षण नं० ३—क्या साधारण रूप में मिलने वाला लोह भी आसव में घुलता है? और मधुरांश की न्यूनाधिकता का इस पर क्या प्रभाव होता है? इसे देखने का यत्न किया गया। स्मरण रहे, लोहासव में मीठा बहुत न्यून मात्रा में पड़ता है।

तीन मृतबानों में प्रथक-प्रथक लोहाव निर्माण की योजना बनाई गई, इनमें तीन-तीन लीटर शृतशीत जल डाला गया। तीनों में शास्त्रोक्त अनुपात में घटक द्रव्य मिला दिये गये। परन्तु लोह के रूप में कोई वस्तु नहीं डाली गई। गुड़ प्रथम में ग्रन्थोक्त, द्वितीय में दुगना और तृतीय

में तीन गुना डाला गया। इन्हें उपयुक्त तापमान पर रख कर सन्धान किया गया और पश्चात छानकर संचय हेतु इन्हीं पात्रों में रख दिया। खटास तीनों में बिल्कुल नहीं थी और मधुरांश प्रथम में ८ प्रतिशत, द्वितीय में २२ प्रतिशत, और तृतीय में ४१ प्रतिशत देखी गई।

अब तीनों के लिये पृथक-पृथक तीन मार्गों में २०-२० ग्राम कीलें (मेखें) तोली गई और इन्हें अल्युमिनीयम के पत्रों पर पीरोकर, २० ग्राम प्रत्येक में लटका दी गई। तीन मास पश्चात् इन कीलों को पात्रों से निकाल कर सुखा लिया गया। तोलने पर प्रथम में १०.६०० ग्राम, द्वितीय में १७.६५० ग्राम और तृतीय में १६.६०० ग्राम शेष निकली जबकि प्रत्येक में २० ग्राम डाली गई थी। इसके दो अर्थ लगाये गए। प्रथम मधुरांश कम होने पर लोह ज्यादा घुलता है। द्वितीय लोह अपने स्वरूप में भी आसव में घुल जाता है।

इसी तरह एक अन्य प्रयोग द्वारा यह देखने का यत्न किया गया कि लोहचूर्ण, स्थाली पाककृत लोह और लोह भस्म इसमें से कौन सा द्रव्य ज्यादा घुलेगा। मोटे तौर पर देखने से स्थाली पाककृत लोह उपयुक्त समझा गया। इस पर भी आगे कार्य नहीं किया जा सका।

(च) कुछ बहुमूल्य प्रक्षेप द्रव्य—

सारस्वतारिष्ट में स्वर्ण पत्र डालने का निर्देश है, परन्तु देखा गया है, कि स्वर्ण या स्वर्णपत्र आसव में घुलनशील नहीं हैं। अतः इन्हें सन्धान के पश्चात संचय काल में ६ मास तक आसव द्रव में लटका कर रखा गया. और पुनः आगे बनने वाले आसव में भी इसी तरह इनका प्रयोग किया जाता रहा। वर्तमान विचारधारा के अनुसार स्वर्ण लवण (गोल्ड क्लोराइड) का प्रयोग किया जाना चाहिए यह सगत है, क्योंकि लवण आसव में घुलनशील है। किन्तु प्रयोग शास्त्र निर्दिष्ट मात्रा की अपेक्षा बहुत अल्प मात्रा में किया जाना चाहिए। प्रतिलिटर आसव में ५० से ६० मिलीग्राम लवण पर्याप्त होगा।

कुछ आसवों में केशर, कस्तूरी जैसे बहुमूल्य द्रव्य डाले जाते हैं। इन्हें प्रथम परिश्रुत मद्य में अच्छी प्रकार घोट कर पुनः छने आसव में भलीभांति मिलावें।

(छ) ताजी, गीली और सूखी वनौषधियों का प्रयोग—अनेक बार आसवों में सूखी वनौषधियों के अभाव में ताजी-गीली वनौषधियों का प्रयोग होता है। शास्त्र निर्देशानुसार तो यदि उक्त योग में सूखी औषधि एक किलो डालनी है तो ताजी गीली दो किलो डालनी चाहिए। यह युक्ति सभी द्रव्यों पर समान रूप से लागू की जाय यह युक्तियुक्त दृष्टिगोचर नहीं होता। क्योंकि यदि विभिन्न ताजी वनौषधियों को सुखाया जाय तो सूखने के वाद उनकी मात्रा भिन्न-भिन्न रहती है। इसके निराकरण के लिए क्या मार्ग अपनाया जाय. यह आप पर ही छोड़ देता हूं। फिलहाल इससे सम्बन्धित नीचे की तालिका में कुछ तथ्य देखिए—

क्रमांक	नाम औषधि	अंग	ताजी की मात्रा	सूखने पर भार	पुनः पानी में स्विन्न
१	गम्भारी	त्वचा	१०	३.२५०	८.०००
२	अरणी	त्वचा	१०	२.७५०	७.५००
३	गिलोय	काण्ड	१०	२.०००	....
४	वचा	मूल	१०	२.२५०	७.०००
५	वासा	पंचाङ्ग	१०	२.५००	७.०००
६	निम्ब	पत्र	१०	१.८००	....
७	भृङ्गराज	पचाङ्ग	१०	१.२५०	....
८	लघु कंटकारी	,,	१०	१.३००	८.५००
९	पाठा	,,	१०	२.५००	११.०००
१०	पटोल पत्र	,,	१०	१.०००	७.०००
११	ब्राह्मी	,,	१०	२.५००	....
१२	पोदीना	,,	१०	२.१००	....

नोट—उपरोक्त द्रव्यों को स्विन्न करने के लिये ४ लीटर जल डाला गया और ६ घण्टे स्विन्न करने के बाद अच्छी तरह निचोड़कर छाया में सुखाने के उपरान्त तोले गये। उपर्युक्त सम्पूर्ण मात्रायें किलो में हैं।

सन्धान प्रक्रिया—

आसव निर्माण में सन्धान एक प्रमुख प्रक्रिया है। निर्माण की उत्तमत्ता बहुत कुछ इसी पर निर्भर करती है। यदि आसव में सन्धान प्रक्रिया ठीक हो जाय, तो निर्माण के बाद भी इसमें विकृति आने की सम्भावनायें समाप्त प्राय: हो जाती है। यह क्रिया खमीर (ईष्ट) के एक कोष्ठीय जीवाणुओं द्वारा सम्पन्न होती है। ये जीवाणु घोल में विद्यमान शर्करा को मद्य और कार्बनडाई आक्साइड में परिवर्तित करते है। मद्य आसव का भाग बन जाता है और गैस निकल कर प्रथक हो जाती है। जीवाणु कुशलता से पद्योदगम कर सकें, इसके लिये घोल का सम्पूर्ण वातावरण उनकी क्रियाशीलता के लिये अनुकूलतम होना अत्यावश्यक है। इस हेतु निम्न उपाय उल्लेखनीय हैं—

(क) उपयुक्त पात्र एवं उसकी शुद्धि।

(ख) घोल में शर्करा का समुचित गाढ़ापन।

(ग) उपयुक्ततम तापमान।

(घ) उपयुक्त किण्व (सुराबीज) का प्रयोग तथा इसके लिए पौष्टिक तत्वों का समावेश।

(ङ) घोल में खमीरेतर जीवाणुओं की वृद्धि रोकना

(च) सन्धान काल में घोल के साथ वाह्य वायु का सम्पर्क न होने देना।

(क) उपयुक्त पात्र और उसकी शुद्धि—सन्धान के लिए काल क्रमानुसार मिट्टी, चीनी मिट्टी, धातु, कांच, सीमेंट, काष्ठ आदि के पात्रों का उपयोग होता रहा है। इनमें से कुछ पात्रों के अवगुणों को लेकर विभिन्न लेखकों द्वारा आलोचना की जाती रही है। लेकिन वास्तव में हर प्रकार के पात्र की अपनी-अपनी विशेषता है और साथ में कुछ दोष भी हैं। जैसे कांच और चीनी मिट्टी के पात्र अल्प निर्माण के लिए उपयुक्त हैं, परन्तु इनमें तापनियंत्रण की विशेष व्यवस्था करनी होती है। ये स्वच्छ भी सुगमता से हो जाते है। काष्ठ के पात्र आवश्यकतानुसार बड़े से बड़े बनाये जा सकते हैं और इनमे तापनियंत्रण भी सुगमता से हो जाता है, परन्तु इनकी स्वच्छता के लिये विशेष विधि अपनानी होती है। मिट्टी के पात्र अल्प व्यय साध्य, सुलभ और विशेष रूप से ग्रीष्म काल में अल्प निर्माण के लिए उपयुक्ततम है। परन्तु इनके टूटने का भय बना रहता है। इनमें शीतकाल में अभीष्ट ताप बनाये रखने के लिए कुछ न कुछ व्यवस्था करनी होती है। इस हेतु प्राचीनकाल में सन्धान घटों को शुष्क जमीन, भूसे, अनाज के ढेर और यहाँ तक कि गोबर के ढेर में रखने का निर्देश मिलता है, ताकि सन्धान द्रव पर वाह्य वायु तापमान का प्रभाव न पड़ सके। आज भी ताप नियंत्रण की यह एक सर्वसुलभ विधि कही जा सकती है। पर्वतीय प्रदेशों में आज भी लोग निजी प्रयोग हेतु मद्य बनाने के लिए सन्धान घट को चूल्हे के पास दबाकर रखते हैं। इस तरह कहा जा सकता है कि सम्पन्नता, साधन की सुलभता, निर्माण की मात्रा और ऋतु के अनुसार इस हेतु किसी भी तरह के पात्र का प्रयोग हो सकता है। परन्तु इसमें तापनियंत्रण की विधि सोच ली जानी चाहिये।

इतना होते हुए भी यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि वृहद मात्रा में निर्माण करने वाली फार्मेसियों के लिए सागवान की लकड़ी के ढोल (ड्रम) ही हर प्रकार से सर्वोत्तम है। क्योंकि इनका आकार आवश्यकतानुसार पर्याप्त बड़ा बनाया जा सकता हैं। इस लकड़ी पर पानी का प्रभाव भी नगण्य होता है, अत: ये चिरस्थाई होते हैं। इनमें तापनियंत्रण भी सुगमता से किया जा सकता है क्योंकि काष्ठ तापवाहक नहीं होता। इसके विषय में विशेष उल्लेखनीय यह है, कि चिरकाल तक प्रयोग करने के पश्चात् इनमें खटास पैदा करने वाले जीवाणु क्रमेश: बढ़ने लगते है। परिणामस्वरूप आसव खट्टे बनने लगते हैं। अत: इनकी स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना होता है। इस हेतु पात्र शुद्धि के लिए एक किलो पत्थर के चूने का १५ लीटर गर्म पानी में घोल बनाना चाहिये या फिर ५०० ग्राम कास्टिक सोड़े का १५ लीटर गर्म पानी में घोल बनाना चाहिए। इन दोनों में से किसी एक घोल को ड्रम में ऊपर तक भरकर ४-५ दिन रखना चाहिये। इसके बाद २-३ बार स्वच्छ जल से भलीभाँति धो देना चाहिये। खटास हीनता का ज्ञान लिटमस पेपर से किया जा सकता है। पात्र को खूब गर्म भाप भरने से भी यह कार्य सिद्ध हो जाता है। क्योंकि खटास के जीवाणु ७० शतांश ताप पर ३० मिनट रहने पर समाप्त हो जाते है।

(ख) घोल में शर्करा का समुचित गाढ़ापन—उत्तम सन्धान के लिए घोल में शर्करा की मात्रा २० से २५ प्रतिशत उपयुक्ततम होती है। इस हेतु १०० लीटर द्रव में ३५ से ४० किलो मधुर द्रव्य डालना पर्याप्त होता है। यदि सन्धान के लिए कुशलतापूर्वक आधुनिकतम विधि अपनाई जाय, तो प्रयुक्त शर्करा की मात्रा से मद्य प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु सामान्यतः इतना मद्य उत्पन्न नहीं हो पाता। लेकिन उपर्युक्त घोल से आसव के लिये अभीष्ट ७ से १० प्रतिशतः मद्योद्गम सरलता से हो जाता है।

संधान द्रव में १२ प्रतिशत से कम और ३० प्रतिशत से ज्यादा मिठास नहीं होनी चाहिये। घोल में मिठास कम होने से आसव के खट्टे होने का भय रहता है। ज्यादा मिठास से अनेक वार संधान धीरे-धीरे या रुक-रुक कर चिरकाल तक चलता रहता है जिससे कालान्तर में गर्मी पाकर वोतलों में संवेष्ठित आसव में पुनः संधान होने लगता है। इस तरह गैस पैदा होने से वोतलों का कार्क धमाके के साथ खुल जाता है और उफान खाता आसव द्रव वाहर निकलता है या वोतलें धमाके के साथ टूटनी प्रारम्भ हो जाती हैं। इस तरह की क्रिया अधिकांशतः अशोकारिष्ट, अमृतारिष्ट, द्राक्षारिष्ट आदि में दृष्टिगोचर होती हैं, क्योंकि इनमें मधुर द्रव्य अत्यधिक हैं।

संधान के लिए डाले जाने वाले घोल का आ० घ० १.१५ से ऊपर नहीं होना चाहिए। ज्यादा गाढ़े या लेसदार द्रव में किण्व जीवाणुओं का जीवन व्यापार ठीक नहीं हो पाता। इसलिए यदि क्वाथ ज्यादा गाढ़ा बने तो इसे कुछ देर वैठने के लिये रख देना चाहिए। पुनः ऊपर का स्वच्छ द्रव साइंफन से निकाल कर प्रयोग में लायें।

संधान के पश्चात् आसव द्रव में मधुरांश १५ प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिए। कम हो जाय तो वाद में अभीष्ट मीठा मिला दिया जाना चाहिए।

(ग) उपयुक्त तापमान—संधान के लिए २५° से ३५° शतांश के मध्य का तापमान उपयुक्ततम होता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि संधान घोल का तापमान २०° शतांश से नीचे और ३८° शतांश से ऊपर नहीं जाना चाहिए। नीचे के तापमान पर संधान मन्द होकर वन्द हो जाता है, और ३८° शतांश पर अनियमित तथा ४०° शतांश पर वन्द या विकृत हो जाता है।

संधान के लिये शीतकाल में सिलगर्म और ग्रीष्म में विल्कुल शीत द्रव डालना चाहिए। क्योंकि संधान क्रिया से भी पर्याप्त ऊष्मा उत्पन्न होती है। २०० ग्राम मीठे के संधान से करीव २५ कैलौरी ऊष्मा उत्पन्न होती है। यदि ताप की हानि न होने दी जाय, तो २० से २५ प्रतिशत शर्करा घोल का तापमान लगभग १०° शतांश बढ़ जाना चाहिए।

ताप नियंत्रण संधान क्रिया का एक अत्यावश्यक भाग है। ग्रीष्म काल में घोल का ताप गिराने के लिये वर्फ की थैली या ठण्डे पानी की नालियों का प्रयोग किया जा सकता है। शीतकाल में तापमान वनाये रखने के लिये कमरे में कोयले की अङ्गीठी, बिजली के हीटर या अन्य साधनों का उपयोग करना चाहिए। घोल में अधिकतम तापमान देखने के लिए, एक सर्वसुलभ साधन चिकित्सा के काम आने वाला तापमापक हो सकता है। क्योंकि यह ३५ से ४२ शतांश तक चिह्नित होता है और इसमें विना झटका दिये पारा भी नहीं उतरता।

वर्षा ऋतु तापमान की विषमता, वायु की आर्द्रता और शीलन की अधिकता के कारण सन्धान कार्य के लिये उपयुक्त नहीं है। इस ऋतु में विभिन्न प्रकार के जीवाणु वृहद मात्रा में पनपते हैं, जो संधान को विकृत कर सकते हैं। अतः इस ऋतु में विना विशिष्ट साधन अपनाये संधान नहीं करना चाहिये।

वैसे सामान्यतः संधान नीचे तापमान पर ही किया जाना चाहिये, इससे उत्पन्न होने वाले मद्य की हानि नहीं होगी। अनेक वार यह भी देखने में आया है, कि यदि संधान काल के मध्य या अन्त में तापमान सामान्य से नीचे रहे, तो संधान चिरकाल तक चलता रहता है या वन्द हो जाता है। ऐसा आसव यदि वोतलों में भर दिया जाता है, तो वोतलों में पुनः सन्धान प्रारम्भ होने से गैस पैदा होने के कारण वोतलें धमाके के साथ फूटने लगती हैं या उनका कार्क जोर से खुल जाता है और आसव उफन कर वाहर निकल जाता है। अतः सम्पूर्ण सन्धान काल में घोल के तापमान को स्थिर वनाये रखने के लिए विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये।

(घ) उत्तम किण्व का प्रयोग तथा इसके लिये पौष्टिक तत्वों को समावेश – खमीर (ईष्ट) के जीवाणुओं से युक्त घोल को किण्व, सुराबीज या आसव गाद कहते हैं। सामान्यत: ये जीवाणु प्रकृति में सभी स्थानों में न्यूनाधिक रूप से बिखरे हुए पाये जाते है। सेव, अंगूर, मधुर रस, धातकी पुष्प तथा मधुपुष्पी आदि में ये प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं। सामान्य वायु मण्डल में भी इनकी पर्याप्त उपस्थिति होती है।

उत्तम संधान के लिए किण्व रूप में इनका मिलाया जाना नितान्त आवश्यक है। अत: संधान घोल में किण्व रूप में विशिष्ट आसव में उसी की गाद या अभाव में सभी आसवों में द्राक्षासव की गाद का उपयोग किया जाना चाहिए। १० लीटर आसव घोल के लिए २५० से ५०० मिलि० गाद पर्याप्त रहती है। आसव की गाद के अभाव में मधुपुष्पी या ताड़ी के सजल घोल की गाद का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस हेतु बाजार में मिलने वाली ईष्ट की टिक्कियों का उपयोग भी किया जा सकता है। ६० ग्राम ईष्ट १० लीटर घोल के लिए काफी होता है। इन टिकियों को प्रथम कोष्ण जल में भलीभांति मिलाकर पुन: संधान घोल में अच्छी तरह मिलाना चाहिए।

संधान काल में आसव घोल को प्रति दिन एक बार डन्डे से हिला देना चाहिए। क्योंकि कार्बनडाई आक्साइड की उपस्थिति के कारण संधान मन्द हो जाता है। हिलाने से गैस निकल जाती है और किण्व जीवाणु घोल में समान रूप से फैल जाते है। इससे संधान तीव्र होता है।

(ङ) घोल में खमीरेतर जीवाणुओं की वृद्धि न होने देना—अनेक बार संधान काल में खमीर के जीवाणुओं की अपेक्षा अन्य प्रकार के जीवाणुओं की अधिकता हो जाती है। इससे घोल में संधान प्रक्रिया के बजाय इन जीवाणुओं द्वारा अनेक प्रकार के रासायनिक परिवर्तन होने लगते हैं और आसव विकृत हो जाता है। इन्हें रोकने के लिये संधान पात्रों को शीलनरहित स्वच्छ शुष्क स्थान में रखना चाहिए। क्योंकि अन्धकार युक्त-शीलन में पनपने वाले जीवाणु घोल में प्रवेश कर जाते हैं। पात्र भी उपरोक्त विधि से शुद्ध किया होना चाहिये। वर्षा ऋतु में संधान नहीं करना चाहिये। आसव घटक स्वच्छ ताजे नवीन लिये जाने चाहिये। कृमि भक्षित, सड़े गले, फफूंदी लगे और पुराने शीलनयुक्त द्रव्यों में अन्य जीवाणुओं की बहुलता होती है। जो संधान को विकृत करते है। आसवों में जल शृतशील कर जीवाणुहीन कर लिया जाना चाहिये।

मधु के विषय में विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है, क्योंकि बृहद मात्रा में यह शुद्ध प्राप्त नहीं हो पाता। अत: विक्रेता इसमें अनेक प्रकार की अवान्छनीय मिलावट कर देते हैं। अश्वगन्धारिष्ट आदि जिनमें पूर्णत: मधु ही पड़ता है, प्राय: बुरी तरह विकृत हो जाते है।

यदि आसव विकृत होने की सम्भावना प्रबल हो और अत्यावश्यक जान पड़े, तो प्रति १० लीटर आसव में ३ ग्राम पोटाशियम मेटाबाईसलफाइड मिलाया जा सकता है। यह अन्य जीवाणुओं की वृद्धि नहीं होने देता। एसिड पैदा करने वाले जीवाणुओं के लिये भी घातक है, अत: आसव में खटास नहीं आने पाती। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि यदि घोल में ५ प्रतिशत खटास हो जाय, तो संधान क्रिया मन्द हो जाती है और ज्यादा होने से बन्द हो जाती है।

(च) संधान काल में घोल के साथ वाह्य वायु का सम्पर्क न होने देना—संधान काल में घोल को वाह्य वायु के सम्पर्क से बचाना चाहिये। इस हेतु अच्छा हो, कि संधान पात्र को ऊपर तक इतना पूरा भर दिया जाय, कि पात्र की वायु निकल जाय, परन्तु संधान काल में उफान आने पर घोल के गिरने का भय न रहे।

घोल के ऊपर की सतह प्रक्षेप द्रव्य-धातकी पुष्प आदि से ढके रहने के कारण वायु के सम्पर्क में नहीं आती इस तरह यह एक रुई की डाट की तरह का काम देती है। जो अन्य जीवाणु तथा धूल आदि को भी आसव घोल मे जाने से रोकती है, लेकिन पैदा होने वाली कार्बन डाईआक्साइड गैस के निकलने मे बाधक नहीं होती। इस तरह हमारा यह प्राचीन तरीका ही पर्याप्त है। हां मक्खी, मच्छर आदि से बचाने के लिये पात्र के मुख को कपड़े या हल्के ढक्कन से ढक देना चाहिये।

पात्र के मुख को कपड़-मिट्टी या अन्य तरीकों से

वाताप्रवेश (एअर टाइट) करने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं, जैसा कि अब तक कुछ लोगों का विचार रहा है।

संधान का प्रारम्भ होना—

आसव घोल संधान पात्र में डालने पर ग्रीष्मऋतु में एक दो दिन बाद ही और शीत ऋतु में दो तीन दिन बाद सन्धान प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। तीन से छः दिन तक यह बहुत तीव्र होती है, पुनः धीरे धीरे मन्द हो कर २०-२५ दिन में समाप्त हो जाती है।

संधान प्रारम्भ होने पर घोल में उफान स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। घोल की सतह पर गैस बुलबुलों के रूप में चिट-चिट या बुद-बुद शब्द के साथ निकलती है। इस शब्द को पात्र के पास कान ले जाकर सुना जा सकता है तथा सतह पर बुलबुलों को आते देखा जा सकता है।

गैस की उपस्थिति का ज्ञान पात्र के मुख पर जलती दियासलाई की तीली ले जाकर किया जा सकता है, क्यों कि कार्बन डाइआक्साइड की उपस्थिति के कारण यह बुझ जायेगी। यदि इस गैस को एकत्रित कर एक नली द्वारा चूने के पानी के घोल में गुजारा जाय, तो यह दूधिया हो जायेगा। यह कार्बन ड.ईआक्साइड की पहचान है।

संधान द्रव को एक कांच के गिलास में भरकर सूर्य के प्रकाश में देखा जाय, तो गैस के निकलते हुए बुलबुले स्पष्ट रूप से दीखेंगे। इसके अतिरिक्त शर्करा के मद्य में परिवर्तित होने के कारण घोल में शर्करा की मात्रा क्रमशः दिन प्रतिदिन न्यून होती जायेगी। यदि पात्र के मुख पर नाक ले जाई जाय तो गैस की उपस्थिति के कारण तीव्र घुटन की अनुभूति होगी।

संधान की समाप्ति—

घोल में सन्धान प्रक्रिया २०-२५ दिन चलकर समाप्त हो जाती है। इस समाप्ति की पहिचान निम्न चिन्हों से कर सकते हैं—

१—घोल में उफान नहीं होगा, गैस उत्पत्ति की समाप्ति के कारण सतह पर बुलबुले आते नहीं दीखेंगे।

२—गैस न निकलने के कारण अब कुछ बुद-बुद या चुट-चुट शब्द सुनाई नहीं देगा।

३—आसव द्रव को कांच के गिलास में भरकर सूर्य के प्रकाश में देखा जाय, तो अब गैस के बुलबुले निकलते नहीं दीखेंगे।

४—यदि दियासलाई की तीली जलाकर पात्र के मुख पर अन्दर की तरफ ले जाई जाये तो यह बुझेगी नहीं। इसका अर्थ है कि अब संधान समाप्त होने के कारण गैस नहीं निकल रही है।

५—संधान काल में मीठे के मद्य में परिवर्तित होने के कारण घोल की मिठास प्रतिदिन गिरती जाती थी, परन्तु अब यह एक अङ्क पर स्थिर हो जायेगी। इसे हम सेक्रोमीटर से देख सकते हैं।

६—मीठे के मद्य में परिवर्तित हो जाने के कारण घोल का आ० घ० कम होकर अब स्थिर हो जायेगा। इसे हम हाइड्रोमीटर से देख सकते है।

७—आसव द्रव के सेवन से मद्य के कारण कण्ठ में तीक्ष्णता की अनुभूति होगी।

८—प्रक्षेपक औषधियों का रस और गन्ध आसव द्रव में आ जायेगा और ये निर्वीर्य हो जायेंगी।

९—अधिकांश प्रक्षेप द्रव्य पात्र की तली में बैठ जायेंगे और निर्मल द्रव पात्र के ऊपरी भाग में होगा।

सन्धान समाप्ति के बाद—

यदि सन्धान समाप्ति के बाद भी आसव सन्धान पात्र में पड़ा रहे, तो तलस्थ गाद में विदारण के फलस्वरूप रासायनिक परिवर्तन होने से आसव में अप्रिय गन्ध स्वाद उत्पन्न होने लगते हैं। इस काल में लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया भी सक्रिय हो जाते हैं जिससे आसव में खटास आ जाती है। अतः सन्धान समाप्ति के तुरन्त बाद इसे छान कर संचय पात्र में रख देना चाहिए कि इस काल में आसव वाह्य वायु के सम्पर्क में न आने पाये। क्योंकि मधुर घोल में आसवीय संधान द्वारा मद्य उत्पन्न होने के बाद दूसरा कदम वायु के सम्पर्क से मद्य का सिरके में परिवर्तित होना होता है। आसव में प्रायः ५ से १० प्रतिशत तक मद्य होता है। इस परिमाण में मद्य और भी शीघ्रता से सिरके में परिवर्तित होने लगता है। अतः आसव को सावधानी के साथ साइफन से निकाल कर संचय पात्र में रख देना चाहिए। पात्र को पूरा ऊपर तक भर लिया जाना चाहिए, ताकि उसकी सम्पूर्ण वायु बाहर निकल जाय। इसे सीलन रहित शुष्क स्थान में अच्छी तरह बन्द कर वाताप्रवेश्य कर रखना चाहिए। यदि संचय पात्र की ऊपर की सतह ज्यादा

है और इसे वाताप्रवेश्य (एअर टाइट) नहीं किया जा सकता तो ऊपर की सतह को पिघले मोम से ढक देना चाहिए। इससे एक तो आसव बाह्य वायु के सम्पर्क में नहीं आयेगा और दूसरा उपस्थित मद्य की हानि नहीं होगी। क्योंकि देखा गया है, कि यदि इसे ६ मास से एक साल तक असावधानी से संचित रखा जाय, तो करीब २५ से ५० प्रतिशत मद्य की हानि हो जाती है।

आसव की गाद नीचे बैठ जाय और वह निर्मल पारदर्शक हो जाय इस हेतु कम से कम ६ मास से एक साल तक संचय पात्र में रखना चाहिए। आसव निर्मल करने के लिए कुछ लोग फिल्टर पेपर, फिल्टर बैग या अन्य छानने की यांत्रिक विधियों का उल्लेख करते हैं। परन्तु इनसे छानने के बाद भी आसव पूर्णतः निर्मल पारदर्शक नहीं हो पाता और कालान्तर में जाकर पुनः कुछ न कुछ गाद बैठ जाती है।

हमें तो निर्मल करने के लिये संचय विधि ही सर्वोत्तम ज्ञात हुई। यह संचय हर आसव की प्रकृति के अनुसार कम से कम ६ मास से २ साल तक होना चाहिए। दशमूलारिष्ट में निर्दिष्ट निर्मली बीजों का प्रयोग भी कई तरह से २-३ सालों तक किया जाता रहा, परन्तु अभीष्ट सफलता नहीं प्राप्त हुई।

आसव निर्मल हो जाने पर बोतलों में संवेष्ठित कर देना चाहिए। संवेष्ठन से पूर्व परीक्षा कर लेनी चाहिये कि संधान क्रिया शेष तो नहीं रह गई। क्योंकि ऐसा न करने पर कालान्तर में संवेष्ठित बोतलें गर्मी पाकर गैस पैदा होने से फूटने लगती हैं। इसकी परीक्षा के लिये आसव को बोतल में भर कर कार्क लगाकर खूब जोर से हिलावें। गैस होगी, तो पर्याप्त झाग बनेगी और कार्क खोलने पर गैस निकलने का शब्द होगा। या फिर बोतल को हिलाकर पानी में डुबा देना चाहिए और पानी के अन्दर ही कार्क ढीला करना चाहिए, गैस होगी तो बुलबुलों के रूप में पानी से निकलती दीखेगी। गैस की उपस्थिति का ज्ञान भरी बोतल को धूप में रख कर भी किया जा सकता है, गैस होगी तो गर्मी पाकर और भी बनेगी और कार्क खुल कर दूर जा गिरेगा।

आसव में गैस की उपस्थिति का ज्ञान बोतल के मुख पर सामान्य रबड़ का गुब्बारा बांधकर भी किया जा सकता है। जितनी अधिक गैस निकलेगी गुब्बारा उतना अधिक फूलता जायेगा।

इस तरह यदि आसव में अभी संधान शेष है और कालांतर में संवेष्ठित बोतलों के फूटने का भय बना रहे तो आसव द्रव को ५७ अंश शतांश पर ३० मिनट तक रखना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर खमीर के जीवाणु पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं।

उत्तम आसव—

उत्तम आसव किसे कहा जाय? इसे निर्धारण करने के लिए अभी बहुत कुछ करना होगा। लेकिन फिलहाल निम्न तथ्यों को आधार माना जा सकता है—

१. इसमें प्रयुक्त औषधियों की गन्ध-स्वाद क्रियाशीलता होनी चाहिए।

२. द्रव में कोई अप्रिय गन्ध-स्वाद नहीं होनी चाहिए।

३. आसव द्रव गाद रहित, स्वच्छ, और हो सके तो कुछ आसवों को छोड़ निर्मल होनी चाहिए।

४. संधान के पश्चात् इसमें मिठास १५ प्रतिशत तक होनी चाहिए। कुछ अप्रिय स्वाद वाले आसवों में २० प्रतिशत तक हो सकती है।

५. इसमें मद्यांश ५ से १० प्रतिशत तक होना चाहिए तथा खटास २ प्रतिशत से ऊपर नहीं होनी चाहिये।

६. चिरकाल तक रखने पर भी अविकृत रहे।

७. उत्तम आसव के सेवन से चित्त में प्रसन्नता और शरीर में स्फूर्ति का आभास होना चाहिए। जबकि अम्ल कच्चे या दोषपूर्ण आसव के प्रयोग से उद्विग्नता और शरीर में लहर सी पैदा होती है।

आसव का अधिकतम संचय काल—

आयुर्वेद मतानुसार आसव जितने पुराने होते हैं, उतने ही गुणदायक और उत्तम माने जाते हैं। यह बात काफी हद तक ठीक प्रतीत होती है, क्योंकि आसव मद्य जातीय द्रव है और नवीन मद्य दोषकर होता है। अतः निर्माण के कम से कम ६ मास बाद ही प्रयोग प्रशस्त रहेगा।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिये कि अनिश्चित काल तक रखने पर भी आसव उत्तम ही रहेंगे। क्योंकि आसव परिश्रुत (डिस्टिल्ड) द्रव नहीं है, अपितु एक घोल मात्र है। अतः यदि इसे बहुत काल तक रखा जाय, तो इसमें निश्चित रूप से परिवर्तन होंगे। ये परि-

वर्तन क्या और किस तरह के होते हैं तथा इनके परिणाम स्वरूप आसव उत्तम या अधम किस ओर जाता है, इस पर अभी निरीक्षण कर विचार किया जाना शेष है। फिलहाल मेरे विचार से यह अधिकतम सीमा १० साल तक की होनी चाहिये। इस काल में भी और इसके पश्चात् भी सेवन से पूर्व आसव को देख कर प्रयोग किया जाना चाहिए। यदि आसव स्वाद गन्ध में विकृत हो गया हो, तो प्रयोग नहीं करना चाहिए।

आसव और मद्य—आसव मद्य जातीय पदार्थ है, परन्तु मद्य नहीं। क्योंकि मद्य का मुख्य कार्य मादकता उत्पन्न करना है, इसी आधार पर इसमें मद्यांश ज्यादा होता है। आसव का कार्य औषधि के रूप में है, इसलिये इसमें औषधि अंश की प्रधानता होती है। इसीलिए आसव सेवन की एक निश्चित मात्रा निर्धारित है, फिर भी यदि इससे अधिक मात्रा में सेवन किया जाय, तो मद्यांश के साथ-साथ औषधि अंश भी शरीर में अधिक मात्रा में पहुँचेगा। ऐसी स्थिति में मादकता के साथ-साथ यह हानि भी पहुँचा सकता है। यह हानि आसव विशेष में प्रयुक्त द्रव्यों पर निर्भर करेगी, जो अल्प भी हो सकती है और घातक भी।

कुछ वैद्यों के विचार से आसव विशेष शरीर पर जो प्रभाव रखता है, परिश्रुत करने पर भी वही कार्य करता है। यह नितान्त भ्रमपूर्ण है। क्योंकि परिश्रुत करने पर केवल उड़नशील अंश ही आ पाते हैं, अन्य कार्यकारी अंश शेष बचे आसव में ही रह जाते हैं।

आसवारिष्टों की प्रमुख विकृतियाँ, उनका कारण एवं निराकरण

(१) **सन्धान प्रक्रिया का प्रारम्भ न होना**—अनेक वार आसव घोल सन्धान पात्र में डालने के बाद संधान प्रारम्भ नहीं होता और आसव घोल ज्यों का त्यों पड़ा रहता है। उपाय न किये जायें, तो पड़े पड़े उसमें अनेक प्रकार के अवांछित रसायनिक परिवर्तन होने लगते हैं और वह विकृत हो जाता है। इसका मुख्य कारण उपयुक्त तापमान का न होना है। इसके अलावा आसव घोल का बहुत गाढ़ा होना, मधुर द्रव्यों की अत्यधिकता और किण्व का अभाव अन्य कारण हैं।

निराकरण—उपयुक्त तापमान रखना, मधुरांश को ठीक करना और उत्तम किण्व के प्रयोग से यह बाधा प्रायः दूर हो जाती है। यदि इससे भी सन्धान प्रारम्भ न हो या मन्द हो, तो खमीर के लिए पौष्टिक तत्वों के रूप में एमोनियम-सल्फेट प्रति १० लीटर में ५ से ८ ग्राम के अनुपात में मिलाया जा सकता है।

(२) **आसव घोल का दही की तरह जमना**—संधान काल के दौरान कई बार आसव घोल दही की तरह थक्के के रूप में जम जाता है। इसमें अनेक प्रकार के रासायनिक परिवर्तन होने लगते हैं और दृश्य कृमि उत्पन्न हो जाते हैं। इसके बाद आसव में अप्रिय गन्ध, स्वाद उत्पन्न हो जाते हैं। आसव बिलकुल बेकार, अप्रयोग्य हो जाता है। इस विकृति का मुख्य कारण विकृत शहद और गुड़ का प्रयोग होना है है। चिरकाल तक उपयुक्त तापमान का न मिलना, वर्षाकाल के कारण तापमान की भिन्नता, संधान पात्र का सीलनयुक्त गन्दी जगह में पड़े रहना, सड़े गले विकृत एवं हीन वीर्य द्रव्यों से क्वाथ का बहुत ज्यादा गाढ़ा या लेसदार होना होता है। यह विकार मुख्य रूप से अश्वगन्धारिष्ट में दृष्टि-गोचर होता है, क्योंकि इसमें शहद अत्यधिक मात्रा में प्रयुक्त होता है, जो प्रायः वृहद मात्रा में शुद्ध प्राप्त नहीं हो पाता। इसके अलावा क्वाथ्य द्रव्यों की बहुलता के कारण क्वाथ गाढ़ा बनता है और मूसली आदि द्रव्यों के कारण लेसदार हो जाता है।

निराकरण—क्वाथ्य द्रव्य अत्यधिक हो तो आसव "द्रव-द्वैगुण्य" परिभाषा से प्रस्तुत करें। विकृत मधु न डालकर चीनी का प्रयोग करें। सन्धान पात्र स्वच्छ हों और उन्हें सीलन-युक्त गन्दी जगह में न रखें। उपयुक्त तापमान एवं किण्व का ध्यान रखें और वर्षाकाल में तापमान में भिन्नता के कारण, उपयुक्त व्यवस्था के अभाव में संधान न करें। आवश्यकता होने पर अवांछित बेक्टीरिया की बाढ़ रोकने के लिए प्रति १० लीटर में २ से ३ ग्राम पोटेशियम मेटाबाई-सल्फाइड मिलाया जा सकता है।

(३) **खट्टा होना**—यह विकृति लोहासव, कुटजारिष्ट, दंत्यरिष्ट, विडंगारिष्ट, सारस्वतारिष्ट और अश्वगंधारिष्ट में विशेष रूप से देखने में आती है। परन्तु सामान्य तौर पर कोई भी खट्टा आसव हो सकता है।

शास्त्र में आसव का रस अम्ल कहा है, और अनुरस

मधुर-कटु-तिक्त कषाय। परन्तु यह सुनिश्चित है, कि अम्ल रस इतने तीव्र रूप से प्रकट नहीं होना चाहिए कि वह अनुरसों को दबाकर प्रमुखतया प्रकट हो। इसके लिए अम्ल की मात्रा २ प्रतिशत से ऊपर नहीं होनी चाहिए।

कोई आसव संधान या संचय 'काल' की किसी भी अवधि में खट्टा होना प्रारम्भ हो सकता है और जितना खट्टा हो चुका है, उसका निराकरण तो मुश्किल है परन्तु उसे आगे खट्टा होने से बचाया जा सकता है।

कारण—इसका मुख्य कारण संधान के बाद बाह्य वायु का सम्पर्क है। इससे आसव द्रव्य का भाग ओषजन के सम्पर्क में आने से अपनी द्वितीय अवस्था के रूप में सिरके में परिवर्तित होने लगता है। दूसरा मुख्य कारण संधान या संचय पात्रों का पहिले से ही सिरके के कीटाणुओं से युक्त होना है। इसके अलावा आसव में संधान संचय-काल में मधुरांश की न्यूनता, वर्षा या अन्य कारणों से तापमान की न्यूनता, अधिकता या भिन्नता का निम्न तापमान पर चिरकाल तक बने रहना, अत्यधिक उष्ण घोल को संधान के लिए डालना, विकृत गुड़, शहद या विकृत क्वाथ द्रव्यों का उपयोग होना है। यदि संधान के बाद आसव चिरकाल तक संधान में पड़ा रहे तो तलस्थ द्रव्यों के विदारण के कारण भी अम्ल हो जाता है।

निराकरण—संधान समाप्ति पर आसव को तुरन्त निकालकर संचय पात्रों में छानकर रख देना चाहिए। संचय पात्रों को एअर-टाइट कर देना चाहिए। इस सम्पूर्ण क्रिया के दौरान, छानते हुए बोतलों में भरते हुए आसव द्रव को बाह्य वायु के सम्पर्क से बचाना चाहिए। संधान या संचय के लिए अम्लतारहित स्वच्छ पात्र प्रयुक्त किये जाने चाहिए। इन्हें उपयुक्त विधि से शुद्ध कर लिया जाना चाहिए। यदि किसी पात्र में पहिले आसव खट्टा हो चुका हो, तो उसे प्रयोग करने से पूर्व विशेष रूप से जीवाणु-हीन कर लिया जाना चाहिए।

संधान के लिए अत्यधिक उष्ण क्वाथ का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। संधान काल के दौरान तापमान स्थिर रक्खा जाना चाहिए। संचय काल में आसव में १५ प्रतिशत से कम मिठास नहीं रखनी चाहिए। कम हो तो चीनी मिला दें। इसके अलावा घटक द्रव्य, मधुर द्रव्य आदि स्वच्छ कर प्रयुक्त किये जाने चाहिए।

यदि संधान एक से डेढ़ मास में समाप्त न हो तो इस के लिए कारण खोजकर उपयुक्त उपाय किए जाने चाहिए। ऐसा प्रायः तापमान की न्यूनता या भिन्नता से होता है। अथवा क्रिया के साथ २ अन्य विकृत जीवाणुओं के प्रवेश से अवांच्छित रासायनिक परिवर्तन होने के कारण होता है।

आवश्यकता होने पर उपयुक्त मात्रा में पोटासियम मेटाबाई-सल्फाइड का प्रयोग किया जा सकता है।

यदि संचय काल में आसव खट्टा होने लगे और अन्य उपाय असफल हो जायें, तो इसे ६०° से ७०° शतांश पर ३० मिनट तक गरम रखना चाहिए और पुनः बोतलों में एअर-टाइट बन्द कर देना चाहिए। क्योंकि इतने काल में इस तापमान पर रखने से सिरके के कीटाणु मर जाते हैं।

जब कोई आसव खट्टा होने लगे या हो जाय तो इसे यथा शीघ्र अन्य आसवों से पृथक कर एक दूसरे कमरे में रखकर उपाय किए जाने चाहिए।

कुछ निर्माता खट्टा होने पर सोडाबाई कार्ब या चूना डालने की सलाह देते हैं, परन्तु यह उपयुक्त नहीं, क्योंकि इन द्रव्यों के कारण आसव की प्रकृति ही बदल जाती है।

(४) गैस के कारण संवेष्टित बोतलों का फटना—

कारण—इसका मुख्य कारण मीठे की अत्यधिकता देखने में आई है जिससे संधान काल में आसव द्रव्य गाढ़ा होने से संधान मन्द-मन्द होता रहता है। इस तरह संधान पूर्ण नहीं हो पाता और कालान्तर में गर्मी पाकर पुनः होने लगता है। वह क्रिया प्रायः अशोकारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, अमृतारिष्ट आदि आसवों में जिनमें मीठा अत्यधिक पड़ता है, होती है। इसका दूसरा कारण निम्न तापमान पर सन्धान है, जिससे सन्धान चिरकाल तक मन्द गति से होता रहता है और आसव को सन्धान में २-३ मास लग जाते हैं। लेकिन फिर भी वह पूर्ण नहीं होता और समय पाकर रुक-रुक कर होने लगता है। आसव बोतल में तलस्थ गाद की अधिकतासे भी ऐसा होता है, क्योंकि अनेक बार गाद में विदारण होने से गैस बनने लगती है।

निराकरण—जिन आसवारिष्टों में मीठा बहुत ज्यादा हो, कम कर दिया जाना चाहिए। फिर भी ज्यादा हो, तो एक बार में ही न मिलाकर सन्धान काल के मध्य २-३ बार में मिलाया जाना चाहिये। सन्धान पात्र को उपयुक्त तापमान पर रखकर सन्धान करना चाहिए।

सन्धान के मध्य तापमान गिरने नहीं देना चाहिए। यदि सन्धान मन्द-गति से चिरकाल तक चलता रहे, तो तापमान पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

आसवों को पूर्णतः निर्मल होने के बाद ही पैक किया जाना चाहिये, ताकि गाद की मात्रा कम से कम रहे। इस कार्य के लिए निर्माण के बाद कम से कम ६ मास तक गाद बैठने के लिए संचित रखना चाहिये।

बोतलों को अन्तिम रूप से पैक करने से पूर्व आसव की परीक्षा कर लेनी चाहिये कि गैस तो नहीं बन रही है। इसके लिए आसव की २-३ बोतलों को भरकर मजबूती से कार्क लगाकर ६ से ८ घण्टे तक धूप में रखना चाहिये। गैस होगी तो कार्क जोर से खुलकर दूर जा गिरेगा। इसकी और सही पहिचान के लिए यह ज्यादा उत्तम रहेगा, कि बोतलों के मुख पर अच्छी किस्म के रबड़ के छोटे गुब्बारे मजबूती से बाँध दें और उन्हें धूप में रख दें। गैस जितनी निकलेगी गुब्बारा उतना फूलता जावेगा।

सामान्यतः गैस की पहिचान बोतलों को हिलाकर भी की जा सकती है। यदि झाग अत्यधिक उत्पन्न हों और चिरकाल तक बने रहें, तो गैस की उपस्थिति समझें।

यदि किसी आसव में गैस की उपस्थिति चिरकाल तक बनी रहे और उसे जल्दी पैक करना आवश्यक हो, तो सम्पूर्ण आसव को एक बन्द बर्तन में ७० शतांश पर ३० मिनट रखना चाहिये और पुनः फौरन बाद पैक कर दें।

बोतलों को भरते समय गर्मी आदि से बनने वाली गैस के लिए कुछ स्थान रख छोड़ना चाहिए।

(५) छोटे सफेद-कृमियों का पैदा होना—अनेक बार देखा गया है, कि कुछ आसवों में संचयकाल के दौरान छोटे-छोटे दृश्य सफेद कृमि पैदा हो जाते हैं, जो बढ़कर प्रायः १ से २ सेन्टीमीटर लम्बे और काफी मोटे होते हैं। यह कृमि प्रायः सागवान के ड्रमों में चिरकाल तक आसव के पड़े रहने पर उत्पन्न होते देखे गये हैं। लेकिन आसव में खटास या अन्य कोई दृश्य विकृति देखने में नहीं आती।

कारण—इसका मुख्य कारण गन्दगी, सीलन तथा घरेलू मक्खियों या अन्य छोटे किस्म की मक्खियों की उपस्थिति होती है। ये अण्डे देकर लार्वा के रूप में कृमि पैदा करती हैं। यह स्थिति तब होती है, जब आसव पात्र भली-भांति एअर-टाइट न हो।

निराकरण—आसव मीठा द्रव होता है, अतः मक्खी जाति के जन्तुओं की उपस्थिति प्रायः होती है। अतः कमरे को मक्खी आदि से रहित करने के लिए फिलट का प्रयोग करना चाहिए। आसवशाला की खिड़कियाँ, दरवाजे आदि पर पतली जाली लगी होनी चाहिए। आसव ड्रम भली-भांति बंद कर देना चाहिये और स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस तरह के कृमि प्रायः सिरका निर्माण में भी देखे जाते हैं, परन्तु ये उनसे भिन्न हैं।

यदि आसव में यह कृमि उत्पन्न हो जायें, तो इनके निराकरण के लिए आसव को महीन वस्त्र में छानकर बोतलों में एयर-टाइट रूप से बन्द कर देना चाहिए। वायु के अभाव में यह २-४ दिन में मर जाते हैं और पुनः उत्पन्न नहीं होते। यह विकृति प्रायः अर्जुनारिष्ट में देखने को आती है।

(६) आसव का चिरकाल तक गदला रहना या उसमें क्षारीय स्वाद की अनुभूति—इस तरह की विकृति प्रायः क्षारीय गुड़ के अति मात्रा में प्रयोग से देखी गई है, अतः उत्तम गुड़ का प्रयोग किया जाना चाहिए।

संधान के लिए किण्व रूप में उत्तम प्रकार के खमीर जीवाणु लिए जाने चाहिये। क्योंकि हीन जाति के जीवाणुओं से भी गन्दलापन पैदा हो जाता है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि खमीर के जीवाणुओं की भी अनेक प्रजातियाँ हैं जो अपने गुणों के आधार पर विभक्त की गई हैं।

इसके अतिरिक्त अनेक बार खमीर के जीवाणुओं के साथ-२ अन्य प्रकार के जीवाणु भी पनप कर, दूसरी तरह की रासायनिक क्रियायें करने लगते हैं और मीठे की भी हानि करते हैं। इसके कारण भी आसव चिरकाल तक गदला बना रहता है और निर्मल नहीं हो पाता।

—श्री आचार्य दीनदयाल बिष्ट आयुर्वेदालंकार
अध्यक्ष—आसव निर्माण विभाग,
हि० प्र० राजकीय आयुर्वेद फार्मेसी,
माजरा, हिमाचल प्रदेश

प्राचीनतम ग्रन्थों को देखने से पता लगता है कि आसव-अरिष्टों की कल्पना सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेदों तक में उपलब्ध है। चरक, सुश्रुत संहिताकारों ने भी अपनी-२ संहिताओं में सविस्तार इनका वर्णन किया है। आसव-अरिष्ट काष्ठ द्रव्यों का तरल सार भाग है। इनका प्रभाव सेवन करने के बाद तत्काल ही शरीर पर पड़ता है। रोग शमन करने में भी अन्य औषधियों की अपेक्षा आसवारिष्टों का प्रभाव अप्रतिम होता है। इनमें शरीर के प्रत्येक क्षेत्र में शीघ्र प्रवेश और शीघ्र कार्यत्व के गुण अग्रणी है।

काष्ठ औषधियों के अत्यान्य रूप—चूर्ण-वटिका, अवलेह, क्वाथ, स्वरस आदि जितने भी रूप हैं वे सभी कुछ समय के पश्चात् सत्वहीन, गुणहीन, रोग शमन शक्ति से रहित हो जाते हैं। जबकि आसवारिष्टों का रूप पुरातन होने पर दिनों-दिन अधिक प्रभाव वाला एवं चिरस्थायी होता जाता है।

आसवारिष्टों की सन्धान प्रक्रिया, यद्यपि सुरा-मध्य तथा काञ्जी की तरह ही होती है विशेष अन्तर नहीं है। फिर भी किञ्चित अन्तर है, वह यह कि मद्य व शुक्त स्वाद में अम्ल होते हैं। किन्तु आसवारिष्ट यदि स्वाद में अम्ल हो जायं तो विकृत, गुणहीन और रोग शमन से परे माने जाते है।

आसव शब्द की महर्षि चरकाचार्य मतानुसार संज्ञा (परिभाषा)—

"एषामासवा नामा सुतत्वदामव संज्ञा"

कुछ द्रव्य विशेष को लेकर एक स्थान में आसुत (संधान) करने के बाद प्राप्त द्रव्य को आसव कहते हैं।

संधान कल्पना के हेतु शार्ङ्गधराचार्य का मत है कि जो द्रव्य क्वाथ व जल आदि में डालकर बहुत दिनों तक सन्धान किया जाता है उस भैषज्य के आसव तथा अरिष्ट ये दो भेद होते हैं, यथा—

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्य यत्संधितं भवेत्।
आसवारिष्ट भेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम्॥

अर्थात्–द्रव (जल वा क्वाथ आदि) में द्रव्य (गुड़, मधु, तथा अन्यान्य भेषज) डालकर मुख मुद्रा देकर चिरकाल–बहुत काल–तक रखने से) यह समय प्रत्येक कल्पना के लिए प्रायः नियत रहता है तथा इनमें ऋतु आदि के अनुसार कमीवेशी भी होती है) जो औषध के काम में व्यवहारोपयोगी पदार्थ बनते है, वे आसव तथा अरिष्ट भेद से कहे जाते हैं।

शार्ङ्गधराचार्य ने दो भेद किये है। बिना पकाये यानि बिना अग्नि संयोग किये औषधि तथा जल को संधित कर जो भेषज्य तैयार होती है वह आसव संज्ञक है और अग्नि संयोग से पकाये क्वाथ आदि औषधियों को संधित कर तैयार किया जाता है वह अरिष्ट कहलाता है।

चरक आदि ग्रंथों में पक्वौषधियुक्त संधान को भी आसव एवं अपक्वौषधि संधान को अरिष्ट की संज्ञा दी गई है, अतः आसव तथा अरिष्ट दोनों एक ही तरह की औषधि है, जिस शक्ति से आसव स्थायी रहता है उस शक्ति से अरिष्ट भी स्थायी रहता है, जिस द्रव्य का अरिष्ट गुणकारी होता है उसी द्रव्य का आसव भी वही गुण देता है।

कुछ लोगों का मत है कि आसव में अरिष्ट के समान विना अग्निताप के औषधीय द्रव्यों का कार्यकारी तत्व नहीं आ पाता और अणु प्रवेशता भी नहीं आ पाती, पाकाभाव में गुरुता भी रहती है, लघुता नहीं आती। इसके अतिरिक्त अरिष्ट में रोग शामक गुण प्रधान है और आसव में पोषक गुण प्रधान है रोग शामक गुण गौण है। यह विषय अनुसंधान का है।

प्रायः देखा यह देखा जाता है कि कहीं-२ पक्व किये द्रव्यों से निर्मित औषध को भी आसव संज्ञा दी गई है और अपक्व को अरिष्ट कहा जाता है। चरकादि महर्षियों ने आसवारिष्टों के भेद को उचित नहीं माना।

जिस प्रकार संधान प्रक्रिया द्वारा आसवारिष्ट तैयार किये जाते हैं, उसी प्रकार मद्य और काँजी का भी संधान किया जाता है जिनके बहुत से रूप हैं जैसे—शीघ्र वारुणी तथा तुषोदक, सौवीर, काँजी आदि।

जिस संधान से आसवारिष्ट तैयार किया जाता है उसी प्रकार मद्य भी तैयार किया जाता है। किन्तु मद्य की आसव संज्ञा नहीं हो सकती और आसव की संज्ञा मद्य नहीं हो सकती। क्योंकि मद्य की व्याख्या से प्रतीत होता है कि—

"पेयं यन्मादकं लोकैस्तन्मद्यमभिधीयते।"

अर्थात् जो पेय मादक होते हैं। उन्हें मद्य कहा जाता है।

धर्म शास्त्रकारों ने कहा है कि जो संधान मोह-मादकता आदि विकारों को उत्पन्न करे, वे अभक्ष्य हैं।

उसी प्रकार संधान द्वारा बना शुक्त भी है उसकी व्याख्या करते हुये आचार्य कुल्लु भट्टजी लिखते हैं कि—

स्वभावतो मधुर रसानि यानि कालवशेनोदकादिना।
चाम्लीं भवन्ति तानि शुक्त शब्द वाच्यानि॥

कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जो संधानित द्रव्यों को—आसवारिष्ट पेय को भी अभक्ष्य मानते हैं। उनका कहना है कि इसमें जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं। अतः वे अभक्ष्य हैं। संधान द्वारा तो अचार, मुरब्बा, गुलकन्द आदि भी बनाये जाते हैं उनको वे अभक्ष्य नहीं मानते। दही भी संधान क्रिया द्वारा बनाया जाता है, यदि उसका भी सूक्ष्म दर्शीयंत्र से निरीक्षण किया जाय तो जीवाणुओं का ही एक पुंज मात्र दिखाई देगा उसे अभक्ष्य क्यों नहीं मानते ? पेट में गये सम्पूर्ण पदार्थ, परिपाक होने पर, उनके कण कण में जीवाणु होते हैं, ऐसा वैदिक मंत्रों से भी स्पष्ट है।

आसवारिष्टों की निर्माण विधि—

क्वाथ दौ भेषज द्रव्यं शर्करा मधु व गुड़म्।
सम्यगासव निष्पत्यैकिञ्चित् किण्वं तथैव च॥
संधाय स्थापयेज्जातं रसं वस्त्र परिस्रुतम्।
मांसी मरिचं लोहैस्तु प्रलिप्ते धूपितेऽथवा॥
शुचौ भाण्डे मुखं रुध्वा स्थापितं भेषजोचितम्।
आसवारिष्टं संज्ञं तं कल्पमाहुश्चिकित्सका।
अरिष्टो द्रव्य संयोग संस्कारादधिको गुणैः॥

अर्थात्—क्वाथ, स्वरस, जल आदि द्रव पदार्थों में औषध द्रव्यों का चूर्ण, शर्करा, गुड़, शहद और आसव ठीक-ठीक उठे उसके लिए किण्व (आसवारिष्ट के नीचे बैठा भाग) मिला दें, तथा मिट्टी के घट के भीतर भली प्रकार घृत लगा दें, या चीनी मिट्टी का बना पात्र लें अथवा सागौन वृक्ष की लकड़ी के बने पीपे (ढोल) में डाल कर, उसके मुख पर कपड़ा बाँधकर, ऐसे स्थान पर रखें जहाँ धूप हो, पर शील का स्थान न हो। बीच-बीच में कपड़ा खोलकर देखते भी रहें हैं कि उसमें खमीर उठ रहा है या नहीं। जब उस द्रव में खमीर उठकर समाप्त हो जाय, तब उसे स्वच्छ वस्त्र से छान लें, उस छने हुए स्वच्छ भाग को किसी शीशी के बर्तन में, या सागोन के बने पीपे में या चीनी मिट्टी के माण्ड में भरें। उससे पहले उस बर्तन में जटामांसी, काली मिर्च, अगर का लेप करें या धूपित कर लें। उनमें पुनः वायु प्रवेश न करे, इस प्रकार बन्द करके रख दें। जिस स्थान पर रखा जाय वहां शील नहीं होनी चाहिए अन्यथा उसमें फफूंद पड़ जाती हैं और अम्लीभूत होकर खराब हो जाती है। इस प्रकार बने कल्प को आसवारिष्ट कहा जाता है।

उक्त कथन का खुलासा वर्णन इस प्रकार है—

पात्र—

१. मिट्टी का घट हो, जो पानी भर-भरकर उपयोग में लाया हुआ हो, चूने वाला न हो, मजबूत हो। या सागौन (सागवान) काष्ट का बना हुआ हो या चीनी मिट्टी का सुदृढ़ पात्र हो।

२. पात्र का शुद्धि संस्करण—शुद्धि की परम आवश्यकता है। कारण स्पष्ट है कि उसमें किसी प्रकार का अम्ल

उत्पन्न करने वाला किञ्चित् भी किसी द्रव्य का अंश होगा तो वह आसवारिष्ट को दूपित कर देगा। यदि पात्र मृत्तिका का है तो उसे गर्म जल से वारम्वार धोकर उसमें धाय के फूल, लोध्रत्वक, इन दोनों को जलसहित पीस कर उस पात्र के भीतरी सम्पूर्ण भाग में लेप लगादें, लेप अच्छा होना चाहिये। जब लेप सूख जाय तभी आसवारिष्ट द्रव को उसमें डालें। आसवारिष्ट द्रव को डालने से पूर्व लेप शुष्क हो जाने के बाद अगर चन्दन, गूगल और कपूर से धूमित कर लिया जाय तो अधिक उत्तम है।

कुछ लोगों का मत है कि मैथिलिट स्प्रिट में राल का चूर्ण घोलकर घट में मोटा लेप लगा देना चाहिए जिससे घड़ा चूता नहीं। चूने का भय हो तो यही राल का लेप ३-४ बार किया जा सकता है।

पूर्व काल में इस कार्य के लिए घृत पात्र (जिस घट में घृत रखा जाता था) ही उपयोग में लाया जाता था, किंतु उस प्रकार का पात्र आजकल असभ्य है, सुलभ भी नहीं। जिस पात्र में आसवारिष्ट एक बार बन चुका है उस पात्र की शुद्धि बहुत ही सावधानी से करनी होती है। उसमें रहे आसवारिष्ट का पिछला अंश नये आसवारिष्ट को दूपित कर सकता है। किण्व व पुराना आसव, नये आसव द्रव में डाल दिया जाय तो उत्तम कार्य करता है, पात्र में रहा हुआ भाग उसे दूषित कर देता है। यह ध्यान रखने की बात है।

३. अम्लतानाशक संस्कार—यदि मिट्टी का पात्र है तो उसे गर्म जल से धोने के बाद, उस पात्र को अग्नि पर रख कर सुखा लेना चाहिये।

बाद में कलई चूना १ किलो लेकर १५ किलो जल में घोलकर उसे मिट्टी के पात्र में डाल दें और उस पात्र को अग्नि पर रख दें, चूने का जल उबलने लगेगा। उसके बाद वह चूने का पानी निकाल दें, स्वच्छ गर्म जल से धो दें, बाद में देखें कि उस पात्र में के जल की प्रतिक्रिया लिटमस पेपर पर क्या होती है। यदि उस पेपर पर क्षारीय क्रिया दृष्टिगोचर होती हो तो पुनः गर्म जल से उस पात्र को धोकर अग्नि ताप से शुष्क करें और सुगन्धित द्रव्यों के लेप से लेपित कर, धूप देकर उपयोग में लावें।

४. आसव-अरिष्ट निर्माण करने के लिये स्थान का चयन—

जिस स्थान का वायु दूपित न हो, वहां शीलन न हो, कीटाणुओं का वास न हो और वहाँ धूप और हवा आवश्यकतानुसार उपलब्ध हो।

५. आसवारिष्ट युक्त पात्र को वहाँ कैसे रखा जाय? इस सम्बन्ध में निम्न परम्परायें हैं—

(१) जमीन के भीतर पात्र को आकण्ठ मिट्टी में दबा कर रखना।

(२) जमीन के भीतर पात्र को आधा दबाकर रखना।

(३) जमीन के भीतर गड्ढा खोद कर उसमें कुछ भूसी भरकर पात्र को रखना, मृत्तिका व भूसी से बाद में छाप देना।

(४) जमीन पर भूसी बिछाकर पात्र रख देना।

(५) धूप में पात्र को रखना।

उक्त परम्परा का सम्बन्ध ऋतु, देश, काल से भी सम्बन्ध रखती है।

शीत ऋतु में यथा सम्भव पात्र को गर्म स्थान में या पात्र गरम बना रहे, ऐसा प्रबन्ध करना होता है। ग्रीष्म ऋतु में बाहरी हवा लगती रहे ऐसा विचार रखते हुए पात्र को रखा जाता है।

जिस स्थान में शीलन होती है वहाँ भूसी का उपयोग शीलन से बचाने के लिए किया जाता है। इन सबका उद्देश्य निश्चित मात्रा में तापमान को बनाये रखना है। क्रियात्मक ज्ञान के आधार पर यह निर्णय लिया गया कि आसवारिष्ट निर्माणक कीटाणु ३५ से ४० शतांश ताप पर अपना कार्य उत्तम प्रकार से करते हैं। २५ शतांश ताप से नीचे और ५० शतांश ताप से अधिक, यदि हो जाय तो उन कीटाणुओं की क्रियाकलाप वैषम्य हो जाती है तो आसवारिष्ट ठीक-ठीक नहीं बनता। अतः इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उस स्थान का तापमान ३५ से ४० तक ही रखें, न्यूनाधिक न होने पाये। अन्यथा आसवारिष्ट के निर्माण का परिणाम अनुत्तम होगा।

(६) आसवारिष्ट द्रव में द्रव्यों का मिश्रण—आसवारिष्ट निर्माण हेतु जिन द्रव्यों का क्वाथ व रस लिया जाय, वह स्वच्छ होना चाहिये। और उसमें मिलाये जाने वाले द्रव्य—चूर्ण, शहद, गुड़, शक्कर जो भी हो वे भी स्वच्छ और मान के अनुसार ही लेने चाहिए। और उस रस या क्वाथ में विलय पदार्थ–गुड़ व शक्कर या मधु जो भी डालें

उसके विलय होने के पश्चात् ही चूर्ण को मिलाना चाहिए, पहिले नहीं। तत्पश्चात् पात्र को उचित स्थान पर संधानार्थ रख दें।

अरिष्ट निर्माण हेतु जिन द्रव्यों का क्वाथ लेना हो, उसका प्रथम चूर्ण बनाकर क्वाथ करना चाहिए। जो द्रव्य अधिक काष्ठमय हो उन्हें ८-१० घन्टे तक जल में भिगोकर, बाद में उसकी कुटाई कराकर, क्वाथ बना लेना चाहिए। जो द्रव्य जितना अधिक कठोर–काष्ठमय हो उसे अधिक से अधिक १६ गुणा जल में अष्टमांश क्वाथ करना चाहिये। क्वाथ को गाढ़े कपड़े से छानकर शीतल कर, उसमें गुड़ आदि विलय पदार्थ मिलाकर बाद में प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण मिलाना चाहिये।

आसवारिष्टों में गुड़, शक्कर व मधु इत्यादि मधुर द्रव्यों का परिमाण भी सम्यक् होना चाहिए।

४० सेर क्वाथ द्रव्य में २॥ सेर से ६ सेर तक मधुर पदार्थ डाला जाता है तो वह उत्तम बनता है। इससे न्यून व अधिक डाला जाता है तो वह अनुत्तम होता है। शास्त्र में कितने ही आसवारिष्टों में मधुर पदार्थ की मात्रा बहुत ही अधिक लिख दी है, कहीं बहुत कम लिखी है वे आसवारिष्ट उत्तम नहीं बनते।

मात्रानुसार मधुर पदार्थ डाला गया होता है तो आसवारिष्ट भी २०-२५ दिन में, या १५ से २५ दिन के भीतर ही पूर्णतया तैयार हो जाते हैं। यदि मधुर पदार्थ मात्रा में कम होता है तो उसका निर्माण बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर भी पूर्ण नहीं होता। मधुर पदार्थ अधिक होता है तो आसवारिष्ट अधिक गाढ़े भी हो जाते हैं। भारी भी होते हैं पचने में गुरु होते हैं।

(७) आसवारिष्ट निर्माण होने के पश्चात् उसमें मधुर पदार्थ मिलाया जाय या नहीं?

स्व. स्वामी हरिशरणानन्द का मत है कि आसवारिष्ट की निर्माण प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात्, छानने से पूर्व, चतुर्थांश गुड़ आदि मधुर पदार्थ डालकर उसमें मिला देना चाहिए। जिससे तिक्त रस विशिष्ट द्रव्यों से निर्मित आसवारिष्ट स्वादु बन जाय। उसका स्वाद ही नहीं रंग भी सुन्दर बन जाता है। पुनः मधुर द्रव्य के डालने से उत्सेचन-संधान क्रिया पुनः नहीं होती। अन्यथा प्रायः ग्रीष्म ऋतु में तेज ऊष्मा के कारण बन्द बोतल में उत्सेचन क्रिया उत्पन्न हो जाती है और शीशियों का कार्क उड़ जाता है और आसवारिष्ट बाहर निकल जाता है। अतः मधुर पदार्थ का पुनः मिश्रण हितकर होता है। यह शोध का विषय है, इसका शोध करना चाहिए।

(८) आसवारिष्टों के संधानोपरान्त प्रक्षेप द्रव्यों का मिश्रण करना चाहिए या नहीं? और उन द्रव्यों का चूर्ण कैसा होना चाहिये—

उसका उत्तर अनुभवीजन यह देते हैं कि आसावारिष्ट संधान क्रिया के पश्चात्, प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण, डालने से निम्न लाभ हैं—

(१) संधानित आसवारिष्ट का पुनः अवलोकन हो जाता है जिसमें यह जाना जा सकता है कि उसका निर्माण ठीक-२ हुआ है या नहीं? यदि ठीक-२ नहीं हुआ होगा तो उसे सुधारा जा सकता है।

(२) दूसरा लाभ यह बताया जाता है कि संधान क्रिया के बाद जिन द्रव्यों का चूर्ण डाला जाता है वह अधिक कार्यकारी होते हैं।

प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण कैसा हो इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि जौकुट चूर्ण होना चाहिये। दूसरा मत यह है कि चूर्ण सूक्ष्म होना चाहिए।

उपयुक्त यह है कि सुगन्धहीन द्रव्यों का चूर्ण सूक्ष्म होना चाहिए। सुगन्धित व तेल युक्त द्रव्यों को मोटा ही डालना चाहिए, सूक्ष्म करने में उसका तैलांश बहुत कुछ पहले ही नष्ट हो जाता है साथ ही सुगन्ध भी।

योगों को देखने से पता लगता है कि सुगन्धित द्रव्य भी संधान काल में ही डालदेते थे किन्तु यह पद्धति उपयुक्त नहीं और लाभकारी भी नहीं। अतः आसव अरिष्टों के निर्माण हो चुकने के पश्चात् कपड़े से छान लेने के बाद, पुनः फिल्टर पेपर से छान लेना चाहिए। उसके बाद, उसे बोतलों में भर दिया जाय और तत्पश्चात् सुगन्धित द्रव्य व प्राणिज द्रव्य कस्तूरी अम्बरादि, अलकोहल में हल करके सावधानी से बोतलों में डालकर मिश्रित कर देना चाहिए। बोतलों को मजबूत कार्क (काग) से बन्द कर देना चाहिए उसके बन्द चपड़े से सील करदें। जिससे वह चिरकाल तक सुगन्धित, गुणवान, चिर स्थायी बना रहे।

(३) भस्मों का मिश्रण आसवारिष्टों में किया जाय या नहीं?

कितने ही आसवारिष्टों में भस्म डालने का विधान भी शास्त्रकारों ने लिखा है। उनमें भी स्वर्ण भस्म व पत्र यथा—'सारस्वतारिष्ट। स्वर्ण प्रतनुपत्रं च क्षिप्त्वाऽस्मिन् कर्ष सम्मितम्।' यहाँ स्वर्ण पत्र १ तोला डालने का निर्देश किया गया है। उसके स्थान पर स्वर्णद्रुति या भस्म डालें ऐसा टीका कार लिख देते हैं। किन्तु आज के युग में सम्भव नहीं। फिर भी निर्देशानुसार डालना ही है तो स्वर्ण लवण मिलाना अधिक उपयुक्त है।

स्वर्ण लवण बनाने की विधि (रस तरं०)—

शुद्ध स्वर्ण का चूर्ण रेती से बना लेवें। एक सुदृढ़ कांच के प्याले में उसे रखें। उस पात्र को एक तिपाई पर रखकर उसके नीचे सुरा प्रदीप की मंद मंद अग्नि दें और पात्र में लवण द्राव में चतुर्थांश सौरक द्राव (Nitric Acid) मिश्रित करके थोड़ा थोड़ा करके डालते जांय, इस तरह सोरक द्राव डालने से पात्र का स्वर्ण शीघ्र ही इसमें घुल जाता है। जब स्वर्ण पूर्णरूप से घुल जाय, तब उसमें १० भाग पिसा सैंधा नमक डालें, जलांश सूखने तक अग्नि पर पकाते रहें। देखते-२ नारंगी (लाल पीला) वर्ण स्वर्ण लवण (Gold chloride) प्राप्त होगा। उसे किसी शीशी में रखलें। आवश्यकतानुसार इस स्वर्ण लवण में जल डालकर पाक करना चाहिए। तत्पश्चात् आसवारिष्टों में मिलाना चाहिए। यह सर्वोत्तम रीति है, शीशियों में आसवारिष्ट भरने के पश्चात् इसे मिलाना चाहिए और बाद में सुदृढ़ कार्क लगा देना चाहिए।

किसी-किसी आसव में लोह भस्म के मिश्रण का भी विधान है लोहासव में तो कितने ही वैद्य लौह चूर्ण या लौहका बुरादा ही डाल देते है। इस प्रकार अशुद्ध लौह का प्रयोग लाभ की बजाय हानिकारक होता है। अतः हमारी सम्मति में लौह चूर्ण हो चाहे भस्म उसे पूर्णतया शुद्ध अवश्य कर लेना चाहिए। भस्म को भी त्रिफला जल में ७ दिनों तक पड़ा रहने देने से वह उसके साथ विलय हो जाती है, उस लौह विलय त्रिफला जल से ही आसव बनाना चाहिए या किन्हीं में लौह मिश्रण करना हो तो, इसे ही मिश्रणार्थ डालना चाहिए। इससे वह आसव उत्तम बनेगा और लौह के गुणों से सम्पन्न रहेगा।

(१०) धातकी पुष्प या मधूक पुष्प का आसव में मिश्रण आवश्यक है या नहीं?

विज्ञजनों का मत है कि जिन-जिन आसवारिष्टों में धाय के फूल डालने का विधान है वह तो अवश्य ही डालना चाहिए। जहां इसके डालने का कोई संकेत न हो, वहां इसका कोई महत्वपूर्ण परिणाम नहीं देखा जाता।

धातकी पुष्प क्यों डाला जाता है इस सम्बन्ध में विज्ञजनों का मत है कि—

अ. यह संधान किया में सहायक होता है।

ब. विदाह कार्य को नियामक करता है।

मधूक पुष्प का उपयोग तो कुछ मादकता लाने के लिए लोग करते हैं जो भी ऐसा करता हो। आसवारिष्ट के प्रयोग लेखक शास्त्रकारों ने मधूक पुष्प का उपयोग कहीं भी लिखा हो, यह जानकारी हमें नहीं है। वे तो अपने मत से उसमें रंग रूप एवं मादकता लाने के लिए ही उपयोग करता होगा, यह शास्त्रीय मतानुसार नहीं है।

(११) किण्व का मिश्रण—आसवारिष्ट के निम्नतम भाग में रहने वाले "घन" भाग को "किण्व" या सुराबीज, नवीनमतानुसार "ईस्ट" (yeast) कहते हैं।

प्रायः नवीनतम आसव व अरिष्ट निर्माण के समय इसका उपयोग किया जाता है। जैसे दही जमाने के लिए दही का जामन दूध में दिया जाता है। ठीक उसी प्रकार किण्व का भी उपयोग होता है। १ सेर किण्व या १ बोतल पुराना द्राक्षासव व द्राक्षारिष्ट दो द्रोण-आसवारिष्ट-द्रव में पर्याप्त है। इसके डालने से १५-२० दिनों में ही संधान कार्य पूर्ण हो जाता है।

किण्व के मिलने के बाद आसवारिष्ट द्रव्य में जो प्रक्रिया आरम्भ होती है उसे उत्सेचन व अभिषवण (Fermentation) कहते हैं। यह प्रक्रिया उसी दिन से आरम्भ भी हो जाती है। यदि इसमें ३१ वें दिन के बाद भी वैषम्य ज्ञात हो अथवा यह प्रक्रिया आरम्भ न हो तो, यह निश्चय है कि जो भी मधुर पदार्थ डाला गया है उसके परिमाण में कहीं गड़बड़ी है। या उस स्थान में जहां आसवारिष्ट का पात्र रखा गया है वह स्थान उपयुक्त नहीं है। इसकी परीक्षा निम्न प्रकार करें—

अ. संधान पात्र में सनसनाहट का शब्द होता है या नहीं?

ब. आसवीय द्रव्य का गदला रहना।

स. पात्र में जलती बत्ती ले जाने से उसका बुझजाना यह प्रगट करता है कि आसवारिष्ट में उत्सेचन हो रहा है।

जव आसवारिष्ट तैयार हो जाता है तब—

अ. संधान पात्र में सनसनाहट का शब्द होना बन्द हो जाता है।

ब. पात्र के भीतर जलती बत्ती ले जाने पर बुझती नहीं।

स. आसवारिष्ट का द्रव्य भाग पूर्णतया ऊपर से स्वच्छ हो जाता है। फेन नाम मात्र को भी ऊपर नहीं रहता।

(१२) संधान पात्र का मुख बन्ध का प्रश्न।

प्रश्न यह है कि जिस पात्र में आसवारिष्ट द्रव भरा गया है उस पात्र का मुख बन्द किस तरह से किया जाय जिससे आसवारिष्ट सम्यक्तया ठीक बनें ?

यदि पात्र का मुख बिल्कुल बन्द नहीं किया जायेगा तो रासायनिक परिवर्त्तन के परिणामस्वरूप वायु विशेष पात्र में रुकी नहीं रहेगी अतः आंशिक अवरोध आवश्यक है।

यदि पात्र का मुख बिलकुल बन्द कर दिया जाय तो उत्पन्न विशेष वायु निकल नहीं सकेगी और बाहरी शुद्ध वायु उसमें मिल नहीं सकेगी जो अत्यावश्यक है। चूंकि उत्सेचन उत्पादक कीटाणुओं को भी जीवन यापन के लिए शुद्ध वायु की आवश्यकता होती है, अन्यथा वे शुद्ध वायु के अभाव में मृत हो जाते हैं अतः पात्र के मुख को उत्सेचन क्रिया के आरम्भ में जब तक उत्सेचन क्रिया चलती रहे, मात्र एक वस्त्र से ही आसवारिष्ट द्रव युक्त पात्र का मुख बांधकर रखना चाहिए जिससे नियमित क्रिया होती रहे। उत्सेचन क्रिया समाप्त होने पर शराव (मिट्टी या काष्ठ का वह पात्र जिससे पात्र का मुख ढका जा सके) से ढककर संधि बन्द कर देना चाहिए जिससे वायु विनिमय बिल्कुल रुक जाय। आधुनिकतम प्रक्रिया "एयर टाइट रबर कैंप" से मुख बन्द कर दिया जाता है। जिस पात्र में आसवारिष्ट रखा जाय उसमें एक तिहायी आसवारिष्ट द्रव होना चाहिए ऊपर तक कभी नहीं भरना चाहिए।

(१३) संधानकाल—आसवारिष्ट को कितने समय तक उत्सेचन हेतु रखा जाय ? यह शीतकाल या उष्णकाल पर विशेष निर्भर होता है। अधिक शीत से कीटाणु क्रियाहीन हो जाते हैं परिणामतः निर्माण कार्य विलम्ब से होता है। अतः उस शीत को नियन्त्रित करने का यत्न करना आवश्यक होता है। उचित व्यवस्था करनी पड़ती है। जिससे उसे अधिक शीत से बचाया जाय और नियमित ऊष्मा उसे मिले। इस हेतु तूड़ा भूसी का पात्रके नीचे ऊपर, इरद गिरद लगाया जाता है।

ठीक इसी प्रकार अधिक ऊष्मा के कारण ग्रीष्म ऋतु में ऊष्मा के नियन्त्रित रखने के लिए, छाया, बर्फ की पोटली शीत का प्रबन्ध करना पड़ता है। ग्रीष्मऋतु में उत्सेचन का कार्य शीघ्र आरम्भ होता है। उसमें उतनी अनियमितता नहीं होती।

आसवारिष्ट का उत्सेचन पूर्ण होने पर तत्काल ही उसे फिल्टर पेपर से छानकर स्वच्छ कर लिया जाय। अन्यथा उसमें रहा हुआ अस्वच्छ भाग—गाढ़ा-२, पतले कपड़े से छना आसवारिष्ट जिसमें वह रह ही जाता है, उसके नीचे बैठ जाने पर ही शीशियों में भरना चाहिए। और शीशियों का मुख ऐसा बन्द कर देना चाहिए जिसमें हवा आ जा न सके। या फिल्टर पेपर से छानने के बाद, रबर की नलिका से आसवारिष्ट को बोतलों में भरकर, रबर कैंप से मुख बन्द कर देना चाहिये। जिससे बारम्बार छानने की भी आवश्यकता नहीं रहेगी और वह अत्यन्त स्वच्छ भी रहेगा। कपड़े से छने आसवारिष्ट के पात्र में नीचे तल भाग मे गदला अंश जमा मिलेगा। वह उस आसवारिष्ट को विकृत कर सकता है।

(१४) आसवारिष्ट की सामान्य निर्माण मात्रा-शास्त्रीय सभी आसवारिष्टों में द्रव्यों और द्रव की मात्रा निर्दिष्ट रहती है, उसी परिमाण में प्रायः आसवअ-रिष्ट निर्माण भी किए जाते हैं। जहां ऐसा निर्देश न हो, या निर्देश गलत प्रतीत होता हो है अथवा नवीन निर्माण करना हो उसके लिए नियम इस प्रकार हैं—

अनुक्त मानारिष्टेषु द्रव, द्रोणे तुला गुड़म्।
क्षौद्रं क्षिपेद् गुड़ादर्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम्॥

अर्थात् जहाँ आसवारिष्टों में मान (परिमाण-तोल) न कहा गया हो वहाँ १- द्रोण (१२ सेर १३ छटांक) द्रव (क्वाथ व स्वरस) में गुड़ एक तुला (५ सेर), शहद गुड़ का आधा (२॥ सेर) एवं प्रक्षेप (पीछे डाले जाने वाले द्रव्यों का चूर्ण) गुड़ का दसवां भाग (आधा सेर) डालें।

(१५) सेवन विधि—अधिकांश आसवारिष्ट को प्रातः आमाशय जब बिल्कुल खाली हो तब उसका सेवन नहीं करना चाहिए। जहां खाली पेट सेवन कराने का निर्देश हो, और चिकित्सक की भी आज्ञा हो तो खाली पेट भी दिया जा सकता है। अन्यथा खाली पेट कभी न दें। दिन में दो बार भोजन कर लेने के बाद सेवन किया जाता है। आसवारिष्ट की मात्रा में समान भाग या दूना अथवा ४ गुणा जल मिलाकर सेवन किया जाता है। यह उस आसवारिष्ट की तीक्ष्णता और रोगी के आमाशय व आन्त्र की स्थिति को समझकर निर्णय करना होता है कि मात्रा में जल कितना मिलाना ठीक रहेगा। आसवारिष्ट के नए पुराने का भी अन्तर होता है। पुराना तीक्ष्ण अधिक होता है, उसमें अधिक मिलाना चाहिए। सामान्यतया आसवारिष्ट की पूरी मात्रा–युवकों के लिए १ से २ तोला यानि १० ग्राम से २५ ग्राम तक होती है। फिर बालक वृद्ध निर्बल असहनशक्ति वाले व्यक्ति को मात्रा कम करके देनी चाहिए।

(१५) आसवरिष्ट निर्माण में द्रव्यों के सम्बन्ध में निर्णय—सूखे और गीले यानि ताजा दो प्रकारों के द्रव्यों से आसवारिष्ट का निर्माण करना होता है। जहाँ सूखे द्रव्य हैं उसके अभाव में गीले द्रव्य द्विगुण मात्रा में ग्रहण करना चाहिए। जहाँ ताजा गीले द्रव्य का उल्लेख हो, यदि वह उपलब्ध न हो तो उसके स्थान में सूखा द्रव्य अर्ध मात्रा में लेना चाहिए । यथा—

> शुष्क द्रव्ये तु या मात्रा चार्द्रस्य द्विगुणाहिता।
> शुष्कस्य गुरु तीक्ष्णत्वात् तस्यादर्द्धं प्रकीर्तितम् ॥

यह सामान्य नियम है। इसमें अपवाद भी है यथा—

> वासा निम्ब पटोल केतकि बला कूष्माण्ड केन्दीवरी।
> वर्षाभू कुटजाश्वगंध सहितास्ता पूति गंधामृताः॥
> मांसं नागबला सहचर पुरौ हिङ्ग्वार्द्रके नित्यशः।
> ग्राह्यास्तत्क्षणमेव न हि गुणिता ये चेक्षु जातागणाः।

अर्थात्—अडूसा, नीम, परवल, केतकी, बला, पेठा, शतावर, पुनर्नवा, कुटज, असगन्ध, गन्ध प्रसारणी, गिलोय, मांस, नागबला, कटसरैया, गुग्गुल, हींग, आद्रक और ईख से निर्मित गुड़, खांड आदि ये सभी द्रव्य सर्वदा गीले ग्रहण करें किन्तु इनकी मात्रा सामान्य नियमानुसार द्विगुण ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

ये सभी द्रव्य आर्द्र होने पर भी सूखे द्रव्य के समान ही ग्रहण किए जाते हैं।

कुछ आवश्यक सूचनायें—

१. आसव में अम्ल अधिक हो जाये तो आसव बिगड़ जाता है।

२. आसव खट्टा होने पर शुक्त बन जाता है।

३. आसव का प्रथम संधान उत्सेचन–समाप्त होने के बाद, कुछ समय के बाद यदि दूसरा संधान आरम्भ हो जाय तो वह खट्टा–शुक्त बन जाता है। अतः दूसरा संधान उत्पन्न न हो उसके लिए एयर टाइट शीलबन्द करके रखना चाहिए। और उस आसवारिष्ट में गदला भाग किंचित भी नहीं रहना चाहिए।

४. आसव डालने के ५ दिन के बाद भी उत्सेचन क्रिया आरम्भ न हो, फेन न उठे–तो उष्णता उत्पन्न करने का यत्न करना चाहिए या धूप में रखना चाहिए।

५. आसवीकरण क्रिया समाप्त होने पर, तत्काल ही उसे छानकर दूसरे पात्र में भरकर ढापके रख देना चाहिए, उसमें किंचित भी मैला भाग नहीं रहना चाहिए। अतः धीरे-२ छानना चाहिए।

६. मधुर पदार्थ की अधिकता से आसवारिष्ट अधिक गाढ़े हो जाते हैं, और उसमें उत्सेचन क्रिया भी ठीक-२ नहीं होती। कम होने पर भी ठीक नहीं होती। यदि गुड़ आदि द्रव्य अस्वच्छ व अम्लता युक्त व खराब गंध वाला होगा तो, आसवारिष्ट भी सदोष होगा। मधु भी नकली नहीं डालना चाहिए।

७. आसवारिष्ट बन चुकने पर, तुरन्त बाद छानने से पूर्व या पश्चात् आसव में १/४ या १/५ भाग मीठा मिला दिया जाय तो वह शुक्त होने से बचेगा और उसका स्वाद भी उत्तम हो जायेगा। यदि खट्टा होने के बाद मधुर पदार्थ मिलाया जायेगा तो वह मीठा कभी भी न होकर वह सिरका ही बनता रहेगा।

८. बोतलों में पक्व आसव ही भरना चाहिये। यदि वह अर्द्धपक्व होगा तो उसमें गैस पैदा होकर शीशी की कार्क को फेंक देगा या शीशी को ही तोड़ देगा। कच्ची में फेन अधिक दिखाई देंगे। पक्व होने पर फेन नहीं रहता। पक्व आसव पारदर्शक, स्वच्छ (निर्मल), पतला, हलका और सौम्य होता है।

९. आसवारिष्ट को रवड़ की नली से दूसरे पात्र में भरा जाय तो रवड़ इतना नीचे तक न रखें जहां मैला भाग रहता है। स्वच्छ भाग है वहां तक ही रवड़ की नली रहे। अन्यथा गाद भी वोतल में आ जायेगी।

१०. द्राक्षासव की गाद कीट, किण्व ही आसवारिष्ट वनाने में उपयोगी होती है दूसरे आसवारिष्ट की किण्व उपयोगी नहीं होती। उसे धूप में सुखाकर सुरक्षित रख लेना चाहिए। किण्व कीटाणु (yeast) अतिसूक्ष्म होते हैं, ये वृक्ष की मंजरी ईख के रस विविध पुष्प आदि में भी पाया जाता है।

११. स्वर्ण लवण के मिलाने से, यदि मात्रा में अधिक होगा तो उसके सेवन से मुख में छाले पड़ जाते हैं, आमाशय और आंत्र में भी उग्रता उत्पन्न हो जाती है। क्षुधा का लोप, उदर में पीड़ा, जुकाम, हाथ पैर टूटना, व्याकुलता, पक्षाघात व श्वासावरोध होकर मृत्यु तक होने का भय रहता है। इस लवण का मूत्र द्वारा देह से निकास भी होता रहता है।

१२. लवण रस से भी आसव में प्रक्रिया उचित रूप में नहीं होती।

१३. गुड़ मिलाना हो तो १ से ३ वर्ष पुराना लेना चाहिए, नये में अम्लता अधिक होती है।

१४. आसवारिष्ट—वर्षा ऋतु में कभी भी नहीं वनाना चाहिए। उस समय का जल भी अम्लयुक्त रहता है।

१५. जल भी गरम करके और छानकर मिलावें, जल के दूषित होने से आसवारिष्ट भी दूषित वनते हैं। जिस जल में खारापन हो वह जल भी उपयोगी नहीं होता।

१६. आसवारिष्ट में जो भी द्रव्य कूटकर क्वाथ किये जाते हैं या प्रक्षेप होते है उनको सूक्ष्म करके, उपयोग में नहीं लाना चाहिए। उससे आसवारिष्ट में गाढ़ापन आ जाता है और उत्सेचन क्रिया में भी वाधा उत्पन्न होती है।

१७. धाय के फूल, मुनक्का, पुरानी गली सड़ी न होकर नवीन होनी चाहिए। उन्हें भी धो लेना चाहिए।

१८. जो आसव वहुत गाढ़े, पचने पर दाह करने वाले, दुर्गन्धयुक्त, वेस्वाद, कृमियुक्त, गुरुपाकी, मन को अप्रिय, नये वने हुए, अति तीक्ष्ण, स्पर्श में गरम हों, फैले हों, दूषित हों, कम औषधियां डालकर वनाये गए हों, विगड़ गये हों, खुले मुख के पात्र में रखे रहे हों, अति पतले हों या भारी हों, पात्र के तल भाग में रहा हुआ निश्चित अवशेष भाग उसमें हो, ऐसे आसवारिष्ट को हरगिज सेवन न करें।

१९. उष्ण उपचार के साथ, क्षुधा लगने पर, विरेचन के वाद भी आसवारिष्ट का सेवन नहीं करना चाहिए।

२०. आसवारिष्टों में प्रतिक्रिया अम्ल होती है जिससे रक्त में शोषित होकर तुरन्त अम्लता की वृद्धि करते हैं, अतः रक्त की क्रिया जहाँ क्षारीय हो, उदासीन हो, वहाँ उसकी क्रिया से पूरा-पूरा लाभ मिलता है। जिनके रक्त की प्रतिक्रिया अम्ल हो, अम्लपित्त हो, रक्तपित्त हो, अन्तर्दाह हो, वातनाड़ी पर दवाने पर वेदना होना, वातजशूल, वृक्क या मूत्राशय में अश्मरी होना, वृक्क में मूत्रोत्पत्ति योग्य न होती हो, ऐसे रोग या लक्षणों पीड़ित रोगी को आसवारिष्ट सेवन नहीं कराने चाहिए। या विचार करने के वाद ही सेवन कराना चाहिए। दुराग्रह से हानि हो सकती है।

—श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त वी. आई. एम.
५८/६८, नीलवाली गली, कानपुर

आयु० वृह० डा० महेश्वर प्रसाद उमाशङ्कर

संदर्भ ग्रन्थ—भैषज्य रत्नावली अर्श रोगाधिकार।

अभयायास्तुलामेकां मृद्वीकार्द्ध तुलां तथा।
विडङ्गस्य दशपलं मधूककुसुमस्य च ॥
चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा द्रोणमेवावशेषयेत्।
शीतोभूते रसे तस्मिन पूते गुडतुलां क्षिपेत् ॥
श्वदंष्ट्रा त्रिवृतां धान्यं धातकीमिन्द्रवारुणीम्।
चव्यं मधुरिकां शुण्ठीं दन्ती मोचरसं तथा ॥
पलयुग्ममितं सर्वं पात्रे महति मृण्मये।
क्षिप्त्वा संरुध्य तत्पात्रं मासमात्रं निधापयेत् ॥
ततो जातरसं ज्ञात्वा परिस्राव रसं नयेत्।
बलं कोष्ठञ्च वह्निञ्च वीक्ष्य मात्रा प्रयोजयेत्।
अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं तथाष्टावुदराणि च।
वर्चोमूत्र विबन्धघ्नो वह्नि संदीपयेत् परम् ॥

घटक एवं तोल—

घटक	शास्त्रीय (प्राचीन) तोल	वर्तमान तोल
हरीतकी	५ सेर	५ कि. ग्रा
मुनक्का	२½ सेर	२॥ किलो
वायविडंग	४० तोला	५०० ग्राम
महुए के फूल	४० तोला	५०० ग्राम
जल	४०९६ तोला	५१ कि. १५० ग्राम
गुड़ (क्वाथ के बाद)	५ सेर	५ कि. ग्रा.
प्रक्षेप द्रव्य— गोखरू, सौंफ, सोंठ, निसोत, इन्द्रायणमूल, दन्तीमूल, धाय के फूल, चव्य, धनिया मोचरस	प्रत्येक ८-८ तोला।	प्रत्येक १००-१०० ग्राम

निर्माण विधि—

सर्व प्रथम हरीतकी, मुनक्का, वायविडंग और महुए के फूल इन सबको जौकुट कर जल ४०९६ तोला (५१ किलो ५०० ग्राम) मिलाकर विधिवत् क्वाथ करें। चतुर्थांश द्रव शेष रहने पर उतारकर छान लें। पश्चात् ठंडा होने पर गुड़ ५ सेर (५ किलो) तथा गोखरू, सौंफ, निसोत आदि उपर्युक्त द्रव्य जौकुट चूर्ण कर मिला देवें। इसके बाद सागवान के ढोल, स्टेनलेसस्टील के अमृतवान पात्र में भर मुख मुद्रा करके एक महीना संधान के लिए छोड़ दें। फिर छान लेवें।

मात्रा—१⅛ से २½ तोला (१५ से ३० ग्राम)।

अनुपान—बराबर ताजा जल मिलाकर पिलावें।

प्रयोगविधि—भोजन के बाद दिन और रात में।

गुणावगुण—यह औषधि वातज और रक्तज, अर्श (बवासीर), कोष्ठबद्धता, मूत्रावरोध तथा उदर की व्याधि को नष्ट करता है और अग्नि को प्रदीप्त करता है। यह जल संचय से उत्पन्न उदर रोग एवं मलावरोध में उत्तम कार्य करता है। अर्कक्षार या यवक्षार के साथ इस अरिष्ट का सेवन भोजनोपरान्त तथा प्रातः सायं हरीतकी रसायन का सेवन करने से पित्तोदर, यकृतोदर एवं प्लीहोदर में भी अच्छा लाभ करता है। यह उत्तम सारक, मूत्रल और पाचक है, इसलिए अतिसार, रक्तातिसार एवं प्रवाहिका में यह हानि करता है। दस्त बढ़ा देता है।

पथ्यापथ्य—पथ्य में पुराने गेहूं की रोटी, मूंग की दाल, पुराने साठी चावल, पपीता, परवल की सब्जी, नारंगी, सेब, पका पपीता, मुनक्का आदि सेवनीय है।

अपथ्य—खट्टा, लाल मिर्च, तिक्तपदार्थ, अधिक मीठा, वातवर्धक पदार्थों के सेवन का निषेध है।

घटकों के गुण धर्म विवेचन—

(१) हरीतकी—वानस्पतिक नाम—टर्मिनेलिया चेबुला (Terminalia Chebula)। रस—पञ्च रस किन्तु लवण रस रहित. कषायरस की प्रधानता। गुण—लघु और रूक्ष, वीर्य—उष्ण, विपाक—मधुर, प्रभाव—त्रिदोषहर। पञ्चभौतिक गुण—पृथ्वी, वायु और अग्निभूत द्रव्य की प्रधानता। यह मधुर, तिक्त और कषाय होने से पित्त; कटु, तिक्त एवं कषाय होने से श्लेष्मा और अम्ल, मधुर होने से वात को शांत करती है। त्रिदोषहर होते हुए भी प्रधानतः वात का शमन करती है।

वैज्ञानिक शोध से ज्ञात गुण धर्म, उपयोगिता—

रुग्णालय के अनेक रोगियों पर परीक्षण तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण, पर्यवेक्षण के बाद यह ज्ञात हुआ कि हरीतकी त्रिदोषहर विशेष करके वात शामक गुण होने के कारण नाड़ियों के लिए वल्य और मेध्य है तथा इन्द्रियों की शक्तियों की वृद्धि करती है। कषाय रस प्रधान होने के कारण अर्श में शोणितस्थापन, शोथहर, अर्श के अंकुर को नष्ट करने वाली तथा वेदना स्थापन है। कटु, तिक्त रस के कारण दीपन, पाचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक एवं मृदुरेचन है। यह अन्त्र की पुरःसरण गति को ठीक करके भली प्रकार से मल निःसरण का कार्य करती है तथा यकृत विकार को दूर करती है। अर्श रोग में कब्ज रहना प्रधान लक्षण है। पाखाना खुलासा नहीं होने पर बार-बार जोर लगाकर मलत्याग करना पड़ता है, इससे गुदत्रिवली पर दवाव पड़कर क्षोभ पैदा होता है, फिर शोथ आ जाता है। शोथ के बाद शिराजाल में नीलता की वृद्धि होती है तथा इन सिराओं को मस्से के रूप की उपलब्धि होती है। हरीतकी के इस योग में होने से शौच की शुद्धि होकर यकृत के कार्य की शिथिलता दूर होती है। हृदय, वृक्क एवं प्लीहा के दोष भी दूर होते हैं तथा उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है। यही कारण है कि इस योग में इसका प्रमुख प्रयोजन इसकी महान उपयोगिता के कारण है।

(२) मुनक्का—वान० नाम—वाइटिस विनीफेरा (Vitis Vinifera)। रस-मधुर; गुण-स्निग्ध, गुरु, मृदु; वीर्य-शीत; विपाक—मधुर; प्रभाव-मेध्य, वात पित्तशामक; पाञ्चभौतिक गुण—जल, आकाश और पृथ्वी भूत युक्त।

वैज्ञानिक शोध परिणाम—

यह रक्त प्रसादन, पित्त और वातशामक एवं अनुलोमन कर्म करता है—ऐसा पता चला।

(३) वायविडङ्ग—वानस्पतिक (Botanic) नामः इम्बेलिया रिब्स (Embelia Ribes)। रस-कटु; गुण-लघु, रूक्ष और तीक्ष्ण; वीर्य-उष्ण; विपाक-कटु; प्रभाव- कफ वात शामक, कृमिहर, पञ्चभौतिक गुण- पृथ्वी और अग्निभूत की प्रधानता।

वैज्ञानिक शोध परिणाम—

कृमिनाशक, रसायन तथा क्षयग्रस्त शिशुओं की दुर्बलता नाशक।

(४) महुए के फूल—वा० ना० वैसिया लौटिफौलिया (Bassia Latifolia)। रस-मधुर, कषाय; गुण—गुरु एवं स्निग्ध; वीर्य-शीत; विपाक-मधुर; प्रभाव—नाड़ी बल्य एवं वात पित्तशामक। पञ्चभौतिकगुण—पृथ्वी, जल और आकाश बहुल।

वैज्ञानिक शोध परिणाम—

अनुलोमन एवं नाड़ीवल्य होने के कारण अर्श की कोष्ठबद्धता एवं वेदना को दूर करता है तथा स्तम्भन एवं वातशामक होने के कारण अर्शांकुर तथा उससे रक्तस्राव का विनाशक है।

(५) गोखरू—ट्रिबुलस टिरेस्ट्रिस (Tribulus Terrestris) रस—मधुर; गुण—गुरु, स्निग्ध; वीर्य शीत, विपाक—मधु तथा प्रभाव वेदनास्थापन है। पञ्चभौतिक गुण—पृथ्वी, आकाश बहुल। वैज्ञानिक शोध परिणाम—मूत्रकृच्छ्र, आन्त्र विकारहर है।

(६) सौंफ—फीनिक्यूलम कैपिलीकम् (Foeniculum Capillaecum); रस-मधुर, कटु, तिक्त; गुण-लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण; वीर्य किञ्चित उष्ण; विपाक मधुर तथा प्रभाव रक्त प्रसादन, अनुलोमन एवं रेचन। पञ्चभौतिक गुण—आकाश, पृथ्वी एवं अग्निभूत प्रधान। वैज्ञानिक शोध परिणाम—इस योग में वलवर्धक, दीपन पाचन, अनुलोमन तथा वात कफ का शमन करता है।

(७) सोंठ—जिञ्जिवर ऑफिशिनेल (Zingiber Offi-

cinale) रस--कटु; गुण--लघु, स्निग्ध; वीर्य--उष्ण; विपाक तथा प्रभाव--अर्शोघ्न। पंचभौतिक गुण--अग्नि, वायु एवं आकाश बहुल भूत। वैज्ञानिक शोध परिणाम---कफ वात शामक एवं अर्शनाशक है।

८. निसोत---औपर्क्युलिना टर्पेथम (Opereulina Terpethum); रस कटु, तिक्त, मधुर, कषाय; गुण लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण; वीर्य उष्ण; विपाक कटु; प्रभाव सुख विरेचन तथा कर्म पित्त और कफनाशक तथा वातवर्द्धक है। प्राय: अग्नि, आकाश और पृथ्वी भूत बहुल है। जीर्ण आनाह विबन्ध तथा अर्श में लाभप्रद सिद्ध हुआ है क्योंकि मल के द्वारा दोष इससे बाहर निकल जाते हैं।

९. इन्द्रायणमूल---रूट ऑफ सिट्रयुलस कोलोसिन्थिस (Citrullus Colocynthis), रस तिक्त, गुण--लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, वीर्य उष्ण, विपाक कटु, प्रभाव रक्तशोधक, शोथहर तथा कर्म कफपित्तहर है। आकाश, अग्नि और वायु भूत बहुल हैं। मूल के प्रयोग से रेचन होता है तथा अन्त्र की ग्रन्थियां उत्तेजित होती हैं तथा प्रतिहारिणी सिरा का अवरोध दूर होकर पित्त का स्राव बढ़ता है, जिससे पतले दस्त आते है। यहाँ यह विरेचन कर्म करता है।

१०. दन्तीमूल---रूट आफ बैलिओस्पर्मम मौण्टेनम (Baliospermam Montanum)---रस कटु, गुण गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण, वीर्य उष्ण, विपाक कटु, प्रभाव और कर्म कफ पित्तहर, अर्श, वेदनानाशक। अग्नि एवं आकाश बहुल, शरीरस्थ दोष बाहर निकलते तथा अर्श की वेदना को शांत करता है।

११. धाय के फूल---फ्लावर आफ वुडफोर्डिया फ्रुटिकोसा (Flower of woodfordia fruticosa) रस कषाय, कटु, गुण लघु, रूक्ष, वीर्य शीत, विपाक कटु तथा कर्म व प्रभाव कफ पित्त शामक और संधानीय है। यह पृथ्वी, जल और वायु बहुलभूत है। इस योग में यह रक्तस्तम्भन एवं व्रणरोपण का कार्य करता है।

१२. चव्य---पाइपर चावा (Piper Chawa), रस कटु, गुण लघु, रूक्ष, वीर्य उष्ण, विपाक कटु, कर्म और प्रभाव कफवात शामक तथा पित्तवर्धक एवं अर्शोघ्न है। अग्नि, वायु एवं पृथ्वीभूत बहुल है। इस योग में यह शूल प्रशमन तथा आनाह उदर रोग नाशन का कार्य करता है।

१३. धनिया---कोरिएण्ड्रम सेटाइवम् (Coriandrum Sativum), रस कषाय, तिक्त, मधुर, कटु, गुण लघु, स्निग्ध, वीर्य उष्ण, विपाक मधुर, प्रभाव एवं कर्म हृद्य तथा त्रिदोषहर एवं विशेषकर पित्तशामक होता है। यह वायु और अग्निभूत बहुल होता है। इस योग में यह दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक और रक्तपित्तशामक है।

१४. मोचरस---एक्स्ट्रैक्ट आफ बॉम्बेक्स मलाबेरिकम् (Exrt. of Bombax Malabaricum)---रस कषाय, गुण लघु, स्निग्ध, वीर्य शीत, विपाक कटु, मधुर, प्रभाव व कर्म रक्तस्तम्भन तथा कफ-पित्तशामक, वायु एवं पृथ्वी भूत बहुल। इस योग में यह रक्त स्तम्भन तथा दाह शामक है।

१५. गुड़---एक्स्ट्रैक्ट आफ सैकरम ऑफिसिनेरम (Ext. of Saecharum Officinerum)---रस मधुर, गुण गुरु, स्निग्ध, वीर्य शीत, विपाक मधुर तथा प्रभाव एवं कर्म दौर्बल्यनाशक तथा वात पित्त शामक एवं कफ वर्धक है। पृथ्वी और जल भूत बहुल है। इस योग में यह संधान द्रव संरक्षण एवं बल्य और बृंहण है।

प्रत्यक्ष परीक्षणों के अनुभव के आधार पर मैंने इसमें धाय के फूल और मोचरस की मात्रा दुगुनी बढ़ाकर सुधार किया और रोगियों पर प्रयोग किया तो पर्याप्त लाभ प्राप्त हुआ तथा औषधि अधिक प्रभावशाली बन गया। यह भारत सदृश उष्ण कटिबन्ध वाले देश, (Tropical Country) जहाँ कोष्ठबद्धता प्राय: अधिक रहती है, वैसे तो शीत कटिबन्ध वाले देश अमेरिका में भी लोगों को कोष्ठबद्धता अधिक रहती है तथा जाड़ा की ऋतु अधिक कार्यकर है। रोगी की प्रकृति, शारीरिक शक्ति एवं रोग की दशा (तीव्र या जीर्ण) के अनुसार औषधि की मात्रा न्यूयाधिक की जानी चाहिए।

जब रोगी को अतिसार हो रहे हों, रोगी का शरीर क्षीण व दुर्बल हो तो इसका प्रयोग हानिप्रद है। साथ ही गर्भवती, क्षयरोग से ग्रस्त अधिक ताप वाले ज्वर तथा तीव्र अतिसार से पीड़ित में इसका प्रयोग निषिद्ध है।

उपकुलपति-कला संस्कृति साहित्यायुर्वेद विद्यापीठ।
---आयुर्वेद वृह० डा० महेश्वर प्रसाद 'उमाशंकर'
जी.ए.एम.एस. एम.एस.सी.ए., डी. लिट्. ए.,
महेश्वर विज्ञान भवन, मंगलगढ़ (समस्तीपुर) विहार
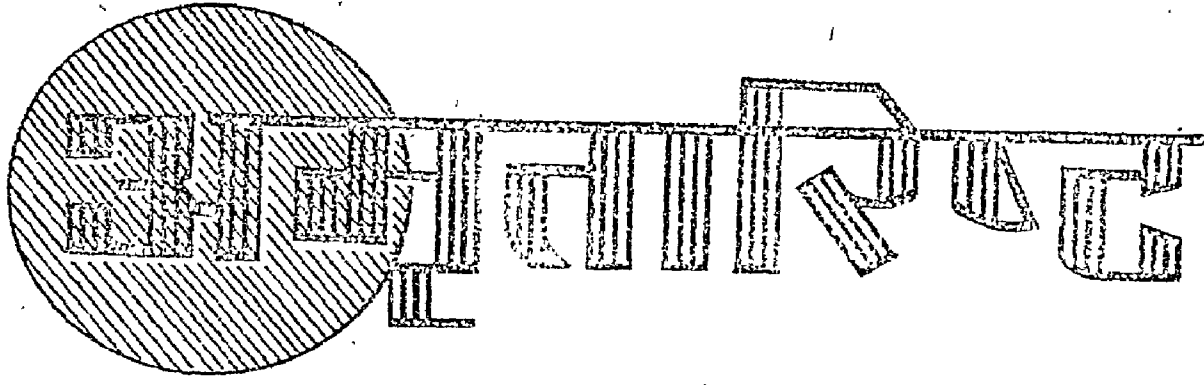
अमृतारिष्ट

आयु० वृह० महेश्वर प्रसाद उमाशंकर आयुर्वेदाचार्य

अमृतायाः पलशतं दशमूल्यास्तथैव च ।
पदावशिष्टं पक्त्वा च चतुर्द्रोणे जले भिषक् ।।
गुडस्य त्रितुलाः सिद्धे क्वाथे शीते क्षिपेत्पुनः ।
अजाज्याः षोडशपलं द्विपलं रक्त पुष्पकम् ।।
सप्तच्छदं तथा व्योषं नागकेशरमब्दकम् ।
कट्वीप्रतिविष वत्सबीजञ्च पलसम्मितम् ।।
सर्वमेकीकृतं भाण्डे निदध्यान्मासमात्रकम् ।
अमृतारिष्ट इत्येष प्रोक्तो ज्वरकुलान्तकृत ।।

संदर्भ ग्रन्थ—भैषज्य रत्नावली ज्वराधिकार ।

घटक एवं तोल—

घटक	शास्त्रीय (प्राचीन) तोल	वर्तमान तोल
गिलोय	१०० पल (१० सेर)	१० कि. ग्रा.
दशमूल	१०० पल (१० सेर)	१० किलो
जल	८ द्रोण (५ मन ४ सेर १२ छटाँक ४ तोला)	२ क्विण्टल
गुड़	३ तुला (३० सेर)	३ किलो
प्रक्षेप—		
कालाजीरा	१६ पल (१२८ तोला)	१ कि.६००ग्रा
पित्तपापड़ा	२ पल (१६ तोला)	२०० ग्राम
सतौने की छाल,	२ पल (१६ तोला)	२०० ग्राम
त्रिकटु (सौंठ, मिर्च पिप्पली), नागकेशर, मोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, अतीस	प्रत्येक १ पल (८ तो.) कल्क बनाकर प्रक्षेप दें।	प्रत्येक १००ग्रा

निर्माण विधि—

सर्व प्रथम गिलोय और दशमूल को एकत्र जौकुटकर क्वाथार्थ जल ८ द्रोण में फूलने दें । चार घण्टा वाद क्वाथ करें और चतुर्थांश अर्थात् २ द्रोण जल शेष बचने पर क्वाथ के ठण्डा होते ही इसमें गुड़ मिलावें । तत्पश्चात् कालाजीरा, पित्तपापड़ा, सतौने की छाल, त्रिकुट, नागकेशर आदि के एकत्र कल्क का प्रक्षेप देकर सागवान के ढोल या स्टेनलेश स्टील के अमृतवान पात्र में भरकर मुख मुद्रा करके एक महीना संधान के लिए छोड़ दें । फिर छान लेवें ।

मात्रा—१। से २।। तोला (१५ से ३० मि. लि.) तक

अनुपान—बराबर जल मिलाकर ।

सेवन विधि—भोजन के बाद दिन और रात में ।

गुणावगुण—यह औषधि ऐसे ज्वर में जब पहले ठण्ड लगकर ज्वर चढ़े- वह जीर्ण हो जाय, प्लीहा वढ़ी हुई हो, तापक्रम प्रतिदिन या कुछ दिन बाद ९९°, १००° या १०१° फॉ० तक हो जाय, यकृत अपना कार्य उचित रूप से न कर रहा हो, कभी मल पतला हो जाय, भूख न लगे, जठराग्नि मन्द पड़ जाय और दाह हो तो यह गुणप्रद होता है । इसके अतिरिक्त जीर्ण ज्वर, जीर्ण विषम ज्वर, पित्त प्रधान ज्वर, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक आदि विषम ज्वर में परम गुणकारी है । कुछ दिनों तक बन्द रहकर पुनः बार-बार वापस आने वाले परिवर्तित ज्वर में इसका सेवन लाभकारी है। प्रमेह, उष्णवात (सुजाक),उपदंश तथा इससे उत्पन्न संधिवात में इसका प्रयोग उत्तम गुणकारी है। जीर्ण आमवात में भी यह परम लाभप्रद है। यह कालाजार उदरशूल, यकृद्दाल्युदर (Cirrhosis of Liver) आदि में कोई सन्तोषजनक लाभ नहीं करता है ।

पथ्यापथ्य—पथ्य में पुराने गेहूँ की रोटी, मूंग की दाल, पुराने साठी चावल, पपीता, परवल, करेला, पालक की सब्जी, नारंगी, सेव, पका पपीता, मुनक्का, गोलमिर्च, नमक, व जीरा चूर्ण भुना हुआ आदि ।

अपथ्य—खट्टी चीजें, लाल मिर्चा, कटु-तिक्त पदार्थ, वातवर्धक पदार्थ, अति मैथुन, दिनमें सोना, अधिक बोलना या चिन्ता करना वर्जित है ।

घटकों के गुण धर्म—

(१) गिलोय (Tinospora Cordifolia)—तिक्त व कषाय रस, गुरु, स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य, मधुर विपाक, रक्तशोधक प्रभाव एवं त्रिदोषशामक कर्म, पृथ्वी, जल और अग्निभूत बहुल। वैज्ञानिक शोध परिणाम—दीपन, पाचन, अनुलोमन, हृद्य, दाह प्रशमन तथा कटु पौष्टिक।

(२) दशमूल (लघु पंचमूल तथा वृहत् पंचमूल)—प्रायः सभी मधुर तिक्त रस, गुरु स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य, मधुर विपाक, स्तम्भन, शोणितास्थापन, त्रिदोष शामक कर्म। पृथ्वी, अग्नि, आकाश बहुल। वै. शो. परि.—अङ्गमर्द प्रशमन, शोथहर।

(३) गुड़ (Ext. of sachharum officinarum)—मधुर रस, गुरु, स्निग्ध गुण, शीत वीर्य, मधुर विपाक और दौर्बल्य नाशक, वात पित्तशामक तथा कफ वर्धक। पृथ्वी और जल भूत बहुल। इस योग में यह संधान, द्रवसंरक्षण, बल्य एवं वृंहण कार्य करता है।

(४) काला जीरा (Nigella Sativa)—कटु, तिक्त रस, लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक तथा कफ, वातशामक पित्तवर्धक, वेदनास्थापन व उत्तेजक है।

(५) पित्तपापड़ा (Tumaria Paruiflora)—तिक्त रस, लघु, शीत वीर्य, कटु विपाक तथा कफ पित्तशामक है।

(६) सतौने की छाल (Bark of Alstonia scholaris)—तिक्त, कषाय रस, लघु, स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक, त्रिदोषघ्न विशेषतया कफवात शामक है।

(७) त्रिकटु (Three bitters)—कटु रस, लघु, तीक्ष्ण गुण, उष्ण, वीर्य कटु विपाक व वात कफशामक है।

(८) नागकेशर—कषाय, तिक्त रस, लघु, रूक्ष गुण, ईषत उष्ण वीर्य, कटु विपाक तथा कफ पित्तशामक है।

(९) मोथा (Cyperus Scariosus)—कटु, तिक्त एवं कषाय रस, लघु, रूक्ष गुण, शीत वीर्य, कटु विपाक तथा कफपित्त शामक है। मेघ्य तथा नाड़ियों के लिए बल्य है।

(१०)कुटकी, (Picrorrhiza Kurroa)—तिक्त रस, रूक्ष, लघु गुण, शीत वीर्य, कटु विपाक, कफपित्त शामक है।

(११) इन्द्रजौ (Seeds of Holerrhena Antidysenterica)—कषाय, तिक्त रस, लघु, रूक्ष, शीत वीर्य, कटु विपाक तथा कफ पित्तशामक है।

(१२) अतीस (Aconitum Hetrophylum)—तिक्त, कटु रस, लघु, रूक्ष गुण, उष्ण वीर्य, कटु विपाक तथा त्रिदोषहर विशेषकर कफ पित्त शामक है।

यह शीत ज्वर (विषम ज्वर), जीर्ण ज्वर, जठराग्नि की मन्दता आदि में परम लाभप्रद है। यह उष्ण और शीत दोनों प्रकार के कटिबन्ध देशोंके लोगों के लिए लाभप्रद है।

रोगी की शारीरिक शक्ति, प्रकृति, रोग की तीव्रता या जीर्णता के अनुसार औषधि की मात्रा न्यूनाधिक करनी चाहिए। इसका नये रोग में निरन्तर एक सप्ताह तक तथा पुराने रोग में १-२ मास तक सेवन कराने से पर्याप्त लाभ मिलता है। गर्मी के दिनों में इस के सेवनकाल में थोड़ी जलन एवं लहर समस्त शरीर में महसूस होती है जिसके निराकरण के लिए कागजी नीबू का रस गर्म जल में मिलाकर ४-४ घण्टे या ६-६ घण्टे पर पिलानी चाहिए।

यदि ज्वर के साथ तीव्र शिरःशूल हो तो गोदन्ती हरताल भस्म १ भाग, फिटकरी भस्म १ भाग तथा अरिष्टकसत्व आधा भाग एकत्र मिलाकर दो रत्ती की मात्रा में ईषत् उष्ण जल से सेवन कराने से शांति मिलती है। यदि कब्ज हो तो पंचसकार चूर्ण १ से ३ माशा उष्ण जल से खिलावें। यह यकृत को परम शक्तिशाली बनाता है तथा उसकी क्रिया को सुधार कर पित्त को उत्तम रीति से स्रावित कराता है। यही कारण है कि पित्तजशूल, अजीर्ण आदि में भी उत्तम लाभ दिखलाता है।

त्वचा के रोगों, छोटी-छोटी फुन्सियों, खुजली आदि में इसको लाभप्रद देखा गया है। यह त्वचागत विकारों को नष्ट कर पूय का निर्हरण करती है।

प्रसव के पश्चात् सूतिका ज्वर में रक्त में विषैलेपन को दूर करने के लिए यह परम गुणकारी है। प्रसूत रोग में उष्ण अतिसार होने पर अमृतारिष्ट परम गुणकारी है।

इस औषधि में अमृता (गिलोय) रहने के कारण यह प्रमेह पर भी अच्छा लाभ करता है। इससे मूत्र में जलन कड़क, बार-बार मूत्रोत्सर्ग होना, सुजाक के पुराने विकार, उपदंश, आमवात आदि लक्षण दूर होते हैं। संधिवात और गठिया की भी यह परम लाभप्रद औषधि है।

—आयुर्वेद वृहस्पति डॉ० महेश्वर प्रसाद 'उमाशंकर'
जी.ए.एम.एस.(आनर्स), एम.एस.सी.ए., डी.लिट्.ए.,
महेश्वर विज्ञान भवन, मंगलगढ़ (समस्तीपुर) बिहार

लेखक—वैद्य श्री मौहरसिंह आर्य

सन्दर्भ ग्रन्थ—भैषज्य रत्नावली। अधिकार–ज्वर।

घटक	तोल	विशिष्ट गुण
१. गुडूची	१० किग्रा०	१. रस–तिक्त, कषाय। वीर्य–उष्ण। विपाक–मधुर। दोषशमन–त्रिदोष। गुण–गुरु, ग्राही, दीपनीय, रसायन, रक्तशोधक, विबन्धहर, दाहशामक, वयःस्थापन।
२. दशमूल	१० ,,	२. रस–तिक्त, कषाय, कटु। वीर्य, उष्ण। विपाक–मधुर। दोषशमन–त्रिदोष, गुण–रसायन, बृंहण, बल्य, पाचन, अग्निदीपन।
३. काला-जीरा	१६०० ग्राम	३. रस–कटु। वीर्य–उष्ण। विपाक–मधुर। दोषशमन–वात, कफ। गुण–रोचन, दीपन, ग्राही, चक्षुष्य।
४. पित्तपापड़ा	२०० ,,	४. रस–तिक्त। वीर्य–शीत। विपाक–शीत। दोषशमन–पित्त। गुण–संग्राही, लघु।
५. सप्तपर्ण	१०० ,,	५. रस–तिक्त कषाय। वीर्य–उष्ण। विपाक–मधुर। दोषशमन–त्रिदोष। गुण–सारक, दीपन, हृद्य।
६. शुण्ठी	१०० ,,	६. रस–कटु। वीर्य–उष्ण। विपाक–मधुर। दोषशमन–वात कफ। गुण–स्निग्ध, लघु, दीपन, रोचन, हृद्य।
७. मरिच	१०० ,,	७ रस–कटु। वीर्य–उष्ण। विपाक–मधुर। दोषशमन–कफ वात। गुण-तीक्ष्ण, लघु, अवृष्य, रोचन, छेदन, शोषण, दीपन।
८. पिप्पली	१०० ,,	८. रस–कटु। वीर्य–अनुष्णशीत। विपाक–मधुर। दोषशमन–कफ वात। गुण–लघु, दीपन, पाचन, वृष्य, रसायन।
९. नागकेशर	१०० ,,	९. रस–तिक्त, कषाय। वीर्य–किञ्चितोष्ण।विपाक–मधुर दोषशमन-कफवात गुण–लघु, रूक्ष, ग्राही, आमपाचन।
१०. मुस्तक	१०० ,,	१०. रस–तिक्त, कषाय, कटु। वीर्य–शीत। दोषशमन-पित्त। गुण–ग्राही, दीपन पाचन, स्वेदजनन।
११. कटुकी	१०० ,,	११. रस–तिक्त। वीर्य–शीत। विपाक–कटु। दोषशमन–कफ पित्त। गुण–रूक्ष, लघु, लेखन, भेदन, दीपन, हृद्यः।
१२. अतीस	१०० ,,	१२. रस–तिक्त। वीर्य–उष्ण। विपाक–लघु। दोषशमन–सर्व दोष। गुण–लघु, पाचन, दीपन, संग्राहक, आमपाचन।
१३. इन्द्रयव	१०० ,,	१३. रस–कटु। वीर्य–शीत। विपाक–मधुर। त्रिदोषशामक। गुण–संग्राही।
१४. धाय पुष्प	७५० ,,	१४. रस–कटु, कषाय। वीर्य–शीत। विपाक–मधुर। दोष शमन–त्रिदोष। गुण–संधानीय, संग्राहक।
१५. गुड़	३० किग्रा०	१५. रस–मधुर। वीर्य–शीत। विपाक–मधुर। दोषशमन–पित्त वात। गुण–स्निग्ध, मूत्रल, रक्तशोधक।
१६. जल	१०० लीटर	१६. ....

निर्माण विधि—गुडूची तथा दशमूल को यवकुट कर स्विन्न कर क्वाथ निर्माण करें। क्वाथ चतुर्थांशावशेष रहते उतार, छान लें और शीतल होने पर गुड़ घोल कर संधान पात्र में डाल दें। प्रक्षेप द्रव्यों का कल्क बना इसमें मिलादें। संधान समाप्ति पर छानकर रखें।

परीक्षा—सुगन्धित, हल्के रक्ताभ पीले रंग का, अल्प तिक्त मधुर, रस का घनत्व १.१५ होता है। मधुरांश ४५ प्रतिशत होता है। इसमें १०-१५% अल्कोहल मिलेगा।

रस—तिक्त कषाय। वीर्य-उष्ण। विपाक-मधुर। दोषशमन-त्रिदोष।

गुण—त्रिदोषघ्न, संतापहर, दीपन, पाचन, बल्य तथा वृष्य है।

उपयोग—"ज्वरकुलान्तकृत" यह सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है।

विशिष्ट अनुभव—यह हर प्रकार के जीर्ण ज्वर एवं विकृत विषम ज्वर के लिए अत्यन्त लाभप्रद है।

मलेरिया का निवारण—

प्राय: मलेरिया में कोष्ठबद्धता होती है। अत: सर्वप्रथम कोष्ठबद्धता को दूर करने के लिए रात्रि में शुद्ध एरण्ड तैल ३० मिलि०, गोदुग्ध २५० मिलि० में मिलाकर देवें अथवा अश्वकंचुकीरस शर्बत मिश्री के साथ दें अथवा यष्ट्यादि चूर्ण गर्म दूध के साथ या पंचसकार चूर्ण (शुण्ठि, सौंफ, सनाय, शिवा, सैंधव समभाग) ३ से ६ ग्राम तक गर्म पानी के साथ सायं काल देने से प्रात: काल साफ शौच होगा। तत्पश्चात् सुदर्शन घन वटिका २ नग, अमृतारिष्ट २० मिलि०, सुदर्शन अर्क ३० मिलि.। वटिका मुख में ले ऊपर से अमृतारिष्ट मे सुदर्शन अर्क मिला पीलें। यह प्रथम मात्रा प्रात:काल निराहार खाली पेट ले। दूसरी मात्रा तीन घण्टे के पश्चात् और तीसरी मात्रा ३ घण्टे के पश्चात् लें।

लाभ—ज्वर जाड़ा लगकर अथवा सन्ताप उत्पन्न कर आता हो, ज्वर वेग मृदु अथवा तीक्ष्ण हो, शिर, कटि अथवा अङ्गों में पीड़ा विशेष हो, प्लीहा बढ़ गई हो, यकृत् का कार्य बिगड़ गया हो हर समय हल्का-हल्का ज्वर रहता हो, ऐसी स्थिति में यह विधि अमृततुल्य लाभप्रद है।

मलेरिया का वेग रोकने के लिए इस योग को ज्वर वेग से ३ घण्टे पूर्व १-१ घण्टे के अन्तर से उक्त विधि से देने से पहले ही दिन वेग रुक जाता है। कुछ दिन सेवन कराने से हर प्रकार का मलेरिया शीघ्र दूर हो जाता है। मलेरिया के दिनों में अमृतारिष्ट २० मिलि०, सुदर्शन अर्क ३० मिलि० मिलाकर सप्ताह में २ बार प्रात: काल खाली पेट लेते रहने से मलेरिया से सुरक्षित रहा जा सकता है।

जीर्ण मलेरिया से आक्रान्त रोगी के यकृत प्लीहा बढ़ जाते हैं, क्षुधा नष्ट हो जाती है, रक्ताल्पता, चेहरा पीला पड़ जाता है, ऐसी स्थिति में अमृतारिष्ट को सुदर्शन अर्क के साथ प्रात:काल खाली पेट प्रतिदिन देने से रोगी शीघ्र स्वस्थ हो जाता है।

दाह पूर्वक चढ़ने वाले मलेरिया में अमृतारिष्ट के साथ त्रिभुवन कीर्तिरस दें, दाह दूर होकर लाभ होता है। हमारा अनुभव है—भोजन से पूर्व दिया गया अमृतारिष्ट (या कोई भी आसव अरिष्ट) सूचीवेध से भी उत्तम कार्य करता है। सब प्रकार के ज्वरों में १५ मिलि.अमृतारिष्ट में सुदर्शन अर्क २० मिलि० मिला कर ऐसी एक मात्रा भोजन से पूर्व तथा दूसरी मात्रा तुरन्त भोजनोपरान्त लें।

चिकित्सानुभव—

१. नामरूप—अनन्तानन्द स्वामी, आयु—६५ वर्ष

दिनांक २-७-१९७६ को लगभग १ बजे दाह उत्पन्न होकर ज्वर हो गया। दो घण्टे तक तीव्र दाह रहा फिर दाह शान्त होकर जाड़ा लगना अनुभव हुआ। दिनांक ३-७-१९७६ को कोई कष्ट नहीं हुआ, न दाह हुआ, न जाड़ा लगा। दिनांक ४-७-१९७६ को १ बजे जाड़ा लगकर ज्वर हो गया। रोग निवारणार्थ दिनांक ५-७-१९७६ से अमृतारिष्ट+सुदर्शन अर्क तथा सुदर्शन घन वटिका दिया गया। १५ दिन में तीन बार औषधि दी गई। आज तक स्वामी जी को ज्वर नहीं आया है।

२. नामरूप—सुलतानसिंह, आयु—५५ वर्ष।

सुलतानसिंह ने बताया मुझे मलेरिया ज्वर के तीन वेग आ चुके हैं। पहले दिन ज्वर कुछ हल्का रहा, तृतीय दिन ज्वर इतना तीव्र था कि मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता था, उदर में पीड़ा थी शिर:शूल से मस्तिष्क फट रहा था। इसी प्रकार तीसरा वेग भी काल के समान था। आज स्वस्थ हूं कल पता नहीं क्या होगा? उक्त उपचार किया गया। २५ दिन औषधि दी गई। आज तक रोगी स्वस्थ है।

—शेषांश पृष्ठ ७६ पर देखें।

ज्वर हन्ता—अमृतारिष्ट

श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र आयुर्वेदाचार्य

अरिष्ट सभी कल्क द्रव्य को १६ गुणा जल में क्वाथ करने के बाद चतुर्थांश क्वाथ द्रव्य में गुड़ (शक्कर) घोलकर प्रक्षेप द्रव्य दे भाण्ड का मुख बन्द कर संधान होने पर अरिष्ट संज्ञा है। यथा—

अरिष्टय क्वाथ सिद्धिस्यात्तयोमीनम् पलोन्मितम् एवं यद पक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धयं मद्य स आसवः (शा. ६)

और भी—**द्रव्येषु चिर कालस्थं द्रव्य यत्संधितं भवेत आसवारिष्ट भेदेषु प्रोच्यते भेषजो चित्तम्** ··· ····

समस्त विषम ज्वर (मलेरिया) पर चकाचौंध करने वाला स्वानुभूत अमृतारिष्ट। यह अक्सर देखा गया है कि कुनीन या ज्वर रोधक तीव्र आशुफलप्रद एलोपैथिक दवा प्रयोग से भी जो पुराना मलेरिया ज्वर न रुकता हो रोज आ ही जाता है उस अवस्था में गोदन्ती भस्म के साथ-साथ अमृतारिष्ट के प्रयोग से सभी प्रकार के मलेरिया या इससे उत्पन्न ज्वर कुछ काल सेवन से अवश्य ही नष्ट होते हैं। यह प्रयोग मैं अपने दातव्य सेवा केन्द्र में बराबर करता हूं। मलेरिया ज्वर में प्रतिरोधक दवा से ज्वर रुक भी जाय तो पुनः ज्वर न हो अतः अमृतारिष्ट का सेवन उत्तम होगा। या कहिये (अमृतारिष्ट इत्येकः सर्व ज्वर कुलान्तकः) अमृतारिष्ट प्रायः मलेरिया सर्व ज्वर के कुलान्तक है।

क्वाथ द्रव्य—गुरेच (गिलोय) १०० पल, दशमूल की दशौषधि १०० पल।

प्रक्षेप द्रव्य—स्याह जीरा १६ पल पित्तपापड़ा २ पल, सप्तपर्ण (सतवन) ४ पल, त्रिकुटा, सौंठ, पीपल, गोल मरिच ४ पल, मोथा, कुटकी, अतीस, इन्द्रजो ३ पल, धाय के फूल १० पल।

निर्माण विधि—प्रथम क्वाथ द्रव्य गुरचि दशमूल दोनों को कूट चूर्ण कर १६ गुने जल में औटाकर क्वाथ (काढ़ा) करें। जब चौथाई जल (क्वाथ) रहे तो उतार लें और १५ किलो क्वाथ जल के अनुपात से ५ किलो गुड़ शक्कर चीनी डालें और भाण्ड (घड़ा) का मुख बन्द कर १ माह तक पृथ्वी में गाढ़ दें। घड़ा (पात्र) इस तरह गाढ़ें कि मुख ऊपर हो और सूर्य की रोशनी हवा लगती हो। अरिष्ट निर्माण में बहुत सावधानी रखनी चाहिए नहीं तो अरिष्ट बिगड़ जायेगा। शीघ्र खट्टा शुक्त(सरका)हो जायेगा। खट्टा अरिष्ट त्याज्य है। ऐसे अरिष्ट का सेवन निषेध है। अतः गुड़ मात्रा में न्यून न हो, गुड़ की मात्रा न्यूनता के कारण ही अरिष्ट खट्टा होता है। अरिष्ट को लाल होने के लिए लोग प्रायः बबूल की छाल कूट के क्वाथ में देते हैं। यह गुण विशिष्ट भी होता है। अरिष्ट को साफ करने के लिए निर्मली बीज के चूर्ण का घोल देने से अरिष्ट साफ होता है। अरिष्ट का भाण्ड (पात्र) प्रायः चिकना साफ होना चाहिए। लिखा है घृत का भांड या घृत लगा हुआ भांड श्रेष्ठ है। आधुनिक रसायनशालाओं में बड़े-बड़े टंकी काष्ठ या सीमेंट संगमरमर पत्थर का लगा होता है।

प्रभाव—अमृतारिष्ट का पाठ भैषज्य रत्नावली में है। अमृतारिष्ट का प्रभाव सीधे सभी प्रकार के विषम ज्वरों पर पड़ता है। सर्व ज्वर के कुल को नष्ट करने वाला है।

गुण विवेचन—इसमें प्रधान घट गुडूची है जिसे अमृता कहा जाता है 'यथानामः स्तथागुणः' अर्थात् ज्वर हरण करने वाला। इससे वायु पित्त कफजन्य ज्वर एवं कृमि नष्ट होते हैं। विषम ज्वर प्रायः पित्त कफ के दोष से उत्पन्न होता है यथा(कास द्रष्टं यद्यदा पित्त) पित्त शामक ज्वर हन्ता है। दूसरा प्रधान घटक दशमूल है जो वायु पित्त कफ तीनों त्रिदोषों को शमन कर ज्वर हन्ता है एवं वायु दोष को नष्ट करता है। दशमूल मे शालपर्णी है। उसके गुण में (पित्त श्लेष्म सन्निपात ज्वरापहम्) पृश्न पर्णी भी (हन्तिदाह ज्वरापहम्)कण्टकारी भी(श्वासज्वर कफो निलान) सप्तपर्ण (सतवन) अग्निदीपक वायु नाशक सारक कफ नाशक यकृत् प्लीहा की विकृति को ठीक करता है। सभी घटक ज्वर जन्य कृमि एवं तज्जन्य दोष नाशक हैं-विशेषतः वंग द्रव्यगुण दर्पण में छतवन की छाल में कुनीन की तरह मलेरियाजन्य सर्व ज्वरनाशक शक्ति विद्यमान है। जीरा दशमूल योगवाही के कारण प्रसूत ज्वर में भी गुणदायी है।

—वैद्यरत्न श्री द्वारिका मिश्र आयुर्वेदाचार्य
संगठन मन्त्री—विहार प्रदेश वैद्य सम्मेलन
पो० ओड़ो (नवादा) विहार

अरविन्दासव

आयुर्वेद महामहोपाध्याय प्रणाचार्य श्री पं० हरनाथ त्रिपाठी वैद्य शास्त्री, आयु०

ग्रन्थ—भैषज्य रत्नावली।

घटक—१. कमल पुष्प व बीज-गुणधर्म—शीतल, पित्तनाशक, दाहनाशक, रक्त दोषहर, बलप्रद, ज्वरघ्न, अतिसारघ्न, मस्तिष्क बलप्रद।

२. खस—गुणधर्म-कफ पित्त नाशक, दीपन, पाचन, स्तम्भन, मस्तिष्क, हृदय और नाड़ी संस्थान को शामक, त्वचा दोषहर, श्वास, कास, हिक्का, रक्तपित्त, अतिसार, मूर्च्छा, ज्वर, शोषनाशक।

३. गम्भारी की छाल व फल (Gmelina Arbonea)-त्रिदोषनाशक, दीपन, अनुमोलक, स्तन्यजनन, दाहनाशक, वेदना स्थापक, तृषा, ज्वर, भ्रम, मूर्च्छा, मस्तिष्क वात-विकार नाशक, विषघ्न, रसायन, शोथहर, विबंधनाशक, अग्निवर्द्धक, कृमि, अर्श, मूत्र सम्बन्धी विकारनाशक, बाल शोष में विशेष हितकर।

४. नील कमल—शीतल, पित्तनाशक, रुचिकारक, रसायन, बलवर्द्धक।

५. मंजीठ—(Rubia Cordifolia Linn) ज्वर, कामला, पक्षाघात, शूल, कर्णरोग, कुष्ठ, बवासीर, कृमि, रक्तातिसार, विसर्प रोग नाशक है। वेदना शामक है। शोथहर, चर्मरोग नाशक। इसकी प्रधान क्रिया मस्तिष्क और मज्जा तन्तुओं पर है। इससे त्वचा की रक्ताभिसरण क्रिया बढ़कर विनिमय क्रिया के द्वारा रक्त शुद्धि होती है।

६. छोटी इलायची—शीतवीर्य, रुचिकारक, हृद्य, दीपन, पाचन, मूत्रकृच्छ्र, श्वास, कास, क्षय, मन्दाग्नि, तृषा, शूल, कोष्ठबद्धता, अर्श, अश्मरी, विषविकार में हितकर तथा कफ पित्त नाशक है।

७. खरैटी की जड़ व बीज—वात पित्त नाशक, अनुलोमक, हृद्य, मूत्रल, बल्य, बृंहण, ओजवर्द्धक, शोथहर, पक्षाघात, अर्दित आदि वात रोगनाशक, कृशताहर, ज्वर नाशक है।

८. जटामांसी (Nardostachys Jatamansi)—इसे बालछड़ भी कहते हैं। यह शीतवीर्य, मानस दोषहर, त्रिदोषहर, विशेषकर कफ पित्त शामक, दीपन, पाचन, वातानुलोमक, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, शूलशामक, हृदयोत्तेजक, हृद्य, रक्त स्तम्भन, शोथहर, कफ, मूत्रल, स्वेदन, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, दाहशमन, वेदना स्थापक, संज्ञास्थापक, आक्षेपक व्याधियों व मस्तिष्क विकार में हितकर है।

९. नागरमोथा—शीतवीर्य, कफ पित्त नाशक, दीपन, पाचन, अनुलोमक, तृषा निवारक, ग्राही, हृद्य, बल्य, मूत्रल, त्वग्दोषहर, कृमिहर, विषघ्न, ज्वरहर है।

१०. अनन्तमूल (Tylophora Asthmatica)—वामक, स्वेदल, श्लेष्म निस्सारक, अतिसार, प्रवाहिका, कुकरखांसी में उपयोगी है।

११. बड़ी हरड़ (Terminalia Chebula)—रूक्ष, उष्णवीर्य, अग्नि दीपन, मेधाजनक, आयुवर्द्धक, बल्य, वायु अनुलोमक, रेचक, श्वास, कास, बवासीर, शोथ, उदररोग, कृमिरोग, स्वरभंग, विबंध, गुल्म, आध्मान, तृषा, हिचकी, कण्डु, कामला, शूल, आनाह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात में हितकर, योगवाही, रसायन है।

१२. बहेड़ा (Terminalia Belerica Roxb)—त्रिदोषहर, विशेषकर कफ पित्त नाशक है। दीपन, अनुलोमक, रक्त स्तम्भन, वेदना स्थापन, कफघ्न, अग्निमांद्य, श्वास, स्वर भेद, सामान्य दौर्बल्यता और रक्त दोषहर है। कास तथा प्रतिश्याय में हितकर है।

१३. आमला—पित्त शामक, शीतल, रसायन, सर्व रोगहर, ज्वर व्याधि नाशक, दस्तावर, विष ज्वर, कफ, श्रम, विबंध, कुष्ठादि रक्त विकार नाशक है।

१४. कचूर—रोचक, हृद्य, मुख को स्वच्छ करने वाला, कफ, वात, प्लीहा, गुल्म, अर्श, कुष्ठ, श्वास, कृमि, हिक्का, वात ज्वर, अजीर्ण, अपस्मार, मुख की जड़ता, व्रण, गलगण्ड, कण्ठमालाहर है।

१५. काली निसोत (र. तं. सार)—श्यामा से श्यामलता टीकाकार लिखते हैं, यह क्या वस्तु है हमारी जानकारी में नहीं। 'सिद्ध योग संग्रह' कार ने काली सारिवा लेने को लिखा है। हमारी सम्मति से श्यामा एक घास होती है। जिसके गुण मधुर, स्निग्ध, कषैली, हलकी, शीतल, वातज, कफ पित्त नाशक, मलरोधक और विष दोष नाशक है जो जल के किनारे होती है, विशेषकर वर्षा ऋतु में पैदा होती है। देखो (वनौषधि विशेषांक भाग ६ पृष्ठ ३२)

१६. नीलीमूल (Indigofera Pausifolia)—दीपन, पाचन, कीटाणु नाशक, वमन, प्रवाहिका, संग्रहणी, कास, श्वास, वातरक्त, आमवात, यकृत विकार, प्लीहा वृद्धिहर है।

१७. पटोलपत्र (Trichosanthes Dioica) (परवल के पत्ते)—ज्वरनाशक, रोचक, दीपन, पाचन, तृषाहर, पित्तसारक, रेचन, रक्तशोधक, वल्य और त्रिदोष शामक हैं।

१८. पित्त पापड़ा (Fumia Parviflora)—पित्त नाशक, वातवर्द्धक, रूक्ष, ग्राही, तृषाशामक, कटु पौष्टिक, कृमिघ्न, यकृदुत्तेजक, रक्तशोधक, मूत्रल, ज्वरघ्न है।

१९. अर्जुनछाल (Terminalia Arjuna)—हृद्बलप्रद, रक्तस्तम्भक, व्रणशोधक, श्रम, तृषा निवारक, कान्तिजनक, वल्य, क्षय, रक्तविकार, मेद वृद्धिहर, भस्मक, दाह और कफ पित्तनाशक है।

२०. महुआ के फूल—मधुर, शीतल, भारी, पुष्टिकर, वल्य, वीर्य वर्द्धक और वात पित्त नाशक हैं।

२१. मुलेठी (Glycyrrhiza Glabra)—शीतवीर्य, त्रिदोष नाशक विशेषकर पित्तनाशक, रुचिकर, शोष, तृषा और व्रण को दूर करती है। विषनाशक, वमन, तृषा, ग्लानि और क्षयहर है। शुष्क कास में हितकर है।

२२. मुरा (मुरामांसी) अभाव में जटामांसी (र. त. सार) या जदवार लेवें।

उक्त प्रत्येक द्रव्य ४ तोला या ५० ग्राम लें।

द्राक्षा (उत्तम मुनक्का) ८०० तोला या १ किलो, धाय के फूल ६४ तोला या ८०० ग्राम, शुद्ध जल ३२ सेर या ३२ किलो, खांड देशी ५ सेर या ५ किलो, मधु २॥ सेर या २॥ किलो।

निर्माण विधि—प्रथम बताये २२ द्रव्यों का चूर्ण करलें। मुनक्का धोकर साफ करलें। धाय फूलों को भी चूर्ण बनालें। फिर इन सबको चिकने घट में या चीनी के शुद्ध भाण्ड में डालकर ढक्कन बन्द कर एकान्त में जहाँ शीलन न हो, उचित ऊष्मा हो रख दें। यह आसव ग्रीष्म ऋतु में २० दिन से २५ दिन में, शरद ऋतु में ३० दिन में तैयार हो जाता है।

मात्रा—छोटे बच्चों के लिए २ मासे से ६ मासे तक, जल मिलाकर बड़े बच्चे को १ तोला तक पूरी आयु व जवान को २ तोला तक दिया जा सकता है। दिन में २ व ३ बार। कुछ खाने पीने के बाद।

गुण—छोटे बच्चों के लिए यह अरविन्दासव अमृत तुल्य गुणकारी है। शक्ति देता, दीपन--पाचन होने से भूख बढ़ाता है और शरीर पुष्ट करता है। यकृत के विकारों को नष्ट कर उसे शक्तिप्रद बनाता है। रक्तवर्द्धक भी है। क्षय, शोष नाशक है इसी कारण बालक को रोगों से रहित रखता हुआ उसे दीर्घ जीवी बनाता है। रोगमुक्त रखताहै।

यह उन बालकों पर प्रयोग करके देखा गया जिन बच्चों का यकृत प्लीहा दोनों बढ़कर एक में मिल गये और सख्त हो गए। उसके बचने की कोई आशा नहीं थी, ऐसी अवस्था में इसने आश्चर्यजनक लाभ दिखाया।

बच्चों के सूखा रोग में अतीव लाभप्रद है। जिन बच्चों को दस्त लग-लगकर शोष हो जाता है उसके लिए भी यह अमृतवत कार्यकारी है।

छोटे बच्चों को होने वाले अस्थिवक्रता (Richet) रोग पर इसका अच्छा प्रभाव है। इस विकार में जीवनीय द्रव्यों की कमी होती है, फिर धातु पोषण सम्यक् नहीं होता। इस हेतु से अन्तर अवयवों को भी योग्य पोषण नहीं मिलता, उनका व्यापार ठीक नहीं होता। खाँसी, अपचन, पतले दस्त, अफरा, दिनभर रोते ही रहना आदि लक्षण होते हैं। इस पर यह अरविन्दासव जीवनीय द्रव्य की पूर्तिकर बल बढ़ाने का कार्य करता है।

स्त्रियों के प्रदर, रक्तप्रदर तथा पुरुषों के सुजाक रोग में भी लाभप्रद है।

—आयु. महामहोपाध्याय प्राणाचार्य पं० हरनाथ त्रिपाठी
वैद्य शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य
२६/७६ कराची, खाना कानपुर

अरविन्दासव

यह योग भैषज्य रत्नावली से उद्धरित किया गया है।

योग—कमलपुष्प (श्वेत अथवा लाल), खस, गम्भारी फल (अथवा छाल), नीलोफर, मंजिष्ठा, छोटी इलायची, खरैटी, जटामांसी, नागर मोथा, अनन्त मूल, हरड़, वहेड़ा, आँवला, वच, कचूर, सारिवाकाली, शरपुँखा, परवल पत्र, पित्तापापडा, अर्जुनत्वक, मुलहठी, महुवा, मुरामाँसी, प्रत्येक ५०-५० ग्राम। मुनक्का १ किलो, धात्री पुष्प ६५० ग्राम, शक्कर ५ किलो, मधु २॥ किलो, जल २६ किलो।

सब कूटने वाली औषधियों को कूटकर वस्त्रपूत कर लें। मुनक्का को साफ कर बीज निकाल लें। फिर सभी को एक पात्र में डालकर मुख बन्द कर सन्धान करें। १ मास पश्चात् छान कर बोतलों में भर लें।

मात्रा—१ से ४ मास के बच्चे को १० बूंद, ३ से १२ मास के बच्चे को १ तोला तक। ५ वर्ष से अधिक आयु वाले बालक को २ तोला मात्रा में दें।

उपयोग—यह आसव बालकों के सभी प्रकार के रोगों के लिये उत्तम है। यह शिशुओं को पुष्ट बनाता है। पाचकाग्नि को बढ़ाता है।

प्रयोग के घटकों का संकलन अति उत्तम हुआ है। बच्चों की अस्थिवक्रता (Rickets) पर अच्छा काम करता है। इस रोग में बच्चों की अस्थियाँ मृदु होने के कारण मुड़ जाती है और बच्चा विकृतांग हो जाता है। नितम्ब प्रदेश में मांस की कमी पड़ जाने के कारण बालक बैठ नहीं सकता। इस औषधि के सेवन से आवश्यक मांस पुष्ट होकर बालक के नितम्ब भर जाते हैं। बालकों के कास अपचन, हरे पीले दस्त, उदर में आध्मान में भी यह आसव लाभ करता है। कमजोरी के कारण बच्चा रोता रहता है। इस आसव के निरन्तर सेवन करने से वह पुष्ट होकर रोना बन्द कर देता है और खेलने लगता है।

जहां छोटे बच्चों के लिए यह आसव लाभदायक है वहां बड़ों के लिए भी यह उपयोगी है। यह बड़ों के रोग सुजाक के कृमियों को नष्ट करता है जो धातुओं में लग जाया करते है। इस संग्रह के कारण मूत्र में बार बार जलन होना, मूत्र का गाढा होना, मूत्र में रुकावट सी होना, मूत्र में पूय या मवाद आना आदि लक्षणों में भी यह आसव कार्य करता है। ऐसी अवस्था में इस आसव में जल की मात्रा दुगनी होनी चाहिए।

स्त्रियों के दोनों प्रकार के प्रदर रोगों में भी यह आसव लाभ करता है। इस प्रकार यह आसव एक उत्तम प्रयोग है जो विशेषतः बालकों पर तथा प्रकारान्तर से पुरुषों तथा स्त्रियों के लिये भी काम करता है। इसके घटकों का संग्रह उत्तम रीति से किया गया है।

—वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु. केशरी
मकराना मौहल्ला, जोधपुर।

अमृतारिष्ट : : पृष्ठ ७२ का शेषांश

३. नामरुग्ण—धर्मवीर, आयु—२१ वर्ष।

धर्मवीर को हर १५ दिन के पश्चात्, ज्वर आता था। क्लोरोक्वीन का एक इन्जेक्शन लगवा लेता था। यह स्थिति १० माह से चल रही थी, इन्जेक्शन न लगने पर ज्वर तीसरे दिन आता था। दस मास में रोगी ने इन्जेक्शनों से शरीर छलनी बनवा लिया परन्तु मलेरिया ने पीछा नहीं छोड़ा। एक दिन रोगी हमारे पास आया। हमने रुग्ण को विरेचन देकर अमृतारिष्ट + सुदर्शन घन वटिका तथा सुदर्शन अर्क यथाविधि १ मास तक सेवन कराया। मलेरिया पुनः आज तक नहीं आया है।

मलेरिया की उत्तम निरापद औषधि है। यदि सुदर्शन घन वटिका तैयार नहीं हो तो 'मलेरिया संहार', दे सकते हैं। सन् १९७६ से १९७८ तक ३ सहस्र रुग्णों का उपचार किया है। इनमें लगभग २ सहस्र रोगियों को उक्त विधि से औषधि दी गई है। सफलता मिली है।

—वैद्य श्री मोहर सिंह आर्य,
मिसरी (भिवानी) हरियाणा

आयु० वृह० डा० सत्य नारायण खरे ए., एम-बी.एस.

शान्तिमय निद्रा प्राप्त न होने से मानव का मस्तिष्क थक जाता है एवं उसके केन्द्र दूषित हो जाते हैं जिससे स्थायी निद्रानाश से रोगी पीड़ित हो जाता है और लोगों को अनेक प्रकार की निद्राकारक औषधि व गोलियों का सेवन करना पड़ता है जिससे रोगियों को विना औषधि सेवन किये नींद नहीं आती है और दैनिक जीवन चक्र रोगी का इसी प्रकार चलता है जिसके फलस्वरूप रोगी हृदय रोग से भी पीड़ित होते देखे जा रहे हैं। अस्तु मानसिक विकार को नष्ट करके जिन योगों से शान्तिमय निद्रा आने लगती है उन योगों का उल्लेख प्रस्तुत लेख में किया जा रहा है—

आयुर्वेद शास्त्र में मस्तिष्क को पूर्ण शान्तिमय निद्रा देने वाले योग अश्वगन्धारिष्ट एवं ब्राह्मी वटी हैं। यह योग मस्तिष्क को पूर्ण विश्राम देकर स्वस्थ वनाते हैं। इसके उपरान्त उस रोगी को शान्तिमय निद्रा आती है।

प्रयोग एवं विभिन्न रोगों में उपयोग

निर्माण विधि—असगन्ध ३ किग्रा, सफेद मूसली १ किग्रा., मजीठ, वड़ी हरड़, हल्दी, दारु हल्दी, मुलैठी, रास्ना, विदारीकन्द, अर्जुन की छाल, नागरमोथा और निशोथ प्रत्येक ५०० ग्राम। अनन्तमूल, श्यामलता, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, वच और चित्रक प्रत्येक ४०० ग्राम इन सवको कूटकर १२८ किग्रा. जल में औटावें। जव १६ किग्रा. जल शेष रहे तव छान कर एक घड़े में भर दें और नीचे लिखी दवाओं को कूट छानकर उसी में डाल दें।

धाय के फूल १ किग्रा., शहद १२-५०० किग्रा., सौंठ, काली मिर्च, पीपल तीनों मिलाकर १२० ग्राम (प्रत्येक ४० ग्राम), दालचीनी, इलायची, तेजपात (तेजपत्र) तीनों मिला कर २४० ग्राम (प्रत्येक ८० ग्राम), फूलप्रियंगु २४० ग्राम और नागकेशर १२० ग्राम।

इसके वाद घड़े के मुँह पर सकोरा लगाकर कपड़-मिट्टी कर दें और एक महीने तक सूर्य के प्रकाश में रखा रहने दें। इसके वाद छान बोतलों में भर कर रख लें।

नोट—घड़ा घृत लिप्त और सुधूपित होना चाहिए।

मात्रा—१८ से २५ ग्राम की मात्रा में औषधि लेकर वरावर जल मिलाकर भोजन के वाद प्रयोग करना चाहिये।

औषधि प्रयोग—यह अरिष्ट अपस्मार, उन्माद, मूर्च्छा यक्ष्मा तथा वायु के हर एक रोग एवं निद्रानाश में लाभप्रद होता है। यह अरिष्ट शोष, शरीर की कृशता, ६ प्रकार के अर्श, मन्दाग्नि में भी लाभप्रद देखा गया है।

यह अरिष्ट हृदय व मस्तिष्क को शक्ति-वल प्रदान करता है। अतः रक्तचाप से पीड़ित रोगियों को इसका उपयोग अवश्य करना चाहिए। हृदय की धड़कन, आंखों के सामने अँधेरा छा जाना, हाथ-पैरों में दिन-रात दर्द रहना, शिर दर्द, निद्रानाश के रोगियों को अवश्य इसका उपयोग करना चाहिये।

विद्यार्थियों के लिए भी अधिक लाभप्रद देखा गया है क्योंकि यह स्मृतिवर्द्धक है इस कारण परीक्षा के समय अथवा जिन विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति किसी कारण से नष्ट या कम हो गई हो उन्हें इस अरिष्ट का प्रयोग करना चाहिए।

नोट—इस औषधि का प्रयोग ४-६ माह तक निरन्तर करना चाहिये एवं इसको सेवन करते समय गुड़, तेल, लाल मिर्च का उपयोग नहीं करना चाहिए।

कतिपय रोगियों पर अश्वगन्धारिष्ट व ब्राह्मी वटी का उपयोग निम्न प्रकार से है—

क्र. सं.	नाम रोगी	चिकित्सा की अवधि	रोगी के लक्षण	चिकित्सा	विवरण
१.	रामदास मदरवास	३ माह	रोगी शिरःशूल, निद्रानाश, भ्रम चक्कर, क्षुधानाश वक्षशूल से पीड़ित था।	१. सितोपलादि चूर्ण ½ ग्रा. गोदन्ती भस्म २ रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती, सिद्ध मकरध्वज ¼ रत्ती इस प्रकार ३ पुड़ियां बनाकर शहद के साथ। २. ब्राह्मी वटी १-१ गोली सुवह शाम दूध के साथ। ३. अश्वगंधारिष्ट १०-१०ग्रा. बराबर जल से भोजन के बाद।	इस चिकित्सा क्रम से रोगी ने पूर्ण लाभ प्राप्त किया।
२.	दमोहवाली सिगार	४ माह	रोगी भ्रम, चक्कर, शिरःशूल, रक्ताल्पता के कारण ताप असह्यता, निद्रानाश, रोगिणी किसी भी समय अचानक उठकर इधर-उधर चलने लगती थी।	१. सितोपलादि चूर्ण ½ग्राम, प्रवालपिष्टी १ रत्ती, मोती भस्म नं० १ ½ रत्ती, लोह भस्म १ र. की एक पुड़िया बनाकर इस प्रकार तीन पुड़िया प्रातः दोपहर शाम को मधु के साथ। २. अश्वगंधारिष्ट-उपरोक्त अनुसार।	रोगी को हल्के भोजन व प्रातः गुलकन्द व आंवले का मुरब्बा दूध के साथ सेवन कराया गया। ३ माह की चिकित्सा व्यवस्था के बाद रोगी पूर्ण स्वस्थ हो गया।
३.	नन्नाई ककवारा	२ माह	निद्रानाश, शिरःशूल, क्षुधानाश, चक्कर, चलने फिरने में रोगी असमर्थ था।	१. ब्राह्मी वटी सुबह शाम १-१ गोली दूध के साथ। २. द्राक्षासव १ तोला, अश्वगन्धारिष्ट १ तोला बराबर जल के साथ भोजन के बाद प्रयोग।	एक माह बाद की चिकित्सा के बाद रोगी के सभी लक्षण ठीक हो गये एवं रोगी क्रमशः स्वस्थ होते-होते शांतिमय निद्रा लेने लगा।
४.	भानप्रताप ककवारा	२ माह	रोगी प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु प्रारम्भ होते ही या किसी भी ऋतु में बादल होने पर निद्रानाश से पीड़ित रहता था। निद्रानाश के कारण तीव्र शिरःशूल से पीड़ित रहता है कोष्ठबद्धता का पुराना रोगी होने कारण वक्ष में पीड़ा व रक्ताल्पता।	१. रोगी के तीव्र शिरःशूल में सितोपलादि चूर्ण १/२ ग्राम, प्रवालपिष्टी १ रत्ती अगर वमन हो रही हो तो मयूर पुच्छिका भस्म १ रत्ती की एक पुड़िया बनाकर इस प्रकार तीन बार प्रातः दोपहर शाम को मधु के साथ देते हैं। २. ब्राह्मी वटी निद्रानाश के लिए प्रातः शाम दूध के साथ। ३. अश्वगन्धारिष्ट १ तोला बराबर जल के साथ भोजन के बाद सेवन कराते हैं।	इस प्रकार की चिकित्सा व्यवस्था से रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जाता है, एवं निद्रा आने लगती है परन्तु दूसरी ऋतु में बादल होने पर निद्रानाश पुनः हो जाता है तब ब्राह्मी वटी को पुनः सेवन कराया जाता है।

इस प्रकार अपने १९ वर्ष के चिकित्सा काल में सैकड़ों रोगियों इन योगों का सफलता के साथ सेवन कराया गया। समयाभाव व लेख वृद्धि के भय से इन्हीं ४ रोगियों का विवरण प्रस्तुत किया गया।

—श्री डा० सत्यनारायण खरे, ए.,एम.बी.एस., डी.एस्-सी.ए.
चिकित्साधिकारी—जिला परिषद् औषधालय,
ककवारा (झांसी) उ०प्र०

अश्वगंधारिष्ट

साहित्यायुर्वेद वाचस्पति वैद्यराज डा० जहानसिंह चौहान आयु० वृह०

औषधि का नाम—अश्वगन्धारिष्ट

ग्रन्थ निर्देश—भैषज्य रत्नावली

क्वाथ द्रव्य में—

असगन्ध २॥ सेर, मूसली ८० तोला, मंजीठ ४० तोला, हरीतकी छाल ४० तोला, हल्दी ४० तोला, दारुहल्दी ४० तोला, मुलैठी ४० तोला, रास्ना ४० तोला, विदारीकन्द ४० तोला, अर्जुन छाल ४० तोला, नागरमोथा ४० तोला, निशोथ ४० तोला, अनन्तमूल (सारिवा) ३२ तोला, श्यामलता (सारिवा) ३२ तोला, सफेद चन्दन ३२ तोला, लाल चन्दन ३२ तोला, वच ३२ तोला, चित्रकमूल ३२ तोला। १८ घटक द्रव्यों को मोटा-मोटा सा कूटकर रख लें।

क्वाथ—उपर्युक्त इन दव्यों को १६० लिटर पानी में डालकर पकावें। अष्टमांश पानी शेष रहने पर छान लें।

प्रक्षेप द्रव्य—इस छने हुए द्रव्य में असली शहद (अभाव में पुराना गुड़) १५ सेर (१४ किलो), धातकी पुष्प ६४ तोला (६४० ग्राम), सोंठ, मिर्च, पीपल मिलाकर ८ तोला (८० ग्राम)। दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात मिलाकर १६ तोला (१६० ग्राम), फूल प्रियंगु १६ तोला (१६० ग्राम) एवं नागकेशर ८ तोला (८० ग्राम) मिलाकर इनका चूर्ण कर लें।

संधान—उपर्युक्त सम्पूर्ण द्रव्यों को चिकने पात्र में डालकर सन्धान कर १ मास तक रहने दें। बाद में छान कर काठ की टंकी, अमृतवान या बोतलों में भरकर ढक्कन लगाकर सुरक्षित रख लें।

नोट—चिकने पात्र के मुंह पर सिकोरा लगाकर कपड़मिट्टी कर लेना चाहिये।

विशेष—इस योग में क्वाथ द्रव्यों की अधिकता के कारण द्रव्य-द्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार जल का परिमाण द्विगुण कर दिया है। यद्यपि मधु भी एक द्रव पदार्थ है पर इसका परिमाण पहले ही ठीक होने से द्विगुण नहीं किया गया है।

शास्त्रीय दृष्टि से औषधि के गुण—

यह अरिष्ट दीपन, पाचन, वृष्य एवं वातनाशक है।

मात्रा—१। से २॥ तोला (४ से ८ ड्राम)।

सेवनकाल—दिन में २ बार प्रातः सायं।

अनुपान—समभाग जल के साथ।

संक्षिप्त शास्त्रीय द्रव्य गुण विवेचन—

असगन्ध—मधुर, कषाय एवं तिक्त रस, लघु स्निग्ध गुण, उष्णवीर्य एवं मधुर विपाक है। कफ वातशामक, नाड़ी, दुर्बलता, मूर्च्छा एवं अनिद्रा में हितकारक, दीपन, अनुलोमक तथा कृमिनाशक है। यह वाजीकरण, रसायन, बृंहण, बल्य एवं मूत्रल है। इससे सिद्ध तैल वात-व्याधि नाशक है।

मूसली—भावप्रकाश के अनुसार मूसली मधुर, वृष्य, उष्णवीर्य, बृंहण, गुरु, तिक्त वातनाशक एवं रसायन है।

मंजीठ—रस में कषाय, तिक्त एवं मधुर है। गुरु एवं रूक्ष, गुण वाला, उष्णवीर्य तथा कटु विपाक वाला है। यह कफ पित्त शामक, दीपन, पाचन, स्तम्भन एवं कृमिघ्न है। स्तन्यशोधक एवं आर्तवजनन है।

हरीतकी छाल—हरीतकी, बल्य, मेध्य, चक्षुष्य, दीपन, पाचन, अनुलोमन, मृदुरेचन, कृमिघ्न, हृद्य, शोणित स्थापन, कफघ्न, वृष्य, मूत्रल, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, त्रिदोषनाशक, रूक्ष एवं लघु गुण तथा मधुर विपाकी है।

हल्दी—तिक्त कटुरस, रूक्ष, लघु गुण, उष्णवीर्य तथा कटुविपाकी है। त्रिदोषनाशक, वेदनास्थापन, रुचिकारक, अनुलोमक, पित्तरेचक तथा कृमिघ्न है। स्तन्यशोधक एवं शुक्रशोधक भी है।

दारुहल्दी—कटुतिक्त, रूक्ष गुण, उष्णवीर्य एवं कटुविपाकी है।

मुलहठी—मधुर रस, गुरु, स्निग्ध गुण, शीतवीर्य एवं मधुर विपाकी है। वात पित्त शामक तथा नाड़ियों को ताकत देने वाली है। कफ निकालने वाली, मृदु विरेचक एवं स्थानीय उत्तेजनाकारी है।

विदारी कन्द—कटु तिक्त मधुर रस, लघु, स्निग्ध गुण, उष्णवीर्य एवं कटु विपाकी है। कफ नाशक एवं पित्त-वर्धक है। दीपन, रसायन, वृष्य; आयुष्य एवं बलकारक है।

अर्जुन छाल—कषाय रस, लघु रूक्ष गुण, शीतवीर्य एवं कटुविपाकी है। पित्त, कफशामक, स्तम्भन, हृद्य एवं ज्वरघ्न है। हृदय उत्तेजक एवं हृदय को ताकत देने वाली है।

नागरमोथा—कटु, तिक्त कषाय रस, लघु रूक्ष गुण, शीतवीर्य एवं कटु विपाकी है। कफ, पित्त शामक, मेध्य एवं नाडियो को ताकत देने वाला है। दीपन, पाचन, ग्राही, कृमिघ्न, कफघ्न, मूत्रल, स्तन्यजनन, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, बल्य एवं विषघ्न है।

निशोथ—कटु रस, लघु रूक्ष, कफ पित्तनाशक एवं कटु विपाकी है। दीपन, पाचन, कफ निःसारक है।

सारिवा (श्वेत एवं कृष्ण)—मधुर तिक्त रस, गुरु स्निग्ध गुण, शीतवीर्य एवं मधुर विपाकी है। यह रेचक, दीपन, पाचन, अनुलोमन एवं स्तम्भन है। शुक्रल, रक्तपित्त नाशक, रक्तशोधक एवं शोथहर है।

सफेद चन्दन—तिक्त एवं मधुर रस, लघु-रूक्ष गुण, शीत-वीर्य एवं कटुविपाकी है। कफ पित्तशामक, मेध्य, निद्रा-दायक, कफ निःसारक, कफ नाशक, मूत्रजनन, स्वेदजनन, दाह प्रशमन, कुष्ठघ्न एवं विषघ्न है।

लालचन्दन—तिक्त मधुर रस, गुरु, रूक्ष गुण, शीत-वीर्य एवं कटु विपाकी है। कफ पित्तशामक, शीतल एवं संकोचक है।

वच—कटु तिक्त, लघु तीक्ष्ण रस, उष्णवीर्य, कटु विपाकी एवं मेध्य प्रभावक है। वातकफ शामक एवं पित्त वर्धक है। यह मेध्य, वेदना स्थापन, संज्ञास्थापन, हृदयोत्ते-जक, श्वासहर, मूत्रजनन, स्वेदजनन एवं ज्वरघ्न है।

चित्रकमूल—कटुरस, लघु रूक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य एवं कटु विपाकी है। वातकफ शामक एवं पित्तवर्धक है। दीपन, पाचन, पित्त सारक, संग्राही एवं कृमिघ्न है। रसा-यन, पाचक एवं अग्निवर्धक है।

प्रक्षेप द्रव्यों के शास्त्रीय गुण—

शहद—शीतल, हल्का, मधुर, रूक्ष, ग्राही, अग्नि दीपक, व्रणशोधक, प्रसादजनक, वृष्य, रुचिकारक, बुद्धि कारक है।

धातकी पुष्प—कषाय कटुरस, लघुरूक्ष गुण, शीतवीर्य कटुविपाकी है। यह कफ पित्तशामक है।

सोंठ—कटुरस, उष्णवीर्य एवं मधुर विपाकी है। यह कफ वातशामक, रोचन, दीपन, पाचन वातानुलोमन, रक्तशोधक, शोथहर, कफ वातशामक, वृष्य, बल्य एवं ज्वरघ्न है।

मिरच—कटुरस, तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य एवं कटु विपाकी है। कफ वातशामक एवं पित्तकारक है। दीपन, पाचन, कफ निःसारक, नेत्र हितकारी तथा कृमिनाशक है।

पीपल—कषाय रस, गुरु, रूक्ष गुण, शीतवीर्य एवं कटु विपाकी है। यह कफ पित्तशामक है। रक्त विकार नाशक, योनि शोधक तथा वर्णकारक है।

दालचीनी—कटु तिक्त मधुर रस. लघु, रूक्ष गुण, उष्णवीर्य एवं कटुविपाकी है। यह कफ वातशामक, पित्त-कारक, आध्मान नाशक, शुक्रल एवं वर्ण्य है।

बड़ी इलायची—कटु तिक्तरस, लघु रूक्ष गुण उष्णवीर्य एवं कटु विपाकी है। त्रिदोषनाशक, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, हृदयोत्तेजक, कफ निःसारक, मूत्रल एवं वेदना-स्थापक है।

तेजपात—मधुर रस, लघु तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य एवं मधुर विपाकी है। कफ वातनाशक है।

नागकेशर—कषाय तिक्त रस, लघु रूक्ष गुण, उष्ण-वीर्य एवं कटुविपाकी है। कफ पित्तनाशक, विषनाशक एवं आमपाचक है।

अश्वगन्धारिष्ट के गुण तथा उपयोग—

यह शास्त्रीय औषधि प्रमेह, ध्वजभंगता, नामर्दी, उन्माद, बवासीर मूर्छा, मस्तिष्क दुर्बलता, भ्रम, मृगी, वातव्याधि हृदयरोग नाशक है। साथ ही शरीर में स्फूर्ति, बल एवं वीर्य की वृद्धि करती है।

यह औषधि उत्तम अग्निदीपक है इसलिए पाचन विकृतियों में यह उत्तम लाभ पहुँचाती है। यह कोष्ठ स्थित

आमविषनाशक है। इसीलिए इसका प्रयोग आमवात के मन्द वेग होने पर सफलता के साथ किया जाता है।

इसके सेवन से स्त्रियों के योषापस्मार, दिल की धड़कन, बेचैनी, चित्त घबराहट, याददास्त की कमी, बहुमूत्र, मन्दाग्नि, मलावरोध, शिरःशूल, बुढ़ापे की दुर्बलता आदि में उत्तम लाभ मिलता है।

यदि प्रसूता स्त्री को सेवन कराया जाय तो उत्तम लाभ मिलता है। इससे प्रसूता की दुर्बलता का शीघ्र ही निवारण हो जाता है और प्रसूत ज्वर यदि है तो उसमें भी लाभ होता है।

यह औषधि उत्तम स्नायु दुर्बलता नाशक है। मस्तिष्क की विकृति एवं दुर्बलता में इसके प्रयोग से उत्तम लाभ मिलता है। मस्तिष्क दुर्बलता में प्रातः सायं समय अभ्रक भस्म मधु के साथ और इस औषधि को भोजनोपरान्त लेना चाहिए। जिन व्यक्तियों को सदैव दिमागी कार्य करना पड़ता है उन्हें अवश्य ही इसका सेवन करना चाहिए। यह औषधि मस्तिष्क को पौष्टिकता प्रदान करती है इसीलिए मस्तिष्क में उत्पन्न थकावट इसके सेवन से नष्ट हो जाती है। साथ ही स्नायुओं में एक प्रकार की स्फूर्ति पैदा होती है।

शारीरिक दुर्बलता के परिणामस्वरूप उत्पन्न नपुंसकता में यह औषधि उत्तम लाभ पहुँचाती है। साथ ही इसके सेवन से उत्साह की भी वृद्धि होती है।

यह अरिष्ट मूर्छा, हिस्टीरिया-योषापस्मार एवं उन्माद पर भी उत्तम कार्य करता है।

विशिष्ट अनुभव—

कफ युक्त शिरःशूलों में अश्वगन्धारिष्ट का प्रयोग निम्न व्यवस्थानुसार उत्तम लाभकारी होता है—

१. शिरःशूलादि वज्र रस २४० मिलीग्राम, श्लेष्मशैलेन्द्र रस १२० मिलीग्राम, गोदन्ती भस्म १ ग्राम, मिश्री १ ग्राम। कुल १ मात्रा। ऐसी १-१ मात्रा दिन में ३ बार मधु से।

२. अश्वगन्धारिष्ट २० मिलीलीटर भोजनोपरान्त दिन में दो बार।

३. षडबिन्दु तैल का नस्य।

४. दोनों इलायची + कपूर—दोनों को पीसकर मस्तक पर मलें।

५. पथ्याषडंग क्वाथ—५८ मिलीलीटर रात्रि ८ बजे।

अंसशोष में—अश्वगन्धारिष्ट का प्रयोग मृगशृङ्ग भस्म + प्रवाल भस्म तथा च्यवनप्राश के साथ करने से उत्तम लाभ होता है।

अस्थिक्षय में—अश्वगन्धारिष्ट का प्रयोग जीवन्त्यादि घृत, वृ. योगराज गुग्गुल, सितोपलादि चूर्ण, वसन्तमालती, शृङ्गभस्म आदि के साथ करने से विशेष लाभ मिलता है।

—चिकित्सा विज्ञान वारिधि वैद्यराज
डा० जहानसिंह चौहान आयु०वृह०,
चौहान आयुर्वेद निकेतन,
नवीगंज (मैनपुरी) उ० प्र०

डा० जहानसिंह चौहान आयु० वृह०

ग्रन्थ निर्देश—भैषज्य रत्नावली।

द्रव्य एवं निर्माण विधि—

अशोकस्य तुलामेकां लोध्रस्यार्धतुलां तथा।
चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा गृह्णीयात् पादशेषितम्॥
शर्करायास्तुलां दत्त्वा क्षौद्रस्यार्धं तुलां तथा।
धातकी षोडशपलां द्राक्षायाः पलविंशतिम्॥
अजाजीं मुस्तकं शुण्ठीं दार्व्युत्पलफलत्रिकम्।
आम्रास्थि कुंकुमं वासां चन्दनं च रसाञ्जनम्॥
पत्राङ्गं खदिरं विल्वं शाल्मलीकुसुमं बलाम्।
भल्लातकं सारिवां च जपाकुसुमकं त्वचम्॥
पृथ्वीकां देवकुसुमं प्रत्येकं फलसंमितम्।
सर्वं सुचूर्णितं दत्वा स्थापयेन्मासमात्रकम्॥

अर्थात् अशोक की छाल ५ सेर अथवा ४०० तोला (४.६७० ग्रा.) और लोध्र २०० तोला (२३३५ ग्रा.) लेकर जौकुट करलें। तत्पश्चात् ४०९६ तोला (४७ लिटर) पानी में पकावें। जब जल चौथाई शेष रहे तब उतारकर कपड़े से छानलें और उसमें ४०० तोला (४६७० ग्राम) चीनी, २०० तोला (२.३३५ ग्राम) शहद, जौकुट की हुई मुनक्का ८० तोला (९३३ ग्राम), धातकी पुष्प ६४ तोला (७५० ग्राम) और जीरा, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आँवला (इन तीनों के दल), सौंठ, दारुहल्दी, कमल, आम की गुठली, केशर, अडूसा, श्वेतचन्दन, रसौत, पतंग, खैर का बुरादा, वेल, सेमल के फूल, खरैंटी की जड़, अनन्तमूल, भिलावा, गुड़हल के फूल, दालचीनी, बड़ी इलायची एवं लौंग प्रत्येक औषधि ४-४ तोला (४७-४७ ग्राम) लेकर कपड़छन चूर्ण बनालें और सागौन की लकड़ी के पीपे में भर दें। १ माह के पश्चात् छानकर उसी पीपे में धोकर भरलें अथवा बोतलों में सुरक्षित रखलें।

नोट—जौनेसिया अशोक जाति के वृक्ष की छाल लेनी चाहिए। इस वृक्ष में रामफल के समान फूल नारंगी रंग के वसन्त ऋतु में खिलते हैं।

द्वितीय विधि—अशोक छाल ५ सेर (४६७० ग्राम) को जौकुट करके ४०९६ तोले (४७ लिटर) जल में क्वाथ करें। जब जल १/४ भाग शेष रह जाय तब उतारकर छानलें। शीतल हो जाने पर गुड़ १० सेर (९३३० ग्राम), धाय के फूल ६४ तोला (७५० ग्राम), काला जीरा, नागर मोथा, सोंठ, दारुहल्दी, कमल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, आम की गुठली की गिरी, जीरा, अडूसा की छाल, रक्तचन्दन प्रत्येक औषधि द्रव्य ४-४ तोला (४७-४७ ग्राम) मिलाल और अमृतवान में भरकर मुंह बन्द कर १ मास के लिये रखदें। १ मास के सन्धान के पश्चात् छानकर बोतलों में भरकर रखलें।

इस उपयोगी आयुर्वेद शास्त्रीय औषधि को विभिन्नी कम्पनियाँ (आयुर्वेद संस्थान) बना रहे हैं।

तृतीय विधि—अशोक की छाल ५ सेर (४६७० ग्राम) को जौकुट कर पीतल के कलईदार बर्तन में १ मन ११ सेर १६ तोला (४७ लिटर) जल में डालकर मन्द अग्नि पर क्वाथ करें। जब चौथाई शेष रह जाय तब उतारकर छान लें। शीतल हो जाने पर उसमें १० सेर (९३३० ग्राम) गुड़ मिलालें और काठ की टंकी में डालकर उसमें धाय के फूल ६४ तोला (७५० ग्राम), स्याह जीरा, नागरमोथा, सौंठ, दारुहल्दी, नीलोफर, हरड़, बहेड़ा, आंवला, आम की मींगी, सफेद जीरा, वासकमूल और सफेद चन्दन प्रत्येक औषधि ४-४ तोला (४७-४७ ग्राम) मिलाकर यथाविधि सन्धान करके १ माह के बाद छानकर बोतलों में भरलें।

उपरोक्त दोनों विधियों में लगभग समता है केवल गुड़ मिलाने की क्रिया अलग-अलग दर्शायी गई है।

शास्त्रीय दृष्टि से औषधि के गुण

यह औषधि रक्तपित्त नाशक, दीपक, पाचक, रक्त-शोधक, गर्भाशय शोधक, वल्य, ज्वरघ्न एवं शोथनाशक (आन्तरिक जननेन्द्रिय सम्बन्धी) है, अशोकारिष्ट आयुर्वेदीय दृष्किोण से स्त्रियों का परम मित्र है।

मात्रा—½ से १ औंस (४ से ८ ड्राम)।

सेवनकाल—भोजनोपरान्त दिन में २-३ वार।

अनुपान—समान मात्रा जल के साथ। रक्तप्रदर में चन्द्रकला रस के साथ तथा कष्टार्तव में वृहद् योगराज गुग्गुल के साथ देना चाहिए।

औषधि गुण धर्म विवेचन

अशोक की छाल—कपाय, तिक्त रस, लघु रूक्ष गुण, शीतवीर्य, एवं कटु विपाकी है। यह कफ पित्त शामक, दर्द नाशक एवं विष संहारक है। रक्तपित्त, शोथ एवं दाह नाशक है। इसका प्रयोग रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर, कष्टार्तव तथा गर्भाशय की शिथिलता में किया जाता है। मूत्रजनन एवं पथरी नाशक है।

लोध्र—कषाय रस, लघु रूक्ष गुण, शीतवीर्य, कटु विपाक एवं कफ पित्त शामक है।

चीनी—मधुर रुचिकारक एवं वातपित्त शामक है। अति शीतल एवं वीर्यवर्धक है।

शहद—शीतल, हल्का, मधुर, रूक्ष, ग्राही, अग्नि-दीपन, व्रणशोधक, रक्तविकारनाशक एवं योगवाही है।

मुनक्का—रक्तपित्तनाशक, वल्य, दीपन, पाचन, मलावरोध नाशक, तथा वीर्यवर्धक है।

जीरा—पाचक, दीपन, अनुलोमन, लघु रूक्ष गुण, लघु एवं कफपित्त शामक है।

नागरमोथा—कटु तिक्त, कपाय रस, लघु रूक्ष गुण, शीतवीर्य एवं कटु विपाकी है। यह कफ पित्त शामक, पाचन, दीपन, ग्राही, कृमिघ्न, मूत्रल, स्वेदजनक, ज्वरघ्न एवं वल्य तथा विषघ्न है।

हरड़—पाचक, दीपन, अनुलोमन, मृदुरेचक, वल्य, कृमिघ्न, हृद्य, शोणितस्थापन, कफघ्न, वृष्य, मूत्रल, ज्वरघ्न एवं रसायन है।

वहेड़ा—कपाय रस, लघु गुण, उष्णवीर्य, एवं मधुर विपाकी है। यह त्रिदोपनाशक है। दीपन, अनुलोमन, कृमिनाशक एवं वातुवर्धक है।

आंवला—कपाय रस, दीपन, पाचन, शीतवीर्य, लघु, रक्तपित्तनाशक एवं मधुर विपाकी है। त्रिदोपहर, वल्य, रोचक, यकृदुत्तेजक, हृद्य, कफघ्न, वृष्य, मूत्रल, ज्वरघ्न एवं रसायन है।

सोंठ—कटु रस, उष्णवीर्य, मधुर विपाकी है। लघु, स्निग्ध, कफवात शामक, रोचक, दीपन, पाचन, वातानु-लोमन, रक्तशोधक, श्वासहर एवं कृमिघ्न है।

दारुहल्दी—कटु तिक्त, रूक्ष गुण, उष्णवीर्य एवं कटु विपाकी है।

कमल—मधुर, कषाय रस, लघु स्निग्ध, शीतवीर्य, मधुर विपाकी है। कफ पित्त शामक है। रक्तपित्त नाशक एवं वलकारक है।

आम की गुठली—कफपित्त शामक है। कृमिघ्न, गर्भाशय शोथहर, प्रमेह, पूयमेहहर है।

केशर—कटु तिक्त रस, स्निग्ध लघु गुण, उष्णवीर्य एवं कटु विपाकी है। त्रिदोषनाशक, दीपन, पाचन, रोचन, ग्राही, मूत्रजनन, वाजीकरण एवं ज्वर नाशक है।

अडूसा—तिक्तरस, लघु, रूक्ष, कटु विपाकी, शीत-वीर्य, रक्तस्तम्भन, कफनाशक, श्वासहर, मूत्रजनन, एवं ज्वरघ्न है। रक्तपित्त नाशक है।

श्वेत चन्दन—तिक्त एवं मधुर रस, लघु, रूक्ष गुण, शीतवीर्य एवं कटु विपाकी है। कफ पित्त शामक, निद्रा-दायक, कफनिःसारक, मूत्रजनन, स्वेदजनन, दाह प्रशमन, कुष्ठघ्न एवं विषघ्न है।

रसौत—कटु तिक्त रूक्ष गुण, उष्णवीर्य एवं कटु विपाकी है।

पतंग (रक्तसार)—मधुर, शीतल, कफ, पित्त एवं रुधिर विकार नाशक एवं दाहशामक, संग्राही तथा कान्ति-वर्धक है।

खैर का बुरादा—यह लघु रूक्ष गुण, शीतवीर्य, कटु-विपाकी है। कफ पित्त शामक, रुचिकारक, पाचक, कृमि नाशक, शोथहर एवं रक्तस्तम्भन है।

वेल—कपाय, तिक्त रस, लघु रूक्ष गुण, उष्णवीर्य एवं कटुविपाकी है।

सेमल के फूल—मधुर रस, लघु स्निग्ध, शीतवीर्य एवं मधुर विपाकी है। पित्तशामक एवं रसायन, रुधिर विकार-नाशक है।

खरैटी की जड़—शीतल, कसैली, तिक्त, वल्य, ज्वरघ्न एवं मूत्रल होती है।

अनन्तमूल—मधुर तिक्तरस, गुरु स्निग्ध, शीतवीर्य एवं मधुर विपाकी है। त्रिदोषशामक, रेचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, रक्तशोधक तथा स्तम्भक है।

भिलावा—मधुर कषाय रस, लघु स्निग्ध, तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य एवं मधुर विपाकी है। वात कफ शामक तथा पित्तशोधक है। दीपन, पाचन, भेदन, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, कफनिःसारक, कामोत्तेजक, वाजीकरण, गर्भाशयोत्तेजक, स्वेदजनन एव रसायन है।

दालचीनी—कटु तिक्त, मधुर रस, लघु रूक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य एवं कटु विपाकी है। कफ वातशामक, पित्तकारक, आक्षेपनाशक, शुक्रल एवं वर्ण्य है।

बड़ी इलायची—कटुतिक्त रस, रूक्ष गुण, उष्णवीर्य, कटुविपाकी है। यह त्रिदोषनाशक, रोचन दीपन, पाचन, अनुलोमन, हृदयोत्तेजक, कफ निःसारक, मूत्रल एवं वेदनास्थापन है।

लौंग—कटु तिक्त रस, लघु तीक्ष्ण स्निग्ध गुण, शीत-वीर्य एवं कटु विपाकी है। दीपन, पाचन, रुचिवर्धक, अनु-लोमन, शुक्रस्तम्भक एवं मूत्रजनन है।

अशोकारिष्ट के गुण तथा उपयोग

इस अरिष्ट का उपयोग स्त्रियों के रक्त प्रदर, श्वेतप्रदर, मन्द ज्वर, रक्तपित्त, अर्श, अग्निमांद्य, अरुचि, प्रमेह (पुरुषों में), शोफ, कष्टार्तव, पाण्डु, गर्भाशय तथा योनि-भ्रंश, डिम्बग्रन्थि शोथ, हिष्टीरिया, वन्ध्यापन एवं रक्तरोग नाश के हेतु किया जाता है।

अशोकारिष्ट के अन्तर्गत चूंकि अशोक की छाल की ही प्रधानता है इसलिए इसमें अशोक से सम्बन्धित सभी गुण विद्यमान रहते हैं। अशोक जैसाकि हम पूर्व में ही बता चुके हैं कि यह मधुर, शीतल, सुगन्धित, कृमिनाशक, कषाय रस, शरीर की कान्ति को बढ़ाने वाला, स्त्रियों के जननेन्द्रिय सम्बन्धी सभी रोगों को हरने वाला, मलशोधक, पित्त, दाह, श्रम, शूल, उदररोग, अर्श, अग्निमांद्य एवं रक्त सम्बन्धी रोगों को नष्ट करने वाला है। यह अस्थि संधानक भी माना गया है।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्रियों ने अशोक का रासाय-निक विश्लेषण किया है और उनका कहना है कि इसमें आवश्यक लौह की मात्रा अधिक पायी जाती है। इसके अन्दर उपस्थित अल्कोहोलिक एक्सट्रैक्ट गर्म पानी में घुल जाता है। इसमें टेनिक एसिड की मात्रा अधिक होती है इसीलिए यह ग्राही है।

अशोकारिष्ट का प्रमुख प्रभाव गर्भाशय के ऊपर होता है। गर्भाशय को शक्ति प्रदान कर उसे बलशाली बनाता है। इसके उपयोग से गर्भाशय की शिथिलता दूर होती है इसलिए इस औषधि का उपयोग आर्तव से सम्बन्धित विभिन्न विकारों में किया जाता है। गर्भाशय के बाह्य एवं आन्तरिक आवरण, डिम्ब वाहिनियों एवं डिम्बग्रन्थियों की विकृति में यह औषधि समान रूप से लाभकारी है। गर्भाशयमुख (ओस यूटराई), योनिमार्ग अथवा गर्भाशय के बाहर या गर्भाशय के अन्दर व्रण अथवा कैंसर आदि के होने से अत्यार्त्तव की विकृति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में अशोकारिष्ट का प्रयोग अकेले अथवा अन्य औषधियों के साथ विशेष लाभकारी पाया गया है।

कष्टार्तव की स्थिति में—आजकल अनेकों महिलायें इस व्याधि से ग्रसित पायी जाती हैं। इस रोग में उन्हें मासिकधर्म के समय असह्य उदरपीड़ा होती है। साथ ही कमर में भयंकर दर्द, शिरःशूल, वमन आदि लक्षण उप-स्थित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में अशोकारिष्ट का प्रयोग उत्तम लाभकारी होता है। यदि इसे रजः प्रवर्तनी वटी के साथ सेवन कराया जाय तो अधिक लाभ होता है।

कष्टार्तव में रोगिणी को मन्द स्वरूप का ज्वर भी रहता है। ज्वर प्रायः आर्तव के समय ९९ से ९९॥ रहता है। यह ज्वर निरन्तर कई दिनों तक चलता रहता है। इस प्रकार की स्थिति में अशोकारिष्ट का प्रयोग परम लाभकारी होता है।

रक्तपित्त में—अशोकारिष्ट का उर्ध्वगत रक्तस्राव अर्श में भी विशेष लाभकारी होता है। रक्तार्श में जिस समय जलन, पीड़ा आदि की अनुभूति बिना रक्तस्राव के हो रही हो तब भी इसका प्रयोग करना चाहिये।

अत्यार्तव में—जिस समय स्त्री को मासिक धर्म से अधिक रक्त आ रहा हो उसे मलावरोध रहता हो तो अशोकारिष्ट का उपयोग अधिक उपयोगी रहता है। इस

समय यदि अशोकारिष्ट को दन्त्यरिष्ट के साथ दिया जाय तो अधिक लाभ की आशा की जाती है।

यदि अत्यार्तव में दुर्गन्ध भी आ रही हो तो अशोकारिष्ट के प्रयोग के साथ-साथ योनिमार्ग की शुद्धि भी कर लेनी चाहिए। इसके लिए निम्बपत्र को ४० गुने पानी में उबालकर योनि में वस्ति देते हैं।

प्रदर रोग में—कई स्त्रियों में गर्भस्राव, गर्भपात, अति पुरुष सम्भोग, दुर्बलता में अत्यधिक परिश्रम, जननेन्द्रिय में आघात होने आदि विभिन्न कारणों से स्त्री का पित्त विकृत होकर कुपित हो जाता है और वह पतला एवं अम्ल रस प्रधान हो जाता है। इसी प्रकार खून को भी ऐसा ही बना देता है जिससे रोगिणी के शरीर में दर्द, शिरःशूल, बेचैनी, कटिशूल, मलावरोध आदि लक्षण पैदा हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त योनिमार्ग से चिकना, लेसदार, चावल धोवन के समान पीला, नीला अथवा काला, झागदार एवं मांसरस के धोवन के समान रक्त स्रवित होने लगता है। जब रोग दीर्घकालिक हो जाता है तो योनि से आने वाले स्राव में दुर्गन्ध भी आने लगती है। कभी-कभी इस स्राव में रक्त मिश्रित मज्जा भी आती है। स्त्री की योनि से निरन्तर रक्त स्रवित होता रहता है जो चलने-फिरने पर भी जारी रहता है इस रक्त स्राव में कभी-कभी जमे हुए रक्त के टुकड़े भी निष्कासित होते हैं। रोगिणी की स्थिति पर्याप्त दयनीय हो जाती है। उसका उठना, बैठना, चलना, फिरना सभी दुस्वार हो जाता है। यह स्थिति निरन्तर कई महीनों तक चलती रहती है जिससे उसके शरीर के रक्त की पर्याप्त हानि हो जाती है। रक्त के अधिक निकल जाने से उसका शरीर कान्तिहीन, निस्तेज तथा पाण्डु वर्ण का हो जाता है। उसकी पाचन क्रिया प्रभावित हो जाती है जिससे उसकी भूख मारी जाती है।

उपर्युक्त रक्तप्रदर के सभी लक्षणों में अशोकारिष्ट का प्रयोग उत्तम लाभकारी होता है। कुछ दिनों तक के निरन्तर सेवन से रोगिणी के सभी विकार युक्त लक्षण दूर हो जाते हैं, वह पूर्व की भांति स्वस्थ हो जाती है।

श्वेत प्रदर—यह रोग भी स्त्रियों में उपर्युक्त रक्तप्रदर की भांति अधिक देखने को मिलता है। इस रोग में स्त्री की योनि से सफेद, लसदार गाढ़ा पानी गिरता है। इस प्रकार का स्राव प्रधानरूप से योनि की श्लैष्मिक कला अथवा गर्भाशय की आन्तरिक दीवाल से आता है। प्रथम योनि से सफेद लसदार पानी जैसा दुर्गन्धरहित स्राव आता है जो कुछ समय पश्चात् दुर्गन्ध युक्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त रोगिणी में पीड़ा तथा रक्तप्रदर की भांति सभी उपद्रवयुक्त लक्षण मिलते हैं। इन लक्षणों के मिलने पर अशोकारिष्ट का प्रयोग लाभकारी होता है। इसके सेवन से सभी लक्षण शनैःशनैः घटने लगते हैं और रोगिणी कुछ माह के बाद पूर्ण निरोग हो जाती है।

गर्भाशय भ्रन्श अथवा योनि भ्रन्श की स्थिति में—अत्यधिक तथा मूर्खतावश मैथुन करने अथवा अन्य कारणों से योनि अथवा गर्भाशय अपने स्वाभाविक स्थान से च्युत हो जाते हैं। इसमें गर्भाशय अपने ही स्थान पर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है। योनि भ्रंश में योनि बाहर को निकल आती है। यह कभी बाहर चली आती है तो कभी भीतर चली जाती है। इन दोनों प्रकार के भ्रंशों में रोगिणी को अतिशय कष्ट पीड़ा होती है। उसके पेडू तथा कमर में दर्द, पेशाब करते समय पीड़ा तथा श्वेत प्रदर की तीव्रता आदि लक्षण लक्षित होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में मासिक धर्म या तो बहुत ही कम आता है अथवा आना बिल्कुल बन्द हो जाता है। इन सभी स्थितियों में अशोकारिष्ट का प्रयोग उत्तम परिणाम दिखाता है। इसके साथ ही चन्दनादि चूर्ण+त्रिवंग भस्म मिलाकर प्रातः सायं मधु के साथ देते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

डिम्ब ग्रन्थि शोथ में—स्त्रियों में मिलने वाला यह रोग सबसे अधिक यंत्रणादायक होता है। इस रोग की उत्पत्ति अधिकांश रूप से मासिक धर्म के बीच में सम्भोग करने से होती है। इसमें रोगिणी को पेट तथा पीठ में कष्टदायक दर्द होता है, उसे वमन होता है। यदि चिकित्सा के अभाव में रोग पर्याप्त समय तक बना रहता है तो रोगिणी की योनि से पूय युक्त स्राव आने लगता है। ऐसी स्थिति में अशोकारिष्ट का प्रयोग करना चाहिए।

यदि इस रोग में प्रातः सायं १-१ गोली चन्द्रप्रभा वटी तथा भोजनोपरान्त अशोकारिष्ट सेवन कराया जाय तो अधिक लाभ होता है।

योपापस्मार की स्थिति में—योपापस्मार (हिस्टीरिया) की स्थिति में भी अशोकारिष्ट का प्रयोग पर्याप्त लाभकारी होता है। योपापस्मार की उत्पत्ति

स्नायुसमूह की उग्रता के परिणामस्वरूप होती है। इसमें रोगिणी को पेट से एक गोला सा उठकर ऊपर की ओर जाता है। साथ ही गर्भाशय सम्बन्धी विकारों के लक्षण भी मिलते हैं। यह रोग विशेष यंत्रणादायक होता है जो अधिकांश रूप से नवयुवतियों में मिलता है। मासिक धर्म तथा शोक चिन्ता आदि से इस रोग का विशेष सम्बन्ध है। इस प्रकार की स्थिति में अशोकारिष्ट का प्रयोग पर्याप्त लाभकारी होता है।

पाण्डु रोग की स्थिति—अल्प आयु में विवाह तथा अत्यधिक मैथुन के कारण नवयुवती को रक्त प्रदर का रोग हो जाता है जिससे उसकी क्रमिक शारीरिक वृद्धि रुक जाती है। रक्त के अत्यधिक निकल जाने से उसका शरीर पाण्डु वर्ण का हो जाता है, उसे आलस्य एवं निद्रा सदैव घेरे रहती है। अल्प परिश्रम से ही उसे चक्कर आने लगते हैं, उसकी भूख मारी जाती है, खाने पीने को जी नहीं चाहता है उसका पेट भारी रहता है। ऐसी स्त्री जीवन से निराश हो जाती है। ऐसी स्थिति में अशोकारिष्ट का प्रयोग करना लाभकारी होता है। इसे भोजनोपरान्त सेवन कराते हैं और इसमें बराबर मात्रा में लोहासव मिलाकर जल के साथ देते हैं। रोगी को चिकित्सा काल में इस व्यवस्था के साथ नवायस लौह प्रातः सायं मधु के साथ देते हैं।

अशोकारिष्ट पर स्वानुभव—हमने अपने रोगियों (महिलाओं) पर अशोकारिष्ट का प्रयोग निम्न व्यवस्थानुसार कराया जो शतप्रतिशत प्रदर रोगों पर लाभकारी सिद्ध हुआ है। यह व्यवस्थाक्रम नीचे दिये जा रहे हैं—

श्वेत प्रदर पर चिकित्सा व्यवस्था

१. कुक्कुटाण्ड-त्वक भस्म २४० मिग्रा०, यशद भस्म १२० मिग्रा०, आंवला चूर्ण ५०० मिग्रा० कुल १ मात्रा है। ऐसी १ मात्रा प्रातः ६ बजे तथा सायं ६ बजे मधु से दें।

२. अशोकारिष्ट—१ औंस भोजनोपरान्त दिन में दो बार।

३. चन्द्रप्रभावटी ½ ग्राम, त्रिफला चूर्ण ३ ग्राम कुल एक मात्रा। ऐसी १ मात्रा दिन के २ बजे और सायं ७ बजे गर्म जल से।

४. पत्रांगासव १ औंस बराबर जल के साथ रात्रि सोते समय।

५. अशोक घृत का फाहा रात्रि को योनि में रखें।

रक्तप्रदर पर अशोकारिष्ट की प्रयोग व्यवस्था—

१. प्रदररिपु रस २५० मिग्रा०, बोल पर्पटी २२० मिग्रा०, चन्दनादि चूर्ण १ ग्राम कुल १ मात्रा। ऐसी एक मात्रा प्रातः ६ बजे सायं ६ बजे मधु एवं ताण्डुलोदक के साथ।

२. अशोकारिष्ट १ औंस, लोहासव ½ औंस कुल १ मात्रा। ऐसी १ मात्रा भोजनोपरान्त दिन में २ बार।

३. रक्तपित्त-कुलमण्डन रस १२० मिग्रा० दिन में दो बजे मधु से।

४. नवायश लौह १२० मिग्रा० मधु के साथ रात्रि सोते समय।

दोनों प्रकार के प्रदरों में सामान्य अशोकारिष्ट की चिकित्सा व्यवस्था—

१. प्रदरान्क लौह २४० ग्राम, पुष्यानुग चूर्ण १ ग्राम, चन्द्रप्रभा वटी १/२ ग्रा.। १ मात्रा। ऐसी १ मात्रा दिन में २ बार प्रातः ६ बजे, सायं ६ बजे कुश की जड़ के क्वाथ से।

२. अशोकारिष्ट २० मिलिलिटर भोजनोपरान्त दिन में २ बार।

३. सुपारी पक १० ग्राम गोदुग्ध के साथ दिन के १० बजे, रात्रि ८ बजे सोते समय।

अशोकारिष्ट के प्रयोग पर सफलतायुक्त अपना अनुभव—

अभी हाल ही में हमने अपनी रक्तप्रदर की रोगिणियों पर अशोकारिष्ट का प्रयोग निम्न व्यवस्था के अनुसार कराया तो हमें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। अशोकारिष्ट की यह चिकित्सा व्यवस्था हमने निम्न प्रकार अपनाई है—

१. चन्द्रकला रस २ गोली, अशोकारिष्ट १ औंस। १ मात्रा। ऐसी २ मात्रा प्रातः सायं समभाग जल से।

२. पत्रांगासव १ औंस समान जल से दिन में २ बार।

नोट—यदि रक्त की मात्रा अधिक आ रही हो तो रक्तपित्त, कुलमंडन रस १ गोली कूष्माण्ड रस या दूर्वा-स्वरस के साथ दें।

—चिकित्साविज्ञान वारिधि वैद्य डा० जहानसिंह चौहान,
आयुर्वेद बृह०, साहित्यायुर्वेद वाचस्पति, आयुर्वेदरत्न,
चौहान आयुर्वेद निकेतन, नवीगंज (मैनपुरी) उ.प्र.
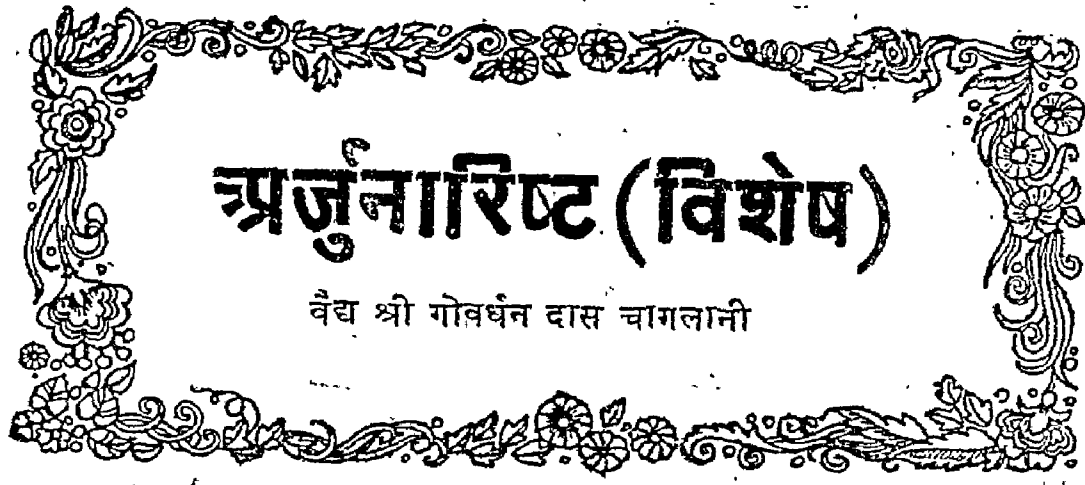
अर्जुनारिष्ट (विशेष)

वैद्य श्री गोवर्धन दास चागलानी

अर्जुन छाल १ १/८ किलो, मुनक्का ६२५ ग्राम, असगंध नागौरी २५० ग्राम, जल १६ किलो में उपरोक्त चीजें जौकुटकर भिगो दें। दूसरे दिन औटा कर शेष ४ किलो जल रहने पर छानकर गुड़ १ किलो घोलकर दूसरी बार छान लें और चीनी मिट्टी के अमृतवान (जार) में भरकर धाय के फूल कूटकर २५० ग्राम का प्रक्षेप डालकर, ढक्कन लगाकर कपड़े से मुँह बन्द कर दें। १ मास बाद (शीतकाल में १। या १॥ मास बाद) छानकर बोतलों में भर दें। मात्रा १५ ग्राम से ३० ग्राम तक समभाग जल मिलाकर दिन में ३-४ बार तक अकेला अथवा लोहासव आदि अन्य आसव के साथ मिलाकर दे सकते हैं।

नोट—(१) मैं इस आसव में महुये के फूल के स्थान पर असगंध नागौरी का प्रयोग कई वर्षों से कर रहा हूं। जो कि हृदय रोग, वात रोग तथा अनिद्रा आदि पर शीघ्र व बहुत गुणकारी प्रतीत हुई है। विद्वान वैद्यराजों से विनीत प्रार्थना है कि इस प्रकार असगंध नागौरी डालकर आसव तैयार कर उसका परीक्षण कर 'धन्वन्तरि' आदि पत्रों में अनुभव देने की कृपा करें।

(२) आसव तैयार होते समय प्रारम्भ के दिनों में आसव उफनकर बाहर निकलता है अतः बर्तन कुछ बड़ा होना चाहिये अथवा अमृतवान को किसी बड़े भगौने में रखना चाहिये।

गुण—मंदाग्नि, आमविकार, वायुकारक अथवा गरिष्ठ चीजों के सेवन से अपचन होकर शरीर में वायु अधिक होने से हृदय (दिल) धड़कने लगता है। माथे-गर्दन व शरीर में पसीना आने लगता है। हाथ-पैरों में झनझनाहट होने लगती, हृदय (दिल) घबड़ाने लगता है। पैदल थोड़ा-सा भी चलने पर हाँफनी आने लगती है। ऐसी अवस्था में अकेला या लोहासव, कुमारी आसव आदि अन्य आसव के साथ भी दे सकते हैं। सहायक रूप में हिंग्वाष्टक चूर्ण, गंधक वटी, रसोनादि वटी, भास्कर गैसान्तक वटी, शिवाक्षार पाचन चूर्ण, हृदय (दिल) शक्ति बलबर्धनार्थ महामकरध्वज वटी, महालक्ष्मी विलासरस, सूतशेखर रस (स्वर्ण युक्त) या स्वर्ण माक्षिक युक्त सहायक रूप से प्रवाल भस्म, मुक्ता शुक्ति भस्म या पिष्टी, जहाँ हृदय शूल का रोगी हो तो मृग शृंग भस्म, लौह भस्म आदि रोगी की अवस्था तथा लक्षणानुसार देना चाहिये। बहुत से रोगी दुःख की बात सुनकर या देखकर अचेत हो जाते हैं, उनको शिर पर जल का छींटा आदि देकर सावधान कर (मूर्च्छा दूर कर) हृद्य शक्तिवर्धक कोई अच्छा रस-रसायन, महामकरध्वज वटी, बृहत वात चिन्तामणि रस, महा योगराज गुग्गुल, स्वर्ण सूत शेखर रस आदि के साथ अर्जुनारिष्ट अकेला अथवा द्राक्षारिष्ट या द्राक्षासव के साथ देना चाहिये। कुछ दिनों में ही हृदय की शक्ति बढ़ने लगती है और हृदय सहनशील बन जाता है। योषापस्मार, हिस्टीरिया या अन्य स्त्री रोगों के साथ हृदय दुर्बलता का संदेह होने पर अर्जुनारिष्ट को अशोकारिष्ट के साथ देना बहुत गुणकारी व लाभदायक होता है। कुछ दिनों में रोगणियों को सुधार दृष्टिगोचर होने लगता है। अन्य शक्तिवर्धक औषधियों के साथ देने से शीघ्र शक्ति आने लगती है और उनका हृदय सबल बन जाता है।

—वैद्य श्री गोवर्धन दास चागलानी
श्री घनश्याम आयुर्वेद भवन,
घण्टाघर रोड, एटा (उ. प्र.)

उशीरासव

श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' भिषगाचार्य, आयुर्वेद रत्न, साहित्य रत्न

तस्य वैद्यस्य लेखेन नैकस्यं न कथं सृजेत् ।
यथार्थ नामा मतिमान् यस्य कल्याणको गुरुः ।।

शार्ङ्गधर संहिता के द्वितीय खण्ड अध्याय १० में वर्णित प्रथम आसव उशीरासव' है। औषधि के गुणों को चिरकाल तक स्थाई बनाये रखने हेतु आचार्यों ने आसव अरिष्ट की कल्पना की थी। सन्धान विधि से जो औषधि तैयार की जाती है, उसे मद्य कहा गया है। एतावता आसव अरिष्ट भी मद्य वर्ग में कहे गये हैं। मद्य के गुण—

मद्यं तैक्ष्ण्योष्ण्य वैशद्यसूक्ष्मत्वात् स्रोतसां मुखम् ।
प्रमथ्य विवृणोत्याशु तन्मोक्षात् सप्त धातवः ।।
पुष्यन्ति × × × ।।

—चरक चि० ६/१६६

फिर भी मद्य एवं आसव-अरिष्ट में बहुत अन्तर है। जहाँ मद्य में मद्यसार अधिक होता है वहाँ आसव में औषधीयगुण। मद्य के साथ औषधियों के आसुत (स्रवित) होकर आने वाले गुणों के कारण आसव संज्ञा की गई है। मद्यांश तो केवल औषधीय गुणों को सुरक्षित रखने को रहता है। सामान्यतः आसव में ५ प्रतिशत से १२ प्रतिशत तक मद्यसार पाया जाता है जबकि हल्की से हल्की शराब में भी ४० प्रतिशत मद्यसार रहता है। उशीरासव में निम्नाङ्कित प्रकार से घटक द्रव्यों का अनुपात होना चाहिए—

१. मुख्य औषध द्रव्य—उशीरादि २१ द्रव्य—प्रत्येक एक पल (४८ ग्राम)।

२. जल—दो द्रोण (२४ किलो ५७६ ग्राम)

३. मधुर द्रव्य—इन द्रव्यों की औषधि के रूप में यद्यपि कोई विशेष उपयोगिता नहीं है। ये द्रव्य संधान द्वारा आसव में मद्य उत्पन्न कर आसव को एवं उसके गुणों को चिर संरक्षित और स्थिर रखते हैं। आसव को ये मधुरता प्रदान करते हैं। उशीरासव में मधुर द्रव्य शर्करा १ तुला (४ किलो ८०० ग्राम) तथा मधु भी एक तुला डालना चाहिए।

४. संधान द्रव्य—धातकी पुष्पों के मधुर पुष्प रस में संधान करने वाले जीवाणु पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। उशीरासव में इनका परिमाण १६ पल (७६८ ग्राम) है। द्राक्षा आसव को गुण सम्पन्न करने के मुख्य कार्य के साथ साथ मधुर भी बनाते हैं एवं सन्धान में भी सहायक होते है। इनका परिमाण २० पल (६६० ग्राम) है।

इन समस्त द्रव्यों को चीनी मिट्टी के पात्र को जटामांसी व काली मिर्च से धूपित कर उसमें डाल, मुख बन्द कर एक माह तक सुरक्षित रख देवें। तैयार हो जाने पर छानकर शीशियों में भर काम में लेवें।

आसव में यद्यपि औषध द्रव्यों का क्वाथ नहीं किया जाता है किन्तु एक औषध निर्माता का मन्तव्य यहाँ उद्धृत कर देना समीचीन समझता हूँ—"मेरे विचार से जिनका क्वाथ नहीं बनाया जाता प्रायः उन सभी आसवों के कुछ या आवश्यकतानुसार सम्पूर्ण को निर्दिष्ट जल के साथ एक उबाल अवश्य दे देना चाहिए। इससे एक तो इनका पर्याप्त

अंश आसव द्रव में आ जायेगा और ये सम्पूर्ण द्रव्य एवं जल जीवाणुहीन हो जायेगा। इससे सन्धान काल में अन्य जीवाणुओं के न 'नप पाने से विशुद्ध आसवीय संधान होगा और विकृत न होने से आसव उत्तम बनेगा।"

—आचार्य दीनदयाल विष्ट (आयुर्वेद विकास मई ७१)

एक पूर्ण मात्रा २ तोला, उतना ही जल मिलाकर दें। दोनों समय भोजनोपरान्त।

अब इस आसव के औषध द्रव्यों की कार्मुकता पर विचार करें—

१. उशीर—उशीर एक शामक और शीतल द्रव्य होने से अत्यधिक उष्णता-दाह एवं रक्तस्रुति में अत्यन्त लाभप्रद द्रव्य है। भगवान् चरक ने एक योग में इसकी प्रथम गणना की है—

उशीर पद्मोत्पल चन्दनानां पक्वस्य लोष्टस्य चयः प्रसादः।
सशर्करः क्षौद्रयुतः सुशीतो रक्तातियोग प्रशमाय देयः॥

चरक चि० ४/८०

रक्तपित्त, तृष्णा, छर्दि, मूर्च्छा, ज्वर, विसर्प के अतिरिक्त वाह्य प्रयोग से अतिस्वेद, दाह एवं त्वग्रोगों को विनष्ट करता है। गात्र को सुरभित करने हेतु भी यह उपयोगी है। पित्त के साथ-साथ कफ शामक होने से कास श्वास में धूम्रपान के रूप में भी इसका उपयोग प्रशस्त है।

२. नेत्र बाला—शीत मधुर होने से यह रक्तपित्त, छर्दि, विसर्प, तृष्णा आदि में लाभदायक है। यह त्रिदोष शामक है। अतिसार में भी यह उपयोगी है—

धान्योदीच्य-शृतं तोयं तृष्णादाहातिसारनुत्।

—चक्रदत्त अति० १५

शिर पर इसके लेप से तृष्णा का निवारण होता है—

अरुणचन्दन चन्दन बालकैः
नलदपद्मक तुल्य कृतांशकैः।
शिरसि लेपन माचरतां नृणां
तृड्पयात्युपशान्तिमसंशयम्॥

—राजमार्तण्ड तृष्णा. २

३. कमल (नाल)—

केदारः कुमुदं कान्ता केतकी काननं कथा।
ककारषट्क सन्दिष्टं महादाह विनाशनम्॥

—चमत्कार चिन्तामणि १/४३

दाह, विसर्प, विष शमन हेतु यह अद्वितीय द्रव्य है—

दाहोदन्यात्तविस्फोट विसर्पगरलादिषु।
मृद्नाति मधुरं वर्ण्यं कमलं कमलं न हि॥

—मि० मे० मणि० २/१३७

४. काश्मरी—इसका फल मधुर, कषाय रस, मधुर विपाकी एवं शीतवीर्य होता है। सुतरां पित्त रक्त प्रधान व्याधियों में इसका प्रयोग होता है। वृहत्पंचमूल में इसकी छाल का उपयोग होता है जो वातहर है।

पित्तज तृष्णा में उपयोगी एक प्रयोग है—

काश्मर्यशर्करायुक्तं चन्दनोशीरपद्मकम्।
द्राक्षामधुकसंयुक्तं पित्ततर्षे जलं पिबेत्॥

—चक्रदत्त, तृष्णा. ४

भगवान चरक ने इस सिद्ध स्नेह को उत्तम ज्वरहर कहा है—

चन्दनागुरुकाश्मर्यपटोलमधुकोत्पलैः।
सिद्धः स्नेहो ज्वरहरः स्नेहवस्तिः प्रशस्यते॥

—चरक चि० ३।२५३

५. नीलोत्पल (नीलोफर)—दाह, तृष्णा, अम्लपित्त आदि पित्तजन्य व्याधियों में नीलोत्पल उत्तम द्रव्य है—

विण्मार्गगे विशेषेण हितं मोचरसेन तु।
वटप्ररोहैः शृंगैर्वा शुंठ्युदीच्योत्पलैरपि॥

—अ० हृ० चि० २।३८ (रक्तपित्त)

रक्तार्श निवारणार्थ एक प्रयोग है—

नीलोत्पलं समङ्गा मोचरसश्चन्दनं तिला लोध्रम्।
पीत्वाच्छगलीपयसा भोज्यं पयसैव शाल्यन्नम्॥

—चरक चि. १४।१९३

पलित विनाश हेतु भी इसका उपयोग होता है—

उत्पलं पयसा सार्द्धं मासं भूमौ निधापयेत्।
केशानां कृष्णकरणं स्नेहनञ्च विधीयते॥

—चक्रदत्त क्षुद्र. ११७

मधु मिश्रित इसका क्वाथ मुखपाकहर कहा गया है—

खस पटोल निशा त्रुटि मालती
मधुक आमय गालव गोस्तनी।
क्वथित नील सरोज दुरालभा
मधु समेत हरे मुखपाक को॥

६. प्रियंगु—यद्यपि यह एक सन्दिग्ध द्रव्य है। देहरा-

दून के जल प्राय: स्थानों में तथा विहार के अनेक स्थानों में उत्पन्न जूही पुष्पलता सदृश लता को प्रियंगु के रूप में स्वीकार किया जाता है।

यह वर्ग पित्तशामक मधुर विपाकी शीत द्रव्य है जो दाह, तृषा, भ्रम, छर्दि, रक्तातिसार, ज्वर आदि का शमन करता है। वाह्य प्रयोग से विसर्प, दाह को नष्ट करता है।

पर्पटो वासकस्तिक्ता किरातौ धन्वयासकः।
प्रियंगुश्च कृतः क्वाथ एषां शर्करया युतः॥
पिपासादाहपित्तास्रयुक्तं पित्तज्वरं जयेत्॥

—शार्ङ्गधर. द्वितीय. २।१४

७. पद्माख—तिक्त कषाय रस युक्त शीतवीर्य लघु गुण युक्त कफ पित्त शामक पद्माख दाह, कुष्ठ, तृष्णा, रक्त स्रुति, व्रण, विसर्प आदि रोगों को शीघ्र हर लेता है। यह नेत्र रोगों में भी उपयोगी है।

एकं वा पुण्डरीकञ्च छागीक्षीरावसेचितम्।
रागाश्रुवेदनां हन्यात् क्षतपाकात्ययाजकाः॥

—चक्रदत्त नेत्र० ६३

टीकाकार ने पुण्डरीक से पद्माख का ही ग्रहण किया है।

८. लोध्र—यह रक्त वाहिनियों का संकोची होने से विभिन्न स्रोतस् की रक्तस्रावी रोगों की प्रमुख औषधि है। इसके अतिरिक्त शोथ, ग्रहणी, नेत्राभिष्यन्द में भी यह उपयोगी है। शीत वीर्य, कटु विपाकी पित्त कफ शामक है।

पृथग्दारुकलोध्राब्धिशोषाः स्युः सम भागिकाः।
सिता सर्वसमा चूर्णं श्वेतप्रदरदारणम्॥

—सि० मे० मणिमाला ४।१०८६

रक्तस्रावी व्रणों के रोपण हेतु इसके सूक्ष्म चूर्ण का अवधूलन लाभदायक है। योनि संकोचनार्थ भी इसका उपयोग किया जाता है—

लोध्रकर्पासपत्रं च वदरी वीजमेव च।
हरिद्रे मधुना लिप्य कन्या भवति नित्यशः॥

—कुचिमार तन्त्र—५

९. मंजिष्ठा—पित्त रक्त दोष गत वृद्ध तीक्ष्ण उष्ण सर स्नेह गुणों का क्षय करने से मुख्यतः यह रक्त विकारों में प्रयुक्त होती है।

रक्तपित्त, रक्तमेह, स्तन्य-सूतिका रोगों में भी यह प्रयुक्त होती है। पित्त कफ शामक होने से यह वाल रोगों में भी उपयोगी सिद्ध होती है—

मोचरसः समङ्गा च धातकी पद्मकेशरम्।
पिष्टैरेतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसारनाशिनी॥

—चक्रदत्त बाल. ३७

रक्तार्श को दूर करने में भी यह द्रव्य लाभप्रद है—

तिल मजीठ चन्दन लिए मोचारस ज्यो लेय।
पर्प्पट चित्रक नीम की मींगी काढिर देय॥
ताको चूरण कीजिए मासा पाँच प्रमाण।
दोन्यू वखता लीजिए अजा दूध में पान॥
रक्त ववेसी कूं हरै भावप्रकाश की साख।
बुध जन लक्ष्मीचंद कृत रक्त चून नमि जात॥

—लक्ष्मीप्रकाश अर्श० ४११-१३

१०. धन्वयास (धमासा)—धन्वयास वातपित्तशामक शीतवीर्य एवं मधुर विपाकी द्रव्य है। अर्श में पंचांग का लेप एवं धावन लाभप्रद है। गल रोगों में इसके क्वाथ का गण्डूष करना चाहिए। छर्दि, रक्तपित्त, ज्वर, कास, कामला में भी यह गुणकारी है। मूर्च्छा, भ्रम की यह अव्यर्थ औषधि है—

दुरालभाकषायस्य घृतयुक्तस्य सेवनात्।
भ्रमः शाम्यति गोविन्दचरणस्मरणादिव॥

—वैद्य जीवन ४।३१

रक्तमेह विनाशार्थ एक गुणकारी प्रयोग है—

दुरालभाकिसलयैः कल्कं विरलवेल्लजम्।
सुखाय मेहतां रक्तं सर्वतोमुधगालितम्॥

—सि. भे. मणि. ४।३०५

इसका शीतकषाय तृष्णा विसर्पनाशक है—

द्राक्षां पर्पटकं शुण्ठी गुडूचीं धन्वयासकम्।
निशापर्युषितं दद्यात्तृष्णावीसर्प शान्तये॥

—चरक चि० २१।५८

११. पाठा—कफ वात शामक यह पाठा तीक्ष्ण एवं ग्राही है। इसके सेवन से छर्दि, विषम ज्वर, श्वास, कृमि, शूल आदि रोग नष्ट होते हैं। भगवान चरक ने जो ज्वर नाशक कषाय वतलाये है। उनमें एक कषाय है—

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यन्ते कषायाः ज्वरनाशनाः ।
पाठामुशीरं सोदीच्यं पिवेद्वाज्वर शान्तये ॥
—चरक चि० ३

अतिसार में भी यह ग्राही होने से उपयोगी है—
बिल्वाब्दधातकी पाठा शुण्ठि मोचरसाः समाः ।
पीताःकन्धन्त्यतीसारं गुडतक्रेण दुर्जयम् ॥
—भैषज्य रत्नावली

सुख प्रसव हेतु भी इसका उपयोग होता है—
पाठालाङ्गलिसिंहास्यमयूरकाजटैः पृथक् ।
नाभिबस्तिभगालेपात् सुखं नारी प्रसूयते ॥
—चक्रदत्त स्त्री० १२

१२. चिरायता—तिक्तरस की उत्कृष्ट समष्टि का द्रव्य होने से लघु, उष्ण, रूक्ष होने से आमाशयोद्भव आम प्रधान अग्निमांद्यकारी ज्वर में आशु लाभकारी है—
ननु रामसेन काण्टः प्रकिरलधान्याकदलधन्यः ।
किं कुरुते वैद्यपते ज्वरं झटिति जंर्जरीकुरुते ॥
—सि. भे. मणि० ४।३२

दाह, तृष्णा, कुष्ठ, व्रण, कृमि, रक्तपित्त, श्वास, शोथ आदि रोगों को भी यह विनष्ट करने में सहायक सिद्ध होता है।

१३. न्यग्रोध (वड़ की छाल)—शीतवीर्य एवं पित्त कफ शामक होने से रक्त पित्त, श्वेत रक्त प्रदर, तृषा, दाह, रक्तार्श, रक्तातिसार एवं कृमिरोगों को दूर करने में श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त यह वल्य एवं हृद्य भी है। शुक्रदोषों की चिकित्सा में इससे सिद्ध घृत का उपयोग किया जाता है—
परुषक वटादिभ्यां पूयप्रख्ये च साधितम् ।
—सुश्रुत शारीर २।६

१४. उदुम्बर (गूलर की छाल)—न्यग्रोध की भाँति उदुम्बर भी शीतवीर्य एवं पित्त कफ शामक है। गुण भी तद्वत् ही हैं। उरः क्षत, रक्तमेह, भगन्दर, रक्त विकार, रक्तार्श, रक्तपित्त आदि रोगों में यह अत्यन्त उपयोगी द्रव्य है। क्षत-विक्षत धातुओं का संधान करने वाले इस गूलर की छाल के फाण्ट के साथ संजीवनी वटी प्रदर में लाभ पहुँचाती है—

उदुम्बरत्वग्रोजनितेन चारु
फाण्टेन साकं किल गोलिकेयम् ।
एकापि रक्त प्रदरं वधूना,
मपाकरो तीत्यनुभूतमास्ते ॥
—संजीवनी साम्राज्य प्रदर ५

१५. शठी—शार्ङ्गधरसंहिता के टीकाकार ने शठी का अर्थ नरकचूर किया है किन्तु सिद्ध भैषज्य मञ्जूषा के कुञ्चिकाकार श्री हनुमत प्रसाद जी ने शठी का अर्थ कपूर कचरी किया है। यद्यपि दोनों द्रव्यों के गुणों में प्रायः साम्यता है, फिर भी शटी से नरकचूर का ग्रहण किया जाता है, कपूर कचरी के लिये 'शठी' शब्द प्रयुक्त किया जाता है। आमाशय, अन्त्र, यकृत्, हृदय, गर्भाशय एवं रक्त प्रणालियों पर यह उत्तेजक क्रिया संपादित कर छर्दि, शूल, शोथ, रक्तविकार, कष्टार्तव आदि रोगों का विनाश करती है। पूयमेह में भी इसका उपयोग किया जाता है। भगवान् चरक ने ज्वर चिकित्सा में जो दो सन्निपातज्वर-हर गण कहे हैं उनमें शटी का समावेश किया गया है।

१६. पर्पट (पित्तपापड़ा)—कटु विपाकी, शीत वीर्य एवं पित्त कफ शामक पर्पट निम्नांकित रोगों में लाभकारी है—ज्वर, दाह, तृषा, कामला, वातरक्त, यकृद्विकार, रक्त पित्त, रक्त विकार, भ्रम, मूर्च्छा, मदात्यय, कुष्ठ, गण्डमाला, मूत्रकृच्छ्र। रक्तपित्तज तृष्णा में इसका शृत शीत जल फलप्रद है—
ह्रीवेरचन्दनोशीरमुस्तपर्पटकैः शृतम् ।
केवलं शृतशीतं वा दद्यात्तोयं पिपासवे ॥
—चरक चि० ४।३१

इसका क्वाथ पित्त ज्वर नाशक तथा छर्दिशामक है—
एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वर विनाशनः ।
—चक्रदत्त ज्वर ८७

क्वाथः पर्पटजः पीतः क्षौद्रश्छर्दिनाशनः ॥
—चक्रदत्त छर्दि ११

१७. पुंडरीक (सफेद कमल)—
विशेषतः सितं पद्मं पुण्डरीकमिति स्मृतम् ।
—भा० प्र० नि० पुष्प ४

यह कफपित्तजित् शीत, मधुर एवं स्निग्ध होने से उत्तम रक्तपित्त, तृषा, दाहशामक है।

१८. पटोल (परवल के पत्ते)—यह एक शीत वीर्य पित्ताहर द्रव्य है। इसके गुणों में कहा गया है—

पटोलं पाचनं हृद्यं वृष्यं लध्वग्निदीपनम् ।
स्निग्धं निहन्ति कासास्रज्वर दोषत्रयक्रमीन ॥

—मदन० वि० निघण्टु

१९. कांचनार (कचनार छाल)—गण्डमाला, अपची, लसिकाग्रन्थि शोथादि में श्वेत कायाणु भक्षण क्रिया वृद्धि करने एवं शोथघ्न, कफघ्न होने से प्रयोग होता है। तण्डुलोदक के अनुपान में इसका प्रयोग लाभदायक होता है। पित्तशामक होने से उशीरासव में इसका समावेश है।

२०. जामुन की छाल—यह परम कषाय स्तम्भन, संकोचन होने से प्रदर और प्रमेह को नष्ट करने में श्रेष्ठ है। मधुमेह की तो यह अव्यर्थ औषधि है। इसका क्वाथ वहुमूत्र में भी उपयोगी है। इसकी त्वचा, पत्र, फल फूल और अजादुग्ध से सिद्ध तैल के अभ्यङ्ग से मधुमेहजन्य दाह शान्त होता है। इसमें सौम्य लोह होने से यकृत्, प्लीहा आदि को भी वल प्रदान करता है। इसकी छाल का सघृत लेप मूर्च्छा, भ्रम, अरति एवं तृषा का निवारण करता है—

जम्ब्वाम्रातकवदर्यम्लवेतस वल्कल पश्चाम्लैः ।
हृ मुख शिरः प्रदेहा सघृता मूर्च्छार्तिभ्रमतृषाघ्नाः ॥

—वृन्द माधव

२१. शाल्मलि निर्यास (मोचरस)—सेमर की त्वचा से जो निर्यास (गोंद) निकलता है वह मोचरस कहलाता है। यह लघु, शीत, पिच्छिल एवं वात पित्ताशामक है। शुक्र-दौर्वल्य, प्रदर, रक्तपित्त, रक्तार्श, दाह आदि रोगों में यह प्रयुक्त होता है। सव अतिसारों का यह हनन करता है—

जातीफलमहिफेनं मोचरसाख्यं सविल्वमित्येतत् ।
पुटपाकरीतिपक्वं सकलातीसारसूदने सत्यम् ॥

—सिद्ध भैषज्य मञ्जूषा

यह अश्वगन्धा, मेंहदी के साथ सिद्ध जल से योनि की शिथिलता को भी दूर करता है—

मदयन्तिकाश्वगन्धामोचरसैः साधितं जलं स्त्रीणाम् ।
प्रक्षालनेन योनेः सद्यः शैथिल्यमपहरति ।

—राजमार्तण्ड स्त्री० ४५

उपर्युक्त द्रव्यों के समवाय से निर्मित यह उशीरासव पित्ताजन्य रोगों की अनुपम औषधि है। अग्नि सम्भव व्याधि हिम, स्निग्ध, स्थिर द्रव्यों के प्रयोग से शान्त होती हैं। ऐसे द्रव्य उशीरासव में विद्यमान हैं।

आचार्य शार्ङ्गधर ने इस आसव के गुणों का इस प्रकार बखान किया है—

उशीरासव इत्येव रक्तपित्तनिवारणः ।
पांडुकुष्ठं प्रमेहार्शः क्रमिशोथहरस्तथा ॥

—शार्ङ्गधर द्वितीय० १०।१७

आचार्य जयदेव ने इसे महा शक्तिधारी कहा है—

उसीरासवो वासवो वृत्रमारी
यथास्ते तथा रक्तपित्तप्रदारी ।
न किं पाण्डुकुष्ठप्रमेहप्रहारी
मतो वैद्यवर्यैर्महाशक्तिधारी ॥

—सिद्ध भैषज्य मंजूषा

नपुंसकता में उसीरासव अत्यन्त लाभदायक है। "वैद्य सहचर" नामक अपनी कृति में पं० श्री विश्वनाथ द्विवेदी ने स्त्रियों के शांत ऋतुज रोग (Menopause) में तथा क्लोरोसाइसेटीन प्रयोग के कुप्रभाव को शान्त करने में उसीरासव को सर्वश्रेष्ठ कहा है।

दीपन क्रिया करने वाला आसव होने से यह आमाशय वल्य एवं अग्न्याशय प्रसादन है। उशीर, कांचनार एवं पटोल पित्तारस वर्धक व यकृत शोधक द्रव्य हैं तथा पर्पट, किरात, कचूर आदि यकृत वल्य द्रव्य हैं। इनके द्वारा निर्मित होने से ही उसीरासव पाण्डु, क्रमि एवं शोथ हर कहा गया है। "प्लीहानं च यकृच्चैव तदधिष्ठाय वर्तते" के अनुसार रक्तपित्त का भी यकृत स्थान होने से उशीरासव से शान्त होता है। रक्तपित्त, विदाह, धातुक्षयोत्थदाह, त्वचागत दाह, मर्माभिघातज दाह, मद्यजातदाह, अंशुघात में सर्वाङ्गिक दाह प्रशमन करने में उसीरासव अद्वितीय औषधि है। शरीर में सौम्यधातु की यह पूर्ति करता है। इसके साथ ही उसीरासव सारकपित्त शामक न होकर ग्राही पित्ताशामक है। स्त्रियों के प्रदर एवं गर्भपात की शान्ति में भी यह गुणकारी है।

—कवि० श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' भिषगाचार्य
पचार (सीकर) राज.

कण्टकार्याद्यरिष्ट

कवि. श्री गिरिधारीलाल मिश्र एम.एस्-सी.ए., ए.,एम-बी.एस., आयु. वाच., साहित्यायुर्वेद रत्न

योग का नाम—कण्टकार्याद्यरिष्ट।

संदर्भ—'बहुदक नगोऽनूपः कफ मारुत रोगलान्' के अनुसार 'असम प्रदेश' की गणना 'आनूप देश' के अन्तर्गत आती है, फलतः "आनूप देशो ज्ञातव्यो वातश्लेष्मामयार्तिमान्" के अनुसार कफ और वात रोगों का असम प्रदेश में बाहुल्य होना स्वाभाविक है। अतः असम कफ प्रधान देश, कफ प्रधान भोजन (भात), तथा कफ प्रधान आयु (बालक एवं वृद्ध) वाले, कफ प्रधान रोगों श्वास, कास, नासार्श (Sinusitis), तुण्डकेरी (Tonsillitis) आदि रोगों से आक्रान्त होकर अत्यन्त ही कष्ट को प्राप्त करते हैं।

केदारमल मेमोरियल आयुर्वेदिक होस्पिटल (अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग विभागों से सुव्यवस्थित जहां प्रतिदिन ३०० से अधिक रोगी चिकित्सार्थ आते हैं) में एक तरफ कफाक्रांत रोगियों को देखता हूं तो दूसरी तरफ बाणासुर राजमहलों के खण्डहर अग्निपहाड़ के चारों तरफ फैले हुए कण्टकारी, वासा, पिप्पली के क्षुपों को देखकर "यस्य देशस्ययो जन्तुः तज्जं तस्यौषधं हितम्" के निर्देशन में "कण्टकारी कृतः क्वाथ सकृष्ण सर्वकासहा" ऋषि वचनों का ऋष्यर्चन (Research) करने हेतु "कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामर्तिनम्" के उद्देश्य से शास्त्रीयाधारानुसार अरिष्ट तथा बच्चों के लिये "कण्टकारी सीरप" का निर्माण कर सहस्त्रों रोगियों पर सफल परीक्षण किया है। सफल प्रयोग है—

योग—

संख्या	घटक द्रव्य	तौल
१	कण्टकारी (Solanum Indicum)	२ किलो
२	वासा (Adhatoda Vasica)	५०० ग्राम
३	पीपल (Piper Longum)	५० ,,
४	काली मिर्च (Black Piper)	४० ,,
५	यष्टिमधु (Glycyrrhiza glabra)	४० ,,
६	काकड़ासिंगी (Pistacia Integerrima)	४० ,,
७	कूठ (Saussurea Lappa)	४० ,,
८	धायफूल (Woodfordia Floribunda)	२५० ,,
९	गुड़ (Molasses)	५ किलो
१०	पानी (Water)	३० किलो

निर्माण-प्रक्रिया—

(क) क्वाथ-द्रव्य—कण्टकारी पञ्चांग २ किलो, वासा पंचाङ्ग ५०० ग्राम को जौकुट कर ३० किलो पानी में पकावें।

(ख) क्वाथ जल—३० किलो पानी में १० किलो पानी शेष रहने पर उतारकर ठण्डा कर छान लें।

प्रक्षेप द्रव्य—१० किलो क्वाथ में ५ किलो गुड़ घोल दें तथा कपड़े से छान लें ताकि गुड़ में मिले हुए कंकड़ आदि निकल जायं। फिर धायफूल, पीपल, कालीमिर्च, यष्टि मधु, काकड़ासिंगी, कूठ को अच्छी तरह घोल दें।

सन्धान—चिकने पात्र में डालकर सन्धान करके १ मास रखा रहने दें। बाद में छानकर बोतलों में भरलें। बस कण्टकार्याद्यरिष्ट तैयार है।

कण्टकारी सीरप—उपरोक्त कण्टकार्याद्यरिष्ट १ किलो में चीनी २ किलो डालकर १॥ तार की चाशनी बनालें। बस, बच्चों के लिए सुस्वादु सुमधुर "कण्टकारी सीरप" तैयार है। बालकास रोग का अमोघ ब्रह्मास्त्र है।

मात्रा—बड़ों के लिए "कण्टकार्याद्यरिष्ट" २ बड़ी चम्मच (Table Spoon) बराबर पानी से, बच्चों के लिए "कण्टकारी सीरप" १० बूंद से १-२ चाय चम्मच (Tea poon) तक।

सेवन काल—भोजनोत्तर, प्रातः सायं मध्याह्न या आवश्यकतानुसार।

संक्षिप्त द्रव्य गुण विवेचन

१. कन्टकारी (Solanum Indicum)—भैषज्य रत्नावली में "कण्टकारी कृतक्वाथ सकृष्ण सर्वकासहा" अर्थात् कण्टकारी के क्वाथ में पिप्पली का प्रक्षेप देकर पीने से सम्पूर्ण कास रोग नष्ट होते हैं। पाक में कटु तिक्त रसयुक्त, शुक्ररेचक, मलभेदक, अग्निवर्धक, कफ, वातजन्य विकार नाशक तथा कफ निस्सारक गुण होने के कारण कास श्वास में परमोपयोगी है।

नोट—कंटकारी छोटी का नाम Solanum xanthocarpum है। यही लेना भी चाहिए।—विशेष सम्पादक

२. वासा (Adhatoda Vasika)—यह तिक्त, कसैला, शीतवीर्य, लघु, हृदय के लिए हितकर, स्वर के लिए उत्तम तथा खांसी, श्वास, रक्तपित्त, क्षय, कफपित्त, क्षय कासनाशक है। रक्तपित्त, क्षय खाँसी की यह अव्यर्थ औषधि मानी गई है—

> वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च।
> रक्तपित्तीक्षयी कासी किमर्थमसीदति॥

अतः वासा और कण्टकारी कास रोग के अव्यर्थ उपादान होने के कारण 'कण्टकार्याद्यरिष्ट' के महत्वपूर्ण उपादान हैं। दोनों का स्थान कास रोग नाशार्थ सर्वोपरि है।

३. पीपल (Piper longum)—अग्निदीपक, दीपक, पाचक, पाक में मधुर, रसयुक्त रसायन, वृष्य, वातकफ नाशक, रेचक है। इसका प्रयोग मधु के साथ करने से पुराने श्वास कास हिक्का रोगों में लाभ होता है। वर्धमान पिप्पली का उपयोग रसायन के लिए एवं पुरानी खाँसी, दमा, यक्ष्मा, उदररोग, ज्वर, शूल, प्लीहावृद्धि, आमवात आदि रोगों में अतीव हितकर पाया गया है।

४. कालीमिर्च (Black Piper)—अग्निदीपक, कफ वातनाशक, उष्णवीर्य, कटुरस युक्त, पाक में गुरु, कफ निस्सारक है। आमाशयिक रस की वृद्धि होकर पाचन क्रिया सुधरती है, मूत्र की मात्रा बढ़ती है। श्वास शूल कृमिरोग नाशक है।

५. यष्टि मधु (Glycyrrhiza Glabra)—मधुर, शीतल, स्नेहन, बल्य, वृष्य, स्वर्य, नेत्र्य, कफशामक, मूत्रल, शोथहर है। कफ निस्सारक गुण होने के कारण स्वरभंग, कास, श्वास, श्वास नलिका शोथ, गलशोथ आदि में उपयोगी है। मीठी होने के कारण इसका टुकड़ा कासरोग में चूसने को दिया जाता है। चर्मरोग कुष्ठ व्रणशोथ एवं विषों में लेपनार्थ प्रयुक्त होती है।

६. काकड़ासिंगी (Pistacia Integerrima)—यह बल्य, कफ निस्सारक, उष्ण एवं ग्राही है। इसमें उड़नशील तैल के कारण इससे तमक श्वास, कास श्वास नलिका एवं राजयक्ष्मा आदि में अच्छा लाभ होता है। इससे श्लैष्मिक कला को बल मिलकर कफ बाहर निकलने लगता है एवं नया बनने नहीं पाता। अतिसार आमातिसार में भी लाभदायक, बच्चों के लिए परम हितकर है।

७. कूठ (Saussurea lappa)—उष्ण, दीपन, पाचन, मूत्रल, वाजीकर त्वक्दोषहर, प्रतिदूषक (Antiseptic) तथा उपसर्गनाशक (Disinfectant) है। कफ वात शामक, शुक्रशोधक, अग्निमांद्य अतिसार शिरःशूल नाशक है। कफ निस्सारक होने से इसका प्रयोग श्वास के दौरे (वेग) का शमन करता है। तमक श्वास के लिए इसका उपयोग बहुत ही लाभदायक पाया गया है।

८. धायफूल (Woodfordia Floribunda)—कटु एवं कषाय रसयुक्त है। प्यास, अतिसार, रक्तपित्त, विष

—शेषांश पृष्ठ ९७ पर देखें।

डा. श्री मुरारीलाल प्रसाद जी आयुर्वेदाचार्य

संदर्भ—भैषज्य रत्नावली

द्रव्य—धतूर का पंचांग (शाखा, मूल, पत्र, फल, छिलका सहित) कूटा हुआ, वासा की जड़ कुटा हुआ २००-२०० ग्राम, मुलहठी, पीपल, कटेरी, नागकेशर, सोंठ, नारंगी और तालीस पत्र प्रत्येक का चूर्ण १००-१०० ग्राम, धाय के फूल ८०० ग्राम, मुनक्का १ किलो, खांड़ (चीनी) ५ किलो, मधु २ किलो ६०० ग्राम एकत्रित कर सन्धान करें।

घटकों के गुण—

धतूर (शिवप्रिय-कनकाह्वय)—यह गुरु, कषैला, कटु व गर्म है। वातनाशक, ज्वर एवं आक्षेप नाशक, श्वास कास, कुष्ठ कफ विकार, शोथघ्न, वामक है। इसका अधिक प्रयोग करने से मनुष्य पागल हो सकता है विशेष गर्म है फिर भी श्रृगाल एवं पागल कुत्ते के विष को नष्ट करता है। कभी-कभी पेट के दर्द में भी लाभकारी होता है। इसके पत्ते को सुखाकर धूम्रपान करने से श्वास का वेग कम होता है तथा पत्ते को जल में पीसकर चावल के आटा में प्लास्टर के समान बनाकर उभरते हुए फोड़े पर लगाने से या ग्रन्थि शोथ पर लगाने से फोड़ा बैठ जाता है।

वासा की जड़ (अडूसा वैश्वमाता)—जड़ श्वास, कास, कफज ज्वर, शूल, अम्लपित्त, उत्क्लेश, वमन में हितकारी है, ग्रामीण जन अरुस के पत्ते का काढ़ा बनाकर कफ ज्वर एवं खांसी में पान करते हैं।

मुलहठी (जेठी मधु)—यह शीतल, भारी, मधुर, नेत्रों को हितकारी तथा शुष्क कास एवं स्वरभंग नाशक है, स्वरभंग नाश के लिए तथा स्वर बढ़ाने के लिए इसे चूसते हैं। यह श्वास, कास एवं फुपफुस शोथ तथा गले की खराश को दूर करता है, उत्क्लेश, वमन, तृष्णा, विष आदि में भी प्रयोग किया जाता है।

पीपल—प्रायः आम भाषा में पीपल ही कहा जाता है परन्तु मुख्य नाम पिप्पली है क्योंकि भ्रम हो सकता है। पीपल के नाम से पीपर वृक्ष का अस्तु पिप्पली ही जानना चाहिए। यह तीक्ष्ण, कटु, मधुर विपाक एवं शीतवीर्य है। यह पाचक, रक्तशोधक, मूत्रल, ज्वर नाशक, हृदय दौर्बल्यता, श्वास, कास, क्षय में लाभकारी है। निमोनिया में कफ को निकालने के लिए इसका अनुपान के रूप में प्रयोग किया जाता है।

कटेली—छोटी कटेरी—यह गुडुच्यादि वर्ग की औषधि है। यह गर्भधारण कराने वाली, ज्वर, अरुचि, वेदनानाशक, मूत्रल है। श्वास, कास, हृदय रोग, पीनस, पार्श्वशूल एवं रक्त शोधक है। इसमें कफ नाशक शक्ति अधिक है इसलिए कफ ज्वर, कास, श्वास, सीने का दर्द आदि में देने के लिए अधिक उपयोग होता है। ग्रामीण जन क्वाथ बनाकर गले की घरघराहट में प्रयोग करते हैं। भयंकर श्वास रोग में इसके फलों के क्वाथ में हींग भुनी हुई, मुलहठी एवं सेन्धानमक डालकर क्वाथ बनाकर पान किया जाता है। मूत्रल गुण रखने के कारण अश्मरी, मूत्रकृच्छ, सुजाक आदि में लाभकारी है।

नागकेशर—यह लघु-रूक्ष, कषाय एवं उष्णवीर्य है। यकृत एवं हृदय गर्म संस्थापक एवं बलवर्द्धक तथा वाजीकरण एवं मूत्रल है। मस्तिष्क दौर्बल्यता, नपुंसकता, उत्क्लेश, वमन, गर्भाशय सम्बन्धी रोग रक्तप्रदर, रक्तपित्त, हृद्रोग, यकृतरोग ज्वर नाशक है। श्वास कास, हिक्का, कुष्ठ आदि में भी प्रयोग इसका किया जाता है।

सोंठ (विश्वौषध, शुण्ठी)—यह पाचक, अग्निवर्धक, उत्क्लेश, वमन नाशक, उष्णवीर्य है, वातनाशक, वीर्यवर्द्धक, शोथ, अर्श, उदर रोग में भी लाभकारी है। यह कब्ज को दूर करती है जिससे खांसी व श्वास में लाभ होता है।

भारंगी—यह उष्णवीर्य है। इसे ब्राह्मणी, चिगारी कहा जाता है। इसका विशेषकर जड़ ही प्रयोग किया जाता है। यह श्वास-कास, कण्ठमाला में उपयोगी है। छत्तेदार फुन्सियों के लिए कोमल पत्तियों का रस व घृत मिलाकर लगाने से ठीक हो जाता है।

तालीसपत्र—यह उष्ण वीर्य है। इसके प्रयोग से ज्वर, श्वास, कास, राजयक्ष्मा का नाश होता है। यह स्मरणशक्ति वर्द्धक भी है।

धाय के फूल—यह शीतवीर्य, कटु विपाक, कषाय, कफ पित्तशामक है। इसमें स्तम्भन, दाह नाशक, मद को दूर करने का गुण है। आसवारिष्टों में प्रायः ९०% प्रयोग किया जाता है। रक्तप्रदर, श्वेत प्रदर, रक्तपित्त में प्रयोग किया जाता है। यह विष का भी नाश करता है।

मुनक्का—यह मीठा व खट्टापन लिए हुए बीजदार एक पौष्टिक अंगूर का सुखाया हुआ फल है। इसे गोस्तनी, कपिल द्राक्षा, अंग्रेजी में रेजिन्स कहते हैं। यह भूख बढ़ाने वाला, हृदय को शक्ति देने वाला, कफ निकालने वाला, श्वास कास, ज्वर, तृषा एवं वातनाशक है, उत्तम गुणों के कारण ज्वर में प्यास रोकने के लिए तथा भूख जाग्रत करने के लिए बीज को निकालकर काला नमक डाल अग्नि में भूनकर चूसने के लिए दिया जाता है। यह कब्ज नाशक भी है।

खांड़—यह ईख के रस से बना हुआ राब है। देहातों में इसका मीठा-मीठा शर्बत के रूप में खूब प्रयोग होता है। यह कब्ज नाशक, बलकारक, मधुर, रक्तवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, रक्तरोग नाशक है।

निर्माण विधि—

आसवारिष्ट साधारणतः मिट्टी के मटकों में तैयार किये जाते हैं। कहीं-कहीं अन्य पात्रों में तैयार करने का विधान मिलता है। आजकल लकड़ी के बड़े पीपों में निर्वात संधान करके आसवारिष्टों को बनाया जाता है। जिस पात्र में आसवारिष्ट तैयार करना हो—पहले उसे भली भाँति स्वच्छ कर लें। तदनन्तर जल से धोकर सुखा लें। पुनः घृत का लेपन करके कार्य में लावें। विधिपूर्वक तैयार किये गये मटके में ४८ किलो स्वच्छ जल छानकर भर लें। अब उसमें प्रथम गुड़ डालें, उसके बाद मधु और मुनक्का मिलावें। तदनन्तर धाय के फूलों का अवकुटा चूर्ण और फिर अन्य द्रव्यों के मिश्रित चूर्ण को उसमें डाल दें। पुनः मटके का मुंह बन्द करके आसव बनाने के लिये ४० दिन के वास्ते गड्ढा खोदकर उसमें मटके को स्वच्छता के साथ दबा दें। पुनः समय व्यतीत होने पर निकाल छानकर सुरक्षित बोतलों में रख दें। विधान ३० दिन का है परन्तु ४० दिन रखने से शुद्ध बनकर विशेष गुणकारी हो जाता है।

मात्रा—१५ ग्राम समान भाग जल मिलाकर दोनों समय जल से भोजन के बाद दें।

गुण—

यह श्वास कास का प्रसिद्ध आसव है तथा जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, उरःक्षत का भी नाश करता है।

विशेष—१. यह दमा तथा श्वास वेग में लाभकारी है। दीर्घकाल तक सेवन करने से स्थायी लाभ होता है।

२. जुकाम, सर्दी, नासिका शोथ में भी प्रयोग किया जाता है।

३. यह हृदय को ताकत देकर हृदय व फुफ्फुसों में होने वाले रक्तपित्त में लाभकारी है।

४. श्वास रोग की प्रबल औषधि है।

नोट—श्वास रोग में दी जाने वाली अन्य आयुर्वेदिक औषधियां—अमृतार्णव रस, आनन्द भैरव रस (कास), त्रैलोक्य चिन्तामणि रस, भैरव रस, महालक्ष्मी विलास रस, महाश्वासारि लौह, रसेन्द्र गुटिका, श्वास कास चिन्तामणि रस, श्वास कुठार रस, श्वासान्तक रस, सूर्यावर्त रस, सोमयोग, हेमादिपर्पटी रस, बब्बूलादि वटी, सोम कल्पासव, सोम कल्प रस।

श्वास रोग की मिश्रित चिकित्सा—

(१) श्वास कास चिन्तामणि १ ग्राम, अभ्रक भस्म शतपुटी २ ग्राम, सोमयोग ३ ग्राम। मात्रा १०। सुबह-शाम, दुपहर पीपल का चूर्ण १ ग्राम शहद ५ ग्राम के साथ प्रयोग करें। १० बजे ४ बजे।

च्यवनप्राश अवलेह ३ ग्राम, तालीसादि चूर्ण २५०

मिग्रा., अभ्रकभस्म शतपुटी २५० मिग्रा., तीनों को एक में मिश्रित करके ६ ग्राम उबाले हुये कपड़छन जल के साथ अथवा गौदुग्ध के साथ दें।

भोजन पश्चात्—आयुर्वेद प्रचार समिति पटना का सोमापान २ चम्मच जल के साथ देना चाहिए।

साथ-साथ अगर हो सके तो मार्तण्ड फार्मास्युटिकल्स बड़ौत का सोमा+हिरण्य को मिलाकर त्वचान्तर्गत कुल १२ इंजेक्शन पूर्ण आराम के लिये लगाना चाहिए।

(२) श्वास कुठार रस ३ ग्राम, चन्द्रामृत रस ३ ग्राम, सोमयोग ३ ग्राम। मात्रा १०। आर्द्रक स्वरस एवं मधु के साथ दिन में तीन बार दें।

१० बजे व ४ बजे=भैषज्य रत्नावली का भार्गी गुड़ १० ग्राम जल या गौदुग्ध से दें।

भोजन बाद=दो समय=कनकासव १० मिलि०+वासारिष्ट १० मि० लि० समान भाग जल के साथ प्रयोग करें। अधिक आवश्यकता पड़ने पर उपरोक्त इन्जेक्शन भी लगायें।

कनकासव के समान आसवारिष्टों में केवल सोमकल्पासव है जिसके विषय में आप आगे पढ़ेंगे।

—वैद्य श्री मुरारी प्रसाद आर्य आयुर्वेद वारिधि,
श्री सन्त विनोबा भावे आयुर्वेदिक चिकित्सालय
शेरवां (अदलहाट) जिला मिर्जापुर (उ०प्र०)

कण्टकार्यादिरिष्ट : : पृष्ठ ९४ का शेषांश

और क्रमिनाशक है। आसवारिष्टों में शीघ्र किण्वोत्पत्ति के लिए प्रयोग किया जाता है जिससे संधान भली प्रकार होता है।

९. गुड़ (Malasses)—आसव अरिष्ट निर्माण का महत्वपूर्ण उपादान है। जल या क्वाथ में गुड़ घोलकर धाय फूल आदि के मिलाने से संधान क्रिया होती है तथा गुड़ के घुले हुए जल या क्वाथ में प्रक्षिप्त दवाओं के गुण चिरस्थायी हो जाते है। गुड़ वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, वातनाशक, अग्निजनक है।

१०. जल (Water)—श्रम को हरने वाला, क्लान्ति नाशक, तृप्तिदायक, हृद्य, तृषाहर, मधुरादि रसों का कारण, सदाहितकारक अमृत के समान जीवनदाता जल अपने आप में समस्त औषधियों का गुण ग्रहणकर औषधाधार है।

गुण और उपयोग—

समस्त प्रकार के कास रोग के लिए यह बहुपरीक्षित अमृततुल्य, आशुगुणकारी दिव्य महौषधि है। कास, श्वास, बलगमी खाँसी, कुक्कर कास (Whooping cough), नजला जुकाम, तमक श्वास (Bronchial Asthma) में लाभदायक है। कफघ्न और कफ निस्सारक होने से छाती में जमे हुए कफ को दूर कर श्वास रोग के दौरे को भी कम करता है तथा वर्षा, सर्दी, गर्मी मौसम परिवर्तन से उत्पन्न खांसी में यह कासनाशक तथा कफोत्सारक दवा है। यह श्वास नलिका शोथ (Bronchitis), तमक श्वास (Bronchial Asthama), कण्ठ नली प्रदाह (Laryngitis), स्वर नली प्रदाह (Pharyngitis), कण्ठ मूलग्रन्थी शोथ (Tonsillitis) तथा कण्ठ और फुफ्फुस सम्बन्धी रोगों की खांसी, दमे की प्रातः कालीन खांसी, शुष्क तथा जीर्णकास या क्षयजन्य कास पर अत्यन्त उपयोगी रामबाण महौषधि है। वृक्क के रोग, मूत्रकृच्छ, मूत्राघात पर भी लाभदायक है। मूत्र संस्थान की श्लैष्मिक कला को उत्तेजित कर मूत्र की मात्रा बढ़ाता है, आमाशयिक रस की वृद्धि कर पाचन क्रिया को सुधारता है। दीपन, पाचन गुणों से युक्त उत्तम कासनाशक सहस्रानुभूत प्रयोग है।

—कवि. श्री गिरिधारीलाल मिश्र एम.एस-सी.(ए.)ए.बी.एस्
आयुर्वेद वाचस्पति, साहित्यायुर्वेद रत्न,
प्रधान चिकित्सक—केदारमल मेमोरियल आयुर्वेद होस्पिटल,
तेजपुर (असम)

—डा॰ एल.एन. दीक्षित डी.आई.एम.ए.एस., ए.वाई.एस. ६/२७, ऋषिनगर शुक्लगांज, उन्नाव

ग्रंथ संदर्भ—भा. भै. रत्नाकर व भै. र.

तुलां प्रसन्नां परिगृह्य शुद्धां पलाष्टक चोडुपतेःक्षिपेच्च ।
एला च सूक्ष्माघन शृंगवेर-यमानिका वेल्लजमत्रसर्वम् ॥
पल प्रमाणं विहिते च भाण्डे, मासं निध्याद् विषगत्र तलात् ।
विसूचिकायाः परमौषधं यद्, निहन्ति चान्यान् विविधान् विकारान् ॥

अर्थात्—शुद्ध सुरा या रेक्टीफाइड स्प्रिट ५ सेर लेकर उसमें ३२ तोला शुद्ध कपूर पीस कर मिला दें, इसके पश्चात् निम्न वस्तुओं का चूर्ण इसी में मिलादें—

प्रक्षेप वस्तुओं के नाम—

छोटी इलायची के वीज, नागरमोथा, सोंठ, अजवाइन और वायविडग। ये प्रत्येक ४-४ तोला।

मिट्टी के भाण्ड (अमृतवान) में भरकर चूड़ीदार ढक्कन से वन्द कर दें और १ महीने तक रखा रहने दें। इसके लिए स्थान ऐसा हो जहाँ हवा का तेज झोंका न हो, उष्णता युक्त हो, एकान्त हो, और वहाँ अंधेरा रहता हो। तत्पश्चात् सन्धि खोलकर उसे कपड़े से या महीन जाली की छलनी से छान लें और पेचदार ढक्कन की शीशियों में भर लें। यह आरम्भक विसूचिका की परमौषधि, उदरशूल अतिसार तथा कफ विकारों में उपयोगी है। इसकी मात्रा ५ से २० बूंद है, वतासे या मिश्री या सौंफ के अर्क से दें।

इसी के समान दूसरे प्रयोग इस प्रकार हैं—

देशी कपूर १५ तोला कूटकर एक वोतल में भरें। उसी में मधु ३० तोला और शुद्ध अफीम दो तोला डालकर वोतल का मुख अच्छी तरह वन्द कर दें। ७ दिन के पश्चात् उपयोग में लें। मात्रा १ से ३ बूंद, मिश्री चूर्ण, बताशे के साथ देने से हैजे की उल्टी और दस्त शीघ्र वन्द होते हैं।

दूसरा प्रयोग—कपूर ६। तोला लेकर छोटे-छोटे टुकड़े करें। मद्यार्क (रेक्टीफाइड स्प्रिट) ३० तोला में मिलाकर वोतल को खूब हिलावो। जब कपूर गलकर मिल जाय तब उसमें पिपरमेंट का तेल १॥ तोला मिलादें। इसे अर्क कपूर कहते हैं। मात्रा २ से ४० बूंद तक १५-२० मिनट के अन्तर से दें, जव तक कै दस्त बन्द न हो जांय तव तक। बाद में आध-आध घण्टे में दें।

रोगी के बल-आयु के अनुसार मात्रा घटा बढ़ा सकते हैं। इसे देने के बाद रोगी को पानी नहीं पिलाना चाहिए। प्यास अधिक लगती हो तो वाष्प जल के साथ उत्तम अर्क कपूर ही दें। हैजे की आरम्भिक अवस्था में ही उपयोग होता है। अन्तिम अवस्था में विशेष लाभ नहीं होता।

अमृतधारा का योग—

पिपरमेंट १ भाग, कपूर २ भाग, सत अजवाइन ३ भाग मिलाकर रख लें। जव ये मिलकर तरल हो जांय तव वताशे में या शुद्ध जल के साथ ५-७ बूंद की मात्रा में प्रयोग करें। आध्मान, पेट की पीड़ा, उदर विकार, उदर कृमि, मूतोन्माद की अवस्था में होने वाली वान्ति दूर होती है। लू लगने पर कै-दस्त हों या केवल वान्ति हो उस समय अर्क कपूर या उक्त अमृतधारा सेवन से वान्ति दूर हो जाती है। विच्छू, वर्र आदि के दंश पर भी इसे लगायें।

कपूर का अल्प मात्रा में ही प्रयोग हितकर होता है, अधिक मात्रा अहितकर होती है। इसके विशाल प्रभाव को नष्ट करने के लिए छोटी पीपल और खांड एकत्र पीस कर खिलाते हैं। ऊपर से खूब पान खिलाते हैं। कमल पुष्प का शर्बत भी दिया जाता है। कपूर यद्यपि विषैला नहीं है फिर भी अधिक मात्रा में विषैले लक्षण उत्पन्न कर देता है। जैसे-स्नायुमण्डल में व वातनाड़ियों में अत्यधिक उत्तेजना, इसके बाद शैथिलता, आलस्य, थकावट, अन्त्रदाह, मुँह, गले में दाह युक्त वेदना, जीभ मलाना, वमन, वेहोशी (कभी-कभी), हाथ ठण्डे, सर्वांग में झिनझिनी, नाड़ी क्षीण, किन्तु विशेष स्फुरण युक्त कमर में पीड़ा, मूत्रावरोध पेशियों का जकड़ना, होंठ काले पड़ जाना, श्वासोच्छावस में कष्ट, मूर्च्छा व मृत्यु।

—डा० श्रीमती विमला अग्रवाल, विमला अस्पताल, बुलन्दशहर

ग्रन्थ संदर्भ—भैषज्य रत्नावली, शार्ङ्गधर संहिता, सिद्ध भैषज्य संग्रह, रस तन्त्रसार आदि।

घटक—कूड़े के जड़ की छाल ताजी ५ सेर, मुनक्का २॥ सेर, महुए के फूल, गम्भारी फल या छाल आधा-आधा सेर लेकर जौकुट कर १ मन १२ सेर जल में पकावें। जब १३ सेर शेष रह जाय तब उसे छान लें। उसमें धाय के फूल का चूर्ण १ सेर, गुड़ ५ सेर मिलाकर चिकने घट में या चीनी के माण्ड में भरकर सुरक्षित रखें। ग्रीष्मऋतु में २०-२५ दिनों ही तैयार हो जाता हैं शरद ऋतु में १ महीना लग सकता है। तैयार होने पर छानकर शीशियों में भरकर रख दें। मात्रा—१ से २॥ तोला तक जल मिला कर दें। शास्त्रीय गुण—ज्वर, रक्तातिसार, संग्रहणी में लाभप्रद है। अग्नि दीपक है।

ज्वरान् प्रशमयेत् सर्वान्, कुर्यात्तीक्ष्णं धनञ्जयम्।
दुर्वारां ग्रहणी हन्ति रक्तातिसारमुल्वणम्॥

इसका सेवन भोजन करने के २ घन्टे वाद ही करना चाहिये जिससे पाचन क्रिया में कोई बाधा न पड़े।

इस आसव में कुटज की छाल सूखी और पुरानी की अपेक्षा ताजी छाल विशेष कड़वी, अग्निदीपन, ग्राही, पाचन, अतिसारहर, ज्वरहर, बल्य और रक्त संग्राहक होती है। इसका आसव बच्चों और गर्भिणी स्त्री को बिना किसी भय के दिया जा सकता है। इसकी ताजा छाल का भी उपयोग बहुत है। रक्तातिसार, रक्त प्रवाहिका में इसके समान अन्य औषध नहीं। नवीन तीव्र प्रकोपयुक्त अतिसार में इससे विशेष लाभ नहीं होता। जीर्ण प्रवाहिका में निश्चित लाभ होता है। इसके अरिष्ट के साथ अन्य औषधियों का प्रयोग भी किया जा सकता है। जैसे—शंखोदर रस, जातीफलादि चूर्ण, कर्पूर रस, पंचामृत पर्पटी।

उपयोग—

यह कुटजारिष्ट, संग्रहणी, अतिसार, रक्तातिसार, पेचिस (प्रवाहिका), मन्दाग्नि, ज्वर आदि में उपयोग किया जाता है। बच्चों की संग्रहणी, रक्तातिसार और ज्वर में भी हितकर है।

कुटज किंचित वामक व कफस्रावक है। इस हेतु से जीर्ण कास और छोटे बच्चों के नूतन कास में कफस्रावी रूप में उपयोगी है। इतना ही नहीं श्लैष्मिक सन्निपात और श्वसन सन्निपात में पुनर्नवा और मुलैठी क्वाथ के साथ कुटजारिष्ट देने से श्लेष्मा स्राव होकर खांसी का त्रास कम हो जाता है। इस योग से श्वास वाहिनियों का क्षोभ और प्रदाह नष्ट होता है। छोटे बच्चों के श्वसन ज्वर (डब्बा) में कुटजारिष्ट और द्राक्षारिष्ट मिलाकर देने से सत्वर लाभ होता है।

यह औषध प्रवाहिका प्रधान संग्रहणी के विकार में उत्कृष्ट है। संग्रहणी में भी कालज (अर्थात् वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में होने वाली और अन्य समय में होने वाली, ऐसे दो विभाग हैं कीटाणुओं से उत्पन्न) संग्रहणी का कुटजारिष्ट से सत्वर शमन होता है। बार-बार अति कम मल, कुछ आम, रक्त गिरना, ज्वर, अल्प मात्रा में वमन, उदर में भयंकर मरोड़, शौच के समय किछन होने पर भी यह उत्तम कार्य करता है।

ज्वररहित ग्रहणी रोग में जिसमें तीव्रता हो उसमें, यह १ से २ औंस की मात्रा में, जल मिलाकर, दिन में ४ बार देते रहने से लाभ हो जाता है। उदर में मरोड़ बलपूर्वक होती हो तो इस आसव के साथ वेदनाशामक—अमृत वटी, कनकसुन्दर रस या सूतशेखर रस जैसी औषध देनी चाहिये। इनमें अमृत वटी विशेष लाभप्रद है।

—शेषांश पृष्ठ १०१ पर देखें।

कुमार्यासव

—श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त (विशेष सम्पादक)

घटक—सुपक्व घीकुमार (ग्वार पाठे) का रस १२ सेर १३ छटाँक, गुड़ ५ सेर, शहद २॥ सेर, लौह भस्म व शुद्ध बुरादा लौह २॥ सेर, धाय के फूल ३२ तोला।

प्रक्षेप द्रव्य—सौंठ, मिर्च काली, पीपल छोटी, लौंग, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागकेशर, चित्रक मूल छाल, पीपलामूल, वायविडंग, गजपीपल, चाव, हवुषा, धनिया, लोध्र, कुटकी, नागरमोथा, हरड़, वहेड़ा, आमला, रास्ना, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, मुलेठी, दन्ती (जमालगोटे की जड़), पोहकर मूल, वरियारे की जड़, अतिवला, केवांच की जड़, गोखरू, सौंफ, हिंगोट फल मज्जा, अकरकरा, उटंगन के वीज, सफेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा की जड़, लोध्र, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक २ तोला लेकर चूर्ण करें।

निर्माण विधि—एक चिकने और धूपित घट में उक्त सभी वस्तु भरकर संधान विधि के अनुसार आसव निर्माण करें। जब आसव निर्माण हो जाय तव छानकर वोतलों में भर लेवें।

मात्रा—१ से २ तोले तक (पूरी) वच्चों को ३ से ६ मासे तक जल मिलाकर भोजनोपरान्त दें।

शास्त्रीय गुण—

इस आसव के सेवन से वल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है। यह शरीर को पुष्ट करता है, रुचिकारक है, परिणामशूल, सभी उदररोग, दारुण क्षुद्ररोग, सभी प्रमेह, उदावर्त, स्मरणशक्ति का ह्रास, मूत्रकृच्छ, अपस्मार, वीर्य दोष, पथरी, कृमिरोग तथा रक्तपित्त रोगों को यह निश्चय ही दूर करता है।

नोट—कुमार्यासव के अनेक योग ग्रन्थों में पाये जाते हैं। योग रत्नाकर में निम्न योग है—

कुमारी का रस १०२४ तोला, गुड़ ४०० तोला, विजया (हरड़ या भांग) १०० तोला को जल १०२४ तोला में चतुर्थांश क्वाथ करें। मधु २५६ तोला, चूर्ण धाय के फूल ६४ तोला एक घट में भरें। प्रक्षेप द्रव्य—जायफल, लौंग, शीतलचीनी, जटामांसी, चव्य, चित्रक, जावित्री, काकड़ासिंगी, वहेड़ा की छाल, पुष्करमूल ४-४ तोले इनका जौकुट चूर्ण वनाकर लोह भस्म २ तोला, ताम्र भस्म २ तोला लेकर एक घट में संधान करें। आसव तैयार होने पर छानकर उपयोग में लावें।

मात्रा—१। से २॥ तोले तक। भोजन के वाद जल मिलाकर।

शास्त्रीय उपयोग

स्त्रियों का ऋतु दोष, गुल्म, रक्तगुल्म, प्लीहा, खाँसी, श्वास, क्षय, उदर रोग, अर्श, वातरोग, अपस्मार, मन्दाग्नि, उदरशूल आदि इसके सेवन से नष्ट होते हैं। पाचन शक्ति प्रवल होती है।

इस आसव में विजया शब्द से हरड़ ही अधिकतर ग्रहण करते हैं। उसके कारण यह आसव दीपन, पाचन, किंचित दस्तावर, मूत्रल, वल्य, शोथहर, रक्तप्रसादक और दाहनाशक है। इसका कार्य विशेषतः पचनेन्द्रिय पर होता है। आमाशय, ग्रहणीस्राव, अग्न्याशय, यकृत, लघ्वंत्र, वृहदन्त्र, गुदनलिका और गुद त्रिवली पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह पित्त विरेचक है। इसका गर्भाशय वीजाशय वीजवाहनियों पर भी होता है। आर्त्तव प्रवृत्ति का भी किंचित् कार्य करता है।

इस आसव का सतत और अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए। कभी-कभी मूत्रमार्ग में इससे जलन हो जाती है। गुद मार्ग की शिरायें रक्तपूर्ण होकर रक्तार्श हो सकता है और खून गिरने लगता है। वृक्क

प्रदाह की भी उत्पत्ति हो सकती है अतः मूत्र रोगी जिन्हें आंत्र प्रदाह हो ऐसे रोगी को भी यह आसव नहीं दें।

यह आसव छोटे बच्चों के लिए अधिक उत्तम है। इससे उनकी पाचन क्रिया सुधरती है, पाचक पित्त का स्राव अधिक होता है, शौच शुद्धि होती है। आहार का रस अच्छा बनता है। रक्त की वृद्धि होती तथा उससे बल की वृद्धि होती है। उदर के कृमियों का भी नाश होता है।

बच्चों को बार-बार उत्पन्न होने वाले कास रोग में भी उपयोगी है। श्वास नलिका में कफ का संग्रह नहीं होने पाता। इनका कार्य प्राण-उदान वायु दोनों पर होने से कास कम होती है। श्वास रोग भी कम दुःखदाई होता है।

कुमार्यासव यकृद जन्य होने से यकृत वृद्धि की उपयुक्त औषधि है। यकृत निर्बल होने पर यकृत पित्तस्राव सम्यक् नहीं होता उस पर कुमार्यासव देना चाहिये। यकृत की अशक्ति से उत्पन्न अतिसार में भी उत्तम है जबकि दस्त श्वेत वर्ण का दुर्गन्ध युक्त हो। पित्ताश्मरी शूल में इसके उपयोग से उत्तम फल मिलने के उदाहरण मिले हैं।

जीर्ण कोष्ठबद्धता में कुमार्यासव का उपयोग उत्तम फलदायक प्रमाणित हुआ है। इससे आंत्र की प्रसरण क्रिया बढ़ती है, मल शुद्ध होता है; किन्तु इसका सेवन अधिक दिनों तक नहीं करना चाहिये।

वातज अर्श रोग होने पर भी इसका प्रयोग किया जाता है। इसके साथ कोई विरेचक दवा होनी चाहिये।

अजीर्ण व गुल्मजनित शूल में भी उपयोगी है। स्त्रियों के बीजाशय विकृति से उत्पन्न नष्टार्तव होने पर इसके साथ कन्यालोहादि वटी या महायोगराज गुग्गुल देने से यथार्थ लाभ मिलता है।

बड़ी आयु की लड़की जिसे पाण्डु व हारिद्रिक रोग होता है उसमें भी यह उपयोगी है। इसके साथ उसे लोह भस्म या स्वर्ण माक्षिक भस्म अथवा मण्डूर देना चाहिये।

कुटजारिष्ट : : शेषांश पृष्ठ ९९ का

अमृत वटी—

शुद्ध वत्सनाभ ६ भाग, वराटिका भस्म ५ भाग, चूर्ण काली मिर्च ९भाग मिलाकर वटी करें। मात्रा—आधा रत्ती।

दुर्निवार संग्रहणी का बल कम होकर, जैसे-जैसे शौच का बल कम हो जाय, वैसे-वैसे कुटजारिष्ट की मात्रा भी कम करते जाना चाहिये। जीर्ण रोग में मात्रा कम ही विशेष गुणकारी होती है। संग्रहणी के जीर्ण रोगी जो बारम्बार पथ्य अपालन के कारण पीड़ित होते रहते हैं। ऐसे रोगियों को निरोग बनाने के लिए आग्रहपूर्वक पथ्य पालनसहकुटजारिष्ट की मात्रा कम करते हुए दीर्घ काल तक देते रहना चाहिए। व्याधि जितनी जीर्ण हो, उतनी ही मात्रा कम देनी चाहिए और अल्प मात्रा में एक दो वर्षों तक इसे देते रहना चाहिए।

यकृद् विद्रधि, अग्निमांद्य, कोष्ठशूल ये उपद्रव संग्रहणी के तीव्र विकार के पश्चात् उत्पन्न होने पर भी कुटजारिष्ट का अच्छा उपयोग होता है। इसके साथ शिलाजीत आदि शोथघ्न और कीटाणु विषनाशक औषधियां भी देना जरूरी है।

कुटजारिष्ट का उपयोग अग्निमांद्य उत्पन्न होने पर भी उत्तम होता है। इसके उपयोग से पित्तस्राव योग्य परिमाण में उत्पन्न होने लगता है जिससे अग्नि बल की वृद्धि होकर आहार के पचन और शोषण होने में अच्छी सहायता मिलती है।

ग्रहणी की विकृति होने पर अग्निमांद्य, उससे अपचन, अपचन से आमदोष संचित होकर ज्वर आने लगता है, वही ज्वर बाद में त्रासदायक बन जाता है। उसका संतत ज्वर के सदृश हो जाना, ज्वर का वेग तीव्र न होने पर भी व्याकुलता अधिक रहना, उबाक, क्षुधामंद, अरुचि, मुँह फीका रहना, जिह्वा पर मैल की तह आ जाना, भोजन बे-स्वाद लगना आदि लक्षणयुक्त संतत और सतत ज्वर में कुटजारिष्ट अति उत्तम कार्य करता है।

कुटजारिष्ट का उपयोग उस समय भी उत्तम रहता है जब आंत्र की संग्राहक शक्ति कम होकर, अन्त्र शिथिल हो जाते हैं, बार-बार दस्त होते हैं, कभी-कभी रक्तातिसार होने लगता है, गुदभ्रंश आदि भी देखा जाता है।

—डा० श्रीमती विमला अग्रवाल,
विमला अस्पताल, बुलन्दशहर

खदिरारिष्ट

—डा० शिवपूजन सिंह कुशवाह एम. ए. साहित्यालङ्कार, एच. एम.डी.एस.

'खदिरारिष्ट' का वर्णन किया जाता है। यह शार्ङ्गधरोक्त कुष्ठादि चर्मरोगों के लिए अद्‌भुत औषधि है। परीक्षित है।

निर्माण विधि—

खैरसार २॥ सेर, देवदारु २॥ सेर, वावची (वाकुची) ४८ तोला, दारुहल्दी १ सेर, आँवला+हर्र+बहेड़ा तीनों मिलाकर ८० तोला। इन सबको जौकुट कर १०२ सेर ३२ तो० जल में पका अष्टमांश जल शेष रहे तब छानलें।

प्रक्षेप द्रव्य—शुद्ध शहद १० सेर, चीनी ५ सेर, धाय के फूल १ सेर, कंकोल (कबाबचीनी), लौंग, नागकेशर, छोटी इलायची, जायफल, दालचीनी, तेजपात प्रत्येक ४-४ तोला तथा पीपल १६ तोला। इनका चूर्ण बनाकर डाल दें। इन सबको चीनी मिट्टी के पात्र में भर कर एक मास रहने दें। १ मास पश्चात् वस्त्र से छानकर रख लें।

मात्रा एवं अनुपान—१। से २॥ तोला बराबर जल मिला कर भोजनोपरान्त प्रातः सायं दें।

औषधियों की मात्रायें प्राचीन हैं वर्तमान समय में ग्रामों और किलो में वजन होता है। पाठक आधुनिक समय के अनुसार मात्रायें निश्चित बनावें।

गुण व उपयोग—

इसके सेवन से लाल, काले व कुष्ठ के चकत्ते, कपालकुष्ठ, महाकुष्ठ, खुजली, मण्डलकुष्ठ, श्वेत कुष्ठ, दद्रु, रक्तविकारजन्य ग्रन्थि, रक्तविकार, वातरक्त, विसर्प, व्रण, सूजन, नारू रोग, गण्डमाला, अर्बुद, यकृत्, गुल्म, कास, श्वास, आमविकार, हृद्रोग, पाण्डु रोग और उदर रोग नष्ट होते हैं।

अनेक प्रकार के दूषित आहार-बिहार के कारण रक्त दूषित हो, उसमें रोग उत्पन्न करने वाले कृमि उत्पन्न हो जाते हैं। पुनः यही कृमि खुजली, कुष्ठ, विसर्पादि रोगों को उत्पन्न करते हैं। रक्त में विकार होने से चमड़ी, मांस, हड्डियां, शुक्रधातु आदि विगड़ जाते तथा पाचक शक्ति भी निर्बल हो जाती है। ये रोग शीघ्र अच्छे भी नहीं हो पाते हैं। ऐसे कठिन रोगों को अच्छा करने के लिये खदिरारिष्ट गन्धक रसायन के साथ प्रयोग किया जाता है। यह अत्यन्त पाचक, रक्त शोधक और विरेचक है। यह रक्त में उत्पन्न दूषित कृमि को नष्ट करता, आंतों को पुष्ट बनाता तथा स्वच्छ करता है। रक्त को शुद्ध करता है और त्वचा के रोगों को भी नष्ट करता है। यह अनेक कुष्ठों में तथा कण्डु, दद्रु आदि क्षुद्र कुष्ठों में होने वाले कृमि को शीघ्र नष्ट कर रोग मुक्त कर देता है। अतएव इसकी गणना कुष्ठघ्न औषधियों में की जाती है।

खदिरारिष्ट का प्रभाव लसिका पर विशेष पड़ने से महाकुष्ठ में भी यह बहुत शीघ्र लाभ करता है। क्योंकि महाकुष्ठ में लसिका में सर्व प्रथम कीटाणु उत्पन्न होते हैं और वहीं से समस्त शरीर में फैल कर त्वचा-मांस आदि को दूषित करते हैं। महाकुष्ठ के कीटाणु और राजयक्ष्मा के कीटाणुओं में बहुत समानता पाई जाती है। खदिरारिष्ट के सेवन से ये कीटाणु निर्बल और शिथिल हो जाते हैं। हृदय की घबड़ाहट या हृदय की विशेष धड़कन में खदिरारिष्ट बहुत लाभ करता है।

—डा० शिवपूजन सिंह कुशवाह एम.ए., साहित्यालङ्कार,
द्वारा—हैनरी एण्ड फुटवियर
कारपोरेशन आफ इण्डिया लि०
१३/४००, सिविल लाइन्स, हजारी बगला, कानपुर

चन्दनासव

डा० श्रीमती विमला अग्रवाल

ग्रंथ संदर्भ—भैषज्य रत्नावली शुक्रमेह चिकित्साधिकारे।

घटक—श्वेत चन्दन, नेत्रबाला, नागरमोथा, गम्भारी छाल, नीलकमल, प्रियंगु, पद्माख, पठानी लोध्र, मंजीठ, लाल चन्दन, पाठा, चिरायता, वट वृक्ष की छाल, पिप्पली, कच्चूर, पित्तपापड़ा, मुलेठी, रासना, पटोलपत्र, कचनार की छाल, आम की छाल और मोचरस ये २२ द्रव्य, प्रत्येक ४ तोला लेवें। धाय के फूल ६४ तोला, मुनक्का ८० तोला, जल २७ सेर, शक्कर ५ सेर, गुड़ उत्तम २॥ सेर। प्रथम उक्त २२ द्रव्यों को कूटकर चूर्ण बना लें। मुनक्का को बीज रहित पीस लें और धाय के फूलों को भी कूट पीस लें। बाद में प्रथम गुड़ और शक्कर जल में घोल दें। साथ में चूर्ण डालकर आसव पात्र में डालकर मुख बन्द कर एक मास पर्यन्त संधान हेतु सुरक्षित स्थान पर रख दें। बाद में संधान पूर्ण होने पर छानकर शीशी में भर लें। मात्रा—२ तोला जल मिलाकर भोजनोपरान्त, यह शुक्रमेह के लिये उत्तम योग है। साथ ही अग्निदीपन, पौष्टिक, बलवर्द्धक और हृदय के लिए हितकर है।

दूसरा योग—भैषज्य रत्नावली, ओजोमेह चिकित्साधिकारे।

घटक—सफेद चन्दन, लाल चन्दन, सरल काष्ठ, देवदारु, हल्दी, दारूहल्दी, शीतल चीनी, चित्रकमूल छाल, आमला, निशोथ, अगर, शतावर, पाषाणभेद, कृष्णसारिवा, श्वेत सारिवा, अड़ूसे की जड़ की छाल, लक्ष्मणा की जड़, अभाव में कटेरी की जड़, बबूल की छाल, वरुणा की छाल, इन १९ द्रव्यों को ३-३ तोला लेवें। मुनक्का १ सेर, धाय फूल ६३ तोला, शक्कर ५ सेर, स्वर्णमाक्षिक भस्म २ तोला। उक्त १९ द्रव्यों को कुट पीस लें। मुनक्का को भी पीस लें। साथ ही धाय के फूलों को भी पीस लें। २७ सेर जल में घोलकर एक चिकने पात्र में भरकर संधान करें। १ महीने रखा रहने दें। बाद में छानकर शीशियों में भर लें।

मात्रा—२ तोला जल मिला भोजनोपरान्त सेवन करें।

गुण—मूत्रदोष, शुक्रदोष, रजदोष इसके सेवन से नष्ट होते हैं—जैसे २० प्रकार के प्रमेह, १३ प्रकार के मूत्राघात, ८ प्रकार के मूत्रकृच्छ, ४ प्रकार की अश्मरी, हलीमक, पाण्डुरोग, अंत्रवृद्धि, कामला, अग्निमांद्य, कुष्ठ, श्वास, कास, अरोचक तथा औपसर्गिक मेह (सुजाक) ये सभी रोग निःसंदेह नष्ट होते है।

तृतीय योग-हमने स्वयं चन्दनासव निर्माण किया था। वह इस प्रकार का था—

चन्दन बुरादा २॥ सेर, शक्कर ५ सेर, जल २० सेर, मुनक्का २॥ सेर इन सबको आसव पात्र में भरकर संधान कर १ महीने पश्चात् निकाला तो इतना सुगन्धित, स्वादिष्ट तथा गुणकारी सिद्ध हुआ कि कुछ कहते नहीं बन पड़ता। शीतल, पित्तनाशक, दाहनाशक, मूत्रकृच्छ्र आदि में अत्यन्त हितकर और मूत्रल था। ग्रीष्म ऋतु में बहुत ही आनदप्रद सिद्ध हुआ।

चन्दन स्वयं-लघु, रूक्ष, तिक्त, मधुर, कटु विपाक, शीतवीर्य, कफ-पित्त नाशक, ग्राही, मेध्य, हृद्य, रक्तशोधक, कफनिःसारक, श्लेष्म पूतिहर, मूत्रल, स्वेदल, अङ्गमर्द शमन, मूत्र मार्ग के लिए कोथ-प्रशमन, विषघ्न तथा आमाशय, आंत्र व यकृत के लिये बल्य है। इसका उपयोग तृषा, पाचन दौर्बल्य, अतिसार, प्रवाहिका, कृमि रोग, हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, मानसिक

—शेषांश पृष्ठ १०७ पर देखें।
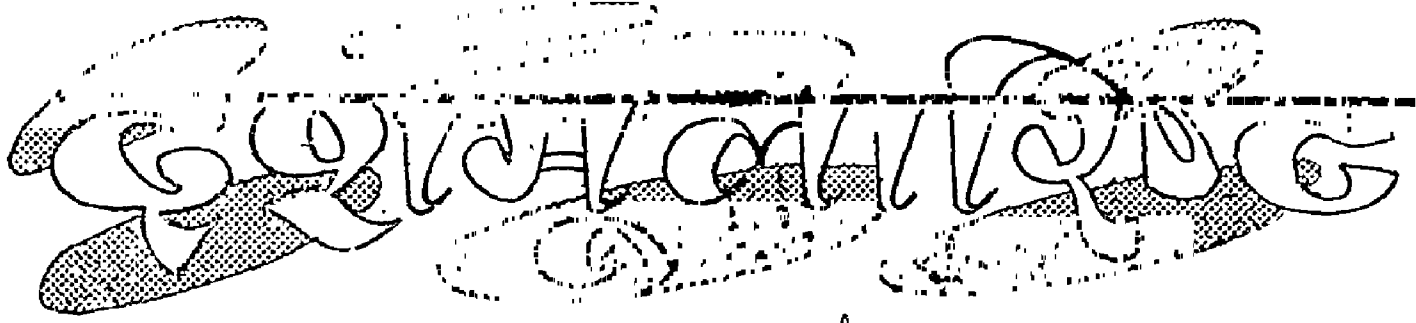
दशमूलारिष्ट

साहित्यायुर्वेद वाचस्पति वैद्यराज डा० जहानसिंह चौहान आयुर्वेद बृहस्पति

औषधि का नाम—दशमूलारिष्ट

ग्रन्थ निर्देश—भैषज्य रत्नावली

औषधि घटक एवं उनकी मात्रा—

शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कंटकारी, बड़ी कण्टकारी, गोखरू, बेल, गम्भारी, सोनापाठा, पाटला, अरणी—दशमूल का प्रत्येक घटक २०-२० तोला, चित्रकमूल, पुष्कर-मूल १००-१०० तोला, गिलोय, लोध्र ८०-८० तो., आंवला ६४ तोला, जवासा ४८ तोला, खैरसार छाल, विजयसार, हरीतकी ३२-३२ तोला, कूठ, मंजिष्ठ, देवदारु, वायविडग, मुलैठी, भारंगी, कैथ का गूदा, बहेड़ा, पुनर्नवा, चव्य, जटामांसी, फूलप्रियंगु, सारिवा, काला जीरा, निशोथ, रेणुका, रास्ना, पीपल, सुपारी, कचूर, हल्दी, सोया, पद्माख, नागकेशर, नागरमोथा, इन्द्र जौ, काकड़ासिंगी, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा (अभाव में शतावरी), काकोली, क्षीरकाकोली (अभाव में असगन्ध), ऋद्धि-वृद्धि (अभाव में वराहीकन्द) ८-८ तो.।

क्वाथ एवं अरिष्ट निर्माण प्रक्रिया—

उपर्युक्त ५३ औषधियों को लेकर जौकुट करलें, तत्पश्चात् ९७ लीटर पानी में पकावें। जब १/४ भाग पानी (लगभग २४॥ लीटर) शेष रह जाय तब छान लें। इसके बाद २४० तोला (२ किलो ४०० ग्राम) मुनक्का को चार गुने (लगभग ११ लीटर) जल में पकावें और तीन चौथाई भाग (८॥ लीटर) पानी शेष रहने पर उतार लें।

उपर्युक्त मुनक्कायुक्त क्वाथ तथा पूर्व में छने क्वाथ को लेकर एकत्र करलें और उसमें शहद १२८० ग्राम (१२८ तोला) तथा गुड़ २० सेर (१८ किलो ६६० ग्राम), धातकी पुष्प १२० तोला (१ किलो २०० ग्राम), कंकोल, सुगन्धवाला (खस), सफेद चन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात, नागकेशर एवं पीपल-प्रत्येक औषधि ८-८ तोला (८०-८० ग्राम) चूर्ण तथा कस्तूरी ३ माशा (३ ग्राम)—इन सभी औषधियों को क्वाथ में डालकर मिट्टी के वर्तन में संधान करें। १ माह के पश्चात् छानकर बोतलों में भरलें।

आवश्यक निर्देश—कुछ व्यक्ति आमला और कैथ का प्रयोग करते हैं जो अच्छा नहीं है इससे अरिष्ट बिगड़ जाता है। अरिष्ट छानने के पश्चात् कस्तूरी अथवा उत्तम मद्य (रेक्टीफाइड स्प्रिट) का मिलाना उत्तम रहता है। कुछ चिकित्सा शास्त्री अथवा संस्थान अरिष्ट का निर्माण बिना कस्तूरी मिलाये भी करते हैं।

मात्रा १/२ से १ औंस।

सेवनकाल—भोजनोपरान्त प्रातः सायं दो बार।

अनुपान—समान भाग जल के साथ।

शास्त्रीय दृष्टि से गुण धर्म—

यह औषधि वातपित्त, कफ नाशक, पौष्टिक, बलवर्धक, वृष्य, ज्वरघ्न, अग्निवर्धक एवं गर्भाशयशोधक है।

गुण और उपयोग—

इस औषधि के उपयोग से कास, श्वास, वमन, बवासीर, उदररोग, अरुचि, पाण्डु, सब प्रकार की वात व्याधियां, धातुक्षय, शूल, प्रदर, कुष्ठ, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, अम्लपित्त, प्रसूतिरोग, गर्भाशय की अशुद्धि, अग्निमांद्य, श्वेतप्रदर, कामला, संग्रहणी, अरुचि, गुल्म, पाण्डुरोग, अश्मरी आदि रोग दूर होते हैं। दुर्बल रोगियों को पुष्ट बनाता है। वन्ध्या स्त्रियों को सन्तान के योग्य बनाता है। बल, वीर्य एवं कान्ति को बढ़ाने वाला है।

दशमूलारिष्ट विशेष रूप से वातविकार, मूत्ररोग, एवं उदररोग नाशक है। दशमूलारिष्ट उदर के सम्पूर्ण अवयवों को शक्ति प्रदान करता है।

दशमूलारिष्ट का प्रयोग वातविकारों की भांति कफ जन्य रोगों में भी होता है। इस शास्त्रीय योग के अन्तर्गत दशमूल तथा अन्य जीवनीय शक्ति प्रदायक औषधियाँ भी सम्मलित हैं जिससे अनेक रोगों को नष्ट करने तथा शरीर को शक्ति प्रदान करने की इसमें अपूर्व क्षमता है। यह एक ऐसी दिव्य औषधि है जो स्त्रियों के लिए नवजीवन प्रदायक है।

इस औषधि योग के अन्तर्गत बहुमूल्य रुचिकर एवं पौष्टिक तथा कस्तूरी आदि उपयोगी औषधियों का सम्मिश्रण है जिससे औषधि उत्तम रुचिकर एवं स्वादिष्ट बन जाती है। इसी दृष्टि से यह औषधि बालक, वृद्ध एवं कोमल प्रकृति की स्त्रियों आदि के लिए समान रूप से उपयोगी है। सभी प्रकृति वाले इसे चाव से पीते हैं। स्त्रियों में इस औषधि के प्रयोग से उनकी शारीरिक वृद्धि में लाभ होता है तथा बल प्राप्त होकर स्वास्थ्य उन्नत बनता है।

क्षयरोग—यह औषधि क्षयरोग में भी विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है। यदि इस औषधि को इस रोग में काड लिवर आयल (Cod Liver Oil) के साथ सेवन कराया जाय तो उत्तम लाभ मिलता है।

वातजन्य कास में—कभी-कभी कुछ रोगियों में इस प्रकार की कष्टदायक यंत्रणायुक्त कास उत्पन्न हो जाती है जिसमें एक प्रकार का दौरा पड़ता है। इसमें रोगी खांसते-खांसते व्याकुल हो जाता है, उसके पेट की नसें दुखने लगती हैं, मुंह की शिरायें फूल जाती हैं और मुख रक्तवर्ण का हो जाता है। यह स्थिति लगभग १०-१५ मिनट तक रहती है। यदि रोगी दुर्बल हुआ तो वह खांसी के दौरे के समय बेहोश तक हो जाता है। जब कुछ कफ निकल जाता है तब रोगी को कुछ शान्ति की अनुभूति होती है।

इस प्रकार के कासयुक्त दौरे में दशमूलारिष्ट का प्रयोग थोड़ी-थोड़ी मात्रा में जल के साथ दिन में ३-४ बार करते रहने से उत्तम लाभ होता है। इसके प्रयोग से कुपित वायु शान्त हो जाती है और कफ ढीला होकर धीरे-धीरे निकल जाता है। यह श्वास नली को साफ करने वाली उत्तम औषधि है। इसके प्रयोग से कास का दौरा क्रमशः कम होता जाता है और रोगी उसी क्रम से धीरे-धीरे स्वस्थ हो जाता है।

संग्रहणीजनित मन्दाग्नि में—दीर्घकाल तक संग्रहणी रोग के चलते रहने से रोगी में मन्दाग्नि का विकार हो जाता है जिससे भोजन का पाचन न होकर रस रक्त का निर्माण बहुत ही अल्प होता है फलतः रोगी अत्यन्त कृश हो जाता है। ऐसी स्थिति में दशमूलारिष्ट का प्रयोग भोजन के बाद करते रहने से उत्तम लाभ होता है।

गर्भाशय की शिथिलता में—कई स्त्रियों में गर्भाशय की शिथिलता के कारण उनमें गर्भधारण ही नहीं होता है। यदि होता भी है तो उनमें असमय में गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता है। ऐसी स्थिति में दशमूलारिष्ट का प्रयोग परम हितकारी होता है। इससे गर्भाशय को अपूर्व शक्ति मिलती है और गर्भाशय सम्बन्धी शिथिलता का निवारण हो जाता है। गर्भस्राव एवं गर्भपात की स्थिति पुनः भविष्य में नहीं आती। इसके सेवन से गर्भाशय की पुष्टि होकर सन्तानोत्पत्ति होने लगती है।

स्त्रियों की भांति पुरुषों में भी यह औषधि जननेन्द्रिय सम्बन्धी विकारों में लाभकारी सिद्ध हुई है। पुरुषों में यह औषधि वीर्य की शुद्धि करती है और उसकी मात्रा को बढ़ाती है।

शतपोनक-भगन्दर की चिकित्सा में—ऐसा भगन्दर जिसका व्रण बार-बार चिकित्सा (शस्त्र चिकित्सा) करने से भी नहीं भरता है। उसमें बार-बार पूय बनकर फूट जाता है, उसमें कई मुख हो गये हैं उस स्थान में व्रणरोपण की क्रिया समाप्त हो गई है और ऐसा नाड़ी व्रण निरन्तर बहता रहता है। इस प्रकार की स्थिति अधिकांश रूप से मधुमेह, जीर्ण सुजाक, उपदंश एवं क्षय से पीड़ित रोगियों में मिलती है। ऐसे असाधारण व्रण की उत्पत्ति कभी-कभी अन्य कारणों से भी हो जाती है जो अज्ञात स्वरूप की होती है। किसी-किसी रोगी में रक्तादि धातुओं की रोग निरोधक शक्ति क्षीण होने से भी ऐसा ही होता है।

उपर्युक्त सभी स्थितियों में नाड़ी व्रण के होने पर दशमूलारिष्ट का प्रयोग उत्तम लाभकारी होता है। इसके प्रयोग से नाड़ीव्रण शीघ्र भरने लगता है।

अन्य वातरोगों में—ऐसे रोग जो वातस्थान के दुष्ट होने, भय, शोक, काम आदि मानस विकृति से उत्पन्न

होते हैं, उनमें दशमूलारिष्ट के प्रयोग से उत्तम लाभ होता है। इसके सेवन से वात का शमन हो जाता है। दशमूलारिष्ट का प्रयोग संकोच, मेद, स्तम्भ, कलायखंज, खल्ली, एवं गृध्रसी वातरोगों में विशेष हितकारी पाया गया है।

अस्थिक्षय की स्थिति में—औषधि गुण धर्म शास्त्र में लिखा है कि अस्थिक्षय की स्थिति में दशमूलारिष्ट का प्रयोग सर्वोत्तम लाभकारी होता है। यदि प्रसव के पश्चात् यह स्थिति उत्पन्न हो गई हो तो अवश्य ही इस औषधि का उपयोग करना चाहिये। कमर में पीड़ा, कठिनता से पैरों को उठाकर चलना, अस्थि सन्धियों पर गांठें जैसी प्रतीत होना, मन्द स्वरूप के ज्वर का रहना आदि लक्षणों के उत्पन्न होने पर दशमूलारिष्ट का प्रयोग अवश्य ही करना चाहिये।

ऐसी प्रसूता स्त्री जिसमें पित्त प्रधान अन्य लक्षण यथा मुँह में छाले, गरम-गरम पतले दस्त, तृष्णा आदि हों तो इस औषधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

प्रसूता स्त्री में प्रतिरोधक शक्ति के लिए—दशमूलारिष्ट में अनेक जीवनीय औषधियों का सम्मिश्रण है जिससे इसमें रोग प्रतिरोधक क्षमता पर्याप्त रूप में विद्यमान रहती है। यदि इस औषधि का प्रयोग प्रसव के तुरन्त बाद प्रारम्भ करा दिया जो प्रसूता में रोग प्रतिरोधक क्षमता पर्याप्त रूप में बढ़ जाती है और उसे प्रसूति ज्वर होने की कोई सम्भावना नहीं रहती है।

यदि असावधानी बस किन्हीं कारणों से प्रसूति ज्वर की उत्पत्ति हो भी जाय तो इसका प्रयोग तुरन्त प्रारम्भ कर देना चाहिए। इससे रोग का निवारण शीघ्र ही सम्भव हो जाता है।

दशमूलारिष्ट के स्थान पर दशमूल क्वाथ का प्रयोग भी लाभकारी होता है। यह देखने में आया है कि ग्राम में निवास करने वाली स्त्रियों की अपेक्षा नगर में निवास करने वाली स्त्रियों में प्रसूति ज्वर का विकार अधिक होता है क्योंकि ग्रामों में निवास करने वाली स्त्रियां अधिक बलशाली होती हैं जिससे उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक विद्यमान रहती है। उनमें रोग के कीटाणुओं का आक्रमण होता ही नहीं है। यदि होता भी है तो कीटाणु जीवित नहीं रहते हैं। इसके विपरीत शहरी क्षेत्र की स्त्रियों में शक्ति के अभाव के कारण उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत ही कम पायी जाती है जिससे वह इस दुष्ट विकार से अधिक ग्रसित मिलती हैं। इस प्रकार ऐसी नगर वासिनी स्त्रियों को प्रसव के पश्चात् अवश्य ही दशमूलारिष्ट सेवन कराना चाहिये। इससे उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है और प्रसूति ज्वर की सम्भावना नहीं रहती है।

प्रसव के पश्चात् संग्रहणी रोग में—प्रसव के पश्चात् कई स्त्रियों में गंदगी एवं संक्रमण आदि के कारण संग्रहणी रोग हो जाता है। ऐसी स्थिति में दशमूलारिष्ट का प्रयोग अति उत्तम रहता है।

मक्कलशूल एवं अन्य वातज शूलों में—दशमूलारिष्ट एक उत्तम वातशामक औषधि है इसलिए इसका प्रयोग स्त्रियों के मक्कलशूल में सर्वाधिक किया जाता है और परिणाम भी अच्छे निकलते हैं। इसके अतिरिक्त यह औषधि कुक्षिशूल, परिणामशूल, कक्षाशूल; कोष्ठ शूल एवं तीव्र स्वरूप के शिरःशूल में भी उत्तम हितावह पाई गई है।

उपर्युक्त प्रकार के शूलों में इसका प्रयोग अल्प मात्रा में किया जाता है।

प्रसूति ज्वर में—प्रसव के समय असावधानी तथा गंदगी आदि के कारण प्रसूत ज्वर (सूतिका ज्वर) की उत्पत्ति हो जाती है। इसका संक्रमण एक प्रकार के कीटाणुओं के द्वारा होता है। प्रसूता स्त्री को १-२ दिन में ही ज्वर हो जाता है। यह ज्वर १०३ से १०५ डि० फा० बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त रोगिणी में भयंकर तृष्णा, व्याकुलता, तीव्र स्वरूप का शिरःशूल, २-३ दिन के पश्चात् योनिस्राव में दुर्गन्ध, प्रलाप, धनुर्वात, दांतों का भींचना तथा अन्य सन्निपातिक लक्षण (चिकित्सा के अभाव में) आदि-लक्षण प्रकट हो जाते हैं। ऐसे प्रासूतिक लक्षणों के उत्पन्न होने पर दशमूलारिष्ट का प्रयोग लाभकारी है। दशमूलारिष्ट का प्रयोग प्रतापलंकेश्वर के साथ करने से अधिक लाभ होता है।

दशमूलारिष्ट एक परम पौष्टिक औषधि है। इसके प्रयोग से गर्भाशय को असाधारण शक्ति प्राप्त होती है जिससे स्त्री में गर्भधारण की शक्ति बढ़ती है। इसलिए यह औषधि वांझ स्त्रियों में भी उपयोगी है।

प्रसूता स्त्री में दूध की कमी होने पर—कई स्त्रियों में प्रसव के पश्चात् उनके स्तनों में दूध की पर्याप्त कमी रहती है। ऐसी अवस्था में दशमूलारिष्ट का प्रयोग लाभकारी है। दूध में कमी होने पर दशमूलारिष्ट का प्रयोग निम्न प्रकार से करना चाहिए—

शतावरी १० ग्राम को जौकुट करने के पश्चात् २०० मिलीलीटर पानी में उबालें। जब ५० मिलीलीटर के लगभग शेष रह जाये तब उसमें ३ ड्राम दशमूलारिष्ट मिला कर प्रातः सायं पिलावें।

प्रसूत ज्वर में स्वानुभूत चिकित्सा व्यवस्था

(१) प्रतापलंकेश्वर रस—७५० मिलिग्राम ३ मात्राओं में विभक्त कर अदरक स्वरस+मधु के साथ प्रातः ६ वजे, दोपहर १२ वजे तथा सायं ६ वजे दें।

'सूतकाहर रस' या 'सूतकारि रस' का प्रयोग करें।

(२) देवदार्वादि क्वाथ—५८ मिलीलीटर प्रातः ७वजे।

(३) सौभाग्यशुण्ठी—१२० मिलीग्राम गर्म दूध के साथ प्रातः ८ वजे एवं सायं ४ वजे।

(४) दशमूलारिष्ट—२० मिलीलि० भोजनोपरांत दिन में २ वार। समभाग जल के साथ।

(५) सूतिका दशमूल तैल अथवा नारायण तैल—सम्पूर्ण शरीर पर मालिस।

जीर्ण स्वरूप के प्रसूतिका ज्वर में—

(१) सर्व ज्वर हर लौह १२० मि. ग्रा., सौभाग्यशुण्ठी १२० मिलीग्राम, ऐसी १ मात्रा दिन में ३ वार मधु एवं अदरक स्वरस के साथ प्रातः ६ वजे, दोपहर १२ वजे, तथा सायं ६ वजे दें।

(२) दशमूलारिष्ट—२० मिलीलीटर, भोजनोपरांत दिन में २-३ वार।

(३) सूतिकाहर रस—१२० मिलीग्राम, दिन के २ वजे मधु के साथ।

(४) जीरकादि मोदक—रात्रि सोते समय।

(५) वला तैल या सूतिका दशमूल तैल—सम्पूर्ण शरीर पर मालिश।

रोग के प्रथम १५ दिनों तक जल के स्थान पर दशमूलार्क पीने को देते रहें।

नोट—स्त्री रोगों के सम्बन्ध में विशेष चिकित्सा, सम्बन्धी जानकारी के लिए लेखक की 'स्त्री रोग चिकित्सा सचित्र' नामक ग्रन्थ पढ़ें।

—साहित्यायुर्वेद वाच. वैद्यराज जहानसिंह चौहान आयु.वृह.
चौहान आयुर्वेद निकेतन, नवीगंज (मैनपुरी)

चन्दनासव : : पृष्ठ १०३ का शेष

दौर्बल्य, श्वेत प्रदर, शुक्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह (सुजाक), वस्तिशोथ, चर्मरोग, ज्वर, दाह, अङ्गमर्द आदि में किया जाता है। जीर्ण कास रोग में कफ सरलता से निकलता है। कफ में रक्त या पूय तथा दुर्गन्ध आना दूर हो जाती है।

पित्त ज्वर, तीव्रज्वर एवं जीर्ण ज्वर में इसके प्रयोग से दाह, तृषा को शांत करता है। स्वेद उत्पन्न होकर ज्वर कम हो जाता है। ज्वर के कारण हृदय पर होने वाले विषैले परिणाम नहीं होने पाते। यही गुण उक्त चन्दनासव में देखे गये हैं। वहुत वार इसका चमत्कार देखकर दङ्ग रह जाना पड़ा है।

मूत्र मार्ग की दोष दुष्टि को तो नष्ट करता ही है। इसके उपयोग से वार-वार मूत्रोत्सर्ग होते रहने से सुजाक के पूय का शोधन भी हो जाता है और सुजाक की प्रथम अवस्था में मूत्र प्रसेक नलिका की श्लेष्मिक झिल्ली के प्रदाह में इसके सेवन से वह दाह सहवेदन भी कम हो जाती है और उसके निमित्त कारण कीटाणु का वल भी कम हो जाता है। व्रणों में भी त्रासदायक दाह नष्ट हो जाती है। मूत्रमार्ग की संकुचित अवस्था में यदि इस आसव का उपयोग लाभप्रद प्रमाणित नहीं हुआ उस समय उत्तरवस्ति का ही उपयोग हितकर होगा।

हाँ, मूत्र में सिकता और शर्करा-अश्मरी कण जाने पर चन्दनासव का उपयोग करने से अश्मरी के कण द्रवीभूत होकर निकल जाते हैं। इसके साथ गोक्षुरादि गुग्गुल, श्वेत पर्पटी, शिलाजीत, चन्द्रप्रभावटी, मूत्रकृच्छ्रान्तक वटी, यवक्षार, प्रवाल पिष्टी, संगयहूद भस्म, गोक्षुराद्यवलेह इत्यादि का उपयोग अवस्थानुसार किया जा सकता है।

—डा. श्रीमती विमला अग्रवाल
विमला अस्पताल, वुलन्दशहर।

होते हैं, उनमें दशमूलारिष्ट के प्रयोग से उत्तम लाभ होता है। इसके सेवन से वात का शमन हो जाता है। दशमूलारिष्ट का प्रयोग संकोच, मेद, स्तम्भ, कलायखंज, खल्ली, एवं गृध्रसी वातरोगों में विशेष हितकारी पाया गया है।

अस्थिक्षय की स्थिति में—औषधि गुण धर्म शास्त्र में लिखा है कि अस्थिक्षय की स्थिति में दशमूलारिष्ट का प्रयोग सर्वोत्तम लाभकारी होता है। यदि प्रसव के पश्चात् यह स्थिति उत्पन्न हो गई हो तो अवश्य ही इस औषधि का उपयोग करना चाहिये। कमर में पीड़ा, कठिनता से पैरों को उठाकर चलना, अस्थि सन्धियों पर गाँठें जैसी प्रतीत होना, मन्द स्वरूप के ज्वर का रहना आदि लक्षणों के उत्पन्न होने पर दशमूलारिष्ट का प्रयोग अवश्य ही करना चाहिये।

ऐसी प्रसूता स्त्री जिसमें पित्त प्रधान अन्य लक्षण यथा मुँह में छाले, गरम-गरम पतले दस्त, तृष्णा आदि हों तो इस औषधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

प्रसूता स्त्री में प्रतिरोधक शक्ति के लिए—दशमूलारिष्ट में अनेक जीवनीय औषधियों का सम्मिश्रण है जिससे इसमें रोग प्रतिरोधक क्षमता पर्याप्त रूप में विद्यमान रहती है। यदि इस औषधि का प्रयोग प्रसव के तुरन्त बाद प्रारम्भ करा दिया जो प्रसूता में रोग प्रतिरोधक क्षमता पर्याप्त रूप में बढ़ जाती हैं और उसे प्रसूति ज्वर होने की कोई सम्भावना नहीं रहती है।

यदि असावधानी वस किन्हीं कारणों से प्रसूति ज्वर की उत्पत्ति हो भी जाय तो इसका प्रयोग तुरन्त प्रारम्भ कर देना चाहिए। इससे रोग का निवारण शीघ्र ही सम्भव हो जाता है।

दशमूलारिष्ट के स्थान पर दशमूल क्वाथ का प्रयोग भी लाभकारी होता है। यह देखने में आया है कि ग्राम में निवास करने वाली स्त्रियों की अपेक्षा नगर में निवास करने वाली स्त्रियों में प्रसुति ज्वर का विकार अधिक होता है क्योंकि ग्रामों में निवास करने वाली स्त्रियां अधिक बलशाली होती हैं जिससे उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक विद्यमान रहती है। उनमें रोग के कीटाणुओं का आक्रमण होता ही नहीं है। यदि होता भी है तो कीटाणु जीवित नहीं रहते हैं। इसके विपरीत शहरी क्षेत्र की स्त्रियों में शक्ति के अभाव के कारण उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत ही कम पायी जाती है जिससे वह इस दुष्ट विकार से अधिक ग्रसित मिलती हैं। इस प्रकार ऐसी नगर वासिनी स्त्रियों को प्रसव के पश्चात् अवश्य ही दशमूलारिष्ट सेवन कराना चाहिये। इससे उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है और प्रसूति ज्वर की सम्भावना नहीं रहती है।

प्रसव के पश्चात् संग्रहणी रोग में—प्रसव के पश्चात् कई स्त्रियों में गंदगी एवं संक्रमण आदि के कारण संग्रहणी रोग हो जाता है। ऐसी स्थिति में दशमूलारिष्ट का प्रयोग अति उत्तम रहता है।

मक्कलशूल एवं अन्य वातज शूलों में—दशमूलारिष्ट एक उत्तम वातशामक औषधि है इसलिए इसका प्रयोग स्त्रियों के मक्कलशूल में सर्वाधिक किया जाता है और परिणाम भी अच्छे निकलते हैं। इसके अतिरिक्त यह औषधि कुक्षिशूल, परिणामशूल, कक्षाशूल; कोष्ठ शूल एवं तीव्र स्वरूप के शिरःशूल में भी उत्तम हितावह पाई गई है।

उपर्युक्त प्रकार के शूलों में इसका प्रयोग अल्प-मात्रा में किया जाता है।

प्रसूति ज्वर में—प्रसव के समय असावधानी तथा गंदगी आदि के कारण प्रसूत ज्वर (सूतिका ज्वर) की उत्पत्ति हो जाती है। इसका संक्रमण एक प्रकार के कीटाणुओं के द्वारा होता है। प्रसूता स्त्री को १-२ दिन में ही ज्वर हो जाता है। यह ज्वर १०३ से १०५ डि० फा० बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त रोगिणी में भयंकर तृष्णा, व्याकुलता, तीव्र स्वरूप का शिरःशूल, २-३ दिन के पश्चात् योनिस्राव में दुर्गन्ध, प्रलाप, धनुर्वात, दांतों का भींचना तथा अन्य सन्निपातिक लक्षण (चिकित्सा के अभाव में) आदि-लक्षण प्रकट हो जाते हैं। ऐसे प्रासूतिक लक्षणों के उत्पन्न होने पर दशमूलारिष्ट का प्रयोग लाभकारी है। दशमूलारिष्ट का प्रयोग प्रतापलंकेश्वर के साथ करने से अधिक लाभ होता है।

दशमूलारिष्ट एक परम पौष्टिक औषधि है। इसके प्रयोग से गर्भाशय को असाधारण शक्ति प्राप्त होती है जिससे स्त्री में गर्भधारण की शक्ति बढ़ती है। इसलिए यह औषधि बांझ स्त्रियों में भी उपयोगी है।

प्रसूता स्त्री में दूध की कमी होने पर—कई स्त्रियों में प्रसव के पश्चात् उनके स्तनों में दूध की पर्याप्त कमी रहती है। ऐसी अवस्था में दशमूलारिष्ट का प्रयोग लाभकारी है। दूध में कमी होने पर दशमूलारिष्ट का प्रयोग निम्न प्रकार से करना चाहिए—

शतावरी १० ग्राम को जौकुट करने के पश्चात् २०० मिलीलीटर पानी में उबालें। जब ५० मिलीलीटर के लगभग शेष रह जाये तब उसमें ३ ड्राम दशमूलारिष्ट मिला कर प्रातः सायं पिलावें।

प्रसूत ज्वर में स्वानुभूत चिकित्सा व्यवस्था

(१) प्रतापलंकेश्वर रस—७५० मिलिग्राम ३ मात्राओं में विभक्त कर अदरक स्वरस+मधु के साथ प्रातः ६ बजे, दोपहर १२ बजे तथा सायं ६ बजे दें।

'सूतकाहर रस' या 'सूतकारि रस' का प्रयोग करें।

(२) देवदार्वादि क्वाथ—५८ मिलीलीटर प्रातः ७बजे।

(३) सौभाग्यशुण्ठी—१२० मिलीग्राम गर्म दूध के साथ प्रातः ८ बजे एवं सायं ४ बजे।

(४) दशमूलारिष्ट—२० मिलीलि० भोजनोपरांत दिन में २ बार। समभाग जल के साथ।

(५) सूतिका दशमूल तैल अथवा नारायण तैल—सम्पूर्ण शरीर पर मालिस।

जीर्ण स्वरूप के प्रसूतिका ज्वर में—

(१) सर्व ज्वर हर लौह १२० मि. ग्रा., सौभाग्यशुण्ठी १२० मिलीग्राम, ऐसी १ मात्रा दिन में ३ बार मधु एवं अदरक स्वरस के साथ प्रातः ६ बजे, दोपहर १२ बजे, तथा सायं ६ बजे दें।

(२) दशमूलारिष्ट—२० मिलीलीटर, भोजनोपरांत दिन में २-३ बार।

(६) सूतिकाहर रस—१२० मिलीग्राम, दिन के २ बजे मधु के साथ।

(४) जीरकादि मोदक—रात्रि सोते समय।

(५) वला तैल या सूतिका दशमूल तैल—सम्पूर्ण शरीर पर मालिश।

रोग के प्रथम १५ दिनों तक जल के स्थान पर दशमूलार्क पीने को देते रहें।

नोट—स्त्री रोगों के सम्बन्ध में विशेष चिकित्सा, सम्बन्धी जानकारी के लिए लेखक की 'स्त्री रोग चिकित्सा सचित्र' नामक ग्रन्थ पढ़ें।

—साहित्यायुर्वेद वाच. वैद्यराज जहानसिंह चौहान आयु.वृह.
चौहान आयुर्वेद निकेतन, नवीगंज (मैनपुरी)

चन्दनासव : : पृष्ठ १०३ का शेष

दौर्बल्य, श्वेत प्रदर, शुक्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह (सुजाक), वस्तिशोथ, चर्मरोग, ज्वर, दाह, अङ्गमर्द आदि में किया जाता है। जीर्ण कास रोग में कफ सरलता से निकलता है। कफ में रक्त या पूय तथा दुर्गन्ध आना दूर हो जाती है।

पित्त ज्वर, तीव्रज्वर एवं जीर्ण ज्वर में इसके प्रयोग से दाह, तृषा को शांत करता है। स्वेद उत्पन्न होकर ज्वर कम हो जाता है। ज्वर के कारण हृदय पर होने वाले विषैले परिणाम नहीं होने पाते। यही गुण उक्त चन्दनासव में देखे गये हैं। बहुत वार इसका चमत्कार देखकर दङ्ग रह जाना पड़ा है।

मूत्र मार्ग की दोष दुष्टि को तो नष्ट करता ही है। इसके उपयोग से वार-वार मूत्रोत्सर्ग होते रहने से सुजाक के पूय का शोधन भी हो जाता है और सुजाक की प्रथम अवस्था में मूत्र प्रसेक नलिका की श्लैष्मिक झिल्ली के प्रदाह में इसके सेवन से वह दाह सहवेदन भी कम हो जाती है और उसके निमित्त कारण कीटाणु का बल भी कम हो जाता है। व्रणों में भी त्रासदायक दाह नष्ट हो जाती है। मूत्रमार्ग की संकुचित अवस्था में यदि इस आसव का उपयोग लाभप्रद प्रमाणित नहीं हुआ उस समय उत्तर-वस्ति का ही उपयोग हितकर होगा।

हाँ, मूत्र में सिकता और शर्करा-अश्मरी कण जाने पर चन्दनासव का उपयोग करने से अश्मरी के कण द्रवीभूत होकर निकल जाते हैं। इसके साथ गोक्षुरादि गुग्गुल, श्वेत पर्पटी, शिलाजीत, चन्द्रप्रभावटी, मूत्रकृच्छ्रान्तक वटी, यवक्षार, प्रवाल पिष्टी, संगयहूद भस्म, गोक्षुराद्यवलेह इत्यादि का उपयोग अवस्थानुसार किया जा सकता है।

—डा. श्रीमती विमला अग्रवाल
विमला अस्पताल, बुलन्दशहर।

श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त

ग्रन्थ—योग रत्नाकर।

घटक—उत्ताम मुनक्का ६। सेर को जल १२८ सेर में पकावें। जब जल चौथाई रह जाय तब उसे छान लें, ठण्डा होने पर खाण्ड ५ सेर, शहद ५ सेर, धाय के फूलों का चूर्ण २८ तोला मिला दें। बाद में निम्न द्रव्यों का चूर्ण बनाकर उसी में डालें—

जावित्री, लौंग, शीतलचीनी, हरफारेवड़ी (लवलीफल) सफेद चन्दन, पीपल, दालचीनी, इलायची छोटी, तेजपत्ता प्रत्येक २-२ तोला।

आसवारिष्ट निर्माण—विधिवत आसव बना लेवें। पश्चात् इसका उपयोग करें।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—अर्श, शोथ, अरुचि, हृद्रोग, पाण्डु, रक्तपित्त, भगन्दर, गुल्म, उदररोग, कृमि, ग्रन्थि, क्षत, शोष, ज्वर तथा वातपित्तज रोगों में उपयोग किया जाता है। इसके सेवन से बल वर्ण की वृद्धि होती है। भोजनोपरान्त २ तोला की मात्रा पूर्ण है। इसमें जल मिलाकर पीवें। अधिकतर वैद्यजन मुनक्का, पुरानी शुष्क अंडी का उपयोग करते हैं। ऐसी मुनक्का से बनाया आसव निकृष्ट होता है अतः मुनक्का नवीन उत्तम रसदार, श्रेष्ठ हो वही लेना चाहिये।

दूसरा योग—

शुद्ध जल से धुली मुनक्का २०० तोला को २०४८ तोला जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। शीतल होने पर मुनक्का को उसी में मसलकर छानलें। फिर गुड़ १० सेर, धाय के फूल ३२ तोला, वायविडंग, प्रियंगु, पीपल छोटी, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्ता, नागकेशर, काली मिर्च और सोंठ ये प्रत्येक चार तोला लेकर चूर्ण कर उसी में मिलादें। अमृतवान में मुख मुद्राकर आसव विधिवत रखें। परिपक्व होने पर छानकर उपयोग में लावें।

मात्रा—१। से ॥ तोले तक, जल मिलाकर, भोजनोपरान्त सेवन करें।

शास्त्रोक्त गुण—यह आसव कास श्वास, गलरोग, राजयक्ष्मा आदि में लाभप्रद है। उरःक्षत में भी लाभदायक है।

विशेष गुण धर्म—

प्रथम द्राक्षासव के सेवन से पाचक पित्त का स्राव बढ़ता है, अतः मन्दाग्नि से उत्पन्न अनेक रोगों में यह हितकर है। विशेषकर पित्तार्श व रक्तार्श में, आमाशय में गैस बढ़कर उदावर्त रोग हो तो इसका उपयोग किया जा सकता है किन्तु उदावर्त विशेप प्रबल न हो। पित्तज गुल्म में ज्वर, तृषा, शरीर का लाल हो जाना, मुखमण्डल लाल, भोजन के ३-४ घन्टे बाद मन्द मन्द उदरशूल, गुल्म जिसमें व्रणवत छूने से पीड़ा हो उसमें भी उपयोगी है।

नवप्रसूता स्त्री को अपथ्य सेवन कराने पर या बार बार गर्भपात होने पर रक्त गुल्म हुआ हो, गर्भ धारण के समान लक्षण प्रतीत होते हों, साथ में अग्निमांद्य, बार-बार वमन आदि चिह्न भी हों तो यह आसव अधिक उपयुक्त होगा। इससे रक्त गुल्म का शमन नहीं होता किन्तु सन्ताप दूर हो जाता है।

किसी भी रोग में शक्ति रक्षणार्थ तथा निर्बलता को दूर करने के लिए इसका उपयोग करना चाहिये। इसके सेवन से शारीरिक शक्ति बढ़ती है। शान्त निद्रा आती है।

मल की शुद्धि ठीक-ठीक होती है। मन प्रफुल्लित रहता है पाचन शक्ति भी सम्यक् रहती है।

द्वितीय—द्राक्षासव के सेवन से हृदय सबल बनता है, फुफ्फुसों का क्षोभ शनैः-शनैः शमन होता है। श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपातों में इसके सेवन से कफ विकार कम हो जाते हैं। कफ से होने वाली घबराहट दूर होती है।

श्वसनक सन्निपात (बच्चों का डब्बा पसली का रोग)—इसे ३० से ६० बूंद की मात्रा में बार-बार देना चाहिए। अन्य प्रकार के कास रोग में, काली खाँसी में इसके साथ मृगश्रृङ्ग भस्म, प्रवाल पिष्टी भी दें।

पित्तज कास जिसमें अति घबराहट, सारा शरीर स्वेद से तर तथा मस्तिष्क में घुमेरी होने पर इसका उपयोग किया जाय तो भी उत्तम लाभ देखा जाता है।

क्षय की कास में इसके उपयोग से कास का त्रास कम हो जाता है। क्षय रोगी को इसके सेवन कराने से उसका बल बढ़ जाता है, अग्नि प्रदीप्त होती है, कास कम होती है, मांस बढ़ता है। मुख पर रौनक आ जाती है। साथ ही स्वर्ण कल्प का भी सेवन कराया जाय तो क्षय रोग के निवारण में अच्छी सहायता मिलती है। उस समय रोगी को बकरी के दूध पर रखना चाहिए, दिन में २-३ बार बकरी का मूत्र भी पीने को दिया जाय तो बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। उरःक्षत में यह आसव उपयोगी नहीं है फिर भी इससे उस समय भी कुछ शान्ति रहती है। चूंकि उरः सन्धान इस आसव से कितना होता है यह अभी निर्णय नहीं किया गया है।

—श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त (विशेष सम्पादक)

द्राक्षारिष्ट

द्राक्षा ४० पल, जल ६४ सेर में क्वाथ करें।

योग एवं निर्माण—जब क्वाथ जल १६ सेर अवशिष्ट रहे तो शीतल होने पर क्वाथ में ११ सेर गुड़ घोलकर घृत के चिकने भाण्ड (पात्र) में भरके दालचीनी, तज, पत्रज, इलायचीबड़ी, नागकेशर वायविडंग फूल प्रियंगु, गोल मिर्च पीपल प्रत्येक ४ पल लेकर चूर्ण करें और भाण्ड के क्वाथ द्रव्य में प्रक्षेप ऊपर से डाल दें। ध्यान रहे पूर्ण संधान प्राप्ति के लिए मुनक्का (दाख) के क्वाथ करते समय १० पल धाय के फूल भी डालें। सभी क्वाथ द्रव्य में प्रक्षेप मिलाके १ माह तक पृथ्वी में भाण्ड का मुख बन्द कर गाड़ दें। १ महीने के बाद भाण्ड को निकाल के क्वाथ द्रव्य को कपड़े में छान लें और भाण्ड साफ कर धोके पुनः भाण्ड में क्वाथ जो संधान हुआ है छना हुआ भरदें। इस तरह दो-तीन बार कपड़े में छानकर बोतलों को भरें। बोतल के कुछ अंश खाली रक्खें चूंकि गैस से बोतल टूटने का भय रहता है।

प्रभाव—यह द्राक्षारिष्ट का पाठ भैषज्य रत्नावली में है। इस अरिष्ट का प्रभाव सीधे श्वास यन्त्र वक्षस्थल कलेजा पर पड़ता है। कफ को शान्त कर वायु को नाश करता है अतः कास श्वाँस गलरोग प्रतिश्याय जन्य उपद्रव कफ जकड़ना कुकुर कास आदि में अपना प्रभाव दिखाता है। बल वर्धक एवं सारक रेचक है। द्राक्षारिष्ट का सीधे प्रभाव यक्ष्मा पर भी पड़ता है।

गुण विवेचन—द्राक्षारिष्ट के प्रधान घटक द्राक्षा मुनक्का हैं, मुनक्का शीत वीर्य सारक, मधुर विपाक, पेट की वायु नाशक, शुक्रवर्धक पुष्टिकारक रुचिप्रद है। अतः कास श्वास में वायु को नाशकर, कफ को नाशकर, कास नाशक है। रक्तपित्त नाश करने में भी उपयोगी है। गुड़ वायु नाशक है योग वाही होने के कारण और भी घटक कफ वायु श्वास यन्त्र को शुद्ध करने में सहायक गुण विशिष्ट हैं। अग्निबल प्रद पौष्टिक पेय द्राक्षारिष्ट है इसमें संशय नहीं।

अनुभव—अपने चिकित्सा क्षेत्र में द्रव्यगुण दर्पण (बंग) के अनुसार कास प्रतिश्याय जन्यकास स्वरयंत्र गलावरोध ज्वर पिपासा श्वांस वायु वातरक्त कामला युक्त-कृच्छ रक्तपित्त शोष मदात्ययरोग नाशक है। ताकत, बल वर्धक पेय के रूप में व्यवहार योग्य द्राक्षारिष्ट है।

—वैद्य श्री द्वारका मिश्र आयु. चार्य.
पो० ओड़ो (नवादा)
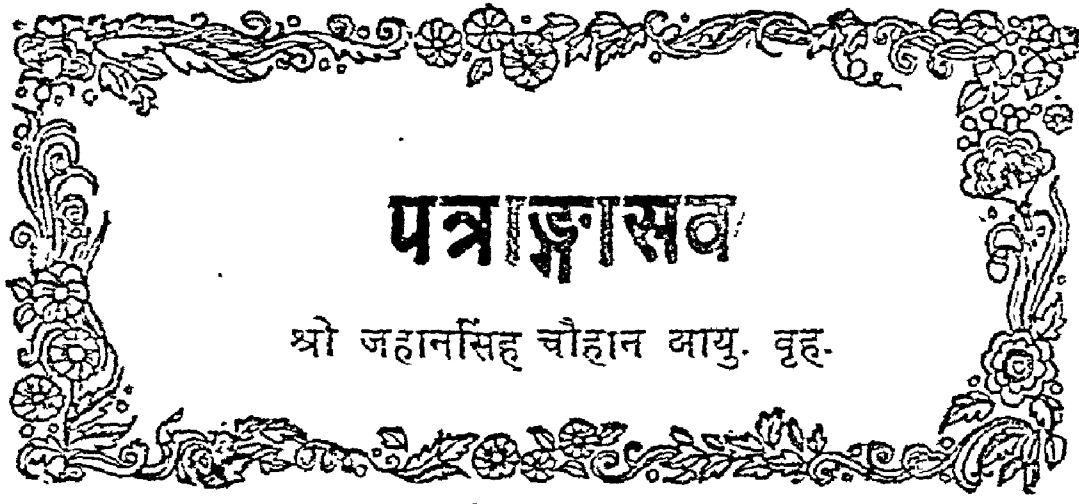
पत्राङ्गासव

श्री जहानसिंह चौहान आयु. वृह.

औषधि का नाम—पत्राङ्गासव

ग्रन्थ निर्देश—भैषज्य रत्नावली।

रोगाधिकार—स्त्री रोगाधिकार।

औषधि घटक एवं मात्रा—

पत्राङ्गं खदिरं वासा शाल्मलीकुसुमं बला।
भल्लातकं भारिवे द्वे जवाकुसुममस्फुटम्॥
आम्रास्थि दार्वी भूनिम्ब आफूकफलजीरकम्।
लौहं रसांजनम् विल्वं केशराजस्त्वचं तथा॥
कुंकुमं देवकुसुमं प्रत्येकं पलसम्मितम्॥
सर्वं सुचूर्णितं कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम्॥
धातकी षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत।
शर्करायास्तुलां दत्वा क्षौद्रस्यार्द्धतुलां तथा॥
एकीकृत्य क्षिपेद् भाण्डे निदध्यान्मासमात्रकम्।

घटक	घटक द्रव्य	शास्त्रीय तौल	वर्तमान तौल
१	पत्रांग	१ पल (८ तो०)	८० ग्राम
२	खदिर काष्ठ	,,	,,
३	अडूसा छाल	,,	,,
४	सेमल के फूल	,,	,,
५	भिलावा	,,	,,
[illegible]	अनन्तमूल	,,	,,
[illegible]	[illegible]लता	,,	,,
८	गुड़हल की कली	,,	,,
९	आम्रबीज	,,	,,
१०	दारुहल्दी	,,	,,
[illegible]	चिरायता	,,	,,
१२	पोस्त की डोडी	,,	,,
१३	जीरा	,,	,,
१४	लौह चूर्ण	१ पल (८ तो०)	८० ग्राम
१५	रसौत	,,	,,
१६	कच्चे बेल का गूदा	,,	,,
१७	केशराज	,,	,,
१८	दालचीनी	,,	,,
१९	केशर	,,	,,
२०	लौंग	,,	,,
२१	द्राक्षा	२० पल (२ सेर)	१६०० ग्राम
२२	धाय के फूल	१६ पल (१ सेर ९ छटांक ३ तोला)	१२८० ग्राम
२३	खांड़	१० सेर	८ किलो
२४	शहद	५ सेर	४ किलो
२५	जल	२ मन २२ सेर ६ छटांक २ तो.	८० लिटर

निर्माण प्रक्रिया—उपरोक्त सभी औषधि द्रव्यों को एकत्र मिश्रित कर एक पात्र में डाल दें और मुख बन्द करके १ मास तक रहने दें। १ मास के पश्चात् आसव तैयार हो जावेगा, तब उसे छान कर बोतलों में भर लें।

शास्त्रीय दृष्टि से औषधि के गुण—

पत्रांगासव, अग्निदीपक, रोचक, वल्य, शोथ, पाण्डु एवं ज्वरघ्न है। स्त्री जननेन्द्रिय रोगों की दिव्य औषधि है। विशेष रूप से कटि प्रदेश के रोगों की।

मात्रा—१० से २० मिलिलिटर।

सेवन काल—दिन में २ बार भोजनोपरान्त।

अनुपान—समान भाग जल से।

गुण तथा उपयोग

हन्त्युग्रं प्रदरं सर्वं श्वेतारुणं सवेदनम्।
ज्वरं पाण्डु तथा शोफ मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥

अर्थात् यह आसव वेदनायुक्त श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, ज्वर, पाण्डु, शोथ, मन्दाग्नि एवं अरुचि को नष्ट करता है।

स्त्री रोगों की यह एक प्रमुख शास्त्रीय औषधि है। इस औषधि का प्रभाव विशेष रूप से स्त्री के कटि प्रदेश पर पड़ता है। कटि प्रदेश का सम्बन्ध सम्पूर्ण स्त्री जननेन्द्रियों से होता है इसलिये इस भाग का स्वस्थ रहना स्त्री की निरोगता की निशानी है। स्त्री का सम्पूर्ण स्वास्थ्य इसी अंग की स्वस्थता पर आधारित है। इसलिये कटि प्रदेश (कमर) का स्वस्थ रहना नितान्त आवश्यक है।

चिकित्सा शास्त्रियों का विचार है कि प्रत्येक स्त्री को एक या दो माह अथवा वर्ष भर में २-३ बोतलें औषधि अवश्य पीना चाहिये। ऐसा करने से स्त्री का कटि प्रदेश स्वस्थ रहता है और उसे जननेन्द्रिय सम्बन्धि रोग नहीं होने पाते हैं।

पत्रांगासव गर्भाशय को शक्ति प्रदान करता है। जिन स्त्रियों के गर्भ नहीं रहता है और यदि रहता भी है तो असमय में स्रवित हो जाता है। ऐसी अवस्था में पत्रांगासव का प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

जिन स्त्रियों के मरे हुए बच्चा पैदा होते हैं अथवा रोगी सन्तान पैदा होती है या बच्चा उत्पन्न होते ही मर जाता है तब ऐसी स्थिति में यह आसव सराहनीय कार्य करता है। इन अवस्थाओं में इस औषधि का प्रयोग निरन्तर कुछ दिन अथवा महीनों तक करते रहने से उत्तम लाभ होता है।

यदि इस औषधि का प्रयोग चन्द्रप्रभावटी के साथ कराया जाय तो अधिक लाभ होता है।

स्वानुभव—

हमने अपने अनुभवों के आधार पर यह पाया है कि जिन स्त्रियों के गर्भ का बार-बार पात हो जाता है और वह प्रदर आदि से पीड़ित रहती हैं तो ऐसी महिलाओं में पत्रांगासव तथा फलघृत एवं गर्भ चिन्तामणि रस का प्रयोग साथ-साथ कराया जाय तो निश्चय ही इस व्याधि से छुटकारा मिल जाता है और निरोग स्वस्थ बच्चे का जन्म होता है। औषधियां लम्बे समय तक सेवन कराई जाती हैं।

पत्रांगासव चिकित्सा व्यवस्था से ऐसी ही सफलता हमने श्वेतप्रदर में पायी है जो बहुत ही अनुभूत है और शतप्रतिशत रोगिणियां इस व्यवस्था से आरोग्य हो जाती हैं। ऐसी सफलतायुक्त व्यवस्था नीचे दी जा रही है—

१. प्रदरान्तक लौह २४० मिलिग्राम, चन्द्रप्रभावटी १/२ ग्राम, कुल १/मात्रा। ऐसी १ मात्रा प्रातः सायं दिन में २ बार कुश की जड़ के क्वाथ से दें।

२. पत्रांगासव २० मिलिलिटर समान जल के साथ भोजनोपरान्त।

३. समुद्र शोष+मिश्री का बारीक चूर्ण १० ग्राम की मात्रा में जल के साथ दिन के २ बजे।

४. योनि प्रक्षालन के पश्चात् अशोक घृत का फाहा योनि में रखें।

५. सुपारीपाक १० ग्राम रात्रि सोते समय। ऊपर से अशोकारिष्ट २० मिलिलिटर समान जल से पिलावें।

नोट—श्वेत प्रदर के सम्बन्ध में हमारा दावा है कि स्त्री को कैसा भी दारुण से दारुण रोग हो, निश्चय ही इस व्यवस्था से ठीक हो जाता है। औषधि व्यवस्था १-२ माह तक आवश्यकतानुसार चलानी चाहिए। चिकित्सा काल में मैथुन से बचें।

मेरा नवीनतम अनुभव—

अभी हमने एक नया अनुभव करके देखा है कि यदि श्वेत प्रदर की रोगिणी को पत्रांगासव चिकित्सा के साथ-साथ 'माइरोन टिकिया' नि० एलार्सन कं० ४-६ टिकिया प्रतिदिन सेवन करायीं जायें और रात्रि के समय अशोक घृत का फाहा योनि प्रक्षालन के पश्चात् योनि में रखाया जाय तो १५ दिन की चिकित्सा में ही उत्तम लाभ दीखने लगता है।

यदि स्राव की पर्याप्त अधिकता हो और रोग उग्र स्वरूप का हो तो 'प्रदरान्तक लौह' २ गोली प्रातः सायं दुग्ध के साथ और सेवन करायें।

नोट—माइरोन टि० एक पूर्ण आयुर्वेदिक औषधि है।

—चिकित्साविज्ञान वारिधि वैद्य डा० ज्हानसिंह चौहान
आयुर्वेद बृह०, साहित्यायुर्वेद वाचस्पति, आयुर्वेद रत्न,
चौहान आयुर्वेद निकेतन, नवीगंज (मैनपुरी) उ.प्र.

वैद्यराज डा० श्री रणजीत सिंह शास्त्री एम. ए., पी. एच. डी., आयुर्वेदाचार्य

प्रयोग—अर्जुन वृक्ष की नई छाल ५ किलो, मुनक्का लाल २॥ किलो, महुए के फूल १ किलो। सबको कुचलकर ५२ लिटर पानी में भिगोकर कड़ाई या कलई वाले पात्र में पकावें। १३ लिटर क्वाथ शेष रहने पर छान शुद्ध चिकने मटके में भर दें, प्रक्षेप में धाय के नये फूलों का चूर्ण १ किलो, गुड़ पुराना उत्तम ५ किलो डाल मिलाकर मुख बन्द कर कपड़मिट्टी करदें। १ मास बाद छान कर बोतलों में बन्द करके रखें। यह पार्थाद्यरिष्ट भैषज्य रत्नावली नामक आयुर्वेद के सिद्ध ग्रन्थ का योग है।

विशेष गुण एवं मात्रा—हृदय रोगों के लिए आशुफलप्रद हृदय कम्पन, अवसाद, धड़कन बढ़ जाना, हृत्पीड़ा, दिल की कमजोरी और बेचैनी को दूर करता है। इसकी पूर्ण मात्रा आधा औंस से १ औंस तक है। पीते समय सम भाग पानी मिला लेना चाहिए। बालकों को १ चाय के चम्मच से लेकर ४ चम्मच तक दे सकते हैं।

यह शास्त्रीय योग उक्त रोगों पर विशेष रूप से लाभ करता है। अनेक बार बनाकर प्रयुक्त किया है हृदय रोगियों पर आशुफलप्रद है।

परिमाण—शास्त्रकार ने तुला, द्रोण और पलों में प्रयोग घटकों का तोल लिखा है। लेखक ने प्रचलित लिटर आदि तोलों की समयिक उपयोगिता जानकर उन्हीं का उल्लेख कर दिया है।

पर्यायवाचक नाम—पार्थाद्यरिष्ट को अर्जुनारिष्ट एवं धनञ्जयारिष्ट भी कहते हैं। पार्थ, अर्जुन और धनञ्जय ये पर्यायवाची हैं।

शास्त्रीय योग में विशेष औषधियों का प्रक्षेप—

भैषज्य रत्नावली के पार्थाद्यरिष्ट में कोई भी परिवर्तन नहीं किया जाता है। केवल कुछ हृद्य जीवनीय एवं बलवर्धक औषधियों का परिवर्तन कर प्रक्षेप में डालता रहा हूँ। ये औषधियां अधोलिखित हैं—

छोटी इलायची १ तोला, बड़ी इलायची १ तोला, मुलहठी २ तोले, सफेद चन्दन असली २ तोले, दालचीनी १ तोला, नागकेशर १ तोला, लौंग १ तोला, तेजपात २ तोले, कालीमिर्च १ तोला, उन्नाव १ तोला। इन दश औषधियों को चूर्ण कर मटके का मुख बन्द करने से पूर्व डालकर अच्छी तरह मिला दें। इस प्रक्षेप के प्रभाव से पार्थाद्यरिष्ट अधिक गुणकारी बन जाता है।

लेखक का अनुभव—

चिकित्सक के पास अन्य रोगियों के साथ-साथ हृदय रोगी भी प्रतिदिन उपस्थित होते हैं। इनमें आशुफलप्रद तात्कालिक लाभ पहुँचाने वाली एलोपैथिक पेटेण्ट औषधों के प्रयोग से हृदयावसाद, हृत्कम्पन, हृदाक्षेप, हृदय की धड़कन बढ़ जाना, बेचैनी आदि उपद्रव हो जाते हैं। जो रोगी तात्कालिक लाभ दिखाने वाली औषधों का बार-बार अधिक मात्रा में प्रयोग करने लगते हैं उनको उक्त रोग स्थायी बन जाते हैं। ऐसे रोगियों को पार्थाद्यरिष्ट १-१ तोले ४-५ बार पानी या फलों का रस मिलाकर देने से आशातीत लाभ करता है। कुछ दिनों तक सेवन कराने के बाद जब पूर्ण स्वास्थ्य लाभ हो जाय तब शनैः-शनैः कम करते हुए औषध बन्दकर देनी चाहिए।

अन्य प्रकार के हृदय रोगों में—जिन रोगियों को अत्यधिक शोक, चिन्ता, भय, उद्वेग, आघात, उदर कृमि, गैस, अजीर्ण मद्यादि नशे के पदार्थों के सेवन से हृदय रोग हो जाता है अथवा किसी शारीरिक एवं मानसिक रोगों के

कारण हृदय रोग की उत्पत्ति हो जाय, इस प्रकार के सभी रोगों के कारणों का प्रतिकार करते हुए पार्थाद्यरिष्ट का रोग बलानुसार प्रयोग करना चाहिए।

अपने औषधालय में सैकड़ों व्यक्ति हृदय रोग से पीड़ित आये, और आज भी आ रहे हैं, इन सभी को पार्थाद्यरिष्ट का निरन्तर सेवन करा रहा हूं और करा चुका हूं, सभी को बहुत अधिक लाभ हुआ है। कुछ महिला रोगी तो पार्थाद्यरिष्ट के निरन्तर सेवन से बहुत स्वस्थ हो गये हैं।

पार्थाद्यरिष्ट का प्रभाव—जिस समय हृदय के प्रकोष्ठों, आलिन्दों तथा आवरणों और हृदय का आकुञ्चन व प्रसारण क्रियाओं में निर्बलता या रोग विशेष के कारण व्यतिक्रम, पीड़ा आदि होने लगती है। ऐसी स्थिति में पार्थाद्यरिष्ट १ तोले अर्क बेदमुश्क या अनार के रस १ तोले के साथ मिलाकर सेवन करने से सभी उपद्रव शान्त होने लगते हैं। धमनियों के संकुचन या विकारी पदार्थों के रक्त वाहिनियों में जमा हो जाने से रक्त संवहन क्रिया में अन्तर पड़ने या व्यवधान पड़ने से हृदयगति में भी विक्षोभ हो जाता है। कभी-कभी विभिन्न रोगों के कारण हृद्यन्त्र में शोथ या निर्बलता आ जाती है। इस प्रकार के सभी हृदय रोगों पर पार्थाद्यरिष्ट का प्रयोग सद्यः लाभकारी होता है। अधिक सेवन करने से स्थायी लाभ होता है।

चिकित्साकाल में उक्त अरिष्ट के साथ-साथ इन औषधों के प्रयोग से आशु लाभ होता है—

हृदय रोग—हृदय की धड़कन बढ़ने या अवसाद होने पर दुर्बलता व हृदयक्षीणता व पीड़ा का अनुभव होने लगती है, हाथ पैर झूठे से पड़ जाते हैं—ऐसी गम्भीर स्थिति में मैंने रोगियों को जवाहर मोहरा (नं० १) १-१ रत्ती ४-४ छोटी इलायची मिलाकर शुद्धमधु से चटाया, और १ तोले पार्थाद्यरिष्ट अर्कबेदमुश्क २ तोले मिलाकर दिया। तत्काल लाभ हुआ, चैतन्यता आ गई।

अन्य रोगी को पार्थाद्यरिष्ट २ तोले के साथ २ तोले अर्क सौंफ मिलाकर पिलाया और मुक्ता पञ्चामृत १॥ रत्ती, हृदयार्णव रस १ रत्ती मिलाकर इलायची छोटी व मधु मिलाकर दिया। तत्काल हृत्पीड़ा अवसाद शान्त हुआ।

तृतीय रोगी को—अर्जुनारिष्ट के साथ मुक्तापिष्टि १ रत्ती, खमीरा गाजवान अम्बरी १ तोला में मिलाकर दिन में व रात में चटाया, तत्काल लाभ हुआ।

एक निर्धन रोगी को अर्जुनारिष्ट १॥-१॥ तोला सम भाग पानी मिलाकर दो बार सेवन कराया, सह चिकित्सा में प्रवालपिष्टि २ रत्ती, जहरमोहरा पिष्टि २ रत्ती मिला ४ छोटी इलायची में दिया; बेचैनी दूर हो गई, रोगी स्वस्थ हो गया।

विशेष—कभी-कभी हृदय रोगों में शीताक्रान्तता होने से शीत वस्तुयें व औषधि अनुकूल नहीं पड़तीं, उस समय विषाण भस्म, दवायें, उलमिस्क (कस्तूरी अवलेह) कस्तूरी भैरव रस का प्रयोग करना चाहिए। मकरध्वज व मोती आदि २ रत्ती मिलाकर तीन बार देना।

चन्द्रोदय या मकरध्वज के साथ थोड़ी मुक्तापिष्टि अवश्य मिलानी चाहिए, मुक्तापिष्टि के अभाव में मुक्ता भस्म ले सकते हैं। चन्द्रोदय आदि की मात्रा वयस्क के लिए १ रत्ती तक बालकों के लिये ⅛ रत्ती से ¼ रत्ती तक, इतनी मात्रा मुक्ता की भी मिलाकर मधु से दें।

शीताङ्गता—जिस समय ज्वर के एक साथ उतारने पर शीताङ्ग सन्निपात हो जाता है (प्रायः मुक्ता ज्वर को डाक्टरी दवाओं से उतारने पर हो जाता है) ऐसे आपत्ति के समय में कस्तूरीभैरव रस १ रत्ती पान के रस व शहद में प्रयोग करें। दिवाल मुश्क नं. १ नामक (कस्तूरी योग) को ३-३ माशे ४-५ बार दिन रात में चटावें। इस समय विष मिश्रित हृदयावसादक कोई दवा न दें। उक्त प्रकार सावधानी से शीताङ्ग से उत्पन्न हृदयावसाद व बेचैनी तथा मूर्च्छा शीघ्र दूर होती है। ऐसे समय में हाथ पैरों की ठंडक दूर करने के लिए कायफल का चूर्ण, सोंठ, जायफल का सूक्ष्म चूर्ण मलना चाहिए। पसीने को कुलथी भूनकर पीस लें और इसकी पोटली से बार-बार सुखालें।

पथ्यापथ्य—गेहूं, जौ, पुराने चावल, मूंग, मसूर, लौकी, परवल आदि, सभी अनारों के भेद, सन्तरा, मौसमी, सेव, आलूबुखारा, लीची, अनन्नास आदि का सेवन पथ्य है, कब्ज नहीं रहना चाहिये। दुर्जर, भारी, गैसोत्पादक, गर्म विदाही, विष्टम्भी, स्निग्ध (तली हुई) पदार्थों का सेवन कभी न करें।

—वैद्यराज डा० रणवीरसिंह शास्त्री एम.ए., पी.एच.डी.,
वेद आयुर्वेद व्याकरण साहित्याचार्य,
अध्यक्ष–जिला वैद्य सभा, आगरा (उ०प्र०)

* पार्थाद्यरिष्ट *

वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त

इसे पार्थाद्यरिष्ट तथा अर्जुनारिष्ट भी कहते है ।

घटक—अर्जुन वृक्ष की ताजा छाल का जौकुट चूर्ण सेर, पिसी–मुनक्का उत्तम नवीन २॥ सेर, पिसे महुआ फूल ताजा १ सेर, जल ४ द्रोण (५१ सेर) क्वाथ करें । व जल चौथाई रह जाय तब खूब मलकर छान ले । समें ५ सेर गुड़ घोल दें । साथ ही धाय के फूलों का र्ण १ सेर भी घोल में मिला दें । साथ ही कोई-कोई हद १। सेर भी मिलाते हैं । आसवारिष्ट विधि से तैयार रलें । तैयार हो जाने पर छानकर शीशियों में रखें । ात्रा पूरी, २ तोला जल मिलाकर भोजनोपरांत सेवन रे ।

गुण—हृत्फुपफुस गदान् सर्वान् हन्त्ययं बलवीर्यकृत ॥

अर्थात् हृदय और फेफड़ों के सभी रोगों को दूर करता है । साथ ही बलवीर्य की वृद्धि भी करता है ।

यह उत्तम हृद्य है । पित्त प्रधान हृद्रोग, फेफड़े के रोग व सूजन से फूली हुई शिथिल नाड़ियों को संकुचित और दृढ़ बनाकर निर्बलता को दूर करता है। हृदशूल, उसकी उद्वेपन तथा शैथिल्यता में भी उत्तम गुणकारी है ।

इसके प्रयोग से हृदय को परिपूर्ण यथावश्यक रक्त की पूर्ति होने से हृदय में संकोच, विकास और आराम ये तीनों क्रियायें मुख्यतः हुआ करती है । उनमें से हृदय के विश्राम या आराम क्रिया की वृद्धि होती है । जिससे हृदय में उत्साह एवं बल की प्राप्ति होती है। इसके प्रयोग से रक्तवह स्रोतसों का संकोच अच्छी प्रकार होने से रक्त को समस्त शरीर में फेंकना तथा समस्त शरीर में फैले हुए रक्त को खींचने का कार्य हृदय ठीक प्रकार से कर सकता है । इसलिए हृदय एवं रक्तवाहिनियों के शैथिल्य, सर्वाङ्ग शोफ, नाड़ी की मंदता, श्वास कास आदि जीर्ण स्थायी विकारों में भी इसका उपयोग परम लाभकारी होता है ।

इस आसव के प्रयोग से पित्त की विदग्धता और अम्लता कम होकर रक्त में स्वच्छता एवं स्थिरता उत्पन्न होती है, जिससे रक्तपित्त में तथा अम्लपित्त में, विशिष्ट पित्त विकारों में लाभ होता है । यह रक्त प्रदान का भी कार्य करता है जिससे शरीर की कांति में सुधार और बल की वृद्धि होती है । पाण्डु रोग में भी इसका उपयोग सफल है । इसके साथ स्वर्णपाक्षिक भस्म दिया जाता है ।

कफ विकारों में विशेषतः उरस्थ कफ के विकार में अधिक उपयुक्त है । वहाँ कफ का संचय नहीं हो पाता, श्वास कास आदि विकार शीघ्र दूर होते हैं ।

मेद वृद्धि को विकार बहुधा हृदय की दुर्बलता से उत्पन्न हो जाता है । मेद वृद्धि से भी हृद् दौर्बल्य हो जाता है । ऐसा चक्र चालू हो जाता है ऐसी अवस्था में इसकेप्र योग से हृदय और रक्तवह स्रोतसों को बल प्राप्त होकर। उक्त दूषित चक्र की गति मंद हो जाती है और मेद वृद्धि का नाश हो जाता है ।

इस आसव में हृदय शैथिल्य और उत्तेजक दोनों गुण होने से हृद्रोगों पर उत्तम कार्य करता है । हृदय पेशी अशक्त, बलहीन और नरम हो, धमनियों में रक्त का दबाव कम हो गया हो हृदय फूला या प्रसरण युक्त (Dilated) हो तो इस आसव के उत्तम कार्य से आश्चर्य-जनक लाभ होता है ।

वातश्लैष्मिक ज्वर या इन्फ्ल्यूएन्जा के बाद हृदय की निर्बलता पर भी उपयोगी है । शरीरक्षयकारक जीर्ण ज्वर में भी हृदय की अशक्तता को नष्ट करता है ।

—विशेष सम्पादक

पिप्पल्याद्यासव

ग्रन्थ संदर्भ—शार्ङ्गधर संहिता, प्रमेहादि अधिकार

घटक—(१) छोटी पीपल (२) कालीमिर्च (३) चव्य (४) हल्दी (५) चित्रक (६) नागर मोथा (७) वायविडंग (८) सुपारी (६) लोध्र (१०) पाठा (११) आमला (१२) छड़ीला व एलुवा (१३) खस (१४) श्वेतचन्दन (१५) कूठ (१६) लौंग (१७) तगर (१८) जटामांसी (१६) दालचीनी (२०) इलायची (२१) तेजपत्ता (२२) फूलप्रियंगु (२३) नागकेशर। ये प्रत्येक २-२ तोला। इनका कूटपीस चूर्ण बनालें।

जल २५ सेर १० छटांक, गुड़ १५ सेर, धाय के फूल ४० तोला, मुनक्का ३ सेर को धोकर बीज रहितकर पीस लेवें।

इन सबको एक चिकने घट में या चीनी मिट्टी के अमृतवान में डालकर घोल दें। संधानकर आसव तैयार करें। तैयार होने पर छानकर उपयोग में लावें।

मात्रा—१ से २ तोले तक। जल मिलाकर। भोजनोपरांत शास्त्रीय गुण धर्म इस प्रकार हैं—

क्षयं गुल्मोदरं कार्श्यं ग्रहणीं पाण्डुतां तथा।
अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्यासवस्त्वयं॥—शा. सं.

यहां "एलवालुकम्" मूलग्रन्थकार ने लिखा है उसके स्थान पर कोई "एलुवा" अर्थ करते हैं, कोई टीकाकर छड़ीला लिखते हैं। भा. प्र. निघण्टु में लिखा है कि—

एलावालुक शैलेयं सुगंधि हरिवालुकम्।
एलावालुकमैलालुकपित्थफल मोरितम्।
एल्वालु कटुकं पाके कषायं शीतलं लघु॥

इसे हिन्दी नाम लालुका, पक्क कपित्थफलवत् लेटिन नाम (Prunus Corasus) दिया है। इसे भी एलुवा कहते हैं जो सुगन्धित, काले रंग का, शीतलचीनी की तरह कूठ की सी गंधवाला पदार्थ है। पंजाब व हिमालय में होता है। आयुर्वेद ग्रन्थों में इसका प्रयोग रोध्रकादि अरिष्ट में (सुश्रुत) वाग्भट सूत्र स्थान अ. १५ में रोध्रादिगण में इसका उल्लेख है। चरक के शुक्रशोधन, वेदना स्थापन गण में है। जिसे मुसव्वर, एलुवा कहते हैं, यह वह द्रव्य नहीं है।

इस योग में पिप्पली (छोटी पीपल) नवीन न लेकर पुरानी लेनी चाहिए। चूंकि नवीन शुष्क पिप्पली दाहक और पित्तकारक होती है। पुरानी ही सर्वत्र औषधियों में लेने का विधान है। (शा. सं.)

उक्त आसव में प्राय: अधिकतर द्रव्य उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, कफनाशक, श्वास कासहर हैं जिनकी क्रिया फुफ्फुस पर अधिक है। अत: क्षययुक्त कास में यह विशेष हितकर है। जिन्हें भूख नहीं लगती, मन्द-मन्द ज्वर रहता हो, गुल्म के कारण शरीर कृश हो गया हो, गुल्म भी बढ़ा हो, या जिन्हें संग्रहणी का रोग हो, भूख कतई नहीं लगती पेट में दर्द बना रहता हो, शरीर में पाण्डुता आगई हो, उनके लिए विशेष हितकर है।

वातज अर्श में भी दिया जा सकता है। इसका विशेष कार्य मन्द-मन्द ज्वर तथा मन्दाग्नि को दूर करना है। फुफ्फुस को बल प्रदान कर कास को नष्ट करता है, कफ का बनना रोकता है। शरीर में शक्ति का भी संचार करता है।

नोट—इसमें पड़ने वाले द्रव्यों के प्रथक्-प्रथक् गुण दूसरे लेखों में देखें। विस्तार भय से यहां नहीं दिये गये।

श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त (विशेष सम्पादक)
५८/६८ नील वाली गली, कनापुर।

कविराज डा० डी० पी० मालाकार राजवैद्य, आयु० रत्न

पुनर्नवा प्रधान इस दिव्यौषधि का जितना गुणगान किया जाय उतना ही थोड़ा है। भारत ही नहीं संसार भर के चिकित्सक पुनर्नवा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। पुनर्नवा यथा नाम तथा गुण है। पुनर याने पुनः(दुबारा)या फिर से, नवा याने नई। याने जो जीर्ण शीर्ण शरीर को दुबारा नवा या नया बना दे वही पुनर्नवा है।

पुनर्नवा के अन्दर लोहांश अधिक होने से यकृत और प्लीहा तथा वृक्कादि के शोथ को कम करता है एवं रक्त की वृद्धि करके देह की पांडुता को नष्ट करता है। पाश्चात्य दृष्टि से विश्लेषण करने से भी विदित हुआ है कि इस वनस्पति में पुनर्नवीन नामक कषाय होता है जिसका प्रभाव वृक्क के इपिथिलियल सेल्स पर होता है और मूत्र की मात्रा अधिक बढ़ती है जिससे शोथ कम होता है। घोष महोदय अपनी "मेटेरिया मेडिका" में इसके विषय में निम्नाङ्कित वक्तव्य देते हैं—

Intravenous injection of the alkaloid produces a distinct and persistent rise of Blood Pressure and a marked diuresis. The Diuresis is chiefly due to the action of Punarnavine on the renal epithelium and partly to rise of Blood Pressure. The presence of a large amount of nitrate of potassium contributes to the Diuresis when the liquid extract is used. It is very valuable in cases of dropsy due either to cirrhosis of the liver or when associated with kala-azar and ascites due to chronic peritoneal coniditions. It is not of much value in cardiac dropsy or in chronic neuritis when given alone. But combined with other diuretics it increases the amount of urine.

अपने तीस-पैंतीस साल के चिकित्सा अनुभव में हर प्रकार के शोथ में जिन-जिन कारणों से शरीर में शोथ हुआ उन-उन कारणों के प्रतिकार हेतु प्रधान दवा के साथ ही साथ पुनर्नवा युक्त औषधियां जैसे अरिष्ट आसव, मण्डूर, वटक, तैल, क्वाथ आदि के रूप में इसका प्रयोग अधिकाधिक किया गया। रोगी का भोजन बिना नमक का करना बहुत जरूरी है। फिर भी जो रोगी बिना नमक के नहीं रह सके उनको सैंधानमक अल्प मात्रा में दिया गया। साथ ही रोगी को पुनर्नवा मूल पानी में चुड़ाकर वही पानी पीने को दिया गया एवं रोगी को पुनर्नवा की ताजी पत्तियों की रोज साग भी खिलाई गई और पुनर्नवा तैल की मालिश भी की गई। इन सबके अलावा विटामिन की कमी याने खासकर विटामिन बी कम्पलैक्स की कमी से रोग की चिकित्सा के साथ-साथ विटामिन बी कम्पलेक्स के इन्जेक्शन भी ६ से१२ की मात्रा में लगाये गये। विटामिन बी में अगर लिवर एक्सट्रैक्ट भी मिला दिया जाय तो अधिक लाभ पाया जा सकता है। कई पुराने रोगियों को शोथारि लोह, शोथ कालानल रस का भी साथ-साथ प्रयोग किया गया। अधिक जल संचित वाले रोगियों को पारद प्रधान, नेप्टाल आदि के इन्जेक्शन भी लगाये गए एवं जहाँ ताजी पुनर्नवा अप्राप्त थी वहाँ काकमाची का साग (हरी) एवं उसी का ताजा रस भी पुनर्नवायुक्त औषधियों के साथ-साथ चलाया। ईश्वर कृपा से हर प्रकार के शोथ में पुनर्नवा की बदौलत लेखक को यश एवं धन, तथा असाध्य रोगियों द्वारा शुभ

आशीर्वाद प्राप्त हुआ। पुनर्नवा मूल को केवल मधु से घिस कर आँख में लगाने से रतौंधी, फूली आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इसकी रोग नाशक विद्युत शक्ति इतनी तेज है कि पीलिया के रोगी को इसकी मूल के टुकड़े कर धागे में बांध कर माला बना पहना दें तो ८ दिन के भीतर पीलिया नष्ट हो जाता है।

पुनर्नवाद्यरिष्ट की जितनी तारीफ की जाय उतनी ही थोड़ी है। परन्तु जब तक औषधि निर्माण यथाविधि शतप्रतिशत शास्त्रोक्त विधि से तन-मन और धन से न किया जाय तब तक उनमें पूर्णरूपेण शतप्रतिशत लाभ मिलना असम्भव है।

पुनर्नवाद्यरिष्ट निर्माण विधि

योग—क्वाथ के लिये—श्वेत पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, खरैंटी, अतिबला, पाढ़, दन्ती, गुर्च, चित्रकमूल, छोटी कटेली प्रत्येक २ छटांक २ तोला, जल ८ द्रोण (२ मन २२ सेर ६ छटांक २ तोला) क्वाथ शेष २ द्रोण (२५ सेर ६ छटांक ३ तोला)।

प्रक्षेप द्रव्य—पुराना गुड़ १० सेर, मधु १ सेर ८ छटांक ३ तो०, अगर, तेजपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची, काली मिर्च, सुगन्धवाला प्रत्येक २-२ तोला।

वक्तव्य—भैषज्य रत्नावली में 'दन्ती' के स्थान पर 'अडूसा' और 'अगरु' के स्थान पर 'नागकेशर' किया गया है।

विधि—क्वाथ्य द्रव्यों का क्वाथ बना छानकर उसमें गुड़ को घोल देने के बाद मधु भी मिलाकर मिट्टी के चिकने घड़े में भरकर मुख बन्द करके जौ के ढेर में एक मास तक गाढ़ दें। बाद में निकाल कर छान लें फिर उसमें अगरु से सुगंधवाला तक के सभी द्रव्यों को (चूर्ण रूप में) मिलाकर पुनः घड़े में भर कर मुख बन्द करके ७ दिन तक गाढ़ दें। जब अरिष्ट तैयार हो जावे तब निकाल छानकर बोतलों में भरलें।

मात्रा और समय—साधारण नियमानुसार प्रातः सायं २-२ तोला भोजनोपरान्त समान जल से सेवन करें।

पथ्य—मांस रस और भात।

गुण—यह अरिष्ट बलवर्धक, वर्णकारक, आयुष्य और तेजस्कर है तथा इसके सेवन से ६ प्रकार के उदर रोग (छिद्रोदर और जलोदर को छोड़कर), हृदय रोग, पांडु, शोथ, प्लीहा, हलीमक, कास, श्वास, हिक्का, प्रमेह, मलबद्धता, गुल्म, भगंदर, ग्रहणी, कुष्ठ, किलास, कण्डू, शाखावत वात रोग, अरुचि, भ्रम इत्यादि रोगों में लाभ होता है।

विशेष—शोथ रोगों में रामबाण सिद्ध औषधि है। अगर शोथ वाला रोगी दवा सेवन काल में गौमूत्र का सेवन दवा के साथ करे तो अधिक फायदा होता है।

पुनश्च—अगर मनुष्य स्वमूत्र पान के साथ इस औषधि को सेवन करे तो निश्चय ही कायाकल्प सिद्ध होगा।

—कविराज डा० डी. पी. मालाकार, राजवैद्य
आयुर्वेदरत्न, चिकित्सक रत्न, एम.एस.सी.ए., टी.टी.सी.
बुन्देली त० महासमुन्द (रायपुर) म.प्र.
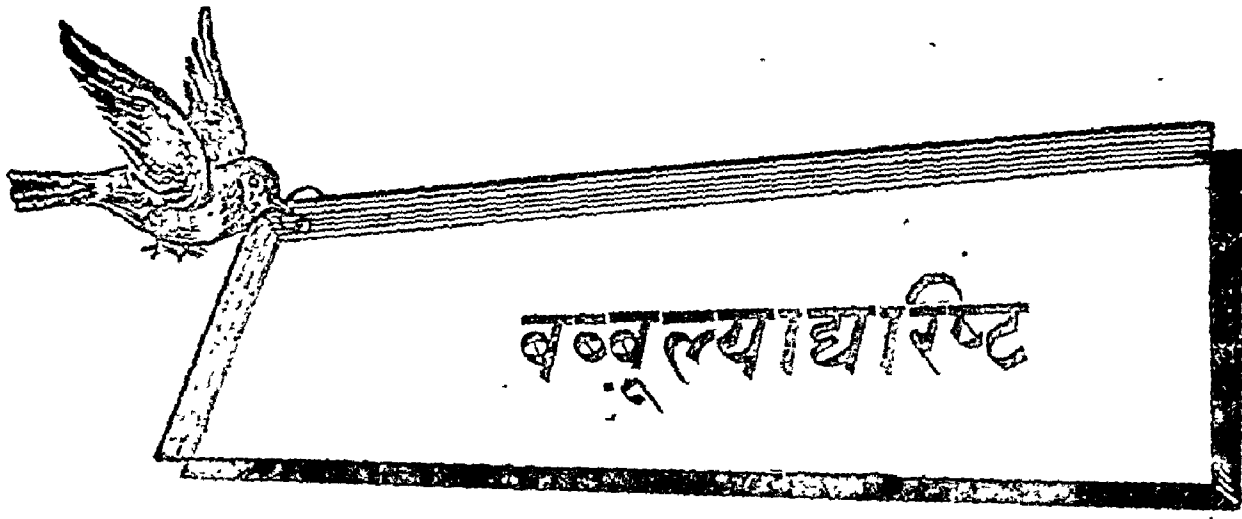
वैद्यराज डा० रणवीर सिंह शास्त्री एम. ए. पी-एच.डी.

ग्रन्थ निर्देश—यह अरिष्ट भैपज्य रत्नावली, गदनिग्रह, शार्ङ्गधर संहिता, भारत भैषज्य रत्नाकर आदि ग्रन्थों में मिलता है। गदनिग्रह में शाब्दिक पाठ भेद मिलता है परन्तु भावार्थ में कोई अन्तर नहीं है। यही योग सर्वत्र पुस्तकों में मिलता है।

प्रयोग एवं निर्माण—

देशी बबूल (कीकर) की छाल १० किलो जौकुट करके ५२ लिटर जल में भिगोकर अग्नि पर पकावें। चौथाई (१३ लिटर) शेष रहने पर ठण्डा करके शुद्ध चिकने मटके में भर दें। इसमें १५ किलो पुराना गुड़, धाय के फूल ७८० ग्राम, छोटी पीपल ६५ ग्राम, जायफल, लौंग, कंकोल, बड़ी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, काली मिर्च ४६-४६ ग्राम का चूर्ण करके क्वाथ में अच्छी प्रकार मिला दें और पात्र का मुख कपड़मिट्टी से बन्द कर दें, एक मास के पश्चात् आसव का सन्धान पूरा होने पर सूक्ष्म कपड़े से छानकर बोतलों में भरकर कार्क लगाकर सुरक्षित रख लें[1]।

आसव की गुण वृद्धि—वब्बूल्याद्यरिष्ट के घटक जितने नवीन होंगे, और विधिवत् आसव का सन्धान किया गया हो तो यह आसव पूर्णगुण युक्त बनता है।

आसव का नाम—गदनिग्रह, आदि आयुर्वेद ग्रन्थों में इस आसव का नाम 'वब्बूल्यारिष्ट' लिखा है। उच्चारण सौकर्य्य के लिए वब्बूलारिष्ट, वब्बूलासव, वब्बूल्याद्यरिष्ट और किक्करासव आदि संज्ञायें लोक में प्रचलित हैं।

आसव या अरिष्ट की सेव्य मात्रायें—१। तोले से २॥ तोले तक वयस्क पुरुष या स्त्री के लिए समभाग पानी मिलाकर भोजन के पश्चात्। बालकों एवं शिशुओं के लिए १० बूंद से १ चाय के चम्मच के बराबर दें। किशोरों के लिए १ चम्मच से ४ चम्मच तक पिला सकते हैं पानी मिलाकर।

विशिष्ट गुण—

शुष्क कास, श्वास, सभी प्रकार के कास, विष्टम्भ, अतिसार, क्षय, रक्त विकार, प्रमेह, प्रदर, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, उरःक्षत, कुष्ठ आदि रोगों को दूर करता है।

अनुभव—

वब्बूलारिष्ट को मैं बहुत वर्षों से बनाता हूं, और अपने दैनिक रोगियों पर प्रयोग करता हूँ। जितनी नवीन औषधियाँ आसव में डाली जायेंगी, उतना ही आसव आशुफलप्रद बनेगा, अतएव इसके निर्माण उपादानों को कुशलतापूर्वक प्रयुक्त करना चाहिये। वर्षाकाल के प्रारम्भ में या अन्त में आसवों का निर्माण उपयुक्त होता है। अन्य ऋतुओं में भूसे में या जमीन में दबाकर आसव प्रस्तुत करने

---

[1] तुलाद्वयन्तु वब्बूल्या श्चतुर्द्रोणे जले पचेत्। द्रोणशेषे रसेशीते गुडस्य त्रितुलाः क्षिपेत्॥
धातकीं षोडशपलां कृष्णां च द्विपलांशिकाम्। जातीफलानि कक्कोलं त्वगेलापत्रकेशरम्॥
लवङ्गं मरिचं चैव पलिकान्युपकल्पयेत्। मासं भाण्डं स्थितस्त्वेष वब्बूल्यारिष्टको जयेत्॥
क्षयं कुष्ठमतीसारं प्रमेह श्वास कासकान्॥ —भैषज्य रत्नावली अतीसाराधिकारः, १०० से १०२

चाहिये, तीव्र ग्रीष्म में आसवों का निर्माण सुविधाजनक नहीं रहता। उबाल आजाने से आसवों का परिपाक व सौम्यता और सुरक्षा समाप्त हो जाती है।

विभिन्न रोगों में प्रयोग—

श्वास-कास में—दमा (श्वास) के रोगी को १-१ तोले की मात्रा देने से आशातीत लाभ होता है। श्वास का समूल नाश तो नहीं होता परन्तु असह्य कष्टों का निवारण अवश्य होता है। १ तोले से २ तोले तक रोगी को पिलाना चाहिए दिन रात में दो-तीन वार पानी मिलाकर। शुष्क कास एवं अन्य कासों में भी कफ को शीघ्र निकाल देता है और रोगी को शान्ति मिलती है।

विष्टम्भ (कब्ज) में—जिन रोगियों को चिरकालिक कब्ज रहता है या कुलागत विष्टम्भ है उनके लिये २॥ तोले मात्रा पानी मिलाकर देनी चाहिये, दस्त बंधा हुआ आने लगता है। पेट की खुश्की मिट जाती है। यदि विशेष विष्टम्भ हो तो दोनों समय लेना चाहिये

प्रमेह-प्रदर-स्वप्नदोष आदि पर—वीर्यदोप, धातु दौर्बल्य, शुक्रतारल्य, स्वप्नदोष आदि सभी वीर्यविकारों का निराकरण कुछ काल तक इस आसव के सेवन से होता है। महिलाओं के सभी प्रकार के प्रदर, रक्त प्रदर, पीत-प्रदर, रजोदोष आदि भी इस अरिष्ट के पीने से दूर होते हैं।

रक्त विकारों पर—खुजली, चकत्ते, लाल पीली फुंसियाँ, त्वचा की जलन, कुष्ठ के विकार एवं पूर्व रूप बब्बूलारिष्ट के सेवन से नष्ट हो जाते हैं मात्रा २-२ तोले।

अनिद्रा- करपाददाह—हथेलियों पैरों के तलुओं व आँखों की जलन को दुगुना पानी मिलाकर ४० दिन तक सेवन करने से यह आसव निश्चित ही शांत कर देता है। चिकित्सक का दैनिक रोगियों पर सैकड़ों वार का अनुभूत है। यह आसव प्रायः सभी फार्मेसियों या समीपस्थ औषधालयों से प्राप्त हो सकता है।

बब्बूल्याद्यरिष्ट के साथ अन्य औषधों का प्रयोग—

कास में—

(१) सितोपलादि चूर्ण १॥ माशे, शङ्ख भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती मिला मधु के साथ प्रातः तथा रात्रि में इतनी मात्रा दें। साथ ही १॥-१॥ तोले उक्त अरिष्ट सम भाग पानी मिलाकर प्रातः सायं एवं दोनों भोजनों के पश्चात् पीवें। इस प्रकार शीघ्र लाभ होता है।

(२) तालीसादि चूर्ण १॥ माशे, चन्द्रामृत रस १॥ रत्ती, शृङ्गाराभ्र १॥ रत्ती, यह एक मात्रा है। ऐसी दो मात्रायें १।-१। तोले च्यवनप्राश में मिलाकर चाटें। प्रातः तथा रात्रि में, दिन में भोजनोपरांत २-२ तोले उक्त अरिष्ट का पानी या वासार्क मिलाकर सेवन करें।

(३) लवङ्गादिवटी, व्योषादिवटी, मरिच्यादि वटी तथा एलादिवटी इनमें से किसी भी गोली का चूषण करते रहने से कास का शीघ्र शमन होता है।

(४) बब्बूल्याद्यरिष्ट में वासकारिष्ट १-१ तोले मिला कर देने से सभी प्रकार की खांसियाँ ठीक हो जाती हैं।

(५) खांसी के साथ यदि कफ में खून आता हो तो उक्त अरिष्ट में पानी के स्थान में अर्क गाजवान २-२ तोले मिलाकर दिन रात में चार वार पिलावें। साथ में प्रवाल भस्म २ रत्ती, तृण कान्तमणि,(कहरवा शमई) पिष्टी ४ रत्ती, जहर मोहरा पिष्टी २ रत्ती, और वंशलोचन असली व छोटी इलायची का चूर्ण १-१ माशे मिलाकर शर्बत अनार से तीन वार दें।

श्वास रोग में—

(१) उक्त अरिष्ट में कण्टकारी आसव १ तो. मिलाकर सेवन करने से श्वास के वेग में लाभ होता है। कनकासव ३-३ माशे प्रतिमात्रा मिलाने से अथवा सोमकल्पासव १-१ तोले मिलाकर दिन रात में ४ वार पीवें। श्वास रोगी को महती शक्ति मिलती, शुष्क कफ तर हो जाता है।

(२) बब्बूल्याद्यरिष्ट के प्रयोग के साथ श्वास चिन्तामणि १ रत्ती, श्वास कुठार आधा रत्ती, तालीसादि चूर्ण १॥ माशे, यवक्षार १ रत्ती, अदरख स्वरस में शहद मिलाकर सेवन करें, शीघ्र लाभ होता है।

(३) सोमकल्प का सूक्ष्म चूर्ण १ माशे, टङ्कण पुष्प २ रत्ती मिलाकर एक मात्रा प्रातः तथा एक मात्रा सायं पानी से अथवा बब्बूल्याद्यरिष्ट २-२ तोले में २-२ तोले पानी मिलाकर इसके साथ देने से श्वास का दौरा शान्त हो जाता है। सोम का चूर्ण ताजा व सूक्ष्म होना चाहिए।

(४) श्वास कास चिन्तामणि रस १ रत्ती, लक्ष्मी विलास रस (महा) १ रत्ती, अपामार्ग क्षार १ रत्ती, पुष्करमूल (गांठ) चूर्ण ४ रत्ती मिलाकर एक मात्रा प्रातः तथा एक मात्रा रात्रि में अदरख शहद से चाटें। बब्बूल्या-

द्यरिष्ट का प्रयोग २-२ तोले भोजनों के बाद आवश्यक है।

(५) श्वास रोग मे उदर शुद्धि आवश्यक है अतएव उक्त अरिष्ट में अभयारिष्ट या दन्त्यरिष्ट १-१ तोला मिलाकर लेने से विष्टम्भ नही रहता। वह्नि रसायन १। तो. दूध से लेने पर पेट साफ होता है।

अर्शो रोग पर—

सभी प्रकार की बवासीर में विष्टम्भ एवं अग्निमांद्य प्रधान होता है। इन दोनों को उक्त अरिष्ट कुछ दिनों के सेवन से ही दूर करता है। इस अरिष्ट के प्रयोग के साथ ६-६ माशे दन्त्यरिष्ट या अभयरिष्ट मिला दिया जाय तो अधिक रोग निवारक हो जाता है। बाहुशाल गुड़ ६ माशे से १ तोले तक सेवन करना चाहिए। सूरणमोदक भी वातार्श व रक्तार्श के लिए हितावह है मात्रा १-१ तोले प्रातः सायं, इनके साथ उक्त अरिष्ट का सेवन पूर्ववत् करें। मस्सों पर कासीसादि तैल लगाते रहें दो या तीन बार।

आमसंचय—

मिथ्याहार विहार से उदर में आम का संचय हो जाता है। आंतों की भित्तियों में आम का लेपन हो जाता है। इससे सभी रोगों की उत्पत्ति हो जाती है बब्बूल्याद्यरिष्ट के प्रतिदिन २-२ तोले सेवन से आम बाहर निकल जाती है भेषजकारी चिकित्सा के लिए पंचसम चूर्ण ६-६ माशे प्रातः सायं पानी से लें। दोष पाचन के लिए ३-३ माशे लवणभास्कर चूर्ण दही या मट्ठे में लेना चाहिये। हरीतकी शतपुष्पा चूर्ण ३-३ माशे पानी से ४ बार लें। रस चिकित्सा में—आमकामेश्वर रस, सिद्धप्राणेश्वर, गजकेसर रस, नृपतिवल्लभ, तथा पर्पटियों का सेवन वैद्य की सम्मति से करना चाहिए।

मन्दाग्नि एवं विष्टम्भ—

उदर की श्लैष्मिक कलाओं में प्रदाह-होने या विष्टम्भ होने से मन्दाग्नि होकर भूख नहीं लगती। इस अरिष्ट की भोजनोपरांत २-२ तोले की पूर्ण मात्रा देनी चाहिए, साथ में हिंग्वष्टक चूर्ण ३-३ माशे भोजन के पूर्व नीबू के स्वरस से दें। अन्य क्रव्याद रस, शंखवटी, अग्नितुण्डी वटी का प्रयोग भी लाभकारी है।

बब्बूल्याद्यरिष्ट में पथ्यापथ्य—

श्वास कासादि श्लैष्मिक रोगों में उक्त अरिष्ट के सेवन करते समय दही, सभी प्रकार की खटाई, चावल, तेल, शीतल खाद्य व पेय, अरबी, उड़द की दाल, केला, भिण्डी, कटहल, बैंगन, आलू, रतालू, हरित शाक, मूली, पालक, ग्वार की फली, लोभिया, बाँकला आदि शीतल कफकारक व दुर्जर वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए। स्निग्ध व विदाही तथा अत्युष्ण पदार्थों का सेवन भी नहीं करना चाहिए। पूर्व वात, शिरस्नान, वर्षा में भीगना, ओस में सोना, सभी प्रकार की बर्फ (हिम) का प्रयोग रोग को बढ़ाने वाला है।

श्वास कासादि श्लेष्मिक वात प्रधान रोगों में—गेहूं, मूंग, मसूर, लौकी, तोरई, परवल, टिण्डे, करेला, ककोड़ा, चिचिण्डा आदि सुपाच्य निर्दोष शाकों का व दालों का सेवन करना चाहिए। दालों को मिश्रित करके एवं शाकों का मिश्रण भी दोषों को दूर करने में समर्थ होते हैं। भावना (छौंक) की विशेषता भी शाकों का गुणधर्म बदल देता है। जीरा सफेद, काश्मीरी जीरा, राई, प्याज, लहसुन कालीमिर्च, दालचीनी, तेजपात, जावित्री, जायफल, लौंग, कलौंजी, धनियाँ, मेथी, बड़ी इलायची, रक्तमरीचिका आदि अनेक औषधियाँ, गर्म मसाले या छौंक के रूप में प्रयुक्त होती हैं, इनसे दाल शाक आदि का कफ वात दोष दूर किया जा सकता है।

—वैद्य० श्री डा० रणवीरसिंह शास्त्री, एम.ए., पी.एच.डी.
वेद-आयुर्वेद-व्याकरण-साहित्याचार्य
अध्यक्ष—जिला वैद्य सभा, आगरा
सावित्री संस्थान, इन्द्र भवन,
१/१३ पंचकुइयाँ मार्ग, आगरा—२

वैद्यरत्न श्री शिवकुमार जी शास्त्री डी.एस.सी., ए.

निर्माण विधि—

भांगरे का स्वरस १०२४ तो., गुड़ उत्तम ८०० तो., और बड़ी हरड़ के वक्कल का मोटा चूर्ण ३२ तोला, को मिलाकर अमृतवान में भरकर १५ दिन तक पात्र का मुख वन्द करके रख दें। पन्द्रह दिन के पश्चात् इसमें पीपल छोटी, जायफल, लौंग, इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, प्रत्येक ८-८ तोला लेकर जौकुट चूर्ण कर पात्र में डाल अच्छे प्रकार से मिला मुख वन्द करके पुन: १५ दिन तक रख दें। इसके पश्चात् वस्त्र में छान वोतलों में भर कार्क लगाकर रख लें।

मात्रा—१ से २॥ तोला समान भाग जल मिलाकर भोजन के आध-आध घण्टे पश्चात् अथवा प्रात: दोपहर एवं सायंकाल दिन में ३ वार समान भाग जल मिलाकर सेवन करावें।

गुण—

यह आसव धातुक्षय और पांचों प्रकार के कास रोगों को दूर करता है। कृश काय स्त्री पुरुषों को हृष्ट-पुष्ट वनाता है तथा बलकारक, बाजीकर और वन्ध्या स्त्रियों को सन्तान उत्पन्न होने की शक्ति प्रदान करता है।

उक्त आसव जीर्ण वद्ध कोष्ठ निवारण करने में बड़ा अच्छा काम करता है। जब जीर्ण वद्ध कोष्ठ के पश्चात् आंतों के भीतर मल संचित होता रहकर सड़ता रहता है उस सड़े हुए मल की दुर्गन्ध से सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति होकर रक्त आदि धातुओं में प्रवेश करके विविध व्याधियों की उत्पत्ति कर देता है। आंतों में वायु भरा रहने से पाचन शक्ति निर्बल हो जाना, जिह्वा पर मैल जमा रहना, श्वास एवं मुख से दुर्गन्ध आते रहना, बार-बार ज्वर आते रहना, शिरोःशूल, निद्रानाश, कटिशूल, हृदौर्वल्य, मस्तिष्क नैर्वल्य एवं नेत्र ज्योति हीनता, यकृद्विकार, एवं यकृद और प्लीहा की वृद्धि, मधुमेह एवं अन्य समस्त प्रकार के प्रमेह, सर्वांग शोथ पाण्डु रोग, आंत्रिक क्षय रोग, आमवात, संधिवात, वातरक्त, धातुक्षय (धातु की वृद्धि न होकर धातुओं की दिन प्रति दिन क्षीण होते चले जाना)। अकाल में वार्धक्य रोग आदि समस्त रोगों की उत्पत्ति को रोक देता है। इसके कुछ दिन लगातार सेवन करने से सेन्द्रिय विष बिलकुल दूर हो जाता है। हमने उक्त आसव का और कालेड़ा कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन की प्रमेह गज केशरी वटी का प्रात: सायं २-२ गोली ब्राह्म रसायन १ से २ तोला में मिलाकर सेवन करा शुक्र क्षीणता जनित उन्माद रोगियों तथा अन्य अनेकानेक जीर्ण जटिल रोगों से अधिक काल तक ग्रसित रहे आने के कारण, ओज, तेज, बुद्धि बलहीन एवं शरीर और इन्द्रियों की शिथिलता हो जाने वाले रोगियों को सेवन कराके इससे आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त किये हैं।

आशा है धन्वन्तरि के पाठकगण इसका उपयोग करके अधिकाधिक लाभ एवं यश अर्जित करेंगे।

विशेष—यदि रोगी को साथ में अतिसार भी होवे तव इसका सेवन विचारपूर्वक ही करना चाहिए अथवा इसके सेवन के साथ कुटिजारिष्ट वटी का सेवन भी कराते रहना चाहिए।

—वैद्यरत्न श्री शिवकुमार शास्त्री डी. एस. सी., ए.
भू० पू० सदस्य—इं० मै० वोर्ड (उ०प्र०)
शिव चिकित्सालय,
रावतपाड़ा, आगरा

भृङ्गराज आसव

वैद्य शिव प्रसाद एम. एस-सी., एम. ए., आयुर्वेदाचार्य

भृङ्गराज आसव के घटक—

भृङ्गराज का स्वरस २५६० भाग, गुड़ १००० भाग, हर्र का चूर्ण ४० भाग, धाय के फूल १०० भाग।

प्रक्षेप द्रव्य—दालचीनी, तेजपत्र, लौंग, नागकेशर, जायफल, छोटी पीपल प्रत्येक १० भाग।

निर्माण विधि—

भृङ्गराज का स्वरस, गुड़, हर्र तथा धाय के फूलों को आसव के लिए निर्मित बढ़िया धूपित घड़े में भर कर घड़े का मुख बन्द करके ऊपर से मिट्टी आदि से लेप कर सुखालें, फिर जमीन में या धान्य में गाढ़ दें। १५ दिवस बाद निकाल कर छान लें और फिर प्रक्षेप द्रव्यों को मिला कर पुनः उसी घड़े में १० दिवस तक रख दें। फिर पुनः छान लें और स्वच्छ शीशियों में भरलें और औषधि को प्रयोग में लावें। बनादास पिटक में अन्य सब सामान इसी प्रकार हैं पर गुड़ डेढ़ गुना मिलाने का निर्देश है व प्रक्षेप द्रव्य साथ डालने का आदेश है। हमने दोनों ही विधियों से इसे बनाया है ग० निग्रह से बनाने पर तेज रहता है लेकिन बनादास पिटक के अनुसार बनाने पर मधुर हो जाता है व तेजी भी कुछ कम रहती है। लेकिन जहाँ तक गुणों का प्रश्न है कोई विशेष अन्तर नही पता चला लेकिन बनादास की विधि सुविधाजनक है।

मात्रा—१॥ से २॥ तोला प्रातः सायं जल से भोजनोपरान्त।

गुण—

१. यह जीर्ण कास में व कफज कास में अति गुणकारी औषधि है।

२. कामोद्दीपक होने से नपुंसकतानाशक औषधियों के साथ प्रयोग करने पर रोगी के बल, वजन और पुरुषत्व में वृद्धि होकर उत्तेजना में वृद्धि होती है।

३. सारक होने से पेट को यह व्यवस्थित रखता है व आंतों को बल देता है जिससे पाचन क्रिया सुधरती है।

४. इसके प्रयोग से बालों का सफ़ेद होना रुक जाता है व आगे जो बाल निकलते हैं वे मूल से काले ही निकलते हैं। यदि रोगी ३-४ मास इसका प्रयोग करता है तो उसे स्वतः इसका लाभ पता चलने लगता है और रोगी आग्रह पूर्वक स्वयं पीने लगता है।

५. रात्रि में थोड़ी सी अधिक मात्रा में प्रयोग करने से यह 'नींद' को समाप्त कर देता है। जिससे २-३ घण्टे तक नींद नहीं आती।

६. स्त्रियों के नष्टार्तव रोग में आप इसे प्रयोग करें लाभ मिलेगा तथा डिम्ब के न बनने जैसे पेचीदा रोग में इसके ५-६ मास प्रयोग से प्रायः डिम्ब बनने लगता है ऐसा मेरा अनुभव है। किसी स्त्री में डिम्ब बनता हैं या नहीं। इसकी परीक्षा की सबसे सरल विधि यह है कि आप मासिक के बाद से उस स्त्री का सोकर उठते ही तापक्रम नोट करवा लिया करें। यदि डिम्ब बनता है तो जिस दिवस से बनता है व छूटता है उस दिवस से स्त्री के तापक्रम में 1° का अन्तर आ जाता है। यदि अन्तर नहीं आता तो आप जान लें कि डिम्ब नहीं बन रहा है उस दशा में आप इसे प्रयोग करावें।

८. जाड़े के दिनों में इसे 'टानिक' के रूप में प्रयोग करने से चेहरे पर कान्ति आ जाती है व नया रक्त बनता है। आजकल के बाजारू टानिकों से यह अच्छा गुणप्रद आसव है जो जुखाम, खांसी आदि से दूर रख कर शरीर को पुष्ट कर देता है। अतः इसका मुक्त हस्त से मैं प्रयोग करता हूं और यह सभी में अच्छी दवा है। ये ज्ञानेन्द्रिय व शरीर पर एक साथ असर करती है।

—श्री शिव प्रसाद वैद्य, विमका हरबेरियम
९/९ गंगा तट, गंगाघाट, उन्नाव
६९/५१, बिरहना रोड, कानपुर

रोहितकारिष्ट

वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त

ग्रन्थ संदर्भ—भैषज्य रत्नावली प्लीहा-यकृत रोगे।

घटक—रोहेड़े की ताजा छाल ५ सेर, जल ४ द्रोण, इसका क्वाथ-चतुर्थांश यानि १ द्रोण। प्रक्षेप द्रव्य-पिप्पली, पिपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, हरड़, वहेड़ा और आमला ये प्रत्येक का चूर्ण ५ तोला। धाय के फूलों का चूर्ण ६४ तोला लेकर आसवारिष्ट निर्माणवत् संधान करके रखें। इसका संधान पूर्ण होने पर छानकर उपयोग में लावें। मात्रा २ तोला तक। जल मिलाकर भोजनोपरान्त।

शास्त्रीय गुण—

प्लीह गुल्मोदराष्ठीला ग्रहण्यर्शांसि कामलाम्।
कुष्ठ शोथारुचिहरो रोहितारिष्ट संज्ञितः॥

यह यकृत प्लीहा वृद्धि, गुल्म, उदर रोग, अष्ठीला वृद्धि संग्रहणी, अर्श, कामला, कुष्ठ, शोथ, अरुचि आदि रोगों का नाश करता है।

रोहेड़ा—रक्त रोहिड़ा की उत्पत्ति बिलोचिस्तान, अरब, पश्चिमी पाकिस्तान, गुजरात, काठियावाड़, राजस्थान, हरियाणा, पूर्व में जमुना तक कलकत्ते की ओर सुन्दर फूलों के लिए लगाते हैं। पंजाब और फरीदपुर में खूब पाया जाता है। रक्त रोहिड़ी ही असली रोहेड़ा है। इसकी छाल रसायन, कषाय, वल्य, यकृत-प्लीहावृद्धिहर, गुल्म, अष्ठीला, अर्बुद में भी हितकर है, स्थूलता और दुर्वलता दोनों में हितकर है।

नव्य मतानुसार रोहिड़ा के गुण—इसे लेटिन भाषा में Leomella undulata कहते हैं। यह रसायन, ग्राही और वल्य है, यकृत प्लीहा वृद्धि में, मेद वृद्धि में, अशक्ति में उपयोगी है। डा. आर. एन. खोरी. इसकी त्वचा (छाल) उपदंश में भी हितकर है। —के. चोपड़ा

रक्त रोहिड़े की छाल जमे हुए रक्त को वखेरने में अक्सीर है इसलिए चोट आदि से कहीं रक्त जम गया हो दूध में इसकी छाल औटाकर पिलाते हैं। इसकी छाल और पत्ते क्षय, कास और ज्वर में लाभ पहुँचाते हैं। इसकी छाल तिल्ली और यकृत सम्बन्धी उदर रोगों में उपयोगी है। यदि प्रसव के बाद स्त्री का शरीर अशक्त हो जाय तथा किसी रोग विशेष से निर्वलता आ जाय उसमें इसका उपयोग किया जाता है।

इसकी चाय पी जाय तो स्वास्थ्य और आयु वर्द्धक है। चरक में इसका उपयोग कफ पित्तज प्रमेह में भी किया है। —च. चि. अ. ६

श्वेत प्रदर में भी उपयोग लिखा है (च. चि. अ. ३०, १४४), चरक ने कुष्ठ में भी उपयोग किया है। च. चि. अ. ७ श्लो. १२६। इसी प्रकार हृद्रोग में भी उपयोग किया है च. चि. अ. २६।६६ अन्याय ग्रन्थों में भी इसका विशद उपयोग पाया जाता है। कैंसर रोग में भी इसका उपयोग उपयोगी सिद्ध हो चुका है। अतः इससे बना रोहितारिष्ट उक्त रोगों को ही नष्ट नहीं करता अपितु अन्यान्य रोगों में भी उपयोगी है।

—विशेष सम्पादक

लोध्रासव (प्रमेहाधिकार)

वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त (विशेष सम्पादक)

ग्रन्थ—अ०सं०, ग०नि० (प्रमेहाधिकार)

घटक—लोध्र पठानी, कचूर, पोकरमूल, छोटी इलायची, मूर्वा, वायविडंग, हरड़ बड़ी, कुटकी, भारंगी, तगर, चित्रक जड़ छाल, पीपलामूल, कूठ, अतीस, बहेड़ा, आमला, अजवाइन, चव्य, फूलप्रियंगु, चिकनी सुपारी, जड़ इन्द्रायण, चिरायता, पाठा, इन्द्रजौ, नागकेशर, कुड़ा की छाल (या छोटी इन्द्रायण, खस या (नखी) तेज पत्र, कालीमिर्च, केवटी मोथा प्रत्येक १-१ तोला, जल १२ सेर १२ छटांक, इनका क्वाथ करें, जब चौथाई रह जाय तब छानकर शीतल होने पर इस १ सेर ६ छटांक ३ तोला शहद (मधु) मिलाकर संधान करें और आसव के नियमानुसार निर्माण कर लें। मात्रा १ से २ तो. तक, भोजनोपरान्त जल मिलाकर।

ग्रन्थोक्त गुण—कफजमेह, पित्तजमेह, पाण्डुरोग, अर्श, ग्रहणी रोग, अरुचि, किलासनामक कुष्ठ तथा अनेक प्रकार के क्षुद्र कुष्ठों में उपयोगी है। यकृद्वल्य होने से यकृत-पित्त के विकार से उत्पन्न व्याधियों का नाशक है। यह आसव रक्तप्रदर, रक्तपित्त, वालकों की मसूरिका और रोमान्तिका हो जाने के पश्चात् रक्त में रहे हुए शेष विष तथा मूत्रावरोध आदि रोगों में उपकारक है।

रक्तप्रदर में इसके साथ अरविन्दासव या सारस्वतारिष्ट मिलाकर सेवन कराया जाय तो तत्काल लाभ देखा जाता है।

नोट—उक्त आसव में ३० द्रव्य १-१ तोला लेने को लिखा है। हमारी सम्मति से इसमें इतनी मात्रा यानि ३० तोला पठानी लोध्र और मिलाना चाहिए। इस प्रकार वनाये आसव में विशेष गुण पायेंगे। चूंकि इसमें पड़ने वाला मुख्य द्रव्य की कोई महत्ता इस आसव में उप-लक्षित नहीं होती।

लोध का प्रभाव गर्भाशय की शिथिलता पर और श्वेतप्रदर में अच्छा है, रक्तप्रदर में तो कहना ही क्या? लोध्र ग्राही होने से रक्तस्तम्भन रूप में उपयोग में आती है। लोध्रासव को प्रदर, रक्तप्रदर में भी उपयोग किया जाता है। अतः इसमें लोध्र की मात्रा भी अधिक होनी चाहिए।

हारित मुनि ने चलित गर्भ—अष्ट मासे गर्भ में लोध्र के सेवन का आदेश दिया है। यह शोणित स्थापक, गर्भाशय में कोई भी विकार हो उसे नष्ट करने के लिए गर्भ स्थापन हेतु भी उपयोग किया जाता है। यह ऋतुस्राव नियामक, रक्तपित्त में हितकर, व पौष्टिक है। श्वेत प्रदर में अत्यार्तव रोग में उत्तम कार्यकारी है। लोध्र गर्भाशय की शिथिलता को दूर करता है। इसलिए भी इसमें लोध्र का अधिक मिश्रण आवश्यक है।

यह लोध्र रुधिर विकारों को नष्ट करने वाली होने से कुष्ठ रोगों पर भी उपयोगी है। यह शीतल, संकोचक और आँतों की शिथिलता को दूर करने वाली भी है। योनिपथ के रोगों को नष्ट करने के लिए वहुत प्राचीनकाल से उपयोग होता आ रहा है।

पित्तजमेह—क्षारमेह, कालमेह, नीलमेह, हारिद्रमेह, और मंजिष्ठमेह तथा कफजमेह—उदकमेह, सान्द्रमेह, पिष्टमेह, शीतमेह आदि को नष्ट करता है।

—विशेष सम्पादक

वैद्यराज श्री सुरेश कुमार यादव बी० ए० आयुर्वेदाचार्य

ग्रन्थ निर्देश—शार्ङ्गधर संहिता, घटक—वानस्पतिक नाम तथा मात्रा (तौल)

क्रम संख्या	घटक नाम	वानस्पतिक नाम	मात्रा
१.	लोहे का बुरादा	Feram	१६ तोला
२.	सौंठ	Zingiber Officinale	,,
३	काली मिर्च	Piper Nigrum	,,
४.	आमला	Phyllanthus Embelica	,,
५.	हरड़	Terminalia Chebula	,,
६.	बहेड़ा	Terminalia Belerica	,,
७.	नागर मोथा	Cyperus Scarious	,,
८.	चित्रक	Plumbago Zeylenica	,,
९.	वायविडंग	Embelia Ribes	,,
१०.	पीपल	Piper Longum	,,
११.	अजवायन	Carum Copticum	,,
१२.	धाय के फूल	Woodfordia Floribunda	१ सेर
१३.	मधु	Honey	३ सेर
१४.	गुड़	—	५ सेर

प्रत्येक घटक के शास्त्रीय गुण धर्म

१. लोहे का बुरादा

लौह तिक्तं सरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु।
रूक्षं वयस्वं चक्षुष्यं लेखन वातलं जयेत ॥
कफ पित्तं गर शूलं शोथार्शः प्लीहपाण्डुताः।
मेदोमेह क्रिमीन् कुष्ठं तत्किट्टं तद्वदेव हि ॥

—भावप्रकाश धात्वादि वर्ग ४१-४२

रस—तिक्त। गुण—गुरु, रूक्ष। वीर्य—शीत। विपाक—मधुर। दोष शमन—कफ, पित्त। कर्म—दीपन, ग्राही, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, आयुष्य, वल्य। प्रभाव—सर्व शरीर पर। रोगोपयोग—विप, शूल, शोथ, अर्श, प्लीहा, पाण्डु, मेद, प्रमेह, कृमि, कुष्ठ।

२. सौंठ

नागरं दीपनं वृष्यं ग्राहि हृद्यं विबन्धनुत्।
रुच्यं लघु स्वादुपाकं स्निग्धोष्णं कफवातजित् ॥

— अ. हृ. सु. अ. ६-१६३/१६४

नागरं कफवातघ्नं विपाके मधुरं कटु।
वृष्योष्णं रोचनं हृद्यं सस्नेहं लघु दीपनम् ॥

— सु. सू. अ. ४६/२२६

शुण्ठी रूच्यामवातघ्नी पाचनी कटुका लघुः।
स्निग्धोष्णा मधुरा पाके कफवात विबन्धनुत् ॥

वृष्या स्वर्या वमिश्वास शूलकासहृदामयान् ।
हन्ति श्लीपद शोथार्श आनाहोदर मारुतान् ॥
— भा० प्र० हरीतक्यादि वर्ग ४५/४६

रस–कटु । गुण–स्निग्ध । वीर्य–उष्ण । विपाक–मधुर । दोष शमन–कफ, वात । कर्म–वृष्य, वल्य, दीपन, पाचन, ग्राही । प्रभाव–महास्रोत पर । रोगोपयोग–आनाह, कास, श्वास, शूल, वमन, उदरवायु ।

३. काली मिर्च—

मरिचं कटुकं तीक्ष्णं दीपनं कफवातजित् ।
उष्णं पित्तकरं रूक्षं श्वास शूलकृमीन्हरेत् ॥
—भा. प्र. हरीतक्यादि वर्ग ६०

रसे पाके च कटुकं कफघ्नं मरिचं लघु ।
—अ. हृ. सू. अ. ६-१६२

स्वादुपाक्यार्द्र मरिच गुरू श्लेष्मप्रसेकि च ।
कटूष्णं लघु तच्छुष्कमवृष्यं कफवातजित् ॥
—सु. स. सू. अ. ४६-२२४

रस–कटु । गुण–तीक्ष्ण, रूक्ष । वीर्य–उष्ण । विपाक–कटु दोषशमन–कफ, वात । कर्म–अग्निदीपन, पित्तकारक । प्रभाव–सर्व शरीर पर । रोगोपयोग–कृमि रोग, श्वास, शूल ।

४. आंवला—

अम्लं समधुर तिक्तं कषायं कटुकं सरम् ।
चक्षुष्यं सर्व दोषघ्नं वृष्यमामलकी फलम् ॥
—सु. सू. अ. ४६-१४३

तद्वामलकं शीतमम्लं पित्तकफापहम् ।
—अ. हृ. सू. अ. ६-१५८

हरीतकीसमं धात्रीफलं किन्तु विशेषतः ।
रक्तपित्त प्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम् ॥
हन्ति वातं तदम्लत्वात्पित्तं माधुर्य्य शैत्यतः ।
कफं रूक्षकषायत्वात्फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित् ॥
—भा. प्र. हरीतक्यादि वर्ग ३९-४०

रस–मधुर, अम्ल, तिक्त, कषाय, कटु । गुण–रूक्ष, शीतल । वीर्य–उष्ण । विपाक–मधुर । दोषशमन–त्रिदोष । कर्म–चक्षुष्य, वृष्य, आयुष्य, मलशोधिनी । प्रभाव–सर्व शरीर पर । रोगोपयोग–रक्तपित्त, प्रमेह ।

५. हरड़—

कषायामधुरा पाके रूक्षा विलवणा लघुः ।
दीपनी, पाचनी, मेध्या वयसः स्थापनी परम् ॥
उष्ण वीर्या सराऽऽयुष्या बुद्धीन्द्रियवलप्रदो ।
कुष्ठवैवर्ण्य वैस्वर्य पुराण विषमज्वरान् ॥
शिरोऽक्षिपाण्डु हृद्रोग कामलाग्रहणी गदान् ।
सशोषशोफातीसार मेदोमोहवमि क्रिमीन् ॥
श्वास कास प्रसेकार्शः प्लीहानाहगरोदरम् ।
विबन्धं स्रोतसां गुल्ममरूस्तम्भमरोचकम् ।
हरीतकी जयेद्व्याधीं स्तास्तांश्च कफवातजान् ॥
—अ. हृ. सू. अ. ६-१५३ से १५७

वृष्यमुष्णं सरं मेध्यं दोषघ्नं शोफकुष्ठनुत् ।
कषायं दीपनं चाम्लं चक्षुष्यं चाभयाफलम् ॥
—सु. सू. अ. ४६-१९९

हरीतकी पंचरसाऽलवणा तुवरा परम् ।
रूक्षोष्णा मेध्या स्वादुपाका रसायनी ॥
चक्षुष्या लघुरायुष्या वृंहणी चानुलोमिनी ।
—भा. प्र. हरीतक्यादि वर्ग १९-२०

रस–कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, अम्ल । गुण–लघु, रूक्ष । वीर्य–उष्ण । विपाक–मधुर । दोषशमन–त्रिदोष । कर्म–आयुवर्धक, वल्य, वृंहण, चक्षुष्या, अनुलोमिनी, मलशोधनी, रसायनी, मेध्या । प्रभाव—सर्व शरीर पर । रोगोपयोग—विबन्धता, गुल्म, उदराध्मान, वमन, हिचकी, कामला, शूल, प्रमेह, शोथ, समस्त ग्रहणी रोग ।

६. वहेड़ा—

बिभीतकं स्वादुपाकं कषायं कफपित्तनुत् ।
उष्ण वीर्यं हिमस्पर्श भेदनं कासनाशनम् ॥

रूक्ष नेत्रहित केश्यं कृमिस्वर्यनाशनम् ।
—भा. प्र. ह. वर्ग ३६-३७

भेदनं लघु रूक्षोष्णं वैस्वर्यकृमिनाशनम् ।
—सु. सू. अ. ४६-२००

रस-कषाय । गुण-रूक्ष, लघु । वीर्य-उष्ण । विपाक-मधुर । दोषशमन-कफ, वात । कर्म-चक्षुष्या, केश्या, अनुलोमिनी, रसायनी । प्रभाव-सर्व शरीर पर । रोगोपयोग-कृमिरोग, स्वरभेद ।

७. नागरमोथा—

मुस्तं कटु हिमं ग्राहि तिक्तं दीपन पाचकम् ।
कषाय कफ पित्तास्रतृड्ज्वरारुचिजन्तुहृत ॥
भा. प्र. कर्पूरादि वर्ग ९२-९३

रस—कटु, तिक्त, कषाय । गुण—लघु, रूक्ष । वीर्य—शीत । विपाक—कटु । दोषशमन—कफ, पित्त । कर्म—ग्राही, अग्निदीपक, पाचक ।

रोगोपयोग—अरुचि, कृमि, तृषा, ज्वर, रक्तप्रकोप ।

८. चित्रक—

चित्रकोऽतिसमः पाके शोफार्शः कृमिकुष्ठहृा ।
—अ. हृ. सू. ६-११६

चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत्पाचनो लघुः ॥
रूक्षोष्णो ग्रहणी कुष्ठशोथार्शः कृमिकासनुत् ।
वातश्लेष्महरो ग्राही वातघ्नः श्लेष्मपित्तहृत ॥
—भा. प्र. हृ. वर्ग. ७०, १७

रस-कटु । गुण-रूक्ष । वीर्य-उष्ण । विपाक-कटु । दोषशमन-त्रिदोष । कर्म-अग्निवर्धक, पाचक, ग्राही ।

प्रभाव—महास्रोत पर ।

रोगोपयोग—ग्रहणी, कुष्ठ, शोथ, अर्श, कृमि, कास ।

९. वायविडङ्ग—

रूक्षोष्णं कटुकं पाके लघु वातकफापहम् ।
तिक्तमीषद्विषहितम् विडंग कृमिनाशनम् ।
– सु. सू. अ. ४६-१९८

विडङ्ग कतु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं वह्निकरं लघु ।
शूलाध्मानोदरश्लेष्म कृमिवात विबन्धनुत् ॥
– भा. प्र. हरीतक्यादिवर्ग ११२

रस—कटु । गुण—तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु । वीर्य—उष्ण । विपाक—कटु । दोषशमन—कफ, वात । कर्म—अग्निवर्धक ।

प्रभाव—सर्व शरीर पर ।

रोगोपयोग—शूल, आध्मान, उदरस्थ कृमिनाशक, वात विवद्धता ।

१०—पीपल—

पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादुपाकारसायनी ।
अनुष्णा कटुका स्निग्धा वातश्लेष्महरीलघुः ॥
पिप्पली रेचनी हन्ति श्वसकासोदरज्वरान् ।
कुष्ठप्रमेहगुल्मार्शः प्लीहशूलाम मारुतान् ॥
—भा.प्र. हरीतक्यादि वर्ग ४४, ४५

सा शुष्का विपरीताऽतः स्निग्धावृष्या रसे कटुः ।
स्वादुपाकाऽनिल श्लेष्मश्वासकासापहा सरा ॥
—अ. हृ. सू. ६-१६२

रस-कटु । गुण-स्निग्ध । वीर्य-शीत । विपाक-कटु । दोषशमन—कफ, वात । कर्म—अग्निदीपक, वृष्य, रसायनी, रेचक ।

प्रभाव—महा स्रोत पर ।

रोगोपयोग—श्वास, कास, उदररोग, कुष्ठ, प्लीहा, शुल, बवासीर ।

११. अजवायन—

यवानी पाचनी रुच्या तीक्ष्णोष्णा कटुका लघुः ।
दीपनी च तथा तिक्ता पित्तला शुक्रशूलहृत् ।
वात श्लेष्मोदरानाहगुल्मप्लीहकृमिप्रणुत् ॥
—भा. प्र. हरीतक्यादि वर्ग ७७

रस—कटु, तिक्त । गुण—तीक्ष्ण । वीर्य—उष्ण, विपाक—कटु । दोषशमन वात, कफ । कर्म—पाचक, रुचिकारक, अग्निदीपक, पित्तवर्धक ।

प्रभाव—सर्व शरीर पर ।

रोगोपयोग उदर सम्बन्धी रोग, आनाह, गुल्म, प्लीहा, कृमि ।

१२. धाय के फूल —

धातकी कटुका शीता मृदुकृत्तुवरा लघुः ।
तृष्णाऽतिसार पित्तास्रविषकृमिविसर्पजित ॥
—भा. प्र. ह. वर्ग १८७

रस—कटु, कषाय । गुण—लघु । वीर्य शीत । विपाक—कटु । दोषशमन—वात । कर्म मृदुकारक । रोगोपयोग—अतिसार, रक्तपित्त, कृमि, विसर्प ।

प्रभाव—सर्व शरीर पर ।

१३. मधु—

मधु शीत लघु स्वादु रूक्षं ग्राहि विलेखनम् ।
चक्षुष्यं दीपनं स्वर्यं व्रण शोधनरोपणम् ॥
सौकुमार्यकरं सूक्ष्मं परं स्रोतोविशोधनम् ।
कषायानुरस ह्लादि प्रसाद जनक परम् ॥
वर्णमेधाकरं वृष्य विशदं रोचनं हरेत् ।
कुष्ठार्शः कास पित्तास्रकफमेहक्लमक्रिमीन् ॥
मेदस्तृष्णावमिश्वासहिक्काऽतीसारविड्ग्रहान् ।
दाह क्षतक्षयांस्तत्तु योगवाह्यल्पवातलम् ॥

—भा० प्र० मधुवर्ग १-२-३-४-५

चक्षुष्यं छेदि तृट्श्लेष्म विषहिध्मास्रपित्तनत् ।
मेह कुष्ठ कृमिच्छर्दिश्वासकासातिसारजित् ।
व्रण शोधन सन्धानरोपणं वातलं मधु ॥
रूक्षं कषाय मधुरं ...... ।

—अ० हृ० सू० ५-५१ से ५३

रस–मधुर, कषाय। अनुरस–कषाय । गुण-रूक्ष, लघु, पिच्छिल, सूक्ष्म, शीतल । वीर्य—उष्ण । विपाक—मधुर । दोषशमन—त्रिदोषज । कर्म—अग्निदीपक, वृष्य, हृद्य, भग्नसंधान, शोधन, रोपण, चक्षुष्य, वल्य, ग्राही । प्रभाव—सर्व शरीर पर। रोगोपयोग—हिचकी, श्वास, कास, तृष्णा, कृमि, वीर्यवर्द्धक, प्रमेह, मेद, क्षत, क्षय ।

१४. गुड़—

गुड़ो जीर्णो लघुः पथ्योऽनभिष्यन्द्यग्नि पुष्टिकृत ।
पित्तघ्नो मधुरो वृष्यो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः ॥

—भा० प्र० इक्षुवर्ग २६

हृद्यः पुराणः पथ्यश्च ।

—अ० हृ० सू० ५-४८

सपुराणोऽधिकगुणो गुणः पथ्यतमः स्मृतः ।

—सु० सू० ४५-१६१

रस—मधुर । गुण—लघु, गुरु, सर । वीर्य—शीत । विपाक—मधुर । दोषशमन—कफ । कर्म—वृंहण, वृष्य, विदाही, पुष्टिवर्धक, मूत्रशोधक, किंचित अभिष्यन्दी । प्रभाव—महास्रोत पर। रोगोपयोग—कफ, वात सम्बन्धी विकार, पित्तज रोग, क्षय नाशक ।

निर्माण प्रक्रिया

लोह बुरादा, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, अजवायन, वायविडंग, नागरमोथा तथा चित्रकमूल प्रत्येक १६-१६ तोला । धाय के फूल १ सेर, मधु ३ सेर, गुड़ ५ सेर और जल समान भाग लेकर कूटने योग्य द्रव्यों को कूटकर उसमें गुड़ तथा मधु उचित ढंग से मिलाकर घृत लिप्त पात्र में भरकर सन्धान करके एक मास पर्यन्त सुरक्षित रख देवें । पश्चात तैयार हो जाने पर छानकर बोतलों में रख लें ।

विशेष—लोहासव में लोह बुरादा के स्थान में लौह भस्म प्रयुक्त किया जाय तो आसव अत्युत्तम बनता है ।

उपरोक्त योग में मधु तथा गुड़ की मात्रा कम होने के कारण खट्टापन आ जाता है, अतएव मधु तथा गुड़ की मात्रा में वृद्धि करने से खट्टापन में परिवर्तन आ जाता है, और आसव मधुरिम उत्तम बन जाता है ।

मात्रा—

सशक्त पुरुष—एक से डेढ़ तोला ।

अशक्त पुरुष—आधा तोला ।

बालक—चौथाई तोला ।

दुग्धपायी छोटा बालक—दो से बीस बूंद ।

अनुपान—

उचित अनुपान जल है । छोटे बच्चे को भी पानी में मिलाकर देना और पीछे दूध पिलाना चाहिए। मात्र दुग्ध इसका अनुपान नहीं हैं । दूध तथा आसव मिलाने से शारीरिक रोग वृद्धि हो जाने का डर रहता है। वैसे जल के साथ दूध में मिलाया जा सकता है ।

सेवनकाल—लोहासव का सेवन प्रातःकाल तथा सायं काल करना चाहिये ।

सेवन पद्धति—१. सेवन करने से पहले शीशी को हिला लेना चाहिए क्योंकि आसव के कण शीशी की तली में बैठ जाते हैं जो अत्यन्त गुणनशील होते हैं ।

२. भोजनोपरान्त सेवन करना—क्योंकि उष्ण वीर्यादि द्रव्य की प्रचुरता के कारण बिना भोजन किए प्रयोग से उदर में जलन सी महसूस होने लगती है ।

३. जल की मात्रा समान या अधिक होना अनिवार्य है ।

पथ्यापथ्य—

लोहासव के सेवन काल में उबालकर ठंडा किया सोडावाटर, बकरी या गौ की मीठी छाछ, पुराना चावल,

रुग्ण पाचन क्रिया कर सके तो बाजरे की रोटी, नीबू, पुनर्नवा, सोवा, प्याज, चचेड़ा, कोमल बैंगन, मूली का साग प्रयोग कर सकता है। अनार, अंगूर, मुसम्मी आदि फल पथ्यकारक हैं।

दुग्ध पथ्य सर्वोत्तम है, क्योंकि दूध का पचन शीघ्र हो जाता है।

खटाई, मिर्च, तैल, घी से निर्मित पदार्थों का तथा अत्याधिक नमक का सेवन करना अपथ्य है।

शास्त्रीय दृष्टि से गुण धर्म

लोहासव पाण्डु, गुल्म, सूजन, अरुचि, संग्रहणी, जीर्ण-ज्वर, अग्निमांद्य, दमा, कास, क्षय, कुष्ठ, अर्श, कण्डू, तिल्ली, हृद्रोग और यकृत-प्लीहा की विकृतिनाशक है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से गुण धर्म

लोहासव के घटकों के विवेचनोपरान्त पूर्ण रूप से कहा जा सकता है कि यह आसव सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रक, अजवायन घटक के कारण दीपन पाचन है और आमाशय तथा यकृत दोनों अङ्गों को उत्तेजित करता है। वायविडंग यकृत दौर्बल्यहर वा कृमिघ्न है। यह कृमि को नष्ट करके शारीरिक क्षीणता को समाप्त कर देता है। लौह-चूर्ण रक्त कणिकाओं में वृद्धि तथा शरीर की पीतता को नष्ट करता है। लौहे के बुरादे से शारीरिक कान्ति में वृद्धि होती है। आमला, हरड़, बहेड़ा अग्नि, दीपक, पित्तवर्धक तथा अनुलोमन गुण युक्त है तथा विवन्धता, गुल्म, उदराध्मान, कृमिनाशक है। मधु शरीर के लिये अतिपौष्टिक द्रव्य है तथा अग्नि दीपक, वृष्य, हृद्य एवं हिचकी, कृमि-क्षय को नष्ट करता है। गुड़ भी ग्राही तथा पौष्टिक द्रव्य है। सूक्ष्म अंगों में प्रविष्ट कर विष का नाश करता है।

अनुभवजन्य अन्यान्य गुण धर्म-उपयोग

१. कामला रोग—कामला यकृत विकृतिजन्य व्याधि हैं, यकृत विकृति के कारण जब पित्ताशय से निःस्रुत पित्त आंतों में न जा करके रक्त में मिल जाता है तो शरीर का रंग तथा नेत्र, नाखून तथा मल मूत्रादि का रंग पीत वर्ण का हो जाता है। तब लोहासव का उपयोग करना अतिशय लाभकारी सिद्ध होता है।

विशेष—लोहासव का प्रयोग पुनर्नवारिष्ट के साथ समान मात्रा में करने से तीन दिन के अन्दर ही आश्चर्यजनक लाभ होता है। और पन्द्रह दिन में रोग पूर्णतया नष्ट हो जाता है। साथ में पुनर्नवा मण्डूर की एक गोली प्रातःकाल तथा एक गोली सायंकाल उपयोग करने से अतिशीघ्र नष्ट हो जाता है।

२. यकृत-प्लीहा वृद्धि—जीर्णज्वर अथवा अधिक दिनों तक मलेरिया ज्वर आने से यकृत या प्लीहा की वृद्धि हो जाती है। तब इस आसव का प्रयोग करना चाहिये अतिशय सफलता मिलती है।

विशेष—लोहासव के साथ यकृत प्लीहारि लौह का प्रयोग प्रातःकाल तथा सायंकाल करने से यकृत प्लीहा दोनों की वृद्धि घट जाती है।

३. शोथ—शोथ वृक्क, हृदय तथा हृदय की विकृत अवस्था का प्रतिरूप है। यह कोई पूर्ण स्वतन्त्र रोग न होकर के उपरोक्त रोगों का लक्षण मात्र है, लोहासव का प्रयोग शोथ की वृद्धि पर अपना प्रभाव डालकर रोग को नष्ट करने में सहयोग प्रदान करता है।

विशेष—लोहासव के साथ एक गोली शोथारि लौह तथा एक गोली पुनर्नवा मण्डूर के साथ प्रातः सायं काल देने से शोथ नष्ट होने लगता है। प्रातः लोहासव एक तोला+पुनर्नवारिष्ट एक तोला समान मात्रा में जल मिला कर तथा सायंकाल कुमारी आसव १ तोला+लोहासव १ तोला समान मात्रा में जल मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

४. अरुचि संग्रहणी—पाचन क्रिया की निर्बलता की अवस्था में खटाई, मिर्चादि की बाहुल्यता के कारण अरुचि, संग्रहणी, मन्दाग्नि आदि व्याधियों से शरीर आक्रान्त हो जाता है। ऐसी दशा में लोहासव का उपयोग अति लाभकारी सिद्ध हुआ है।

विशेष—संग्रहणी में इसका उपयोग रामबाण रस के साथ, अरुचि में अग्निवर्धन वटी के साथ प्रयोग करना चाहिये। अतिशय सफलता मिलती है।

५. रक्ताल्पता—रक्ताणुओं की कमी से शरीर में रक्ताल्पता हो जाती है। शरीर श्वेत वर्ण का हो जाता है, भूख नहीं लगती है, तब इस आसव का प्रयोग करना चाहिये।

६. रसायन गुणयुक्त—लोहासव रक्तकणों तथा उसके घटकों को पोषण प्रदान करने में विशेष सहयोग देता है। अतएव लोहासव शारीरिक पोषण करने में विशेष उपयोगी है। इसका प्रयोग रसायन रूप में किया जाता है जिससे देह पुष्ट एवं सुदृढ़ हो जाती है।

विशेष—रसायनी हेतु इसका प्रयोग अभ्रक भस्म, शिलाजीत, स्वर्ण भस्म के साथ करने से विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है।

७. पाण्डु रोग—प्रायः बालक, स्त्रियां तथा पुरुष मिट्टी भक्षण करते है जिसके परिणामस्वरूप पाण्डु रोग से ग्रसित हो जाते है, तब लोहासव का प्रयोग अतिशय लाभकारी सिद्ध हुआ है।

विशेष—मण्डूर भस्म के साथ इसका प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

८. विषहर—लोहासव के प्रमुख घटक लौह बुरादे में विषहर गुण पाया जाता है जिसके सेवन से शरीर विष प्रतिकार क्षमता युक्त हो जाता है और सेन्द्रिय विष का प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ता है।

९. अन्य रोगोपयोग—

(अ) क्षुधावर्धक में—आरोग्यवर्धिनी वटी के साथ।

(ब) कृमि रोग में—विडंगासव के साथ।

(स) सर्वांग शोथ में—पुनर्नवाष्टक क्वाथ के साथ।

(द) पाचन क्रिया दूषित होने में—पुनर्नवा मंडूर के साथ।

(ई) गुल्म में—संजीवनी वटी-आरोग्यवर्धिनी वटी के साथ।

प्रयोग अवधि

लोहासव का प्रयोग निम्नांकित रोगों पर निम्नांकित अवधि तक करना चाहिए—

(अ) कामला रोग—६-१६ मास तक रोगविक्यानुसार

(ब) पाण्डु रोग ८-१० मास तक ,,

(स) यकृत्प्लीहा वृद्धि ४-६-८ मास तक

(द) शोथ ८-१२ मास तक

(ई) कृमि रोग २-४ मास तक

(फ) गुल्म २-६ मास तक

(ज) संग्रहणी २-४ मास तक

(ह) रक्ताल्पता ६-१२ मास तक

(ल) अरुचि २ मास तक

(प) पाचन विकृति क्रिया २-६ मास तक

अन्य वक्तव्य

लोहासव एक आयुर्वेदिक अत्युत्तम औषधि है। एलो पैथिक में इसके समान कोई उत्तम औषधि नहीं है।

यकृत विकृतिजन्य व्याधि के लिए एलोपैथिक को सहारा लेना पड़ जाता है। क्योंकि एलोपैथिक में य. विकृति के लिए विशेषतया डाक्टर लिव ५२, लिवोमी आदि प्रयोग करते है। यह दोनों आयुर्वेदिक औषधियां हैं

—वैद्यराज श्री सुरेश कुमार सिंह वा०
बी. ए. आयुर्वेदाचा
ग्राम जयपुर, पोस्ट हुमायूंपुर (सीता.

स्पेशल-लोहासव

आयु० श्री पं० चन्द्रशेखर जैतलीय सां.; व्या.आ. शास्त्री

घटक द्रव्य—लोह का बुरादा, सोंठ, मिर्च, पीपल, छोटी हरड वक्कल, बहेड़ा वक्कल, आँवला वक्कल, अजवायन, वायविडङ्ग, नागरमोथा, चित्रकमूल छाल, एलुआ, प्रत्येक १६-१६ तोले, धाय के फूल १ सेर, शहद ३ सेर ३ छटाँक ३ तोला, पुराना गुड़ ५ सेर, शुद्ध जल २५॥ सेर ८ तोला।

विधान—त्रिफला (हर्र, वहेड़ा, आँवला) के १६-१६ तोला वक्कल लेकर आठगुने जल में क्वाथ करना, चतुर्थांश शेष रहने पर, लोह कढ़ाई में लोहे के चूरे को डाल पत्थर के कोयले की आँच पर चढ़ाकर लाल हो जाने तक गरम और ७ वार त्रिफला क्वाथ में बुझा दें और १ सप्ताह तक उसी में पड़ा रहने दें। तदनन्तर योग्य चीजों को जव करके घृत चिक्कण मृत्पात्र में भर कर, गुड़ घुले हुए को शहद मिलाकर मटके में डाल दें तथा उसके मुख सरवा रखकर कपड़मिट्टी करके बन्द कर दें। १मास वा रहित स्थान में रख दें। पश्चात् मोटे कपड़े से छा शीशे के जारों में या बोतलों में भर दें। संधान के यदि पिछला लोहासव का किण्व सुरक्षित हो तो भी उचित मात्रा में डाल दें इससे संधान शीघ्र हो और गुण भी बढ़ जाता है। कुछ लोगों का मत है कि ल सव में लोह चूर्ण के स्थान पर लोह भस्म डाली जा. उत्तम है। लोह भस्म को प्रथम हरड़ के क्वाथ में

दें, फिर ३ दिन बाद उसमें बहेड़ा और आंवला का चूर्ण और मिला दें। इसके ४ दिन बाद इस मिश्रण को आसव के घड़े में डालना चाहिए। इस क्रिया से लौह आसव में लीन हो जाता है। किन्तु मैंने सदैव शार्ङ्गधर संहिता के अनुसार लौह चूर्ण त्रिफला क्वाथ में पूर्वोक्त प्रकार से शुद्ध कर ही डाला है और अब तक पर्याप्त लाभ प्राप्त करता हूँ।

घटकों के पृथक्-पृथक् गुण—

१. लौह—तिक्त, सर, शीत, कषाय, मधुर, गुरु, रूक्ष, वय: स्थापक, चक्षुष्य, लेखन, वातल, कफ पित्तहर, शूल, शोथ, प्लीहा, यकृत, पाण्डुता, मेदोरोग, प्रमेह, तिक्तरोग, कुष्ठ आदि रोगों को दूर करता है।

२. सौंठ—रुचिकारक, आमवात को नष्ट करने वाली, पाचन, कटु, लघु, स्निग्ध, उष्ण, पाक में मधुर, कफ वायु के विबन्ध को दूर करने वाली, वृष्य, सर वमि, श्वास, शूल, कास, हृद्रोग, श्लीपद, शोथ, अर्श, आनाह, उदर वात को दूर करती है। अग्नि गुण भूयिष्ठ, जलशोषक, मल संग्राहक आदि।

३. मरिच—कटुक, तीक्ष्ण, दीपन, कफवातनाशक, उष्ण, पित्तकर, रूक्ष, श्वास, शूल, कृमिहर है।

४. पीपल—दीपनी, वृष्य, पाक में स्वादु, रसायन, अनुष्ण, कटु, स्निग्ध, वात कफहरी, लघु, रेचनी, श्वास, कास, उदररोग, ज्वरहरी, कुष्ठ प्रमेह, गुल्म, ववरिष्ट, तिल्ली, शूल, आमवात नाशक है।

४. हरड़ वटी—रस—मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त, कषाय। वीर्य—उष्ण। विपाक—मधुर। दोषशमन—त्रिदोष गुण—रूक्ष, लघु, दीपन, आयुष्य, मेध्य, नेत्र्य, पौष्टिक, रसायन, अनुलोमन। रोगनाशक—हिक्का, व्रण, प्रमेह, अर्श, कुष्ठ, शोष, उदर कृमि, स्वर भेद, ग्रहणी, विबन्ध, विषम-ज्वर, तृष्णा, वमन, कण्डू, हृद्रोग, कामला, शूल, आनाह, गुल्म, उदर रोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र आदि।

५. बहेड़ा—रस—कषाय। वीर्य—उष्ण। विपाक—मधुर गुण—लघु, रसायन, केश्य, स्वर्य। दोषशमन—कफपित्त। रोगनाशन—नेत्र शोथ, कास, मन्दाग्नि, अतिसार, जलोदर, अर्श, कुष्ठ, पैत्तिक शोथ।

६. आँवला—रस—स्वादु, अम्ल, कटु, तिक्त, कषाय। वीर्य—शीत। विपाक—मधुर। गुण—लघु, दीपन, पाचन, वृष्य, रसायन। रोगनाशन—मूत्रकृच्छ्र, अतिसार, अर्श, कास, श्वास, वात रोग। दोषशमन—त्रिदोष।

७. वायविडङ्ग—रस—कटु। वीर्य—उष्ण। विपाक—कटु। गुण—लघु, दीपन, अनुलोमन। दोषशमन—वात कफ। रोगनाशन—उदर कृमि, आध्मान, अग्निमांद्य, विबन्ध, त्वग् रोग आदि।

८. अजवायन—रस—कटु, तिक्त। वीर्य—उष्ण। विपाक—कटु। गुण—पाचन, रुचिकारक, तीक्ष्ण, लघु, दीपन, पित्तकारक, वीर्यहरण, शूलनाशक, वात, कफ, उदर रोग, आनाह, गुल्म, तिल्ली, कृमिनाशक आदि।

९. नागरमोथा—रस- कटु, तिक्त, कषाय। वीर्य-हिम विपाक—कटु। गुण—ग्राही, दीपन, पाचन, कफ, पित्त, रक्त, पिपासा, ज्वर, अरुचि, कृमिनाशक।

१०. चित्रक मूलत्वक्—रस—कटु। वीर्य—उष्ण। विपाक—कटु। गुण—अग्निदीपन कारक, पाचन, लघु, रूक्ष, ग्रहणी, कुष्ठ, शोथ, बवासीर, कृमि, कासनाशक, वायु और कफ को हरने वाला, ग्राही, वातार्श, कफ, पित्त नाशक।

११. एलुआ—रस—तिक्त, कटु, मधुर। वीर्य—उष्ण। विपाक—कटु। गुण—भेदन, नेत्रों को हितकारक, वायु, विष को नष्ट करने वाला, गुल्म, तिल्ली, यकृत्, कफज्वर, गांठ तथा सूजन को नष्ट करने वाला, कृमि, विबन्ध, शूल आदि नाशक।

१२. धाय के फूल—रस—कटु, कषाय। वीर्य—शीत। विपाक—कटु। गुण—मृदु, लघु। रोगनाशक—तृष्णा, अतिसार, रक्तपित्त, विष, कृमि, विसर्प नाशक।

१३. मधु (शहद)—रस—स्वादु, कषायानुरस। वीर्य—शीत। विपाक—मधुर। गुण—लघु, रूक्ष, ग्राही, विलेखन, चक्षुष्य, दीपन, स्वर्य, व्रणशोधन, रोपण, सौकमार्यकर, सूक्ष्म, स्रोतोविशोधन, ह्लादि, प्रसाद कारक, वर्णकारक, मेधाकर, वृष्य, विशद, रोचन, कुष्ठ, अर्श, कफ, पित्त, रक्त, कफमेह, वृष्य, कृमिमेह, तृष्णा, वमि, श्वास, हिचकी, अतिसार, विड्ग्रह, दाह, क्षत, क्षय को दूर करता है। कुष्ठ वातकारक है तथा योगवाही है।

१४. पुराना गुड़—रस—मधुर, तिक्त। वीर्य—उष्ण। विपाक—मधुर। गुण—लघु, पथ्य, अनभिष्यन्दि, अग्नि पुष्टि कारक, पित्तनाशक, वृष्य, वातघ्न, रक्तप्रसादन।

लोहासव के शास्त्रीय गुण

लोहासव—अत्यन्त अग्निदीपक है। पाण्डुरोग, सूजन, गुल्म, उदररोग, ववासीर, कुष्ठ, तिल्ली, जिगर, कण्डू, खांसी, श्वास, भगन्दर, अरोचक, ग्रहणी, हृद्रोग आदि को नष्ट करता है। तथा जीर्ण ज्वर में भी लाभदायक है।

मात्रा और अनुपान—१। तोले से २॥ तोले तक समान जल मिलाकर भोजन के वाद दोनों समय सेवन करें। जीर्ण ज्वर अथवा अधिक दिन तक मलेरिया ज्वर (विषम ज्वर) रहने से यकृत् व प्लीहा वृद्धि होने पर इस आसव का प्रयोग किया जाता है। इससे ज्वर की गर्मी व ज्वर बरा-बर बना रहना या दूसरे तीसरे दिन ज्वर हो जाना, कुछ देर तक रहकर ज्वर का वेग कम हो जाना, जाड़ा देकर बुखार आना, अग्निमांद्य, भूख की कमी, रस रक्तादि धातुओं की क्षीणता होने से शरीर पाण्डु वर्ण हो जाना अर्थात् पीलापन आ जाना, मुख और हाथ पैरों में कुछ सफेदी व सूजन दिखाई देना तथा दस्त में कब्जी आदि के लक्षण दिखाई पड़ने पर यह 'स्पेशल लोहासव' बहुत शीघ्र अपना प्रभाव दिखाता है।

पाण्डुरोग में—जब रक्ताणुओं की कमी के कारण शरीर पीला हो जाता है तब मन्दाग्नि, वद्धकोष्ठता (कब्जियत) कमजोरी, किसी काम में मन न लगना, अनु-त्साहित बना रहना आदि उपद्रव हो जाते हैं। ऐसी दशा में इस आसव के उपयोग से मन्दाग्नि आदि दोष दूर होते हैं, धीरे-धीरे जल भाग कम होने लगता है और सूजन भी जाती रहती है।

विशेष अनुभव—पुरानी वद्धकोष्ठता, आमवात आदि से जोड़ों में दर्द व सूजन, पेट में कीड़े आदि दूर होते हैं। पेट में कीड़े होने पर सुबह शाम 'कृमि मुद्गर रस' मधु से और नागर मोथा के क्वाथ के अनुपान से तथा भोजन के बाद लोहासव के प्रयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। कीड़े मर कर या जिन्दा निकल जाते हैं। यदि साथ में ज्वर पसली दर्द आदि विकार भी है तो वे भी नष्ट हो जाते हैं। शरीर शुद्ध हो जाता है और भूख खूब लगती है। किसी भी प्रकार की सूजन में इस स्पेशल लोहासव से दस्त साफ होकर सूजन शीघ्र दूर हो जाती है किसी भी रेचक औषधि देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। गुल्म, उदरशूल कैसा भी हो तो 'सुवाक्षार' डालकर देने से तत्काल लाभ होता है, दर्द बन्द हो जाता है। वादी की बवासीर और जिगर तिल्ली को भी बहुत शीघ्र ठीक करता है। सुवह शाम यकृदरि लौह का प्रयोग करें। ज्वर हो तो 'महा सुदर्शन चूर्ण' मिला दें। कुष्ठ और कण्डू जो वातकफ जन्य है उसमें भी इससे शीघ्र लाभ देखा गया है। क्वाथ में 'महापञ्च निम्ब चूर्ण' सुवह शाम दें।

बच्चों के जिगर, तिल्ली या रक्त की कमी उदर रोग निर्वलता कृमि तथा खांसी श्वास आदि में 'लोहासव' के ५-७ बूंद मधु में मिलाकर सुवह शाम चटावें। और विशेष अनुभव हैं किन्तु विस्तार के भय से नहीं लिखे हैं। वैद्यों को स्वबुद्धि से इसी प्रकार प्रयोग करके देखना चाहिए। यकृत् में पित्त के कारण दाह, शोथ, जी मचलाना, खट्टी डकार आदि आने पर 'शर्वत दीनार' या 'शर्वत विजूरी' को मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

—आयुर्वेदाचार्य श्री पं० चन्द्रशेखर जैतलीय
साह. व्या. आ. शास्त्री
५७/६३ नीलवाली गली,
विरहाना रोड, कानपुर

विषमुष्टि आसव

वैद्य श्री दरबारी लाल आयु० भिषक

संदर्भ—न्यूयोनियां प्रकाश।

घटक—शुद्ध विष कुचिला ३ तोला, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय १-१ तोला, मुनक्का ४ तोला, जायफल, दरियाई नारियल, दोनों अजवाइन, दोनों जीरा ६-६ माशा, दालचीनी ३ माशा, लौंग ६ माशा, काकड़ासिंगी १ माशा, गुड़ ३० तोला, पानी २ सेर।

निर्माण विधि—सभी बनौषधियों को जौकुट कर लें। फिर उन जौकुट की हुई दवाओं को तथा गुड़ व पानी को भली भाँति मिलाकर चौड़े मुँह के काँच के बर्तन में भर कर मुख बन्द कर एक मासरखा रहने दें। फिर छानकर बोतलों में भरकर प्रयोग में लावें।

मात्रा—इसकी ८-८ बूँदें २॥-२॥ घण्टा बाद पानी मिलाकर प्रयोग करें।

गुण धर्म—यह योग आशुलाभकारी, स्थायी गुणकारी तथा सस्ता है। यह योग न्यूमोनिया प्रकाश नामक पुस्तक का है जिसके लेखक आयुर्वेद मनीषी वैद्यराज पं० देवकरण जी वाजपेयी वैद्य शास्त्री, उत्तरीपुरा (कानपुर) हैं। लेखक ने इसमें योग के सम्बन्ध में लिखा है कि मैं इसको जटिल नाड़ी मन्द होने वाली अवस्था में मल्लसिंदूर के साथ प्रयोग कर लाभ प्राप्त करता रहा हूँ।

मैंने इसको जटिल नाड़ी मन्द होने वाली अवस्था के अतिरिक्त [शीतपूर्वक विषमज्वर व वात रोगों में तथा पेट की बीमारियों में भी लाभप्रद पाया है। शीतपूर्वक विषम ज्वर (मलेरिया) में जब जाड़ा लगता है तो सब शरीर कांपने लगता है और दाँती बजने लगती है। दो-दो, तीन-तीन लिहाफ ओढ़ने से तथा ऊपर से दबाकर लेटने से भी जाड़ा दूर नहीं होता है। उस वक्त इस आसव की बस एक ही खुराक काफी है। एक खुराक पिलाने से ५ मिनट में ही जाड़ा छूट जाता है, कंप-कंपाहट मिट जाती है, दो-तीन लिहाफ ओढ़ने व दबाने की आवश्यकता नहीं रहती। यदि आवश्यकता हो तो १५ मिनट बाद दूसरी मात्रा दे सकते हैं। जाड़े के दिनों में ज्वर रोगी को हर समय जाड़ा लगता रहता है। इस आसव की एक ही मात्रा उसके जाड़े को तथा ज्वर को दूर कर देती है।

आज से लगभग २० वर्ष पहले की बात है कि मुझे प्रतिश्याय (जुकाम) हो गया। वह इतना बढ़ा कि ज्वर की हरारत हो गई। प्रातःकाल उठा, शौच से निवृत्त हुआ तो एकाएक कंपकंपाहट पैदा हो गई, जिससे कष्ट होने लगा। कोई दवा समझ में नहीं आ रही थी। बहुत सोच विचार के बाद यही विषमुष्टि आसव जो लगभग २० साल पहले बनाया था और बना हुआ तैयार था, उसको एक खुराक पानी मिलाकर ली। यह देखकर महान आश्चर्य हुआ कि उसने पेट में जाते ही कंपकंपाहट को एकदम शान्त कर दिया। इसका ऐसा गुण देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। तब से इसका प्रयोग इस प्रकार की रोग दशा में बराबर कर रहा हूं और कभी असफल नहीं हुआ हूँ। मलेरिया ज्वर जो जाड़ा लग कर आता है उसमें इसकी ३ मात्रा बुखार आने से पहले २-२ घण्टे पर देने से बुखार आना रुक जाता है।

ज्वर में कभी-कभी रोगी की यह दशा हो जाती है कि वह आँखें खोले रहता है और सब कुछ देखता रहता है परन्तु कुछ बोल नहीं सकता है। वाणी कुंठित हो जाती है। ऐसी दशा में रोगी की जीवन शक्ति का शनैः शनैः क्षरण होता रहता है और अन्त में रोगी की मृत्यु हो जाती है। जब ऐसी दशा उपस्थित हो कि रोगी बोल न सके, लेकिन आँखें खोलता हो तो उस समय इस आसव की एक ही मात्रा कमाल करती है। साथ में मल्लसिंदूर, अभ्रक भस्म, शु० विषमुष्टि मात्रानुसार मिलाकर मधु में चटावें तो सोने में सुगन्ध का काम करता है।

जब रोगी की नाड़ी मन्द हो रही हो, शरीर व हाथ पैर शीतल हो रहे हों, पसीना आ रहा हो, रोगी बेहोश हो तो ऐसी दशा में मल्लसिंदूर के साथ इसका प्रयोग करने से शीघ्र ही प्रभाव होता है।

संक्षेप में प्रत्येक घटक के गुण धर्म

विष कुचिला—शीतल, कड़वा, वातकाकर, मदकर्त्ता,

हल्का, अत्यन्त पीड़ा को दूर करने वाला, ग्राही और कफ, पित्त तथा रुधिरविकारनाशक है। उत्तेजक, स्नायु, वलदायक है एवं वात, अजीर्ण, ग्रहणी, विशूचिका, ध्वज-भंग, शूल आंतों की दुर्वलता से विबंध, श्वास, शुक्रप्रमेह, गुदभ्रंश, हृत्स्पन्दन, मनोविकार, मदात्यय, आक्षेप, मद्यपी की वमन व अजीर्ण नशा को रोकने को तथा कफजन्य कई प्रकार के रोगों में हितकारक है।

चिरायता—मल निस्सारक, सूखा, शीतल, कड़वा, हलका, सन्निपात ज्वर, कास, श्वास, कफ, पित्त, रुधिर विकार. दाह, सूजन. प्यास, कुष्ठ, व्रण और कृमिरोग नाशक है। गर्भिणी की वमन को रोकता है।

नागरमोथा—चरपरा, शीतल, ग्राही, कड़वा, दीपन. पाचन कसैला, कफ, पित्त, रुधिर विकार, तृषा, ज्वर, अरुचि तथा कृमि नाशक है।

गिलोय—चरपरी. कड़वी, पाक में स्वादिष्ट, रसायन, ग्राही, कसैली, गरम, हल्की, वलदायक, जठराग्नि वर्द्धक और वात, पित्त, कफ तीनों दोषों को तथा आम, प्यास, दाह, प्रमेह, खांसी, पाण्डु, कामला, कुष्ठ, वातरक्त, ज्वर, कृमि, वमन, श्वास, ववासीर, मूत्रकृच्छ, हृदयरोग तथा वातनाशक है। पाचक, तिक्त, वल्य, वृष्य है। प्लीहा वृद्धि, सुजाकनाशक, मूत्रल है।

मुनक्का—दस्तावर, शीतल, नेत्रों को हितकारी, पुष्टिकारक, भारी, पाक व रस में मीठा, स्वर को उत्तम करने वाला, कसैला, मल तथा मूत्र को प्रवृत्त कराने वाला, वीर्यवर्द्धक, कफ- पुष्टि तथा रुचि को उत्पन्न करने वाला है।

जायफल—रस में कड़वा, तीक्ष्ण- गरम, रुचिकारक, हल्का, चरपरा, अग्निदीपक, ग्राही, स्वर को हितकारी, कफ तथा वात को नष्ट करने वाला, मुख की विरसता नाशक, मलदुर्गन्धता, कृष्णता, कृमि, खांसी, वमन, शोप, पीनस, और हृदय रोग को दूर करने वाला है।

दरियाई नारियल—लघु, रूक्ष, कटु, मधुर, विपाक में कटु, उष्ण वीर्य, कफ वातशामक, तृषा नाशक, वामक, हृदयोत्तेजक, शोथहर, वेदना स्थापक, विषघ्न, मूत्रगत शर्करा न्यूनकारक, शीत प्रशमन, प्राकृत देहाग्नि संरक्षक, अजीर्ण, अतिसार, विशूचिका, मधुमेह, इक्षुमेह, शीत ज्वर, आदि में विशेष लाभकर है।

अजवाइन—पाचक, रुचिकारी, तीक्ष्ण, गरम, चरपरी, कड़ुवी, लघु, अग्निदीपक, तिक्त, पित्तकारक और वीर्य, शूल, वात, कफ, उदर, आनाह, गुल्म, प्लीहा तथा कृमि को नष्ट करती है।

खुरासानी अजवायन—रुचिकारक, पाचक, ग्राही, मादक और भारी है। चरपरी, तीक्ष्ण, उदराग्नि, वर्द्धक, कफ तथा वायु को नष्ट करने वाली, गरम, विदाह कारक, हृदय को प्रिय, वीर्य वर्द्धक, वलकारक, हल्की है, नेत्र रोगों, कफ, वमन, हिचकी तथा वस्तिगत रोगों को हरने वाली है।

दोनों जीरा—रूक्ष, चरपरे, गर्म, अग्नि प्रदीपक, हल्के, ग्राही, पित्तकारक, मेवा को हितकारी, गर्भाशय को शुद्ध करने वाले, ज्वरनाशक, पाचक, वीर्यवर्द्धक, वलकारक, रुचिकारी, कफनाशक, नेत्रों को हितकारी और वायु, आध्मान, गुल्म, वमन तथा अतिसार को नष्ट करने वाले हैं।

दालचीनी—मधुर, कड़वी, चरपरी, सुगन्धित, वीर्य वर्द्धक, वर्ण को उत्तम करने वाली और वात, पित्त, मुख का शोप तथा तृपा को दूर करने वाली है।

लौंग—कटु, तिक्त नेत्रों को हितकारी, शीतल, दीपन, पाचन, रुचिकर, रक्त संवहन क्रियावर्द्धक, तापवर्द्धक तथा कफ, पित्त, रुधिर विकार, प्यास, वमन, आध्मान, शूल, कास, श्वास, हिचकी तथा क्षयनाशक है।

काकड़ासिंगी—कसैली, कड़वी, गरम और वात, कफ, क्षय, ज्वर, श्वास, ऊर्ध्ववात, तृपा, खांसी, हिचकी, अरुचि तथा वमन को नष्ट करने वाली है।

सारांश—घटक द्रव्यों के गुणधर्म पर विचार करने से यह भली भांति प्रकट हो जाता है कि यह विपमुष्टि आसव हृदय शक्ति वर्द्धक, निर्वलता नाशक, शीत निवारक, ज्वर नाशक, हृदयोत्तेजक, शक्ति वर्द्धक, शरीर ताप वर्द्धक व ताप की रक्षा करने वाला, वात नाशक परमोत्तम योग है। एवं जटिल नाड़ी मन्द होने वाली अवस्था में सद्यः फल-प्रद है।

—वैद्य श्री दरवारी लाल आयुर्वेद भिषक्,
अशोक भैपज्य भवन,
फतेहगढ़ (फर्रुखावाद) उ० प्र०
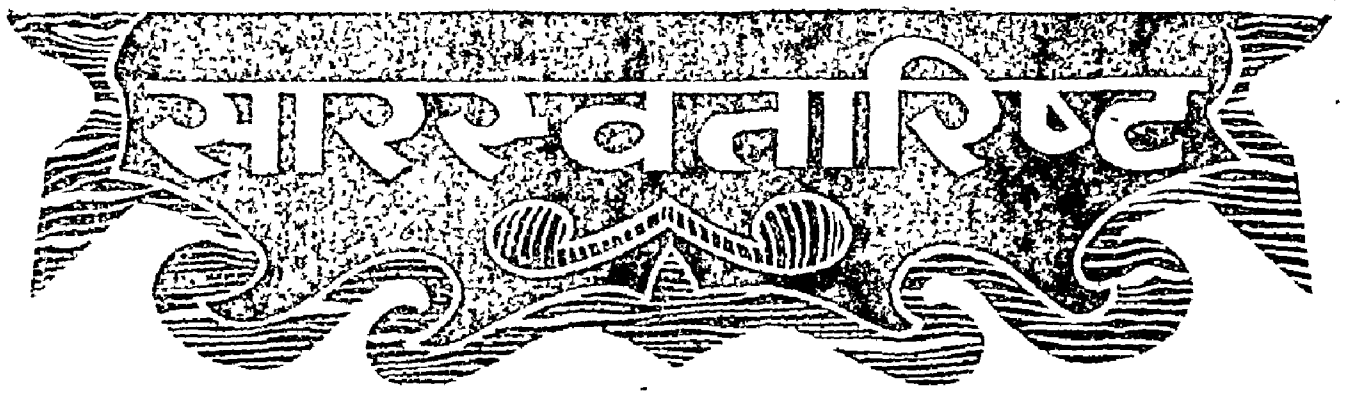
वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य

संदर्भ ग्रन्थ —भैषज्य रत्नावली।

घटक	तोल	विशिष्ट गुण
१. ब्राह्मी	८०० ग्राम	१. रस—तिक्त, कषाय, मधुर। वीर्य—शीत। विपाक—मधुर। दोषशमन—वात कफ। गुण—रसायन, मेध्य, स्वर्य, हृद्य।
२. शतावर	२०० "	२. रस—मधुर तिक्त। वीर्य—शीत। विपाक-मधुर। दोषशमन—वात पित्त कफ। गुण—गुरु, वल्य, वृष्य, रसायन, स्निग्ध, मेध्य।
३. विदारीकन्द	२०० "	३. रस—मधुर। वीर्य-शीत। विपाक-मधुर। दोषशमन—वात पित्त। गुण—वृंहण, वल्य, स्वर्य, वर्ण्य, स्नेहोपग, स्तन्यजनन, वृष्य, मूत्रल, रसायन।
४. हरड़	२०० "	४. रस—लवणरहित पंचरसयुक्त। वीर्य—उष्ण। विपाक—मधुर। दोषशमन—त्रिदोष। गुण—दीपन, पाचन, वयःस्थापन, मेध्य, वल्य, रसायन।
५. खस	२०० "	५. रस—तिक्त, मधुर। वीर्य—शीत। विपाक—मधुर। दोषशमन—पित्त। गुण—लघु, पाचन, स्तम्भन, स्तन्यजनन, दाहशामक।
६. आर्द्रक	२०० "	६. रस—कटु। वीर्य—उष्ण। विपाक—मधुर। दोषशमन—कफ वात। गुण—लघु, दीपन, रोचन, हृद्य, वृष्य।
७. सौंफ	२०० "	७. रस—मधुर, तिक्त, कटु। वीर्य—शीत। विपाक—लघु। दोषशमन—कफ वात। गुण—पाचन, हृद्य, वृष्य, वल्य, चक्षुष्य, मूत्रल, आर्त्तवजनन।
८. मधु	४०० "	८. रस—मधुर, कषाय। वीर्य—उष्ण। विपाक—मधुर। दोषशमन—कफ। गुण—रूक्ष, ग्राही, विलेखन, नेत्र्य, अग्निदीपक, स्वर्य, मेध्य, वीर्यवर्धक, योगवाही, रोचक।
९. खाण्ड	१०००"	९. रस—मधुर। वीर्य—शीत। विपाक—मधुर। दोषशमन—पित्त। गुण—पौष्टिक, स्नेहन, मूत्रजनन, उत्तेजक, पाचन, जीवन, स्वर्य, वृष्य।
१०. रेणुका	१० "	१०. रस—तिक्त, कटु। वीर्य—उष्ण। विपाक—कटु। दोषशमन—पित्त। गुण—अग्निदीपक, मेध्य, पाचक।
११. निशोत	१० "	११. रस—कषाय, कटु, मधुर। वीर्य—उष्ण। विपाक—कटु। दोषशमन—कफ पित्त। गुण—विरेचक, रूक्ष।
१२. पिप्पली	१० "	१२. रस—कटु। वीर्य—अनुष्ण शीत। विपाक—मधुर। दोषशमन—कफ वात। गुण—लघु, दीपन, पाचन, वृष्य, रसायन।

घटक	तोल	विशिष्ट गुण
१३. लौंग	१० ग्राम	१३. रस—कटु, तिक्त । वीर्य–शीत । विपाक–मधुर । दोषशमन–कफ पित्त । गुण—दीपन, पाचन, रुचिकर ।
१४. वच	१० "	१४. रस—तिक्त कटु । वीर्य—उष्ण । विपाक–कटु । गुण—वामक, विरेचन, लेखन, मेध्य, स्वर्य, दीपन, उत्तेजक, वेदनास्थापन ।
१५. कूठ	१० "	१५. रस—तिक्त, कटु, मधुर । वीर्य–उष्ण । विपाक–मधुर । दोषशमन–वात कफ । गुण—लेखन, शुक्रशोधन, शुक्रल, आस्थापनोपग ।
१६. असगन्ध	१० "	१६. रस—मधुर, कषाय, तिक्त । वीर्य–उष्ण । विपाक–मधुर । दोषशमन–वात कफ । गुण—बृंहण, बल्य, रसायन, वाजीकर ।
१७. बहेड़ा	१० "	१७. रस—कषाय । वीर्य–उष्ण । विपाक–मधुर । दोषशमन–कफ पित्त । गुण—लघु, भेदन, चक्षुष्य, केश्य, रसायन ।
१८. गिलोय	१० "	१८. रस—तिक्त, कषाय । वीर्य–उष्ण । विपाक–मधुर । दोषशमन–त्रिदोष । गुण—ग्राही, दीपनीय, रक्तशोधन, स्तन्यशोधन, वयःस्थापन, रसायन ।
१९. छोटी इलायची	१० "	१९. रस—कटु, मधुर । वीर्य–शीत । विपाक–लघु । दोषशमन–वात, कफ । गुण—मूत्रल, दीपन, पाचन ।
२०. वायविडंग	१० "	२०. रस—कटु, कषाय । वीर्य–उष्ण । विपाक-लघु । दोषशमन–कफ वात । गुण—रूक्ष, लघु, दीपन, शिरोविरेचन, मूत्रल, बल्य, रसायन, रक्तशोधन ।
२१. दालचीनी	१० "	२१. रस—लघु, मधुर, तिक्त । वीर्य–उष्ण । विपाक लघु । दोषशमन–वात कफ । गुण—लघु रूक्ष, दीपन, पाचन, स्तम्भन, उत्तेजक ।
२२. स्वर्ण पत्रक	१० "	२२. रस—मधुर, कषाय । वीर्य–शीत । विपाक–मधुर । दोषशमन–त्रिदोष । गुण—स्निग्ध, लघु, वर्ण्य, रसायन, रुचिकर, दीपन, बृंहण, वाजीकर, मेध्य ।
२३. धाय पुष्प	२०० "	२३. रस—कटु, कषाय । वीर्य–शीत । विपाक-कटु । दोषशमन–पित्त । गुण—मादक, संग्राहक, पौष्टिक ।
२४. जल	१६ लिटर	२४. रस—अव्यक्त । वीर्य–शीत । विपाक–लघु ।

निर्माण विधि—संख्या १ से ७ तक के द्रव्यों को यवकुट करें। पीछे जल मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छान लें, फिर शीतल होने पर इसमें मधु एवं शर्करा (खाण्ड) मिलावें। तत्पश्चात् शेष द्रव्यों का यवकुट चूर्ण कर डालें। फिर मुखमुद्रा करके एक मास तक रखें। फिर छान लें।

विशेष ज्ञातव्य—इस अरिष्ट में सुवर्ण पत्रक डालने को लिखा है। जैसा शास्त्र में लिखा है। इस प्रकार सुवर्णपत्रक डालने से विशेष लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि सुवर्णपत्रक इस प्रकार अरिष्ट में मिल ही नहीं सकते। अतः इस प्रकार डालना अनुचित ही होगा। इस भाँति डालने पर जब अरिष्ट को छानते हैं, तो सुवर्णपत्रक वैसे ही मिल जाते हैं। इसलिए अरिष्ट में "सुवर्ण लवण" डालना चाहिए।

सुवर्ण लवण—सुवर्णपत्रक कैंची से काट कर रखें और मन्द-मन्द आंच दें। फिर इसमें लवणाम्ल (Acid Hydrochloric) ४० मिलि० तथा शोरकाम्ल (Acid Nitric) १० मिलि० दोनों को आपस में मिलाकर शनैः शनैः सुवर्णपत्रकों पर डालते रहें। इनके डालने से सुवर्ण शीघ्र ही घुल जाता है। जब सुवर्ण घुल जाय तो इसमें सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) १०० ग्राम डाल दें। जब इसका जलीयांश शुष्क हो जाए, तो यह नारंगी रंग का हो जायेगा, फिर इसको आँच से उतारकर रख दें। यह सुवर्ण (Gold Chloride) है। यह जल में घुल जाता है। यह गोल्डक्लोराइड के नाम से बाजार में मिल भी जाता है।

सारस्वतारिष्ट में मिलाने की विधि—उत्तम बने हुए

सारस्वतारिष्ट ५०० मिलि० में सुवर्ण जल १ मिलि० मिलावें। अथवा ५० मिलि० अरिष्ट में १०० मि० ग्राम गोल्डक्लोराइड मिला लें। इसकी मात्रा १० से १५ बूंद है, इसको सारस्वतारिष्ट में मिलाकर पिलावें।

मात्रा—१. गोल्डक्लोराइड युक्त—पांच मिलि. से आरम्भ कर १५ मिलि. तक पिलावें।

२. गोल्डक्लोराइड—शास्त्रीय विधि से बना स्वर्ण सहित १५ से ३० मिलि.।

समय—भोजनोपरान्त दोनों समय—प्रातः सायंकाल।

अनुभव—आशुकारी रोगों में आसव तथा अरिष्ट खाली पेट प्रयुक्त करने से अधिक फलप्रद सिद्ध होते हैं, ऐसा मेरा विशेष अनुभव है। आसव तथा अरिष्टों को खाली पेट देने से तत्क्षण एवं तत्काल प्रभाव होता है। गोल्डक्लोराइड युक्त सारस्वतारिष्ट की मात्रा अधिक न लें तथा अरिष्ट पीने के तुरन्त पश्चात् दुग्ध अवश्य लें।

यह सारस्वतारिष्ट पुरातनकाल में धन्वन्तरि भगवान ने अपने शिष्यों के उपकारार्थ बनाया था। इसके सेवन से आयु, वीर्य, स्मृति, मेधा, बल, कान्ति बढ़ती हैं। वाणी शुद्ध हो जाती है। यह हृदय के लिए हितकारी एवं रसायन है। बालक, युवक, वृद्ध पुरुष एवं स्त्रियों के लिए हितकर है। ओज को बढ़ता है। सदा सेवन से स्वर भंग एवं अस्पष्ट भाषण को नष्ट कर कोकिल के सदृश स्वर को कर देता है। रजोरोगयुक्त स्त्रियों एवं शुक्रदोष से युक्त पुरुषों के लिए भी यह हितकर है। अत्यन्त पढ़ने-गाने आदि से जिनकी स्मरण शक्ति एवं बल क्षीण हो जाता है, ऐसे पुरुषों के चित्त को सन्तोष देता है तथा स्मृति को बढ़ाता है। इसे ६ मिलि० परिमाण में पानी के साथ मिलाकर पिलाना चाहिए। दो मास तक इसका प्रयोग करने से रोग नष्ट होते हैं और एक वर्ष तक प्रयोग से यह सम्पूर्ण सिद्धियों को देने वाला है। यदि कोई अकाल मृत्यु से बचना चाहता हो, वाणी की शुद्धि, धैर्य, वा स्मरण शक्ति को बढ़ाना चाहता हो तो उसे इसका सेवन करना चाहिए।

अनुभव—उपरोक्त गुण भैषज्यरत्नावलीकार लिखते हैं। सारस्वतारिष्ट, उन्माद अपस्मार तथा मस्तिष्क के भी विकारों में उत्तम फलप्रद है।

नाम रुग्ण—सोहन। आयु—२२ वर्ष। व्यवसाय—सैनिक।

सोहन भारतीय सेना में एक सैनिक था। एक रात्रि के समय वह अपनी ड्यूटी पर खड़ा था कि अकस्मात् उसे दौरा आया और वह गिर गया, थोड़ी देर में ही ठीक हो गया। कुछ दिन के पश्चात् पुनः वेग आया और अस्पताल में भर्ती करा दिया गया, वहाँ सब प्रकार की परीक्षाएं की गई तथा रोग अपस्मार निश्चित किया गया। एक वर्ष तक उपचार होता रहा परन्तु रोग बढ़ता ही गया। निदान उसे तीन मास का अवकाश दिया गया। रोग से तो अवकाश मिला ही नहीं था। दश पन्द्रह दिन के अन्तर से अपस्मार के वेग आते थे। निम्नोपचार किया गया—

१. प्रातःकाल—सारस्वतारिष्ट ३० मिलि०, काले गधे का मूत्र ५० मिलि० दोनों को मिलाकर पिला दें। एक घण्टे के पश्चात् भोजन दें।

२. सायंकाल—भोजन से १ घण्टा पूर्व सारस्वतारिष्ट ३० मिलि० खरमूत्र ५० मिलि० मिलाकर पिला दें। इस प्रकार एक मास तक औषधि दें।

३. दौरे के समय अपस्मारान्तक नस्य सुंघावें।

४. पथ्य में प्रातःकाल औषध सेवन से १ घण्टा पश्चात् कपिला गाय का दूध दें। सायंकाल गेहूं की रोटी, अरहर, मूंग की दाल, घी, दूध खूब दें। यह शर्तिया औषधि व्यवस्था है।

अनेक हिस्टीरिया से आक्रान्त रुग्णाओं को इससे लाभ मिला है। उपचार निम्न प्रकार किया गया है-मल्लसिंदूर, कस्तूरी, केशर, शुद्ध कुचला, सफेद मरिच, अकरकरा तथा सुवर्ण भस्म समभाग लेकर ७ दिन ब्राह्मी स्वरस तथा ७ दिन जटामांसी अर्क एवं ७ दिन शंखपुष्पी स्वरस में खरल करें। इसमें से २५० मि० ग्राम औषधि ले सारस्वतारिष्ट १० मि.लि. में घोटें। फिर रुग्णा को प्रातःकाल पिला दें। ऊपर से दुग्ध पिला दें। भोजनोपरान्त दोनों समय सारस्वतारिष्ट ३० मिलि. की मात्रा में पिलाते रहें।

हिस्टीरिया पीडित रुग्णा को नींद न आती हो, उछल कूद अधिक करती हो तो सारस्वतारिष्ट के साथ चन्द्रहास अर्क (रसतन्त्रसार द्वितीय खण्ड) ३० मिलि. मिलाकर पिलावें। इन सभी द्रव्यों को समय पर न जुटा सकें तो केवल मल्लचन्द्रोदय ही सारस्वतारिष्ट के साथ देते रहें।

—शेषांश पृष्ठ १३९ पर देखें।

सोम कल्पासव

पुस्तक नाम—एलौपैथिक सिद्ध योग संग्रह । प्रकाशक—मार्त्तण्ड ।

योग (द्रव्य)—सोमकल्प (एफेड्रा वैलोरिस) १ किलो, वासामूल ५ किलो, कंटकारी ५ किलो, वृहतीमूल १ किलो, तालीसपत्र १ किलो, इपिकाकुआन्हा चूर्ण ५०० ग्राम, लोवेलिया चूर्ण ५०० ग्राम, काकड़ासिंगी ५०० ग्राम, जल ४० किलो, गुड़ २० किलो, धाय के पुष्प २ किलो, किण्व १८ माशा या २ बोतल आसव ।

नोट—हमारी राय से आसव में रेक्टीफाईड स्प्रिट शुद्ध होना चाहिए ।

निर्माण—सब द्रव्यों को कूट छान करके जल में घोल ले । ऊपर से मीठा, धाय के फूल आदि शुद्ध मटके में डाल ४० दिन तक कनकासव की विधि से संधान करें, पूर्ण हो जाने के पश्चात् ५ ग्राम या १० ग्राम जल के साथ भोजन के बाद प्रयोग करें ।

उपयोग व क्रिया—यह औषधि श्वास रोग के लिए परम लाभप्रद है । श्वास लेने में अत्यन्त कष्ट होता है, इसके प्रयोग से श्वास नलिकाओं में वायु का आगमन सरलता पूर्वक होता है, श्वास के अतिरिक्त यह आसव कास में कफ निकालने के लिए तथा हिक्का को शान्त करने वाला है ।

सावधानी—इसके अधिक प्रयोग करने से वमन भी हो सकती है ।

घटकों के गुण

सोमकल्प—यह उष्ण, रूक्ष, श्वासनाशक, आमवात, कामला को दूर करने वाला व भूख बढ़ाने वाला है ।

वासामूल—यह कनकासव में भी पड़ता है अतः इसके गुण कनकासव में देखिए ।

कण्टकारीमूल—इसे देहात में कटेरी या भटकैया कहते हैं । यह उष्णवीर्य है । यह ज्वर, कफ का सूखना, हिक्का का चलना, अरुचि, जुकाम, हृद्रोग में प्रयोग होता है । इसके साथ-साथ रक्तशोधक व कृमिनाशक हैं । देहात के सज्जन वृन्द कफवात में इसका क्वाथ बनाकर पान करते हैं । मूत्रल गुण रखने के कारण सुजाक, मूत्रकृच्छ, जलोदर में कण्टकारी के पत्ते का रस का पान कराया जाता है ।

वृहतीमूल—यह उष्ण वीर्य एवं ताकतवर है, कफ स्रावक, मूत्रल तथा श्वास-कास एवं प्रमेह रोगों के लिए प्रयुक्त होता है ।

तालीस पत्र—यह भी कनकासव में पड़ता है, अतः गुण के लिए कनकासव देखने की कृपा करें ।

इपिकाकुआन्हा—इसे एपीकाकुआना रेडिक्स कहते हैं या हिप्पो कहते हैं । इसका चूर्ण हलके भूरे रङ्ग से लेकर पीताभ बादामी रङ्ग का होता है । हिन्दी में विदेशी अन्तमूल कहते हैं । बाजार में इसका चूर्ण डोवर्स पाउडर के नाम से आता है । यह कफ निस्सारक, वमन करने वाला, पाचक, श्वास-कास में लाभदायक है । नस्य लेने से छींक आकर नाक से पानी आने लगता है । एलौपैथिक चिकित्सक इसे अतिसार, आंव, पेचिस के लिए प्रयोग करते हैं, विशेष प्रयोग करने पर हृदय में दुर्बलता ला देता है । होमियोपैथिक में इसका प्रयोग वमन रोकने के लिए ३० शक्ति का इपिकाक मात्रानुसार दिया जाता है ।

लोवेलिया—यह भारतीय तम्बाकू के नाम से प्रसिद्ध है । इसकी पैदाईश विशेषकर अमेरिका में होती है । यह नशा लाता है जिससे इसका विशेषकर प्रयोग तमक श्वास में किया जाता है जिसे अंग्रेजी में अस्थमा कहते हैं । यदि

दिन भर श्वास कष्ट की अवस्था में रहती हो तो १० बूंद टिंचर लोबेलिया इथरिस दिनमें ३ बार देनी चाहिए। दौरा समाप्त होते ही औषधि बन्द कर देनी चाहिए। कुकर खाँसी में भी प्रयोग होता है।

अंग्रेजी के दो नुस्खे एलौपैथिक मेटेरिया मेडिया से लिख रहा हूं जो लेखक डा. शिवदत्त गुप्त द्वारा लिखा गया है।

तमक श्वास के लिए—पोटास आयोडाईड ३ ग्रेन, पोटास ब्रोमाईड १० ग्रेन, टिंचर लोबेलिया इथर १५ मिनिम, टिंचर स्ट्रेमोनियम १५ मिनिम, टिंचर एफड्रा-बलोरिस २५ मिनिम, सिरपटोलू आधी ड्राम, एक्सक्लोरोफोर्म १ औंस, १ मात्रा।

कुकर खाँसी के लिए—एमोनियावाईकार्व ३ ग्रेन, सोडावाई कार्व १० ग्रेन, पोटास आयोडाईड ३ ग्रेन, टिंचर लोबेलिया इथर १० मिनिम, टिंचर वसाकानिथ टोलू आधी ड्राम, एक्सां कैम्फर १ औंस, १ मात्रा।

काकड़ासिंगी—यह तमक श्वास, कास-श्वास, नलिका शोथ, राजयक्ष्मा पर विशेष लाभकारी है। इसके अतिरिक्त तृष्ण, हिक्का, वमन पर भी लाभदायक है।

रेक्टीफाईड स्प्रिट—यह मद्य है जो नशा करता है तथा अरुचि, अग्निमांद्य, दुर्बलता को दूर कर ताकत लाता है भूख बढ़ाता है। प्रत्येक एलौपैथिक इलाक्सीर जो टानिक के रूप में आते हैं उसमें करीब-करीब अवश्य ही रेक्टीफाईड स्प्रिट रहती है।

कनकासव शास्त्रीय गुणकारी निर्दोष औषधि है परन्तु सोमकल्पासव गर्म व वमन कराने वाली एलौपैथिक औषधियों से बनी हुई औषधि है। यह मार्त्तण्ड फार्मास्युटिकल्स द्वारा बनकर आती थी, परन्तु आजकल नहीं आ रही है, परन्तु कनकासव हर एक आयुर्वेदिक औषधि निर्माता निर्माण करते हैं जो बाजारों में आसानी से उपलब्ध हो जाती है।

—वैद्य श्री मुरारी प्रसाद आर्य आयु. वारिधि,
श्री सन्त विनोवा भावे आयुर्वेदिक चिकित्सालय
शेरवां (अदलहाट) जिला मिर्जापुर (उ० प्र०)

सारस्वतारिष्ट : : पृष्ठ १३७ का शेषांश

एक समय अपतन्त्रकारि वटी (सि. यो. सं.) देते रहें। इस प्रकार औषधि देते रहने से पुराने रोग में पूर्ण लाभ होता है शतप्रतिशत परीक्षित है।

बुद्धिजीवी, वकील, विद्यार्थी, अध्यापक आदि के लिए परम हितंकर है। जो विद्यार्थी लिखा, पढा, सुना सुनाया भूल जाता है। कुछ ऐसे भी लोग मिलते हैं जो किसी वस्तु को रखकर भूल जाते हैं, ऐसे भी सज्जन मिले हैं जो ऐनक को आँखों पर लगाकर ढूंढ़ते देखें गये हैं। ऐसे विद्यार्थी तो अध्यापक के मगज खाते देखे गये हैं जो छोटा सा प्रश्न समझने के लिए अधिक से अधिक मगज पच्ची करनी पड़ती है। ऐसे लोगों के लिए सर्वोत्तम बुद्धिवर्धक है। वकील-सम्पादक विद्यार्थी तथा लेखक बुद्धिजीवी समुदाय का सारस्वतारिष्ट परम मित्र है। सारस्वतारिष्ट के साथ मुक्तापिष्टी १२५ मि.ग्राम, अभ्रक भस्म शतपुटी १२५ मि.ग्राम मिलाकर पिलावें। अथवा ब्राह्मीघृत १५ ग्राम प्रातःकाल चटाकर ऊपर सारस्वतारिष्ट समभाग उष्णोदक मिलाकर पिलावें।

अनेक बच्चे तुतलाकर बोलते हैं। उनको सारस्वतारिष्ट के साथ ब्राह्मी स्वरस मिलाकर पिलाने से लाभ होता है अथवा ब्राह्मी चूर्ण मधु में मिलाकर चटाने से और सारस्वतारिष्ट पिलाने से लाभ होता है।

—वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य
मिसरी पो० चरखीदादरी (भिवानी) हरियाणा

★ आशुकारी रोगों में—

खाली पेट आसवारिष्टों के चमत्कार

श्री डा० विद्यासागर थापर एम. बी. बी. एस.

हम आयुर्वेदिक पुस्तकों में सदा ही यह पढ़ते रहते हैं कि आसव तथा अरिष्टों को भोजन के पश्चात् ही लेना चाहिए क्योंकि इनमें कुछ मात्रा मद्यार्क (Absolute alcohol) की अवश्य होती है। स्वभाव से ही एवं क्रिया में अम्ल होने के कारण आसव तथा अरिष्टों को खाली पेट देना उचित नहीं समझा गया। कुछ हद तक यह ठीक ही है। विशेष करके यदि इन आसवों तथा अरिष्टों को निरन्तर चिरकाल तक प्रयुक्त करना हो।

एक दिन मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि एलोपैथिक टिंक्चर (जो कि प्रायः तरल रूप में परन्तु कम मात्रा में प्रयुक्त होते हैं) में भी मद्यार्क की कुछ मात्रा अवश्य होती है जिस कारण उनका प्रभाव कुछ विशेष रोगों में तुरन्त होता है। एकाएक मैंने भी यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि इन आसव तथा अरिष्टों को उसी प्रकार ही खाली पेट ही प्रयुक्त किया जाये परन्तु मात्रा अवश्य अधिक दी जाये ताकि रोग एवं कफ निवृत्ति तुरन्त हो सके। इस प्रकार प्रयुक्त करने से आसव तथा अरिष्ट निःसंदेह अधिक फलप्रद सिद्ध होंगे एवं इनका प्रभाव भी तात्कालिक एवं तत्क्षण होगा। इस विचार ने मुझे दृढ़ साहस दिया और मैंने अपने मन में यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि अब इन आसव तथा अरिष्टों को विशेषकर आशुकारी रोगों में सदा खाली पेट एवं मात्रा में अधिक ही दिया जावेगा ताकि इनका प्रभाव तत्क्षण एवं तात्कालिक हो सके।

१९५९ में जब मैं श्री मूलचन्द खैरातीराम ट्रस्ट आयुर्वेदिक अस्पताल तथा रिसर्च इन्स्टीट्यूट लाजपत नगर नई दिल्ली का इन्चार्ज था, उन दिनों एक दिन बहिरङ्ग विभाग में एक रुग्ण महिला कण्ठरोग से तड़फती हुई आई। वह कण्ठ में तीव्र वेदना के कारण चिल्ला रही थी। उसकी ग्रसनिका (Pharynx) लालिमा एवं रक्ताधिक्यता के कारण भयंकर प्रतीत होती थी तथा उसकी कण्ठ ग्रंथियां (Tonsils) आशुकारी संक्रमणयुक्त एवं वढ़ी हुई थीं और पूय से लिप्त थीं। इस कारण उसको ज्वर भी तीव्र था जोकि लगभग १०३ डिगरी तक पहुंचा हुआ था। इस महिला की उपर्युक्त अवस्था देखकर उस के तड़फन की तात्कालिक निवृत्ति के लिये पेनिसिलीन तथा सल्फा औषधियों का ध्यान मेरे मन में अवश्य आया था। परन्तु क्योंकि मेरा निश्चय दृढ़ था कि मैंने अपने प्रत्येक रोगी में केवल मात्र आयुर्वेदिक औषधियों का ही प्रयोग करना है ताकि इस प्रकार के आशुकारी रोगों में आयुर्वेदिक औषधि के प्रभाव (विशेष करके खाली पेट आसव अरिष्टों के प्रभाव) का अनुभव मुझे स्पष्ट हो सके। इसलिए मैंने निर्णय कर लिया कि इस महिला के लिए आसव तथा अरिष्टों का प्रयोग खाली पेट एवं अधिक मात्रा में किया जाए जिससे उस दुखित महिला की कष्ट निवृत्ति तुरन्त एवं तात्कालिक हो जाए।

इस प्रकार की कण्ठ की आशुकारी अवस्था के लिए उस महिला को दशमूलारिष्ट २॥ तोले (१ औंस) तथा द्राक्षारिष्ट भी २॥ तोले थोड़े जल के अनुपान के साथ खाली पेट दिन में चार बार देने की व्यवस्था की गई और प्रातः ८ बजे, दोपहर १२ बजे, सायं ४ बजे तथा रात्रि ७ बजे का समय निर्धारित किया गया ताकि उपर्युक्त समयों में रुग्णा खाली पेट अरिष्टों का प्रयोग करे।

हम जानते ही हैं कि दशमूलारिष्ट अपने चमत्कार अनेक रोगों की विभिन्न अवस्थाओं में दिखाता है और प्रत्येक प्रकार के आशुकारी संक्रमण, पूयावस्था, ग्रन्थिवृद्धि, रक्ताधिक्यता, तीव्र वेदना एवं ज्वर की तीव्रता में इसका प्रभाव अद्भुत होता है। इसी प्रकार हम यह भी जानते हैं कि द्राक्षारिष्ट का प्रभाव कण्ठ के विभिन्न रोगों में आश्चर्यजनक होता है तथा इस प्रकार के आशुकारी रोगों की निवृत्ति के लिए भी द्राक्षारिष्ट अपना अद्भुत कार्य दिखाता है। इस कारण मुझे यह विश्वास हो गया कि इन दोनों अरिष्टों के सम्मिश्रण से और अधिक मात्र में एवं खाली पेट देने से अवश्यमेव जादू का असर होगा।

रोगी को भोजन के रूप में केवल मात्र गर्म दूध तथा दूध को थोड़ा हल्का करने के लिए उसमें थोड़ी देसी

चाय मिलाकर लेने के लिये अनुमति दी गई। देसी चाय गुरुकुल-कांगड़ी फार्मेसी, डी. ए. वी. फार्मेसी अथवा अन्य किसी आयुर्वेदिक फार्मेसी की (जो भी मार्केट में सुलभता से मिल सके) प्रयुक्त की जा सकती है।

रोगी को औषधि दी गई और वह चली गई परन्तु मेरी विचारधारा में उसकी आशुकारी अवस्था एवं तड़पन का ध्यान निरन्तर रहा और मेरे मन में यह भी ध्यान अवश्य आया कि इस प्रकार के आशुकारी एवं तड़पते रोगियों की रुचि एलोपैथिक चिकित्सा की ओर झुकने की अधिक होती है इसलिए वह प्रायः एलोपैथिक डाक्टरों की शरण में चले जाते हैं। परन्तु मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जबकि वह महिला दूसरे ही दिन बहिरङ्ग विभाग में आकर अपनी कष्ट निवृत्ति की कथा सुनाती है और कहती है कि उसको ७५ प्रतिशत से भी अधिक लाभ है। उपर्युक्त प्रकार के आशुकारी तड़पते हुये रोगियों में एवं तीव्र वेदना के कारण चिल्लाते हुए रोगियों में आयुर्वेदिक औषधियों ने क्या अद्भुत चमत्कार दिखला दिया। इस विशेष सफलता को देखकर मुझे विशेष आनन्द की प्राप्ति हुई कि वास्तव में इस प्रकार का तड़पता हुआ एवं चिल्लाता हुआ आशुकारी रोगी आयुर्वेदिक औषधियों द्वारा तत्क्षण एवं तात्कालिक कष्ट निवृत्ति एवं पूर्ण स्वस्थता को प्राप्त हो सकता है। यह सुनकर तथा देखकर मेरे विश्वास एवं निश्चय में समुन्नति हुई और मैंने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि अन्य आशुकारी रोगों में आसव तथा अरिष्टों का प्रयोग खाली पेट एवं अधिक मात्रा में ही किया जाय।

तत्पश्चात् अनेक बार श्री मूलचन्द खैरातीराम ट्रस्ट अस्पताल के अंतरंग एवं बहिरङ्ग विभाग के आशुकारी रोगियों को मैंने इस प्रकार आसव अरिष्टों का अधिक मात्रा में एवं खाली पेट देना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु मेरे मन में आयुर्वेदिक पुस्तकों की यह बात सदा ध्यान में रहती थी कि आसव तथा अरिष्टों को भोजन के पश्चात् ही लेना चाहिए। इस प्रकार अनेक रोगियों के अनुभव के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूँ कि आशुकारी रोगों में पहिले एक दो दिन खाली पेट और अधिक मात्रा में आसव अरिष्ट देने से यह एलोपैथिक इन्जेक्शनों की भांति तुरन्त एवं तत्क्षण कष्ट निवृत्ति का कार्य करते हैं। तत्पश्चात् दो तीन दिन खाली पेट परन्तु मात्रा में अधिक नहीं। फिर भोजन के पश्चात् उसी भाँति जैसे शास्त्र में लिखा है, इस प्रकार आसव अरिष्टों का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार प्रयोग करने से आसव अरिष्टों द्वारा कभी कोई हानि नहीं देखी गयी। अर्थात् आसव अरिष्टों का प्रयोग आशुकारी रोगों में खाली पेट तीन चार दिन तक अथवा अधिक से अधिक एक सप्ताह तक तो किया जा सकता है परन्तु यदि आसव अरिष्ट निरन्तर चिरकाल तक प्रयुक्त करने हों तो भोजन के पश्चात् ही दें।

इन आसव तथा अरिष्टों का प्रयोग शीघ्र एवं तात्कालिक प्रभाव के लिये अनुपान रूप से अनेक प्रकार के रसों तथा अन्य औषधियों के साथ करना भी विशेष लाभदायक होता है ऐसा मेरा अनुभव है।

बार-बार प्रयोग करने के पश्चात् मेरी श्रद्धा बढ़ती ही जाती है और अब मैं दृढ़ निश्चय से कह सकता हूँ कि यदि आयुर्वेदिक आसव तथा अरिष्ट खाली पेट एवं मात्रा में अधिक दिये जायें तो निःसन्देह इनकी क्रिया एलोपैथिक इन्जेक्शनों की भाँति ही होगी और तड़पते हुए आशुकारी रोगियों में एवं तीव्र वेदना से चिल्लाते हुए रोगियों में इन आसव तथा अरिष्टों का प्रभाव तत्क्षण एवं तात्कालिक ही होगा। और तीन चार दिन बिना किसी प्रकार की हानि के इस प्रकार खाली पेट तथा अधिक मात्रा में आसव तथा अरिष्ट दिये जा सकते हैं। ऐसा मेरा अनुभव है।

—श्री डा. विद्यासागर थापर एम. बी. बी. एस.,
बी. आई. एम. एस, एल. सी. पी. एस.,
वैद्य वाचस्पति, प्रिंसिपल—श्री मस्तनाथ
आयुर्वेदिक डिगरी कालिज, अस्थल
बोहर, रोहतक (हरियाणा)
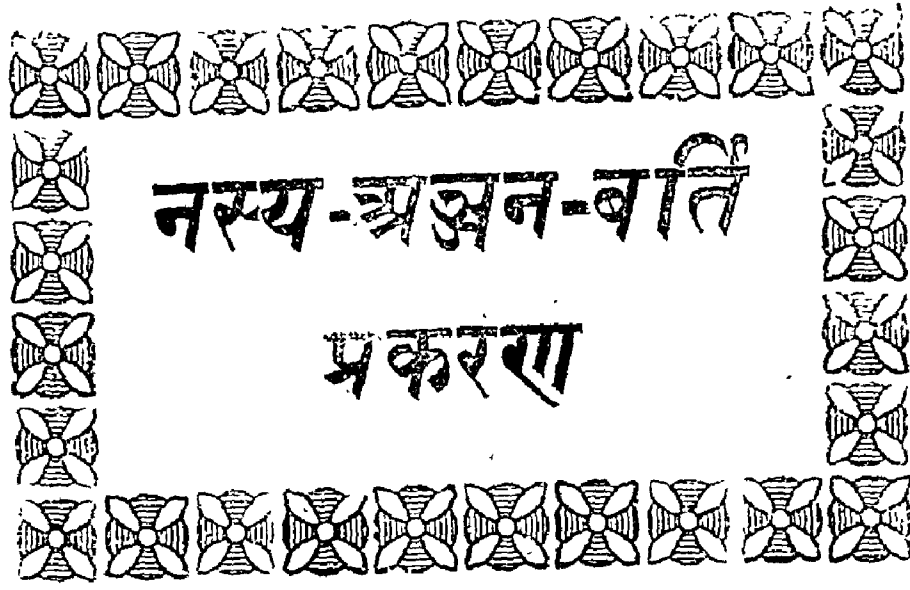
वैद्यराज डा० रणवीर सिंह शास्त्री एम० ए० पी० एच० डी०

नस्य शब्द की निरुक्ति—

"नासिकायै[1] हितम्" नासिका के लिए जो विधि हितकारी हो उसे नस्य कहते हैं। यहाँ नासिका शब्द उपलक्षण मात्र है जिससे ऊर्ध्वजत्रुगत[2] ज्ञानेन्द्रियों का ग्रहण होता है, ज्ञानेन्द्रियों का आधार शिर है और नासिका शिर का द्वार है।[3]

भगवान् धन्वन्तरि[4] ने औषध एवं औषध सिद्ध स्नेहों का नासिका के द्वारा प्रयोग करने को ही नस्य कहा है। दोनों प्रकार की निरुक्ति सिद्धान्तभूत एक ही विषय व लक्ष्य का प्रतिपादन करती है।

नस्य की उपयोगिता—

नाक के दोनों नथनों (छिद्रों) द्वारा प्रयुक्त नस्य रूप में विविध औषध सिद्ध स्नेह, चूर्ण आदि केवल उत्पन्न रोगों को या पुराने कष्टदायक रोगों को ही शान्त नहीं करते, अपितु ऊर्ध्वजत्रुगत इन्द्रिय गह्वरों में प्राप्त होने वाले आगन्तुक रोगों की निवृत्ति भी पहिले ही कर देते हैं। ऊर्ध्वजत्रुगत सम्पूर्ण देहाङ्ग इतने बलिष्ठ व रोग प्रतिरोधक शक्ति सम्पन्न होते हैं कि उनमें रोगों का प्रभाव नहीं होता।

नस्य प्रयोग से मनुष्यों के ऊर्ध्वजत्रुगत समस्त[5] रोग नष्ट हो जाते हैं, सकल ज्ञानेन्द्रियां निर्मल हो जाती हैं और मुख सुगन्धित हो जाता है। नस्य का प्रयोग स्वस्थ पुरुषों के लिए अनागत रोग प्रतिषेधक भी है, जिससे ठोड़ी, दाँत, शिर, गर्दन, त्रिक (मेरुदण्ड की निम्न संधि) भुजाओं व वक्ष-

---

१ "तस्मैहितम्" इस सूत्र के अधिकार में शरीरावयवाद्यत्" अष्टाध्यायी ५-१-६ सूत्र से यत् प्रत्यय तथा नासिका को नस् आदेश हुआ।

२ ऊर्ध्व जत्रु विकारेषु विशेषान्नस्यमिष्यते। —वाग्भट

३ नासाहि शिरसोद्वारं तेन तद्व्याप्य हन्ति तान् ॥ —वाग्भट सूत्र २०/१

४ औषधमौषध सिद्धोवा स्नेहो नासिकाभ्यां दीयत इति नस्यम्। —सु० चि० ४०/२१

५ नस्येन रोगाः शाम्यन्ति नराणामूर्ध्व जत्रुजाः। इन्द्रियाणां च वैमल्यं कुर्यादास्यं सुगन्धि च ॥
हनुदन्त शिरोग्रीवात्रिक बाहूरसां बलम्। बली पलित खालित्य व्यङ्गानां चाप्यसम्भवम् ॥—सु.चि. ४०/५४,५५

स्थल को सुदृढ़ता प्राप्त होती है। नस्य प्रयोक्ता की त्वचा में झुर्रियाँ, बाल सफेद होना, गञ्जापन, झाई आदि त्वचा की व्याधियाँ उत्पन्न ही नहीं होती।

अष्टाङ्ग हृदय[१] नामक ग्रन्थ में भी नस्य प्रयोग से लाभ एवं महत्वपूर्ण उपयोगिता वर्णित है। त्वचा, कन्धे, गर्दन, मुख और छाती, नस्यसेवी के यह सब उन्नत व प्रसन्न हो जाते है तथा इन्द्रियाँ सुदृढ़ होती है और केश श्वेत नहीं होते।

स्नेहन[२] नस्य के परिशीलन से रिक्त मस्तिष्क रोगियों की छाती, गर्दन और कन्धों की निर्बलतायें एवं नेत्रों की ज्योति का ह्रास दूर होकर शिर, गर्दन कन्धे और नेत्र सबल हो जाते है।

नस्य के भेद

महर्षि सुश्रुत ने नस्य[३] के दो भेद लिखे हैं—

(१) शिरो विरेचन नस्य (२) स्नेहन नस्य

पुनः दो प्रकार के नस्य के पांच भेद हो जाते है—

(१) नस्य (२) शिरोविरेचन (३) प्रतिमर्ष (४) अवपीड (५) प्रधमन। इनमें नस्य और शिरोविरेचन प्रधान हैं, प्रतिमर्ष नस्य का ही विकल्प है और शिरोविरेचन का विकल्प अवपीड व प्रधमन है। इस प्रकार नस्य शब्द से पांचों भेदों का ग्रहण होता है। आचार्य[४] वाग्भट्ट ने विरेचन, बृंहण व शमन नस्य ऐसे तीन प्रकार के नस्य भेद बताये हैं।

नस्य की परिभाषा—

अनेकविधि औषधियों व क्वाथ स्वरसादि से सिद्ध तैल घृतादि का नासिका द्वारा विधिवत् प्रयोग करने के लिए प्रस्तुत भेषज का नाम ही नस्य है, जैसे षड्बिन्दु[५] तैल और हिंग्वादि तैल[६] आदि।

नस्यों का निर्माण—

चूर्ण, स्वरस, तैल आदि के रूप में किया जाता है, नस्य के लिए सूक्ष्म यह चूर्ण ही काम में लेना श्रेयस्कर है। मोटा चूर्ण नासिका के भीतर सरलता से नहीं पहुँच पाता, आशु प्रभावी नहीं होता। चूर्ण रूप नस्यों में—

(१) अपामार्ग के बीज, सिरस के बीजों का सूक्ष्मचूर्ण समभाग में उत्तम नस्य है।

(२) कायफल, छोटी इलायची, सिरस के बीज, नक

---

१ घनोन्नत प्रसन्नत्वक् स्कन्ध ग्रीवास्य वक्षसः। दृढेन्द्रियास्तपलिता भवेयुर्नस्य शीलिनः॥
—अष्टाङ्ग हृदय सूत्र अ० २०–३८

२ तत्र यः स्नेहनार्थं शून्य शिरसां ग्रीवा स्कन्धोरसां च बलजननार्थं दृष्टि प्रसाद जननार्थं वा स्नेहो विधीयते तस्मिन् वैशेषिको नस्य शब्दः।
—सु० चिकि० ४० सूत्र २२

३ तद्द्विविधं शिरोविरेचनम्, स्नेहनञ्च तद्द्विविधमपि पञ्चधा, तद्यथा नस्यं शिरोविरेचनं प्रतिमर्षोऽवपीडः प्रधमनञ्च। तेषु नस्यं प्रधानं शिरोविरेचनं च। नस्य विकल्पः प्रतिमर्षः शिरोविरेचन विकल्पोऽवपीडः प्रधमनं च। ततो नस्य शब्दः पञ्चधा नियमितः।
—सु० सं० चिकि० गद्य० २१

४ विरेचनं बृहणं च शमनं च त्रिधापितत्॥
—अष्टांगहृदय स. अ. २० श्लो. २

५ एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्तिरास्ना सह सैन्धवेन।
भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्ठिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम्॥
अजापयस्तैलविमिश्रितंतु चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपक्वम्।
षड्-बिन्दवो नासिकयोः प्रदेयाः सर्वान्निहन्युः शिरसो विकारान्॥
च्युतांश्च केशान् चलितांश्च दन्तान् निबद्ध मूलान सुदृढ़ी करोति।
सुपर्ण दृष्टिप्रतिमंच चक्षुः करोति बाह्वोरधिकं बलञ्च॥
—योग रत्नाकर, शिरोरोग चिकित्सा प्रकरण

६ हिंगुव्योष विडंग कट्फलवचारुक्तीक्ष्णगन्धै र्युतैर्लक्षा श्वेत पुनर्नवाब्द कुटजैः पुष्पोद्भवैः सौरसैः। इत्येभिः कटु-तैलमेतदबले मन्दे समूत्रं शृतं पीतं नासिकया यथाविधि भवेन्नासामयिभ्यो हितम्॥
—चिकित्सा कलिका (नासा रोग)

छींकनी समभाग लेकर यह चूर्ण करके सुरक्षित रंगीन शीशी में रखें।

(३) वन्दालफल, छोटी इलायची, शीतलचीनी इनको समभाग पीसकर कपड़छन करलें, यह तीक्ष्ण नस्य है पीलिया एवं नासाकृमि आदि रोगों में सावधानी से दो तीन बार सूंघना चाहिए।

(४) अर्कदुग्ध में जंगली कण्डे की भस्म चौगुनी डाल कर सुखालें। इसको छानकर नस्य लें, अति तीव्र नस्य है।

(५) तम्बाकू के सूखे पत्तों का सूक्ष्म चूर्ण भी बाजार में नसवार के नाम से मिलता है इसको सुगन्धित नस्य बनाते हैं। प्रायः इसके व्यसनी इस नस्य के सूंघे बिना विकल रहते हैं तम्बाकू के खाने पीने के समान सूंघना भी व्यसन है, यदि नसवार के व्यसनी को यह न मिले तो उसे शिर दर्द, जुकाम, शिर की जकड़न व गर्दन में दर्द होता रहता है। शास्त्रीय नस्यों में शिरःशूलान्तक[1] नस्य (दो प्रयोग) मूर्च्छान्तिक[2] नस्य, कलिङ्गादि[3] नस्य इत्यादि नस्य प्रयोग पूर्ण रूपेण प्रयोज्य है, कट्फलादि चूर्ण[4] शास्त्रीय योग मुख द्वारा सेव्य है इसका उल्लेख यहाँ न करते हुए स्वानुभूत प्रयोग को ही पूर्व पंक्तियों में प्रस्तुत किया है। लोक में प्रचलित अनेक प्रकार के नस्य दृष्टिगोचर होते हैं। शास्त्रों में "श्वास कुठार रस" का नस्य भी तीव्र मूर्च्छा तथा अपस्मारजनित मूर्च्छा में सद्यः लाभ दिखाकर बेहोशी[5] को दूर कर देता है।

सन्निपात[6] रोग में जब तीव्र मूर्च्छा हो जाती है उस समय तीक्ष्ण नस्यों द्वारा बेहोशी दूर की जाती है।

(१) महुए की मिंगी, सैंधानमक, घुड़वच, कालीमिर्च, पीपल इनका सूक्ष्म चूर्ण करके नस्य देने से मूर्च्छा दूर होकर होश आ जाता है।

(२) सैंधानमक, सफेद मिर्च, सरसों, कूठ, पीपल इनको बकरे के मूत्र में पीसकर नस्य देने से तन्द्रा का नाश होता है।

शिरोविरेचन का लक्षण—

शिरोविरेचन भी नस्य विशेष है शिरो[7]विरेचनीय द्रव्यों (चरकसंहितोक्त) से जो नस्य दिया जाता है उसे शिरोविरेचन[8] कहते हैं।

कफ दोष से व्याप्त तालु, कण्ठ और शिर के होने से अरुचि, शिर में भारीपन व दर्द, पीनस, अर्धावभेदक, कृमि, जुकाम, मृगी, गन्ध का ज्ञान न होना इत्यादि कफ प्रकोप से उत्पन्न ऊर्ध्वजत्रु विकारों में शीर्षविरेचन करने वाले

---

[1] रस तन्त्र सार व सिद्ध प्रयोग संग्रह (नस्य प्रकरण)

[2] ,, ,, ,,

[3] योग रत्नाकर (नासा रोग चिकित्सा) में नस्य के स्थान पर अवपीड लिखा है। वह भी इसी का भेद है।

[4] योग रत्नाकर (नासारोग चिकित्सा)

[5] गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं पर्णखण्डेन धीमता। सन्निपाते च मूर्च्छायामपस्मारे तथा पुनः॥ अतिमोहत्वमापन्ने नस्यं दत्त्वा विचक्षणः। रसः श्वास कुठारोऽयम् ……॥

— योग रत्नाकर, श्वास चिकित्सा ५

[6] मधूकसार सिन्धूत्थ वचोषणकणाः समाः। …नस्यं कुर्यात्संज्ञाप्रबोधनम्॥ सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठ पिप्पली। बस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रा निवारणम्। —योग रत्नाकर, सन्निपाताधिकार (नस्य)

[7] अपामार्गस्य बीजानि पिप्पलीर्मरिचानि च
विडंगान्यथ शिग्रूणि सर्षपांस्तुम्बुरूणि॥
अजाजीं चाजगन्धां पीलून्येलां हरेणुकां।
पृथ्वीकां सुरसां श्वेतां कुठेरकफणिज्जकौ॥
शिरीष बीज लशुनं हरिद्रे लवणद्वयम्।
ज्योतिष्मतीं नागरं च दद्यात् शीर्षविरेचने।

—चरक संहिता सूत्र० अ० २ श्लोक ३ से ५

[8] शिरोविरेचन द्रव्यैर्यो दीयते स शिरोविरेचनः। —सुश्रुत डल्हण टीका —चि० अ० ४० श्लोक २१

द्रव्यों से अथवा इनसे साधित स्नेह से जो नस्य दिया जाता है, उसे शिरो विरेचन[1] कहते हैं।

शिरो विरेचनीय द्रव्यों में पीपल, वायविडंग, सैंजना, सरसों, अपामार्ग, छींकनी, वनतुलसी आदि अनेक औषधियां हैं। चरकोक्त शीर्ष विरेचनीयगण को टिप्पणी में उद्धृत किया है।

प्रतिमर्ष की प्रक्रिया—

मर्ष और प्रतिमर्ष भेद से दो प्रकार के हैं।

(क) मर्ष[2] स्नेहननस्य, शिरोविरेचन औषधियों से सिद्ध स्नेह को नासिका छिद्रों में टपकाना या सूंतना होता है। यह तीन प्रकार का है (१) उत्कृष्ट मात्रा दशबिन्दु। (२) मध्यमात्रा आठ बिन्दु। (३) निम्न मात्रा ६ बूंद। मर्ष नस्य की मात्रा अधिक होने से इसके प्रयोग में कष्ट होता है। अतएव आयुर्वेद के आचार्यों ने मर्ष स्नेह को सपरीहार व सापद[3] बताया है। इसके प्रयोग में विशेष पथ्य-कारिता व सावधानी रखनी पड़ती है।

(ख) प्रतिमर्ष नस्य—

प्रतिमर्ष स्नेह नस्यकी दो बूंद हीन[4] मात्रा है। इसका प्रयोग सभी कालों में और सभी अवस्थाओं में किया जा सकता है, दिन व रात्रि भोजन के बाद, वमन, दिन में शयन, मार्ग का परिश्रम, मैथुन, शिरोभ्यङ्ग, कुल्ला, नेत्राञ्जन, मूत्र व पुरीषोत्सर्ग, दन्तधावन, हास्य आदि क्रियाओं के बाद दो बूंद स्नेह नाक में डालकर सूंतना चाहिए।

गुण—इसके प्रयोग से ज्ञानेद्रियों के सभी स्रोत साफ (शुद्ध) हो जाती हैं, थकावट दूर हो जाती है, आंखों की रोशनी व दांतों की मजबूती हो जाती है। प्रतिमर्श नस्य मनुष्य या स्त्री के जन्म से लेकर मरण पर्यन्त प्रत्येक दशा व प्रत्येक काल में प्रयोग करना चाहिये। जिस प्रकार वस्ति का प्रयोग सदा हितावह है उसी प्रकार प्रतिमर्श का प्रयोग भी सदा हितकारी है। इसके सेवन से मर्शनस्य के सभी गुण[5] प्राप्त होते हैं। हानि कोई भी नहीं होती। इसका उपयोग नासिका द्वारा सदा ही करना चाहिए।

विशेष अवस्था में पांच बूंद तक प्रतिमर्शनस्य का प्रयोग होना चाहिये, २ बूंद, तीन बूंद एवं ५ बूंद स्नेहन नस्य से अनेक रोगों की निवृत्ति होती है, सारे ऊर्ध्वजत्रुगत रोग नष्ट हो जाते हैं।

मर्श और प्रतिमर्श नस्यों में मात्रा भेद होने से सैद्धान्तिक भेद हो जाता है, अतः मर्श का विशेष अवस्थाओं में तथा प्रतिमर्श का सदा ही प्रयोग करना चाहिए।

प्रतिमर्श के विषय में आचार्य सुश्रुत[6] का मत—

प्रतिमर्श की उपादेयता १४ कालों में प्रतिपादित की है।

---

१ शिरोविरेचनं श्लेष्मणाभिव्याप्त तालु कण्ठ शिरसामरोचक शिरोगौरव शूल पीनसार्धावभेदक क्रिमि प्रतिश्याया-पस्मार गन्धाज्ञानेष्वन्येषु चोर्ध्वजत्रुगतेषु कफजेषु विद्यारेषु शिरोविरेचन द्रव्यैस्तसिद्धेनवा स्नेहेन।
—सुश्रुत चि० ४०-२३

२ यावत्पतत्यसौ विन्दु र्दशाष्टौषट् क्रमेणते। मर्षस्योत्कृष्ट मध्योना मात्रास्ता एव च क्रमात्।
—वाग्भट—सूत्र २०-१०

३ मर्शे च प्रतिमर्शे च विशेषो न भवेद् यदि। कोमर्शं सपरीहारं सापदं च भजेत्ततः।
—वाग्भट—सू० अ० २० श्लोक ३५

४ ......हीनमात्रतयाहि सः। निशाहर्भुक्तवान्ताहः स्वप्नाध्वश्रम रेतसम्। शिरोभ्यञ्जनगण्डूष प्रस्रावाञ्जनवर्च-साम्॥ दन्त काष्ठस्य हासस्य योज्योऽन्तेसौ द्विविन्दुकः। पञ्चसुस्रोतसां शुद्धिः क्लमनाशस्त्रिषुक्रमात्॥ दृग्बलं पञ्चसु, ततोदन्तदार्ढ्यं मरुच्छमः॥
—अष्टाङ्ग हृदय सूत्र अ० २० श्लोक २८ से ३०

५ आजन्ममरणं शस्तः प्रतिमर्शस्तुवस्तिवत्।
मर्शवञ्च गुणान् कुर्यात् सहि नित्योपसेवनात्॥
न चात्र यन्त्रणान्तापि व्यापद्भ्यो मर्शवद् भयम्॥
—वाग्भट-सूत्र अ० २० श्लोक ३२-३३

६ प्रतिमर्शस्तु चतुर्दशसु कालेषुपादेयः। तद्यथा-तल्पोत्थितेन, प्रक्षालितदन्तेन, गृहान्निर्गच्छता, व्यायामव्यवायाध्व-परिश्रान्तेन मूत्रोच्चार कवलाञ्जनान्ते, भुक्तवता, छर्दितवता, दिवास्वप्नोत्थितेनस्तमंचेति।
—सुश्रुत संहिता चिकि. ४० श्लोक ५१

(१) रात्रि शयन के पश्चात् खाट से उठते ही (२) दातुनधावन के पश्चात् (३) घर से बाहर निकलते हुए (४) व्यायाम के पश्चात् (५) मैथुन के पीछे (६) मार्ग चलने से थकने पर (७) मूत्रोत्सर्ग के बाद (८) टट्टी करने के पश्चात् (९) औषधग्रास धारण करने के बाद (१०) नेत्राञ्जन लगाने पर (११) भोजन करने के बाद (१२) वमन करने के बाद (१३) दिन में सोकर उठने पर (१४) और सायंकाल, इस प्रकार महर्षि सुश्रुत ने प्रतिमर्श प्रयोग की १४ वेलायें बताकर इनके गुणों का भी विस्तार से विवेचन किया है। यहाँ संक्षेप से सारांश लिख रहा हूं—

यथा—प्रातः[1] खाट से उठकर नस्य स्नेह लेने से रात्रि में नासिकारन्ध्रों में संचित कफ निर्गत हो जाता है और मन प्रसन्न हो जाता है। दन्तधावन के बाद नस्य लेने से दांत सुदृढ़ होते है और मुख सुगन्धित होता है। घर से बाहर जाते समय नस्य लेने से नाक के स्निग्ध होने से धुआँ धूल आदि कष्ट नहीं देते, व्यायाम मैथुन आदि की थकावट को भी नस्य दूर करता है, टट्टी पेशाब करने के बाद नस्य से आँखों का भारीपन दूर होता है। कवल और अञ्जन करने के बाद दृष्टि को स्वच्छ करता है, भोजनोपरात नस्य लेने से स्रोत स्वच्छ हो जाते है और हलकापन आ जाता है। वमन के पश्चात् नस्य स्रोतों को शुद्ध करता है और खाने की इच्छा उत्पन्न करता है, दिवास्वाप के बाद नस्य लेने से देह की गुरुता आलस्य दूर होकर चित्त एकाग्र हो जाता है। सायंकाल नस्य प्रयोग से निद्रा अच्छी आती है और ठीक समय पर जागरण होता है।

प्रतिमर्श नस्य लेने से उक्त दैहिक और मानसिक लाभ होते हैं।

प्रतिमर्श नस्य की मात्रा—तर्जनी अंगुलि के दो पर्व को स्नेह में डुबोकर नाक में डालकर सूंघे, नाक के छिद्रों से स्नेह अन्दर गले में पहुँच जावे, इतनी ही मात्रा प्रतिमर्श स्नेह[2] लेने की है, चित्त लेटकर २-२ बूंद मात्रा ही नथनों में डाली हुई गले में पहुच जाती है।

अवपीड नस्य—

शिरोविरेचनीय औषधियों को पानी में पकाकर अथवा स्वरस निकालकर रुई के फाये (पिचु) से अवपीड़ित करके नाक में डालने से "अवपीड़न[3]" नस्य कहाता है।

१ तोले शुष्क औषधि कल्क को २० तोले शुद्ध जल में पकाकर १ तोले शेप रहने पर सुहाता-सुहाता पिचु में भरकर नाक के दोनों नथुनों में आसिञ्चित करें, मुख में जाने पर थूक दें, पीना[4] नहीं चाहिए, इससे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रधमन नस्य—

शिरो विरेचनीय सूक्ष्म यह चूर्ण को मुख से अथवा नालिका से फूंककर (प्रधमन) नासा रन्ध्रों में पहुँचाने के कारण इस नस्य को प्रधमन[5] नस्य कहते हैं।

चित्त[6] विकृति, बुद्धिविक्षेप, नासाकृमि, विषमूर्च्छा

---

[1] तत्र तल्पोत्थितेनासेवितः प्रतिमर्शोरात्रावुपचितं नासास्रोतोगतं मलमुपहन्ति मनः प्रसादञ्च करोति ।...... ......
सायंचासेवितः सुखनिद्रा प्रबोधंचेति । —सुश्रुत चिकि. ४० गद्य० ५२

[2] ईषदुच्छिङ्घतः स्नेहो यावद् वक्रं प्रपद्यते । नस्ये निषिक्तं तंविद्यात् प्रतिमर्श प्रमाणतः ॥—सुश्रुत चि. ४०-५३

[3] शृतशीत स्वरसादीनां पिचुनावपीडनादवपीडः । —आचार्य डल्हण टीका, सुश्रुत चि. ४०-२१

[4] १-स्नेहनस्यं नोपगिले त्कथंचिदपि बुद्धिमान् ।
शृङ्गाटकमभिप्लाव्य निरेति वदनात्तथा ॥
कफोत्क्लेश भयाच्चैनं निष्ठीवेद् विधारयन् । —सुश्रुत चिकि. अ. ४९ श्लोक २९ व ३०
२-निष्ठीवेन्न पिबेन्नस्यं व्यापदः पिबतस्त्विमाः ।
भवन्ति कासश्छर्दिश्च कुत्सान्ने वमथुस्तथा ॥ विदेहः ।

[5] चूर्णस्य मुखेननाआवा प्रध्मापन्तव् प्रधमनम् । —डल्हणाचार्य सुश्रुत चि. ४०-११

[6] १-चेतोविकारकृमिविषाभिपन्नानां चूर्णं प्रधमेत् ॥—सुश्रुत०
२-नाडी षडंगुलायामा द्विमुखी च तया धमेत् । त्रिश्चूर्णमुच्चुटीमात्रमेषप्रधमने विधिः (विदेहः)
—डल्हणटीका सुश्रुत चि. ४० श्लोक ४६

आदि रोगों में ६ अंगुल लम्बी दोनों ओर मुख वाली नली से तीन बार चुटकी भर सूक्ष्म चूर्ण नासा गह्वरों में फूंकें। यदि एक बार प्रधमन से ही लाभ हो तो उस दिन नस्य न देकर अग्रिम दिन क्रमशः विधिवत् शिरोविरेचनीय चूर्ण का प्रधमन करें। चूर्णों का उल्लेख नस्य प्रकरण के प्रारम्भ में कर दिया है।

दोषानुसार नस्य[1] काल—

विरेचन नस्य और स्नेहन नस्य दोनों प्रकार के नस्यों का प्रयोग बिना भोजन किये पूर्व प्रहर में श्लेष्म प्रधान रोगियों को, दोपहर में पित्त प्रधान रोगियों को और तृतीय प्रहर में वात रोगियों को स्नेहन नस्य देना चाहिए।

आचार्य वाग्भट ने नस्यकाल का विशेष[2] रूप से वर्णन किया है। स्वस्थ पुरुष को प्रथम प्रहर (पूर्वाह्न) में, शरद ऋतु और वसन्त ऋतु में भी पूर्वाह्न में नस्य प्रयोग करना चाहिए। शीतकाल में मध्याह्न अर्थात् दोपहर के समय, वर्षा में धूप निकलने पर तथा शिर में वायु का प्रकोप होने पर, हिचकी अपतानक स्वर भ्रंश और मन्यास्तम्भ रोगों में प्रातः तथा प्रतिदिन नस्य का प्रयोग करें।

अन्य रोगों में एक दिन छोड़कर नस्य का परिशीलन करें, सात दिन तक विशेष नस्यों का प्रयोग करते रहना चाहिए। इस प्रकार ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों को बढ़ने का अवसर नहीं मिलता, और नियमित नस्य प्रयोग से शनैः शनैः शान्त हो जाता है।

नस्य प्रयोग के लिए आयु सीमा—

सात[3] वर्ष से कम के बालकों को और अस्सी वर्ष से अधिक आयु वाले वृद्धों को नस्यों का प्रयोग वर्जित है, प्रतिमर्श नस्य के लिए विशेष रूप से विधान है जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त इसका प्रयोग कर सकते हैं, विधि के अपवाद या संशोधन भी आचार्यों ने तत्तत्स्थानों पर कहे हैं।

नस्य प्रयोग की विधि—

शिरो विरेचनीय[4] नस्य प्रयोग करने वाले रोगी को चाहिए कि वह टट्टी व पेशाव से निवृत होकर थोड़ा-हल्का स्वल्प मात्रा में पथ्य सेवन करे जिससे उत्क्लेश न हो। दन्त धावन, धूम्रपान से मुख व स्रोतों की शुद्धि कर, हाथ से गला, कपोल, माथे की मालिश कर, वायु धूप व धूल से रहित घर में चित्त लेटकर हाथ पैरों को फैला दे, शिर को थोड़ा नीचा कर आँखों को कपड़े से ढक लें पुनः बायें हाथ की तर्जनी अंगुली से रोगी के नासाग्र को उठाकर दाहिने हाथ से सुखोष्ण स्नेहनस्य को रुई के फाये या चम्मच आदि से नाक में डालें। इस नस्य स्नेह को सोना, चांदी, तांबा मणि या मिट्टी के पात्र में उष्ण जल के ऊपर रखकर हल्क गरम कर प्रयुक्त करें।

नस्य प्रयोग में सावधानी—

नाक में नस्य डालते समय शिर को न हिलावें,[5] क्रोध न करें, हँसना, बोलना व छींक लेना निषिद्ध है। निषिद्ध

---

१ तत्रैतद्द्विविधमप्यभुक्तवतोऽन्नकाले पूर्वाह्णे श्लेष्मरोगिणां मध्याह्ने पित्तरोगिणां, अपराह्णे वात रोगिणाम्॥
—सुश्रुत सं. चिकि. ४० श्लोक २४

२ स्वस्थ वृत्तेतु पूर्वाह्णे शरत्काल वसन्तयोः।
शीते मध्यन्दिने, ग्रीष्मे सायं वर्षासु सातपे॥
वाताभिभूते शिरसि हिध्मयामपतानके।
मन्यास्तम्भे स्वरभ्रंशे सायं प्रातर्दिने दिने॥
एकाहान्तर मन्यत्र, सप्ताहन्तु तदाचरेत्॥
—अष्टांग हृदय, सूत्र. अ. २० श्लोक १४ से १६

३ न नस्यमूनसप्ताब्दे नातीताशीतिवत्सरे।
—वाग्भट्ट सूत्र अ. २० श्लोक ३०

४ अथ पुरुषाय शिरोविरेचनीयाय त्यक्त मूत्रपुरीषायभुक्तवते व्यभ्रे काले ··· ···· ··· ···वातातप रजोहीने वेश्मनि ···· ···· ····दक्षिणहस्तेन स्नेहमुष्णाम्बुना प्रतप्तं···· ··· ····आसिञ्चेदविच्छिन्नधारं यथा नेत्रे न प्राप्नोति॥

५ स्नेहेऽवसिच्यमानेतु शिरोनैव प्रकम्पयेत्।
न कुप्येत् न प्रभावेच्च न क्षुयान्न हसेत्तथा॥
एतैर्हि विहतः स्नेहो न सम्यक् प्रतिपद्यते।
ततः कासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगद संभवः॥
—सुश्रुत चि. अ. ४० श्लो. २६, २७

कार्यों के करने से नस्य का उचित प्रयोग नहीं होता और नस्य विकृत होकर खाँसी, जुकाम शिर दर्द नेत्र रोग आदि रोग उत्पन्न कर देता है। प्रत्येक व्यक्ति को नस्य सूंतने के बाद १०० तक गिनती करने के समय तक चित्त लेटना चाहिए। इससे नासागत स्नेह स्रोतों[१] में प्रभावी हो जाता है[२]। नस्य प्रयोग के पश्चात्—तत्काल कान, माथा, शिर, कपोल, मन्या, कन्धे और हाथ पैरों के तलुओं को शनैःशनै मले तथा नस्य को ऊपर की ओर सूंतता रहे।

नस्य के योग[३] अतियोग और अयोग के लक्षण—नस्य के सम्यक् योग से शिर में हल्कापन, शमन व जागरण का सही होना, विकारों की शान्ति, इन्द्रियों की शुद्धि और मन प्रसन्न हो जाता है।

स्नेहन नस्य के अतियोग से—कफ का गिरना, शिर में भारीपन, इन्द्रियों में भ्रान्ति आदि हो जाते हैं, ऐसी स्थिति में रूक्ष उपचार करने चाहिए। अयोग अर्थात् नस्य का प्रयोग न करने पर वात की विगुणता, इन्द्रियों में रूक्षता और रोग का शान्त न होना, ऐसी स्थिति में पुनः नस्य का प्रयोग करना चाहिए जिससे विकारों की शान्ति हो जाय।

नस्य के अयोग्य[४] व्यक्ति—

भोजन करने के बाद, अपतृप्त, तत्काल उत्पन्न जुकाम वाले रोगी, गर्भिणी स्त्री, जल, मद्य व पतली वस्तु पीये हुए रोगी, अजीर्ण ग्रस्त, वस्ति लिए हुए, क्रोधी, गरविष से पीड़ित शोक व्याकुल, थके हुए, बालक, वृद्ध, वेगों को रोकने वाला शिर से स्नान करने की इच्छा वाले रोगियों को नस्य नहीं देना चाहिए, विशेषतः बिना ऋतु के बादल आ जाने पर नस्य क्रिया नहीं करनी चाहिए।

शिरोविरेचनीय नस्य में रोग—

दो प्रकार की व्याधियाँ[५] होती हैं, (१) दोषों के उत्क्लेश से और (२) क्षय से।

इन रोगों की चिकित्सा—

दोषों के उत्क्लेश से उत्पन्न रोगों में शमन व शोधन चिकित्सा करनी चाहिए, और क्षय से उत्पन्न रोगों में बृंहण (देह वृद्धि करने वाली) चिकित्सा[६] करनी चाहिए।

स्नेहन नस्य की मात्रायें—

शिरोविरेचनीय[७] नस्य की मात्रा ४ बूंद हीन मात्रा, ६ बूंद मध्य मात्रा और आठ बूंद उत्तम मात्रा अन्य...

---

१ १ पिचुनाथवा। दंतेपादतलस्कन्ध हस्त कर्णादिमर्दयेत्।

—अष्टांग हृदय सूत्र. अ २० श्लोक १९-२०

२ दंतमात्रे नस्ये कर्णललाट् केशभूमि गडमन्यास्कंधपाणिपाद तलानि-अनुसुखं मर्दयेत्० वृद्धवाग्भट्टः (डल्हणटीका)

—सु. चि. अ. ४० श्लो. २६, २७

२ नस्यान्ते च वाक्शतं तिष्ठेत्, उत्तानोवरमेततः॥

—अष्टाङ्ग हृदय २०-२२

३ तस्ययोगातियोगायोगानामिदं विज्ञानं भवति।
लाघवं शिरसोयोगे सुखस्वप्न प्रवोधनम्॥
विकारोपशमः·······रोगाशान्तिश्च तत्रेष्टंभूयोनस्यं प्रयोजयेत्॥

—सुश्रुत सं. चि. अ. ४० श्लो. ३२ से ३५

४ नस्येन परिहर्तव्यो भुक्तवानपतर्पितोऽत्यर्थं तरुणप्रतिश्यायी गर्भिणी······शिरःस्नानुकामश्च अनार्तवेचाभ्रे नस्य धूमौपरिहरेत्॥

—सुश्रुत सं. चि. अ. ४० श्लो. ४७

५ नस्ये शिरोविरेके च व्यापदोद्विविधाः स्मृताः।
दोषोत्क्लेशात् क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम्॥

—सु. चि. अ. ४० श्लो. ४९

६ दोषोत्क्लेश निमित्तांस्तु जयेत् शमन शोधनैः।
अत्रक्षय निमित्तासु यथास्वं बृंहणं हितम्॥

—सु. चि. अ. ४० श्लो. ५०

७ चत्वारो बिन्दवः षड्वा तथाष्टौवा यथा बलम्।
शिरोविरेक स्नेहस्य प्रमाणमभि निर्दिशेत्॥

—सु. चि. अ. ४० श्लो. ३६

स्पष्ट की जा चुकी है। यहाँ स्नेहन नस्य की तीन प्रयोज्य मात्राओं[1] का वर्णन है—

तर्जनी अंगुली के दो परुओं को डुबोकर टपकाई हुई आठ बूंदें (दोनों में ८-८ बूदें इस प्रकार १६ बूदें) यह हीन मात्रा है। मध्य मात्रा ३२ बूंदों की है और उत्तम मात्रा ६४ बूंदों की है, मध्यम व उत्तम मात्रायें दोनों नथनों में डालनी चाहिए प्रत्येक में नहीं।

नित्य तैल के नस्य का अभ्यास[2] करें—

आचार्य वाग्भट ने उत्तम तिल या सरसों के तेल को नस्य के लिए उत्तम बताया है, परन्तु जो व्यक्ति जिस तेल का रातदिन उपयोग करते हैं उनके लिए वही तेल सात्म्य या अनुकूल होता है। केवल शुद्ध तैल का ही नस्य के लिए अभ्यास करना चाहिए। इसी के प्रयोग से अनेक रोगों की निवृत्ति होकर इन्द्रियाँ सुदृढ़ स्वच्छ हो जाती हैं।

चरकोक्त अणुतैल का प्रयोग—

स्नेहन नस्य व नावन के लिए अणुतैल[3] को सर्वोत्तम कहा है, नस्य कर्म में जो व्यक्ति अणुतैल को नासिका द्वारा नियमित प्रयोग करता है, उसको नेत्र रोग, नासिका रोग एवं कर्णरोग वाधित नहीं करते, अणुतैल सेवी की आँख नाक व कान यावज्जीवन अपना कर्म करते रहते हैं। केश व दाढ़ी मूंछें सफेद व कपिश रंग की नहीं होती, सदा काली बनी रहती है बाल झड़ते नहीं हैं अपितु अधिक वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इस तेल के नस्य लेने से मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, अर्दित, हनुस्तम्भ, पीनस, अर्धावभेदक, शिर का कांपना, आदि रोग ठीक हो जाते हैं।

नावन विधि से सिंचित शिरायें, कपाल, शिरःसन्धियां, स्नायु और कण्डरायें सुदृढ़ व वलवती हो जाती हैं। मुख प्रसन्न व परिपूर्ण, स्वर गम्भीर, स्थिर महान होता है, अणुतैल के प्रयोग से समस्त इन्द्रियां निर्मल व वलवती हो जाती हैं, ऊर्ध्वजत्रु के रोग उत्पन्न नहीं होते। शिर व केश आदि में बुढ़ापा आक्रमण नहीं करता है।

महर्षि चरक ने अणु तैल की निर्माण विधि निम्न प्रकार से लिखी है—

चन्दनागुरुणी[4] मूत्रं दार्वीत्वङ् मधुकं बलाम् ॥
प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैलां विडङ्गं विल्वमुत्पलम् ॥
ह्रीवेरमभयांवन्यं त्वङ् मुस्तं सारिवां स्थिराम् ॥
सुराह्वं पृश्नपर्णीचजीवन्तीं च शतावरीम् ॥
हरेणुं बृहतीं व्याघ्रीं सुरभीं पद्म केशरम् ॥

अणुतैल निर्माण प्रक्रिया[5]—उक्त पद्यों में वर्णित नवीन औषधियों को ले जौकुट कर सौ गुने पानी में पकावें। पानी साधारण न लेकर उत्तम व शुद्ध आकाश जल होना चाहिए। जितना तैल वनाना हो उससे दस गुना काढ़ा शेष रखना चाहिए अर्थात् एक सेर तैल वनाना है तो दस सेर काढ़ा पकाने के वाद शेष बचावें। एक-एक सेर क्वाथ तेल

---

१ तस्य प्रमाणमष्टौ विन्दवः प्रदेशिनीपर्वद्वयनिःसृता प्रथमाः मात्राः, द्वितीयाशुक्तिः, तृतीयापाणिशुक्तिः, इत्येतास्तिस्रोमात्रा यथाबलं प्रयोज्याः। —सु. सं. चि. अ. ४० श्लो. २८

२ तैलमेव च नस्यार्थो नित्याभ्यासेन शस्यते ॥ —वाग्भट्ट सूत्र अ. २० श्लो. ३३

३ वर्षेवर्षेऽणुतैलञ्च कालेषु त्रिषु नाचरेत् ।
प्रावृट् शरद्वसन्तेषु गतमेघे नभस्तले ॥
नस्यकर्म यथाकालं यो यथोक्तं निषेवते ।
न तस्य चक्षुर्न घ्राणं न श्रोत्रमुपहन्यते ॥
न स्युः श्वेताः न कपिलाः केशाश्मश्रूणिवा पुनः ।
नच केशा प्रलुप्यन्ते वर्धन्ते च विशेषतः ॥
मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितं हनुसंग्रहः ।
पीनसार्धावभेदौ च शिरकम्पश्च शाम्यति ॥
शिराः ....जरा न लभते बलम् ॥ —चरक सं. सूत्र अ. ५ श्लोक ५४ से ६१

४ चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय ५ श्लोक ६१ से ६३

५ चरक संहिता सूत्र अ० ५ श्लोक ६४ से ६८

में डाल कर पकाते जांय। दसवें बार समान भाग बकरी का दूध भी डालकर पकावें, तेल शेष रहने पर उतार छान कर सुरक्षित रखें।

इस अणु तैल को फाये से भरकर नाक में डालें, यह तैल तीनों दोषों को दूर कर इन्द्रियों को बलवान बनाता है।

अपने अनुभव के आधार से—भगवान आत्रेय ने अपने शिष्य महर्षि अग्निवेश के लिए हजारों वर्ष पूर्व इस संहिता का उपदेश किया था। चरक संहिता का जो रूप हम देख रहे हैं यह कई बार लुप्त व खण्डित होने के बाद महर्षि चरक ने (वैशम्पायन महर्षि महाभारत कालीन का अपर नाम चरक था) इसे संस्कारित किया, पश्चात् पञ्चनदीय दृढ़बलाचार्य ने पुनः प्रति संस्कार किया है।

हजारों वर्ष पूर्व मनुष्यों का शक्ति सामर्थ्य व देह बल और आकार महान थे, महर्षि ने उनके लिए औषध मात्राओं का उपदेश किया था, आज के हीन सत्व व्यक्तियों के लिए औषध मात्रायें भी न्यून होनी चाहिये। महती मात्रायें लघु काय हीन बल मनुष्यों के लिए लाभ की अपेक्षा हानि पहुँचा सकती हैं।

अणुतैल की नावन विधि में अर्धपल[1] (२ तोले) की मात्रा उपयुक्त करने के लिए लिखा है, जो वर्तमान व्यक्ति के लिए अधिक प्रतीत होती है अतएव देहबल व सामर्थ्य के अनुसार मात्रा १ मासे से तीन मासे तक प्रयोग करनी चाहिये।

नस्य विधि का वर्तमान

आधुनिक युग में शनैः शनैः प्राचीन चिकित्सा प्रक्रियायें लुप्त होती जा रही हैं, जन साधारण में नस्य व नावन विधि के प्रति अभिरुचि नहीं, रोग प्रतिरोधक उपायों का भी तिरस्कार किया जाता है, रोग के भयङ्कर आक्रमण के समय हजारों रुपये और महिनों समय बड़ी-बड़ी परेशानियों के साथ खर्च किया जाता है, परन्तु आयुर्वेद के रोग प्रतिरोधक व रोगनाशक उपायों का अवलम्बन नहीं किया जाता।

वैज्ञानिक व्यवसाय, फैशन, चाकचक्य व सद्यः लाभकारी औषधों की मांग है, बाद में भले ही रोग दुगुना व चौगुना बढ़ कर आक्रमण करदें, परन्तु तत्काल वेदनाशान्ति होनी चाहिए।

स्नेहन नस्य व विरेचन नस्य आयुर्वेद की उन चिकित्साओं में से हैं जो रोगों को समूल नष्ट कर देती हैं और शीर्षगत इन्द्रियों में इतना बल आ जाता है कि रोग का आक्रमण ही नहीं होता।

आयुर्वेदीय चिकित्सक अपने-अपने अनुभव के आधार पर चूर्ण नस्य नानाविधि रोग निवारक औषधियों से प्रस्तुत करते हैं और रोगी को यथा काल छींक दिलाते हैं।

स्नेहन नस्यों में भी अणु तैल, षड्विन्दु तैल आदि तैल प्रायः वैद्य बन्धु प्रयुक्त करते हैं, स्वयं निर्माण की व्यवस्था न होने से प्रत्येक वैद्य नस्य चिकित्सा की उपेक्षा करता है। जिन फार्मेसियों ने उक्त तैलों का निर्माण भी किया है, वैद्यों की उपेक्षा के कारण वे बिकते नहीं। इस प्रकार आयुर्वेद की विश्वजनित बहुमूल्य निधि लुप्त होती जा रही है, जो आयुर्वेद प्रेमियों के लिए विचारणीय है। वैद्यों को लोकोपकार की भावना से नस्य की प्राचीन धरोहर का प्रचार करना चाहिए।

अपना अनुभव—दैनिक चिकित्सा के अवसर पर अपनी सदाशा को प्रत्यक्ष करने के लिए षड्विन्दु तैल का स्वयं विधिवत् निर्माण कर शिरोरोगों पर अनेक बार अजमाया, शिर का दर्द, मस्तिष्क शूल, आधा शीशी, अर्धावभेदक, बिगड़ा हुआ जुकाम व इसके अनेक उपद्रव, नासाकृमि, नासागूथ, पीनस, नासाव्रण, नाक की रूक्षता व कफ की रुकावट तथा शुष्कता सभी दूर हो गये। नियमपूर्वक निरन्तर प्रातः सायं नासिका छिद्रों में ६-६ बूंद तक षड्बिन्दु डलवाया किसी रोगी को शीघ्र लाभ हो जाता है किसी को बिलम्ब से, परन्तु लाभ अवश्य होता है। महीने दो महीने अवश्य डालें।

यही नहीं षड्विन्दु तेल के प्रयोग से गले की सूजन टान्सिल्स् (गलशालूक शोथ), काकल विकार, स्वरभेद, मुखरोग भी दूर हो गये। कान में ६-६ बूंद डालने से कर्णशूल, कर्णक्ष्वेड, कर्णकृमि आदि नष्ट हो गये। इस तेल को

---

[1] अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत तैलस्यार्धपलोन्मिताम्।
स्निग्धस्विन्नोत्तमाङ्गस्य पिचुना नावनैस्त्रिभिः।
त्र्यहात् त्र्यहाच्च सप्ताहमेतत्कर्म समाचरेत्॥
—चरक संहिता सूत्र० अ० ५ श्लोक ६६-६७

नाक के नथनों में नियमित डालने से नेत्र रोगों में लाभ होता है और नजले से रोगग्रस्त नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं तथा नेत्र ज्योति शुद्ध व सबल हो जाती है। शिर के बाल झड़ने बन्द हो जाते हैं। स्मरण शक्ति बढ़ जाती है। यह अत्युक्ति नहीं है, अनुभव है।

अणुतैल भी (धूतपापेश्वर कम्पनी का) रोगियों पर अजमाया, उपर्युक्त गुण इसके प्रयोग से भी दृष्टिगत हुए, कुछ रोगियों ने उक्त तेलों का नियमित दैनिक प्रयोग प्रारम्भ कर दिया, कुछ ने आकस्मिक।

नासिका द्वारा घृत दुग्ध का प्रयोग—

कई रोगियों को नाक में शुद्ध घृत सूंतवाया कई को कदुष्ण फीका दूध पिलवाया। बहुत काल तक प्रयोग करने से इनकी नेत्रज्योति बुढ़ापे तक ठीक रही, चश्मे की आवश्यकता नहीं पड़ी। कुछ रोगियों को आधी रत्ती केशर मिश्रित शुद्ध घृत नाक में डाला, आधी रत्ती कपूर मिश्रित घृत सूंतवाया, इनका जुकाम शिर दर्द, नजला आदि सभी ठीक हो गये। ये सारे प्रयोग नस्य के अन्तर्गत हैं।

नासिका द्वारा जलपान—

कुछ रोगियों को सदा जुकाम रहता था। इससे शिर दर्द व मस्तिष्क दौर्बल्य हो गया, आंखों की रोशनी भी कम हो गई। मैंने उनको नासिका द्वारा कदुष्ण ४ रत्ती सैन्धव मिला जल नाक से पिलाया, सभी रोगों में लाभ हुआ। इसके प्रयोग में प्रथम कुछ कष्ट होता है पश्चात् अभ्यास से कोई परेशानी नहीं होती। नमक व कदुष्ण जल का प्रयोग भी धीरे-धीरे छूट जाता है, साधारण ताजा जल ही प्रयुक्त होता है।

चरक[1] संहिता में शिरोरोगों पर—

नस्य व नावन विधि का सफल प्रयोग लिखा है। पैत्तिक, कफज[2] व वातिक शिरो रोगों में नस्य आशातीत लाभ करता है। कृमिज[3] शिरो रोग में भी शिरोविरेचन देने से पूर्ण लाभ होता है। अन्य रोगों में भी चरकोक्त नावन विधि सिद्ध चिकित्सा है।

अन्य आयुर्वेद ग्रन्थों में—

योगरत्नाकर[4] में शिरो रोगों पर अनेक नस्यों का उल्लेख है। भावप्रकाश, भैषज्य रत्नावली आदि अनेक ग्रन्थों में शिरो रोग पर स्नेहन तथा शिरोविरेचन नस्यों का प्रयोग लिखा है। यहाँ विस्तारभय से सभी नस्यों का उल्लेख नहीं किया जा रहा है। कुछ अनुभव में आये नस्यों की विवेचना की है।

शास्त्र पद्धति के अनुसार सभी प्रकार के नस्यों का सलक्षण प्रतिपादन सूक्ष्म रूप में किया गया है। शास्त्र मर्यादा का परित्याग न करते हुए आयुर्वेद महर्षियों व आचार्यों के उपदेशों का आदर करते हुए जो कुछ नस्य विधि का अध्ययन किया है, उसे सर्वजन हिताय विशेषतः परीक्षोत्तीर्ण वैद्यों के अनुभव व अभ्यास के लिए यह मार्ग दर्शन किया है। आशा है आयुर्वेद जगत् इस स्वल्प प्रयास से लाभान्वित होगा।

—वैद्य श्री रणवीरसिंह शास्त्री आयु०, विद्याभास्कर,
एम. ए., पी. एच डी.,
वेद आयुर्वेद-व्याकरण-साहित्याचार्य
अध्यक्ष—जिला वैद्य सभा,
आगरा (उ० प्र०)

—०—

१ कार्योऽवपीडः सर्पिश्चनस्यं तस्मात्तु पैत्तके। —चरक चि. शिरोरोग २६-१७८

२ कफजे स्वेदितं धूमनस्य प्रधसनादिभिः। —चरक शिरो. चि. २६-१८०

३ कृमजे चैव कर्तव्यं तीक्ष्णं मूर्धविरेचनम् ॥ —चरक चि. शिरोरोग २६-१८३

४ १ ...... तैलं नस्यान्मरुच्छ्लेष्म तिमिरोर्ध्वगदापहम् ॥ —योगरत्नाकर शिरोरोग ८ श्लोक

२ नस्यं मस्तकशूलनुत।

३ ...... नस्येन योजितं नृणाम्। —योग रत्नाकरशिरोरोगाधिकार

चरक की नस्य चिकित्सा

कविराज श्री हरिकृष्ण सहगल
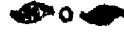
नस्य का वर्णन, नासा वर्णन के बिना कुछ नहीं और नासा का वर्णन मस्तिष्क परिचय से अलग कुछ भी नहीं। नस्यों के कई प्रकार हैं और वह कैसे कहाँ प्रभाव करती हैं इसके लिए मस्तिष्क और नासा रचना की जानकारी उपस्थित की जाती है। किसी वस्तु को नासा द्वारा अन्दर खींचना नस्य कहलाता है।

मस्तिष्क शरीर की जटिल संचार व्यवस्था का केन्द्र है। नासिका घ्राणेन्द्रिय है, घ्राण का केन्द्र मस्तिष्क में ललाट के पीछे, नासा के बांसे के ऊपर है। महर्षि भेल के अनुसार मस्तिष्क मज्जा, मन का स्थान है। यहीं से मन दस इन्द्रियों का नियंत्रण करता है और इन्द्रियों से प्राप्त सूचनाये आत्मा को देता है और आत्मा के आदेश इन्द्रियों को पहुँचाता है। शिर की त्वचा को अंग्रेजी में Dura कहते हं। खोपड़ी चार अस्थियों से बनी होती है। इस खोपड़ी के अन्दर आवरणों में लिपटी मस्तिष्क मज्जा है। मस्तिष्क के तीन भाग हं—बृहत् मस्तिष्क, लघु मस्तिष्क और सुषुम्ना शिर। बृहत मस्तिष्क मज्जा श्वेत है और इसके दो गोलार्द्ध हैं। दाया गोलार्द्ध सूचनायें सचित करता है, बांया गोलार्द्ध तर्क वितर्क और निश्चय करता है। वहीं से शरीर अंगों का सचालन होता ह। लघु गोलार्द्ध भूरी मज्जा से बना हैं। इसका कार्य ठीक असिस्टैण्ट का है, यह सुषुम्ना द्वारा प्राप्त सूचनाओं को बृहत मस्तिष्क तक और बृहत मस्तिष्क के आदेशों को सुषुम्ना तक पहुँचाता है और सुषुम्ना शिर एक टर्मिनल पंचायत है। यहां से नर्वस सिस्टम (वात सस्थान) की वालन्टरी (एच्छिक) और अन वालन्टरी (अनैच्छिक) स्नायु सारे शरीर के प्रत्येक भाग तक जाते ह। शरीर की कोई भी कोषा नहीं जिससे यह न जुड़ी हो। आज्ञावहा तथा चेष्टावहा स्नायु तारों में निरन्तर कुछ न कुछ होता है। यह सुषुम्ना से निकलने वाले ३१ जोड़ों द्वारा होता है। इन्द्रियों का कार्य मस्तिष्क से स्नायु नाड़ियों के निकलने वाले वारह जोड़ों द्वारा होता है। त्रिधारा नाड़ी भी इनमें से एक है। मस्तिष्क, सुषुम्ना और स्नायु-तारें मनोवह स्रोत हैं।

मस्तिष्क में केवल स्नायु कोषायें ही नहीं रहतीं, जितना बड़ा इनका जाल है, उतना ही बड़ा रक्त कोशिकाओं का भी जाल है। स्नायु कोशिकायें जो इतना काम करती हैं उन्हें शक्ति के लिये औक्सीजन प्राण वायु और ग्लूकोज की आवश्यकता होती है और वह रक्त कोशिकाओं में घूमने वाले रक्त द्वारा मिलती है। रक्त के रक्तकण फुफ्फुसों में जाकर प्राण वायु लाते हैं और स्नायु तारों से प्राप्त उदान वायु कार्बन डाईआक्साइड श्वास मार्ग द्वारा त्यागते हैं। प्रकृति ने मस्तिष्क में रक्त की अधिक मात्रा की आवश्यकता देखते हुये प्रबन्ध कर रखा है कि हृदय मस्तिष्क में अपने रक्त का पांचवां भाग फैंकता है। मस्तिष्क रक्त ६ सैकिण्ड में वदल जाता है। वह एक मिनट में दश वार वदलता है। मस्तिष्क में जब रक्त मात्रा बढ़ जाती है व कम हो जाती है, मस्तिष्क रक्त जब शीघ्र-शीघ्र वदल नहीं पाता तो उसमें त्रिदोष प्रकुपित हो जाते हैं। अहित अमित भोजन से जब आमाशय बिगड़ता है, आतें बिगड़ती हैं, तो दोष प्रकुपित होकर रसाश्रय हो जाते हैं। रक्त के माध्यम से यह प्रकुपित दोष मस्तिष्क में प्राप्त होकर रक्त कोशिकाओं में रुकें तो वहां और जो स्नायु नाड़ियों में रुकें तो वहां दोषों को प्रकुपित कर मस्तिष्क रोगों को उत्पन्न कर देते हैं। इनके प्रकोप से कभी स्नायु नाड़ियां और कभी रक्त कोशिकाओं में उत्तेजना होती है और कभी वह मन्द हो जाती है। मस्तिष्क के स्नायु नाड़ियों के वारह जोड़ों का कार्य रुक जाता है, इन्द्रियां रोग ग्रस्त हो जाती हैं। मस्तिष्क रोगों के लक्षण उपस्थित हो जाते हैं। जैसे ज्वर में पसीना, मल और मूत्र रुकने से विष उत्पत्ति होती है प्रकुपित दोषों से विष और अनेक रोगों के उत्पादक जीवाणु (वायरस) पैदा हो जाते हैं, मानव बीमार हो जाता है। महर्षियों ने मस्तिष्क दोषों और उनके

कोप और शान्ती पर भी विचार किया था आचार्य रक ने कहा है। 'नासा ही शिरसो द्वारः।' आचार्य ल्हण ने नासा को भी प्राण स्थान माना है।

ासा ही शिरसो द्वार—

नासा रचना

नासा का अग्रभाग एक तरुणस्थि से बना है। और लाट से जुड़ा भाग, दो अस्थियों से निर्मित है। नाक और स्तिष्क की सन्धि में झरझरा नाम की अस्थि है, नासा टल की तरुणास्थि नासा को दो भागों में विभक्त करती , नासा की पार्श्व दीवार का अन्तर भाग सीपिया नाम ी दो तरुणास्थियों से बना है और नासा के अन्तर तल र श्लैष्मिक कला चिपकी हुई है।

नासा गुहा—नासा में ३ गुहा हैं। यह आरम्भ में चौड़ी ौर अन्त मे संकुचित हैं। इस गुहा प्रदेश को नासाखात हते हैं। यह तीनों एक दूसरे से छिद्रों द्वारा मिली हुई । अन्तिम सुरंग मस्तिष्क में जतुकास्थि व झरझरास्थि बनी है। मस्तिष्क द्रव का स्राव नासा में झरझरास्थि से ोता है। झरझरास्थि एक प्रकार का मस्तिष्क का प्रथम ार है। आचार्य चरक को शरीर रचना का पूर्ण प्रत्यक्ष ान था, नहीं तो वह नासा को मस्तिष्क द्वार न कहते। श्रु और कर्ण नालियां इन्हीं में खुलती है। इनमें अन्य स्तिष्क के वायु कोटर इनमें खुलते हैं। अक्षिगोलक ्रा कपालिक और हन्वस्थि वायु कोटरों के मध्य में हैं। ांखों से अश्रुओं का नासा में आना—कर्ण नाली से द्रव ा नासा में पहुँचना और मस्तिष्क द्रव का नासा में प्राप्त ोना, इन वायु कोटरों की वायु के दवाव के आश्रित है। स्तिष्क की उदान वायु का कुछ भाग भी इन वायु कोटरों ं प्रविष्ट होता है। मस्तिष्क की प्राण वायु और व्यान ायु इन वायु कोटरों की वायु से सहायता लेती है, छींक ाते समय इन कोटरों की वायु का भी इसमें योगदान हता है। छींक के समय नासा से वेगवान वायु निकलती । नस्य के प्रभाव—इन कोटरों की वायु के भी आश्रित । छींक से निकलने वाली वायु की रफ्तार ६०-७० ील प्रति घण्टा की होती है। मस्तिष्क स्नायु, मस्तिष्क में टके उत्पन्न करते हैं और उनसे छींक आने लगती हैं। स्तिष्क जब अपना शोधन करना चाहता है, वह एकत्रित मलों को त्यागना चाहता है, रक्त परिभ्रमण जब उसे ठीक करना होता है व किसी स्रोत को कोई रुकावट दूर करनी होती है तो वह झटके उत्पन्न करता है और छीके आने लगती हैं, शिरो रोगों में नाक में दी गई नस्य स्नायु तारों में उत्तेजना उत्पन्न कर झटकों का आरम्भ करती है। और मस्तिष्क के विष व अनावश्यक द्रव छींके आकर प्रतिश्याय रूप में निकलने लगते हैं। नस्य मस्तिष्क रोगों की चिकित्सा है। चरक कहते हैं मस्तिष्क मज्जा (मस्तुलुंग) में दोष प्रकोप से नजला बनता है और वह प्रतिश्याय रूप में नासा द्वार से निकलता है। चरक ने शिरोविरेचन नस्य, अवपीड़न नस्य, प्रधमन नस्य, स्नेहन नस्य के नाम से नस्यों का वर्णन किया है। अब आप नासा अन्तर तल पर चिपकी और मस्तिष्क वायु कोटरों में फैली श्लैष्मिक कला के विषय में जानकारी प्राप्त करें।

श्लैष्मिक कला के पृष्ठ पर कोषाणुओं में लोमवत अंकुर (Cilia) होते है। यहीं पृष्ठ पर एक छोटा सा मांस होता है। उससे दो रोम निकले होते हैं। श्लैष्मिक कला से श्लेष्मा को निकालने के लिए यह हिलते रहते हैं और उसे द्वार की ओर धकेलते रहते हैं। इसी श्लेष्मा में नन्हीं-नन्हीं ग्रन्थियों का एक जाल होता है। मस्तिष्क मल, रक्त माध्यम से श्लेष्मा में आकर इन्हीं ग्रन्थियों द्वारा स्रवित होते हैं। श्लेष्मा के मांस और ग्रन्थियां मस्तिष्क के सप्लाई कर्मचारी हैं। नस्य श्लैष्मिक कला में प्राप्त श्लेष्मा को बाहर फैंकने में हिलाने वाले रोमों की सहायता करती है।

वैरेचन नस्य—म० बुद्ध चिकित्सक आचार्य जीवक ने एक बार कमल पत्र पर कोई द्रव लगाकर बुद्ध को सुंघाया था। इससे उन्हें १० विरेचन हुये थे परन्तु यह ज्ञान आचार्य जीवक के साथ समाप्त हो गया।

शिरोविरेचन नस्य—

१. सहजना बीज चूर्ण नस्य- शिरोरेचन करती है अर्दित पक्षाघात में लाभ होता है मस्तिष्क मज्जा, शोथ, विद्रधि व रक्त के थक्के को निकालने के लिये इसका उपयोग करें। बीजों की पोटली बांधकर तवे पर गरम कर उसका धुवां सूंघना अधिक उपयोगी है। मस्तिष्क शोथ-विद्रधि के नाशार्थ आचार्यो ने योग लिखा है—गूगल, बच, मैनफल, शिलाजीत, हल्दी, आम्बा हल्दी, नीम पत्र और

शहद को अंगारों पर डालकर रोगी को धूनी दें। यह आयुर्वेद का एक चमत्कारी योग है। औषधियाँ गुणों में शोथनाशक और स्रोतशोधक हैं। रक्त के विषैले थक्कों को अवलीन करने की इनमें शक्ति है। गुरु ने क्या सुन्दरता से इनके उड़नशील सूक्ष्म तत्वों को (वायु और अग्नि तत्वों को) मस्तिष्क में नस्य द्वारा पहुँचाया है ? धूनी भी नस्य का एक प्रकार है। इससे नासा वायु कोटरों में जमी श्लेष्मा और रुकी वायु निकल जाती है।

२. सिरस का ठीक नाम शिरस है। जब सिरस के फूल खिले हों, इसके पेड़ के नीचे खाट बिछाकर शिरोरोग से पीड़ित को लिटा दीजिए। इसके फूलों की सुगन्ध से रोगी स्वस्थ हो जायेगा। सिरस बीजों की नस्य। शिरो रोगों की बढ़िया दवा है। शिरोरेचन कर यह लाभ करती है। इससे भी वायु कोटरों का शोधन होता है। वायु कोटरों में त्रिदोष प्रकोप से संकोच हो जाता है। यह उस संकोच को दूर करती है।

३. सिरस की जड़ तथा बीज, मूली के बीज पानी में पीसकर इसे कपड़े में लेकर रोगी को लिटाकर उसकी नासा विवरों में ५-५, ६-६ बूंद निचोड़ें। इसे अवपीडन नस्य कहते हैं। जब अंगारों पर डालकर धुंआ रोगी को दिया जाता है तो उसे धूम नस्य कहते हैं।

२. कृमिज शिरःशूल—त्रिकुटा, करंज बीज, सुहांजना बीज को बकरी के मूत्र में घोटकर, रुई व कपड़ा भिगोकर नाक में टपकावें (अवपीडन नस्य)। यह नासा द्वार दोषों की चिकित्सा है। इससे बिगड़े नजला की सफाई होती है कृमि नाश होता है।

नोट—कृमिज शिरःशूल में प्रथम रोगी नासा में ताजा गरम-गरम कपोत व मुर्ग रक्त डालना चाहिए। इससे कृमि मूर्च्छित हो जाते हैं और रक्त गंध से कहीं भी छिपे हों बाहर आ जाते हैं। इसके बाद नाक में तुलसी पत्र स्वरस, विडङ्ग तैल, नीलिगिरी तैल और कई वैद्यों के मत में तारपीन तैल नाक में डालना चाहिए, इससे कृमि मर जाते हैं। अथवा विडङ्ग बीजों को बकरी के मूत्र में पीसकर इसकी नस्य दें। विडङ्ग बीजों की धूम नस्य भी लाभ करती है। नीम बीज तैल-रीठा १०० ग्राम, नीम बीज १०० ग्राम, तिल तैल ५०० ग्राम को सिद्ध कर कृमिज शिरःशूल में नाक में डालें। इसी प्रकार हरिद्रा को अंगारों पर डाल उसकी धूम नस्य कृमियों के लिए दी जाती है।

विडङ्ग तैल—वायविडङ्ग, सज्जी, दन्ती, हींग, गोमूत्र को सरसों तैल में पाक करके इसकी नस्य दें।

प्रधमन नस्य—

किसी नाली में नस्य द्रव्य को भरकर फूंकमारकर नाक में प्रविष्ट करना। श्वेत कनेर की पत्तियां लाकर, छाया में सुखा लें। पीस लें, दर्द जिस ओर हो, उसी ओर के नथुने में २ चावल नस्य फूंक दो। कनेर की नस्य बहुत प्रशस्त मानी जाती है। श्वेत कनेर के ७ पत्र लेकर, पानी में पीसकर एक छटांक तैल सरसों में पाक करलें। नाक में ४-४ बूंद डालें। नाक का मस्सा, हड्डी का बढ़ना, नाक से छिछड़ा या डोरीदार श्लेष्मा निकलना दूर होते हैं। कनेर का प्रभावी अंश तैल में मिला हुआ मस्तिष्क मज्जा (मस्तुलुंग) में पहुँच जाता है।

चावलों को अर्क दुग्ध में भावित कर और पीसकर नस्य बना लें। इसकी नस्य लेने से नाक खुल जाता है। नाक में जमा रेशा छींक आकर खुल जाता है। नाक की श्लैष्मिक कला की सफाई हो जाती है।

रक्तपित्त—ऊँट के बालों को जलाकर प्रधमन नस्य लेना, नकसीर का रक्त बन्द करता है।

उन्माद—गन्ने का रस, कुटकी, दूध, शक्कर समभाग मिलाकर इसकी प्रधमन नस्य दें। कुटकी और गन्ने का रस यकृत शोथ को ही दूर नहीं करते, नाक के अन्दर की विद्रधि, मस्सा और मस्तिष्क की शोथ विद्रधि में भी लाभ करते हैं।

शिरःशूल—श्वासकुठार रस की प्रधमन नस्य दें। श्वास कुठार रस फुफ्फुसों की वायु नालियों को ही नहीं खोलता, यह नासा के वायु मार्ग को भी खोल देता है। यही प्रभाव अदरख का रस १ ग्राम, तुलसी स्वरस १ ग्राम, मिर्चकाली ४ रत्ती के मिश्रण की नस्य से भी होता है। श्लैष्मिक कला की सफाई हो जाती है। पीपल और सेंधानमक की नस्य भी यही कार्य करती है।

अनन्त वात—मिश्री, केशर, दाख को समभाग लेकर १/४ भाग माखन मिलाकर प्रधमन नस्य दें। मस्तिष्क

मज्जा का स्नायु जाल, मनोवाही स्रोत अवरोध दूर होकर आराम हो जायेगा। पीयूष ग्रन्थि के स्राव संतुलित हो जायेंगे। मस्तिष्क की नाड़ियों के बाहर जोड़ों की शाखाओं की उत्तेजना शान्त हो जायेगी। केशर को घी में भूनकर और मिश्री मिलाकर नस्य देने से भी यही प्रभाव होता है। मस्तिष्क के संकोच दूर होते हैं। केशर के बिना दूध मिश्री मिलाकर देना भी यही लाभ करता है। कष्ट साध्य शंखिक शिरोवेदना की भी यही चिकित्सा है। गौघृत व दूध की नस्य दीजिये। वच और पीपल को पीसकर, अनन्तवात में नस्य दें। वच का विशेष महत्व है।

षड्बिन्दु तैल योग--एरण्डमूल, तगर, रास्ना, विडङ्ग आदि औषधियाँ, भांगरा, स्वरस और बकरी का दूध इसमें होते हैं। मस्तिष्क के स्नायु केशिकाओं, रक्त केशिकाओं का तनाव, नासा के वायु कोटरों का संकोच दूर होते हैं। नासा द्वार से मस्तिष्क श्लेष्मा और रुकी वायु का निकास होकर आराम होता है। मज्जा के स्नायु तारों–मस्तिष्क की स्नायु नाड़ियों के जोड़ों-विधारा नाड़ी की शाखाओं सभी में आराम के लिए रास्नादि तैल व बला तैल की नस्य दीजिये। रीठा की झाग उठाकर व रीठा को सिल पर पानी में घिसकर, उसकी नस्य देना सर्व मस्तिष्क विकृतियों और नासा रोगों में लाभ करता है। यह रोगों को धो देता है। घघरबेल (बन्दाल डोडा) को पानी में भिगोकर नाक में डालना मस्तिष्क की रक्त केशिकाओं में अटके विदग्ध पित्त का शमन करता है।

स्नेहन नस्य—

घृत, दूध तथा तैल वाली सभी नस्यें स्नेहन नस्य हैं। मस्तिष्क मज्जा के स्नायु तारों व रक्त केशिकाओं में वात पित्त दोष से और कभी केवल वात प्रकोप से शुष्कता हो जाती है। स्नेहन नस्य उसे तर करने के लिए दी जाती है और कभी नासा मार्ग के वायु कोटरों में श्लैष्मिक कला सूख जाती है तो उसे दूर करने के लिए भी दी जाती है।

तंद्रमा नस्य—

तन्द्रा मस्तिष्क मज्जा में शोथ, विद्रधि व रक्त के थक्के से उत्पन्न होती है। अनन्तवात, अर्द्धावभेदक और शंखक शिरोवेदना भी इसका कारण बन जाती है। सूर्यावर्त में जिस ओर वेदना हो दूसरी ओर के नासा विवर में हींग को पानी में घोलकर डालें। अगर तन्द्रा में लाभ न हो तो हींग को लशुन स्वरस में घोलकर नाक में टपकावें। लशुनरस को मधु व घृत में मिलाकर भी नाकमें डाला जाता है। कस्तूरी का सुंघना भी तन्द्रमा नस्य है। अमोनिया सुंघाना व चूना, नृसार मिलाकर सुंघाना भी तन्द्रमा नस्य है। कपूर को घी में पीसकर भी सुंघाया जाता है।

बृंहण नस्य—

सुश्रुत के अनुसार मस्तिष्क मज्जा मस्तुलंग है। वाग्भट्ट मस्तुलुंग को मेद से निर्मित मानते हैं और कहते हैं कि शिर ही शरीर की जड़ है। नस्य द्वारा खैंचा हुआ स्नेह मस्तुलंग में संचित हो जाता है। जब मस्तिष्क मज्जा की स्नायु कोष निर्बल हो जाती हैं, उनमें मेदांश कम हो जाता है तो मनुष्य को मानसिक रोग पकड़ लेते हैं। बृंहण नस्य का कार्य मेदांश पूर्ति तथा स्नायुकोषाओं की पुष्टि है।

जीवनीय गण से साधित घृत से बृंहण नस्य दी जाती है। अग्निवेश के समय में स्नेहों की संख्या चार नहीं नौ थी। मस्तिष्क मज्जा एक स्नेह था मज्जा स्नेह नस्य बृंहण नस्य है। ज्योतिष्मती तैल, बादाम तैल की नस्यें बृंहण नस्यें है, चरक ने प्रत्येक नस्य का समुचित वर्णन किया है। मस्तिष्क रोगों में उचित नस्यों का प्रयोग कर वैद्य चिकित्सा चमत्कार दिखा सकते हैं। सूर्यावर्त में बृंहण नस्य अधिक लाभ करती है।

—कवि० श्री हरिकृष्ण सहगल
सदर थाना रोड, दिल्ली।

संसार में प्राणिमात्र के लिये नेत्रों का महत्व सम्पूर्ण देह के महत्व से कम नहीं है। इसलिये आयुर्वेद शास्त्रों ने नेत्र सुरक्षा के लिये अनेक उपचार बताये हैं। दृष्टि की रक्षा के जहां अनेक उपचार बताये है वहाँ यदि नेत्र रुग्ण हो जावें तब उसके लिये भी चिकित्सा भरपूर लिखी गई है।

अंजन-भेद—

नेत्रों की रक्षा के निमित्त आचार्यों ने अंजन का प्रयोग आवश्यक माना है। आँखों को अंजन के लिये जिस वस्तु का प्रयोग होता है उसे अंजन कहते हैं। यह अंजन पांच प्रकार के होते हैं—(१) सौवीराञ्जन (२) रसांजन (३) स्रोतांजन (४) पुष्पांजन और (५) नीलांजन। सौवीराञ्जन धुएं का संग्रह है। रसांजन एक वृक्ष का स्राव है, स्रोतांजन पीले रंग का होता है, पुष्पांजन श्वेत, नीलांजन नीला होता है। ये अंजन आयुर्वेद सम्मत हैं। परन्तु कालिका पुराण के अनुसार यह ६ प्रकार का माना गया है। (१) सौवीर (२) जम्बल (३) मयूर (४) श्रीकर (५) रत्ना (६) मेघ-नील। स्थूल तौर पर इन पाँचों तथा छहों अंजनों का समन्वय हो सकता है।

अंजनों का सामान्य कार्य नेत्रों के मल को दूरकर नेत्रों की व्याधियों को मिटाना है। ये तीन रूपों में उपलब्ध हैं—(१) रस (२) वटी (३) चूर्ण-इनमें रस अधिक शक्तिशाली, वटी कम तथा चूर्ण उससे कम शक्तिवाला (Potency) माना गया है। रस के योग से बना अंजन अधिक शक्तिशाली, रस और औषधि द्रव्यों के क्वाथ या रसों के द्रव्यों से निर्मित वटिकाओं की शक्ति द्वितीय श्रेणी में आती है तथा तृतीय श्रेणी में औषध द्रव्यों के और कहीं-कहीं इनके साथ मिश्रित रसादि के चूर्ण को लेते हैं।

उपरोक्त तीनों ही रूप के अंजन अपनी कार्य शक्ति के अनुसार तीन प्रकार के माने गये हैं। (१) लेखन (२) रोपण (३) स्नेहन। लेखन क्षार (तीक्ष्ण) शोरा, मिर्च आदि तथा अम्ल (नीबू) द्रव्यों के योग से तैयार होते हैं। नेत्र वर्त्म, शिराजाल, स्रोत, शृङ्गाटक आदि में स्थित विकार को मिटाने के लिए इनका प्रयोग होता है। इनके आँखों में लगाने से दोष मुख, आँख, नाक के रास्ते से स्रवित होकर निकल जाते हैं। रोपक अंजन कषाय (हरीतकी), तिक्त (निम्ब) और स्नेह युक्त (घृत, तैल) द्रव्यों से निर्मित होते हैं। इनके प्रयोग से आँखों की गर्मी दूर होती है, दृष्टि बढ़ती है तथा नेत्र पुष्ट होते हैं। स्नेहांजन मधुर द्रव्य जैसे मधु, तथा स्नेह जैसे घृत (गोघृत) के योग से तैयार किया जाता है। ये अंजन दृष्टि दोष को मिटाने के लिए और नेत्रों को सुस्नेह्य (चिकना) करने के लिये और नेत्र प्रसादन के काम में आते हैं।

वर्ति प्रमाण—

सामान्यत: अंजनों का प्रयोग देश काल की दृष्टि से सर्व प्रयोज्य है। आकार की दृष्टि से इनके ४ प्रकार हैं—(१) वटी (२) वर्ति (३) चूर्ण (४) विन्दु। वटी का आकार गोल होता है तथा बदरी प्रमाण या इससे कुछ बड़ा हो सकता है। वर्ति का आकार लम्बा होता है तथा इन्द्रयव जितनी या इससे कुछ बड़ी बनाई जा सकती है। चूर्ण (Powder) होता है जो खरल कर सूक्ष्मतर बनाया जाता है। विन्दु परिस्रुत जल, गुलाब जल या गगोदक में बनाया जाता है। प्रयोगार्थ इसकी मात्रा १ बूँद या २ बूँद होती है। उपरोक्त सभी प्रकार के आकारों को बनाने के लिए सूक्ष्म द्रव्य में स्वरस, क्वाथ या अन्य जलीय घटक की भावना दी जाती है तथा इस प्रकार मर्दन कर इसे सूक्ष्म-

तर या सूक्ष्मतम बनाया जाता है जिससे आँखों में जाकर यह रड़क या खटक पैदा न करे। बिन्दु बनाते समय घुलनशील द्रव्य तो अपनी उचित मात्रा में उसमें घुल जाता है तथा शेष बचे हुए गाद को (गाढ़े द्रव्य) एक फिल्टर पेपर या ऊन के गाढ़े कपड़े से छानकर प्रयोग में लिया जाता है।

रसक्रिया प्रमाण—

रस क्रिया दो प्रकार की मानी गई है। इनकी विधि पाठकों के समझाने के लिए यहाँ प्रथक-प्रथक लिखी जा रही है।

प्रथम विधि—काष्ठ औषधियों को कूटकर यवकुट कर लें। फिर इस चूर्ण को चार गुने पानी में रात्रि में भिगो दें। १२ घण्टे या अधिक चौबीस घण्टे (औषधियों की कठोरता या मृदुता के अनुसार) भिगोकर मन्दाग्नि पर वर्तन का मुख बन्दकर उबालें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर अग्नि से नीचे उतार कर उसे छान लें। फिर उस छने हुए क्वाथ (रस) का पाक करें और धीरे-धीरे ध्यान-पूर्वक चलाते रहें। रबड़ी के समान गाढ़ा घन सा बन जावे तब नीचे उतार लें। शीतल होने पर इस घन से चतुर्थांश मधु मिलाकर खुले मुँह की शीशी या अमृतवान में रखलें। वंगसेन ने मधु के साथ मिश्री दोनों ही समान भाग ८-८वां हिस्सा मिलाने को लिखा है। यह रसक्रिया की प्रथम विधि है।

द्वितीय विधि—सभी काष्ठ या खनिज औषधियों को कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करलें। सूक्ष्मतर हो जाने पर इन्हें एकत्रित कर मधु मिला दें। लौह या ताम्र की खरल मूसली में घोटकर सूक्ष्मतम करलें। फिर तैयार होने पर वस्त्र में छानकर शीशी में या अमृतबान में भर लें। फिर प्रयोग में लावें। यह रसक्रिया की दूसरी विधि है।

आँख में आंजने के लिए इसे या तो शलाका से डालें या एक बूँद पटक दें। यह तिमिर, दाह, नेत्र स्राव, वर्त्म, अर्म, काच, अर्जुन, कण्डू, पक्ष्मप्ररोह, प्रक्लिन्न वर्त्म में काम आता है। साथ ही शोथनाशक है, व्रणरोपक है तथा दृष्टिवर्धक, दोषस्रावक तथा शोधक है।

अंजन-शलाका -

ये किसी धातु की विशेषकर यशद, शीशा या ताम्र की होनी चाहिए। आज के युग में साफ कांच की शलाका भी प्रयोग में ली जा सकती है। ये सभी शलाकायें मृदु, चिक्कन तथा सफीट होनी चाहिए। इनमें खुरदरापन आँख को हानि पहुँचाता है। इनका आकार ८ अंगुल प्रमाण लम्ब होना चाहिए। स्फटिक पत्थर की सलाई भी प्रयोग ली जा सकती है। यह दोनों ओर पतली होनी चाहिए। चांदी तथा सोने की सलाई तथा हाथ की स्वच्छ अंगुली का प्रयोग भी किया जा सकता है।

अंजन विधि—अंजन का प्रयोग नेत्र के निचले भाग में किया जाना चाहिये। पहले बांई आंख में फिर दाहिनी आंख में। अंजन तैयार होने के बाद उस वैद्य को स्वयं अपने नेत्र में लगाकर देखना चाहिये। यदि लगाने के बाद कोई कष्ट न दे तो उसे अन्य रोगियों पर प्रयोग करना चाहिये। नेत्रों में आम दोष की अवस्था में अंजन निषिद्ध है। जब दोष अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो गये हों तब भी अंजन नहीं करना चाहिये। थके, उदावर्त रोगी, रोये हुये, भयभीत, मद्यपान किये हुए, क्रोधावेश की अवस्था में, तरुण ज्वर में, अजीर्ण रहते, शिरोरोग में, वेगावरोध के समय अंजन नहीं करना चाहिये।

दोषानुसार अंजन प्रयोग—लेखन अंजन में मधुर रस का त्याग करना चाहिए। वातजन्य रोग में ले .न अंजन का उपयोग करना हो तो अम्ल और क्षार द्रव्य-युक्त, पित्तज और रक्तज नेत्र रोगों में कड़वे और कसैले द्रव्यों का, और कफज व्याधियों में कड़वे, तीक्ष्ण और कषैले रस युक्त लेखन अंजन हितकारी हैं। द्वन्दज और त्रिदोषज नेत्र रोगों में दोषों की अंशांश कल्पना के अनुसार ही अंजन की योजना करनी चाहिये। लेखन औषधियों में मधुर रस का निषेध होने पर भी मधु (लेखन, कषाय, और नेत्ररोग नाशक गुण होने के कारण) उनमें मिलाया जाता है। कफज नेत्र रोगों में लेखन अंजन प्रातः, वात जन्य रोगों में सायं तथा पित्त जन्य रोगों में तथा रक्तज रोगों में तीक्ष्ण लेखन औषधि रात्रि को सोते समय डालनी चाहिए। प्रथम लेखन फिर रोपण, तत्पश्चात् स्नेहन अंजन का उपयोग किया जाना चाहिये।

लेखन के योग से नेत्र, वापणी (भौं), नेत्र पटल नेत्र शिरा, नेत्रवारि, नेत्र दर्पण, नेत्र स्रोत और आसपास के अन्य

स्थानों में रुके हुए दोष पतले होकर नेत्र, नासा और मुख के मार्ग से स्रवित होकर नेत्र को निर्दोष कर देते हैं।

रोपणांजन कपैला, कड़वा, स्निग्ध, शीतल और वृष्य होने के कारण नेत्रों को बलवान करते हैं। प्रसादांजन (स्नेहांजन) मधुर स्निग्ध होने के कारण दृष्टि को स्वच्छ करता है—

अब हम कुछ बर्तियों का नीचे उल्लेख कर रहे हैं जिनका करता हमें अभीष्ट है—

१. चन्द्रोदय वर्ति—हरड़, वच, कूठ, पीपल, काली मिर्च, वेहड़े की मींगी, शख नाभि और मनसिल सवको समभाग मिलाकर कपड़छन कर चूर्णित करें। फिर दो दिन खरल करें। पश्चात् बकरी के दूध में ६ घण्टे खरल कर वर्ती (प्रमाणानुसार) बनावें। (विशेष-शंखनाभि को अलग से कूट कपड़छन कर खरल करें। अतिसूक्ष्म होने पर अन्य चूर्ण में मिला दें।)

उपयोग—उत्तम लेखन अंजन है। यह नेत्रों की मांस वृद्धि तथा कफ वृद्धि को दूर कर दृष्टि को स्वच्छ करता है। इस वर्ति को मधु में घिसकर आंखों में अंजन से ३ वर्ष का फूला मिटता है। सब प्रकार की मांसवृद्धि,राव्यन्ध्य को एक मास में ठीक करता है। तिमिर रोग को मिटाता है।

करञ्जवर्ति—करंज बीज, तुलसीपत्र, चमेली की कलियां समान भाग लेकर एकत्र कूटकर अष्टगुण जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर पुनः अग्नि पर रखकर गाढ़ा पाक करें। फिर वर्ति बनाकर रख लें।

इस वर्ति का प्रयोग करने से पलकों के बाल झड़ने बन्द होकर नये बाल निकल आते हैं।

दन्तवर्ति—हाथी, सूअर, ऊंट, गाय, घोड़ा, बकरा और गधे के दांत तथा शंख, मोती तथा समुद्रफेन प्रत्येक समान भाग लेकर इन सबको चूर्ण कर कपड़छन कर लें। सम्पूर्ण चूर्ण के वजन से चतुर्थाश काली मिरच का चूर्ण लेकर सबको पानी में खरल कर सूक्ष्मतर बनालें। फिर उचित प्रमाण में वर्ति बनाकर प्रयोग में लें।

यह दन्तवर्ति व्रण शुक्र को भी नष्ट कर देती है।

विशेष—सभी द्रव्य कठोर हैं अतः पूर्ण सतर्क रहकर सूक्ष्मतर चूर्ण बनाकर ही वर्ति बनावें तथा स्वयं अपने नेत्र में अंजन कर वैद्य उसकी निरापदता की परीक्षा करें।

तन्द्रानाशिनी वर्ति—सौंठ, मिरच, पीपल, करंजवीज हरड़, वहेड़ा, आंवला, देवदारु, सैंधानमक और तुलसीपत्र समान भाग। उपरोक्त औषधियों का चूर्ण कर पानी में खरल कर सूक्ष्मतर बनाकर वर्ति तैयार करें।

पानी में घिसकर लगाने से तन्द्रा नष्ट होती है।

पुष्पहरीवर्ति—करंज बीज पलास के फूलों के स्वरस में ६ भावनायें देकर मर्दन कर वत्तियां बनालें। इन्हें नेत्रमें घिसकर लगाने से आंखों का फूला नष्ट होता है।

चन्दनादि वर्ति—रक्तचन्दन, सोना गेरू, लाख, चमेली की कली चारों को समान भाग लेकर खरल में पीसे फिर गुलाब जल डालकर ६ घण्टे तक घोटकर वर्ति बनालें। इस वर्ति को जल में घिसकर अंजन करने से व्रण शुक्र घावयुक्त फूला (Ulcer of Cornea), नेत्रों में घाव होकर पीव आना, नेत्रों की लाली, खुजली आदि नष्ट होते हैं।

उन्माद भंजनी वर्ति—शुद्ध मनशिला, सैंधव, कुटकी वच, सिरस के बीज, हींग, श्वेत सरसों, करंज बीज, त्रिकटु कपोत विष्टा सब समान भाग लेकर सूक्ष्मचूर्ण कर गोमूत्र की भावना देकर खरल करें। फिर इन्द्रयव प्रमाण वर्ति बनालें। यह वर्ति प्रातः सायं तथा रात्रि में मधु या जल में घिसकर उन्माद के रोगी की आंख में डालें।

इसके प्रयोग से चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, अपस्मार नष्ट होते है। वह दोष विरेचक वर्ति है। अतः आंख, नाक तथा मुख से दोष द्रवितकर स्रवित करती है। यह उर्ध्व जत्रु भाग के चेतना स्थानों में जाने वाली नाड़ियों को सक्रिय कर लाभ करती है।

नागार्जुनी वर्ति—हरड़, वहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पीपल, सैंधानमक, मुलहठी, नीलाथोथा, रसौत, पुण्डरीक कमल, वायविडङ्ग, लोध्र और ताम्र भस्म इन चौदह द्रव्यों को समान भाग चूर्णित कर जल के साथ मर्दन कर वर्ति बना लें। इन वर्तियों को स्त्री दुग्ध में घिसकर लगाने से नेत्र पाक में लाभ होता है। पलाश पुष्प के रस में घिस कर लगाने से पुष्प तथा नेत्रों की रक्तता नष्ट होती है। लोध्र जल में घिसकर आंजने से तिमिर रोग नष्ट होते हैं।

रसेश्वर वर्ति—खर्पर या अभाव में यशद भस्म, सैंधव, नीलाथोथे का फूला, सुहागे का फूला, सोंठ, मिरच, पीपल समान भाग-चूर्ण मिलाकर नींबू के रस में ७ दिन खरल

कर वर्ति बनालें। मधु में घिसकर अंजन करने से फूला, जाला, धुन्ध, नया मोतिया, नेत्र वायु आदि नष्ट होते हैं।

चन्द्रकला वर्ति—मुक्ता भस्म, सिता, अभ्रक भस्म, शुद्ध गूगल, खर्पर, श्वेत सुरमा, कस्तूरी, नीलाथोथा, समुद्र फेन, शंखनाभि, पीपल, भांगड़ा, हरड़, वहेड़ा और आंवले की मज्जा (गिरी) इन सबका सूक्ष्म चूर्ण कर एकत्र मिलावें फिर जल के साथ खरल कर वर्ति बनावें। जल में घिसकर आँख में लगावें। तिमिर, खुजली, मण्डल, काच, शुक्र, जलस्राव तथा पिल्ल आदि नेत्र रोग नष्ट होते हैं।

दृष्टिप्रदांजन वर्ति—हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुर्गी के अण्डे का छिलका, कसीस, लोहभस्म, नील कमल, विडङ्ग, समुद्रफेन सबका महीन चूर्ण समानभाग लेकर बकरी के दूध में मर्दन कर वर्ति बनालें। (भारत भैषज्य रत्नाकर)। इस वर्ति को आंजने से रोगी की आँख का तारा यदि नष्ट न हुआ हो तो इसके लगाने से दीखने लगता है।

चन्द्रप्रभा वर्ति—हरिद्रा, नीम की पत्ती, पीपल, काली मिरच, विडङ्ग, नागरमोथा तथा हरड़ समान भाग। इनका चूर्ण कर बकरी के मूत्र में खरल कर सूक्ष्म कर वर्ति बनावें।

इस वर्ति को पानी में घिसकर लगाने से तिमिर रोग, गोमूत्र में घिसकर अंजन करने से पिष्टक, मधु में लगाने से पटल तथा स्त्री दुग्ध में अंजन से फूला रोग नष्ट होता है।

तुत्थादि वर्ति—भुना हुआ नीलाथोथा, शंखनाभि, मनः शिला, मयूराण्ड त्वक्, समुद्रफेन, कुक्कुटाण्ड त्वक्, निर्मली के बीज, चीनी (बिजली के खम्बे पर लगने वाली) मिट्टी, स्वर्ण माक्षिक शुद्ध, नरकपालास्थि सभी समान भाग।

उपरोक्त द्रव्यों का चूर्ण करें फिर सहजने के पत्तों के रस में मर्दन करें (२ दिन) वर्ति बनालें।

इसे सहजने के पत्ते के स्वरस में या मधु के साथ घिस कर लगाने से नेत्रों का माँस कटता है।

—वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु० केशरी
मकराना मौहल्ला, जोधपुर (राज०)

अञ्जन गुडिका

ग्रंथ संदर्भ—भैषज्य रत्नावली, अग्निमांद्याधिकार।

> गुडपुष्प शिखरित तण्डुल।
> गिरि कर्णिका हारिद्राभिः॥
> अञ्जन गुडिका विलयति।
> विसूचिकां त्रिकटु संयुक्ता॥

अर्थात्—महुए के फूलों का सार (सत्व), अपामार्ग के चावल (बीज), श्वेत पुष्प वाली विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) की जड़, हल्दी, सौंठ, मिर्च और छोटी पीपल इन्हें समभाग ले कूट पीस जल सहित घोटकर गोलियां बनालें। इन गोलियों को जल सहित घिसकर अञ्जन करने से विसूचिका रोग नष्ट होता है। विसूचिका से होने वाली मूर्च्छा, भ्रम, शिरोवेदना आदि उपद्रव भी शान्त हो जाते है। इस प्रकार निम्न अंजन भी लाभप्रद है—

नं. २- सौंठ, मिर्च कालीं, पीपल छोटी, करंज फल, गिरी, दारुहल्दी, हल्दी और सब में बराबर बिजौरा निम्बु की जड़ इन्हें कूट पीस छान जल से वटी बनाकर अंजनवत् प्रयोग किया जाता है। —सुश्रुत उत्तर तंत्र अ० ५६

—वैद्य श्री मुंशीसिंह बैस ठाकुर
महुवा गांव पो. महोली (कानपुर)

अंजन

नेत्रप्रसादन कल्पनान्तर्गत अंजन-वर्ति और रस क्रिया का अपना महत्व पूर्ण स्थान है। इनके विषय में निम्न सिद्धांत मननीय हैं।

अंजन प्रयोग का विधान—

अंजन के प्रयोग का विधान बताते हुए समय का निर्देश किया गया है कि नेत्रगत दोष जब पक्व हो जावें तभी नेत्रों में अञ्जन का प्रयोग करना चाहिये। हेमन्त और शिशिर ऋतु में मध्याह्न काल में, ग्रीष्म और शरद ऋतु में मध्याह्न काल से पूर्व और मध्याह्न काल के पश्चात् काल में, वर्षा ऋतु में जब बादल साफ हों और अधिक उष्णता न हो उस समय में तथा बसन्त ऋतु में किसी भी काल में अंजन का प्रयोग कराया जा सकता है। अंजन का प्रयोग प्रातः एवं सायंकाल करना चाहिए। बार-बार दिन भर अंजन का प्रयोग निषिद्ध है। अतिशीत, अति उष्ण, तेज हवा और बादलों के घिर जाने के समय अंजन नहीं लगाना चाहिये।

अंजन लगाने की विधि यह है कि नेत्र के कृष्णभाग के नीचे श्वेत भाग (श्वेत मण्डल) में एक छोर से दूसरे छोर पर्यन्त शलाका या अंगुली से स्पर्श करते हुए अंजन लगाना चाहिए।

शलाका धातु या पत्थर से निर्मित होती है। यह आठ अंगुल लम्बी, चिकनी और अग्रभाग में अर्थात् दोनों किनारों पर कुण्ठित होनी चाहिए। लेखनांजन के लिये ताम्र-लौह अथवा पत्थर की सलाई काम में लाई जाती है। स्नेहनांजन के लिये स्वर्ण अथवा रजत की शलाका का प्रयोग करना चाहिये और रोपणाञ्जन का प्रयोग अंगुली से करना चाहिये।

अंजन अयोग्य—

श्रान्ते प्ररूदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे।
अजीर्णे वेगघाते च नांजनं संप्रचक्षते॥

अंजन के भेद—

कर्मभेद से अञ्जन तीन प्रकार का होता है—

१. लेखानाञ्जन—क्षार-तीक्ष्ण और अम्ल रस प्रधान द्रव्यों के द्वारा बनता है।

२. रोपनाञ्जन—कषाय और तिक्त रस प्रधान द्रव्यों में स्नेह मिलाकर प्रयोग किया जाता है।

३. स्नेहनाञ्जन—मधुर रस प्रधान द्रव्यों में स्नेह मिलाकर प्रयोग किया जाता है। इसीको "प्रसादनांजन" भी कहा जाता है।

भैषज्य कल्पना के अनुसार अंजन तीन प्रकार का बताया गया है—

(क) गुटिकांजन (ख) रसांजन (ग) चूर्णाञ्जन।

इनमें चूर्ण की अपेक्षा रस और रस की अपेक्षा गुटिका अंजन क्रमशः उत्तम होता है। इनका प्रयोग लेखन-रोपण या प्रसादन कर्म के लिए किया जाता है। प्रत्येक कर्म के लिए अलग-अलग परिमाण निम्न प्रकार बताया गया है। गुटिकाञ्जन के प्रयोग के लिए सम्हालु के बीज के बराबर गोली बनानी चाहिए। इसका प्रयोग लेखन कर्म के लिए किया जाता है। रोपण कर्म के लिए गुटिका का परिमाण सम्हालु बीज से डेढ़ गुणा बड़ा होता है और प्रसादन अथवा स्नेहन कर्म के लिए सम्हालु बीज से दुगना होता है। रसाञ्जन के प्रयोग में श्रेष्ठ मात्रा तीन विडंग के तौल के बराबर द्रव भाग लेना है, मध्यम मात्रा २ विडंग के तौल के बराबर होती है और निकृष्ट मात्रा १ विडंग के तौल के बराबर होती है। चूर्णाञ्जन की मात्रा का विधान यह है कि लेखन कर्म के लिए शलाका को दो बार लपेटकर, रोपण कर्म के लिए तीन बार लपेटकर और स्नेहन कर्म के लिए चार बार लपेटकर प्रयोग करना चाहिए।

प्रत्याञ्जन और धावन—

अंजनों के प्रयोग के बाद जब नेत्रों के दोष शान्त हो

जावें एवं औषध लगाने के परिणामस्वरूप अश्रुस्राव होना बन्द हो जावे तो जल से भरे पात्र में भलीभाँति दृष्टिपात करते हुए नेत्रों का प्रक्षालन करना चाहिए । इसके बाद यथादोष प्रत्याञ्जन का प्रयोग करना चाहिए । जब तक नेत्रों के दोषों का हिन्त न हो जावें तब तक जल से प्रक्षालन करने का निषेध है। परन्तु प्रत्याञ्जन का प्रयोग किया जा सकता है । यदि तीक्ष्णाञ्जन के प्रयोग से नेत्रों में उष्णता बढ़ जावे तो चूर्णाञ्जन का प्रयोग दृष्टि प्रसादन के लिये करना चाहिए ।

अञ्जन योग

(क) लेखनाञ्जन योग—कुक्कुटाण्डत्वक्, मनःशिला, काच, शंख, चन्दन, सैन्धव—इन छः द्रव्यों को लेकर सूक्ष्म चूर्णाञ्जन करने से, नेत्रों में अञ्जन लगाने से पुष्प और शुक्लार्म में लेखन कर्म हो जाता है। यह लेखन कर्म के लिए प्रयोग किया जाता है ।

(ख) चूर्णाञ्जन योग—कृष्ण मरिच आधा शाण (१२ रत्ती), पिप्पली और समुद्रफेन १-१ शाण (२४-२४ रत्ती), सैन्धव आधा शाण (१२ रत्ती), सौवीराञ्जन ६ शाण (सवा दो तोला), इन पांच द्रव्यों को चित्रा नक्षत्र में सुसूक्ष्म कर चूर्णाञ्जन बनावें । इस चूर्णाञ्जन को नेत्रों में लगाने से नेत्रकण्डू, काच, कफज नेत्र विकार तथा नेत्र-रोग नष्ट हो जाते हैं ।

(ग) मृदु चूर्णाञ्जन—एक स्वच्छ शिला पर रसक को बारीक पीसकर जल में घोलकर पानी निथार लें और नीचे बर्तन की तली में बैठे हुए द्रव्य को छोड़ दें। जल को चार पाँच बार छानकर पात्र को स्थिर रहने दें । इसके बाद जल को निथार लें । पात्र के तल में बैठे चूर्ण को लेकर खरल में बहुत सूक्ष्म करे । इस चूर्ण में त्रिफला क्वाथ की तीन भावना देवें । यह योग मृदु चूर्णाञ्जन कहलाता है । इसे नेत्रों में लगाते रहने से समस्त नेत्र रोग दूर हो जाते हैं ।

(घ) सौवीराञ्जन—सौवीराञ्जन (काला सुरमा) को एक लौहे के कड़छे में गरम करके त्रिफला क्वाथ में सात बार और नारी दुग्ध में सात बार बुझावें । सूक्ष्म चूर्ण कर लेने के बाद नेत्रों में लगाते रहने से नेत्र सम्बन्धी समस्त व्याधियां निःसन्देह नष्ट हो जाती हैं।

(ङ) नक्तान्ध्यहर योग—बकरे के यकृत के बीच में पिप्पली को रखकर यकृत को पकावें । फिर पिप्पली को निकालकर पुनः यकृत रस में घोटकर नेत्रों में लगाने से नक्तान्ध्य रोग दूर हो जाता है ।

बकरे के यकृत के बीच में कृष्ण मिर्च को रखकर पकावें । फिर कृष्णमिर्च को निकालकर बकरे के यकृत रस से घोटकर मधु मिलाकर नेत्रों में लगाने से नक्तान्ध्य रोग शीघ्र ही नष्ट होता है ।

(च) नयनामृताञ्जन—विशोधित शीशक को एक पात्र में रखकर चूल्हे पर पिघला लें और इसमें समान मात्रा में पारद और सीसक और पारद से द्विगुणा कृष्णाञ्जन मिला कर श्लक्षण चूर्ण बना लें । यह नयनामृत नामक प्रत्याञ्जन नेत्रों के रोगों को नष्ट करता है ।

(छ) प्रबोधाञ्जन—चमेली के फूल, प्रवाल, कृष्ण मरिच, कुटकी, वच तथा सैंधव इन छः द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर बकरे के मूत्र में पीसकर नेत्रों में अंजन करने से तन्द्रा रोग नष्ट होता है तथा संज्ञानाश या बेहोशी दूर होकर रोगी चैतन्य हो जाता है ।

सिरस के बीज, पिप्पली, कृष्ण मिर्च, सैंधव, लहसुन, मनःशिला और वच—इन सात द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर गोमूत्र में पीस लें और वर्तिका बना लें । इस वर्तिका को पानी में घिसकर नेत्रों में अञ्जन करने से मनोमोह या बेहोशी रोग नष्ट होकर चेतना आ जाती है ।

वर्ति एवं रस क्रिया के योग —

(क) चन्द्रोदय वर्ति—(प्रयोग आदि आगे के लेख में देखें)

(ख) करञ्ज वर्ति—करञ्ज के बीजों से मींगी निकाल कर चूर्ण बना लें और इस चूर्ण को अनेक बार पलाश के फूलों के स्वरस की भावनायें देकर वर्तिका बना लें । इस वर्तिका को नेत्रों में लगाने से शुक्र और शस्त्र क्रिया साध्य रोग नष्ट हो जाते हैं ।

(ग) समुद्रफेनादि वर्ति—(प्रयोग आदि आगे के लेख में देखें)

(घ) दन्तवर्ति—हाथी, सूअर, ऊँट, बैल, घोड़ा, बकरा, और गधा के दांत तथा शंख, मोती और समुद्रफेन इन समस्त द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर सूक्ष्म चूर्ण

बनाकर जल में घोटकर वर्तिका तैयार कर लें। यह वर्तिका समस्त प्रकार के शुक्र रोगों को नष्ट करती है।

(ङ) नीलोत्पलादि वर्ति—नीलोत्पल, सहंजना के बीज, और नागकेशर में तीनों द्रव्य समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना जल में घोटकर वर्तिका बना लें। इस वर्तिका को जल में घिसकर नेत्रों में लगाने से तन्द्रा रोग नष्ट होता है।

(च) पुष्पवर्ति—तिलपुष्प ८० नग, पिप्पली ६० नग, चमेली के पुष्प ५० नग और कृष्ण मिर्च १६ नग इन चार द्रव्यों को लेकर जल में पीसकर वर्तिका बना लें। इसे 'कुसुमिकावर्ति' भी कहा जाता है। इस वर्तिका को जल में घिसकर नेत्रों में लगाने से तिमिर, अर्जुन, शुक्र और मांस वृद्धि रोग नष्ट होते है। इस वर्तिका का प्रयोग सम्हालू बीज के बराबर होना चाहिए।

(छ) रसाञ्जन वर्तिका—रसौत, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, चमेली और निम्बपत्र इन पांच द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर गोबर के रस में पीसकर वर्तिका बना लें। इस रसाञ्जन वर्तिका को लगाने से नक्तान्ध्य रोग नष्ट होता है।

(ज) धान्यादिवर्ति—आंवले के बीजों की मज्जा १ भाग, बहेड़े के बीजों की मींगी २ भाग और हरीतकी के बीजों की मींगी ३ भाग लेकर जल में पीस वर्तिका बना ले। इस वर्तिका को २ सम्हालु बीजों के बराबर परिमाण मे नेत्रों में जल में घिसकर लगावें। इससे नेत्र स्राव तथा वातरक्त नेत्रशूल नष्ट हो जाते हैं।

(झ) लेखनी रस क्रिया—तुत्थ, माक्षिक, सेंधव, मिश्री, शंखनाभि, मनःशिला, गैरिक, स्वर्णगैरिक, समुद्रफैन और कृष्ण मिर्च इन ६ द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर अतीव सूक्ष्म चूर्ण बना लें। प्रयोग करते समय मधु में मिलाकर नेत्रों में लगावें। यह रस क्रिया वर्त्मगत रोगों में, अर्म, तिमिर रोग, काच और शुक्र में लाभ करती है।

(ञ) पुष्पनाशनी रस क्रिया—वट दुग्ध में डमरू यन्त्र द्वारा उड़ाए गए कपूर के बड़े-बड़े कणों को मिलाकर नेत्रों में लगाने से दो मास का पुराना पुष्प नष्ट हो जाता है।

(ट) दार्व्यादि रस क्रिया—दारुहल्दी, परवल के पत्ते, मधुयष्टी, नीम की छाल, पद्म काष्ठ, नीलकमल, श्वेतकमल-इन सात द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर यवकुट करें और चतुर्गुण जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें। इस छने हुए क्वाथ को पुनः पकावे और गाढ़ा हो जाने पर ठण्डा करें। फिर इसमे चतुर्थांश मधु और मिश्री मिलालें। इसे नेत्रों में लगाने से नेत्रदाह, नेत्रस्राव, नेत्रों की रक्तिमा और नेत्रशूल नष्ट हो जाते है।

(ठ) रसाञ्जनादि रस क्रिया—रसौत, राल, चमेली के पुष्प, मनःशिला, सैन्धव, गेरू और कृष्णमिर्च-इन आठ द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर सूक्ष्म चूर्ण करे। इसमें मधु मिलाकर नेत्रों में लगाने से प्रक्लिन्नवर्त्म, नेत्रक्लेद, नेत्रकण्डू एवं पलकों के बालों का नष्ट हो जाना रोग ठीक हो जाते हे।

(ड) गुडूच्यादि रसक्रिया—गुडूची स्वरस १ कर्ष, मधु १ माशा, और सैंधव नमक १ माशा इन द्रव्यों को मिलाकाकर नेत्रों में लगाने से पिल्ल, अर्म, तिमिर, काच, नेत्रकण्डू, लिंगनाश तथा श्वेतपटल और कृष्णपटल गत रोग नष्ट हो जाते है।

(ढ) बबूल रस क्रिया—बबूल के पत्तों का स्वरस लेकर उसे पकावें और जब वह अवलेह के समान हो जावे तो उसमें समान भाग मधु मिलाकर नेत्रों में लगायें। इससे नेत्रस्राव रोग ठीक हो जाता है।

—श्री कविराज डा० शिवकुमार जी व्यास भिषगाचार्य
उपाचार्य-तिब्बिया कालेज, दिल्ली
पुदेवनगर करौल बाग, नई दिल्ली—५

शल्य में वर्ति का प्रयोग—विद्रधि भेदन के बाद या विविध व्रण या आगन्तुक व्रणों में व्रणोपचार के ८ विधानों में कषाय के बाद दूसरा विधान वर्ति प्रयोग का है। किसी क्वाथ कषाय या द्रव से व्रण प्रक्षालन के बाद व्रण के शोधन, रोपण या पूय निर्हरण हेतु वर्ति का प्रयोग किया जाता है। वर्ति रखने के बाद व्रण को रुई रखकर पट्टी से बाँध दिया जाता है।

'वर्तते अनया इति वर्तिः'। यह वर्ति व्रण के शोधन रोपण हेतु प्राच्य पाश्चात्य सभी चिकित्सकों द्वारा प्रयुक्त होता है। वर्ति शब्द के निम्न अर्थ होते हैं—

१. वस्ति* २. दशा ३. सिचः ४. भेषज निर्माण* ५. नयनांजन* ६. लेखन* ७. गात्रानुलेपनी* ८. दीपदशा

इनमें से तारांकित अर्थ चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धित हैं।

वर्ति के भेद—१. घृततैल वर्ति २. व्रणवर्ति ३. रोपण वर्ति ४. स्नेहन वर्ति ५. लेखनवर्ति ६. गुदवर्ति ७. योनि वर्ति ८. नेत्रवर्ति ९ क्षारवर्ति।

वर्ति निर्माण व प्रयोग की विधि

शल्यकर्म में कपास या कपड़े की बत्ती बनाकर प्रयुक्त होती है। भेषज निर्माण में तैल साधन विधान में 'समवर्तितो वर्तियुपैतिकल्कः' जब तैल पाक समाप्त होने के निकट होता है तो तैलपाक में प्रयुक्त कल्क को वटने से उसकी बत्ती बन जाती है। यह तैल निर्माण परीक्षा का एक प्रयोग है।

वांछनीय रोपण, स्नेहन, लेखन, वातानुलोमन आदि द्रव्यों को योग के अनुसार अथवा वैद्य की अपनी कल्पना के अनुसार आवश्यकतानुरूप द्रव्यों को लेकर उनका सूक्ष्म चूर्ण बनावें। इस चूर्ण को सिलवट्टे पर पीसकर और भी बारीक व चिकना बनावें और तब तर्जनी या मध्यमा व अंगूठा की सहायता से आवश्यकतानुरूप आकार की वर्ति बनावें। वर्ति बनाने के पूर्व यह देखलें कि वर्ति बनाने योग्य लोच या स्निग्धता उसमें है या नहीं। यदि द्रव्य ज्यादा सूखे या खर हो तो इनको दूध में पीसना चाहिए ताकि वर्ति बनाने हेतु कुछ स्निग्धता आ जाय।

वर्ति के आकार

यवाकार वर्ति—यह दोनों तरफ नुकीली होगी। ऐसी पतली वर्ति गर्भाशय मुख को विस्तृत करने हेतु या गर्भाशयस्थ माँसवृद्धि को काटने हेतु बनायी जाती है या गर्भपात कराने में प्रयुक्त होती है। यही काम एक ही ओर नोकदार बत्ती बनाकर भी होता है।

बत्ती की मोटाई आवश्यकतानुसार $\frac{१}{१०}$ इन्च या $\frac{१}{४}$ इन्च तक बनाई जा सकती है पर नुकीलीमें अग्रभाग ही गर्भाशय मुख में प्रविष्ट किया जाता है। योनि व्यापद् चिकिसा में चरक ने कई प्रयोग इस कार्य के लिए लिखे हैं।

इस वर्ति के प्रयोग व निर्माण के समय हाथ व पीसने के उपकरण शुद्ध, साफ होने चाहिए। प्रयोग करते समय इनको स्नेहाक्त करके प्रयोग करना चाहिये। इसको पकड़ने वाली उपयुक्त चिमटी की भी सहायता गर्भाशय मुख में वर्ति रखने के हेतु ली जा सकती है पर चतुर दाइयाँ अपनी अंगुलियों की सहायता से ही काम कर लेती हैं। शालाक्य शास्त्र में चन्द्रोदय वर्ति का प्रयोग बहुत प्रसिद्ध व निश्चय लाभकारी है। इससे अनेक निराश रोगियों को भी लाभ मिलता है।

उदावर्त रोग व मलमूत्र अयानावायु के रोकने से उत्पन्न

विविध रोगों में वर्ति का प्रयोग आयुर्वेद की अपनी निदान व चिकित्सा शैली की अपूर्व विशेषता है। जिससे अनेक दशाओं में रोगियों को आश्चर्यजनक लाभ मिलता है। आयुर्वेद की ये कल्पनायें एलोपैथी से कहीं उच्चतर, सत्य व आशुफलप्रद हैं। दुर्भाग्य से वैद्य समाज इनके प्रयोगों से वंचित होता जा रहा है।

उदावर्त व वेग विधारण जन्य रोगों में वर्ति का प्रयोग गुदा में किया जाता है।

फलवर्ति

उदावर्त की चिकित्सा में फलवर्ति विशेष प्रसिद्ध है। मदनफल इसमें प्रयुक्त होने से इसका नाम फलवर्ति पड़ गया।

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः।
गुड़क्षार समायुक्ता फलवर्ति प्रशस्यते ॥

मैनफल, पीपल, कूठ कड़ुवा, वच कड़ुई, पीली सरसों, गुड़ व कोई क्षार इनको समान मात्रा में लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावें और $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{2}$ या १ ग्राम की वर्ति दूध से पीसकर तथा खूब घोटकर कल्क में लोच पैदा होने पर एक नोक या २ नोक वाली वर्ति आवश्यकतानुरूप यथेष्ठ मोटाई की बनावे जिसका प्रयोग गुदामार्ग में तथा वत्ती में चिकनाई लगाकर करें। एसी वत्ती से अर्श चिकित्सा भी हो सकती है, उदावर्त व वेगधारण जन्य रोग तो निश्चय अच्छे होतेहैं।

हिंग्वादि वर्ति—

हींग, मधु, सैंधानमक, कासीस का सूक्ष्मचूर्ण बनाकर निम्ब स्वरस या दुग्ध से घोंटकर वर्ति बनावें और धूप में सुखाकर रख लें, आवश्यकता होने पर घृत या तैल लगाकर प्रयोग करें।

योनिव्यापत में योनिकंद रोग, संकुचित गर्भाशय मुख रजःकृच्छ्, योनि में या गर्भाशय में मांस वृद्धि की दशा में दुर्गन्धित योनि या पूयस्राव युक्त योनि गर्भाशय में शोथ वर्ति, लेखन वर्ति का प्रयोग होता है तथा अयावृत्त योनि व गर्भाशय (अर्थात् गर्भाशय या योनि को अपने स्थान से हट जाने की दशा में) आयुर्वेद की संकोचक वर्ति चिकित्सा व लेप से अभूतपूर्व लाभ होता है। यह चिकित्सा कौशल केवल आयुर्वेद में है। एलोपैथी इस कला को नहीं जानता वह केवल छल्ला लगाना जानता है पर आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा उसको अपने स्थान में बैठाया जा सकता है। इसमें दवा के प्रयोग के साथ ही धात्री के कौशल का भी पूर्ण सहयोग होना चाहिये।

वर्ति का प्रयोग गर्भपात कराने के लिये भी सफलता पूर्वक किया जा सकता है। रजःस्राव कराने के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है। यहां १ प्रयोग लिखा जाता है—

कुटुतुम्बी बीज, दन्तीमूल, पीपर, गुड़, मैनफल, सौंफ, कासीस, जवाखार इनका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर सेहुंड दुग्ध से वर्ति बनावें। यह लेखन वर्ति है जो रजःस्राव को लाती है, शोथ दूर करती है, बढ़े हुए मांस को काटती है। दुर्गन्धि भी दूर करती है। वर्ति के विविध प्रयोगों को चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों में देखें।

—श्री मदनगोपाल वैद्य आयु. वृह.
आरोग्यधाय आयुर्वेद विद्यालय, फैजाबाद

शिखर्यादि वर्तिका

ग्रन्थसंदर्भ—भैषज्य रत्नावली, योनिव्यापद रोग। इसको अपामार्गादि वर्ति के नाम से ग्रन्थकार ने लिखा है।

मूलपाठ—**अपमार्गस्य मूलस्य गोधूमस्य च चूर्णकम्।**
खदिरं फणिफेनं च प्रत्येकं च त्रिमापकम् ॥
सर्वमेकत्र नीरेण संपिष्य घृत संयुता।
वर्त्तिः कृता योनि मध्ये धृताऽस्रसुतिजितपरा ॥

अर्थात्—अपामार्ग मूल (यदि पुष्पनक्षत्र में संग्रह किया हो तो अधिक उपयोगी होता है) का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण, गेहूं की कपड़छन मैदा (यथा सम्भव हाथ की चक्की से पिसे गेहूँ के आटे को कपड़े से छानकर या गेहूँ को भिगो दें दूसरे दिन शिला पर पीस कपड़े से मय जल के छान लें और उस सत्व को धूप में रखकर सुखालें), सफेद उत्तम कत्था पिसा कपड़छन बराबर-बराबर लेकर, शुद्ध अफीम को जल में घोलकर उसी जल से उक्त तीनों चूर्णो को मिलाकर चार-चार रत्ती की वर्तिका बना लें।

उपयोग—यह वर्तिका योनि से वहते रक्त को बन्द करती है। यह योनि में रखी जाती है।

रक्त प्रदर, अति रजःस्राव, ऋतुकाल के बाद भी रज-स्राव विशेष रूप से होना, योनिगत रक्तस्राव, प्रसव के पश्चात् भयंकर रक्तस्राव भी इस वर्तिका से बन्द होता है। इसका उपयोग रक्तस्तम्भनार्थ एवं योनि पीड़ा निवारणार्थ किया जाता है। यह योग अनेक बार का अनुभूत है।

—डा. श्रीमती विमला अग्रवाल
विमला अस्पताल, बुलन्दशहर

चन्द्रोदयवर्ति

ग्रन्थ—शा० सं०

गुठली सहित पीली हर्र, दूधिया वच, कड़ुवा कूठ, पीपल छोटी, काली मिर्च, बहेड़ा की मींगी, शुद्ध शंख की नाभि, शुद्ध मनःशिल प्रत्येक १-१ तोला।

निर्माण विधि - प्रथम मनःशिल और शंख को अलग-अलग महीन चूर्ण करें। फिर खरल में डाल कर शेष के महीन चूर्ण को थोड़ा-थोड़ा डालकर १२ घण्टे खरल करें। फिर बकरी के दूध से ६ घण्टे खरल कर १-१ माशे की वर्तियां बना रखें।

विशेष—स्वस्थ बकरी का दूध लें जो जङ्गलों में चरती हों। वच, कूठ, काली मिर्च सभी गुणयुक्त लें।

उपयोग—यह अंजन वात कफ नाशक, जीवाणु नाशक लेखन बनता है। आँखों से दोषों को मलों को खुरच कर निकालता है, आंखों में बहुत चुभता है, आंखों से आँसू बहने लगते हैं। नाक भी बहने लगती है। इसके अंजन से निद्रा-तन्द्रा भंग हो जाती है। पानी, गौमूत्र, अपामार्ग स्वरस, पलास अर्क, मधु, शिरीष रस किसी में १-२ तिल प्रमाण घिसकर प्रातः काल और सायं काल रोग वाली आंख में लगाना चाहिये। इसके लगाने से मांस-वृद्धि, अधिमंथ, रोहे, फूला, रतौंधी, पोथकी, तिमिर, शुक्र आदि वातज कफज नेत्र रोगों में लाभ करती है। कठिन रोगों में १ माह तक लगाते रहना चाहिए और कठिन रोगों में वमन विरेचन करने के बाद खाने वाली औषधियाँ त्रिफलादि घृत १-२ तोला या सप्तामृ लौह २-३ माशा या स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती+वंशलोचन १ रत्ती, त्रिफला चूर्ण २ माशा, मुलेठी चूर्ण ४ रत्ती, मधु ६ माशा यह १ मात्रा है। इनमें से किसी का सेवन करने से नेत्रों का मल शोधन हो जाता है और शरीर को शक्ति प्राप्त होती है तथा पित्त शमन रहता है।

प्रयोग निषेध—धूप में, पित्तज रोगों में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। नेत्रबिंदु—१ तोला गुलाब जल या परिश्रुत जल में ४ रत्ती खरल कर रखलें। विन्दुपातनक से ४-४ विन्दु आंख में डाल लिया करें। वैसलीन ४ गुणित लेकर गर्म कर छानलें उसमें पीसकर मिलादें। १ चावल लेकर आंख में भर लिया करें। सदा रोग के स्थान पर ही दवा लगाया करें।

समुद्रफेनादिवर्ति

ग्रन्थ—च. द.

समुद्रफेन, मुर्गी के अण्डे को छिलका, सैंधानमक, मधु, सहजने के बीज। सबको समभाग लेकर खरल करें खूब पिस जाने के बाद १२ घण्टे सहजन स्वरस से खरल कर १-१ माशे की वर्ति बना रखें। १ चावल भर मधु या पानी में घिसकर मांसवृद्धि, शुक्र या फूला पर विन्दु रखदें। यह अंजन बहुत चुभता है। इसके प्रयोग से १५-२० दिनों में लाभ हो जाता है। यह बढ़े हुए मांस को दूर कर देता है अतः रोग ठीक हो जाने के बाद इसका प्रयोग बन्द कर देना चाहिए अथवा सहजना स्वरस और मधु समभाग मिला लें। उसमें से ४-६ बूंद ताम्र प्याली में रखें। उसमें १ चावल सैंधानमक घिसकर मांसवृद्धि या फूले पर २ बूंद डालदें।

प्रयोग निषेध—दिन में, उष्ण ऋतु में, आई आँख में, पित्तज रोगों में, नेत्र व्रण में प्रयोग नहीं करना चाहिए।

—श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव वैद्य
अरौल, (कानपुर)

रसांजनादि रसक्रिया

संदर्भ ग्रन्थ—सिद्ध भेषज मणिमाला

नाम घटक	अंग्रेजी नाम	मात्रा
१. रसौत	Extract of Indian Berberis	१ तोला
२. फिटकरी (फूला)	Alum	१ तोला
३. चीनी अथवा शर्करा	Sugar	१ तोला
४. अफीम	Opium	५ माशे
५. तूतिया (भुना हुआ)	Sulphate of Copper	२॥ मा.

निर्माण विधि—पहले रसौत, चीनी और अफीम को थोड़े-थोड़े पानी में अलग-अलग घोल लें। देख लें सभी चीजें भली प्रकार घुल गई हैं। फिर किसी साफ लोहे की कढ़ाई या अन्य किसी लोहे के ही पात्र में सभी को डालकर उसी में फिटकरी तथा तूतिए के चूर्ण को डाल दें। अब उसे मन्द-मन्द आग पर पकावें। इस बीच लोहे के डण्डे से उसे बराबर घोटते रहें। आधा जल शेष रहने पर उतार लें। फिर तीन घण्टे तक खूब घोटें। अब इस गीले अंजन को शीशियों में भरकर रख लें।

—शेषांश पृष्ठ १६६ पर देखें।

नयनामृताञ्जन तथा सौवीरांजन

वैद्या श्रीमती विमला अचल

नयनामृताञ्जन

संदर्भ ग्रन्थ—शारङ्गधर संहिता

घटक का नाम	अंग्रेजी नाम	लैटिन नाम	मात्रा
१. शुद्ध नाग (सीसा)	Lead	Plumbum	१० ग्रा.
२. शुद्ध पारा	Mereury	Hydrargryum	१० ग्रा.
३. काला सुरमा (शुद्ध)	Black Antimony	Antimonium Sulphuratum	२० ग्रा.
४. भीमसेनी कपूर	Camphor	Dryobalanopr Camphora	४ ग्रा.

निर्माण विधि—सीसे को गलाकर उसमें पारा डालकर खूब घोटें। तदनन्तर काले सुरमे का कपड़छन किया हुआ चूर्ण डालकर और घोटें। यह ध्यान रखें इसकी जितनी घोटाई होगी सुरमा उतना ही श्रेष्ठ बनेगा। अब भीमसेनी कपूर डालकर पुनः घोटें और तैयार हो जाने पर पुनः शीशी में भर लें।

उपयोग-विधि—शीशे या जस्ते की सलाई से प्रातः सायं आंखों में लगायें।

गुण—यह सभी प्रकार के नेत्र रोगों को दूर करता है।

स्वानुभव—इसके नियमित प्रयोग से आँखें निरोग रहती हैं और उनकी ज्योति बढ़ती है। तिमिर रोग में यह विशेष रूप से लाभदायक है।

सौवीराञ्जन

संदर्भ ग्रंथ—शारङ्गधर संहिता

घटक—

घटक का नाम	अंग्रेजी नाम	मात्रा
सौवीरांजन या काला सुरमा	Black Antimony	१०० ग्रा.
त्रिफला क्वाथ	Triphala Kwath	आवश्यकतानुसार
स्त्रीदुग्ध	Mothers Milk	,,

निर्माण विधि—सुरमे के छोटे-छोटे टुकड़े कर लें। फिर उन्हें तपा तपाकर सात बार त्रिफले के क्वाथ में और सात बार स्त्रीदुग्ध में बुझावें। फिर उत्तम खरल में खूब घोटकर सूक्ष्म चूर्ण कर शीशियों में भरकर रख लें।

उपयोग विधि—इसे प्रतिदिन शीशे या जस्ते की सलाई से आंखों में लगायें।

गुण

१. अंजनों के साथ खाने की औषधियों का भी प्रयोग करने से लाभ अधिक और शीघ्र होता है। मैं अपने रोगियों को इनके साथ-साथ आवश्यकतानुसार महात्रिफला-घृत, बृहद् वासकादि क्वाथ, सप्तामृत लौह, नयनामृत लौह, तिमिरहर लौह, नेत्राशनिरस तथा क्षतशुक्लहर गुग्गुल का भी प्रयोग कराती हूं।

२. तीक्ष्ण अंजनों के प्रयोग के उपरान्त जब तक दोषों का स्रवण न हो जाय तब तक नेत्रों को न धोयें।

३. आवश्यक होने पर अंजन से तप्त नेत्रों में प्रसादन चूर्ण का प्रत्यंजन करें।

४. दोषों के भली प्रकार स्रवण के उपरान्त आँखों को पोंछकर कुछ काल तक जल को देखें। फिर स्वच्छ जल से नेत्रों को धोकर यथादोष प्रत्यंजन करें।

५. शारङ्गधर संहिता में नेत्रों में आंजने के लिए एक विशेष प्रकार की सलाई की निर्माण विधि दी है। शीशे को पिघला-पिघलाकर त्रिफले के काढ़े, भांगरे के रस, सोंठ के क्वाथ, घृत, गोमूत्र, मधु तथा बकरी के दूध—इन सात द्रव्यों में से प्रत्येक में सात-सात बार बुझावें। फिर इस शीशे की सलाई बनवायें। ग्रन्थकार का दावा है कि मात्र इस सलाई को आंखों में फिराते रहने से ही आँखें स्वस्थ रहती है और अगर उनमें कोई रोग होता है तो नष्ट हो जाता है।

—वैद्या श्रीमती विमला अचल
आयुर्वेद शोध संस्थान
बुनियादगंज, (गया)

रसांजनादि : पृष्ठ १६५ का शेषांश

उपयोग विधि—प्रातः सायं तथा रात को सोते समय अंगुली अथवा सलाई से नेत्रों में लगायें।

गुणवगुण—अभिष्यन्द, दर्द, सूजन, खुजली तथा लाली को दूर करता है।

—कविराज डा० श्री अयोध्या प्रसाद अचल
आयुर्वेद शोध संस्थान
बुनियादगंज (गया)

आधुनिक युग में प्राय: सभी रोगों में घृत सेवन वर्जन कर दिया जाता है। प्राचीन काल में अधिकतर सभी रोग यहाँ तक असाध्य व दु:साध्य रोगो की चिकित्सा भी घृत से की जाती थी। घृतों में गोघृत श्रेष्ठ मानकर उसका ही उपयोग औषधीय घृत निर्माण में भी उपयोग किया जाता था। आज गायों का इतना ह्रास हो गया है कि किसी को १ किलो गोघृत की आवश्यकता हो तो मिलना कठिन हो जाता है। भारत सरकार को इस पर ध्यान देना चाहिए। उसे मालूम होना चाहिये कि कठिन से कठिन भयंकर और असाध्य रोग भी शास्त्रीय घृतों से सहज दूर किए जा सकते है। यहाँ चन्द घृतों का विवरण दिया जायेगा, उनका उपयोग आज के युग में करके देखें और उससे मिलने वाले लाभ से लाभान्वित हों।

घृतपाक करने में किस विधि को बनाया जाय, यहाँ उसका स्पष्ट विवेचन किया जाता है। शार्ङ्गधराचार्य ने अपनी संहिता में विस्तृत विवेचन किया है। उसीका आधार लेकर रस तंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह में भी उल्लेख किया है। यहां भी उन्हीं ग्रंथों से लिखा जा रहा है।

घृतपाक हेतु यथासम्भव गोघृत ही लेना चाहिए। यदि मिल सकना सम्भव न हो तो बकरी या भैंस का घृत लिया जाय।

घृत को प्रथम मूर्च्छित कर लेना चाहिये। इसकी विधि इस प्रकार है –

पीतल की कढ़ाई जिसमें कलई की हुई हो, उसे लेकर अग्नि पर रखें और उसी में घृत डाल दें। जब घृत पिघल जाय, और उसके झाग दूर हो जांय तब अग्नि पर से कढ़ाई उतार लें। थोड़ी उष्णता घृत की बनी रहे तभी उसमें हरड़, बहेड़ा, आंवला, हल्दी और नागरमोथा इनका चूर्ण घृत से आधा लेकर निम्ब के रस सहित पीस कल्क (चटनी) बनालें, और उसीमें १२ गुणा जल मिलाकर, उस घृत का पुन: पाक करें। जब थोड़ा जल शेष रह जाय तब उतार कर ७ दिन तक रखा रहने दें। इससे घृत साफ, आम दोषरहित और वीर्यवान हो जाता है। बाद में उसमें क्वाथ, दूध, दही, आदि द्रव पदार्थ डालकर करना हो, या औषधियां तथा कल्क मिलाना हो, मिलाकर पाक करें।

घृतपाक के लिए क्वाथ द्रव्यों में चार गुना जल मिला कर चतुर्थांश क्वाथ करने का निर्देश है। किन्तु यह सामान्य नियम है।

कोमल द्रव्यों का गुरुच, कुटकी, शतावर, वासा, आंवला आदि में ४ गुना जल मिलाकर क्वाथ करना चाहिए।

कठिन व मध्य द्रव्य—दशमूल, निम्वत्वक, लोध्र, भारङ्गी में जल ८ गुना लेना चाहिए। अत्यन्त कठिन द्रव्य जैसे—देवदारु, पद्मकाष्ठ, दारुहल्दी के लिए १६ गुना जल में क्वाथ करना चाहिए।

जहाँ सब तरह की औषधि मिश्रित हों वहाँ जल ८ गुना लेना ठीक है।

घृतपाक के लिए क्वाथ बनाना हो, उन सबको मिला कर घृत से द्विगुण में होना चाहिए। सामान्यतः ८ गुना जल में किया गया क्वाथ जब चतुर्थांश रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये। जब अनेक द्रव्यों का क्वाथ हो, वह भी बड़ी-बड़ी मात्रा में तो उनका प्रथक क्वाथ करके सबको मिलाकर उपयोग करें।

मात्र दूध ही से ही घृतपाक करना हो तो घृत से ८ गुना दूध लेना चाहिए। यदि १ से ५ प्रकार के द्रव लेकर घृतपाक करना हो अर्थात् दूध, दही, क्वाथ गोमूत्र, मांसरस प्रभृति ५ द्रव या अधिक द्रवों से पाक करना हो तो वहाँ प्रत्येक द्रव घृत के समान ही ग्रहण करें। उससे कम द्रव हों तो वहाँ कुल द्रव मिलाकर घृत का चार गुना होना चाहिए। २ द्रव हों या ३ द्रव सबको चार गुना ही लेना चाहिए। जहाँ मान न दिया हो वहाँ भी ऐसा ही करना चाहिए।

घृत पाक करते समय स्नेह को चलाते भी रहना चाहिए जिससे घृत में डाला हुआ कल्क द्रव्य जले नहीं। जब वह कलछे में आने लगे, आने लायक हो जाय तब उसे बाहर निकालकर अंगुलियों से मर्दन करके देखें। मर्दन करने से कल्क जब वत्ती जैसा लम्बा होने लगे तब थोड़ी देर घृत को अग्नि पर रहने दें। और उस घृत का छींटा अग्नि पर दें, यदि अग्नि पर घी डालने से चटचट शब्द न करे, और उसे अग्नि तत्काल पकड़ ले तो घृत पाक सम्यक् सिद्ध हो गया जानकर अग्नि पर से उतार लें।

दूसरा लक्षण यह है घी में उठे झाग लीन हो जांय, और जिन द्रव्यों से वह पकाया गया है उनके रंग, गंध और स्वाद उसमें आ जायें तो उसे ठीक-ठीक पका समझकर अग्नि से उतार लें। जो घृत पाक पूर्ण परिपक्व नहीं हुआ होगा तो उसमें औषधियों के गुण वीर्य पूर्णतया न आने से वह लाभप्रद नहीं रहता। उसके सेवन से क्षुधा भी मारी जाती है। चूँकि कच्चा होने से भारी होता है, अतः उपयोगी नहीं होता।

इसी प्रकार खर पाक—कल्क भाग के जल जाने से बना घृत सेवनीय नहीं होता, मात्र शरीर पर लगाने के लिए ही उपयोग किया जा सकता है। अतः सम्यक्, मध्य पाक ही उपयोगी होता है। एक बात का यह भी ध्यान रखें कि घृत पाक अधिक अग्नि देकर या बहुत देर तक अग्नि देकर एक ही दिन में पाक करने की अपेक्षा दो दिन में, ३ दिन में थोड़ी-थोड़ी देर पकाना उत्तम है। मात्र दूध में सिद्ध करना हो तो दो दिन में, स्वरस में सिद्ध करना हो तो ३ दिन में, कांजी मट्ठा में सिद्ध करना हो तो ५ दिन में पकावें। अधिक दिन लगाने से थोड़ी-थोड़ी देर पकाने से पाक उत्तम होता है। पाक सिद्ध होने पर कढ़ाई को अग्नि से उतारने के पश्चात् किंचित ठण्डा होने पर तुरन्त छानकर किसी अमृतवान में भर लेना चाहिए। कढ़ाई में पड़ा नहीं रखना चाहिए। पक्व घृत के सेवन से शरीर स्वस्थ, बलवान और कान्तिवान बनता है। जो वर्षों अनेक प्रकार की औषधियों सेवन कर निराश हो गये हो, ऐसे रोगी भी घृत के सेवन से आरोग्य होते हैं जिन रोगियों की पाचन शक्ति मन्द हो गई हो, मलावरोध रहता हो, अफरा, बैचेनी, अरुचि, शिरदर्द आदि विकारों ने अपना घर बना लिया हो, उन्हें भी सिद्ध घृत सेवन से चन्द्र दिनों में ही लाभ होने लगता है। वात पित्त और कफ प्रकृति वाले स्त्री, पुरुष, बच्चे, वृद्ध सभी के लिए उपादेय होता है। इसका सेवन सुबह शाम या भोजन के समय मात्रानुसार करना चाहिए।

अन्न पाचन, मल शुद्धि नियमपूर्वक होने लगती है और रोगी की मनोवृत्ति प्रसन्न रहने लगती है। यह घृत पुराने होने पर लाभप्रद होता है उससे भी कुछ हानि नहीं होती। अब आगे चन्द घृतों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है पाठक अपने रोगियों को बनाकर अवश्य सेवन करावें, और यथेष्ठ लाभ प्राप्त करें।

—विशेष सम्पादक

अर्जुनघृत और हृदय रोग

डा० श्री सिद्ध गोपाल शुक्ल 'पुरोहित' एम.ए., बी.ए.एम.एस., डी.एस.सी.(एं).

संदर्भ—अर्जुन घृत का पाठ भैषज्य रत्नावली और चक्रदत्त में आया है।

मुख्य घटक—

नाम	प्राचीन मात्रा	आधुनिक मात्रा
अर्जुनत्वक कल्क	१ पाव	२५० ग्राम
अर्जुनत्वक स्वरस	४ सेर	४ किलो
गौघृत	१ सेर	१ किलो
जल	१६ सेर	१६ किलो

अवशेष प्रमाण—१ किलो।

निर्माण विधि—ऊपर निर्दिष्ट मात्रानुसार औषधि द्रव्यों को लेकर मंदाग्नि पर पाक करें। जब १ किलो घृत मात्र अवशिष्ट रह जाये तब उतार लेवें और छान लेवें।

उपयोग गुण—अर्जुन का वर्णन उदर्द प्रशमन स्कन्ध तथा कषाय स्कंध में किया गया है। यह घृत रक्तवह संस्थान पर कार्य करता हुआ हृदय रोगों को नष्ट कर हृदय को सभी दृष्टियों से सबल बनाता है। यह कषाय एवं लघु रूक्ष होने के कारण कफ का तथा शीत गुण प्रधान होने से पित्त का एवं घृत के साथ मिलकर वात दोष का शमन करता है। इसमें धातुवर्द्धन का गुण होने के कारण यह शुद्ध रस धातु का बर्द्धन करके हृदय रोगों को नष्ट करता है। अपने कारणों से प्रकुपित हुए वातादि दोष हृदय में अवस्थित होकर रस को दूषित करके हृदय में विकार उत्पन्न करते हैं।

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते॥

—सु० उ० ४३

हृदय रस का स्थान है अतः दोषों के हृदयगत होने पर रस दुष्टि और हृदय की मांसपेशियों एवं अन्य (मांस-पेशी, स्नायु, सिरा, धमनी, अलिन्द, कपाट आदि) सभी

के विकृत होने से इनके रोग प्रारम्भ हो जाते हैं। प्राचीन परिभाषा में। इन्हें ही हृदय रोग कहते हैं।

इस अर्जुन घृत से हृदय की पोषण क्रिया ठीक होती है जिससे हृदय का स्पन्दन ठीक और सबल होता है तथा स्पन्दन की संख्या भी कम होती है। इससे सूक्ष्म रक्तवाहिनियों का संकोच भी होता है जिससे रक्तभार बढ़ता है। इस प्रकार हृदय सशक्त और उत्तेजित होता है। यह रक्त प्रसादन तथा स्तम्भन है। इसमें स्थित कषाय रस एवं मधुर रस तथा खटिक के लवण के कारण यह रक्तस्तम्भन में सहायक होते हैं। इससे रक्तवाहिनियों (केशिकाओं) के द्वारा होने वाले रस का स्राव भी कम होता है जिससे यह सूजन को दूर करता है। यह मूत्रवह संस्थान पर शामक प्रभाव उत्पन्न करता है तथा विषघ्न होने के कारण विष एवं जीर्ण ज्वर को नष्ट कर उसके कारणों को भी नष्ट करता है। इस प्रकार यह घृत हृदय को पुष्ट कर बल प्रदान करता है तथा हृदयगत सभी रोगों को ठीक करता है।

—शेषांश पृष्ठ १७५ पर देखें।

अष्टमंगल घृत

वचेन्दु लेखा मण्डूकी शंखपुष्पी शतावरी।
ब्रह्म सोमामृता ब्राह्मीः कल्की कृत्यपलांशिकाः॥
अष्टांगं विपचेत्सर्पिः प्रस्थं क्षीरं चतुर्गुणम्।
तत्पीतं धन्यमायुष्यं वाङ्मेधास्मृति बुद्धिकृत॥
—अ० हृ० उ० १/४४–४५

घटक—१. वच २. बावची ३. मण्डूकपर्णी ४. शंख पुष्पी ५. शतावर ६. विधारा ७. गिलोय ८. ब्राह्मी ९. दूध १०. घृत।

मात्रा—नं० १ से ८ तक के द्रव्य प्रत्येक एक-एक पल, दूध ४ सेर, घृत १ सेर लें।

निर्माण विधि—नं० १ से ८ तक के द्रव्यों को लेकर कल्क करें। इसमें एक सेर घृत और ४ सेर दूध मिलाकर मंद अग्नि पर घृत पाक विधि से पकावें तथा सिद्ध कर स्वच्छ पात्र में रख दें।

गुण—इस अष्ट मंगल घृत पीने से बालकों की शारीरिक सम्पत्ति, आयु, वाणी, मेधा, स्मृति और बुद्धि की वृद्धि होती है।

मात्रा—१ से २ चम्मच

अनुपान—मिश्री युक्त गोदुग्ध।

उक्त घृत मंद बुद्धि वाले बच्चों के लिए बड़ी गुणकारी शास्त्रीय औषधि है।

श्री गोपाल जी द्विवेदी वैद्य
जिला परिषद आयुर्वेदिक औषधालय
नरहन कलाँ पो० मैढ़ी (चन्दौली) वाराणसी (उ.प्र.)

उदावर्तहर घृतम्

ग्रंथ संदर्भ—रस रत्न समुच्चय-उदावर्त रोगे—

घटक-कंकुष्ठ (उसारे रेवंद या मुर्दासंग), हींग, सैंधालवण, वच, निशोथ, दन्ती की जड़, हरड़ बड़ी, चित्रक जड़ की छाल ये प्रत्येक १ भाग लेकर पत्थर पर पीस जल सहित कल्क करें। इन सबसे चार गुणा अर्थात् ३२ भाग गोघृत और गोघृत से ४ गुना (१२८ भाग) गौ दूध लेकर एक कढ़ाई में घृतपाक विधि से पाक करें। जब घृत मात्र शेष रह जाय, तब अग्नि बुझा दें और घृत ठण्डा होने दें, पश्चात् मजबूत और महीन वस्त्र से घृत को छानकर किसी कांच के पात्र में रखें।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक। अनुपान—गौदुग्ध, यदि इससे उदर साफ न हो तो, इसी घृत को सेवन करते समय १ से ५ बूंद थूहर दूध मिलाकर सेवन करें तो निश्चय ही उदावर्त रोग तथा आनाह रोग नष्ट होता है।

उक्त योग में जिन द्रव्यों का कल्क बनाने का निर्देश है उन द्रव्यों को खरल में जल सहित पीस आधी-आधी माशे की गोली बनाकर उपयोग किया जाय तो भी उदावर्त एवं आनाह रोग नष्ट होता है। यह रेचक है। दस्त के द्वार मल और वायु का निस्सरण होकर उदावर्त रोग नष्ट हो जाता है।

उदावर्त रोग—

रूक्षैः कोद्रव जीर्णमुद्ग चणकैः क्रुद्धोऽनिलोऽधो बहन्।
रुद्ध्वा वर्त्म मलं विशोष्य कुरुते विण्मूत्र संगं ततः॥
हृत्पृष्ठोदर वस्ति मस्तक रुजः स श्वास कासं ज्वरं।
गच्छन्नूर्ध्वमसौहि नूनमनिशं कोपादुदावर्तयेत्॥

अर्थात् कोदों, मूंग पुराने, चने इत्यादि रूक्ष पदार्थों का नित्य सेवन से वायु दूषित होकर आमाशय, पक्वाशय, क्षुद्रान्त्र, बृहदन्त्र मलाशय, आदि नीचे के अवयवों में संचार करता हुआ, मलमूत्र को रुद्धकर या मार्ग रुद्ध होने से, मल तथा वायु उदर की तरफ बढ़कर हृदय, पृष्ठ उदर, वस्ति, और मस्तिष्क में अनेक प्रकार की पीड़ा को उत्पन्न करता है। श्वास, कास तथा ज्वर ये उपद्रव भी हो जाते हैं। इस प्रकार के रोग को उदावर्त कहते हैं। उदावर्त रोग में वैद्यनाथ वटी, वृ० इच्छाभेदी रस, लौह प्रयोग वारिशोषण रस, अन्य उदर रोगों में उपयुक्त औषधियों का सेवन कराना चाहिए। उदावर्तहर चूर्ण भी लाभप्रद है।

—विशेष सम्पादक

कल्याण घृत

वैद्य श्री गोपीनाथ पारीक "गोपेश" आयुर्वेद रत्न, साहित्यरत्न

गुरुं कल्याणकं नत्वा कल्याणं नाकवासिनम् ।
लिखामि घृतकल्याणं कल्याणं स करोतु मे ।।

कल्याणघृत में कुल २८ द्रव्य हैं। वे प्रत्येक १२-१२ ग्राम, घृत १ प्रस्थ (७६८ ग्राम) एवं ४ प्रस्थ (३ किलो ७२ ग्राम) जल मिलाकर पाक करना चाहिए। जब कल्क को बटने पर उसकी वत्तीबन जाय तथा अग्नि पर छोड़ने से चट-चट शब्द न उत्पन्न हों तब उस समय स्नेह को सिद्ध समझना चाहिए। घृत को एक ही दिन में सिद्ध नहीं करना चाहिए क्योंकि कई दिनमें सिद्ध हुआ घृत अधिक लाभप्रद होता है। यह घृत एक वर्ष बाद हीन वीर्य हो जाता हैं। घृत गाय का ही अधिक उपयोगी होता है।

इस घृत में यदि दूध की मात्रा चौगुनी तथा जल की मात्रा दुगनी कर दी जाय तो क्षीरकल्याण घृत सिद्ध होता है। कल्याण घृत की प्रारम्भिक सात औषधियों को निकालकर शेष २१ द्रव्यों का कल्क, क्वाथ का चौथाई घृत तथा प्रथम प्रसूता गौ का दूध भी घृत से चौगुना दोनों प्रकार की मुद्गपणी तथा माषपर्णी, काकोली, कौंच के बीज, ऋद्धि तथा मेदा के कल्क घृत का चतुर्थांश लेकर उसके साथ घृत पकाने से महाकल्याण घृत सिद्ध होता है जो कि विशेषतया बृंहण एवं सन्निपातहर है।

घृत संस्कारानुवर्ती होने से श्रेष्ठ स्नेह कहा गया हैं। तथा—

घृतं पित्तानिलहरं रस शुक्रौजसां हितम् ।
निर्वापणं मृदुकरं स्वरवर्णप्रसादनम् ।।
—चरक सू० १३।१४

निर्वापणं दाह प्रशमनम् । —चक्रपाणिदत्त

इसके अनुपान में उष्ण जल ही उपयोग में लेना चाहिए—

"जलमुष्णं घृते पेयम्" —चरक सू० १३।२२

इस कल्याणघृत के घटकगुण निम्नाङ्कित हैं—

द्रव्य नाम	रस	गुण	वीर्य	विपाक	दोष शमन
विशाला[१] (इन्द्रायण के बीज)	तिक्त	तीक्ष्ण, रूक्ष	उष्ण	कटु	कफशामक
हरीतकी[२]	लवणहीन पंचरसयुक्त	लघु, रूक्ष	उष्ण	मधुर	त्रिदोष शामक
विभीतक[३]	कषाय, तिक्त, कटु	लघु, रूक्ष	उष्ण	,,	कफवात शामक
आमलकी[४]	लवणहीन पंचरसयुक्त	लघु, रूक्ष	शीत	,,	वातपित्त शामक
कौन्ती[५] (रेणुका-संभालू)	तिक्त, कटु, कषाय	लघु, रूक्ष	उष्ण	कटु	वातकफ शामक
देवदारु[६]	तिक्त, कटु, कषाय	स्निग्ध, लघु	उष्ण	,,	वातकफ शामक

१ यह आम का शोषण कर पित्त का स्रंसन करता है। प्राण, रस, रक्त, अन्न, मल, मूत्र, आर्तववह स्रोतस् पर शोधन कर्म करता है।

२ स्फुरतु सदायतिसुखदा श्री पथ्या सर्वजन पथ्या। —श्री लक्ष्मीराम जी स्वामी

३ सुश्रुत ने इसे उष्ण किन्तु वाग्भट ने शीत कहा हैं। इस मतभेद का स्पष्टीकरण यह है कि यह स्पर्श में शीत किन्तु वीर्य में उष्ण है।

४ हरीतकीवामलकी फलं मतं परं तु पित्तास्रहरं विशेषतः। —श्री कृष्णराम जी भट्ट

५ रेणुका बीज चूर्णेन मधुयुक्तेन मोहनि। गृहीतेयं वटी त्रेधा गुल्मं शूलं निहन्त्ययम् ।। —संजीवनी साम्राज्य

६ जीवाणुरोधक, शोथघ्न, वेदनाशामक एवं जीर्ण ज्वरों में विशेष लाभप्रद।

द्रव्य नाम	रस	गुण	वीर्य	विपाक	दोष शमन
एलवालुक[७]	तिक्त, मधुर	स्निग्ध, सर	उष्ण	कटु	त्रिदोष शामक
स्थिरा[८] (शालपर्णी)	तिक्त, मधुर	गुरु, स्निग्ध	उष्ण	मधुर	त्रिदोष शामक
नत[९] (तगर)	तिक्त, कटु, मधुर, कषाय	लघु, स्निग्ध	शीत	कटु	त्रिदोष शामक
हरिद्रा[१०]	तिक्त, कटु	लघु, रूक्ष	उष्ण	,,	त्रिदोष शामक
दारुहरिद्रा[११]	तिक्त, कषाय	लघु, रूक्ष	उष्ण	,,	वातकफ शामक
सारिवा[१२]	मधुर, तिक्त	गुरु, स्निग्ध	शीत	मधुर	त्रिदोष शामक
कृष्ण सारिवा[१३]	मधुर, तिक्त	गुरु, स्निग्ध	शीत	,,	त्रिदोष शामक
प्रियङ्गु[१४]	तिक्त, कषाय	लघु, रूक्ष	शीत	,,	वातपित्त शामक
नीलोत्पल[१५] (नीलोफ़र)	मधुर	लघु, सर	शीत	,,	कफपित्त शामक
एला[१६] (छोटी इलायची)	मधुर, कटु	लघु, रूक्ष	शीत	,,	त्रिदोष शामक
मंजिष्ठा[१७]	कषाय, तिक्त, मधुर	गुरु, रूक्ष	उष्ण	कटु	पित्तकफ शामक
दन्ती[१८]	कटु	तीक्ष्ण, रूक्ष, गुरु	उष्ण	कटु	वातकफ शामक
दाड़िम बीज[१९] (अनारदाना)	अम्ल, मधुर, कषाय	गुरु, रूक्ष	उष्ण	मधुर	त्रिदोष शामक
नागकेशर[२०]	कषाय, तिक्त	लघु, रूक्ष	अनुष्ण शीत	कटु	पित्तकफ शामक

७ कुमारी पत्र स्वरस घनसत्व एलुआ (मुसब्बर) कहलाता है।

८ शोषदोषत्रयहरा बृंहण्युष्णा रसायनी। —मदन वि० निघन्टु

९ तगर के मूलस्तम्भ (Root stock) या गांठवार जड़ का ही प्रायः चिकित्सा में प्रयोग होता है। यह उत्तम शीत प्रशमन द्रव्य है। "वृश्चिकशीर्षविष दोषघ्नं भूतापस्मार नाशनम्।" —धन्व० निघण्टु

१० साध्या नाप्यतिवर्तन्ते प्रमेहे रजनी यथा। —सुश्रुत०
वातज प्रमेह चतुष्यं विहाय। —डल्हण

११ दारुहरिद्रा का कार्यकारी तत्व वर्बेरिन क्लोरोम्फिनिकल तथा ट्रेटासायक्लिन इन एण्टीबायोटिक द्रव्यों से भी बढ़कर प्रभाव दिखलाता है और उनकी तरह हानिकर नहीं है।

१२.१३ रक्त और इतर धातुओं में से मृत और विजातीय जीवाणु को दूर कर देह को सबल बनाते हैं।

१४ अतिसार प्रशमनी परमानन्द दायिनी। कामाग्निवर्धिनी चैव श्यामाश्यामेव शोभते॥ —लोलिम्बराज

१५ तृष्णा दाहास्त्र विस्फोट विष वीसर्पनाशनम्। —भाव प्र० निघन्टु

१६ एला सूक्ष्मफला श्रेष्ठा।

१७ रक्त प्रसादन द्रव्यों में मंजिष्ठा प्रमुख है। यह वर्ण्य, विषघ्न एवं ज्वरहर है। रक्तवह संस्थान पर यह शोणित-स्थापन का कर्म करता है।

१८ त्रिवृतां त्रिफलां दन्तीं × × × × पक्वाशयगते दोषे विरेकार्थं प्रयोजयेत्। —चरक

१९ इसमें मीठा कंधारी दाड़िम ही श्रेष्ठ हृद्य एवं बल्य है। आन्त्रिक ज्वर, प्रमेह, रक्तातिसार, प्रदर और शीताद आदि रोगों को नष्ट करता है।

२० कार्जति चेन्नर ! रक्तसृतिर्यदि निपिब केशररम्यसुशार्करम्। —श्री जयदेव जी शास्त्री

द्रव्य नाम	रस	गुण	वीर्य	विपाक	दोष शमन
तालीशपत्र[२१]	तिक्त, मधुर	तीक्ष्ण, लघु	उष्ण	मधुर	वातकफ शामक
कण्टकारी[२२] (बड़ी कटेरी)	तिक्त, कटु	तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु	उष्ण	कटु	वातकफ शामक
मालतीपुष्प[२३]	मधुर, तिक्त	लघु, रूक्ष	शीत	मधुर	त्रिदोष शामक
विडङ्ग[२४]	कटु, तिक्त	तीक्ष्ण, लघु, रूक्ष	उष्ण	कटु	वातकफ शामक
पृश्निपर्णी[२५]	मधुर, तिक्त	स्निग्ध, लघु	उष्ण	मधुर	त्रिदोष शामक
कुष्ठ[२६] (कूठ)	तिक्त, कटु, मधुर	तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु	उष्ण	कटु	वातकफ शामक
चन्दन[२७] (श्वेत)	तिक्त, मधुर	लघु, रूक्ष	शीत	कटु	पित्तकफ शामक
पद्माख[२८]	तिक्त, कषाय	लघु, रूक्ष	शीत	कटु	पित्तकफ शामक

यह कल्याणकघृत त्रिदोषशामक होते हुए भी विशेषतया वात-पित्त रोगों में हितावह है। जीर्ण रोगों में जहाँ रूक्षता, कृशता उत्पन्न हो गई हो वहाँ यथावश्यक शोधन उपायों के पश्चात् कल्याणकघृत की योजना करनी चाहिए।

१. अपस्मार—

हृत्कम्पोऽक्षिरजा यस्य स्वेदो हस्तादि शीतता।
दशमूलीजलं तस्य कल्याणाज्यञ्च योजयेत्॥

—चक्रदत्त अप० १५

वातकुलान्तक रस १२० मि० ग्राम, वच दूधिया २४० मि० ग्राम, अकीक भस्म २४० मि० ग्राम, कूष्माण्डमूल २ ग्राम, मधुयष्टि २ ग्राम, कल्याणकघृत ५ ग्राम। १ × २ मात्रा दशमूल क्वाथ से।

२. ज्वर—

ज्वराः कषायैर्वमनैर्लङ्घनैर्लघु भोजनैः।
रूक्षस्य येन शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषग् जितम्॥

—चरक चि० ३/२१६

अभ्रक भस्म (सहस्रपुटी) १२० मि० ग्राम, प्रवाल पिष्टी २४० मि० ग्राम, सितोपलादि चूर्ण १ ग्राम, खूबकला चूर्ण २ ग्राम, कल्याणकघृत ३ ग्राम। १ × २ मात्रा पंचभद्र क्वाथ से।

३. कास—रूक्षता एवं कर्कशता बढ़ जाने पर—

शृङ्गाराभ्र २४० मि० ग्राम, मधुयष्टि चूर्ण २ ग्राम, वासा रस २ ग्राम, पीपल चूर्ण २०० मि० ग्राम, लोहबाण

---

२१ जीर्णश्वसनिका शोथ, श्वास, कास एवं वात श्लैष्मिक ज्वर में लाभप्रद।

२२ इस औषधि में आक्षेप प्रतिरोधक गुण है जो अपस्मार की चिकित्सा में उपयोगी होता है।
—श्री प्रह्लादराय देराश्री क्षेत्रीय उपनिदेशक आयु० विभाग उदयपुर (राज०)

२३ मालती मल्लिके तिक्ते सौरम्याद् पित्तनाशने। —सुश्रुत

२४ श्रेष्ठ कृमिनाशक। "पलाशवीजानि विडङ्गयुक्तान्युन्मिश्रितान्यामलकी फलानाम्। रसेन मध्वाज्ययुतानि पीत्वा वृद्धोऽपि मासात्तरुणत्वमेति॥" —भोजराज

२५ भगवान् चरक ने इसे संग्राहक, वातहर, दीपन एवं वृष्य द्रव्यों में श्रेष्ठ कहा है। ब्राह्म रसायन एवं च्यवनप्राश का भी यह एक उपयोगी घटक है।

२६ बालकों के स्वरयंत्र के आक्षेपसह श्वासावरोध एवं धनुर्वात में उपयोगी। पूयाजनन जीवाणु को कुष्ठमूल में स्थित वायोतैल नष्ट करता है। —डा० कार्तिकचन्द्र वसु

२७ वृक्क, मूत्रमार्ग और जननेन्द्रिय पर उत्तेजना करता है। "हरति दाहमघर्मकराननने! हिमहिमांशुजलैरनुलेपनम्" —लोलिम्बराज

२८ पद्माख के टुकड़े को हस्ततल पर रगड़ने से हाथ में मनोरम मृदु सुगन्धि आती है। "दाहकुष्ठकफपित्ततृडस्रस्फोटरुग्व्रणविसर्पविनाशि।" —श्री कृष्णरामजी भट्ट

पुष्प १०० मि० ग्राम, कल्याणघृत ३ ग्राम । १×२ मात्रा शरादि पञ्चमूल सिद्ध समधुशर्करा दुग्ध से सेवन करें ।

४. शोष—मृगांक रस २४० मि० ग्राम, प्रवाल पंचामृत ३६० मि० ग्राम, सितोपलादि चूर्ण २ ग्राम, कल्याणकघृत ४ ग्राम । १×२ मात्रा अजादुग्ध से ।

५. मन्दाग्नि (व्याधिमुक्तस्य)—अग्नितुण्डी रस २४० मि०ग्राम, शंख भस्म १ ग्राम, कल्याणक घृत ३ ग्राम । १×२ मात्रा ह्रीवेरादि क्वाथ से ।

६. क्षय—सिद्ध मकरध्वज रस १२० मि०ग्राम, मुक्तापंचामृत २४० मि० ग्राम, वैक्रान्त भस्म १२० मि० ग्राम, रुदन्तीफल चूर्ण ५०० मि० ग्राम, कल्याणक घृत ५ ग्राम । १×२ मात्रा कवोष्ण अजादुग्ध से ।

७. वातरक्त—हरताल भस्म १२० मि० ग्राम, गिलोय सत्व २४० मि० ग्राम, शुद्ध गुग्गुल १ ग्राम, कल्याणक घृत ३ ग्राम । १×२ मात्रा अमृतादि क्वाथ से सेवन करें एवं पिण्ड तैल की मालिश करें ।

८. प्रतिश्याय—विषाण भस्म २४० मि० ग्राम, गोदन्ती भस्म २४० मि० ग्राम, जावित्री ५०० मि० ग्राम, केशर १२० मि० ग्राम, चव्यादि चूर्ण २ ग्राम, कल्याणक घृत ३ ग्राम । १×२ मात्रा गोजिह्वादि क्वाथ से प्रातः सायं सेवन करें ।

९. विषम ज्वर—पारद गन्धक की समभाग कज्जली १२० मि. ग्राम, स्वर्णमाक्षिक भस्म २४० मि. ग्राम, शुद्ध मल्ल ५ मि. ग्राम, रक्तशुभ्रा भस्म १ ग्राम, कुटकी सत्व २४० मि. ग्राम, करंजबीज चूर्ण १ ग्राम, कल्याणक घृत ४ ग्राम । १×२ मात्रा पर्पट, गिलोय, शुण्ठी, किरात, मुस्त धान्यक क्वाथ से ।

१०. अर्श (रक्तार्श) में—रस पर्पटी २४० मि. ग्राम, नाग भस्म १२० मि. ग्राम, तृणकान्त मणि पिष्टी २४० मि. ग्राम, शुद्ध भल्लातक चूर्ण १ ग्राम, हरीतकी चूर्ण २ ग्राम, रसौत १ ग्राम, कल्याणक घृत ५ ग्राम । १×२ मात्रा कवोष्ण मृदिकापायस से ।

११. वमन—

सर्पिगुडाः क्षीरविधिश्चापि
कल्याणकत्र्यूषण जीवनानि ।
वृष्यास्तथा मांसरसाः सलेहा-
श्चिरप्रसक्तां च वमिं जयन्ति ॥

— चरक चि. २०।४७

कपूर काचरी १ ग्राम, सुगन्ध वाला १ ग्राम, मरिच ५०० मि. ग्राम, छाड़छरीला १ ग्राम, मिश्री ३ ग्राम, कल्याणक घृत ५ ग्राम । १×२ मात्रा लवङ्ग जल (उष्ण) से

१२. विसर्प—रसमाणिक्य २४० मि. ग्राम, करेले के पत्र का स्वरस १ ग्राम, कल्याणक घृत ३ ग्राम । १×२ मात्रा कवोष्ण जल से ।

साथ में ही वला के द्वारा पकाये गए तेल में लवण डालकर रोगी को अभ्यङ्ग कराना चाहिये ।

१३. मूत्रकृच्छ्र—चन्द्रकला रस १२० मि. ग्राम, बंशलोचन २ ग्राम, शुद्ध शिलाजीत ५०० मि. ग्राम, शीतल चीनी २ ग्राम, शुद्ध कलमी सोरा २ ग्राम, कल्याणक घृत ३ ग्राम । १×२ मात्रा तृणपञ्च मूल सिद्ध दुग्ध से ।

१४. कण्डू—गन्धक रसायन ५०० मि. ग्राम, किशोर गुग्गुल १ ग्राम, कल्याणक घृत ४ ग्राम, वाकुची चूर्ण २ ग्राम, १×२ मात्रा नवकार्षिक क्वाथ से अजाशकृत (बकरी मेंगण) सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग करें ।

१५. पाण्डु—

कल्याणकं पञ्चगव्यं महातिक्तमथापिवा ।
स्नेहनार्थं घृतं दद्यात् कामला पाण्डु रोगिणे ॥

—चरक चि० १६।४३

पश्चात्—

कुटकी सत्व २४० मि. ग्राम, गुडूची सत्व २४० मि. ग्राम, स्वर्ण माक्षिक भस्म २४० मि. ग्राम गोमूत्रधन २४० मि. ग्राम । १×२ मात्रा पुनर्नवाष्टक क्वाथ से ।

१६. उन्माद—चिन्तामणि चतुर्मुख २४० मि. ग्राम, सर्पगन्धाघनवटी १ ग्राम, कल्याणक घृत ५ ग्राम । १×२ मात्रा मांस्यादि क्वाथ से

१७. मदात्य—रससिंदूर २४० मि. ग्राम, अजवाइन चूर्ण २ ग्राम, कल्याणक घृत ४ ग्राम । १×२ मात्रा दुग्ध से

१८. विषरोग—

प्रथम वामक योग—मदनफल चूर्ण ६ ग्राम, पिप्पली चूर्ण १ ग्राम, १ मात्रा गरम जल से पिलावें

औषधि प्रयोग—स्वर्ण भस्म ६० मि. ग्राम, ताम्र भस्म ६० मि. ग्राम, स्वर्ण माक्षिक भस्म २४० मि. ग्राम,

मधु ५ ग्राम, मिश्री या सितोपलादि ५ ग्राम, कल्याणक घृत ६ ग्राम, १×२ मात्रा गोदुग्ध से एवं चन्दन बला लाक्षादि तैल का अभ्यङ्ग।

१६. प्रमेह—शिवा गुटिका १ ग्राम, वंग भस्म २४० मि. ग्राम, नागभस्म १२० मि. ग्राम, यशद भस्म २४० मि. ग्राम, गिलोय स्वरस भावित निशा चूर्ण २ ग्राम, कल्याणक घृत ४ ग्राम। १×२ मात्रा प्रमेह हर कषाय से

२०. स्वप्नमेह—रस सिंदूर १२० मि. ग्राम, जायफल ५०० मि. ग्राम, लौंग ५०० मि. ग्राम, कर्पूर १२० मि. ग्राम, शीतल चीनी २ ग्राम, स्वर्ण गैरिक २ ग्राम, भंगा चूर्ण २ ग्राम, तुलसी बीज चूर्ण १ ग्राम, कल्याणक घृत ५ ग्राम। १×२ मात्रा गोदुग्ध से

२१. स्वरभेद—विन्ध्यवासि योग २४० मि. ग्राम, शुद्ध सौभाग्य १ ग्राम, कल्याणक घृत ३ ग्राम। १×२ मात्रा कुलिंजन मरिच क्वाथ से

२२. मूर्च्छा—

'सर्पि कल्याणकं वापि मदमूर्च्छापहं पिबेत्।

—योगतरङ्गिणी

"हृपि कल्याणकमाज्यमत्र भव्यम्"।

—सि० भै० मञ्जूषा

ब्राह्मीवटी २४० मि. ग्राम, कोलमज्जा २४० मि. ग्राम, (बेर की गुठली की गिरी) कल्याणक घृत ३ ग्राम। १×२ मात्रा दुग्ध से

२३. बाल रोगों में—मुक्तादिवटी १२० मि. ग्राम, अतीस चूर्ण १ ग्राम, कल्याणक घृत २ ग्राम। १×२ मात्रा दुग्ध से

२४. वृष्य हेतु—केशर १२० मि. ग्राम, श्वेत मूसली १ ग्राम, कस्तूरी ६० मि. ग्राम, कौंच के बीज ३ ग्राम, तोदकी (जर्द) २४० मि. ग्राम, कल्याणक घृत ५ ग्राम, मिश्री ५ ग्राम। १×२ मात्रा दुग्ध से

२५. सन्तान हेतु—

पुरुष के लिए—स्वर्णवंग १२० मि. ग्राम, रस सिंदूर १२० मि. ग्राम, यशद भस्म २४० मि. ग्राम, कल्याणक घृत ५ ग्राम—१×२ मात्रा गोदुग्ध से

स्त्री के लिए—स्वर्ण भस्म ६० मि. ग्राम, रौप्य भस्म ६० मि. ग्राम, त्रिवंग भस्म २४० मि. ग्राम, अभ्रक भस्म १२० मि. ग्राम, केशर (सहस्रपुटी) १२० मि. ग्राम, शिवलिंगी १ ग्राम, कल्याणक घृत ४ ग्राम। १×३ मात्रा गोदुग्ध से

—श्री गोपीनाथ पारीक "गोपेश"
पचार (सीकर) राज०

अर्जुनघृत और हृदय रोग : : पृष्ठ १६६ का शेषांश

मात्रा—२० ग्राम से २५ ग्राम तक दुग्ध के साथ।

पथ्य—शालि चावल, मूंग, जौ, मरिचयुक्त जांगम पशु पक्षियों का मांस, परवल और करेला।

अपथ्य—तैल, खटाई, छाछ, गुरु अन्न, कषाय द्रव्य, थकावट, धूप, क्रोध, स्त्री सम्भोग, चिन्ता, अधिक बोलना आदि।

स्वानुभव—मैंने निम्न ७ रोगियों पर अर्जुन घृत का प्रयोग किया है तथा सफलता पाई है—

रोग नाम	सं०	मात्रा	अनुपान	समयावधि	लाभ पूर्ण	लाभ अल्प
वातज हृदयरोग	३	२०ग्रा.	दुग्ध	२ माह	२	१
पित्तज ,,	२	२५ ,,	दुग्ध	१ माह	२	×
कफज ,,	१	२० ,,	दुग्ध	२ माह	१	×
कृमिज ,,	१	३० ,,	दुग्ध	३ माह	१	×

हानि—अर्जुन घृत प्रयोग काल में इससे कोई हानि होती नहीं दिखाई दी।

—डा० सिद्धगोपाल शुक्ल 'पुरोहित'
२६, दक्षिण मिलौनी गंज, जबलपुर

वाजीकरण घृत (कामदेव घृत)

सफेद कनेर की जड़ २ सेर लेकर जौकुट करके ८ सेर जल मिलाकर क्वाथ करना। २ सेर जल शेष रहने पर उतारकर शीतल होने पर मसलकर छान लेना। इस जल में वाखरी भैस का ४ सेर दूध तथा सफेद सोमल जायफल, जावित्री और केशर २-२ तोला मिलाकर चूल्हे पर चढ़ाकर उवालना, पानी जलकर दूध मात्र शेष रहे तब उतारकर शीतल होने पर दही मिलाकर जमा देना। वाद में दही को मथ करके मक्खन निकाल घृत सिद्ध कर लेना। इस घृत में ३ माशा कस्तूरी मिलाकर चीनी मिट्टी या कांच के वर्तन में भरकर सुरक्षित रखना। सोमल छाछ के नीचे वर्तन में कुछ अंश बैठ जावेगा वह अलग कर देना।

(वै० सा० सं०)

मात्रा—½ से १ रत्ती तक पान बंगला पर लगाकर खाना—सिर्फ एक समय प्रातःकाल मे ऊपर से दूध, घी, मलाई आदि पौष्टिक चीजों का सेवन करना।

उपयोग—किसी प्रकार से उत्पन्न हुई धातु क्षीणता और किसी भी कारण से उत्पन्न हुई नपुंसकता को दूर करके वीर्य का स्तम्भन करता है तथा शारीरिक दौर्बल्यता को नष्ट करने में अद्वितीय है।

पथ्य—दूध, घी, मलाई, रवड़ी, हलुआ, फल आदि का सेवन करना चाहिए।

अपथ्य—तैल, गुड़, खटाई, लालमिर्च, चाय, बाजारू चीजें नही खानी चाहिए। पूर्ण लाभ की प्राप्ति के लिए सेवन काल मे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

—श्री वैद्य सुन्दरलाल जैन
तिलक फार्मेसी, इटारसी (म०प्र०)

कामदेव घृत [भा. भै. र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधि—असगंध १०० भाग, गोखरू ५० भाग, वरियारा, गिलोय, सरिवन, विदारीकन्द, शतावर, सौंठ, गहदपूरना, पीपल की कोंपल, गम्भारी के फूल, कमल गट्टा और उड़द प्रत्येक १०-१० भाग लें। सवको जौकुट कर १०२४ भाग जल में क्वाथ विधि से पकावें। चौथाई जल वाकी रहने पर कपड़े से छान उसमें गाय का घी ६४ भाग, गन्ने का रस ६४ भाग, दूध ६४ भाग तथा मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, ऋद्धि, वृद्धि, कूठ, पद्माख, लाल चन्दन, तेजपत्रा, छोटी पीपल, मुनक्का, कौंच, नीलकमल, नागकेशर, अनन्त मूल, वरियारा और कंघी प्रत्येक ½-½ भाग तथा मिश्री २ भाग इनके कपड़छन चूर्ण को जल में पीसकर कल्क वनावें। और घृत में मिलाकर घृत पाक विधि से पकावें। घृत तैयार होने पर कपड़े में छानकर शीशी में भर लें।

मात्रा और अनुपान—आधा से दो तोला (५ से २० ग्राम तक) उतनी ही मिश्री का चूर्ण मिलाकर देवें। ऊपर से दूध पिलावें।

उपयोग—यह उत्तम, पौष्टिक और वाजीकरण है। वीर्यक्षय, वीर्यदोष, शरीर की कृशता, मूत्रकृच्छ्र, उरःक्षत, और नपुंसकता में इनका प्रयोग करें।

—श्री वैद्य कृष्णदत्त शर्मा एच. पी. ए.
सादुलशहर (श्री गंगानगर) राजस्थान

चैंतस और महाचैंतस घृत

—डा० दौलतराम शास्त्री, अध्यक्ष-गुप्तरोग और विद्युत चिकित्सालय

महाचैंतस घृत—

दशमूली तथा रास्ना वातारिस्त्रिवृता बला।
मूर्वा शतावरी चेति क्वाथ्यैस्तु कुडवै: पृथक्॥
कृतै: क्वाथैर्घृत प्रस्थद्वयं मृद्वग्निना पचेत्।
कल्कीकृतैर्वक्ष्यमाण द्रव्यै: सम्यक् पुन: पचेत्॥
विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम्।
स्थिराऽनन्ता रजन्यौ द्वे प्रियंगु: सारिवाद्वयम्॥
नीलोत्पलैला मंजिष्ठा दन्ती दाडिमकेसरम्।
विडगं ह्यग्निपत्री च कुष्ठं चन्दनपद्मके॥
तालीशपत्रं वृहती मालतीकुसुमं नवम्।
अष्टाविंशतिभि: कल्कैरेतै: कर्षमितै: पृथक्॥
चतुर्गुणजलं दत्वा पिष्टैस्तद्विपचेद् घृतम्।
महाचैतसनामेदं सर्वचेतोविकारनुत्॥
अपस्मारे महोन्मादे मन्देऽग्नौ ज्वरकासयो:।
वातरक्ते प्रतिश्याये शोषे कार्श्ये तृतीयके॥
मूत्रकृच्छ्रे कटीशूले विसर्पाभिहतेषु च।
पाण्ड्वामये तथा कण्ड्वां विषे मेहे गरेऽपि च॥
देवादिहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम्।
शस्तं स्त्रीणाञ्च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम्॥
अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहनिवारणम्।
हन्ति भ्रमं मदं मूर्च्छां मेधास्मृति बलप्रदम्॥

—भावप्रकाश चि० प्रकरण उन्मादाधिकार ६२/६१

अर्थ—वेल वृक्ष की छाल, गंभारी छाल, पाढ़ल छाल, अरलू छाल, अरणी छाल, गोखरू पंचांग, छोटी भटकटैया पंचांग, बड़ी भटकटैया (वनभटा) पंचांग, पृष्णपर्णी का पंचांग, शालपर्णी का पंचांग, रास्ना, एरण्ड मूल, निशोथ, बरियारी, मूर्वा और शतावर—इन सबको १६-१६ तोले लेकर जौकुट करके १६ गुने पानी में पकावें। चौथाई पानी बचने पर मसलकर छान लें। इस क्वाथ में २ प्रस्थ (१२८ तोले) असली गोघृत डालकर धीमी आँच पर पकावें। बड़ी इन्द्रायण, हरड़, वहेड़ा, आँवला (तीनों गुठली रहित लें), रेणुका, देवदार, एलुआ, शालपर्णी, धमासा, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, सफेद सारिवा, काला सारिवा, नीलकमल, इलायची, मँजीठ, दन्तीमूल, अनारफल, नाग केशर, वायविडंग, अगिया, कूठ मीठा, लालचन्दन, पद्मकाष्ठ, तालीसपत्र, बड़ी भटकटैया और मालती के ताजे फूल—ये २८ औषधियाँ १-१ तोला लेकर चौगुना पानी डालकर सिल पर पीसकर कल्क (चटनी) बनावें। यह कल्क भी उपर्युक्त मिश्रण में डालकर पकावें। जलीयांश उड़ चुकने पर चूल्हे से उतारकर छानकर घी को सम्हालकर रखें।

यह महाचैंतस नामक घृत मस्तिष्क के समस्त विकारों को नष्ट करने वाला है तथा अपस्मार (मिरगी), महोन्माद (कितना भी उग्र पागलपन), मन्दाग्नि, ज्वर, खाँसी, वातरक्त, प्रतिश्याय (जुकाम), शोष, दुबलापन, तृतीयक ज्वर, मूत्रकृच्छ, कमर का दर्द, विसर्प, अभिघात (चोट), पाण्डु रोग, खुजली, विष-विकार, प्रमेह, गर-विकार, देव-भूत प्रेतादि बाधा के कारण दिमाग ठीक न रहना, तुतलाना, बेहोशी एवं स्त्रियों के बाँझपन में यह प्रशस्त है। यह धन, आयु और बल देने वाला तथा अलक्ष्मी (दुर्भाग्य, गरीबी), पापों, राक्षसों और सब ग्रहों (भूत-प्रेतादि) को दूर करने वाला है। यह भ्रम (चक्कर), मद (नशा किये बिना ही नशे जैसा अनुभव होना) और मूर्च्छा को दूर करके बुद्धि और स्मरणशक्ति देता है।

मात्रा—१ से ४ तोले तक प्रतिदिन सामान्य विकारों में। विशेष मामलों में आवश्यकतानुसार कम या अधिक भी दिया जा सकता है। घृत को थोड़ा गरम करके पीना चाहिए। फिर यदि आवश्यक हो तो मुख शुद्धि के लिये थोड़ा गर्म दूध पी सकते हैं। जो इस तरह न पी सकें, वे गर्म दूध में मिलाकर पी सकते हैं। यह भी सम्भव न हो तो इसमें आवश्यकतानुसार पिसी मिश्री, शक्कर या बूरा मिलाकर खा सकते हैं। यह भी न जमे तो दाल, चावल, रोटी के साथ खा सकते हैं। इस घी से हलवा बनाकर भी खाया जा सकता है।

जब मूर्च्छा, अपस्मार, उन्माद एवं विष की चिकित्सा के लिए यह घृत बनाया जावे तब १ वर्ष से अधिक पुराना घी डालकर बनाना चाहिए। पुराना घी स्वाद में अच्छा

नहीं रहता किन्तु इन रोगों में विशेष लाभप्रद है।

घृत की घटक औषधियों के गुणधर्म

क्वाथ द्रव्य—

१. वेल (Aegle Marmelos)—कषाय, तिक्त, ग्राही रूक्ष, अग्निवर्द्धक, पित्तवर्द्धक, वात, कफ, नाशक, वल-वर्धक, हल्का, उष्णवीर्य और पाचक है।

२. गम्भारी (Gmelina Arborea)—कषाय, तिक्त, मधुर, उष्णवीर्य, पचने में भारी, दीपन, पाचक, बुद्धिवर्धक और मलभेदक है तथा चक्कर, शोष, तृष्णा, आम, शूल, अर्श, विष, दाह और ज्वर को नष्ट करने वाली है।

३. पाढ़ल (पाटला Caesalpinia Blanducella)—कषाय, तिक्त, शीतल, त्रिदोष नाशक और अरुचि, श्वास, शोथ, रक्तविकार, वमन, हिक्का और प्यास को नष्ट करने वाला है।

४. अरलू (सोनापाठा, श्योनाक, Oroxylum Indicum)– अग्निप्रदीपक, पाक में कटु और कसैला, शीतल, ग्राही और कड़वा तथा त्रिदोषनाशक और कासनाशक है।

५. अरणी— (अग्निमन्थ, Clerodendron Phlomoides)—कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, उष्णवीर्य, वात-कफ नाशक, अग्निवर्धक तथा शोथ और पाण्डु रोग का नाश करने वाली है।

६. गोखरू (गोक्षुर, Tribulus Terrestris or Pedaliun Murex)—शीतल, स्वादिष्ट, मधुर, वलवर्द्धक, वस्ति को शुद्ध करने वाला, अग्नि प्रदीपक, वृष्य, पौष्टिक तथा पथरी, प्रमेह, श्वास, खाँसी, ववासीर, मूत्रकृच्छ्र, हृदय रोग और वात को नष्ट करने वाला है।

छोटा या वड़ा कोई भी गोखरू ग्राह्य है।

७. छोटी भटकटैया (कंटकारी, Solanum Xanthocarpum)—दस्तावर, तिक्त, कटु, अग्निप्रदीपक, पचने में हल्की, रूक्ष, उष्ण, पाचक और खाँसी, श्वास, ज्वर, कफ वात, पीनस, पसली का दर्द, कृमि एवं हृदय रोग को नष्ट करती है।

८. वड़ी भटकटैया (बृहती, वनभंटा, Solanum Indicum)–हृदय को वलदायक, पाचक, वात-कफ नाशक, उष्ण और मुख का वेस्वादपन. मुख का मैल, अरुचि, कुष्ठ, ज्वर, श्वास, शूल, खांसी एवं अग्निमांद्य को नष्ट करने वाली है।

९. पृष्ठपर्णी (पिठवन, पृश्निपर्णी, Uraria Logopoides)—त्रिदोषनाशक, वृष्य, उष्ण, दस्तावर और दाह, ज्वर, श्वास, रक्तातिसार, प्यास एवं वमन का नाश करने वाली है।

१०. शालपर्णी (सरिवन, Desmodium Gangeticum)—तिक्त, मधुर, गुरु, वृंहण, रसायन तथा त्रिदोष, शोष, वमन, ज्वर, श्वास, अतिसार, विष, क्षत, खांसी और कृमियों को नष्ट करने वाली है।

उपर्युक्त १० औषधियों का मिश्रण दशमूल कहलाता है। दशमूल त्रिदोषनाशक एवं श्वास, खांसी, शिरोरोग, तन्द्रा, शोथ, ज्वर, अफरा, पसली का दर्द और अरुचि को नष्ट करने वाला है।

११. रास्ना (वायसुरई, Pluchea Lanceolata)—कड़वी, गर्म, भारी, वातकफनाशक, आमपाचक तथा शोथ, श्वास, वातरक्त, वातशूल, उदर रोग, खाँसी, ज्वर, विष, ८० प्रकार के वात रोगों और सिध्म को नष्ट करने वाली है।

१२. एरण्ड (अण्डी, Ricinus communis)—मधुर, गर्म, भारी तथा शूल, शोथ, कमर, वस्ति एवं सिर की पीड़ा, उदर रोग और ज्वर को नष्ट करने वाला है।

१३. निशोथ (यहाँ काली निशोथ C. Turbithum अधिक प्रशस्त है)—तीव्र विरेचक तथा मूर्च्छा, दाह, मद और भ्रम को नष्ट करने वाली तथा कण्ठ को सुधारने वाली है।

१४. वरियारी (वला, खरैटी, Sida Cardifolia)—शीतल, मधुर, स्निग्ध, ग्राही तथा वल एवं कान्ति को बढ़ाने वाली और वातरक्त, रक्तपित्त और क्षत (घाव) को नष्ट करने वाली है।

१५. मूर्वा (चुरनहार, Sanseviera zeylanica)—मधुर और कड़वी, दस्तावर, भारी, त्रिदोषनाशक तथा रक्तपित्त, प्रमेह, तृष्णा, हृदय रोग, खुजली, कुष्ठ और ज्वर का नाश करने वाली है।

१६. शतावर (शतावरी, शतमूली Adds kendens)–मधुर और कड़वी, शीतल, भारी, रसायन, स्निग्ध, मेधा-

वर्द्धक, अग्निवर्द्धक, पौष्टिक, नेत्रज्योतिवर्द्धक, शुक्रवर्द्धक, स्त्रियों का दूध बढ़ाने वाली, बलवर्द्धक तथा गुल्म, अतिसार, शोथ एवं वात, पित्त और रक्त के विकारों का नाश करने वाली है।

फलक द्रव्य—

१. बड़ी इन्द्रायण (Citrullus colocynthis, Cucumis colocynthis)—स्वाद में कड़वी, पाक में चरपरी, दस्तावर, हल्की, उष्ण वीर्य, कफ-पित्त नाशक तथा कामला, प्लीहोदर, श्वास, खांसी, कुष्ठ, गुल्म, ग्रन्थि, व्रण, प्रमेह, मूढ़गर्भ, आम, गण्डमाला और विष को नष्ट करने वाली है। बड़ी इन्द्रायण न मिलने पर छोटी ली जा सकती है।

२. हरड़ (हर्रा, Terminalia Chebula)—मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त और कषाय रसों से युक्त, विशेषतः कसैली, रूक्ष, उष्ण, लघु, पाक में मधुर, अग्नि प्रदीपक, बुद्धिवर्धक, रसायन, नेत्रज्योतिवर्द्धक, आयुवर्द्धक, पौष्टिक, वायु को अनुलोम करने वाली तथा श्वास, कास, प्रमेह, अर्श, कुष्ठ, शोथ, उदर रोग, कृमि, विसर्प, ग्रहणी, कब्ज, विषम ज्वर, गुल्म, अफरा, व्रण, वमन, हिचकी, कण्ठ रोग, हृदय रोग, कामला, शूल, आनाह, प्लीहा रोग, यकृत रोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात का नाश करने वाली है।

३. बहेड़ा (Terminalia Belerica)—कसैला, पाक में मधुर, कफ-पित्त नाशक, रूक्ष, उष्ण वीर्य, स्पर्श में शीतल, दस्तावर, नेत्रों तथा केशों को हितकारक और खांसी, स्वरभेद और कृमियों को नष्ट करने वाला है।

४. आँवला (Embelica Officinalis)—इसके गुण हरड़ के समान हैं किन्तु यह विशेषतः रक्तपित्त और प्रमेह को नष्ट करने वाला तथा अत्यन्त वृष्य और रसायन है। इसके अम्लरस से वात, मधुर रस और शीतलता से पित्त तथा रूक्षता और कषाय रस से कफ का नाश होता है। इस प्रकार आँवला त्रिदोषनाशक है।

हरड़, बहेड़ा और आंवला, इन तीनों की गुठली अलग करके सिर्फ गूदा (छिलका) ही काम में लिया जाता है। इन तीनों के समुदाय का नाम त्रिफला है। त्रिफला दस्तावर, दीपन, रुचिकारक, नेत्रों को हितकारक, कफ-पित्त नाशक तथा प्रमेह, कुष्ठ और विषम ज्वर को नष्ट करने वाला है।

५. रेणुका (निर्गुण्डी के बीज, Vitex Speciosa)—स्वाद में कटु और तिक्त, पाक में कटु, शीतल, हल्की, पित्तवर्द्धक, दीपन, पाचन, बुद्धिवर्द्धक, गर्भपात करने वाली कफवर्द्धक, वातवर्द्धक तथा तृष्णा, खुजली, विष और दाह को नष्ट करने वाली है।

६. देवदार (Cedrus Deodara)—स्वाद में कड़वा, पाक में चरपरा, लघु, स्निग्ध, उष्ण तथा कब्ज, अफरा, शोथ, आम, तन्द्रा, हिक्का, ज्वर रक्तविकार, प्रमेह, पीनस, श्लेष्मा, खांसी, खुजली और वात को नष्ट करने वाला है।

७. एलुआ (मुसब्बर, Aloes)—स्वाद में कसैला, पाक में चरपरा, शीतल, हल्का और खुजली, व्रण, वमन, प्यास, खाँसी, अरुचि, हृदय रोग, कफ, विष, रक्तपित्त, कुष्ठ, मूत्ररोगों और कृमियों को नष्ट करने वाला है।

८. शालपर्णी—इसके गुण ऊपर बतलाये जा चुके हैं।

९. धमासा (दुरालभा, Alhagi camelorum)—मधुर, कड़वा एवं कसैला, शीतल, हल्का, दस्तावर तथा कफ, मेद, मद, चक्कर, रक्तपित्त, कुष्ठ, खाँसी, तृष्णा, विसर्प, वातरक्त, वमन और ज्वर को नष्ट करने वाला है।

१०. हल्दी (हरिद्रा, Curcuma Longa)—कटु, तिक्त, रूक्ष, उष्ण, कफ-पित्त नाशक, वर्ण सुधारने वाली और चमड़ी के विकार, प्रमेह, रक्तविकार, शोष, पाण्डु रोग और व्रणों को नष्ट करने वाली है।

११. दारुहल्दी (Berberis Aristata)—के गुण हल्दी के समान हैं किन्तु यह आँख, कान और मुख के रोगों को भी नष्ट करने वाली है।

१२. प्रियंगु (Prunus Mahaleb)—कड़वा और कसैला, शीतल, वात-पित्त नाशक तथा रक्तातिसार, पसीने की दुर्गन्ध, दाह, ज्वर, गुल्म, तृष्णा, विष और प्रमेह को नष्ट करने वाला है।

१३. सफेद और काला सारिवा (अनन्तमूल, कालीसर Asclepias Pseudosarsa Roxb., Hemidesmus Indicus)—मधुर, स्निग्ध, भारी, त्रिदोषनाशक, शुक्रवर्द्धक तथा अग्निमांद्य, अरुचि, श्वास, खाँसी, आम, विष, रक्तविकार, प्रदर, ज्वर और अतिसार को नष्ट करने वाले हैं।

१४. नीलकमल (Nelumbium Speciosum)—मधुर, शीतल, वर्ण सुधारने वाला, कफ-पित्त नाशक तथा

तृष्णा, दाह, रक्तविकार, विस्फोट, विष और विसर्प का नाश करने वाला है।

१५. इलायची (एला, बड़ी इलायची, डोंडा, Large cardamomum)—स्वाद और पाक में चरपरी, लघु, रूक्ष, उष्ण, वातकारक तथा कफ, पित्त एवं रक्त के विकार, खुजली, श्वास, प्यास, हृल्लास, विष, वमन, खाँसी और वस्ति, मुख एवं शिर के रोगों को नष्ट करने वाली है।

कुछ लोग 'एला' शब्द से छोटी इलायची ग्रहण करते हैं। वह चरपरी, शीतल, हल्की, वातनाशक, कफ नाशक तथा श्वास, खांसी, अर्श और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करने वाली है।

१६. मंजीठ (मंजिष्ठा, Rubia Cordifolia)— मीठी, कड़वी, कसैली, भारी, गरम, स्वर एवं वर्ण को सुधारने वाली तथा विष, कफ, शोथ, रक्तातिसार, कुष्ठ, रक्तविकार, विसर्प, व्रण, प्रमेह और योनि, आँख एवं कान के रोगों को नष्ट करने वाली है।

१८. दन्ती (Croton Polyandrum)—रस एव पाक में कटु, अग्निप्रदीपक, दस्तावर, तीक्ष्ण, उष्ण तथा अर्श, पथरी, शूल, खुजली, कुष्ठ, विदाह, शोथ, उदररोग, कृमि और पित्त कफ एवं रक्त के विकारों को नष्ट करने वाली है।

छोटी और बड़ी दोनों दन्तियों के गुण समान है अत: कोई भी ग्राह्य है।

१९. अनारफल (Punica Granatum)—मीठा अनार मधुर के साथ थोड़ा कसैलापन लिए हुए हल्का, ग्राही, स्निग्ध, तर्पण, बुद्धि, बल एवं वीर्य बढ़ाने वाला, त्रिदोषनाशक तथा प्यास, दाह, ज्वर, हृदयरोग, कण्ठरोग और मुख की गन्ध को नष्ट करने वाला है।

खटमिट्ठा अनार हल्का, दीपन, रुचिकारक और किंचित् पित्तक रेक है।

खट्टा अनार पित्तवर्धक तथा आम, वात और कफ को नष्ट करने वाला है।

इस घृत में ताजे मीठे वेदाना अनार के दाने डालने चाहिए। गीले होने के कारण दूने लेना चाहिए। कुछ लोग सूखा अनारदाना डालते हैं—यह गलत है।

२०. नागकेशर (Mesua Ferria Linn)—कसैला, गरम, रूखा, हल्का, आमपाचन तथा ज्वर, खुजली, प्यास, पसीना, वमन, उबकाई, दुर्गन्ध, कुष्ठ, विसर्प, कफ, पित्त और विष को नष्ट करने वाला है।

२१. वायविडग (विडंग, Embelia Ribis)—चरपरी, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, हल्की, अग्निवर्धक, वात कफ नाशक और शूल, अफरा, उदररोग, कृमि तथा कब्ज को नष्ट करने वाली है।

२२. अग्निपत्री (अंगिया)—चरपरी और गरम है। इसके न मिलने पर चित्रक मूल डालें।

२३. कूठ (कुष्ठ, मीठा कूठ, Sassuria Lappa)— मीठा, चरपरा, कड़वा, हल्का, वात कफ नाशक, वीर्यवर्धक तथा वातरक्त, विसर्प, खाँसी और कुष्ठरोग को नष्ट करने वाला है।

२४. लालचन्दन (Pterocarpus Santalum)— मधुर, कड़वा, भारी, शीतल, वृष्य तथा वमन, प्यास, रक्तपित्त, ज्वर, व्रण और विष को नष्ट करने वाला है।

२५. पद्मकाष्ठ (पद्मक, Prunus Pudum)—कसैला, कड़वा, शीतल, वातवर्धक, हल्का, गर्भस्थापक, वृष्य तथा विसर्प, दाह, विस्फोट, कुष्ठ, कफ, रक्तपित्त, वमन, व्रण और प्यास को नष्ट करने वाला है।

२६. तालीस पत्र (Abies Webbiana Lindl)— लघु, तीक्ष्ण, उष्ण तथा वात, कफ, श्वास, खाँसी, अरुचि, गुल्म, आम, मंदाग्नि और क्षयरोग को नष्ट करने वाला है।

२७. बड़ी भटकटैया—इसके गुण ऊपर बतलाये जा चुके हैं।

२८. मालती के फूल (Jasminum Grandiflorum)- कसैले, कड़वे, गरम, हल्के, दोषनाशक तथा सिर, आँख, मुख और दाँत के रोगों, विष, कुष्ठ, व्रण एवं रक्तविकार को नष्ट करने वाले हैं। ताजे फूल गीले होने के कारण दूने लेने चाहिए।

उपर्युक्त २८ औषधियाँ और कल्याण घृत की औषधियाँ लगभग समान हैं, केवल अग्निपत्री के स्थान पर पृष्ठपर्णी है। कल्याण घृत अपस्मार, ज्वर, खाँसी, शोष, मन्दाग्नि, वातरक्त, प्रतिश्याय, तिजारी, चौथिया, वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, चोट, खुजली, पाण्डु, उन्माद, विषम ज्वर, भूतावेश, तुतलाहट, बेहोशी, वन्ध्यत्व और

ग्रहावेश को नष्ट करने वाला, धन, आयु और बल बढ़ाने वाला, अलक्ष्मी पाप और रोग नष्ट करने वाला तथा पुरुषत्व बढ़ाने वाला है।

महान् इस घृत में कल्याण घृत की औषधियों के अतिरिक्त दशमूल, रास्ना, एरण्ड, निशोथ, वरियारी, मूर्वा और शतावर हैं। इसलिये यह कल्याण घृत की अपेक्षा अधिक गुणकारक है। इसके जो-जो गुण ऊपर बतलाये गये हैं, वे सब अक्षरशः सत्य है। पहले मैंने इसे बहुत बनाया और प्रयुक्त किया।

महाचैतस घृत के गुण-धर्म प्रयोग

उन्माद, अपस्मार, हिस्टीरिया और ग्वारपाठे का १ पत्र छीलकर कड़ाही में गरम करना। पिघलने पर १ छटांक आटा या सूजी या सिंघाड़े का आटा डालकर भूनते जाना और थोड़ा-थोड़ा करके लगभग ४ तोले महाचैतस घृत डालना। भुन चुकने पर शक्कर और पानी डालकर पकाकर हलवा बनाना। इसमें ३-४ रत्ती वच चूर्ण मिलाकर खिलाना। केवल प्रातःकाल रोज देना काफी होता है। बहुत उग्र रोगों में सुबह शाम दोनों समय भी दिया है। हानि कभी नहीं हुई हमेशा लाभ ही हुआ है। उन्माद, हिस्टीरिया और भूतबाधा १-२ माह में ठीक होते हैं, और ठीक होने में जितना समय लगता है, उतने ही दिन और सेवन करा देने से पुनराक्रमण का भय नहीं रहता। अपस्मार मे १-२ माह सेवन कर चुकने पर लाभ हो जाता है किन्तु कम से कम १ वर्ष सेवन कराना चाहिए। आभ्यन्तर सेवन के साथ-साथ इसी घृत को आंखों में आँजना, नस्य देना और सिर पर मलना भी लाभदायक है। उन्माद और अपस्मार के रोगियों को पथ्य में केवल दूध-भात देना हितकर है। भूतबाधा और हिस्टीरिया के रोगियों को सामान्य हल्का भोजन देना चाहिए। यदि रोग उग्र न हो या रोगी पचा न सके तो घृत की मात्रा कम कर सकते है। इन रोगों के कुछ रोगियों के साथ १ तोला घृत प्रति दिन केवल सुबह और कुछ को सुबह-शाम पिलाकर भी रोग मुक्त किया है।

मन्दाग्नि और जीर्ण ज्वर में १-१ तोला घृत भोजन के साथ दोनों टाइम देने से लाभ होता है।

प्रतिश्याय—जल्दी-जल्दी जुखाम होना या हमेशा जुखाम बना रहना अत्यन्त कष्टदायक होता है। दूध के साथ यह घृत १-१ तोला प्रतिदिन लेने और जरा से घृत का नस्य लेने से यह विकार नष्ट होता है।

खाँसी— $\frac{1}{4}$ तोला यह घृत, शक्कर मिलाकर दिन में ४ बार चाटने से सूखी खाँसी में पहले ही दिन लाभ होता है और ३-४ दिनों में पूर्ण लाभ होता है। दवा के बाद कम से कम १ घंटे तक पानी नहीं पीना चाहिए। इसके अलावा जब तक इलाज चले गुनगुना पानी पीना चाहिए। कुकर खाँसी में इसी विधि से सेवन कराने से ८-१० दिनों में पूर्ण लाभ होता है। साधारण गीली खाँसी में इसका प्रयोग नहीं किया।

शोष—अध्वशोष, व्यायाम शोष एवं जराशोष के लिए यह घृत अद्वितीय औषधि है। सुबह शाम दूध के साथ १-१ तोला दें या जितना रोगी पचा सके (४ तोले से अधिक नहीं) केवल सुबह दूध के साथ दें या इस घृत से बादाम या निशास्ता या आटा का हलवा बनाकर खिला दें। कुछ ही दिनों में शरीर हरा-भरा हो जाता है। कार्श्य (जन्मजात दुबलापन) के लिए भी यही विधि है।

मूत्रकृच्छ्र—पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि से होने वाली मूत्र की रुकावट और भूतकाल मे हुए सुजाक से उत्पन्न मूत्र नलिका सांकर्य से होने वाली मूत्र की रुकावट इस घृत का सेवन ४-६ माह कर लेने से सदा के लिए दूर होती है। दूध के साथ १ तोला घृत रोज सुबह लेना चाहिए।

कमर का दर्द—१-१ तोला घृत, दूध के साथ या भोजन के साथ दिनमें २ बार लेने से कुछ दिनों में लाभ होता है।

अभिघात—गिरने अथवा लाठी आदि की चोट एवं सूजन को यह जल्द से जल्द दूर करता है। तुरन्त ४ तोले घृत दूध के साथ देना चाहिये। फिर १-१ तोला सुबह-शाम दूध के साथ और १-१ तोला दोनों भोजनों के साथ देना चाहिए। यदि घाव हो गये हों तो उनका उचित उपचार करने के साथ-साथ यह घृत सेवन कराने से दर्द कम होता है, शरीर को बल मिलता है और घाव जल्द सूखते हैं। हड्डी टूटने पर प्लास्टर कराने के साथ-साथ इसका सेवन कराने पर हड्डी शीघ्र जुड़ती है। मोच एवं हड्डी खिसक जाने में भी इसी प्रकार लाभ होता है। कुछ लोगों को वर्षों पूर्व लगी चोट के स्थान पर हमेशा या
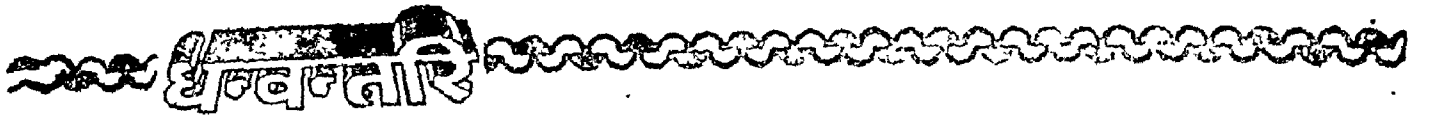
कभी-कभी दर्द होता है। उन्हें १-१ रोज सुबह दूध के साथ कम से कम ६ माह पिलाने से लाभ होता है।

विष एवं गर—विष के तीव्र प्रभाव को नष्ट करने में भी यह घृत समर्थ है; सर्प विष, बिच्छू विष, तूतिया एवं संखिया विष पर यह अवश्य लाभप्रद होगा। किन्तु मुझे प्रयोग करने का अवसर नहीं मिला। तुरन्त ४ तोले पिलाना चाहिए और फिर जब तक मनुष्य स्वस्थ न हो, थोड़ी थोड़ी देर पर १-१ तोला देते रहना चाहिए। यदि वमन हो जावे तो तुरन्त उतनी ही मात्रा फिर देनी चाहिए। तूतिया एवं संखिया के मामले में पहले वमन कराकर फिर घृत देना चाहिए।

विष का उग्र वेग अन्य उपचारों से शांत हो जाने के बाद भी बहुत दिनों तक निर्बलता, चक्कर, प्यास, निस्तेजता आदि लक्षण बने रहते हैं, वशीकरण आदि के लिए धोखे से खिलाये गए अखाद्य पदार्थों के प्रभाव से तथा संयोग विरुद्ध पदार्थों के सेवन से भी ऐसे ही लक्षण होते हैं। ऐसे मामलों में १-१ तोला यह घृत दूध के साथ सुबह शाम कुछ दिनों तक देने से उक्त सभी विकार नष्ट हो जाते हैं। भ्रम, मद और मूर्च्छा का यही इलाज है।

वन्ध्यत्व—स्त्री या पुरुष की जननेन्द्रिय में कोई खराबी होने से गर्भ नहीं रहता। उसका पता लगाकर उसकी विशिष्ट चिकित्सा करने पर ही वन्ध्यत्व दूर होकर सन्तान होती है। किन्तु कुछ ऐसे भी स्त्री-पुरुष मिलते हैं जिनमें भली-भाँति जाँच करने पर भी कोई खराबी नहीं पायी जाती, फिर भी सन्तान नहीं होती। ऐसे स्त्री-पुरुष को यह घृत १-१ तोला, दूध या भोजन के साथ प्रतिदिन लगभग १ वर्ष तक सेवन कराने से अवश्य सन्तान होती है। गर्भ ठहर जाने पर पुरुष सेवन बन्द कर दें किन्तु स्त्री प्रसव होने तक चालू रखें।

गर्भपात—अक्सर गर्भ गिर जाने की शिकायत जिन स्त्रियों को रहती है, यदि यह विकार फिरंग के कारण न हो, तो उन्हें गर्भ ठहरने के पहले ही यह घृत १-१ तोला रोज सुबह दूध के साथ लेना चालू करना चाहिए और कम से कम गर्भ के ९ वें माह तक चालू रखना चाहिए। गर्भ नहीं गिरेगा और सुन्दर सन्तान होगी।

मासिक धर्म के अधिकांश विकारों में यह लाभप्रद है। विशेषतः नवयुवतियों को मासिक धर्म के समय पर होने वाली पीड़ा को दूर करता है, कम-अधिक मात्रा को सम करता है और समय को नियमित करता है। मात्रा १ तोला रोज प्रातःकाल दूध के साथ।

स्मरण शक्ति, बुद्धि, बल और चेहरे की रौनक के लिए तथा बीमारी या प्रसव के बाद की कमजोरी दूर करने के लिए भी यह अत्युत्तम है। किसी भी रीति से प्रतिदिन १ या २ तोले की मात्रा में लेने से कुछ ही दिनों में चमत्कारिक लाभ होता है। इसके सेवन से बुद्धि का विकास होकर सतोगुण की ओर प्रवृत्ति होती है इसीलिए इसे अलक्ष्मी और पाप का नाश करने वाला कहा गया है। मूढ़, आलसी, उपद्रवी एवं कुमार्गगामी लोगों या बालकों को दीर्घकाल तक इसका सेवन कराया जावे तो सुधर सकते हैं।

महर्षि नित्यनाथ सिद्ध कृत रसरत्नाकर, चक्रदत्त तथा भैषज्य रत्नावली में महाचैतस घृत के पाठ में थोड़ा अन्तर है। इन ग्रन्थों में चैतसघृत का भी वर्णन है। पाठकों की ज्ञानवृद्धयर्थ ये दोनों नीचे उद्धृत कर रहा हूं—

चैतस घृत (स्वल्प चैतस घृत)—

पंचमूल्यावकाश्मर्यौ रास्नैरण्डत्रिवृद्बला।
मूर्वा शतावरी चेति क्वाथैर्द्विपलिकैरिमैः॥
कल्याणकस्य चांगेन तद् घृतं चैतसं स्मृतम्।
सर्वन्वेतोविकाराणां शमनं परमं मतम्॥

अर्थ—गम्भारी को छोड़कर दोनों पंचमूल (अर्थात् वेल, पाढ़ल, अरणी, अरलू, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी भटकटैया, छोटी भटकटैया और गोखरू) रास्ना, एरण्डमूल, निशोथ, बरियारी की जड़, मूर्वा और शतावर ८-८ तोले लेकर जौकुट करके १२ सेर जल में पकावें। चौथाई रहने पर छानें। कल्याण घृत की औषधियाँ (अर्थात् इन्द्रायणमूल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, रेणुका, देवदारु, एलुवा, शालपर्णी, जवासा हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, सफेद सारिवा, काला सारिवा, नीलकमल, इलायची, मंजीठ, दन्तीमूल, अनार फल, नागकेशर, वायविडंग, अगिया, कूठ, लालचन्दन, पद्मकाष्ठ, तालीसपत्र, बड़ी भटकटैया और मालती के ताजे फूल) आधा-आधा तोला लेकर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। उपर्युक्त क्वाथ और इस कल्क के

साथ ६४ तोले गोघृत पकाकर सिद्ध करें। यह चैतस नामक घृत समस्त मानस रोगों को शान्त करने में श्रेष्ठ माना गया है।

महाचैतस घृत—

शणस्त्रिवृत्तथैरण्डो दशमूली शतावरी।
रास्ना मागधिका शिग्रु क्वाथ्यं द्विपलिकं भवेत् ॥
विदारी मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ शिवा* तथा।
एभिः खर्जूरमृद्वीका भीरु युंजात गोक्षुरैः ॥
चैतसस्य घृतस्यापिः पक्तव्यं सर्पिरुत्तमम्।
महाचैतससंज्ञन्तु सर्वापस्मारनाशनम् ॥
गरोन्मादप्रतिश्याय तृतीयक चतुर्थकान्।
पापालक्ष्मीर्जयेदेतत्सर्वग्रह निवारणम् ॥
श्वासकासहरं चैव शुक्रार्त्तवविशोधनम्।
नित्यं युंजातकाभावे तालमस्तकमिष्यते ॥

अर्थ—सन के बीज, निशोथ, एरण्डमूल, दशमूल (बेल, गंभारी, पाढ़ल, अरणी, अरलू, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी भटकटैया, छोटी भटकटैया और गोखरू), शतावर, रास्ना, लेडीपीपर और सँहजने की छाल ८-८ तोले लेकर क्वाथ करें। विदारीकंद, मुलहठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, हरड़, खजूर, मुनक्का, शतावर, युंजात, गोखरू और चैतसघृत के कल्क की समस्त औषधियाँ आधा-आधा तोला लेकर जल के साथ पीसकर कल्क करें। इस कल्क और उपर्युक्त क्वाथ के साथ ८० तोले घृत पकाकर सिद्ध करें। यह महाचैतस नामक घृत सभी प्रकार के अपस्मारों (मिरगी) को तथा गर, उन्माद, प्रतिश्याय, तिजारी, चौथिया, पाप, दुर्भाग्य, भूत बाधा, श्वास और खांसी को नष्ट करने वाला तथा शुक्र और आर्तव को शुद्ध करने वाला है।

युंजात के अभाव में ताड़ वृक्ष का ऊपरी कोमल भाग लेना चाहिए।

इन दोनों घृतों की मात्रा एवं प्रयोग विधि पूर्वोक्त के समान ही है। पूर्वोक्त महाचैतस घृत की अपेक्षा यह महाचैतस घृत अधिक गुणकारी है।

गद-निग्रह में चैतस घृत का योग अत्यन्त भिन्न एवं संक्षिप्त मिलता है, यथा—

चैतस घृत—

श्यामा मधुरसा रास्ना दशमूलं शतावरी।
श्वदंष्ट्रा शणमूलं च तैर्युक्त्या क्वाथ कल्कितैः ॥
साधितं चैतसं नाम घृतं चेतोविकारनुत्।
उन्मादमदमूर्च्छाय ज्वरापस्मार भेषजम् ॥

अर्थ—काली निशोथ, मूर्वा, रास्ना, दशमूल (बेल, गम्भारी, पाढ़ल, अरलू, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी भटकटैया, छोटी भटकटैया और गोखरू), शतावर, गोखरू और सनकी जड़—इनके क्वाथ और कल्क से विधिपूर्वक सिद्ध किया हुआ घृत चैतस घृत कहलाता है। यह मस्तिष्क के विकारों को नष्ट करता है तथा उन्माद, मद, मूर्च्छा, अपस्मार और ज्वर की औषधि है।

उक्त औषधियां ८-८ तोले लेकर १२ सेर जल में पकाकर ३ सेर रहने पर छानना चाहिए। इन्हीं को १-१ तोला जल के साथ पीसकर कल्क बनाना चाहिए। इस क्वाथ और कल्क के साथ ६० या ६४ तोले घृत पकाकर सिद्ध कर लेना चाहिए।

उक्त योग में गोखरू दो बार आया है। अतः एक जगह पर छोटा गोखरू और दूसरी जगह पर बड़ा गोखरू लेना चाहिए।

यह चैतस घृत पूर्वोक्त के समान गुणकारी तो नहीं है किन्तु काम करता है। जब पूर्वोक्त बड़े नुस्खे बनाने का समय न हो, तब इसे बनाकर काम चलाया जा सकता है।

—डा० दौलतराम शास्त्री
अध्यक्ष—गुप्त रोग और विद्युत चिकित्सालय
१४५८ नेपियर टाउन,
मदन महल स्टेशन के पास
जबलपुर (म०प्र०)

* चक्रदत्त में 'शिवा' के स्थान पर 'सिता' पाठ है जिसका अर्थ टीकाकार ने सफेद दूब या खांड़ किया है।

छागलाद्य घृत

श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

संदर्भ—वैद्य सहचर।

विशुद्ध नया घृत ४ सेर मिट्टी के बर्तन में रखकर गर्म करें। उसमें से फेन निकलना बन्द हो जाय तब उतार लें। कुछ शीतल होने पर ८ तोला हल्दी का रस या कल्क डालकर घृत का मूर्च्छन (आम पाचन) करना चाहिए।

कल्क द्रव्य—बला पंचांग १० तोला, गोखरू पचांग १० तोला, अश्वगन्धामूल, सरिवन, गुडूची, भूमि कुमेड़ा, काकोली, क्षीर काकोली प्रत्येक १०-१० तोला लेकर कल्क या लुगदी करें, जल ४ सेर। कल्क और जल घी में डाल कर गर्म करें। कुछ जल रहने पर ही उतार लें, फिर २-३ दिन पड़ा रहने दें। तीसरे दिन स्वस्थ पुष्ट बकरे का मांस १२ सेर खूब काटकर १ मन २४ सेर जल में पकावें। १६ सेर रहने पर मोटे कपड़े से छान लें। फिर उसे घी में मिलाकर मध्यम पाक कर ६४ तोले शक्कर, आध सेर मधु मिलाकर मिट्टी के बर्तन में रख लेना चाहिए। २-३ तोला शालि चावलों के भात के साथ दिन में एक बार खाना चाहिये।

उपयोग—

जीर्ण ज्वर और क्षय रोग में ज्वरादि रहने पर भी इसका प्रयोग लाभप्रद है। क्षय कास आदि रोग इसके सेवन से दूर हो जाते हैं। इसके सेवन करने से अल्प समय में ही शरीर पुष्ट हो जाता है और अशक्ति निवारण हो जाती है। यह कॉड लिवर आयल से उत्तम है। जो चिकित्सक कॉड लिवर आयल का प्रयोग करते हैं उन्हें चाहिए इस छागलाद्य घृत का प्रयोग करें। क्षय रोग में सभी धातुयें क्षीण हो जाती हैं, अतः दूध घी आदि के उत्तम आहार से धातुओं का पोषण होता है। जो रोगी शत-शत सूचिकायें लगवा लेते हैं पर भोजन अच्छा नहीं करते अथवा शुक्र व्यय करते रहते हैं ऐसे क्षयी रोगी ठीक नहीं होते। शा० सि० प्रयोगांक प्रथम भाग में स्वर्ण वसन्त मालनी के अनेक मिश्रण दिए हैं या रुदन्ती कं० के अनुयोग रूप से प्रवाल पंचामृत के अनेक मिश्रण दिए हैं। स्वर्ण सर्वांग सुन्दर रस भी दिया है। उनमें उचित मिश्रण का सेवन करते हुए एक बार इस घृत का भी सेवन करना चाहिए। ऐसा करने से १०-१५ दिनों में लाभ होने लगता है। २-३ मास में ५-७ किलो शरीर का भार बढ़ जाता है पर १ बार च्यवनप्राश भी सेवन करना चाहिए। ३ मास में यक्ष्मा दण्डाणु नष्ट हो जाते हैं।

—श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव
पो० अरौल, (कानपुर)

जीरकाद्य घृत

ग्रन्थ नाम—भैषज्य रत्नावली।

पिष्टाजाजीसधान्यकम् इत्यादौ।

निर्माण विधि—जीरा ६४ तोला, धनिया ६४ तोला, जल १२/१२/४ छटाँक लेकर यथाविधि चतुर्थांश औटाकर अवशेष रव गव्य घृत ३/३/१ तोला में डालकर पुनः पाक करें। घृत मात्र अवशेष रहने पर उसका प्रयोग अम्लपित्त मन्दाग्नि तथा वमन की शान्ति के लिए किया जावे।

मात्रा—१ से ४ तो. शारीरिक सानुकूलता देखकर।

घटकों के गुण—

धनियां प्रधान कार्य पाचन संस्थान उष्ण, वीर्य मधुर, विपाकी, त्रिदोषघ्नः, गुणदीपन, पाचक मूत्रल, शीतल, संग्राही, पित्तशामक, अवृष्य, दाह, तृष्णा, आमदोष, पाक नाशं, वमन, अतिसार, आमाजीर्ण नाशक है।

जीरा – प्रधान कार्य, पाचक संस्थान, गर्भाशय, कटुरस, उष्णवीर्य, कटुविपाक, वातकफ नाशक, पित्तलागुण, दीपन, लघु संग्राही, रूक्ष गर्भाशय शोधन, शोथहर, वीर्य, अजीर्ण, अग्निमांद्य, वमन, उदराध्मान, गुल्म, अतिसार नाशक, कृमि प्रसूतिरोगहर है।

—आयुर्वेदाचार्य श्री विरिञ्चिलाल शास्त्री
भिषगरत्न आयुर्वेद वाचस्पति (एम. एस. सी., ए.)
आयुर्वेद बृहस्पति (डी. एस. सी. ए.)
इस्लामपुर झुन्झुनूं (राजस्थान)

दाडिम दूर्वादि घृत (कल्पित योग)

वैद्या श्रीमती सावित्री शास्त्री आयुर्वेदरत्न, आगरा

यह प्रयोग मेरा शतशोऽनुभूत है। मेरे पूज्य पिता :व० पं० बुद्धदेव जी उपाध्याय, धारा नगरी निवासी ने इस सिद्ध प्रयोग से सैकड़ों निराश रोगियों में आयुर्वेद चिकित्सा के प्रति श्रद्धा बैठा दी थी। यह उन्हीं से प्राप्त हुआ सफल योग है।

प्रयोग घटक—अनार की हरी पत्तियों का स्वरस १। सेर, हरीदूब का स्वरस १/२ सेर, गेंदे की पत्तियों का ;वरस पावभर, शुद्ध गोघृत आधा सेर।

निर्माण विधि—सभी स्वरसों को पृथक-पृथक निकाल कर मिला लें। शुद्ध गौघृत भी साथ ही मिश्रित कर मन्दाग्नि से पाक करें, कई दिनों में घृत का मदुपाक होने पर जब स्वरस समाप्त हो जाय, घृत ही शेष रहे, सूक्ष्म वस्त्र से छानकर नीली शीशी में सुरक्षित रखें।

प्रयोग के विशिष्ट गुण—नाक से आने वाला रक्त नकसीर, आँख, कान से निकलने वाला रक्त, अधोगत सभी प्रकार का रक्तपित्त, नासाकृमि, उदरकृमि, शिरोभ्रम, पित्तिक शिरोर्ति आदि रोग समूल नष्ट होते हैं। यह घृत अन्दर के घावों को भी ठीक कर देता है तथा रूक्षता को दूर करता है।

मात्रा एवं प्रयोग—

नासिका से आने वाले सभी प्रकार के रक्त को रोकने के लिए गले हुए घृत को नाक में डालकर सूतें, कई वार नासिका छिद्रों में टपकावें, ललाट व मस्तिष्क पर मर्दन करें। नेत्र व कर्ण के पूरण से इनका रक्तस्राव वन्द होता है। गुदा व मेढ़ू मार्ग के रक्तस्राव पर २॥-२॥ तोला उक्त घृत का पान तीन वार तीन-तीन घण्टे वाद करवायें, साथ ही वस्ति द्वारा अन्तः क्षेप करें। स्त्रियों के अत्यधिक रक्तस्राव में भी उभयविध प्रक्रिया सफलता के लिए आवश्यक है। इस घृत के विधिवत् प्रयोग से सभी प्रकार के रक्तपित्त नष्ट हो जाते हैं।

गुण धर्म विश्लेषण—

दाडिम दूर्वादि घृत में अनार की पत्तियों का स्वरस दाहशामक, व्रण रोपण, पित्तशामक एवं सन्धानकारक है, विष नाशक होने से कीटाणुओं का नाश करता है रोपण व सन्धानक होने से अग्र सूक्ष्म केशिकाओं व रक्त वाहिनियों के मुखों को जोड़ देता व व्रणों को कृमि रहित करके रोपित कर देता है जिससे रक्तस्राव शांत होता है।

दूर्वा स्वरस—शीतल, पित्तशामक, दाहनाशक एवं जीवनशक्ति देने वाला पौष्टिक है। गर्मी व पित्त विकृति से होने वाले सभी स्रावों के रोकने में पूर्णतया समर्थ है।

गेंदे का स्वरस—शीतल ग्राही व पित्तशामक है। नस्य, पान व लेप आदि से रक्तस्रावों को तत्काल रोकता है।

गोघृत पित्तनाशक, विषनाशक, योगवाही, जीवनीय एवं रक्तरोधक है। इस प्रकार यह "दाड़िम दूर्वादि घृत" परीक्षित सिद्ध योग है।

—वैद्या श्रीमती सावित्री शास्त्री आयुर्वेद रत्न,
सावित्री संस्थान, इन्द्रभवन,
१/१३ पंचकुइयां मार्ग, आगरा-२ (उ. प्र.)

कविराज श्री बी० एस० प्रेमी एम.ए.एम.एस.

पंचगव्य घृत का परिचय--यह घृत "चरक संहिता" चिकित्सा स्थान अध्याय दस के अन्तर्गत श्लोक संख्या १६-२२ तक वर्णन किया गया है। इसका विधान अपस्मार (मिरगी) रोग के समूल विनाश के लिए किया गया है। यह घृत दो प्रकार का है--(क) पञ्चगव्य घृत तथा (ख) महापञ्चगव्य घृत। प्रथम घृत में गौ के घृत दुग्ध, मूत्र, दधि और गोबर का रस कुल ये पाँच ही द्रव्य ग्रहण किए गए हैं। जबकि द्वितीय घृत में इनके अतिरिक्त अन्य औषधियाँ भी ली गई हैं।

सुश्रुत संहिता में--यह घृत केवल "पंचगव्य घृत" के नाम से अपस्मार रोग की चिकित्सा में वर्णन किया गया है। यहां का प्रयोग सरल और सुसाध्य है। इसमें पड़ने वाले सभी द्रव्य सुगमता से मिल जाते हैं। इस प्रयोग के रचयिता आचार्य सुश्रुत ने इस योग की प्रशंसा में जो कुछ लिखा है वह अनुभव एवं परीक्षण करने पर शतप्रतिशत सत्य सिद्ध हुआ है। हमने लगभग एक सौ ब्यालीस रोगियों पर इसका अनुभव किया है, और चरकोत्र ने इसी घृत का उपयोग तिरासी रोगियों पर किया है। सुश्रुत के प्रयोग से एक सौ बत्तीस और चरकोत्र घृत से तिरासी रोगियों में से उनतालीस ही सिद्ध हुए हैं। जबकि रोगियों के दोष, दूष्य, बलाबल, देशकाल, ऋतु पथ्यापथ्य आदि सभी समान थे। यहां तक कि रोगियों की आयु में भी कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं था।

इसका कारण ?—दोनों संहिताओं में अन्तर—सभी प्रकार से समानता होने पर भी चरकोक्त पंचगव्य घृत का और सुश्रुतोक्त घृत का रोगियों के स्वस्थ होने में इतना अन्तर क्यों है ? इसका अन्तर है दोनों संहिताओं के नुस्खे में पड़ने वाले द्रव्यों में भारी अन्तर है। यह बात अनुसंधान एवं प्रयोग से सिद्ध हुई है। चरकोक्त प्रयोगों में कई द्रव्यों में रोग, दोष, प्रभाव और विपाक की दृष्टि से भारी असंगति है—यथा-"त्रिवृता निचुलानिच" चरक अ० १० श्लोक संख्या १६ में उक्त दोनों द्रव्य परस्पर विरोधी हैं और अपस्मार नष्ट करने में बाधक हैं। यही कारण है कि आचार्य सुश्रुत के इसी प्रयोग में उत्तर तन्त्र अ० ६१ श्लोक संख्या ३४-३७ में निचुल द्रव्य का निर्देश नहीं है। निचुल का अर्थ चाहे इज्जल करें या जलवेतस करें, तो भी मूल आपत्ति का निराकरण नहीं हो पाता। इसी प्रकार से चरकोक्त इस प्रयोग मे आढ़की रोहिप, भूतीकं ये द्रव्य भी उक्त प्रकरण में आपत्ति ग्रस्त है। इसी प्रकरण में गौ का खट्टा दही लेने का निर्देश भी पूर्णरूपेण बाधक है। सुश्रुत में ऐसा निर्देश नहीं है।

सुश्रुत की विशेषता—आचार्य सुश्रुत ने पंचगव्य घृत में वचा और वायविडङ्ग इन दो द्रव्यों का प्रयोग किया है जबकि चरकोक्त प्रयोग में इनका नाम तक नहीं हैं। अपस्मार रोग के लिए वचा का उपयोग द्रव्यगुण शास्त्रकारों ने प्रमुखता से दिया है। यही कारण है कि सुश्रुतोक्त पंचगव्य घृत शतप्रतिशत सफल सिद्ध हुआ है।

चरक में—उक्त आपत्तियों का कारण चरक के पाठों को समय-समय पर जो संग्रहकारों ने एकत्र किया है, उस समय इन बातों का ध्यान चूक जाने से हुआ है। यह भी देखने में आया है कि संहिताग्रन्थों के अनेक टीकाकार अथवा भाष्यकार वस्तुतत्व के सुलझे हुए ज्ञाता न थे अतः कई स्थलों

पर अर्थ का अनर्थ भी हुआ है। यथा—चरकोक्त उक्त योग में रोहिष शब्द का अर्थ रोहितक किया है। सभी जानते हैं कि रोहितक अर्थात् रोहेड़ा तम एवं रजोगुणी तत्व प्रधान द्रव्य है उस स्थिति में अपस्मार की चिकित्सा में उपशय का ध्यान न रखकर अनुपशय का विधान करना कहां तक उचित है। यह आयुर्वेदज्ञों के लिए एक विचारणीय प्रश्न है। फिर एक बात और भी है—कि "रोहिष" द्रव्य स्वतः ही सीधा तमोगुण नाशक होने से (चूंकि सुश्रुत संहिता में एलादि गण में इसका पाठ आया है) इसी को रहने देते। पाठान्तर करके पर्याप्त हानि हुई है।

पंचगव्य घृत—

आचार्य चरक ने एक श्लोक में साधारण रूप से निम्न लिखित पंचगव्य घृत का निरूपण किया है—

गोशकृद्रस दध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम्।
सिद्धं पिबेदपस्मार कामला ज्वरनाशनम्॥१६॥

अर्थात्—गव्यघृत के समान मात्रा में गव्य गोमय स्वरस, अम्ल, दही, दूध और मूत्र को मिला कर यथाविधि घृत सिद्ध करें। यह पंचगव्य घृत है। यह अपस्मार कामला और ज्वर को नष्ट करता है। मात्रा एक तोला की होनी चाहिये।

क—खण्डन—इस श्लोक की हिन्दी व्याख्या व टीका में परम आदरणीय आचार्य प्रवर श्री जयदेव जी ने मात्रा प्रमाण तीन माशा लिखा है, वह मिथ्या है। किसी भी स्थिति में तीन माशा पंचगव्यघृत की मात्रा कार्यकारी नहीं हो पाती। यह हमने वर्षों के अनुभव के पश्चात् सिद्ध किया है।

महा पञ्चगव्यघृत—

आचार्य चरक ने निम्न प्रकार से इस घृत का निरूपण किया है—

"द्वे पंच मूल्यौ त्रिफलां रजन्यौ कुटज त्वचम्।
सप्तपर्ण मपामार्गं नीलनीं कटु रोहिणीम्॥
सम्पाकं फल्गुमूलं च पौष्करं सदुरालभम्।
द्विपलानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते॥
भार्गीं पाठां त्रिकटुकं त्रिवृतां निचुलानि च।
श्रेयसी माढकीं मूर्वां दन्तीं भूनिम्ब चित्रकौ॥
द्वे सारिवे रोहिषं च भूतिकं मदयन्तिकाम्।
क्षिपेत्पिष्ट्वाऽक्षमात्राणितैः प्रस्थं सर्पिषः पचेत्॥
गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीर [illegible] मूत्रैश्चतत्समैः।
पञ्चगव्यमिति ख्यातं महत्तदमृतोपमम्॥२१॥

अर्थात्—दोनों पंचमूल, त्रिफला, दोनों ही हल्दी, कुटज की छाल, सप्तपर्ण, अपामार्ग, नीलिनी, कुटकी, अमलतास, गूलर की मूल छाल, पोहकर मूल, दुरालभा, ये सभी २-२ पल लेकर एक द्रोण जल (१६ सेर) में पकाकर चतुर्थांश (४ सेर) शेष रखलें और फिर उसमें भार्गी, पाठा, त्रिकटु, त्रिवृत, निचुल, गजपीपल, अरहर की जड़, मूर्वा, दन्ती, भूनिम्ब, चित्रक, दोनों सारिवा, रोहिष, भूतीक और मदयन्तिका, प्रत्येक को एक-एक कर्ष (तोला) मात्रा में पीसकर कल्क बनाकर डालें। इस प्रकार इस सारे मैटर से एक सेर गोघृत का पाचन करें। उसमें गोघृत के तुल्य तोल में गोबर का रस, दही, दूध, मूत्र भी मिलाया जावे। यह महापंचगव्य घृत प्रसिद्ध है और यह अमृत के समान है।

सुश्रुत संहिता के आधार पर—आचार्य सुश्रुत ने उत्तर तन्त्र अध्याय ६१ में श्लोक संख्या ३४-३७ तक पंचगव्य घृत का वर्णन किया है। केवल मात्र एक ही प्रयोग है। न तो लघु पंचगव्य नाम दिया गया है और न महापंचगव्य लिखा गया है। किन्तु इस प्रयोग के अन्तर्गत दिए गये द्रव्यों के आधार पर यह पंचगव्य घृत पूर्ण प्रयोग है यह तो सिद्ध होता है। प्रयोग निम्न प्रकार से है—

दशमूलेन्द्र वृक्षत्वङ् मूर्वा भार्गी फलत्रिकैः।
शम्पाक श्रेयसी सप्तपर्णापामार्गफल्गुभिः॥
शृतैः कल्कैश्च भूनिम्ब पूतिकव्योष चित्रकैः।
त्रिवृत्पाठा निशायुग्म सारिवाद्वय पौष्करैः॥
कटुकायास दन्त्युग्रानीलनी क्रिमिशत्रुभिः।
सर्पिरेभिश्च गोक्षीर दधिमूत्र शकृद्रसैः॥
साधितं पंचगव्याख्यं सर्वापस्मार भूतनुते।
चातुर्थकक्षय श्वासानुन्मादांश्च नियच्छति॥३७॥

अर्थात्—दशमूल, कुटज की छाल, मूर्वा, भारङ्गी, त्रिफला, अमलतास, गजपिप्पली, सप्तपर्ण, चिरचिटा, कठगूलर इनके क्वाथ में चिरायता, करंज, त्रिकटु, चित्रक, निशोथ, पाठा, हल्दी, दारुहल्दी, सारिवा, काला सारिवा, पोहकर मूल, कुटकी, धमासा, दन्ती, वच, नीलनी, वायविडङ्ग इनके कल्क से गौ का दूध, दही, मूत्र, गोबर का स्वरस और घृत मिलाकर पाचन करलें। यह घृत पञ्च-

गव्य के नाम से प्रसिद्ध है और सभी प्रकार के अपस्मार भूत बाधाओं, चातुर्थिक ज्वर, क्षय, श्वास और उन्माद रोग को समूल नष्ट करता है।

मात्रा—एक तोला की है।

विशेष अनुभव—

(क) क्षय में—यह सुश्रुतोक्त पंचगव्य घृत यदि रात्रि को सोते समय एक तोला मात्रा में पाव भर दूध के साथ एक सिद्ध चन्द्रोदय वटी सहित सेवन किया जाय तो तत्काल प्रभाव दिखाता है।

(ख) राजयक्ष्मा में—यह घृत एक तोला मात्रा में प्रातःकाल पाव भर दूध के साथ एक वटी सिद्ध चन्द्रोदय या सिद्ध मकरध्वज की सेवन करने से एक सौ वीस दिन में राजयक्ष्मा अवश्य नष्ट होता है।

विशेष पथ्य—इसमें ४ मुनक्का, दो वादाम तथा तीन काली मिर्च का सेवन २४ घण्टों में एक बार अवश्य करना चाहिए और भोजन में परवल हितकर है।

(ग) रक्ताल्पता में—यह घृत एक तोला मात्रा में दोपहर वाद शीतल दूध में मिलाकर पीने से तथा शर्वत वनफ्सा के साथ अभ्रक भस्म और गुड़ूची सत्व का सेवन करने से आशातीत लाभ होता है।

(घ) दुर्वलता में—यह घृत एक तोला, त्रिवंग भस्म दो रत्ती, सिद्ध चन्द्रोदय वटी २ गोली मधु एक तोला, शुद्ध गंधक ४ रत्ती सवको मिलाकर घोटकर चार-चार घण्टे वाद एक अंगुली भरकर चाटें और ऊपर से ताजा दूध दो घूंट पीवें। तीन दिन तक इसी प्रकार करने से अपूर्व शक्ति का उदय होता है।

परहेज—किन्तु इस प्रक्रिया में नमक, तेल, मिर्च लाल, खटाई, उड़द की दाल, दही, वासी खाद्य पदार्थ, तेल के पदार्थ, रात्रि जागरण, दिवा स्वप्न, मैथुन, अधिक वायु या गर्मी या शीत में रहना वर्जित है।

(ङ) दमा नया या पुराना में—सुश्रुतोक्त पंचगव्य घृत ४ तोला, सिद्ध चन्द्रोदय वटी या त्रैलोक चिन्तामणि रस ४ गोली, वंशलोचन दो माशा, शुद्ध मधु दो तोला छोटी इलायची तीन माशा, काले धतूरे के पत्ते तीन नग इन सवको मिलाकर घोटकर एक काच कूपी में भर लें और तीन-तीन घण्टे वाद चौथाई चम्मच यह दवा लेकर उतना ही गिलोय का रस मिलाकर चाट लें और दश मिनट ठहर कर चाय या मीठा गरम जल पीवें। तुरन्त दौरा रुक जाता है। कफ के ढेले के ढेले निकलकर पूर्ण सुख प्राप्त होता है। तीन घण्टे तक आराम रहता है अतः तीन घण्टे वाद फौरन एक मात्रा दवा लेनी चाहिए। ऐसा पांच सप्ताह करने से दौरा समाप्त हो जाता है और रोग भी समूल नष्ट होता है, किन्तु स्थायी लाभ के लिए एक सौ बीस दिन तक यह प्रयोग सेवन करना ही चाहिए।

(च) मूर्च्छा, योषापस्मार और चक्कर आने में—यह घृत एक तोला, गिलोय का रस एक तोला और बकरी का दूध पाव भर, रात्रि को सोते समय देने से प्रथम दिन ही लाभ होता है किन्तु पेट साफ होना परम आवश्यक है।

(छ) पुरानी खांसी और नजला में—यह घृत एक तोला, वादाम ७ नग, काली मिर्च ४ नग, मिश्री दो तोला सबको घोटकर थोड़ी-थोड़ी देर में चाटते रहें। तीन चार वार में ही दौरा रुक जाता है। स्थायी लाभ के लिए तीन चार दिन पर्यन्त सेवन करावें।

(ज) खून गिरना—शरीर के किसी भाग से खून गिरने से या आने में या निकलने में—यह घृत एक तोला, नीम के पुष्प दो माशा, अडूसा के पत्ते ग्यारह, मिश्री तीन तोला सवको घोट पीसकर एक जान करके ४ भाग कर लें। आधा-आधा घण्टा वाद एक भाग शीतल दूध के साथ पीवें। खून आना वन्द होगा और स्थायी लाभ होगा।

(झ) आँखों का पीलिया—यह घृत एक तोला पुनर्नवा के एक तोला रस के साथ मिला पाव भर गरम दूध से पीवें और खटाई, तेल, लाल मिरच वन्द रखें।

(ञ) पागलपन में—विशेष रूप से किया गया यह अनुभव है। यह पंचगव्य घृत पांच तोला लेकर उसमें शंखपुष्पी का चूर्ण तीन तोला मिला दें और आँवला का चूर्ण एक तोला मिला दें। फिर इसमें से एक एक तोला प्रातः सायं गरम दूध के साथ पिलावें। प्रतिदिन इस घृत की मालिश कनपटी और सिर के मध्य भाग में भी करें तथा सप्ताह में एक वार नस्य भी देवें। साठ दिन में पूर्ण लाभ हो जाता है किन्तु रोगी का पेट साफ रखें।

—कवि० श्री वी. एस. प्रेमी एम., ए. एम. एस.
ए–२/२८, तिब्बिया कालेज, करौल वाग, नई दिल्ली–५

पञ्चगव्य एवं महापञ्चगव्य घृत

प्राणाचार्य डॉ० श्री महेश्वर प्रसाद जी. ए. एम. एस. (ऑनर्स)

पञ्चगव्य घृत

संदर्भ ग्रन्थ—चरक संहिता चि. अ. १० श्लोक १७

घटक एवं तोल—

घटक	शास्त्रीय (प्राचीन) तोल	वर्तमान तोल
गौ के गोबर का रस	१ पल (८ तोला)	१०० ग्राम
गौ की खट्टी दही	,, ,,	,,
गौदुग्ध ताजी	,, ,,	,,
गौमूत्र ताजी	,, ,,	,,
गौघृत विशुद्ध	,, ,,	,,

निर्माण विधि—सर्वप्रथम इन पाँचों द्रव्यों को एकत्र मिलाकर मन्द आग पर घृत सिद्ध करते हैं तथा अन्ततोगत्वा घृत मात्र शेष बचने पर गर्म-गर्म ही छानकर कांच के बड़े मुँह और ढक्कन वाले पात्र में सुरक्षित रख लेते हैं।

मात्रा—३ से ६ मासे तक (आवश्यकतानुसार) प्रतिदिन दो बार दें।

गुण—यह सिद्ध घृत अपस्मार, कामला, ज्वर आदि को दूर करता है।

प्रत्यक्ष अनुभव—

अपस्मार के रोगियों पर निरन्तर दो-तीन महीने तक प्रयोग करने से बहुत से रोगियों में जल्दी और बहुत से रोगियों में थोड़ा विलम्ब से प्रायः सभी उपद्रव एवं कष्ट शांत होते हैं। प्रत्यक्ष परीक्षणों से ऐसा देखा गया है कि नवीन व्याधि तो प्रायः तीन-चार महीने के प्रयोग से समूल नष्ट हो जाती हैं किन्तु पुरानी व्याधि (Chronic disease) के पूर्ण शमन के लिए निरन्तर २-३ वर्षों तक धैर्यपूर्वक औषधि सेवन करानी पड़ती है, तब कहीं मनोवाञ्छित सफलता मिलती है। मध्यावधि में औषधि सेवन का क्रम टूट जाने पर जो भी लाभ हुआ रहता है, वह लुप्त हो जाता है।

महापञ्चगव्य घृत

घटक एवं तोल—

घटक	शास्त्रीय (प्राचीन) तोल	वर्तमान तोल
दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुटज की छाल, सतौना की छाल, अपामार्ग, नील, कुटकी, अमलतास, कंठगूलर के मूल, पुष्करमूल, धमासा।	प्रत्येक द्रव्य दो पल (१६ तोला)	पृथक-पृथक प्रत्येक द्रव्य २०० ग्राम
जल	एक द्रोण (३२ सेर)	लगभग ३० किलो
भारङ्गी, पाठा, सौंठ, गोल मिर्च, पिप्पली, निशोथ श्वेत, समुद्र फल, गजपीपल, अरहर की दाल, मरोड़फली, दन्ती का मूल, चिरायता, अजवायन, चित्रकमूल, सफेद सारिवा, कृष्ण सारिवा, मेंहदी का फूल, रोहिष तृण, गन्धतृण, चमेली के पत्ते।	प्रत्येक एक कर्ष (एक तोला)	१२ ग्राम
गाय के गोबर का रस, गाय की खट्टी दही, गाय का ताजा दूध, गाय का मूत्र एवं गाय का घी विशुद्ध।	प्रत्येक एक प्रस्थ (दो सेर)	दो किलो

निर्माण विधि—सर्वप्रथम दशमूलादि द्रव्यों को पृथक-पृथक लेकर जौकुट करके ३० किलो जल में मिला कर विधिवत् क्वाथ करें। जब चतुर्थांश शेष बचे तो छानकर रख लें। इसके बाद भारङ्गी आदि द्रव्यों को ले कल्क बना उपर्युक्त क्वाथ में मिलावें। पश्चात् गाय का घी, गाय के गोबर का रस, खट्टी दही आदि सभी मिला मन्दाग्नि पर घृत का पाक करें। घृत सिद्ध होने पर छानकर रखलें।

सेवन विधि—आधा से दो तो. प्रतिदिन सेवन करावें। जाड़े का मौसम हो तो घृत को गर्म कर सेवन करावें।

गुणावगुण—

यह अपस्मार, उन्माद, शोथ, उदर रोग, गुल्म, अर्श, पाण्डु, कामला, भगन्दर आदि रोगों तथा चातुर्थिक ज्वर में लाभप्रद है। यह घृत धातुओं में सुगमतापूर्वक प्रविष्ट होकर मस्तिष्क के अन्दर आम, विष, श्लेष्मा, कृमि आदि को नष्ट करता है। नियमित रूप से ३-४ महीने तक पथ्य-पालन के साथ सेवन करने से आशातीत लाभ एवं सुन्दर स्वास्थ्य की उपलब्धि होती है। यह घृत अपस्मार तथा उन्माद के रोगी के लिए विशेष गुणकारी है तथा नवीन एवं जीर्ण दोनों अवस्थाओं में प्रयुक्त होता है। पुराने अपस्मार एवं उन्माद में शरीरस्थ लीन विष को नष्ट करने, वायु के प्रतिबन्ध को हटाने, मन और इन्द्रियों की विकृति को हटाकर प्रकृति को शक्तिशाली बनाने और चिन्ता को मिटाकर चित्त को प्रफुल्लित रखने के लिए इसका सेवन अनिवार्य है। इस घृत के साथ ठण्डे जल का सेवन नहीं करना चाहिए अन्यथा घृत यत्र-तत्र ठण्ड से जमकर विकार उत्पन्न कर सकता है। सर्वांग शोथ, जलोदर, हृदयजन्य शोथ, यकृत्-प्लीहा वृद्धि आदि से में इ सेवन न करें।

पथ्यापथ्य—पथ्य में गेहूं की रोटी, चने या मूंग की दाल, परवल, पुराने साठी चावल, दूध (गाय का), गोघृत (खूब गर्म किया), नारंगी, सेव, कागजी नीबू, अंजीर, मुनक्का दें। लाल मिर्च, खटाई, कटु-तिक्त पदार्थ, वात-वर्द्धक पदार्थ, अधिक बोलना आदि वर्जित हैं।

घटकों के गुण धर्म—

दशमूल वात विकार नाशक, त्रिफला मस्तिष्क तन्तुओं को विकार रहित करने वाला, कोष्ठबद्धता नाशक, हल्दी रक्त शोधक, श्लेष्माहर, दारु हल्दी लेखनीय, रक्तशोधक एवं अर्शोघ्न, कुटज त्वक् रक्तशोधक, व्रणरोपण, कफपित्त शामक, अर्शनाशक, सप्तपर्ण त्वक् अधोभागहर, कफवात शामक, स्तम्भन तथा रक्तशोधक, अपामार्ग शिरोविरेचन, पाण्डु-शोथ-रक्तविकार नाशक, नील मस्तिष्क दौर्बल्य नाशक, मस्तिष्क के मद, मूर्च्छा, भ्रमहर, शोथहर, कुटकी भेदनीय, लेखनीय, कफपित्तहर एवं कटुपौष्टिक, अमलतास वातहर, वेदना स्थापन, कामलानाशक, कठगूलरमूल अर्श, कामला नाशक, रक्तविकारहर, पुष्करमूल मस्तिष्क दौर्बल्य नाशक, कटुपौष्टिक एवं कफवात शामक है। धमाशा अर्शोघ्न मस्तिष्क के लिए बल्य, भ्रम, मूर्च्छा नाशक एवं कफपित्त शामक है। भारंगी रक्तशोधक, कफवात शामक, गुल्म, उदर रोग नाशक है। पाठा त्रिदोष विशेष कर कफवात शामक, रक्तशोधक, शोथघ्न और कटुपौष्टिक है। सोंठ वातशामक, नाड़ी उत्तेजक, अर्शोघ्न, मस्तिष्क विकारहर, शोथहर तथा रक्तशोधक है। गोल मिर्च शिरोविरेचन, नाड़ी बल्य, मस्तिष्क विकारहर एवं वातानुलोमन है। पिप्पली वातहर, शिरोविरेचन, रक्तशोधक, पाण्डुहर (रक्तवर्धक) तथा मेध्य. श्वेत निशोथ, अर्श, कामला, उदररोग, शोथ-रोग नाशक हैं। समुद्रफल शिरोविरेचन, रक्तशोधक, गज-पीपल मेध्य, कफवात शामक एवं वातानुलोमन है। अरहर की दाल मेध्य, पौष्टिक, वातहर तथा वातकफ शामक, मरोड़ फली त्रिदोषघ्न, अतिसार, उदरशूल, प्रवाहिता, कृमि उदररोग नाशक है। दन्तीमूल, चिरायता, अजवायन आदि अपस्मार, उन्माद, अर्श, उदररोग को दूर करने का गुण रखते हैं। गाय के गोबर का रस जहां शिरोविरेचन है वहां गाय की खट्टी दही पाचन, मस्तिष्क दौर्बल्य नाशक, मेध्य और गाय का ताजा दूध मस्तिष्क शक्तिवर्धक, स्नायुबल्य, उत्तेजक तथा गाय का मूत्र पाण्डु, शोथ, कामलाहर एवं गाय का घी स्नायुदौर्बल्य नाशक, मेध्य तथा उन्माद, अपस्मारहर है।

प्रत्यक्ष अनुभव—सारस्वतारिष्ट के साथ प्रयोग किया तथा प्रातः सायं नरकपालास्थि भस्म १-१ रत्ती मधु के साथ दिया तो आशातीत लाभ हुआ। कागजी नीबू के रस के साथ जीरा चूर्ण और यह घृत नियमित रूप से सेवन कराने से उदररोग, गुल्म, पाण्डु और कामला में परम गुणकारी सिद्ध हुआ। इस घृत को जब नीमपत्र स्वरस १-२ तोला के अनुपान से सेवन कराया गया तो अर्श, भगंदर एवं शोथ में गुणदायक प्रमाणित हुआ।

—डा० श्रीमती विमला अग्रवाल, बुलन्दशहर

बज्र घृत

संदर्भ—भैषज्य रत्नावली।

घटक—अडूसा, गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पटोल-पत्र, नीम छाल (भीतर की), असन की छाल, और कृष्ण बेल और करंज ये प्रत्येक २५ ग्राम लेकर जल सहित पीस कल्क करें, गौघृत १ किलो लेकर उसी में उक्त दश द्रव्यों का कल्क और उक्त द्रव्यों का ही क्वाथ २ किलो लेकर घृत का पाक करें। घृत के सिद्ध होने पर प्रतिदिन १ तोला की मात्रा में दोनों समय एक वर्ष पर्यन्त सेवन करें और पथ्य का पूर्णतया पालन करते रहे तो इसके सेवन से जिन कुष्ठ रोगी के कान, अंगुलियाँ, हस्तपाद गल गये होते हैं और कुष्ठ कृमियों ने शरीर में स्थान बना लिया हो, ऐसे रोगी को इनका सेवन कर अपने को नीरोग बनाना चाहिए उनके लिए यह सर्वोत्तम औषध है। साथ ही पंचनिम्बचूर्ण, महातालंकेश्वर रस, मंजिष्ठादि क्वाथ का भी सेवन करते हुए। भोजन के पश्चात् खदिरारिष्ट का भी सेवन करें तो ऐसे गलित कुष्ठ रोग से रोगी रोगमुक्त हो जाता है।

चिकित्सा आरम्भ करने से पूर्व १५-१५ दिन में वमन प्रतिमास् विरेचन, तीसरे मास नस्य, छठे महिने रक्त मोक्षण आवश्यक है।

पथ्य में—घृत, पुराना जौ, गेहूं, शालि चावल, मूंग, अरहर की दाल, मधु, परवल, मकोय, लहसुन, पुनर्नवा, चकवड़ की पत्ती का शाक, गौ, गधा, ऊंट, घोड़ा का मूत्र इत्यादि।

अपथ्य—पापकर्म, निन्दाकर्म, अधम कर्म, व्यभिचार, विरुद्ध भोजन, दिन में शयन, स्त्री संग, भारी अन्न, परिश्रम, स्वेद पदार्थ, नमक, दाहकारी पदार्थ, मूली, मांस, दही, दूध, मदिरा और गुड़ इनका सेवन कभी न करें।

मिश्रण-पुड़िया में—अनुपान मधु से, प्रातः सायं दोनों समय रोगी की जिह्वा, गलोथे में कई महीनों से कैंसर का रोग था।

—डा० श्रीमती विमला अग्रवाल,
बुलन्दशहर

बिन्दु घृत

निर्माण विधि—चीता, शिवलिंगी, हरड़, कबीला, दोनों प्रकार के निशोथ, विधारा, अमलतास, दन्ती, जमालगोटा, तोरई, बन्दाल, नील, कोईली सातला, पीपरामूल, बायविडंग, कुटक, पीले फूल की कटेली (सत्यानासी), इन प्रत्येक औषधि का कल्क एक-एक कर्ष लें। उत्तम गाय का घी १ प्रस्थ, थूहर का दूध २४ तोले, आक का दूध ८ तोले, सबको एकत्र कर यथाविधि घृत को पकावें। जब पककर घृत मात्र रह जावे तब सुरक्षित रख लें।

यह घृत गुल्म, कुष्ठ, शूल, उदावर्त, शोथ, आध्मान, भगन्दर, आठ प्रकार के उदर रोगों को दूर करता है। इस बिन्दु घृत का एक बूंद देने पर एक दस्त और दो बूंद देने पर २ दस्त इसी क्रम से जितनी बूंद दोगे उतने ही दस्त लगेंगे।

अनुपान में गाय का दूध, उंटनी का दूध, कुलथी का क्वाथ उष्ण जल के साथ दे सकते हैं। इसको नाभि पर लेप करने से दस्त हो जाता है।

—कवि० श्री विष्णुदत्त पुरोहित बी. ए., आयु. रत्न,
३, ब्रह्मबाग, जालोरी गेट,
जोधपुर (राज०)

आयु० बृह० डा० जहानसिंह चौहान आयु० वाच०

सन्दर्भ ग्रन्थ—शार्ङ्गधर संहिता—

त्रिफला मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ।
विडङ्गं पिप्पली मुस्ता विशाला कटफलं वचा ॥
द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ सारिवे द्वे प्रियंगुका ।
शत पुष्पा हिंगु रास्ना चन्दनं रक्त चन्दनम् ॥
जाती पुष्प तुगाक्षीरी कमलं शर्करा तथा ।
अजमोद च दन्ती च कल्कैरेतैश्च कार्षिकैः ॥
जीवद्वत्सेक वर्णाया घृत प्रस्थं च गोः क्षिपेत् ।
चतुर्गुणेन पयसा पचेदारण्य गोमयैः ॥
४ श्लोक और भी हैं ।

अर्थात्—हरड़, वहेड़ा, आमला, मुलेठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, वायविडंग, पीपल, नागरमोथा, इन्द्रायण, कायफल, वच, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, अनन्तमूल, श्यामलता, फूलप्रियंगु, सौंफ, हींग, रास्ना, श्वेत चन्दन, मालती के फूल, वशलोचन, कमल, शक्कर, अजमोद और दन्ती की जड़ ये प्रत्येक १ कर्ष लेकर कल्क करें। जिस गो का बछड़ा १ वर्ष का हो गया हो, बछड़े का रंग भी एक ही हो, उस गो का घी १ प्रस्थ लेकर उसे मूच्छित करने के पश्चात् उसमें कल्क द्रव्य और गो का ४ प्रस्थ दूध मिलाकर घृत पाक कण्डे (उपले) की अग्नि पर करें।

विद्वानों का मत है कि प्रथम पाक दूध से करें, दुवारा फिर ४ गुणा जल डालकर करें। चक्रदत्त का मत है कि घृत से, सतावर रस ४ गुणा लेकर पाक करें यथा—

शतावरी रसक्षीरं घृताद् देयं चतुर्गणम् ।

विद्वानों का मत है कि इसमें लक्ष्मणा का मूल भी डालना चाहिए, किन्तु किसी को उपलब्ध हो तो डालें। अथवा उसके स्थान पर श्वेत फूल की कटेरी का उपयोग करें। यह भी सहज सुलभ नहीं। मेरे मत से ये दोनों न मिलें तो पीपल वृक्ष की जटा अथवा शिवलिंगी बीज का उपयोग करें। ये दोनों अत्यन्त उपयोगी एवं सुलभ द्रव्य हैं।

एतत्फलघृतं नाम भरद्वाजेन भाषितम् ।
अनुक्तं लक्ष्मणा मूलं क्षिपेत्तत्र चिकित्सकः ॥

फलघृत पर विशिष्ट अनुभव

पुनः पुनः गर्भपात में—ऐसी स्त्रियाँ जो पुनः पुनः गर्भपात की आदी हो गई हैं, उन्हें एक निश्चित समय पर बार-बार गर्भपात हो जाता है। ऐसी स्थिति सैप्टिक एवोर्सन की रोगिणियों में भी बार-बार मिलती हैं उन सबमें इस घृत के उपयोग से विशेष लाभ मिलता है। जैसे ही स्त्री में गर्भ स्थिति का पता चले इस घृत का प्रयोग प्रारम्भ कर देना चाहिए और गर्भावस्था (Pregnancy Period) के अन्तिम मासों तक बिना किसी भय के देते रहना चाहिए। इस प्रकार निरन्तर प्रयोग से गर्भपात का डर नहीं रहता है और गर्भ की गर्भाशय में उत्तम पुष्टि होती है। इसके सेवन से गर्भस्थ शिशु उत्पन्न होने के पश्चात् बुद्धिमान, दीर्घायु, हृष्ट पुष्ट होता है।

मात्रा एवं अनुपान—६-१२ ग्राम घृत + मिश्री चूर्ण १२ ग्राम दोनों को मिलाकर प्रातः ६ बजे नित्य १ बार सेवन करायें और ऊपर से गाय का दूध पिलावें।

यह शां. सं. का उत्तम योग है जिसे अब विभिन्न आयुर्वेद संस्थान निर्मित कर रहे हैं।

पुनः पुनः गर्भपात की रोगिणियों में इसे अकेले प्रयोग कराके उत्तम लाभ पाया है। इतना होते हुए भी कुछ

ोगिणियों में इस घृत का प्रयोग हमने अनुसंधान की दृष्टि अन्य योगों के साथ सेवन कराया तो हमें शत-प्रतिशत ाभ दृष्टिगत हुआ। ऐसी सामान्य चिकित्सा व्यवस्था जो मारी शत अनुभूत है नीचे दी जा रही है और हमारा ावा है कि जिन स्त्रियो को एक निश्चित समय पर बार-ार गर्भपात हो जाता है इस व्यवस्था से वह पूर्ण रूप से इस महान दुष्ट व्याधि से बच सकेंगीं।

चिकित्सा व्यवस्था—

(१) फलघृत—६ ग्राम को १२ ग्राम मिश्री में मिलाकर प्रातः प्रतिदिन सेवन करा ऊपर से गाय का दूध पिलावें।

(२) गर्भपाल रस (रसयोग सागर) —१ गोली प्रतिदिन १० बजे मंजिष्ठादि क्वाथ अथवा गोदुग्ध के साथ।

(३) जीवन्ती या शतावरी—किसी एक को उचित मात्रा में दूध में उबालकर सायंकाल प्रतिदिन पिलाते रहें।

नोट—उपर्युक्त चिकित्सा उन रोगिणियों में भी लाभकारी सिद्ध हुई है जिनके बच्चे या तो पैदा होने के बाद मर जाते हैं अथवा कुछ समय के पश्चात् मर जाते हैं।

योनिशूल पर फलघृत का विशेष योगदान—

हमने अपने अनुभवों के आधार पर यह देखा है कि फलघृत के उपयोग से योनिशूल में पर्याप्त लाभ होता है। यदि इस घृत को निम्न सामान्य व्यवस्थानुसार प्रयोग कराया जाय तो उत्तम लाभ मिलता है।

(१) फलघृत—१२ ग्राम को १२ ग्राम मिश्री में मिलाकर प्रातः ६ बजे दें और ऊपर से गोदुग्ध पिलावें।

(२) अशोकारिष्ट—२-२ चम्मच भोजनोपरांत जल से।

(३) सुपारीपाक—६ ग्राम+वंग भस्म १२० मिलीग्राम+अण्डे के छिलके की भस्म १२० मिलिग्राम।

ऐसी १ मात्रा प्रातः ८ बजे, दिन के २ बजे एवं सायं ८ बजे सेवन करायें।

यदि जननेन्द्रिय की निर्बलता के कारण रोग हो तो उपर्युक्त क्रम के साथ-साथ वृहत् सुवर्णमालिनी वसन्त १२० मिलिग्राम की मात्रा में दिन में १ बार दूध, मक्खन, एवं मिश्री के साथ दें

—आयु० वृह० वैद्यराज श्री जहानसिंह चौहान
चौहान आयु० निकेतन,
नवीगंज (मैनपुरी) उ० प्र०

फल घृत पर मेरे सफल प्रयोग

योनि रोग—लघुफल घृत का शार्ङ्गधर संहिता में पाठ इस प्रकार है—

कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत् क्षीरं चतुर्गुणम्।

उक्त वस्तुओं का कल्क करें। १ प्रस्थ घृत लेवें और ४ प्रस्थ दूध लेकर घृत पाक करें। यह योनि विकृति हरता है और लाभप्रद है।

त्रिफलां द्विसहचेर गुडूचीं सपुनर्नवाम्।
शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदा शतावरीम्॥

हरड़, बहेड़ा, आंमला, पियाबांसा, सफेद फूल की कटसरैया, गिलोय, पुनर्नवा, सोनापाठा की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, मेदा और शतावर इन सबका कल्क करें।

मेदा, मजीठ, मुलैठी, मीठा, कूठ, त्रिफला, खरैटी, विदारीकन्द, काकोली, क्षीर काकोली, असगन्ध, अजवायन, हल्दी, हींग, कुटकी, नील कमल, दाख, सफेद चन्दन का बुरादा और लाल चन्दन का बुरादा प्रत्येक २-२ तोले, शतावर का रस, बछड़े वाली गाय का घी ४ सेर, सफेद कटेरी १०० ग्राम।

बनाने की विधि—मेदा से लाल चन्दन तक की दवाओं को पीस कूट कर छान लो और इनको सिल पर जल के साथ पीसकर लुगदी बनालो।

कड़ाही में लुगदी रखकर घी ४ सेर डाल दो और ऊपर से शतावर का रस ४-५ सेर डाल दो। आग मन्दी-मन्दी लगाओ। ज्यों-ज्यों शतावर का रस कम होता जाय और रस डालते जाओ। जब शतावर का रस खत्म हो जाय, दूध थोड़ा-थोड़ा डालते जाओ और पकाते रहो जब दूध भी खत्म हो जाय घी के साथ सेर आधा सेर रह जाय उतार लो और छानकर बोतलों में भरदो।

सेवन विधि—इस घी के बलाबल अनुसार खाने से बल वीर्य और खून बढ़ता है। क्योंकि यह घी अत्यन्त वृष्य या वाजीकरण है। यह घी स्त्रियों के योनि रोगों और हिस्टेरिया या उन्माद पर भी रामबाण है। इसके सेवन से बांझ के भी पुत्र होता है। मात्रा ४ माशे से २ तो. तक।

—शेषांश पृष्ठ १९५ पर देखें।

आयु० वृह० डा० जहानसिंह चौहान आयु० वाच०

सन्दर्भ ग्रन्थ—शार्ङ्गधर संहिता—

त्रिफला मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ।
विडङ्गं पिप्पली मुस्ता विशाला कटफलं वचा ॥
द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ सारिवे द्वे प्रियंगुका ।
शत पुष्पा हिंगु रास्ना चन्दनं रक्त चन्दनम् ॥
जाती पुष्प तुगाक्षीरी कमलं शर्करा तथा ।
अजमोद च दन्ती च कल्कैरेतैश्च कार्षिकैः ॥
जीवद्वत्सैक वर्णाया घृत प्रस्थं च गोः क्षिपेत् ।
चतुर्गुणेन पयसा पचेदारण्य गोमयैः ॥

४ श्लोक और भी हैं ।

अर्थात्—हरड़, बहेड़ा, आमला, मुलेठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, वायविडंग, पीपल, नागरमोथा, इन्द्रायण, कायफल, वच, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, अनन्तमूल, श्यामलता, फूलप्रियंगु, सौंफ, हींग, रास्ना, श्वेत चन्दन, मालती के फूल, वंशलोचन, कमल, शक्कर, अजमोद और दन्ती की जड़ ये प्रत्येक १ कर्ष लेकर कल्क करें। जिस गो का बछड़ा १ वर्ष का हो गया हो, बछड़े का रंग भी एक ही हो, उस गो का घी १ प्रस्थ लेकर उसे मूर्च्छित करने के पश्चात् उसमें कल्क द्रव्य और गो का ४ प्रस्थ दूध मिलाकर घृत पाक कण्डे (उपले) की अग्नि पर करें।

विद्वानों का मत है कि प्रथम पाक दूध से करें, दुबारा फिर ४ गुणा जल डालकर करें। चक्रदत्त का मत है कि घृत से, सतावर रस ४ गुणा लेकर पाक करें यथा—

शतावरी रसक्षीरं घृताद् देयं चतुर्गणम् ।

विद्वानों का मत है कि इसमें लक्ष्मणा का मूल भी डालना चाहिए, किन्तु किसी को उपलब्ध हो तो डालें। अथवा उसके स्थान पर श्वेत फूल की कटेरी का उपयोग करें। यह भी सहज सुलभ नही। मेरे मत से ये दोनों न मिलें तो पीपल वृक्ष की जटा अथवा शिवलिंगी बीज का उपयोग करें। ये दोनों अत्यन्त उपयोगी एवं सुलभ द्रव्य हैं।

एतत्फलघृतं नाम भरद्वाजेन भाषितम् ।
अनुक्ते लक्ष्मणा मूल क्षिपेत्तत्र चिकित्सकः ॥

फलघृत पर विशिष्ट अनुभव

पुनः पुनः गर्भपात में—ऐसी स्त्रियाँ जो पुनः पुनः गर्भपात की आदी हो गई है, उन्हें एक निश्चित समय पर बार-बार गर्भपात हो जाता है। ऐसी स्थिति सैप्टिक एबोर्सन की रोगिणियों में भी बार-बार मिलती हैं उन सबमें इस घृत के उपयोग से विशेष लाभ मिलता है। जैसे ही स्त्री में गर्भ स्थिति का पता चले इस घृत का प्रयोग प्रारम्भ कर देना चाहिए और गर्भावस्था (Pregnancy Period) के अन्तिम मासों तक बिना किसी भय के देते रहना चाहिए। इस प्रकार निरन्तर प्रयोग से गर्भपात का डर नहीं रहता है और गर्भ की गर्भाशय में उत्तम पुष्टि होती है। इसके सेवन से गर्भस्थ शिशु उत्पन्न होने के पश्चात् बुद्धिमान, दीर्घायु, हृष्ट पुष्ट होता है।

मात्रा एवं अनुपान—६-१२ ग्राम घृत+मिश्री चूर्ण १२ ग्राम दोनों को मिलाकर प्रातः ६ बजे नित्य १ बार सेवन करायें और ऊपर से गाय का दूध पिलावें।

यह शा. सं. का उत्तम योग है जिसे अब विभिन्न आयुर्वेद संस्थान निर्मित कर रहे हैं।

पुनः पुनः गर्भपात की रोगिणियों में इसे अकेले प्रयोग कराके उत्तम लाभ पाया है। इतना होते हुए भी कुछ

रोगिणियों में इस घृत का प्रयोग हमने अनुसंधान की दृष्टि से अन्य योगों के साथ सेवन कराया तो हमें शत-प्रतिशत लाभ दृष्टिगत हुआ। ऐसी सामान्य चिकित्सा व्यवस्था जो हमारी शत अनुभूत है नीचे दी जा रही है और हमारा दावा है कि जिन स्त्रियो को एक निश्चित समय पर बार-बार गर्भपात हो जाता है इस व्यवस्था से वह पूर्ण रूप से इस महान दुष्ट व्याधि से बच सकेंगीं।

चिकित्सा व्यवस्था —

(१) फलघृत — ६ ग्राम को १२ ग्राम मिश्री में मिलाकर प्रातः प्रतिदिन सेवन करा ऊपर से गाय का दूध पिलावें।

(२) गर्भपाल रस (रसयोग सागर) — १ गोली प्रतिदिन १० बजे मंजिष्ठादि क्वाथ अथवा गोदुग्ध के साथ।

(३) जीवन्ती या शतावरी — किसी एक को उचित मात्रा में दूध में उबालकर सायंकाल प्रतिदिन पिलाते रहें।

नोट — उपर्युक्त चिकित्सा उन रोगिणियों में भी लाभकारी सिद्ध हुई है जिनके बच्चे या तो पैदा होने के बाद मर जाते हैं अथवा कुछ समय के पश्चात् मर जाते हैं।

योनिशूल पर फलघृत का विशेष योगदान —

हमने अपने अनुभवों के आधार पर यह देखा है कि फलघृत के उपयोग से योनिशूल में पर्याप्त लाभ होता है। यदि इस घृत को निम्न सामान्य व्यवस्थानुसार प्रयोग कराया जाय तो उत्तम लाभ मिलता है।

(१) फलघृत—१२ ग्राम को १२ ग्राम मिश्री में मिलाकर प्रातः ६ बजे दें और ऊपर से गोदुग्ध पिलावें।

(२) अशोकारिष्ट—२-२ चम्मच भोजनोपरांत जल से।

(३) सुपारीपाक—६ ग्राम + वंग भस्म १२० मिलीग्राम + अण्डे के छिलके की भस्म १२० मिलिग्राम।

ऐसी १ मात्रा प्रातः ८ वजे, दिन के २ वजे एवं सायं ८ वजे सेवन करायें।

यदि जननेन्द्रिय की निर्बलता के कारण रोग हो तो उपर्युक्त क्रम के साथ-साथ वृहद् सुवर्णमालिनी वसन्त १२० मिलिग्राम की मात्रा में दिन में १ बार दूध, मक्खन, एवं मिश्री के साथ दें।

—आयु० वृह० वैद्यराज श्री जहानसिंह चौहान
चौहान आयु० निकेतन,
नवीगंज (मैनपुरी) उ० प्र०

फल घृत पर मेरे सफल प्रयोग

योनि रोग—लघुफल घृत का शार्ङ्गधर संहिता में पाठ इस प्रकार है—

कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत् क्षीरं चतुर्गुणम्।

उक्त वस्तुओं का कल्क करें। १ प्रस्थ घृत लेवें और ४ प्रस्थ दूध लेकर घृत पाक करें। यह योनि विकृति हरता है और लाभप्रद है।

त्रिफलां द्विसहचेरं गुडूची सपुनर्नवाम्।
शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदा शतावरीम्॥

हरड़, बहेड़ा, आंमला, पियाबांसा, सफेद फूल की कटसरैया, गिलोय, पुनर्नवा, सोनापाठा की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, मेदा और शतावर इन सबका कल्क करें।

मेदा, मजीठ, मुलैठी, मीठा, कूठ, त्रिफला, खरैटी, विदारीकन्द, काकोली, क्षीर काकोली, असगन्ध, अजवायन, हल्दी, हींग, कुटकी, नील कमल, दाख, सफेद चन्दन का बुरादा और लाल चन्दन का बुरादा प्रत्येक २-२ तोले, शतावर का रस, बछड़े वाली गाय का घी ४ सेर, सफेद कटेरी १०० ग्राम।

बनाने की विधि—मेदा से लाल चन्दन तक की दवाओं को पीस कूट कर छान लो और इनको सिल पर जल के साथ पीसकर लुगदी बनालो।

कड़ाही में लुगदी रखकर घी ४ सेर डाल दो और ऊपर से शतावर का रस ४-५ सेर डाल दो। आग मन्दी-मन्दी लगाओ। ज्यों-ज्यों शतावर का रस कम होता जाय और रस डालते जाओ। जब शतावर का रस खत्म हो जाय, दूध थोड़ा-थोड़ा डालते जाओ और पकाते रहो जब दूध भी खत्म हो जाय घी के साथ सेर आधा सेर रह जाय उतार लो और छानकर बोतलों में भरदो।

सेवन विधि—इस घी के बलाबल अनुसार खाने से बल वीर्य और खून बढ़ता है। क्योंकि यह घी अत्यन्त वृष्य या वाजीकरण है। यह घी स्त्रियों के योनि रोगों और हिस्टेरिया या उन्माद पर भी रामबाण है। इसके सेवन से बांझ के भी पुत्र होता है। मात्रा ४ माशे से २ तो. तक।

—शेषांश पृष्ठ १९५ पर देखें।

शतावरी घृत

वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य
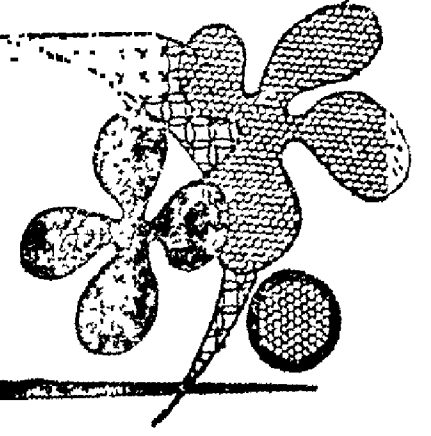
ग्रन्थ निर्देश—भैषज्यरत्नावली। रक्तपित्ताधिकार।

घटक तथा निर्माण विधि—शतावरी का रस २५६० मि० लि०, गोदुग्ध २५६० मि० लि०, गोघृत १२८० ग्राम, जीवक (अभाव में विदारीकन्द), ऋषभक (बहमन श्वेत), मेदा (अभाव में शतावर), महामेदा (अभाव में शतावर), काकोली (अभाव में असगन्ध), क्षीर काकोली (अभाव में असगन्ध), मुनक्का, मुलहठी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, विदारीकन्द तथा रक्तचन्दन—इन १२ द्रव्यों को समभाग मे मिलाकर किया हुआ कल्क ३२० ग्राम लें। सबको मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जल भी २५६० मि० लि० मिला लें। घृत सिद्ध होने पर शीतल होने पर शकर तथा मधु १६० ग्राम मिलाकर एकजीव कर लें। मात्रा १० से १५ ग्राम। अनुपान—दुग्ध।

रस—मधुर, कषाय। वीर्य—शीत। विपाक-मधुर। दोष शमन-त्रिदोष। गुण-पौष्टिक, बाजीकरण, बलप्रद, वीर्यवर्धक, वर्णकर, अग्निवर्धक है।

रोगोपयोग—रक्तपित्त, वातरक्त, शुक्रक्षीणता, अङ्ग तथा शिर का दाह, पित्तज्वर, योनिशूल, योनिदाह, पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों का शमन करता है।

इस घृत का प्रधान घटक शतावरी है। शतावरी मधुर, तिक्त, गुरु, बल्य, वृष्य, रसायन, शुक्रस्तम्भन और अग्निवर्धक है पौष्टिक, चक्षुष्य तथा वात, पित्त, रक्त विकार, गुल्म, अतिसार तथा शोथ का नाश करने वाली है।

त्रिदोषज रक्तपित्त (Purpura) होने पर जिसमें थोड़ा ज्वर भी रहता है, ज्वर के कारण शिरःशूल होता है। सन्धि स्थानों में वेदना किसी-किसी रोगी को अतिसार भी हो जाता है। ऐसी अवस्था में रक्तपित्तान्तक रस (र. यो. सा.) १०० से २०० मि. ग्रा. की मात्रा में शतावरी घृत के साथ दें।

अनेक रोगी उपद्रव सह दारुण वातरक्त रोग से पीड़ितों को 'बृहत् वातरक्तान्तक लौह' (र. यो. सा.) १०० से २०० मि. ग्रा. की मात्रा में शतावरी घृत के साथ प्रातः सायं सेवन करा कर ठीक किया है। इसके सेवन से निश्चयपूर्वक रोग नष्ट हो जाता है। वातरक्त नया हो या पुराना इस विधि से अवश्य लाभ होता है।

अतिव्यवायी लोगों को शुक्रक्षय हो जाता है। फिर भी स्त्री समागम से उपराम नहीं होते, परिणामस्वरूप शुक्रक्षीण हो जाता है। शुक्रधातु की निर्बलता को दूर करने के लिए कामचूड़ामणि रस (र. यो. सा.) १०० मि. ग्रा. की मात्रा में प्रातः सायंकाल शतावरी घृत १५ ग्राम दुग्ध २५० मि. लि. में मिलाकर पिलावें। शतशोऽनुभूत है।

पित्त प्रकोप के कारण शुक्र पतला और उष्ण रहता है। बार-बार थोड़ी मात्रा में मूत्र त्याग होता रहता है। सारे शरीर में दाह तथा सिर में उष्णता, शरीरावयवों में वेदना होती है। यह लक्षण पैत्तिक प्रदर अथवा पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र में होते हैं। ऐसी दशा में यह घृत उत्तम लाभप्रद है।

योनिशूल एवं योनिदाह में दुग्ध के साथ सेवन करावें, तथा इस घृत का पिचु धारण करावें। इससे शूल एवं दाह शमन हो जाते हैं।

वैवर्ण्य तथा पाण्डु रोग में शतावरी घृत को भेड़ के दूध के साथ दें। अतिसार की अवस्था में सर्वांग सुन्दररस सुवर्ण युक्त के साथ दें। हृदय की शिथिलता में शुद्ध कुपीलु १०० मि. ग्रा. के साथ दें।

भैषज्य रत्नावली में वातरक्त चिकित्सा प्रकरण में शतावरी घृत लिखा है। इसमें शतावरी का कल्क २५० ग्राम, मूर्च्छित गोघृत १ किलो, शतावरी का स्वरस ४ लिटर तथा दुग्ध १ लिटर लेकर यथाविधि घृत सिद्ध कर लें। यह वात रक्त नाशक है।

भैषज्य रत्नावली में अम्लपित्त प्रकरण में शतावरी घृत का योग इस प्रकार लिखा है—शतावर का कल्क २५० ग्राम, गोघृत एवं शतावरी रस प्रत्येक १ लिटर, गोदुग्ध ४ लिटर लें यथाविधि घृत सिद्ध करें। यह अम्ल-पित्त, वात एवं पित्त के प्रकोप से होने वाले रोग, रक्त-पित्त, तृषा, मूर्च्छा, श्वास तथा दाह नाशक है।

भैषज्य रत्नावली में स्नायु रोग प्रकरण में शतावरी घृत का निम्न योग लिखा है—शतावर का रस १ प्रस्थ, बकरी का दूध १ आढ़क, मूर्च्छित गोघृत १ प्रस्थ तथा कल्कार्थ–हल्दी, दारूहल्दी, अडूसा, मूसली, नीलकमल, चोरपुष्पी, नील की जड़, कृष्ण सारिवा, श्वेत सारिवा, इन्द्रायण की जड़, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, विदारीकन्द, दाख, भुई आंवला, वलामूल, हरड़, नागबलामूल, देवदारू, अनार का छिलका, निम्ब छाल, काकड़ासिंगी इनके कल्क को घृत से चौथाई प्रमाण में लेके यथाविधि घृत सिद्ध करें। यह शतावरी घृत समस्त स्नायु सम्बन्धी रोगों को नष्ट करता है। बल तथा वीर्य धारणाशक्ति एवं शरीर की पुष्टि और बुद्धि की वृद्धि करता है।

चरक संहिता, चक्रदत्त तथा वाग्भट में एक महाशतावरी घृत के नाम से योग है। इसमें निम्न द्रव्य हैं—

शतावरी स्वरस ८ लिटर, दुग्ध ८ लिटर, घृत ४ किलोग्राम और निम्नलिखित कल्क मिलाकर मदाग्नि पर पकावें। जब पानी शुष्क हो जाए तो घृत को छान लें।

कल्क—जीवनीय गण की औषधियां। मुलेहठी, जीवन्ती, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शतावर, मुनक्का, फालसा, चिरोंजी का फल और दो प्रकार की मुलेहठी प्रत्येक १५ ग्राम लेकर सबको पानी के साथ एकत्र पीस लें। जब घृत ठण्डा हो जाय तो ५००-५०० ग्राम मधु तथा पिप्पली चूर्ण और ५०० ग्राम मिश्री मिलाकर रख लें।

मात्रा—१५ ग्राम। अनुपान–मिश्री युक्त ठण्डा दुग्ध।

यह घृत रक्तप्रदर और शुक्रदोष नाशक, वृष्य तथा पुत्रोत्पादक है। एवं क्षत क्षय, रक्तपित्त, कास, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्ग्रह, शिरोग्रह, उन्माद, आयाम और वात पित्त सन्यास को नष्ट करने वाला है।

—वैद्य श्री मोहर सिंह आर्य
स्थान–मिसरी. जिला-भिवानी (हरियाणा)

फल घृत पर मेरे सफल प्रयोग : : पृष्ठ १९३ का शेषांश

बांझ तीन प्रकार की होती हैं।—

१. जन्म बन्ध्या, २. मृतबन्ध्या, ३. काकबन्ध्या। पूर्व जन्म के पाप के वजह से बन्ध्यायें होती हैं। यह फल-घृत खिलाने से समस्त प्रकार की बन्ध्याओं का दोष खत्म होकर सन्तान की उत्पत्ति होती है।

डा० भागचन्द जैन (डी. एस-सी., ए.) जनता आयुर्वेद औषधालय परकोटा वार्ड सागर (म. प्र.) भी ऊपर लिखे फलघृत को स्वयं तैयार करते हैं। लक्ष्मणा बूटी अधिक डालते हैं। फलघृत के साथ निम्न प्रयोग देते हैं—

नरकचूर १ तोला, सौंठ ५० ग्राम, वायविडंग ५० ग्राम, नागकेशर ५० ग्राम समस्त द्रव्यों को बांट छानकर ३ ग्राम की मात्रा गाय के घी के साथ खाने से गर्भ रुक जाता है। यह प्रयोग सैकड़ों निराश स्त्रियों में सफल एवं परीक्षित पाया है।

१०-१५ वर्षों को शादी हुए हो गया। उम्र ३०-३५ वर्ष हो गई। दो माह दवा खाने से चाँद सा पुत्र हो जाता है। यह फल घृत मैंने अपने औषधालय में स्वयं तैयार किया रोगियों पर अजमाया। सदैव सफलता प्राप्त की।

—डा० श्री कपूरचन्द्र जैन आयुर्वेद वृहस्पति
सुभाष चिकित्सालय पो. हीरापुर (सागर) म. प्र.
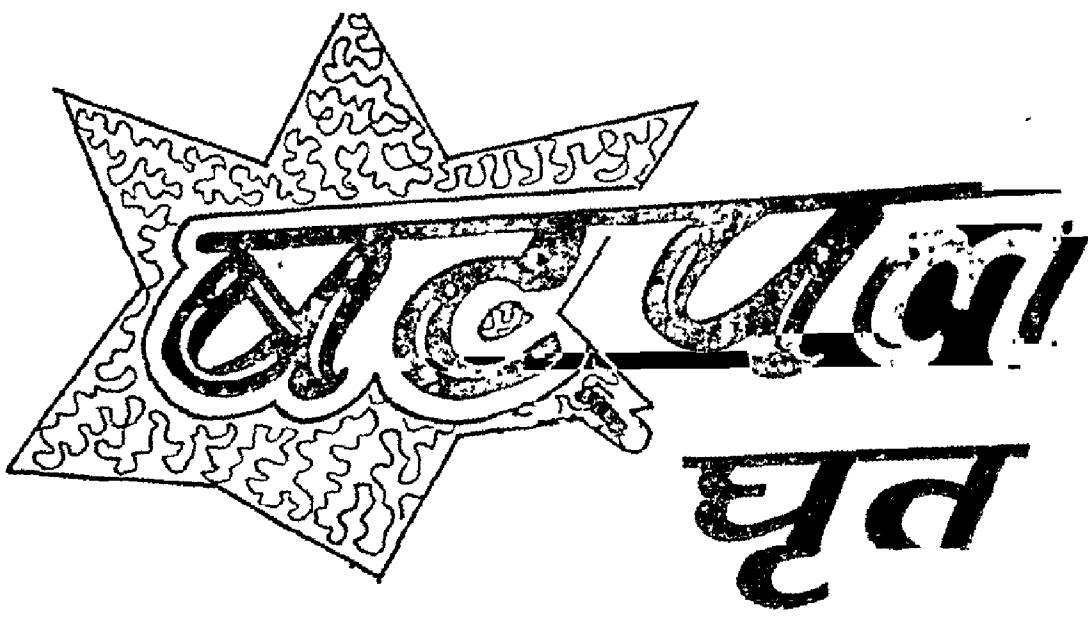
प्राणाचार्य पं० श्री हर्पुल मिश्रा बी. ए. (आनर्स), आयुर्वेद प्रवीण

संदर्भ—चरक चिकित्सा स्थान अध्याय ७।

द्रव्य और निर्माण विधि—

निम्बपटोले दार्वी दुरालभां तिक्तां रोहिणीं त्रिफलम् ।
कुर्यादर्द्ध पलाशं पर्पटकं त्रायमाणाञ्च ॥
सलिलाढ़क सिद्धानां रसेऽष्ट भाग स्थिते दीपेत् पूते।
चन्दन किरात तिक्त मागधिकां त्रायमाणाञ्च ॥
मुस्तं वत्सकबीजं कल्कीकृत्वार्धकार्षिकान् भागान् ।
नव सर्पिषश्च षट्पलमेतत् सिद्धं घृतं पेयम् ।
कुष्ठ ज्वर गुल्मर्शो ग्रहणी पाण्ड्वामय श्वयथु हारी ।
वीसर्प पिडक पामा कण्डूमदगण्डनुत्तिक्तम् ॥

नीम, पटोल-पत्र, दारुहल्दी, जवासा, कुटकी, त्रिफला, पित्तापापड़ा, त्रायमान। इन सबको जौकुट कर ४ सेर पानी में क्वाथ करें, जब आठवाँ भाग जल शेष रह जाय, तब उतारकर छान लें। फिर इसमें लाल चन्दन चूर्ण, चिरायता चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, त्रायमाण चूर्ण, मोथाचूर्ण प्रत्येक छः-छः माशा गोघृत २४ तोला मिलाकर, अग्निताप पर रखकर घृत सिद्ध करलें। इस षट्पल घृत को योग्य मात्रा में पीने से कुष्ठ, ज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, सूजन, विसर्प, पीडिका, पामा, कण्डू, मद, गलगण्ड आदि रोग मिटते हैं।

षट्पल घृत का चिकित्सार्थ प्रयोग और प्रत्यक्ष अनुभव

मात्रा—१ तोला से २॥ तोला तक।

१. कुष्ठ पर प्रयोग—गलित कुष्ठ में इस षट्पल घृत को १। तोला प्रातः और १। तोला सायं सुखोष्ण त्रिफला काढ़ा में मिलाकर पिलाने से गलित कुष्ठ के व्रणों से पूयस्राव कम हो जाता है, और वे मुरझा जाते हैं। ३ माह तक लगातार लेने से गलित कुष्ठ सूख जाता है, परन्तु जड़ से नहीं मिटता। षट्फल घृत का प्रयोग बंद होने पर मिथ्या आहार-विहार से गलित कुष्ठ फिर उभर आता है, परन्तु हमेशा बारह महीना इसे लेते रहने से गलित कुष्ठ थमा रह सकता है। इसके सेवन करते समय नमक न खाने से ही लाभ होता है। नमक मिर्च खटाई खाने वालों को इसके सेवन से थोड़ी राहत तो मिलती है, परन्तु सुखावह लाभ नहीं हो पाता। षट्पल घृत के साथ लौहभस्म २ रत्ती तथा पीली तबकिया वर्की हरताल भस्म २ रत्ती नित्य प्रातःसायं चटाने से प्रथम माह में ही संतोषजनक लाभ होता है और ६ माह में गलित कुष्ठ में पूर्णतः आराम हो जाता है। गलित कुष्ठ की चिकित्सा में नमक, खटाई, और मिर्च का सेवन बिलकुल बन्द करा देना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन भी अनिवार्य रूप में होना चाहिए। यह कई बार देखा गया है कि व्यभिचार करने से और मिथ्या आहार विहार से गलित कुष्ठ पुनः उभर आता है।

२. ज्वर—विषम ज्वर और जीर्ण ज्वर में हम इस का प्रयोग करते हैं। इसका प्रयोग हमने अभी तक बालिग स्त्री-पुरुषों के लिए भी किया है। इससे जीर्ण ज्वर १ माह के सेवन से निःसंदेह मिट जाता है, यदि फुफ्फुसज क्षय नहीं है। क्षयजन्य जीर्ण ज्वर में भी यह लाभ करता है, ज्वर

का वेग न्यूनतम रहने लगता है। परन्तु जीर्ण ज्वर कुछ थम कर फिर आने लगता है। षट्पल घृत १। तोला, सितोपला चूर्ण ३ माशा तथा मृगांक रस १ रत्ती चटाने से क्षयजन्य जीर्ण ज्वर में स्थायी लाभ होता है। षट्पल घृत के सेवन से बार-बार आने वाला जूड़ी बुखार (शीतपूर्व ज्वर) अवश्य थम जाता है। ज्वर निवारण के लिए इसे गिलोय के सुखोष्ण क्वाथ में डालकर रोगी को प्रातः सायं पिलाना चाहिए।

३. गुल्म में—इसे त्रिफला के सुखोष्ण काढ़े में मिलाकर सेवन कराना चाहिये। इससे गुल्म की पीड़ा शान्त होती है। गुल्म में लगातार इसका प्रयोग करने का अवसर हमें नहीं मिला। वातगुल्म के रोगी को हमने इसे १ माह तक त्रिफला के सुखोष्ण काढ़े में डाल कर पिलाया तो उसका उदरशूल बराबर बन्द रहा, परन्तु गुल्म १ माह में नहीं मिटा। सम्भवतः छः माह लगातार लेने से गुल्म मिट सके, परन्तु ऐसा प्रयोग कराने वाला रोगी बहुधा मिलता नहीं।

४. गलगण्ड, गण्डमाला पर षट्पल घृत का प्रयोग कचनार त्वक् क्वाथ के साथ किया गया। आशातीत लाभ हुआ। क्वाथ सुखोष्ण होना चाहिये। तुरन्त हुआ गलगण्ड एक सप्ताह में आराम होने लगता है। इससे कर्ण मूल शोथ में भी आराम हो जाता है।

५. अर्श में हम षटपल घृत २॥ तोला में १॥ माशा भुनी हरड़ का चूर्ण मिलाकर प्रातः सायं सेवन कराते हैं। इससे अर्श की पीड़ा और कण्डु शांत हो जाती है।

६. ग्रहणी पर इसका प्रयोग हम बबूल की छाल के सुखोष्ण काढ़े में मिलाकर करते हैं। बबूल के सुखोष्ण काढ़ा २॥ तोला से ५ तोला मात्रा तथा षट्पल घृत १। तोला से २॥ तोला की मात्रा दोनों को मिलाकर खाली पेट प्रातः सायं पिलाने से मल गाढ़ा होने लगता है। मल विसर्जन के वेग कम हो जाते हैं। बिना बबूल काढ़े के, केवल षट्पल घृत पिलाने से, तत्काल कोई लाभ नहीं नजर आता। हां इसको इन्द्रयव के सुखोष्ण काढ़े के साथ सेवन कराने से संग्रहणी में होने वाले मल विसर्जन का वेग और ज्वर दोनों थम जाते हैं। ज्वरातिसार में भी षट्पल घृत कुटज क्वाथ के साथ लाभकारी है। तीन-चार दिन में ही ज्वरातिसार रुक जाता है। केवल इसी से ही रोगी स्वास्थ्य लाभ कर लेता है।

७. सूजन और विसर्प में पटपल घृत निम्बत्वक् के सुखोष्ण क्वाथ से पिलाना श्रेयस्कर है। इससे वातज शोथ और वातज तथा पित्तज विसर्प निःसंदेह आराम होते हैं। अग्नि विसर्प में इसको पिलाने से तत्काल लाभ नहीं होता, परन्तु इसका सेवन उपयोगी अवश्य प्रतीत होता है। दुर्गन्ध और सड़न नहीं होने पाती, यदि शोथ होते ही इसे पिलाना प्रारम्भ कर दिया जाय।

७. पीडिका—पामा-कण्डु के रोगी को षट्पल घृत स्वर्णक्षीरी के सुखोष्ण काढ़े में मिलाकर पिलाने से ७ दिन में पूर्णतः लाभ होता है बशर्ते नमक, खटाई और मिर्च का सेवन बन्द कर दिया जाय। षट्पल घृत रक्त दोषजन्य ज्वर में बहुत लाभकारी है।

सूचना—षट्पल घृत को सुखोष्ण गोदुग्ध में तथा रोगानुसार सुखावह द्रव्यों के सुखोष्ण क्वाथ में मिलाकर धीरे-धीरे पिलाना चाहिए। इसे त्रिफला के सुखोष्ण काढ़े के साथ भोजन के १ घण्टे पूर्व पिलाने से आमाशय शूल और २ घण्टे के बाद पिलाने से पक्वाशय का परिणाम शूल मिटता है।

८. विषजन्य मद में—२० तोला से ४० तोला गरम गोदुग्ध में षट्पल घृत को १। तोला से २॥ तोला की मात्रा में मिलाकर पिलाने से मद दूर होता है और मूर्च्छा नहीं आने पाती। कुचला के विष में, जब मस्तिष्क कुण्ठित हो जाता है, षट्पल घृत को गरम गाय के दूध में मिला कर पिलाने से कुचला का विष तुरन्त शांत होता है। हाथ-पैरों की ऐंठन मिट जाती है।

—प्राणाचार्य पं० श्री हर्षुल मिश्रा
बी. ए. (आनर्स), आयुर्वेद प्रवीण
पेंशन बाड़ा, रायपुर (म०प्र०)

त्रिफला घृत

वैद्य श्री मौहरसिंह आर्य

ग्रन्थ निर्देश—शार्ङ्गधर संहिता, मध्यम खण्ड , स्नेहन कल्पना प्रकरण ।

घटक	तोल	विशिष्ट गुण
१. हरीतकी दल	१० ग्राम	रस—लवण रहित पञ्चरस युक्त । वीर्य–उष्ण । विपाक-मधुर । दोषशमन–त्रिदोष । गुण—वल्य–पथ्य–वयःस्थापन, चक्षुष्य, रसायन ।
२. विभीतक दल	,,	रस—कषाय । वीर्य–उष्ण । विपाक–मधुर । दोषशमन–कफ पित्त । गुण—रूक्ष, लघु, भेदन, चक्षुष्य, केश्य, रसायन ।
३. आमलक दल	,,	रस—लवण रहित सब । वीर्य–उष्ण । विपाक–मधुर । दोषशमन–त्रिदोष । गुण—वयःस्थापन, चक्षुष्य, रसायन. पौष्टिक, वल्य, वाजीकर, दीपन, पाचन ।
४. पिप्पली	,,	रस—कटु । वीर्य–अनुष्ण शीत । विपाक–मधुर । दोषशमन–वात । गुण—दीपन, पाचन, वृष्य, रसायन ।
५. द्राक्षा	,,	रस—मधुर । वीर्य–शीत । विपाक–मधुर । दोषशमन–वात पित्त । गुण—स्निग्ध–वृंहण, वृष्य, सर, कण्ठ्य, संतर्पण, चक्षुष्य ।
६. चन्दन श्वेत	,,	रस— तिक्त, मधुर । वीर्य–शीत । विपाक–कटु । दोषशमन–कफ पित्त । गुण—वर्ण्य, विषहर, वृष्य, हृद्य, चक्षुष्य, आह्लादकारक ।
७. सैंधव लवण	,,	रस—लवण । वीर्य–शीत । विपाक–मधुर । दोषशमन–त्रिदोष । गुण—दीपन, रुचिकर, नेत्र के लिए हितकर, लघु, हृद्य, आरोग्यप्रद ।
८. बला	,,	रस—मधुर । वीर्य–शीत । विपाक–मधुर । दोषशमन–वात पित्त । गुण—वृंहणीय, वल्य, वृष्य, ग्राही, प्रजास्थापन ।
९. काकोली (अश्वगन्धा)	,,	रस—कषाय, मधुर । वीर्य–उष्ण । विपाक–मधुर । दोषशमन–त्रिदोष । गुण—वृंहण, वल्य, रसायन, वाजीकर, पौष्टिक ।
१०. क्षीर काकोली (अश्वगन्धा)	,,	,, ,, ,,
११. मेदा (शतावर)	,,	रस—तिक्त, मधुर । वीर्य—शीत । विपाक—मधुर । दोषशमन–त्रिदोष । गुण—वल्य, वृष्य, रसायन, स्निग्ध, पौष्टिक, चक्षुष्य, गुरु, मेध्य ।
१२. कृष्ण मरिच	,,	रस—कटु । वीर्य–उष्ण । विपाक–कटु । दोषशमन–कफ, वात । गुण—तीक्ष्ण, लघु, अवृष्य, रोचन, छेदन, शोषण, दीपन, नेत्र के लिए हितकर ।
१३. शुण्ठी	,,	रस—कटु । वीर्य–उष्ण । विपाक–मधुर । दोषशमन–कफ वात । गुण—दीपन, रोचन, हृद्य, लघु,
१४. शर्करा	,,	रस— मधुर । वीर्य–शीत । विपाक–मधुर । दोषशमन–पित्त । गुण—गुरु, वृष्य, पौष्टिक, पाचक ।
१५. नील कमल	,,	रस—मधुर, तिक्त । वीर्य—शीत । विपाक–मधुर । दोषशमन–कफ, पित्त । गुण—शीतल, वर्ण्य ।

घटक	तोल	विशिष्ट गुण
१६. श्वेत कमल	१० ग्राम	रस—कषाय, मधुर । वीर्य–शीत । विपाक–मधुर । दोषशमन–पित्त कफ । गुण—स्निग्ध, पिच्छिल, मूत्रल, ग्राही, आह्लादकारक ।
१७. पुनर्नवा	"	रस—कषाय, तिक्त । वीर्य–उष्ण । विपाक–कटु । दोषशमन–कफ पित्त । गुण—सारक, रूक्ष, स्वेदल, मूत्रल, दीपन ।
१८. हरिद्रा	"	रस—तिक्त, कटु । वीर्य–उष्ण । विपाक–कटु । दोषशमन–कफ पित्त । गुण—रुक्ष, वर्ण्य, लेखन, दीपन, ग्राही ।
१९. दारु हरिद्रा	"	रस—तिक्त । वीर्य–उष्ण । विपाक–कटु । दोषशमन–कफ पित्त । गुण—रूक्ष, लेखन, सौम्य, ग्राही, पौष्टिक, स्वेदल, चक्षुष्य ।
२०. मधुयष्ठी	"	रस—मधुर । वीर्य–शीत । विपाक–मधुर । दोषशमन–त्रिदोष । गुण—गुरु, स्निग्ध, जीवनीय, वर्ण्य, कण्ठ्य, मूत्रल, रसायन, चक्षुष्य ।
२१. त्रिफला क्वाथ	६४० मिलि.	रस—लवण रहित सर्व रस । वीर्य–उष्ण । विपाक–मधुर । दोषशमन–त्रिदोष । गुण—दीपन, रुचिकर, चक्षुष्य, रसायन, आयुस्थापक, वृष्य, बृंहण, सर, हृद्य
२२. अडूसा स्वरस	६४० "	रस—तिक्त, कटु । वीर्य–शीत । विपाक–कटु । दोषशमन–कफ पित्त । गुण—उत्तेजक, लघु, स्वर्य ।
२३. भृङ्गराज स्वरस	६४० "	रस—कटु, तिक्त । वीर्य–उष्ण । विपाक–कटु । दोषशमन–कफ वात । गुण—रसायन, दीपन, पाचन, मूत्रल, बल्य, वर्ण्य, रूक्ष, केश्य ।
२४. अजादुग्ध	६४० "	रस—मधुर, कषाय । वीर्य–शीत । विपाक–मधुर । दोषशमन–पित्त । गुण—लघु, ग्राही ।
२५. गोघृत	६४० "	रस—मधुर । वीर्य–शीत । विपाक–मधुर । दोषशमन–वात, पित्त । गुण—आयु, बुद्धि, स्मृति, धारणाशक्ति, कान्तिवर्धक, नेत्ररोग नाशक ।

निर्माण विधि—संख्या २० तक सभी द्रव्यों का वस्त्रपूत चूर्ण कर कल्क बना लें। फिर कल्क सहित संख्या २१ से २५ तक एकत्र कर विधिपूर्वक सिद्ध करलें।

विशेष वचन—१. त्रिफला ६४० ग्राम ले अठगुने जल में क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहते उतार छान उपयोग में लें।

२. काकोली तथा क्षीर काकोली दोनों के अभाव में अश्वगन्धा लें। कई वैद्य मुलेहठी भी लेते हैं। मेदा के अभाव में शतावर लें।

मात्रा—१० से २० ग्राम तक। अनुपान—गव्य दुग्ध, अजादुग्ध। प्रातः तथा रात्रि में सोते समय लें। अथवा भोजन के पूर्व, मध्य तथा अन्त में व्यवहार करें।

उपयोग—इस घृत के सेवन से नेत्र रोग दूर होते हैं। यह रतौंधी, नकुलान्ध (दिन में चित्र विचित्र दिखाई देना), नेत्र कण्डू (आँख की खुजली), पिल्ल (नेत्र रोग-अपरिक्लिन्न वर्त्मरोग), नेत्र स्राव (आँखों से पानी बहना), नेत्र पटल के रोग, तिमिर (नेत्र के द्वितीय पटल के रोग (Amourosis), अजकाजात रोग (नेत्र के कृष्ण पटल पर अजा मेंगनी के समान आकृति बन जाना—Leucoma) आदि एवं अन्य दूसरे नेत्र सम्बन्धी अतीव कष्टदायक रोगों को यह त्रिफला घृत नष्ट करता है। इस घृत का प्रयोग पीने, नस्य लेने एवं नेत्र पर संतपर्ण के लिए उचित है।

विशिष्ट अनुभव—यह घृत नेत्र रोगों के लिए अत्यन्त उत्तम है। तीव्र जलन सहित नेत्र की लाली में बहुत श्रेष्ठ है। अनेक ऐसे रोगियों के लिए भी उत्कृष्ट सिद्ध हुआ है. जिनके भांफनी के बाल गिर चुके थे। हर समय नेत्रों से जल गिरता रहता था, नेत्र स्राव के कारण खुजली तथा नेत्र चिपचिपे दिखाई देते थे। ऐसे रोगियों को यह घृत

अमृत तुल्य लाभप्रद सिद्ध हुआ है। दूर की वस्तु स्पष्ट दिखाई न देना, अथवा समीप की वस्तु अक्षर आदि स्पष्ट न देखना आदि सभी नेत्र विकार इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। एक वर्ष तक इस घृत का सेवन करने से मोतियाबिन्दु नष्ट हो जाता है।

इस घृत के सेवन से शरीर बल, पचनशक्ति और शारीरिक कान्ति बढ़ती है। जीर्ण बद्धकोष्ठ के रुग्णों की अन्तड़ी, मेदा तथा यकृत की शुद्धि इसके सेवन से हो जाती है। इस घृत का सेवन पूरे लाभ के लिए १ वर्ष तक सेवन करना आवश्यक है। न्यून से न्यून ४ मास तो अवश्य सेवन करें। एक वर्ष तक इस घृत का सेवन करावें तथा 'मुक्ताञ्जन' सुरमा नेत्रों में डालें एवं त्रिफला हिम से साफ करें तो चश्मा से पीछा छूट जाता है।

१. रतौंधी—जो सज्जन विटामिन ए तथा डी जैसी विदेशी औषधियों का सेवन नहीं करना चाहें, वे त्रिफला घृत का सेवन करें।

सेवनविधि—त्रिफला घृत २० ग्राम, गोदुग्ध २०० ग्राम दोनों को उष्ण कर पिला दें। त्रिफला घृत को गरम कर सलाई से दोनों नेत्रों में अंजनवत् लगावें और रोगी को सुला दें। केवल तीन दिन में ही रोग नष्ट हो जाता है।

२. नेत्र कण्डू एवं नेत्रस्राव—आंखों को त्रिफला के क्वाथ से धोवें। अन्तः प्रयोज्य भेषज त्रिफला घृत २० ग्राम दुग्ध के साथ दें। नेत्रों में त्रिफला घृत सलाई से लगावे।

३. आंखों की पलकें सूज जाना—दोनों समय घृत गोदुग्ध में पिलावें। रात्रि में सोते समय एक स्वच्छ रुई का फोहा त्रिफला घृत में भिगोकर नेत्रों पर बांध दें।

४. धुन्ध जाला—त्रिफला घृत को नेत्रों में लगावें तथा दोनों समय अजा दुग्ध में पीने के लिए दें।

५. कुकरे, अजकाजात में २-३ बार नेत्रों में घृत डालें।

६. नेत्र ज्योति कम होना—मस्तिष्क, दिमाग की दुर्बलता के कारण नेत्र ज्योति न्यून हो जाती है, डाक्टर लोग रोगी को चश्मा लगाने का परामर्श देते हैं। ऐसे रोगी त्रिफला घृत का सेवन ४-६ मास करें तो चश्मा लगाने की आवश्यकता ही न रहे।

७. बालों का गिरना—अनेक रुग्णों को त्रिफला घृत का सेवन नेत्र रोगों के लिए कराया गया। परिणामस्वरूप नेत्र रोग तो दूर हो ही गया साथ में बाल गिरना भी बन्द हो गया।

८. मोतियाबिन्दु—इस रोग की प्रारम्भिकावस्था में ही इस घृत का सेवन करावें तथा नेत्र में मुक्ताञ्जन लगावें। इससे मोतियाबिन्दु की वृद्धि रुक जाती है। एक वर्ष तक इस घृत का सेवन करावें।

९. व्रण, हो जाने पर इस घृत को लगायें।

—वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य
स्थान–मिसरी, जिला–भिवानी (हरियाणा)

ब्राह्मी घृत

ग्रन्थ—वै० स०

योग—पुराना घृत ४ सेर, ब्राह्मी स्वरस ४ सेर, शंखपुष्पी स्वरस ४ सेर, गोदुग्ध ४ सेर।

कल्क द्रव्य—ब्राह्मी पंचांग १ पाव, वच १ पाव, कूठ १ पाव, शंखपुष्पी १ पाव।

निर्माण विधि—प्रथम तैल को आग पर चढ़ाकर कल्क द्रव्य को कूट पीसकर लुगदी बना ४ सेर पानी में पकावें। फिर क्रमशः १-१ दिन के अन्तर से स्वरस और दूध डालकर मन्द आंच पर पकावें। घी मात्र शेष रहने पर छानकर शीशे के मर्तबान में रख लें। घी जम जाता है, अतः बड़े मुख वाले पात्र में रखना चाहिए। मात्रा १ रत्ती शक्कर मिला दूध के साथ सेवन करें।

उपयोग—यह वातज, पितज रोगों को शमन करता है। मस्तिष्क की निर्बलता, स्मृतिभ्रंश, अपस्मार, उन्माद, शिरोरोग, शिरोशूल, अकाल जठरता, भ्रम, मद आदि रोगों को दूर करता है। हर ऋतु में सेवन कर सकते हैं। स्वस्थ व्यक्ति जो लिखने-पढ़ने का कार्य करते हैं सेवन कर सकते हैं। तैल, खटाई, मांस, मदिरा, चाय, काफी, भांग अपथ्य हैं।

—श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव वैद्य
अरौल (कानपुर) उ० प्र०
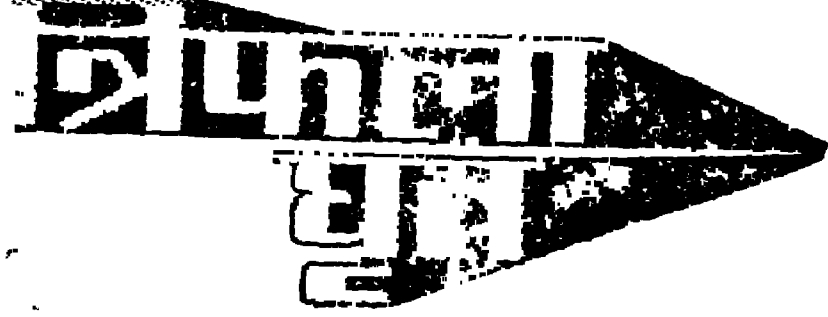
ग्रन्थ—अष्टांग हृदय।

कल्क द्रव्य—पिप्पली, मिश्री, मुनक्का, कटेली, गिलोय़ नम्बाश्रिता), नीलकमल, मुलेठी, काकोली, क्षीर काकोली, रुहल्दी, पुनर्नवा सम्मिलित २५० ग्राम।

घृत—गोघृत, बकरी का दूध, त्रिफला क्वाथ, वासा न्चाग क्वाथ, भाँगरा का स्वरस १-१ किलो।

घृत मूर्च्छन विधि—घी को एक बड़े कलईदार पात्र में या भगोना में डालकर आग पर गर्म करें, उवाल शान्त होने : नीचे उतार लें। पश्चात् हरड़, बहेड़ा, आंवला, मोथा, जौरा नीबू का स्वरस प्रत्येक ५०-५० ग्राम ले पूर्व द्रव्यों चूर्ण वना नीबू रस में पीस कल्क या लुगदी बनालें। र इस कल्क को घी में डाल और १ किलो पानी डाल ग पर घृत का पाक करना चाहिए। घृत का उबाल ाप्त होने पर उतार लेना चाहिए। इस प्रकार घृत का मदोष समाप्त हो जाता है।

घृतपाक—एक बड़े पात्र में घी और द्रव द्रव्य डाल दें ामें कल्क द्रव्य डालकर मिलादें। फिर पात्र को आग पर ाकर मन्द-मन्द पाक करें। तीव्र आग न देकर ३-४ दिनों वी पाक करना चाहिए। जब तक घृत में जलीय अंश गा तब तक मृदु पाक कहा जायेगा वह उत्तम नहीं होता अतः मध्यम पाक करना चाहिए। घी में फेन उठना वन्द जाय, कल्क और घी अलग अलग हो जाय, कल्क की तयां बनने लगे तव मध्यम पाक कहा जाता है। आगे र अधिक आग देने से खरपाक या दग्धपाक हो जाता ाह हानिकारी है। घी को आग से नीचे उतार कर कुछ -गर्म घी छान लेना चाहिए।

घृत के वीर्ययुक्त रहने की अवधि—४-५ मास ही है। ाक से अधिक ८-१० मास में इसका उपयोग कर लेना हिए। जिन चिकित्सकों के ४-६ रोगी नेत्र रोगों के होते हैं वे घर पर इसका निर्माण कर उसे बांटकर अपने रोगियों को दे सकते हैं। द्रव्य सभी सुलभ हैं। अ. हृ. में दारु हल्दी और पुनर्नवा नहीं है जो न मिलाना चाहे वे न मिलावे। ग. नि. में करीव २६ द्रव्य हैं। पुनर्नवा, गिलोय स्वरस, आंवला स्वरस और शतावरी स्वरस नहीं है। शा. सं. उक्त तीनों स्वरस भै. र. वाले नहीं हैं। २७ द्रव्य हैं। भै. र. में कल्क में १० द्रव्य हैं, शा. सं. में १९ तक कल्क द्रव्य, जो चिकित्सक इन्हें बनाना चाहे वे अन्य ग्रन्थों का अनुशीलन करें। च. द. में भै. र. का पाठ है।

मूल ग्रन्थ में त्रिफला घृत सेवन के अनुयोग के रूप में त्रिफला और मुलेहठी चूर्ण ३-४ मा.+मधु ६ माशे भी सेवन कराने का आग्रह किया है। यह प्रतिदिन या प्रति दूसरे दिन सेवन किया जा सकता है। त्रिफला उदर शोधन में उपयोगी होने के कारण लाभ ही करेगा। इसके अतिरिक्त आंवला स्वरस १-२ तोला पीने का भी संकेत किया है। स्वरस शीतऋतु में प्राप्त हो सकता है तव शीतवीर्य होने के कारण हानि कर सकता है पर उक्त घृत में मिलाकर लिया जा सकता है। उष्ण ऋतु में आमला का शीत कषाय लेना उपयुक्त है उसमें मधु या मिश्री मिला सकते हैं। यह पित्त शामक होता है। दृष्टि शक्ति पर और केशों पर विशेष प्रभाव करता है। कई मास सेवन करने से चश्मा उतर जाता है और असमय श्वेत केश काले हो जाते है। आमला रसायन होता है।

उपयोग—इस घृत के सेवन करने से अनेक शिरोरोग, अनेक नेत्र रोग दूर हो जाते हैं। शस्त्र साध्य रोगों में भी कुछ लाभ ही होता है। रात्रि में दिखाई न पड़ना, तिमिर, नीलिका, आरम्भिक कांच, पटल दोष, अभिष्यन्द, साधारण वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक एवं सन्निपातिक रोग, नेत्र-वारि नेत्र-कण्डू, नेत्रशोथ, नेत्रशूल, नेत्रव्रण, नेत्रक्षत, नेत्र लालिमा, समीप की वस्तु ही दिखाई पड़ना, दूर की वस्तु न दिखाई पड़ना, मन्द दृष्टि शक्ति, पक्ष्म कोप आदि रोगों में लाभकारी है। अर्बुद और अधिमन्थ में भी लाभ करता है। कठिन रोगों में वमन विरेचन के वाद सेवन करना चाहिए और पथ्य का पालन करना चाहिए तथा अंजन, नेत्र विन्दु या काजल का ऊपरी प्रयोग भी करना चाहिए। सभी रोगों में घृत सेवन मात्र पर निर्भर नहीं रहना

—शेषांश पृष्ठ २०४ पर देखें।

तीसरा
कभी
नहीं

अपने पास के परिवार नियोजन केन्द्र,
प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या ग्राम स्वास्थ्य सहायक
से सलाह और सामान लीजिए
आज ही उनके पास जाइए

davp

किसी भी तैल को सिद्ध करने से पूर्व उसे गन्धरहित करके शुद्ध कर लेना चाहिए। भिन्न-भिन्न तैलों को भिन्न द्रव्यों से शुद्ध किया जाता है यथा—

१. सामान्य तैल—आम, जामुन, कैथा, बिजौरा नींबू, और बेल के पत्तों का रस, दही और लाख के साथ तैल पकाकर कपड़े से छानकर रखना चाहिए। इस विधि से सभी तैल गंध, वर्ण, दोनों से दूर किये जाते हैं। इसे तैल मूर्च्छन विधि भी कहते हैं।

तिल तैल मूर्च्छन विधि—

तिल तेल ६४ तोला, मंजीठ ४ तोला, हरड़ (बड़ी) बहेड़ा, आंमला, हल्दी, लोध्र, नागरमोथा, नालका (सुगन्धित द्रव्य), केवड़े के फूल और बरगद की जटा ये प्रत्येक १ तोला।

विधि—कढ़ाई में तैल डालकर मन्द-मन्द अग्नि पर गरम करें। जब उसमें फेन आकर नष्ट हो जांय, तब उसे अग्नि पर से उतार लें। उसमें जल में पिसी हुई हल्दी डालें और करछुली से चलाते रहें। इसके बाद मंजीठ को भी उसी प्रकार डालें। तत्पश्चात् शेष द्रव्यों को भी एक-एक करके डालें। बाद में तिल तेल से ४ गुणा जल डालकर अच्छी तरह से मिलावें। पुनः अग्नि पर रखकर पकावें। जलांश नष्ट होने पर अग्नि पर से नीचे उतार कर तत्काल ही कपड़े से छानकर रख लें। इस मूर्च्छित तेल का रङ्ग लाल, गंधरहित तथा सुगन्धित होगा।

कटु (सरसों) तैल शोधन (मूर्च्छन) विधि

सरसों का तेल ६४ तोला, आंवला, हल्दी, नागरमोथा, बेल छाल, अनार की छाल, नागकेशर, काला जीरा, सुगन्ध वाला, नालका, और बहेड़ा प्रत्येक १ तोला।

विधि—शुद्ध सरसों के तेल को गरम करें, जब फेन आकर नष्ट हो जांय तब उसे अग्नि से नीचे उतार कुछ ठण्डा होने दें। फिर आमले से लेकर बहेड़े तक की सभी वस्तुओं को जल के साथ सूक्ष्म पीस तेल में डालकर करछुले से चलाते रहें, बाद में तेल से ४ गुणा जल डालकर उसमें मिलादें। अग्नि पर रखें, पाक करें। जलांश नष्ट हो जाने पर अग्नि से उतार कपड़े से छानकर रखें।

एरण्ड तेल मूर्च्छन विधि—

एरण्ड तेल ६४ तोला

प्रक्षेप—मंजीठ, मोथा, धनिया, बड़ी हरड़, बहेड़ा, आंवला, अरणी, सुगन्धवाला, नागरमोथा, खजूर, वरगद का शुङ्ग (टूसा), हल्दी, दारुहल्दी, नालुका, केवड़े के फूल प्रत्येक ३ माशा।

प्रक्षेप द्रव्यों को कांजी के साथ पीस कल्क करें। और जो विधि सरसों तेल मूर्च्छन की बताई उसी विधि से इसे भी परिपाक करें। इसमें दही और कांजी (जल के स्थान पर) तेल में ४ गुणा डालकर परिपाक करें

मूर्छित तेल से ही सभी तेलों का निर्माण करना चाहिए। जिस प्रकार घृतपाक में विधि बताई गई है वही विधि तैल पाक की भी है।

जो तेल नस्य कर्म में प्रयोग किया जाय वह मृदुपाक पकाया जाता है जैसे षट्बिन्दु तेल

अभ्यंग के लिए खरपाक तेल बनाया जाता है। जैसे लाक्षादि तेल, नारायण तेल प्रभृति।

जो तेल मुख द्वारा सेवन कराया जाय उसका पाक मध्यम होना चाहिए। यह विधि घृतपाक मे स्पष्ट की है।

तेल को परिपाक के पश्चात् उसे सुगन्धित करने के लिए सुगन्धित द्रव्यों का भी उपयोग किया जाता है जैसे केशर, कस्तूरी, कपूर, कंकोल, कचूर, छोटी इलायची, जायफल, लौंग, दालचीनी, तेजपत्ता, मेथी, जीरा, जावित्री, सोया के वीज, सौंफ, श्वेत चन्दन, लालचन्दन, आम, जटामांसी (वालछड़) देवदारु, धूपसरल, खस, मोथा, नागरमोथा, कस्तूरी लता, गंधमार्जार, मुरामांसी, कूठ, वेल, कुष्ठ, नलिका, चम्पा के फूल, फूलप्रियंगु, नख, नखी, शिलारस, गठिवन, गजपीपल, गन्धाविरोजा प्रभृति। इनके डालने, शुद्ध करने, तथा पहचान के लिए अन्यत्र ग्रन्थों में देखना होगा। यहाँ इनका विस्तृत वर्णन आवश्यक नहीं है।

—विशेष सम्पादक

त्रिफलादि घृत : : पृष्ठ २०१ का शेषांश

चाहिए। पर नेत्र रोगी में सह-योग रूप से घृत सेवन भी करें।

द्रव्य गुण—घी, चक्षुष्य, वल्य, रसायन, वातपित्त शामक है। त्रिफला—चक्षुष्य, उदरशोधक, कफपित्तहर है। भांगरा—केशरञ्जक, कफवात शामक रसायन है। वासा—श्वास, कास, क्षयहर, कफपित्त, रक्तपित्तहर है। अजादुग्ध—रक्तपित्तहर क्षय में उपयोगी है। पिप्पली—कफवात शामक, कास श्वास जीर्णज्वर नाशक रसायन है। मुनक्का—वातपित्त शामक, सर वल्य है। निम्ब गिलोय—त्रिदोष शामक, रसायन, दाह शामक है। क्षीर काकोली—वातपित्त शामक, बृंहण, रसायन, ज्वर हर है। कटेली—वातकफ शामक, कास श्वास शूलहर है। नीलकमल—वातपित्त शामक, दाह, रक्तविकार, विष शामक है। दारुहल्दी—व्रणहर, क्षतहर, चक्षुष्य है। पुनर्नवा नेत्रों के लिए अत्यन्त हितकारी है। घृत के साथ ये सभी द्रव्य मिलाकर त्रिदोष शामक, उदर शोधक, वल्य, चक्षुष्य बनते हैं। पथ्य सह घृत का पान करना चाहिए।

मात्रा—१-२ तोला दूध में डालकर पीना चाहिए। या भोजन के साथ सेवन करें या यों ही चाट लें। दिन में २ बार भी ले सकते हैं। स्वस्थ व्यक्ति भी सेवन कर सकते हैं हानि कुछ नहीं करता। पर ब्रह्मचर्य का पालन कर सेवन करें तो १५ दिनों में लाभ दिखलाई पड़ता है। साधारण रोगों में ४-५ दिनों में लाभ होता है।

—श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव वैद्य,
अरौल (कानपुर)

इरिमेदादि तैल

डा० श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री

इरिमेद एक प्रकार का खैर ही है, इसे दुर्गन्धिखदिर या विट्खदिर भी कहते हैं। यह तैल मुख रोगों की सुप्रसिद्ध औषधि है। इसमें भी सुगन्धित द्रव्यों को तैल सिद्ध होने पर ही डालना चाहिए।

द्रव्य—इरिमेद का जौकुट चूर्ण ५ सेर, जल क्वाथार्थ १२ सेर ३ पाव ४ तोला, चतुर्थांश रहने पर छान लें।

तिल तैल—३ सेर १६ तोला।

खैर की छाल, लौंग, गेरू, अगर, चन्दन, पद्मकाष्ठ, मंजीठ, लोध्र, मुलेठी, लाख, बरगद की छाल, नागरमोथा, दालचीनी, जायफल, शीतलचीनी, कपूर, कत्था, पतंग, धाय के फूल, इलायची, नागकेशर तथा कायफल प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, इन द्रव्यों के कल्क से तैल पाक करें।

प्रयोग—यह तैल मुख रोग नाशक है। मांस विकृति से होने वाला मुख रोग, दांतों का हिलना, समय से पहले दाँतों का गिरना, मसूड़ों का फूलना, दाँतों का काला होना, दन्त हर्ष, गलविद्रधि, कृमि दन्तक, दन्तस्फुरण, दाँतों की दुर्गन्धि, जीभ, तालु तथा ओष्ठ सम्बन्धी रोगों का विनाशक है।

सामान्य रूप से तैल गुरुता, स्थिरता, बल तथा कान्ति दायक होता है। सर, वृष्य, विकाशी, विशद, रस एवं पाक में मधुर, सूक्ष्म, कुछ कषाय, तिक्त, वातकफ नाशक, वीर्य में उष्ण, शीतस्पर्श, बृंहण, रक्तपित्तकारक, लेखन, मूत्र एवं पुरीष को बाँधने वाला, गर्भाशयशोधक, अग्निदीपक, बुद्धि एवं मेधा वर्धक, व्यवायी, व्रण तथा प्रमेह-नाशक, कर्ण, शिर, योनि, शूल नाशक और स्फूर्ति दायक होता है।

ऊपर कतिपय विरोधी गुणों का वर्णन आया है, जैसे—लेखन और बृंहण दूसरी जगह ग्राही और सर इनका समाधान देखें।

लेखन तथा बृंहण—

समाधान—रूक्ष आहार विहार से दूषित वायु जब रस वाही स्रोतों को संकुचित करता है तो रक्त आदि धातुएँ बढ़ती नहीं, अतः कृशता हो जाती है। तब तैल प्रयोग से वे मार्ग प्रशस्त होकर बृंहण करते हैं। जब तैल अपने तीक्ष्ण आदि गुणों से मेदस् धातु का क्षय करता है तब वह लेखन कहा जाता है।

ग्राही और सर

समाधान—पूर्वोक्त प्रकार से स्रोतस् के विवृत हो जाने पर पुरीष का द्रवांश आचूषित हो जाता है, अतः तैल ग्राही है। और तैल स्निग्ध होने के कारण मल को सरकाने में सहायता करता है, अतः सर या सारक है।

विशेषता—त्रिफला घृत आदि एक वर्ष में हीन वीर्य हो जाते हैं परन्तु तैल पकाया हुआ या बिना पकाया जितना पुराना होगा उतना अधिक गुणवान होता है।

—डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री
के ३०/६, घासी टोला, वाराणसी

—वैद्य श्री वेदप्रकाश तिवारी, संयुक्त अनुसन्धानीय संस्थान, ताड़ीखेत (रानीखेत)

प्रायः सभी औषधि निर्माता चन्दनादि तैल का निर्माण करते हैं। किन्तु इसके निर्माण में कौन सी कठिनाइयां एवं द्रव्यों में जो सन्दिग्धता है, वह प्रकाश में नहीं आयी। प्रस्तुत लेख इसी आधार पर चरक संहिता, शार्ङ्गधर, चक्रदत्त, भैषज्य रत्नावली, वृन्द वैद्यक, योगतरङ्गिणी एवं वंगसेन से लिया गया है। योग के द्रव्यों का पाठानुसार मान एवं गुण–कर्म का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। प्रत्येक द्रव्य का वानस्पतिक नाम, प्रयोज्याअङ्ग एवं आधुनिक मान (आनुमानिक) का उल्लेख किया गया है।

चन्दनादि तैल का उल्लेख जिन पाठों के (तालिका नं० १) अनुसार किया गया उनके अतिरिक्त निम्न पाठों में चन्दनादि तैल का उल्लेख है जिनका विस्तारभय से यहां उल्लेख न हो सका—

१—चरक में ज्वराधिकार। २—योग रत्नाकर में चन्दनादि तैल का उल्लेख है।
३—भैषज्य रत्नावली में राजयक्ष्माधिकार (भै० र० १४/२८८–२९१) में तथा स्वल्प चन्दनादि तैल एवं १४/२९६–३१० में महाचन्दनादि तैल के नाम से उल्लेख किया है।

स्थानाभाव के कारण द्रव्यों की सन्दिग्धता का विवेचन नहीं किया गया किन्तु संदिग्ध द्रव्यों पर प्रश्नवाचक चिह्न (?) लगाया गया है। इससे यह ज्ञात हो जायेगा कि इसमें कितने द्रव्य संदिग्ध हैं।

द्रव्य नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्यङ्ग	चरक	शार्ङ्गधर	चक्रदत्त	भै. र. (रसायन)	भै. र. वाजी.)	वृ. वै.	यो. तरं.	वं. से.
अगुरु	Aquilaria agallocha Roxb.	मूल	—	४८ ग्राम	४८ ग्राम	१२ ग्राम	३ ग्राम	४८ ग्राम	४८ ग्राम	४८ ग्राम
कृष्णागुरु ?	May be a variety of Aguru.	,,	—	—	—	—	,,	—	—	—
अरिष्ठ	Sapindus trifoliatus Linn	त्वक्	१२ ग्राम							
अनन्ता (अनन्तमूल)	Hemidesmus indicus R.Br.	मूल	,,							
अश्वत्थ	Ficus religiosa Linn	त्वक	,,							
असन (बीजक)	Pterocarpus marsupium Roxb.	मूल	,,							

द्रव्य नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्याङ्ग	चरक	शार्ङ्गधर	चक्रदत्त	म. र. (रसायन)	म. र. (वाजी.)	वृ. वै.	यो. तरं.	वं. से.
अश्वकर्ण ?	Dipterocarpus alatus Roxb.	त्वक	१२ ग्राम	४८ ग्राम	४८ ग्राम	१२ ग्राम	३ ग्राम	४८ ग्राम	४८ ग्राम	४८ ग्राम
आटरूस (वासक)	Adhatoda vasica Nees.	मूल	"							
आत्मगुप्ता (कपिकच्छु)	Mucuna pruriens D. C.	बीज	"							
ओदनपाकी (नील सैरेयक)	May be a Bala or Sereyaka	पंचांग	"							
ईत्कट	May be grass	मूल	"							
उशीर	Vetivevia zizanioides Linn	"	"	सेव्य ४८ ग्रा						
उत्पल	Nymphaea stellata	पुष्प	"							
ईक्षु	Saccharum officinarum Linn	मूल	"							
उदुम्बर	Ficus racemosa Linn	त्वक	"							
ऋषभक	Microstylis wallichi Linn	मूल	"							
ऋद्धि (ऋष्यप्रोक्ता) ?	Habenaria sps.	"	"							
कर्पूर	Cinnamomum camphora Nees.		"							
काक्कोल (शीतल चीनी)	Piper cubeba Linn f.	फल		४८ ग्राम						
कसेरुक	Scirpus kysoor Roxb.	त्वक	१२ ग्राम							
कदर (खदिर भेद) ?	May be a Acacia sps.	"	"							
कदम्ब	Anthocephalus indicus A.Rich.	पुष्प	"							
कपीतन ?	May be a Ficus sps.	त्वक	"							
कदली	Musa paradisiaca Linn	काण्ड	"							
कालीयक	Coscinium fenestratum Gaertn.	काष्ठ	"							
कास	Saccharum spontaneum Linn	मूल	"							
काश्मर्य	Gmelina arborea Linn	फल	"							
ककुभ (अर्जुन)	Terminalia arjuna W.A	त्वक	"							
काला ?	May be a Bala or Sariva or Hinsra.	मूल	"							
कुमुद	Nymphaea alba Linn	पुष्प	"							
कुश	Desmostachya bipinnata stapf	मूल	"							
कुंकुम (केशर)	Crocus sativus Linn	केशर	"							
कोविदार (श्वेत) ?	May be a Bauhinia sps.	त्वक	"							
क्रौंचादन ? (खिरनी)	May be a Rajadan or scirpus sps.	"	"							
कुटज	Holarrhena antidysenterica wall	"	"							
खदिर	Acacia catechu willd	"	"							

द्रव्य नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्याङ्ग	चरक	शार्ङ्गधर	चक्रदत्त	भै. र. (रसायन)	भै. र. वाजी	वृ. वै.	यो. तरं.	वं. से
खर्जूर	Phoneix sylvestris Roxb.	फल	१२ ग्राम	१२ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	१२ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.
गुग्गलु	Commiphora Mukul Engl.	निर्यास								
गुन्द्र	Typha elephantina Roxb,	मूल								
ग्रंथिपर्ण		मूल					३ ग्रा.			
चन्दन श्वेत	Santalum album Linn	काष्ठ	भद्रश्री १२ ग्रा.	४८ ग्रा.			३ ग्रा.			
चन्दन रक्त	Pterocarpus Santalinus Linn	"		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	३ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
जातिपत्री	Myristica fragrans Houtt	पत्र					"			
जातीफल	—do—	फल					"			
जम्बू	Syzygium cumini (Linn)Skeels		१२ ग्रा.							
तूणी					४८		"			
त्वक् (दालचीनी)	Cinnamomum Zeylanicum Blume	त्वक		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	"	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
तगर	Valeriana wallichii Dc.	मूल					"			
तिक्ता (कटुकी)	Picrorhiza Kurroa Royleer Benth.	मूल	२ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
तालिका (ज्योतिष्मती)	Celastrus paniculatus Willd.	बीज	१२ ग्रा,					४८ ग्रा.		
ताल	Borassus flabellifer Linn.	पत्र	१२ ग्रा.							
तृण शून्य (केतकी) ?	May be a Ketaki or Mallika.	पुष्प	"							
देवद्रुम (देवदारु)	Cedrus deodara (Roxb) Loun.	काष्ठ		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	"	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
दारुसिता	May be a Cinamomum Sys	त्वक	कालीयक १२ ग्रा.							
दारुहरिद्रा	Berberis aristata D. C.	त्वक			४८ ग्रा.	१२ ग्रा.		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
दर्भ	Desmostachya bipinnata Stapt.	मूल	१२ ग्रा.							
दूर्वा	Cynodon dactylon (Linn) pers	पंचांग	"							
धातकी	Woodfordia fruticosa Karz.	पुष्प	"				"			
धव	Anogeissus latifolia wall.	त्वक	"							
धन्वन	Grewia tiliaefolia vahl	त्वक	"							
नागकेशर	Mesua ferra Linn	केशर	नागपुष्प १२ ग्रा.		४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	३ ग्रा.			
नख ?	May be a Martynica Sps	मूल		४८ ग्रा.			"	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
नालुका ?	May be a Nadi saka	मूल		नलिका	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.			४८ ग्रा.	
नलिन(ईषतरक्तकमल) ?	May be a variety of Kamal.	पुष्प	१२ ग्रा.	४८ ग्रा.						

द्रव्य नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्याङ्ग	चरक	शार्ङ्गधर	चक्रदत्त	भै. र. (रसायन)	भै. र. (वाजी.)	वृ. वै.	यो. तरं.	वं. से.
नल	Phragmites maxima Blatter	मूल	१२ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.					
पतङ्ग	Caesalpinia sappan Linn	काष्ठ					३ ग्रा.			
पद्मक	Prunus Cerasoides D. Don	काष्ठ	१२ ग्रा.		४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	"	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
प्रियंगु (वनिता)	Collicarpa macrophylla Vahl	पुष्प	१२ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	"	"	४८ ग्रा.		
पूति (पूतिकरंज)	Ceasalpinia crista linn	त्वक		"	४८ ग्रा.	"				
पूतिकेशर, गंधमार्जार वीर्य?				"	"				४८ ग्रा.	
पद्मकेशर	Nelumbo nucifera Gaertn	केशर	१२ ग्रा.							
पद्मा (भारंगी)	Clerodendron serratum	मूल	"							
प्रपौण्डरीक ?	May be p Nymphāe sps	मूल	"							
पुण्डरीक ? (श्वेत कमल)	do	पुष्प	"							
पुष्कर	Inula racemosa Hock. f.	मूल या बीज	" "							
पलाश (वातपोथ)	Butea monosperma	त्वक	"							
पयस्या ? (क्षीरविदारी)	May be a Ipomoea-sps.	कन्द	"							
पटोल	Trichosanthes dioica Roxb.	पत्र	"							
प्रियाल	Buchanania lanzan Spreng.	फल								
बृहदएला	Amomum subulatum Roxb.	बीज	१२ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	३ ग्रा.			
वालक (अम्बु)	Pavonia odorata willd.	मूल		४८ ग्रा.		"	"	४८ ग्रा.		
बिल्व	Aegle marmelos Corr.	फल	१२ ग्रा.							
बिस (कमल)	A leaf stalk of kamal									
बदरी	Zizyphus jujuba Lam	त्वक	"							
बेतस	Salix caprea Linn	मूल	"							
बला	Sida cordifolia Linn	मूल	"							
विदारी	Pureria tuberosa D. C.	कन्द	"							
बकुल	Mimusaps elengi Linn	त्वक	"							
तिनिश	Ougenia dalbergioides Benth.	त्वक	"							
निम्ब	Azadirachta indica A. Juss.	त्वक	"							
नारिकेल	Cocos nucifera Linn	फल	"							
भद्रमुस्त (अम्बुद)	Cyprus rotundus Linn.	मूल	(वन्य) १२ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	३ ग्रा.	४८ ग्रा.		
न्यग्रोध	Ficus bengalensis Linn	त्वक	१२ ग्रा.							
मधुक	Madhuca indica J. F.	पुष्प	"							
महाश्रावणी	Sphaeranthus indicus Linn	फल	"							

द्रव्य नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्याङ्ग	चरक	शार्ङ्गधर	चक्रदत्त	भै. र (रसायन)	भै. र. (वाजी)	वृ. वै.	यो. तरं	व. से.
मेदा	Polygonatum cirrifolium	मूल	१२ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	३ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.
महामेदा	Polygonatum verlicillatum All	मूल	"							
मधुरसा (मूर्वा)	Marsdenia tenacissima W. A.	मूल	"							
मृद्वीका	Vitis Vinifera Linn.	फल	"							
मधुयष्ठि	Glycyrrhiza glabra Linn	मूल	"	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.
मृणाल	Stem of Kamal	काण्ड	"							
मंजिष्ठा	Rubia cordifolia	मूल	"	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	३ ग्रा.	१८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
मांसी	Nardostachys Jatamansi	मूल					"			
मृगनाभि (कस्तूरी)	Moschus mosiniferus	नाभि					"			
राल	Resin of Pinus roxburghii	निर्यास	१२ ग्रा.				३ ग्रा.			
लताकस्तूरी	Hibiscus abelmoschus Linn						३ ग्रा.			
लवंग	Syzygium armaticum	पुष्पांकुर		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	३ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
रेणुका	Vitex negundo Linn	बीज		४८ ग्रा.	"	"	"	"	"	
लाक्षा	Lacca lacifera				४८ ग्रा..		"			
वट	Ficus bengalensis Linn	त्वक	१२ ग्रा.							
वाप्य (कुष्ठ)	Saussurea lappa C.B. clarke	मूल				१२ ग्रा.		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
वानीर	May be a grass	मूल	१२ ग्रा.							
शैलेय	Parmelia perlata Ach			४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	३ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
श्रीवास	Pinus roxburhii Sarg	निर्यास					"			
शुण्ठी	Hedychium spicatum Hamex Smitt.	मूल			४८ ग्रा.	१२ ग्रा.			४८ ग्रा.	
शतपत्री ? (गुलाब)	Rosa sps.	पुष्प	१२ ग्रा.							
शालूक	Rhizome of. Nymphae Sps.	कन्द	"							
शैवाल	May be a Lichen		"							
शर	Saccharum munja Roxb.	मूल	"							
शालिधान्य	Qriza Sativa Linn	मूल	"							
प्लक्ष	Ficus lacor Buch Ham	त्वक	"							
शृंगाटक	Trapa bispinosa Roxb.	कन्द	"							
शतपर्वा ? (श्वेत दूर्वा)	May be a Durva sps.	पंचांग	"							
शीतकुम्भिका ?	May be Patla or Kumbhika	"	"							
शतावरी	Asparagus racemosus willd	मूल	"							
श्रीपर्णी (गम्भार)	Gmelina arorea Linn	"	"							
शाल	Shorea robusta Gaertn	काष्ठ	"							

द्रव्य नाम	वानस्पतिक नाम	प्रयोज्याङ्ग	चरक	शार्ङ्गधर	चक्रदत्त	भै. र. (रसायम)	भै. र. (वाजी)	वृ. वै.	यो. तवं	वं. से.
श्रावणी ?	Sphaerantus Sps.	फल	१२ ग्रा.							
शीतपाकी ? (काकोली)	May be a Bala or Seveyaka	मूल	,,							
शाल्मलि	Salmalia Malabarica Schottd Fndi.	त्वक	,,							
,,	,, ,, ,,	निर्यास	,,							
जीवक ?	Micaostylis Sps.	मूल	,,							
सरल	Pinus roxburghii Sarg.	काष्ठ		४८ ग्रा.	४८ ग्रा. शैल	१२ ग्रा. शैल	३ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
सिल्हक (सिलारस)	? ?				४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	,,	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
सूक्ष्मैला	Elettaria Cardamum Matan.	बीज		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.		,,			
सिक्थक (मोम)	Bee Wax						,,			
सारिवा श्वेत	Cryptolepis buchanani Roem Schult.	मूल			४८ ग्रा.	१२ ग्रा.		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
सारिवा कृष्ण	Hemidesmus indicus R. Br.	,,	१२ ग्रा.	४८ ग्रा.	,,	,,		,,	,,	
सौगन्धिक ? (कमलभेद)	May be a Nymphae Sps.	पुष्प	,,							
स्यन्दन ?	May be a Pariata or Nirgundi	त्वक	,,							
पत्र (तेजपत्र)	Cinnmomum tamala Nees Eberm.	पत्र		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	३ ग्रा.	४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
मुरामांसी	Selinum tenuifalium Wall.	मूल		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.	३ ग्रा.	४८ ग्रा. सुरामासी		
संवर्तक (विभीतक)	Terminalia belerica Roxb.	फल	१२ ग्रा.							
हरिद्रा	Curcumalonga Linn			४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	१२ ग्रा.		४८ ग्रा.	४८ ग्रा.	
जल (क्वाथार्थ)			५ ली.							
अवशिष्ट जल			१.२५०ली				—			
तिल तैल	Sesamum indicum Linn	तैल	६२५ ग्रा.	५५००ग्रा.	१४००ग्रा.	१६००ग्रा.	५००ग्रा.	५१५०ग्रा.	५४००ग्रा.	१६० ग्रा.
मस्तु		दधि जल	—	२२ ली.	५.५००ली	६.४० ली.	—	२०६००L	२२ ली.	—
लाक्षा रस	Juice or decoctim of Laccaloeifer		—	५.५००,,	१.४००ली	१.६००"	—	५.१५०ली	५.४००"	—
गोदुग्ध	Cow Milk	दुग्ध	२५०० मि. ली.	—	—	—	—	—	—	—
जल							२ लीटर	--	—	४ लीटर

(तालिका नं० २)

पुस्तक नाम	बल्य	वर्ण्य	आयुष्य	पुष्ट्यकर	वशीकारक	क्षय	दाह	ज्वर	प्रस्वेद	दुर्गन्ध्य	कुष्ठ	कण्डू	वन्ध्या नाशक	भूत ग्रह	अपस्मार	उन्माद	कृत्या	अलक्ष्मी	रक्त पित्त
चक्रदत्त	+	+	+	+	+			+						+	+	+	+	+	
यो० त०			+	+	+	+		+							+	+	+	+	+
मै० र० (राज०)	+	+	+	+	+			+						+	+	+	+	+	
मै० र० (वाजीकरण)	+	※				+	+	+	+	+	+	+	+	※	※	※	※	※	+
शार्ङ्गधर			+	+	+	+		+							+	+	+	+	+
वृं० वै०		+	+	+	+			+						+	+	+	+	+	
चरक								+											
व० से०								+											

(चन्दनादि तैल की गुण धर्म तालिका)

उक्त तालिका से स्पष्ट हो जायेगा कि चन्दनादि तैल किन-किन रोगों में लाभकारी है। विशेष रूप से इसका उपयोग दाह, ज्वर, उन्माद अपस्मार, रक्तपित्त में लाभकर होगा। यह तैल बल्य, वर्ण्य एवं पुष्ट्यकर होता है।

निर्माण विधि—

पाठानुसार निर्दिष्ट क्रम संख्या अगुरु से हरिद्रा तक के द्रव्यों का कल्क/क्वाथ तैयार करें। तैयार कल्क/क्वाथ में मस्तु से जल तक के निर्दिष्ट द्रव्य पाठानुसार मिलाकर अग्नि पर पाक करें। जब जलीयांश बिल्कुल न रहे, केवल तैल शेष रहे तो तैल सिद्ध समझ लें। इसे उतारकर स्वाङ्गशीत होने पर शीशी में रखें।

तैल सिद्धि के लिए सामान्य नियम यह है कि यदि द्रव्यों का क्वाथ बनाकर तैल सिद्ध करना हो तो प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर चतुर्गुण जल मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छानें। शेष क्वाथ में क्वाथ के समान भाग में तैल लेवें तथा दधि, दुग्ध या अन्य द्रव द्रव्य समान या द्विगुण मात्रा में मिलाकर तैल सिद्ध करें। जहां दुग्ध आदि द्रव का उल्लेख न हो वहाँ जल का प्रयोग करें। जहाँ कल्क से तैल सिद्ध करना हो वहाँ कल्क से चतुर्गुण तैल अन्य द्रव द्रव्य समान मात्रा में लें।

उक्त तालिका में चरक ने क्वाथ से तैल सिद्ध करने का उल्लेख किया है। शेष ने द्रव्यों का कल्क बनाकर तैल सिद्ध करने का उल्लेख किया है।

विवेचन—चरक में १०४, शार्ङ्गधर में २६, चक्रदत्त में ३०, मैं० र० (रसायन) ३४, मैं० र० (वाजीकरण) ४३, वृन्द वैधक में २७, योगतरंगिणी में २६, बं० से० में ५ द्रव्यों का उल्लेख है। "पूतिकेशर" से चक्रदत्त के टीकाकार ने 'पूति' से खट्टाशी (अभाव में लताकस्तूरी) तथा 'केशर' से दो द्रव्यों का उल्लेख किया है। वृन्दवैद्यक में पूतिकेशर के "पूति" से रोहिष मौंथिया तथा 'केशर' से कुंकुम का उल्लेख टीकाकार ने किया है अर्थात पूतिकेशर से दो द्रव्यों का उल्लेख किया है।

—शेषांश पृष्ठ २१५ पर देखें।

जात्यादि तैल घृतञ्च वर्ति

कविराज श्री गिरिधारीलाल मिश्र आयु. वाचस्पति

योग नाम—जात्यादि तैल, जात्यादिघृत, जात्यादिवर्ति

जात्यादितैल (शारङ्गधर संहिता)—

घटक द्रव्य—चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, पटोल पत्र, करंज पत्र, मधुमक्खी छत्ते का मोम, मधुयष्टि, कूठ, हल्दी, दारूहल्दी, कुटकी, मजीठ, पद्माख, लोध्र, हरड़, नीलोफर, नीलाथोथा (तूतिया), सारिवा, करंज बीज गिरी।

निर्माण विधि—घटक द्रव्यों को समभाग लेकर पानी में पीसकर कल्क बनावें। इस प्रकार कल्क को चौगुने तेल में मिलाकर, तेल से चौगुना पानी डालकर मन्दाग्नि पर तैल पाक विधि से पाक करें। पानी जल जाय, तैल मात्र शेष रहे तब छानकर प्रयोग में लावें।

विशेष—चमेली आदि जिनके पत्र लिखें हैं ताजा ही होना विशेष हितकर है।

गुण और उपयोग—आयुर्वेद का यह देदीप्यमान योग है जो आधुनिक युग के मरक्युरोक्रोम लोशन, एक्रीफ्लेविन यलोवास (Yellow Vass) आदि योगों का मुकटमणि है। हमारे चिकित्सालय में प्रतिदिन दर्जनों रोगियों पर जिन को शस्त्रादि से क्षत, कील चुभ जाना अग्नि से जल जाना, रगड़ से चमड़ी का छिल जाना, आदि सभी प्रकार के क्षतों एवं व्रणों पर पट्टी बांधने के लिए प्रयुक्त होता है। पूय स्राव चाहे कहीं से भी हो रहा हो व्रण का हो, या कान का यह योग चमत्कार को नमस्कार है। नाड़ी व्रणों में जहाँ आधुनिक योग असफल होते हैं वहां इसकी सफलता "नित्य" है।

जात्यादि घृत (शा. ध. सं.)—

चमेली के पत्ते, नीम पत्र, पटोलपत्र, हल्दी, दारूहल्दी, कुटकी, मजीठ, मुलेठी, मोम, करंजगिरी, खस, अनन्तमूल, नीलाथोथा।

निर्माण विधि—समभाग कल्क द्रव्य को चौगुना घी तथा घी से चौगुना पानी-घृत पाक विधि से पाक करें।

विशेष निर्देशन—जात्यादि तैल घृत वर्ति के प्रताप लंकेश्वर रस प्रयोग के साथ-साथ २-२ गोली सुबह शाम खाना, तैल की तरह जात्यादि घृत भी व्रण रोपण में यहां तक कि जो घाव सड़ गये हों, कीड़े पड़ गये हों, को भी यह सत्वर भर देता है। नाड़ी व्रणों में, कर्ण आदि की शल्यक्रिया के पश्चात् व्रण पूरण के लिए इसका प्रयोग हमने कई रोगियों पर सफलतापूर्वक किया है। जात्यादि घृत और तेल आशुफल प्रद योग है।

जात्यादिवर्ति (भै. र.)—

घटक द्रव्य—चमेली के पत्ते, मदार के पत्ते, अमलतास पत्र, करंज गिरी, दन्ती मूल, सैंधा नमक, सौचल नमक, यवक्षार, चित्रक मूल।

निर्माण विधि—समभाग घटक द्रव्यों को सेहुण्ड (स्नुही) के दूध की एक भावना देकर वर्तियां बना कर कांच की शीशी में सुरक्षित रखें।

जात्यादि तैल घृत वर्ति के प्रयोग के साथ-साथ "प्रताप लंकेश्वर रस" विशेष लाभप्रद है।

नाड़ीव्रण गहरा हो तो जात्यादि तैल का इन्जेक्शन की नीडल से पूरण कर के इस वर्ति को खात में लगाकर जात्यादि तैल की पट्टी बाँधते हैं। एक महिला के पैर पर गाय ने पैर रख दिया। फलस्वरूप क्षत होकर धीरे-धीरे नाड़ी व्रण हो गया। ऐलोपैथिक के सभी उपचार निष्फल हुए। हमारे यहां इस वर्ति ने ७ दिन में ही उसके व्रण का रोपण कर दिया।

—कवि० श्री गिरिधारीलाल मिश्र, आयु. वाचस्पति,
प्रधानचिकित्सक-केदारमल आयुर्वेदिक होस्पिटल,
तेजपुर (असम)

आयु० वृ० श्री वैद्य रघुवीरशरण शर्मा वैद्यरत्न

ग्रंथ—शार्ङ्गधर संहिता

अश्वगन्धा, खरैंटी, बेलगिरी, पाटला की छाल, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू छोटे, अतिबला (कंघी), नीम की अन्तरछाल, अरलु की छाल, सांठ की जड़, प्रसारणी (खीप), अरनी अंड की छाछ और रास्ना हरेक २५-२५ तोला। अंड की छाल और रास्ना ग्रंथ में नहीं हैं मैं अपनी तरफ से मिलाता हूं। इन सबको जौकुट करके कलई के भगौना में डालकर ३२ सेर पानी में औटा लें। जब पानी चतुर्थांश (आठ सेर) रह जाय तब छान लें। फिर १ सेर शतावर को जौकुट करके ८ सेर पानी में कलई के बर्तन में काढ़ा करें। २ सेर पानी रहने पर उतार कर छान लें। फिर दोनों काढ़े २ सेर तिल का तेल और ८ (आठ सेर) सेर दूध डालकर कलई के भगौना में डाल दें। फिर नीचे लिखी औषधियों का कपड़छन किया चूर्ण भी कलई के बर्तन में डाल दें और मन्दाग्नि से पकावें। कूठ, छोटी इलायची, चन्दन सफेद, मूर्वा, घोड़वच, जटामांसी, वीज वन्द, सैंधानमक, असगन्ध, रास्ना, सौंफ, देवदारु का बुरादा, शालपर्णी, पृष्णपर्णी, मुद्गपर्णी, और तगर हरेक ५-५ तोला। याद रहे घृत और तेल को पकाने में जल्दी न करें, धीरे-धीरे २-३ दिन में पकावें। दूसरी बात काढे का वर्तन ढककर काढ़ा करना चाहिए। उघरे पात्र में औषधियों का गुण उड़ जाता है। जब तैलमात्र शेष रह जाय तब उतारकर ठण्डा करके कपड़े से छान लें और बोतल में भरकर रख लें।

तेल के छन्नस को फेंकें नहीं इसमें बराबर बूरा मिलाकर १-१ तोले के लड्डू बनाकर रख लें। रात को सोते समय पावभर दूध के साथ खा लिया करें। ये लड्डू भी वात रोगों में अच्छा काम करते हैं।

गुण

पक्षाघात, अर्दित, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, खल्ली (हाथ, पांव में बांयटे, कटिशूल, पार्श्वशूल, गृध्रसी, शरीर के किसी अंग का सूखना, पंगुता, लंगड़ापन), शिर दर्द तथा अन्य वात रोगों में भी यह काम करता है।

इस तेल का उपयोग शरीर में मालिश करने में, नाक में डालने में, कान में डालने में, दन्त मञ्जन में, वस्ति में तथा स्त्रियों के उत्तर वस्ति में तथा स्त्री पुरुष दोनों के पिलाने में होता है। जैसे पक्षाघात या अर्दित में रसराज रस तथा महारास्नादि क्वाथ देते हैं। उस अवस्था में इसका उपयोग शरीर की मालिश, रात को अकेला पीकर या चीनी मिलाकर खाकर ऊपर से गरम दूध पीना। और गुदामार्ग से वस्ति देना। ग्रंथकार का कहना है कि—

अस्य प्रभावाद् वन्ध्यापि नारी पुत्रं प्रसूयते।

—शा. ध. संहिता

अर्थात् इस तेल के प्रभाव से वन्ध्या स्त्री के भी पुत्र होता है। जो वास्तव में बन्ध्या है उसका पुत्र होने का तो प्रश्न ही नहीं सन्तान उत्पत्ति का सम्बन्ध पुरुष के शुक्राणु और स्त्री के डिम्बाणुओं से है। हाँ योनि में या गर्भाशय में कोई रोग बाधक हो सकता है। जैसा कि चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट ने योनि व्यापद योनि रोग नाम से लिखे हैं। उनमें भी वातला और उदावर्तिनी आदि योनि वातज हैं उनमें लाभ कर सकता है। क्योंकि योनिरोग में खासतौर से वातनाशक कर्म भी ठीक रहता है जैसाकि वाग्भट्ट के कथन से स्पष्ट है—

योनिव्यापत्सुभूयिष्ठं शस्यते कर्मवातजित्।

—अष्टांग हृदय उत्तर तंत्र ३८/३८

इसके लिए स्नेहन, स्वेदन तथा उत्तर वस्ति का

विधान है। स्नेहन में नारायण तेल में भिगोकर बत्ती योनि में रखना या फोहा रखना। स्वेदन में अजवायन सौंठ, मेंथी आदि वातघ्न द्रव्यों से योनि में भफारा देना है। वस्ति में नारायण तेल का उत्तर वस्ति (एनीमा) योनि मार्ग से देनी है। इसके अतिरिक्त तेल का पान भी करना आवश्यक है। ग्रंथकार ने लिखा है कि मनुष्य हो या हाथी या घोड़ा नारायण तेल के प्रयोग से रोगमुक्त होते हैं,* इनमें गौ, बैल, भैंस और बकरी का भी समावेश करना चाहिए। ग्रंथकार के कथन में कोई आश्चर्य की बात नहीं है जो द्रव्य मनुष्य को लाभ करेंगे वे ही पशुओं को भी करेंगे यह स्वाभाविक है और मेरा अनुभव भी है। जैसे एक बार मेरी गौ को श्वसनक ज्वर निमोनियां) हो गया था मैंने उसको १ तोला भुनी फिटकरी और ४ माशे शृङ्ग भस्म दोनों को खरल में मर्दन करके गुड़ में मिलाकर दिन में ३ मात्रा देने से लाभ हो गया। भैंस के लवारे को खूनी दस्तों में जामुन की पत्तियों का या गूलर के पत्तों का काढ़ा देने से लाभ हो जाता है। आदि।

आवश्यक सूचना—प्राचीनों का मत है कि क्वाथ के पात्र को ढककर क्वाथ बनाना चाहिए अन्यथा क्वाथ दुर्जर हो जाता है।

अपिधान मुखे पात्रे जलं दुर्जरतां व्रजेत्।

अर्वाचीनों का मत है कि पात्र को न ढकने में औषधि गुण वाष्प (भाप) द्वारा उड़ जाता है। अर्वाचीनों का मत ग्राह्य है। क्योंकि हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि अर्क सौंफ, अर्क पोदीना, अर्क गुलाब अर्कवेद शुष्क आदि सब भाप ही तो हैं।

आम के आम गुठली के दाम—क्वाथ का छन्नस नारायण तेल का हो या दशमूलारिष्ट आदि किसी का हो उसे फैंकना नहीं चाहिए, छत पर डालकर सुखा लीजिए। जब दो तीन दिन एकत्रित हो जाय तब इनको जलाकर क्षार विधि से क्षार बनाकर रख लें। यह संग्रह क्षार है इसका उपयोग कहीं भी किया जा सकता है।

—आयु० बृह० श्री वैद्य रघुवीरशरण शर्मा वैद्य रत्न
ज्वारखेड़ा (बुलन्दशहर)

चन्दनादि तैल : : पृष्ठ २१२ का शेषांश

"मुरामांसी" से चक्रदत्त के टीकाकार ने 'मुरा' से मरोड़फली तथा 'मांसी' से जटामांसी का उल्लेख किया है जबकि अन्य टीकाकारों ने 'मुरामाँसी' से एक ही द्रव्य लिया है। 'शैलेय' से वृन्दवैद्यक में शिलाजतु का उल्लेख टीकाकार ने किया है।

चरक में 'कालीयक' से टीकाकार ने दारुहरिद्रा का उल्लेख तथा वन्य से केवटी मुस्त लिया है।

उक्त तालिका में कृष्णागुरु, अश्वकर्ण, ओदनपाकी, (सैरेयक), ईतकट, ऋद्धि, कदर, कपीतन, काला, कोविदार, क्रौंचादन, तृणशून्य, नख, नालिका, नलिन, पूतिकेशर, प्रपौण्डरीक, पुण्डरीक, पयस्या, श्रीवास, शतपत्री, शतपर्वा, शीतकुम्भिका, श्रावणी, शीतपाकी, जीवक, सिल्लक (शलारस), सौगन्धिक, स्यन्दन द्रव्य संदिग्ध हैं।

आशा है द्रव्यों की सन्दिग्धता आदि के विषय में अनुसन्धानकर्ताओं एवं औषधनिर्माताओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट होगा जिससे उत्तम गुणप्रद चन्दनादि तैल का निर्माण होगा।

—वैद्य श्री वेद प्रकाश तिवारी
संयुक्त अनुसंधानीय संस्थान
ताड़ीखेत (रानीखेत)

---

* मर्त्यो गजो वा तुरग स्तैदस्मात् सुखी भवेत्। —शा० सं

नारायण तैल

आयु० श्री पं० कृष्णदत्त शर्मा एच० पी० ए०

—०—

ग्रंन्थ—(भा०मैं० र०)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—

क्वाथ—अश्वगंधा, बला (खरैंटी), बेल छाल, पाटला (पाढ़ल), छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, अतिबला (कंघी), नीम की छाल, स्योनाक (अरलु), पुनर्नवा, प्रसारिणी और अरनी। प्रत्येक द्रव्य १०-१० भाग लेकर अधकुटा (जौकुट) करलें और १०२४ भाग जल में डालकर उबाल लें। जब जल चतुर्थांश (३२ सेर) अवशिष्ट रहे तब इसे उतार कर छान लें।

तैल—६४ भाग तिल तैल।

अन्य द्रव्य—१. शतावरी का रस ६४ भाग, २. गाय का दूध २५६ भाग।

कल्क—कूठ, इलायची, श्वेत चन्दन, मूर्वा, वच, जटामांसी, सैंवा नमक, असगंध, बला, रास्ना, सोया, देवदारु, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, मासपर्णी और तगर प्रत्येक द्रव्य २-२ भाग लें। सबको एकत्र कूटकर जल के साथ पिष्टि बनालें।

क्वाथ, तेल, अन्य द्रव्य और कल्क को एकत्र कर मंदाग्नि पर पकावें। जलीयांश का शोषण होने पर तैल को उतार कर छानलें और ठण्डा होने पर शीशियों में भरलें।

प्रयोग—इस नारायण तैल का नस्य, अभ्यङ्ग, पान और वस्ति द्वारा प्रयोग करें। इस प्रकार इसके सेवन से पक्षाघात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, खालित्य (गंज), वधिरत्व, गतिभंग (चलते समय अस्त व्यस्त पैर पड़ना या लड़खड़ाना), गात्रशोष, इन्द्रिय ध्वंस (इन्द्रियों की शक्ति का नाश), असृक-शुक्र (वीर्य के साथ रक्त आना), ज्वर, क्षय अण्डवृद्धि, कुरण्ड, दन्त रोग, शिरोग्रह, पांगुल्म (पंगुता) बुद्धि मंदता, गृध्रसी तथा अन्य सर्वांग में व्याप्त भयंकर वात रोग नष्ट होते हैं। इसके प्रभाव से वन्ध्या स्त्री के भी पुत्र उत्पन्न होता है। इसकी मालिश न केवल मनुष्यों के लिए बल्कि हाथी और घोड़े के लिए भी हितकर है।

विवेचन—(महा) नारायण तैल एक अत्यन्त प्रसिद्ध तैल है। सभी प्रकार के वात रोगियों पर इसका प्रयोग किया जाता है। यह तेल अत्यन्त बल्य, वृष्य और पोषक है। इसके सेवन से शरीर में प्रविष्ट वात, उष्णता और स्निग्धता का, स्पर्श पाते ही स्थान भ्रष्ट होने लगता है। ज्यों-ज्यों इसके गुणों की शरीर में वृद्धि होती है त्यों-त्यों वायु द्वारा विकृत, शोषित, जड़ निष्क्रिय और भङ्ग अंगों में शक्ति का संचार होता है। वायु से उत्पन्न हुए सभी अंगों के रोग पर इसका प्रयोग हितकर है।

यह अंत्र के वातज रोगों में वस्ति द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। गर्भाशय के शोष, जड़ता और वात वेदना आदि में उत्तरवस्ति द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। पुरुष ग्रंथि शोथ, शोष और वृद्धि को दूर करने के लिए यह पुरुष जननेन्द्रिय में वस्ति द्वारा चढ़ाया जाता है।

पक्षाघात में इसको नस्य, पान, वस्ति और अभ्यंग चारों ही प्रकार से प्रयोग में लाने से लाभ होता है। मन्या स्तम्भ और हनुग्रह में इसका नस्य और पान लाभकारी है। गलग्रह में इसका पान और गण्डूष लाभप्रद है तथा अन्य वातज रोगों में इसका अभ्यंग लाभप्रद है।

[नारायण तैल का वर्णन शार्ङ्गधर संहिता म०अ०९ वृहद् निघण्टु रत्नाकर, चक्रदत्त, वृन्द माधव, भावप्रकाश वात व्याधि प्रकरण, गद निग्रह तैलाधिकार में किया गया है। महानारायण तैल का वर्णन भैषज्य रत्नावली वात व्याधि प्रकरण में किया गया है। महानारायण तैल के कल्क द्रव्यों की संख्या नारायण तेल के कल्क द्रव्यों से दुगुनी के लगभग है। महानारायण तेल अधिक प्रसिद्ध है]

—आयु० श्री पं० कृष्णदत्त शर्मा एच०पी०ए०
प्रभारी—राजकीय 'अ' श्रेणी आयु० चिकि०
सादुलपुर (श्री गंगानगर) राज०

कासीसादि तैल

वैद्या श्रीमती सावित्री शास्त्री आयु. रत्न.
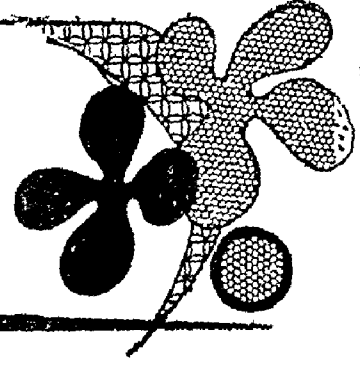
ग्रंथ संकेत—शार्ङ्गधर संहिता (म. खं.), भैषज्यसार संग्रह (ऊंझा फार्मेसी)।

प्रयोग घटक—कसीस, कलिहारी, कूठ, सोंठ, पीपल, सेंधानमक, मैनसिल, कनेर, वायविडंग, चित्रक छाल, अड्सा, दन्ती जड़, कडुई तोरइ के बीज, धतूरा, हरिताल प्रत्येक द्रव्य १-१ तोले, सेंहुण्ड का दूध २० तोले, अर्क-दुग्ध २० तोले, गोमूत्र ८ सेर, तिल का तेल २ सेर।

निर्माण विधि—शुष्क एवं आर्द्र द्रव्यों की पिष्टि बनावें। द्रव पदार्थो व तेल को मिलाकर कलई, तांबा या लोहे के बर्तन में मन्दाग्नि से पकावें। तीन दिन मन्दाग्नि देने पर चतुर्थ दिवस तीव्राग्नि देकर तैल का खर पाक कर लें। तेल जलने न पावे, सावधानी से शीतल कर शीशियों में भर कर रख लें। तेल रखने के लिए लाल पीली रंगीन शीशियाँ उत्तम रहती है।

प्रयोग विधि—इस तेल को बवासीर (अर्श) के मस्सों पर दिन रात में कई वार लगाना चाहिए। रुई के फाये से लगाना हितावह है। रुई को तेल में डुबो कर गुदा में रखने से भी लाभ होता है।

विशिष्ट गुण—अर्श (बवासीर) की उत्तम गुणकारी औषधि है। इसके निरन्तर लगाने से अर्श के मस्से शुष्क व वेदनारहित हो जाते है। चिरकाल तक प्रयोग करने से अर्श का कष्ट नहीं होता। अर्श रोगी को यह आवश्यक है कि कब्ज दूर करने के लिए रेचक द्रव्यों का सेवन करते रहें। कासीसादि तैल के लगाने से मस्सों के व्रण, दाह, कृमि, शोथ, चिमचिमापन आदि शीघ्र दूर होते हैं।

विशेष वक्तव्य—प्रयोग के सभी उपादान स्वच्छ नवीन व शुद्ध (असली) होने चाहिए। अर्क दुग्ध गोमूत्र आदि ताजे होने चाहिए। तिल तेल काली या सफेद तिली का होना चाहिए, धुली का नहीं। तेल पकाते समय प्रथम साधारण अग्नि देते रहने से तेल उबलता नही और तली में जलता भी नहीं। शास्त्रीय मर्यादा—"घृत तेल गुडादीं स्तुनैकाह्यदव तारयेत्। व्युषितास्तु प्रकुर्वन्ति गुणाधिक्यम-संशयम्॥ के अनुसार पाँच या सात दिनो तक पकाना चाहिए, कल्क भी खर पाक से जल जाय और तेल छोड़ दे, इतना ही पाक अभीष्ट है, तेल को जलाना नही। अर्श के रोगियों पर इस तेल का प्रयोग रात्रि मे सोते समय तथा शौच (मलत्याग) के पश्चात् मस्सों पर करना चाहिए, तीनों वलियों तक अंगुली या फाये से न लगा सकें तो रुई की मोटी बत्ती बनाकर तेल में डुबो गुदा के भीतर रक्खें। यह कार्य अभ्यास पर निर्भर करता है।

जो वैद्य सेहुण्ड तथा अर्क दुग्ध के अभाव में इनका स्वरस डाल देते है कार्य चलता है परन्तु पूर्ण गुणकारी नहीं होता, अतएव शास्त्र मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। उक्त योग में सन्दिग्ध द्रव्य कोई नहीं हैं सभी घटक बाजार में मिल जाते है। अर्श रोग से पीड़ित रोगियों के लिए आशुफलप्रद है। वैद्य समाज सदा ही इसका उपयोग करता रहा है।

—वैद्या श्रीमती सावित्री शास्त्री आयुर्वेद रत्न
सावित्री संस्थान, इन्द्रभवन
१/१३ पंच कुइयां मार्ग, आगरा-२
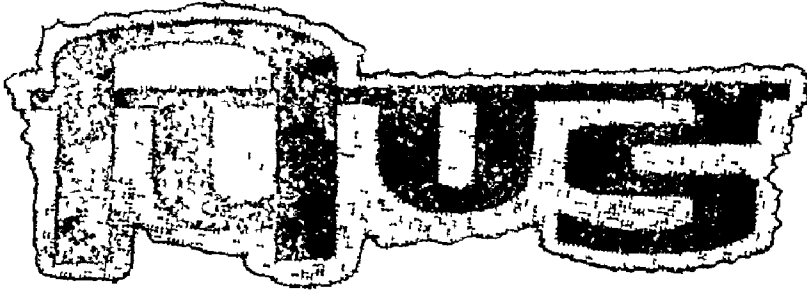
पिण्ड तैल

डा. राजेन्द्रप्रकाश भटनागर पी. एच. डी.

'पिण्डतैल' मूलतः चरक संहिता के वात रक्ताधिकार का सुप्रसिद्ध और प्रमुख योग है। इसका उपयोग बाह्य प्रयोगार्थ (अभ्यंग हेतु) किया जाता है।

नामकरण—(१) तैल में मोम और राल आदि डालने से वह पिण्डरूप होकर जम जाता है, तरल नहीं रहता। अतः इसे पिण्डतैल कहते हैं।

(२) अन्य प्रकार के सिद्ध तैल पकाने के बाद छानकर प्रयोग किये जाते है। परन्तु पिण्ड तैल को वस्त्र से बिना छाने ही प्रयोग किया जाता है।

"पिण्डतैलभाषया चात्र वस्त्रापूतमेवैतत् तैलं कर्त्तव्य-मित्याहुः। वैद्यास्तु पूत्वैव व्यवहरन्ति।

—शिवदाससेन कृत टीका (चक्रदत्त पर)

परन्तु, वैद्य इसे छानकर प्रयोग करते हैं। चक्रपाणि ने भी इसे छानना लिखा है—

'पिण्डतैलभाषया चात्र वस्त्रपूतमेवैततैलं कर्त्तव्य-मित्याहुः। —(च. चि. २६।१२३ पर चक्रपाणि)

फिर भी इसे नही छानना ही अभीष्ट है। भावप्रकाश मे भी लिखा है कि इसे छाने बिना ही मथ लिया जाता है।

"अपूतमथितस्यास्य पिण्डतैलस्य योगतः। —भा. प्र.

चरकोक्त मूलपाठ—

समधूच्छिष्टमाञ्जिष्ठं ससर्जरससारिवम्।
पिण्डतैलं तदभ्यङ्गाद्वातरक्तरुजापहम्॥
—च. चि. अ. २६।१२३

प्रथम विधि

मोम, मंजीठ, राल, सारिवा इन चारों द्रव्यों का मिश्रित कल्क १ भाग, तिल तैल ४ भाग और अनुक्त द्रव जल १६ भाग मिला कर पकावें। सिद्ध होने पर छानकर रख लेवें।

द्वितीय विधि

कांजिक (आरनाल) १ आढ़क में चतुर्थांश तैल और तैल से चतुर्थांश मोम, राल, मजीठ, सारिवा का मिलित कल्क मिलाकर पाक करें। प्रथम कांजिक में तैल का पाक कर लेना चाहिए। फिर मोम, आदि का कल्क और चतुर्गुण जल मिलाकर पाक करें ऐसा चक्रपाणिदत्त का मत है—

"समधूच्छिष्टेत्यादौ मधूच्छिष्टादीनि कल्कः, जलं च द्रवं देयम्। ×× किन्तु, आरनालाढकसाध्यतैले एवं सर्ज-रसस्थाने मधूच्छिष्टादीनां प्रक्षेपात् पिण्डतैलमनेनोच्यत इति जतूकर्णवचनादुलीयते; उक्तं हि तत्र—"काञ्जिक-सर्जरसभृतं खजितं बहुना जलेन सिक्थसर्जरसैर्युक्तमभ्य-ञ्जनम्" इति।

अष्टांग हृदय में भी चरकोक्त पाठ दिया गया है। उस पर अरुणदत्त ने टीका में चक्रपाणि के अनुसार व्याख्या की है।

आरनालाढके तैलं पादसर्जरसं शृतम्।
प्रभूते खजितं तोये ज्वरदाहार्तिनुत परम्॥
समधूच्छिष्टमञ्जिष्ठं ससर्जरससारिवम्।
पिण्डतैलं तदभ्यङ्गाद्वातरक्तरुजापहम्॥
—(अ० हृ० चि० २२।२१-२२)

अरुणदत्त कृत टीका—**"कांजिकस्याढके तैलं चतुर्थ-भागं सर्जरसं यस्मिन् पक्वं प्रभूते जले मथितं परं ज्वरदा-हार्तिनुत्। पूर्वोक्तं तैलं पक्वं सहमधूच्छिष्टं मञ्जिष्ठा-सर्जरस-सारिवाभिराषायरूपाभिवर्तते यत्तदेवं भूतं सत्पिण्ड-तैलमुच्यते।"**

चरक का पाठ ही चक्रदत्त में है। इस पर टीका करते हुए शिवदाससेन ने लिखा है—

"मधूच्छिष्टं मधुसिक्थकम्। सर्जरसो धूनकः। सारिवा अनन्तमूलम्। जलञ्चात्र चतुर्गुणम्। ×× किन्तु चरके समधूच्छिष्टेत्यादेः पूर्वम् 'आरनालाढके तैलं पादसर्ज-रसं शृतम्। प्रभूते खजितं तोये ज्वरदाहार्तिनुत् परम्॥'

(चि० वातरक्त०) इत्युक्तं, तेन आरनालाढके साध्यं तैलमेव सर्जरसस्थाने मधूच्छिष्ठादीनां प्रक्षेपादपि पिण्ड-तैलमुच्यते इति चक्रः । जतूकर्णेप्युक्तं - "कांजिकसर्जरस-श्रृतं खजितं बहुना जलेन दाहहितम् । विकसाऽनन्ता-सिक्थकसर्जरसैर्युक्तं मथितं वा ॥" इति ।

पिण्ड तैल के अन्य पाठ—

चरकोक्त उपर्युक्त पाठ के अतिरिक्त चक्रदत्त में निम्न दो पिण्डतैलों के योग भी दिये हैं—

महापिण्ड तैलम्—

शारिवासर्जमंजिष्ठा यष्टिसिक्थैः पयोन्वितैः ।
तैलं पक्वं विमञ्जिष्ठैरुबोर्वा वातरक्तनुत् ॥

— वातरक्त चिकित्सा ४३

प्रथम योग—सारिवा (अनन्तमूल), सर्जरस (राल), मंजीठ, मुलेठी, मोम को समान भाग लेकर चौगुना तैल और तैल से चौगुना दूध डालकर पाक करें। इसे महा-पिण्डतैल कहा गया है।

द्वितीय विधि—मंजीठ को छोड़कर (विमंजिष्ठैः) सारिवा (अनन्तमूल), राल, मुलेठी और मोम का कल्क १ भाग, एरण्डतैल ४ भाग, दूध १६ भाग, मिलाकर पाक करें। यह "अपर पिण्ड तैल" है।

विमञ्जिष्ठैः मञ्जिष्ठारहितैः सारिवादिभिः कल्कैः रुबोरेरण्डस्य तैलं चतुर्गुणेन पयसा सह पक्वं सत् अपरं पिण्डतैलं भवतीत्यर्थ ॥ (शिवदाससेन) ॥

शार्ङ्गधर संहिता में—इनमें चक्रदत्तोक्त से केवल प्रथम योग ही दिया है। (चरकोक्त मूलपाठ वाला योग नहीं दिया है)। भावप्रकाश में चक्रदत्त के उपर्युक्त दोनों योगों को स्पष्ट रूप से पृथक-पृथक लिखा गया है—

शार्ङ्गधर संहिता में—

मंजिष्ठासारिवासर्जरसयष्ठीसिक्थैः पलोन्मितैः ।
पिण्डाख्यं साधयेत्तैलमेरण्डं वातरक्तनुत् ॥

—(शा० सं० म० खं० ६।१४४)

चक्रदत्त के "पयोऽन्वितैः" के स्थान पर यहां 'पलो-न्मितैः' पाठ आया है। एरण्ड तैल का मान दिया नहीं है। अतः 'पल-मान' लिखना ठीक नहीं जंचता। उसके स्थान पर 'पयोऽन्वितैः' पाठ अधिक ठीक है। भावप्रकाश में भी 'पयोऽन्वितैः' पाठ है।

भावप्रकाश में—

सारिवासर्जरसमञ्जिष्ठायष्टिसिक्थैः पयोन्वितैः ।
तैलं पक्वं प्रयोक्तव्यं पिण्डाख्यं वातशोणिते ॥१२२॥
सारिवासर्जयष्ट्याह्वमधुसिक्थैः पयोन्वितैः ।
सिद्धमैरण्डजं तैलं वातरक्तरुजापहम् ॥१२३॥

महापिण्ड तैलम्—

इस प्रकार प्राचीन ग्रंथों में पिण्ड तैल के ३ पाठ मिलते हैं। परवर्ती ग्रन्थ भावमिश्रकृत 'भावप्रकाश' में 'महापिण्ड त.म" नाम से एक अन्य पाठ भी मिलता है—

सारिवारिष्टकूष्माण्ड पोतकी भस्मजाम्बुना ।
गुडूचीगव्यदुग्धाभ्यां कर्मरंगरसेन च ॥११७॥
विपचेत्तिलजं तैलं दत्त्वैतानि भिषग्वरः ।
काकोल्यौ जीवकं मेदे शताह्वाक्षीरिणीयुतैः ॥११८॥
जिङ्गीसिक्थाऽमृतानन्तासर्जसैन्धवचन्दनैः ।
हन्याद्वातास्रजं घोरं स्फुटितं गलितं तथा ॥११९॥
चर्मदलाख्यं पामादींस्त्वग्दोषञ्च विपादिकाम् ।
कुष्ठान्यर्शांसि वीसर्पं व्रणशोथं भगंदरम् ॥१२०॥
न सोऽस्ति वातरक्तस्य विकारो योऽभिवर्द्धितः ।
यन्न हन्यात्प्रसह्यै तत्पिण्डतैलं महत् स्मृतम् ॥१२१॥

घटक द्रव्य

स्नेह—तिल तैल १ भाग।

द्रव—सारिवा का क्वाथ, रीठा का क्वाथ, कोहड़ा का रस, पोई की भस्म का जल (क्षार जल), गिलोय का रस, गाय का दूध, कमरख का रस प्रत्येक १-१ भाग।

कल्क—काकोली, क्षीर काकोली, जीवक, मेदा, महा-मेदा, सोया, दुग्धिका, मंजीठ, गिलोय, सारिवा (१० द्रव्य) को समान भाग लेकर इनका मिलित कल्क (लुगदी) १/४ भाग।

निर्माण विधि—स्नेह, द्रव और कल्क को मिला कर मन्दाग्नि पर विधिवत् पाक करें। फिर छानकर उसमें मोम (१/४० भाग) डाल कर पिघलावें। शीतल होने पर राल का सूक्ष्म चूर्ण (१/४० भाग) मिलाकर रख लेवें।

यह "महापिण्ड तैल" है। इसे मलहम के रूप में लगाया जाता है।

उपयोग—

फटा और गला वातरक्त, चर्मदल, पामा आदि त्वचा

के रोग, विपादिका (विवाई फटना), कुष्ठ, अर्श, विसर्प, व्रणशोथ, भगन्दर। ऐसा कोई भी वातरक्त नहीं है जिसे यह तैल नष्ट नहीं करता हो।

भैषज्य रत्नावली में 'महापिण्ड तैलम्' नाम से भावप्रकाश से भिन्न पाठ दिया गया है। यह गुडूची प्रधान योग है।

अमृतायाः पलशतं सोमराजीतुलां तथा।
प्रसारण्याः पलशतं जलद्रोणे पृथक पचेत्॥
पादशेषं गृहीत्वा च तैलप्रस्थं पचेद्भिषक्।
क्षीरं चतुर्गुणं दत्वा मन्दमन्देन वह्निना॥
पिण्डशालजनिर्यासिसिन्धुवार फलत्रयम्।
विजयाबृहती दन्तीकक्कोलकपुनर्नवाः॥
वह्निग्रन्थिक कुष्ठानि निशेद्वे चन्दनद्वयम्।
पूतिपूतीक सिद्धार्थ वाकुची चक्रमर्दकम्॥
वासानिम्बपटोलानि वानरीबीजमेव च।
अश्वाह्वा सरलं सर्वं प्रतिकर्षमितं पचेत्॥
एतत्तैलवरं हन्ति वातरक्तमसंशयम्।
कुष्ठमष्टादशविधं ग्रन्थिवातं सुदारुणम्॥
कायग्रहञ्चामवातं भगन्दरगुदामयम्।
ज्वरमष्टविधं हन्ति मर्दनान्नात्र संशयः॥

घटक—

स्नेह—तिल तैल १ प्रस्थ।

द्रव—१. अमृता क्वाथ—अमृता १० पल, जल १ द्रोण, चतुर्थांश अवशेष क्वाथ।

२. वाकुची क्वाथ—वाकुची १ तुला, जल १ द्रोण चतुर्थांश अवशेष क्वाथ।

३. प्रसारणी क्वाथ—प्रसारणी १ तुला, जल १ द्रोण चतुर्थांश अवशेष क्वाथ।

४. दूध—४ प्रस्थ।

कल्क—पिण्ड (सिह्लक),राल, निर्गुण्डी, हरड़,बहेड़ा, आंवला, भांग, बड़ी कटेरी, दन्ती, कंकोल, पुनर्नवा, चित्रक, पीपरामूल, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, सफेद चन्दन, लालचंदन, पूति (खट्टाश या गन्धमार्जाराण्ड), पूतीक (करंज), सफेद सरसों, बावची, चक्रमर्द (चकवाड़), अडूसा, निम्ब पत्र, पटोल पत्र, कौंच के बीज, अश्वगंधा, सरल काष्ठ। ये २८ द्रव्य प्रत्येक १-१ कर्ष लेवें। इनको पीसकर कल्क बनावें।

निर्माण विधि—स्नेह, द्रव, कल्क को एकत्र कर मंदाग्नि से विधिवत् पाक करें। यह 'महापिण्ड तैल' है।

उपयोग—वातरक्त, अठारह प्रकार के कुष्ठ, दारुण ग्रन्थिवात, शरीर की जकड़ाहट, आमवात, भगन्दर, गुदार्श, अष्टविध ज्वर। ये सब रोग इस तैल के मर्दन (अभ्यङ्ग) से निःसंशय ठीक होते हैं।

उपसंहार—

'पिण्ड तैल' सम्बन्धी उपर्युक्त विमर्श से स्पष्ट है कि इस योग के दो प्रकार के योग-नाम हैं—'पिण्ड तैल' और 'महापिण्ड तैल'। पिण्डतैल का प्राचीनतम उल्लेख चरक संहिता में मिलता है। चरकोक्त पाठ की निर्माण विधि को टीकाकारों ने दो प्रकार से स्पष्ट किया है। चरक वाले पाठ में दूध के साथ पाक करने का उल्लेख नहीं है।

कालान्तर में इस योग के नवीन पाठ भी उद्भुत हुए। चक्रदत्त में तीन पाठ दिये हैं। प्रथम चरकोक्त पाठ के समान हैं, शेष दो नवीन हैं। अन्तिम में एरण्ड तैल को पाकार्थ ग्रहण किया गया है।

शार्ङ्गधर ने चक्रदत्त का ही पाठ एरण्ड तैल के साथ बताया है, परन्तु वहां दूध के साथ पाक करने का उल्लेख नहीं है।

भावप्रकाश में तीन पाठ हैं। 'पिण्ड तैल' नाम से दो और 'महापिण्ड तैल' नाम से एक। पिण्ड तैल वाले पाठ चक्रदत्तोक्त पाठ के ही स्पष्ट रूपान्तर हैं। यहां 'महापिंड तैल वाला पाठ नवीन है।

भैषज्य रत्नावली में 'पिण्डतैल' का पाठ चरक (चक्रदत्त) का है, परन्तु 'महापिण्ड तैल' नाम से वर्णित पाठ सर्वथा भिन्न है जो भावप्रकाश के इस नाम वाले पाठ से भी अतिरिक्त है। सभी पाठों की सम्यक उपयोगिता वातरक्त आदि की रोगों की अवस्थानुसार समझनी चाहिए।

—डा० श्री राजेन्द्र प्रकाश भटनागर पी-एच.डी.
प्राध्यापक—राजकीय आयु. महाविद्यालय, उदयपुर

ब्राह्मी आंवला केश तैल

वैद्य श्री फूलचन्द्र जैन शास्त्री आयु०

आजकल प्राय: देखा जाता है कि नवयुवक एवं नवयुवतियों के बाल झड़ते हैं या कुछ समय में ही सफेद होना प्रारम्भ हो जाते हैं। यह एक सामान्य सी बात हो गई है। इसका प्रमुख कारण खान-पान तथा अनेकों प्रकार के बाजारू तेल, सेंट, तथा क्रीम आदि जो कि ह्वाइट आयल पर निर्मित होते हैं इनकी सुगन्ध मनको मोहने वाली होती है इसी सुगन्धता के वशीभूत होकर इन तेलों का प्रयोग करने लगते हैं और भविष्य में वही जाकर बालों को एक अभिशाप सिद्ध होता है। इससे असमय में बाल पकना, झड़ना अन्तत: बाल सफेद होने पर खिजाब का प्रयोग करते हैं जो एक प्रकार क्षार होता है जो मस्तिष्क को कमजोर करने में सहायक है और अन्त में जब इन सभी उपचारों से हताश हो जाता है तब कहीं निराश होकर किसी आयुर्वेद चिकित्सक का सहारा लेता है। इस प्रकार के रोगी के प्रति चिकित्सक का कर्तव्य है कि सर्व प्रथम भोजन की पूर्ण जानकारी करनी चाहिये कि वह किस प्रकार का आहार करता है। यदि आहार में चाय, कॉफी, मिर्च, मसालों का सेवन अधिक है तो उन पर प्रतिबन्ध लगाना नितान्त आवश्यक है। तत्पश्चात् ही रोग से मुक्ति पाना सम्भव है।

आयुर्वेद में ब्राह्मी आंवला तैल का निर्माण पैत्तिक शिर:शूल, दारुणक या असमय में बालों के पकने से बचाने के लिए अमृत तुल्य है तथा बालों के लिए एक खुराक का काम करता है। यदि इस तैल को हमेशा प्रयोग किया जाय तो कभी असमय में बाल पकेंगे नहीं और न ही बाल झड़ेगें।

योग इस प्रकार है—

ब्राह्मी पत्ती (हरिद्वारी) का रस अथवा क्वाथ ५ किलो, आंवला का स्वरस ५ किलो, सिवाल का रस २॥ किलो, भाँगरे का रस २॥ किलो, काली तिल का तैल ५ किलो।

क्वाथ—शतावरी, नागरमोथा, अनन्तमूल, नीलोफर, मांजूफल, आवला छाल, हरड़छाल, मंजीठ उक्त औषधियां १००-१०० ग्राम क्वाथ विधि से चतुर्थांश जल शेष रहने पर क्वाथ को ब्राह्मी आदि रसों से मिलाकर तेल का पाचन करने के बाद मिलावें। तत्पश्चात् सुगन्धवाला, सुगन्ध मंजरी, सुगन्ध कोकिला, जटामांसी, बहेड़ा की छाल, श्वेत चन्दन, नीलपत्र १००-१०० ग्राम कल्क के रूप में डालकर मन्दाग्नि पर तैल पाक विधि से पकावें। यह तैल एक दिन में ही तैयार न करें कम से कम निर्माण के लिए २-३ दिन का समय लगना चाहिए। यह तैल प्राकृतिक सुगन्धित द्रव्यों से युक्त है अत: किसी प्रकार की सुगन्धी मिलाने की आवश्यकता नहीं रहती। तैल निर्माण होने पर फिल्टर पेपर या फलालेन के कपड़े से छान लेना चाहिये और बोतलों भरकर बन्द कर देना चाहिये।

प्रयोग विधि—स्नान करने के पश्चात् कम से कम पांच मिनिट तक तेल को बालों में रगड़ना चाहिये जिससे कि तैल बालों की जड़ों तक पहुँच सके।

गुण तथा उपयोग—यह तैल सौम्य गुणयुक्त है। शीतलता प्रदान करने वाला, बुद्धिवर्धक, सुगन्धियुक्त एवं केशवर्धक है। इसके प्रयोग करने से बाल सफेद नहीं होते तथा झड़ते नहीं हैं, मस्तिष्क की निर्बलता नष्ट होकर स्मरणशक्ति की वृद्धि होती है। मानसिक काम करने वालों को नित्य व्यवहार के लिए बहुत उपयोगी है।

विशेष—रोगानुसार सप्तामृत लौह २ रत्ती, प्रवाल-पिष्टी २ रत्ती, आमलकी रसायन २ माशा, शीत जल या मधु के साथ चिकित्सक के परामर्श से प्रयोग करें।

सिर धोने के लिए आंवला १ भाग, शिकाकाई १ भाग, अरीठा आधा भाग, मुलतानी मिट्टी ४ भाग को रात में भिगोकर प्रात: काल स्नान से पूर्व शिर के बालों को अच्छी तरह धोना चाहिये। यह बालों के लिए विशेष उपकारी है।

—वैद्य श्री फूलचन्द्र जैन शास्त्री आयु०
जयपुर (राज०)

ब्राह्मी तैल

ग्रंथ—वैं० स०

योग—तिल तैल, ब्राह्मी स्वरस, भृङ्गराज स्वरस, शंखपुष्पी स्वरस, बकरी का दूध–प्रत्येक ४-४ सेर।

कल्क द्रव्य—बच, कड़ुवा कूठ, दशमूल, एरण्डमूल छाल, त्रज, पानड़ी, नागकेशर, छरीला, जटामांसी, श्वेत चन्दन, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, बलापञ्चांग, गिलोय प्रत्येक २-२ तोला लें। सबको पीसकर लुगदी बनावें।

निर्माण विधि—पहले तैल के साथ लुगदी डाल कर पकावें। बारी-बारी से १-१ दिन के अन्तर से स्वरस और दूध डालकर मन्द-मन्द आंच से पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान लें और बोतलों में भरलें।

ब्राह्मी आमला तैल—इसके बनाने के लिए ऊपर लेखा स्वरस ३-३ सेर लें और आंवला स्वरस ३ सेर लें।

उपयोग—यह शिरो रोगों की उत्तम दवा है। इसके लगाने से सिर में शीतलता पहुँचती है। वातज पित्तज रोग शमन हो जाते हैं। मस्तिष्क आदि ऊर्ध्व अङ्गों की निर्बलता दूर होती है, इससे बुद्धि बढ़ती है। मद निवारण होता है। अपस्मार, उन्माद, योषापस्मार और बुद्धिमूढ़ता, स्मृति भ्रंश आदि रोगों में लाभ होता है। असमय में श्वेत केश काले हो जाते हैं, नेत्र ज्योति बढ़ जाती है। ऊर्ध्वभाग शिर आदि में गया हुआ मल अधोभाग में सरक आता है अतः शरीर शोधन भी करते रहना चाहिए। इसके लगाने के साथ ही ब्राह्मी घृत या त्रिफलादि घृत का पान करने से चश्मा लगाना दूर हो जाता है।

ब्राह्मी–आंवला तैल के भी गुण ऐसे ही हैं। यह पित्तशामक और केशों के लिए हितकारी है।

—श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव वैद्य,
अरौल (कानपुर)

व्रणकुठार तैल

घटक—शुद्ध सरसों का तैल २५० ग्राम, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी स्वरस) १ किलो ग्राम।

निर्माण विधि—पीले फूल वाली स्वर्णक्षीरी अच्छी ताजा लाकर उसको पानी से धोकर जड़ों को अलग काट-कर फैंक देवें एवं साफ कर सिला पर पीस कर कपड़े में निचोड़ कर स्वरस निकाल लेवें। फिर उस रस से चतु-र्थांश सरसों का तैल मिलाकर मन्दाग्नि से पकावें। तैल मात्र अवशेष रहने पर छान, निथार कर बोतलों में भर लेवें।

ग्रन्थ—रसतन्त्रसार एवं सिद्ध प्रयोग सं. (द्वितीय खंड)

शास्त्रोक्त उपयोग—यह तैल दुष्ट व्रण, नाड़ी व्रण, भगन्दर, पीपजन्य गंभीर व्रण, क्षय जन्य व्रण एवं अस्थि तक पहुंचे हुए दूषित पूय-जन्य व्रणोपद्रवों को यह शीघ्र ही शमन करता है एवं व्रणों को शुद्ध कर रोपण करता है।

स्वानुभव—मैंने इसका प्रयोग अपने चिकित्सा काल में अभी २-३ वर्षों से किया है। यह प्रयोग साधारण होते हुए भी अद्भुत कार्य करता है। 'बालतोड़' नामक जो व्रण उत्पन्न होता है जिसमें सारा शरीर ज्वरयुक्त हो जाता है एवं व्रण ऊपर से अत्यन्त छोटा एवं अन्दर गहरी जड़ वाला होता है। जो आमावस्था में शरीर को अत्यन्त क्लेशित करता है। उस व्रण के पक्व हो जाने पर क्षारीय क्रियाओं द्वारा फूट जाता है फिर उसकी चिकित्सा नहीं होने पर उसमें से पीप बनना एवं धातुओं का सड़ना शुरू हो जाता है। ऐसी अवस्था में उचित उपचार नहीं होने पर नाड़ीव्रण बन जाने की संभावना हो जाती है। ऐसे दुष्ट व्रणों पर मैंने इस तेल का प्रयोग प्रातः सायं रूई का फाहा भिगोकर व्रण मुख पर बाँधने के लिये किया है। परन्तु आश्चर्य होता है कि १ सप्ताह तक प्रयोग करने के बाद व्रण शुद्ध होकर व्रणरोपण होना शुरू हो जाता है।

विशेष प्रयोग निर्देश—ग्रंथकार ने लिखा है कि व्रण का मुंह अत्यन्त छोटा हो जिसमें तेल प्रवेश नहीं कर सकता हो तो गरम जल से स्टरलाईज्ड की हुई इन्जेक्शन की घिस कर भौथरी की हुई सुई एवं पिचकारी द्वारा व्रण मार्ग की अन्तिम परिधि तक तेल पहुँचाने की कोशिश करनी चाहिए। क्षयजन्य व्रण जो हड्डी तक पहुंच गया हो, एवं जिसमें से अस्थियों की झिल्ली, टुकड़े आदि गल-कर पूय के साथ आने लगें ऐसे व्रण पर इसे प्रयोग करें।

—वैद्य श्री बद्रीलाल गुप्त आयु० रत्न
नाटाराम छापीहेड़ा (राजगढ़) म. प्र.

भृंगराज तैल

क्वाथ–स्नेह पाक के लिए शास्त्रों में क्वाथ निर्माण की विधि दी गई है, उसको देखें। क्वाथ बनाने का प्रयोजन यह होता है कि द्रव्यों के गुण जल में पूर्ण रूप से विलीन हो जांय। इसके लिए द्रव्यों की मृदुता एवं कठिनता को ध्यान में रखकर जल डालना चाहिए। यथा—मृदु द्रव्य में ४ गुना, कठिन में ८ गुना और अत्यन्त कठिन में १६ गुना जल दें।

स्नेहपाक—मृदु, मध्य, खर इस प्रकार इसके ३ भेद होते हैं। नस्य के लिए, पीने के लिए मृदु पाक, मालिश आदि में मध्य पाक और वस्ति देने तथा कान में डालने के लिए खर पाक श्रेष्ठ माना गया है।

काल निर्देश–पाक हो जाने पर घी अथवा तैल को तत्काल नहीं छानना चाहिए। हमारा तो विचार है कि सुगन्धित द्रव्यों का पाक नहीं करना चाहिए अपितु तैल सिद्ध हो जाने पर प्रक्षेप के रूप में इनको डालना चाहिए और धूप में रख देना चाहिए। इस प्रकार तैल सुगन्धित भी हो जाते हैं और उनके अपने तैल भी सुरक्षित रह जाते हैं जो पकाने पर उड़ जाते हैं। इस अनुभव का प्रयोग करके देखें, शास्त्र से मिलान करने से कोई लाभ नहीं।

शार्ङ्गधरोक्त तैलों की विधि—

भृंगराज तैल—द्रव्य–भृंगराज का रस ४ सेर लौहकिट्ट (मण्डूर का चूर्ण या लोह चूर्ण ४ तोला), त्रिफला ४ तो०, सारिवा ४ तो०, कल्क के लिए जल ८ तो०, तिल तैल १ सेर। इन सबको मिलाकर विधिपूर्वक पाक करें। समयानुसार छानकर रखें।

प्रयोग—रूसी, असमय में बालों का पकना, शिर की खुजली और इन्द्रलुप्त (गंजापन) को नष्ट करता है।

भैषज्य रत्नावली के अनुसार 'भृंगराज तैल'—

द्रव्य—तिल तैल ३ सेर ३ छटांक १ तोला, आनूपदेशज भांगरा का रस १२ सेर १२ छटांक ४ तोला।

कल्कार्थ—मजीठ, पद्माख, लोध्र, लाल चन्दन, गेरू, वला, हल्दी, दारुहल्दी, नागकेशर, प्रियंगु, मुलैठी, पुण्डरिया काष्ठ, श्यामलता प्रत्येक ८-८ तोले।

विधि—उक्त द्रव्यों को काली गाय के दूध से पीसकर कल्क बनालें, पाक करके स्वच्छ पात्र में छानकर रखलें।

प्रयोग—इस तैल के नस्य तथा मालिश करने से बालों का गिरना, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, कर्णरोग, नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं और खालित्य, इन्द्रलुप्त दूर होकर चिकने, घने एवं घने बाल पुनः निकल आते हैं। कुछ आचार्य इसे महाभृंगराज तैल भी कहते हैं।

—डा० श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री
के ३०/६ घासीटोला, वाराणसी

भृंगराजादि तैल

घटक—नीम तैल २ किलो, भृंगराज स्वरस, आंवला स्वरस, ब्राह्मी स्वरस, गोमूत्र १-१ किलो। कल्क द्रव्य—त्रिफला ९ तो., आम की गुठली ३ तो०, शिकाकाई फली ६ तो०, हीरा कसीस १ तो०, शुद्ध भिलावा ३ तो०, शुद्ध सुहागा १ तो० से तैल पकाकर सिद्ध कर लेवें, बाद में छान कर शीशी में भरकर रख लेवें। इस तैल में सुगन्ध के लिये कोई भी इत्र या सेण्ट मिला लेवें।

उपयोग—ये पलित गंजापन तथा नजला से सफेद हुए बाल व कम उम्र में पके बाल तथा सिर के अन्य रोगों में प्रयोग करे। चर्म रोगों में भी प्रयोग करें।

नाड़ीव्रण हर मलहर—निम्ब पत्र।

घटक—निम्ब पत्र, जामुन पत्र, भृंगराज पत्र, इमली पत्र, नीबू पत्र को तथा टीकामारनी, घुड़बच, मोम देशी सब बराबर-बराबर लेवें।

निर्माण विधि—उक्त पाँच प्रकार के पत्रों को किसी पात्र में खौलते हुए सरसों के तेल में कत्थई रंग आने तक पकावे और घोटता रहे। जब गाढ़ा हो जाय तब उसी में देशी मोम और पिसी हुई डीकामाली व घुड़बच डालकर घोट लें किसी काच के पात्र में रख लेवें।

उपयोग—मेरा निजी निर्मित तथा अनुभूत योग है। इसका उपयोग मैंने नाड़ी व्रण तथा पक कर फूटे हुए अर्बुद विद्रधि, गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रंथि तथा क्षतज व्रण व पुराने सड़े-गले व्रण कीड़े युक्त व्रण में शोधन रोपण कर घाव की पूर्ति करता है।

—श्री होरीलाल राठौर आयुर्वेद शास्त्री
अगवासी उरसान, कानपुर
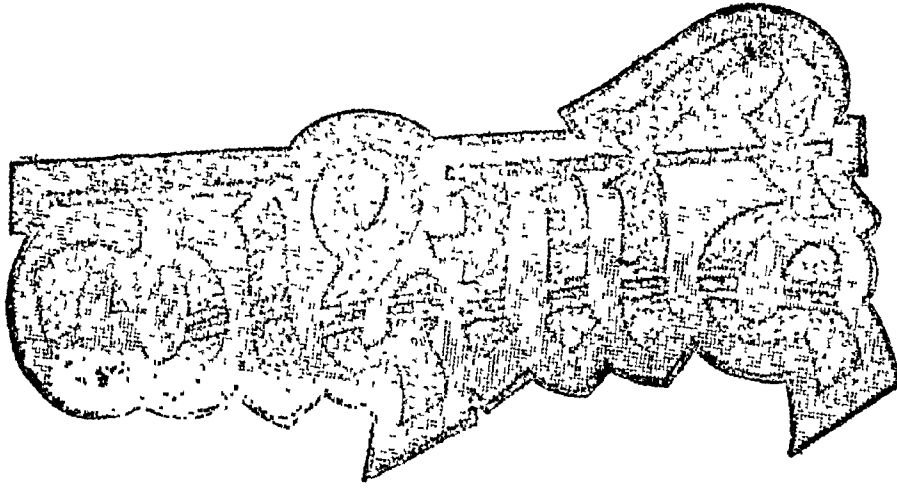
तैल

—प्राणाचार्य श्री पं० हर्षुल मिश्र बी.ए. (आनर्स), आयु. प्रवीण

मेरी व्यक्तिगत जानकारी है, कि विषम ज्वर, कास, श्वास, प्रतिश्याय, उन्माद, क्षय, कण्डु, व्रण, चर्म रोगों पर लाक्षादि तैल का प्रयोग वैद्यगण बहुत कम करते हैं। जब मैं विभागीय निरीक्षक आयुर्वेद था, तब मैंने लाक्षादि तैल की उपयोगिता अनेक वैद्यों को समझाई और उनसे आग्रह भी किया कि व लाक्षादि तैल का प्रयाग यथाशास्त्र करें। और परिणाम का सूचना मुझ दिया करें। मेरी इस सुझाव की अच्छाई को तो लगभग सभी वैद्यों ने स्वीकार किया परन्तु मेरे कथनानुसार लाक्षादि तैल का प्रयोग दो-तीन वैद्य ही कुछ हद तक कर सके, और उसके सुखावह परिणाम यथाप्रसङ्ग भेजते रहे। मैंने स्वयं अपनी चिकित्सा में लाक्षादि तैल को अपनाया है और उसके सुखावह परिणाम लिपिबद्ध किया है। कुछ मित्र वैद्यों ने भी यदा-कदा लाक्षादि तैल के सुखावह परिणाम बताये हैं। इन सब अनुभवों का सुखावह विवेचन इस लेख में किया जा रहा है।

लाक्षादि तैल का योग—

एक सेर पीपल लाख को चूर्ण कर ४ सेर पानी के साथ काढ़ा करें। जब चतुर्थांश जल शेष रह जाय, तब क्वाथ के पात्र को उतार लें। फिर उसमें १ सेर दही का पानी और १ पाव तिल-तैल मिलावें। इसके बाद उसमें सफेद चन्दन, नागरमोथा, रास्ना, मुलैठी, कूठ, मूर्वा, रेणुका बीज, कुटकी, देवदारु, हरिद्रा, असगंध, सौंफ का तीन-तीन माशा चूर्ण का मिश्रण बना कर डाल दें। क्वाथ पात्र को पुनः अग्नि पर चढ़ाकर उसे धीमी आंच से पुनः पकावे। जब एक पाव तैल मात्र शेष रह जाय, तब तैल को धीरे-धीरे निथार कर दूसरे पात्र में निकाल लें।

गुण—इसके लगाने से सब प्रकार के विषम ज्वर, कास श्वास, प्रतिश्याय, त्रिक शूल, पृष्ठशूल, वात पीड़ा, पित्त-प्रदाह, उन्माद, व्रण, कण्डु शांत होते हैं।

लाक्षादि तैल के प्रयोग पर हमारा अनुभव

१. विषम ज्वर, मन्थर ज्वर, जीर्ण ज्वर में लाक्षादि तैल को सर्वांग में धीरे-धीरे मालिश करने से तुरन्त दाह, जलन, ताप और विकलता कम होते हैं। ज्वर भी कुछ कम हो जाता है। ज्वर की तीव्रता थम जाती है। जाड़े का बुखार, लाक्षादि तैल धीरे-धीरे एक घण्टे तक लगाने से सम्पूर्णतः आराम हो जाता है। मर्यादित ज्वर में नित्य इसे लगाने से ज्वर की तीव्रता थमी रहती है। दाह, संताप, अङ्गमर्द, कटिशूल शांत हो जाते हैं अथवा सहने योग्य हो जाते हैं।

लाक्षादि तैल के लगाने से मर्यादित ज्वर नहीं उतरते परन्तु उनकी तीव्रता कम हो जाती है, रोगी को राहत अवश्य मिलती है। यह क्षयजन्य जीर्ण ज्वर में भी सर्वोपरि सुखावह उपचार है। इसे हाथ की हथेली और पैर के तलुओं में मलने से हाथ पैर का दर्द और संताप अवश्य मिटता है।

२. कास, श्वास वृद्धि, क्षय, निमोनिया, कफष्ठीवन, पार्श्वशूल में हम छाती पर और पसलियों पर सुखोष्ण लाक्षादि तैल की मालिश करवाते हैं। इससे रोगी को बड़ी राहत मिलती है उपर्युक्त रोगों में हम ६ माशा से १ तो० तक लाक्षादि तैल सुखोष्ण बकरी के दूध में डाल कर पिलाते भी हैं। इससे रक्तष्ठीवन, रक्त मिश्रित कफष्ठीवन तत्काल रुकता है।

३. प्रतिश्याय, नासाशोष, नासाव्रण, नासाप्रदाह में हम लाक्षादि तैल की दो बूंदें रोगी के रन्ध्रों में प्रातः मुख-प्रक्षालन के बाद तथा रात्रि में सोते समय यथानियम टपकाते हैं। इससे प्रतिश्याय दासा व्रण की पीड़ा तुरन्त शांत होती है। एक पक्ष के बाद, इसी उपचार से उपर्युक्त नासा रोगी में स्थायी राहत प्रतीत होने लगती है।

४. कर्ण स्राव, कर्णपूय, कर्णपूति पर तो लाक्षादि तैल सर्वोपरि प्रयोग है। कान की पूय को रुई के फोहे से पोंछ कर तथा निम्ब तैल से साफकर लाक्षादि तैल ५ बूंद से १० बूंद तक कान में छोड़ना चाहिये। ७२ घंटे में कर्ण-स्राव कम हो जाता है। एक माह के अन्दर लाभ होता है।

५. राक्षस व्रण, दुष्ट व्रण, राक्षस कण्डु, लाक्षादि तैल के नित्य लगाने से मिटजाते हैं। कण्डु और जलन तुरन्त मिटती है। इससे व्रण का शीघ्र रोपण होता है। मैंने लाक्षादि तैल में पंच वल्कल चूर्ण मिलाकर अग्निविसर्प (गैंगरिन) पर लगाया है। मैं रोज, बिना गैगरिन के धाव को धोयें, महावीर जी के सिंदूर के समान, गैंगरिंग पर, लाक्षादि तैल में पंच वल्कलचूर्ण मिलाकर, थोपता जाता था अथवा लेप करता जाता था। एक माह के बाद गैंगरिन पर लगे लाक्षादि तैल के लेप की पपड़ी अपने आप टूट-टूट कर गिरने लगी, और जो दृश्य सामने आया वह आश्चर्यजनक था। रोगी के पैर में गैंगरिन की सड़न समाप्त हो चुकी थी। घाव भर चुका था। उस पर गुलाबी त्वचा आचुकी थी।

६. योनिस्राव, योनिकण्डु और दुर्गन्धयुक्त योनि में लाक्षादि तैल के पिचु हम रखवाते हैं। इससे उपर्युक्त रोगों में तत्काल राहत मिलती है। लाक्षादि तैल का पिचु ३ माह तक लगातार रखें और लाल, हरी मिर्च और खटाई खाना बन्द कर दें।

७. गर्भवती स्त्री प्रसव होने तक तथा प्रसव होने के बाद ४० दिन तक नित्य लाक्षादि तैल की मालिश करें तो उसका गर्भ पुष्ट होगा और उसका शरीर भी बलवान बना रहेगा। उसे वात और कफ के रोग नहीं होगें। हम प्रत्येक गर्भवत्ती और प्रसूता को लाक्षादि तैल लगाने देते हैं। इससे उसको अंगमर्द नहीं होता, ज्वर नहीं आता। गर्भवती और प्रसूता के ज्वर में लाक्षादि तैल की मालिश से ज्वर का वेग कम हो जाता है। गर्भवती के ज्वर में लाक्षादि तैल लगाने के साथ-साथ सितोपलादि चूर्ण १ माशा, कामदुघा रस २ रत्ती मधु के साथ चटाना श्रेयस्कर है। प्रसूता स्त्री के ज्वर में लाक्षादि तैल लगाने के साथ-साथ दशमूल क्वाथ २॥ तोले से ५ तोले की मात्रा में पिप्पली चूर्ण ६ रत्ती और मधु १। तो० मिलाकर, प्रातः सायं पिलाना श्रेयस्कर है।

८. अग्निदग्ध पर लाक्षादि तेल लगाने से जलन मिटती है। अग्निदग्ध व्रण व्रण लाक्षादि तैल लगाने से १५ से २० दिन के अन्दर प्रायः सूख जाते हैं। अग्निदग्ध व्रण के सूखने पर सफेद दाग नहीं पड़ते। यदि दाग पड़ भी जाय तो लाक्षादि तैल लगाते रहने से मिट जाते हैं। अग्निदग्ध पर अलसी तैल वा निम्ब तैल में बना तैल लाभदायक होता है।

९. भ्रम-मूर्च्छा-उन्माद शिरः शूल, रक्तचाप वृद्धि में लाक्षादि तैल से नित्य कर्ण तर्पण करना चाहिये। हम उपर्युक्त शिरो रोगों में असली सरसों तैल से बना लाक्षादि तैल प्रयोग करते हैं। लगातार तीन चार माह तक इसका प्रयोग करने से उपर्युक्त रोग मिट जाते हैं। इन रोगों में तत्काल लाभ पहुँचाने के लिए कर्ण तर्पण के साथ लाक्षादि तैल की तीन चार बूंद नाक में भी टपकानी चाहिए। हम लाक्षादि तैल के प्रयोग के साथ-साथ स्वीकृत शिर सुखमिश्रण (जटामांसी ४ रत्ती, वचा ४ रत्ती, श्वेत सरसों ४ रत्ती, सर्प गंधा २ रत्ती, गोमेद रत्न भस्म १ रत्ती—१ मात्रा। मधु से प्रातः सायं चटाते हैं। इस शिर सुखमिश्रण के सेवन और लाक्षादि तैल से कर्ण-नासा में नित्य डालने से उपर्युक्त रोगों के अतिरिक्त अपस्मार, हिस्टेरिया बच्चों के आक्षेपक ज्वर, अनिद्रा रोग भी निश्चयपूर्वक दूर होते हैं।

सूचना—ज्वर के प्रयोग के लिये तिल तैल में लाक्षादि तैल बनाना चाहिए। छाती के रोगों के लिए तथा अग्नि-दग्ध के लिए अलसी तैल में लाक्षादि तैल बनाना चाहिए। शिरो रोगों के लिए सरसों तैल में लाक्षादितैल निर्माण करना चाहिये। कर्ण स्राव, कर्ण पूति, योनिस्राव, व्रण और चर्मरोगों के लिए करंज तेल वा निम्ब तेल में बनावें।

—प्राणाचार्य श्री पं० हर्पुल मिश्रा बी० ए० (आनर्स),
सेवा निवृत म. प्र. आयुर्वेद निरीक्षण अधिकारी
पेंशन बाड़ा, रायपुर (म० प्र०)

वैद्य श्री व्रजविहारी मिश्र एम. ए.

घटक—धतूरे की जड़, निर्गुण्डी की जड़, कटुतुम्बी की जड़, पथरचटा की जड़, एरण्ड की जड़, असगंध, चकवड़, चित्रक की जड़, सहजन की छाल, मकोय, कलिहारी की जड़, नीम की छाल, बकायन की छाल, शिवलिङ्गी, दशमूल, शतावर, वन करेली, अनन्तमूल, मुण्डी, विदारीकन्द, सेहुंड़, आक की जड़, मेढ़ासिंगी, पीले पुष्पों के कनेर की जड़, लाल पुष्पों के कनेर की जड़, वचा, काकजङ्घा, अपामार्ग की जड़, बला की जड़, अतिबला (कंघी) की जड़, नागबला की जड़, छोटी कण्टकारी की जड़, अडूसे की जड़, सोमवल्ली (गिलोय) और प्रसारणी इनमें से प्रत्येक को एक-एक पल लेकर १ द्रोण जल के साथ क्वथित करके चौथाई शेष रहने पर छान लेवें।

कल्कार्थ—सोंठ, मरिच, पिप्पली, कुचला, रास्ना, कुष्ठ, मीठा विष, मोथा, देवदारु, वत्सनाभ, जवाखार, सज्जीखार, पांचो नमक, तूतिया, कायफल, पाठा, भारङ्गी, नौसादर, त्रायमाण, धमासा, जीरा और इन्द्रायण की जड़ इन्हे सम प्रमाण में मिलाकर १६ तोला लेकर कल्क बना लेवें।तदुपरांत उक्त क्वाथ तथा कल्क और १ प्रस्थ (६४ तोले) मूर्छित तिल तेल एकत्र कर यथाविधि तेल सिद्ध कर लें।

शास्त्रीय गुण—यह 'महाविषगर्भ' नामक तेल सर्व प्रकार के वात विकारों को नष्ट करता है तथा भग्न हुए वक्षस्थल, उरु, कटि और जङ्घा इनके सन्धान करने के लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा गृध्रसी, महावात, सर्वाङ्ग की जकड़ाहट, दण्डापतानक, कर्णनाद और शून्यता को दूर करता है। जिस तरह जङ्गलों में सिंह को देखकर हरिण आदि अनेक पशु भाग जाते हैं उसी तरह इस तैल के अभ्यङ्गादि करने के प्रभाव से भग्न हुये घोड़े, हाथी, मनुष्य और तमाम जानवरों की वातिक पीड़ायें विनष्ट हो जाती हैं।

उपर्युक्त धत्तूर आदि औषधियां उष्ण वीर्य, पित्तवर्धक एवं कफ तथा वातदोष नाशक होती हैं। कुचला, मीठा विष, वत्सनाभ आदि विष व्यावायि (शरीर में शीघ्र व्याप्त होने वाले) तथा नमक, तूतिया आदि शरीर में शीघ्र प्रवेश करने वाले द्रव्य हैं जिनके प्रभाव से तैल में वातरोग नाशक यह विलक्षण शक्ति उत्पन्न होती है।

तैल पाक बड़ी सावधानी से 'साधयेन्नैक वासरे' की उक्ति को ध्यान में रखकर एक दिन में ही नहीं करें।

पोलियो रोग पर प्रभाव—इस तैल के अभ्यंग से हाथ पैर का पतलापन दूर होकर मांस की वृद्धि होती है और आधुनिक चिकित्सा द्वारा असाध्य कहा जाने वाला पोलियो रोग अच्छा होता है। पोलियो रोगी को इस तेल की मालिश के साथ हम वातगजांकुश एवं वृहद् वातचिन्तामणि रस का प्रयोग भी करवाते हैं।

—श्री व्रजविहारी मिश्र वैद्य
विन्दकी (फतेहपुर) उ. प्र.

शतावरी तैल

वैद्य श्री मोहर सिंह आर्य

ग्रन्थ निर्देश—शार्ङ्गधर संहिता, मध्यम खण्ड, स्नेह कल्पना प्रकरण।

घटक	तोल	विशिष्ट गुण
१. शतावर	६० ग्राम	१. मधुर, तिक्त, बल्य, वृष्य, रसायन, स्निग्ध, शुक्र, स्तन्य तथा अग्निवर्द्धक, पौष्टिक, चक्षुष्य, वात-पित्त, रक्तविकार, गुल्म, अतिसार एवं शोथनाशक है।
२. बला	६० ग्राम	२. बला, मधुर, स्निग्ध, शीत वीर्य, बृंहणीय, बल्य, प्रजास्थापन, ग्राही, वृष्य, ओजवर्धक तथा वात पित्त, रक्तपित्त एवं क्षय नाशक है।
३. अतिबला	६० ग्राम	३. अतिबला के गुण निघण्टुओं में बला के समान लिखे हैं।
४. शालिपर्णी	६० ग्राम	४. शालिपर्णी मधुर, तिक्त, गुरु, उष्ण वीर्य, बृंहण, बल्य, स्नेहोपग, अंगमर्द प्रशमन, वृष्य, सर्वदोषहर, रसायन तथा वातहर, शोथहर है।
५. पृश्निपर्णी	६० ग्राम	५. शालपर्णी मधुर, लघु, उष्ण वीर्य, त्रिदोषहर, दीपन, वृष्य, सांग्राहिक, सन्धानीय, शोथहर, अंगमर्द प्रशमन।
६. एरण्डमूल	६० ग्राम	६. एरण्ड मधुर, गुरु, उष्ण वीर्य, भेदन, स्वेदोपग, अंगमर्द प्रशमन, वात-संशमन, त्रिदोषघ्न, शूल, शोथहर है।
७. अश्वगन्धा	६० ग्राम	७. असगंध—मधुर, कषाय, तिक्त, उष्ण वीर्य, बृंहण, बल्य, रसायन, वाजीकर, वात कफ एवं शोथनाशक है। स्वापजनन है। बद—ग्रंथि नाशक है।
८. गोक्षुर	६० ग्राम	८. गोक्षुर—मधुर, शीतवीर्य, मूत्रल, शोथहर, शूल तथा वातरोग नाशक है। बाजीकर, बृंहण, बल्य है। वातहर है।
९. बिल्व	६० ग्राम	९. बेलगिरी—वात रोगनाशक, तीक्ष्ण, ग्राही, स्निग्ध, उष्ण एवं शोथहर हैं। मधुर, कषाय, गुरु, हृद्य, रुचिकर, दीपन, पित्त कफ नाशक है।
१०. कास मूल	६० ग्राम	१०. मधुर, कड़वा, मधुर विपाक, शीतल, रेचक है।
११. पियावांसा	६० ग्राम	११. कषाय, उष्ण, स्निग्ध, मधुर एवं तिक्त है।
१२. शतावर	१० ग्राम	१२. शतावर के गुणधर्म संख्या १ में देखो।
१३. देवदारु	१० ग्राम	१३. देवदारु, उष्ण वीर्य, शोथ, आमनाशक, लघु, स्निग्ध, स्वेदल, मूत्रल, वात नाशक, त्वग्दोषहर है। व्रण शोधन एवं व्रण रोपण है। स्तन्य शोधन, रक्तविकार नाशक है।
१४. जटामांसी	१० ग्राम	१४. रक्तविकार, विसर्प एवं कुष्ठ नाशक है। त्वग्दोषहर, वातहर, वेदना-स्थापन, कफघ्न, कान्तिवर्धक है। मधुर, कषाय, कटु, शीत वीर्य, मेध्य।
१५. तगर	१० ग्राम	१५. तगर उष्ण वीर्य, लघु, स्निग्ध, शीत प्रशमन, वातहर, रक्ताभिसरण, वेदना स्थापन, व्रण रोपण है, कटु, तिक्त, कषाय है।
१६. चन्दन श्वेत	१० ग्राम	१६. वर्ण्य, कण्डूघ्न, विषघ्न, तृषाप्रशमन, दाहप्रशमन, अंगमर्द प्रशमन, पित्तसंशमन, तिक्त, मधुर, शीतवीर्य, रक्तप्रसादन, वृष्य, हृद्य, स्वेदल।

घटक	तोल	विशिष्ट गुण
१७. सौंफ	१० ग्राम	१७. मधुर, तिक्त, कटु, स्निग्ध, शीतवीर्य, पाचन, मल बांधने वाली, हृद्य, वृष्य, बल्य, वातहर, मूत्रविरेचनीय ।
१८. बरियारा	१० ग्राम	१८. बरियारा (बला) के गुण संख्या २ में देखो ।
१९. कूठ	१० ग्राम	१९. तिक्त, कटु, मधुर, लघु, उष्ण वीर्य, लेखन, शुक्र शोधक, शुक्रल, वातहर दीपन, पाचन, वाजीकर, त्वग्दोषहर, कान्तिकर, वेदना स्थापन ।
२०. बड़ी एला	१० ग्राम	२०. उष्ण, शुष्क, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, कटु, पित्त, अग्निवर्धक, लघु, रूक्ष ।
२१. छरीला	१० ग्राम	२१. तिक्त, शीत वीर्य, हृद्य, लघु, कफ, पित्तनाशक है । मूत्रजनन है ।
२२. कमल	१० ग्राम	२२. कषाय, मधुर, शीत वीर्य, स्निग्ध, पिच्छिल, मूत्रविरेचनीय, हृद्य, मूत्रल, ग्राही ।
२३. वाराहीकन्द	१० ग्राम	२३. कटु, बल्य, वृष्य, रसायन है, वीर्यवर्धक, शीतल, मूत्रवर्धक, जीवनीय है ।
२४. मेदा (शतावर)	१० ग्राम	२४. शतावर के गुण देखो संख्या १ में ।
२५. मुलेठी	१० ग्राम	२५. मधुर, गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य, जीवनीय, संधानीय, वर्ण्य, कण्ठ्य, कण्डूघ्न, स्नेहोपग, वमनोपग, रसायन, वाजीकरण, चक्षुष्य, बल्य, केश्य, पित्त, वातहर ।
२६. काकोली (असगंध)	१० ग्राम	२६. अश्वगन्धा के गुण संख्या ७ में देखो ।
२७. जीवक (विदारीकंद)	१० ग्राम	२७. बल्य, रसायन, वृष्य, पोषक, स्निग्ध, मधुर, पुष्टिकर, स्तन्य ।
२८. जल	६४. मि.लि.	२८. परिश्रयहर, ग्लानिहर, बल्य, तृप्तिकर, हृदय प्रिय, शीतल, हितकारी, लघु, रस का हेतु रूप, अमृत तुल्य जीवनप्रद, गुप्त रसयुक्त है ।
२९. तिल तैल	६४० मिलि.	२९. मधुर, तिक्त, कषायानुरस, उष्णवीर्य, मधुर, विपाक, सूक्ष्म, व्यवायि, पित्तवर्धक, मूत्र कम करने वाला, स्थौल्यहर, वातघ्न, बल्य, त्वचा को हितकर, मेध्य, अग्निवर्धक ।
३०. दुग्ध	६४० मिलि.	३०. मधुर, स्निग्ध, रेचक, वीर्योत्पादक, शीतल, जीवनीय, पौष्टिक, बल्य, मेध्य, वाजीकर, आयुस्थापन, आयुष्य, रसायन, संधानक, ओजवर्धक है ।
३१. शतावर स्वरस	६४० मिलि.	३१. शतावर स्वरस के गुण संख्या १ में देखो ।
३२. जल	६४० मिलि.	३२. जल के गुण संख्या २८ में देखो ।

विशेष वचन— मेदा अभाव में शतावर, काकोली के अभाव में अश्वगन्धा और जीवक के अभाव में विदारीकन्द लें ।

निर्माण विधि—क्रम संख्या ११ तक के द्रव्यों को यवकुट करके जल २ लीटर ६४० मि. लि. में क्वाथ करें । चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें । इस क्वाथ में तिल तैल ६४० मि. लि, दुग्ध ६४० मि. लि. शतावर स्वरस ६४० मि. लि., जल ६४० मि. लि. इन चारों द्रव्यों को मिलाकर रख लें । फिर संख्या १२ से २७ तक के द्रव्यों को कूट पीस कल्क बना लें तथा उपर्युक्त तिल तैल आदि मिश्रण में डालकर उपलों की मन्द-मन्द आँच पर रखकर पकावें । परिपाक हो जाने पर छानकर रख लें ।

उपयोग—

इस शतावरी तैल के सेवन से पुरुष वृषवत् (साँड की भांति) सम्भोग सामर्थ्य प्राप्त करता है और स्त्री पुत्र

प्राप्त करती है। योनिशूल, अंगशूल, शिरःशूल, कामला, पाण्डु, विष दोष, गृध्रसी, प्लीहा वृद्धि, शोष, प्रमेह, दण्डापतानक, दाह, वातरक्त, वातिक, पैत्तिक रोग, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, और आध्मान रोग नष्ट होते हैं।

यह शतावरी तैल भगवान कृष्णात्रेय का कहा हुआ है।

शतावर को जंगल से खोदते समय उत्तराभिमुख खाठी शंकु (खैर की नोकदार लकड़ी) से खोदते हुए "ॐ नारायण्यै स्वाहा" "ॐ सर्वव्याधिनाशिन्यै स्वाहा" मन्त्र का जाप करते रहें।

इस तैल का सेवन करते समय पाक करते हुए "ॐ कुमार जीविन्यै स्वाहा" मन्त्र का उच्चारण करें।

विशेष वचन—यह योग वृहन्निघण्टु रत्नाकर के वात व्याधि अधिकार में भी आया है। शतावरी तैल का योग योगरत्नाकर के वातव्याधि प्रकरण में भी है। वह भी शतशोऽनुभूत है।

विशेष वचन— इस तैल में काले तिलों का तैल डालें। तिलों में काले तिल उत्तम होते हैं।

शतावरी तैल मधुर तिक्त कषाय रस युक्त, विपाक में मधुर तथा उष्णवीर्य है। त्रिदोष नाशक है। यह तीक्ष्ण, बृंहण, गुरु, सारक, विकासी, वृष्य, शोधन, लेखन, चक्षुष्य, तथा पाचन है।

शूल—योनिशूल, शिरःशूल, तथा अंगशूल में लाभप्रद है। योनिशूल में इसका पिचुधारण करावें तथा गोदुग्ध में १० मि. लि. मिलाकर पिलावें। दिन में तीन मात्रायें दें। शिरःशूल में शिर पर मर्दन करावें, नस्य दें, अन्तःप्रयोज्य भेषज के रूप में दें। अङ्गशूल में अभ्यंग तथा सेंक करें।

वात व्याधियों में स्नेहन के लिए परम लाभप्रद है। अन्तः प्रयोग तथा बाह्यप्रयोग में उपयोगी है। नपुंसकता में इसे अन्तःप्रयोज्य भेषज के रूप में तथा बाह्य प्रयोगार्थ दिया जाता है। हमने अनेक शीघ्रपतन के रोगियों को सेवन कराया है, पूर्ण लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

शतावरी तैल (योगरत्नाकर)

द्रव्य तथा निर्माण विधि—कूठ, दारुहल्दी, इलायची, फूलप्रियंगु, तगर, दालचीनी, तेजपात, रेणुका, नखी, जटामांसी, राल, नागरमोथा, चन्दन, बच, छड़ीला, लामज्जक तृण, मंजीठ, राल, अगर, गंगेरन, रास्ना, असगन्ध, शतावरी, पुनर्नवा, सोया तथा सेंधानमक प्रत्येक समान भाग लेकर कल्क बनाकर, कल्क से चौगुना मूर्च्छित तिल का तैल और तैल के समान भाग का दुग्ध और शतावरी का रस लेकर सब एकत्र कर मन्दाग्नि पर पाक करें। यह शतावरी तैल वात विकार नाशक है।

—आयुर्वेद बृहस्पति, आयुर्वेद वाचस्पति, आयुर्वेद भूषण,
आयुर्वेद सम्राट, आयुर्वेद वारिधि, वैद्यरत्न
वैद्य वाचस्पति वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य
मिसरी (भिवानी) हरियाणा

शतावरी तैल (वैद्य सहचर)

तिल तैल ४ सेर, शतावरी रस ४ सेर, गोदुग्ध ४ सेर पानी ८ सेर।

कल्क द्रव्य—कूठ, देवदारु, छोटी इलायची, प्रियंगु, तगर, दालचीनी, तेजपात, रेणुका, नखी, जटामांसी, राल, नेत्रबाला, असगन्ध, रास्ना, शतावर, पुनर्नवा, सौंफ, सेंधानमक मिलित १ सेर २ छटांक हल्दी का कल्क डालकर तैल मूर्च्छन करें। फिर ३ दिन तक तैल के शीतल होने पर पानी और शतावर स्वरस डालकर कुछ उबाल देकर रख लें। चौथे दिन दूध और कल्क द्रव्य डालकर धीरे-धीरे पकालें। फिर छानकर बोतलों में भर लें।

उपयोग—यह तैल प्रसूता स्त्रियों के लिए लाभकारी है, इससे वातज रोग शमन होते हैं। दुर्बल, रक्तक्षीण, शोष रोगियों के लिए, बच्चों के सूखा रोग के लिए उत्तम है। इसके शरीर में मलने से कृशता दूर हो मोटापन आ जाता है। शरीर की झुर्रियां दूर हो जाती हैं। मुख पर लगाने से कालिमा दूर हो कान्ति आ जाती है।

योनि के अन्दर पिचु डुबोकर रखने से शूल, शोथ, व्रण, दाह, कण्डू, जीवाणु प्रकोप, योनि शैथिल्य, दुर्गन्ध विस्तृति, वन्ध्यापन आदि विकृतियाँ दूर होती हैं। कर्ण, शूल, दाह, पूय स्राव में बिन्दुपात करना चाहिए। अर्श पर पिचु रखने से शूल, दाह और रक्तस्राव दूर होता है।

—शेषांश पृष्ठ २३० पर देखें।

षड्बिन्दु तैल

कविराज श्री गिरिधारीलाल मिश्र

योगनाम—षड्बिन्दु तैल, ग्रंथनाम-भैषज्य रत्नावली शिरोरोगाधिकारे-षड्बिन्दु तैलम्

घटक-तौल—एरण्डमूल, तगर, सौंफ, जीवन्ती, रास्ना, सैंधानमक, दालचीनी, वायविडंग, मधुयष्टि, सौंठ प्रत्येक १६ ग्राम। तिल तैल १२८० मि. लि., बकरी दूध १२८० मि. लि., भांगरा स्वरस ५१२० मि. लि.।

निर्माण प्रक्रिया—काष्ठौषधियों के मिश्रित चूर्ण १६० ग्राम को बकरी के दूध में पीसकर कल्क बनालें तथा तिल तैल को मूर्च्छा विधि से मूर्च्छित कर, उसमें कल्क तथा बकरी का दूध तथा भांगरा स्वरस को डालकर तैल पाक विधि से तैल पाक कर लें। बस तैल तैयार है।

विशेष द्रष्टव्य—कुष्ठाधिकारे—षड्बिन्दु तैलम् भै. र. भैषज्य रत्नावली के कुष्ठाधिकार में भी ,षड्बिन्दुतैल' नामक इतर योग का वर्णन है किन्तु बहुप्रचलित न होने के कारण तथा लेख विस्तारभय से यहाँ उसका उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

— और उपयोग—शिर दर्द, सूर्यावर्त्त, अर्धावभेदक, पुराना शिरदर्द, पुराना जुकाम आदि में इसका नस्य दिया जाता है, चित्त लिटाकर दोनों नथुनों में ६-६ बूंद परिमाण में डाला जाने के कारण "षड् बिन्दु तैल" इसका नाम उपयोगविधि के अनुसार ही निर्धारित है। शिरोरोग के लिए सुप्रसिद्ध परम गुणकारी तैल है।

स्वानुभव—अर्धावभेदक (Migraine) या पित्तज शिरःशूल के रोगी जब हमारे चिकित्सालय में आता है तो सर्व प्रथम उसे "कट् फल नस्य" (कायफल का महीन चूर्ण) सुंघाकर सूर्य की ओर देखने को कहते हैं। रोगी जितनी बार सूर्य को देखता है उसको उतनी ही छीकें आती है अतः नासिका द्वारा शिर में संचित कफ का निर्हरण हो जाने पर ठण्डे पानी से मुंह धुलवाकर दोनों नाक में ६-६ बूंद तैल डाल देते हैं। रोता हुआ रोगी हँसता हुआ जाता है। पुराने सिरदर्द तथा सूर्यावर्त्त (आधाशीशी), बालों का विशेष गिरना, असमय में शिर के बाल कहीं-कहीं से बिल्कुल उड़जाना (गंजापन) तथा बालों का सफेद होना इस तैल का नस्य परम गुणकारी, सहस्रानुभूत, बहुपरीक्षित है। नासार्बुद (Sinusitis), नाक के मस्से, नासिका के अन्दर की शोथ आदि में इस तैल की फुरेरी नाक में लगाने को देते हैं तथा आशातीत लाभदायक है।

—कविराज गिरिधारीलाल मिश्र M.Sc., A., M.B.S.
आयुर्वेद वाचस्पति, साहित्यायुर्वेदरत्न
प्रधानचिकित्सक-केदारमल मेमोरियल आयुर्वेदिक होस्पिटल
तेजपुर (असम)

शतावरी तैल : : पृष्ठ २२६ का शेषांश

अंगुली डुबोकर गुदा में प्रवेश करने से बारम्बार मलत्याग की इच्छा का शमन हो, अतिसार प्रवाहिका में लाभ होता है। नाभि में भरने से, पिचु डुबोकर रखने से उदर शूल अतिसार दूर होता है। शिर पर पिचु या फोहा रखने से चिर शिरोशूल निवारण हो जाता है। नस्य लेने से नासा रक्तस्राव, दुर्गन्धि, नासाक्रमि दूर होते है। दन्तच्छद शूल, शोथ, रक्तस्राव, क्रमि में लगाने से लाभ होता है। नेत्रों की पलकों पर लगाने से नेत्रशूल और लालिमा दूर हो जाती है। कण्ठ के अन्दर ग्रन्थियों में शूल शोथ हो तो इसका लेप करना चाहिये। शस्त्राघात के रक्तस्राव में, और घावों में इसका पिचु रखने से शूल, रक्तस्राव, पूय निवारण हो जाता है। कर, पाद, दाह और एड़ी के शूल में भी लगाना चाहिए। कभी कभी पिण्डलियों पर मांस-पेशियां चढ़ जाती हैं जिससे शूल हो जाता है। उन पर इसका मर्दन करना चाहिए

—वैद्य श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव
अरौल (कानपुर)

त्रिफलाद्य तैल

डा० राजेन्द्रप्रकाश भटनागर एम. ए., पी-एच. डी, एच. पी. ए.

इस नाम वाले दो पाठ भैषज्य रत्नावली में मिलते हैं। दोनों ही पाठ भिन्न-भिन्न रोगाधिकार के हैं। एक योग 'मेदोरोग चिकित्सा प्रकरण' में और दूसरा योग 'क्षुद्ररोग चिकित्सा प्रकरण' में आया है।

त्रिफलाद्यं तैल

अधिकार—मेदोरोग चिकित्सा।

त्रिफलातिविषा मूर्वात्रिवृच्चित्रक वासकैः।
निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः॥
गुडूचीन्द्रसुरी कृष्णा कुष्ठसर्षपनागरैः।
तैलमेभिः समैः पक्वं सुरसादिरसाप्लुतम्॥
पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यवस्तिषु योजितम्।
स्थूलतालस्यपाण्ड्वादीन् जयेत्कफकृतान् गदान्॥

—भै. र. ३९/४७-४९

घटक—स्नेह—तिल तैल १ भाग।

द्रव—सुरसादिगण (सुश्रुतोक्त) का क्वाथ ४ भाग।

सुरसादिगणो यथा—सुरसाश्वेतसुरसा फणिज्झकार्जक भूस्तृण सुगन्धिकसुमुखकालिमालिकासमर्दक्षवकखरपुष्पा-विडङ्ग कट्फल सुरसीनिर्गुण्डीकुलहलोन्दुरकर्णिकाफञ्जी-प्राचीवलकाकाच्यो विषमुष्टिश्चेति।

—सु० सू० अ० ३८

सुरसादिगण—सुरसा (काली तुलसी), सफेद तुलसी, फणिज्झक (मरुवक), अर्जक (वर्वरिका), रोहिषघास, सुगन्धक (द्रोणपुष्पी), सुमुख (राई), कालमालिका (कृष्णार्जक), कसौंदी, नकछिकनी, खरपुष्पा (वनवर्वरिका), वायविडङ्ग, कायफल, सुरसी (कपित्थपत्रा तुलसी या निर्गुण्डी), निर्गुण्डी, कुलाहल (मुण्डिका), उन्दुरुकर्णिका (मूसाकानी), फञ्जी (भारंगी), प्राचीवल (काकजंघा), मकोय, विषमुष्टि (कुचला)

कल्क—हरड़, बहेड़ा, आँवला, अतीस, मूर्वा, निशोथ, चित्रक, अडूसा, निम्बपत्र, अमलतास, वच, सतवन, हल्दी, दारुहल्दी, गिलोय, इन्द्रसुरी (गोरक्षकर्कटी या निर्गुण्डी), पीपली, कूठ, सरसों, सोंठ—ये २० द्रव्य प्रत्येक समभाग। मिलित कल्क १/४ भाग होवे।

निर्माण विधि—स्नेह, द्रव, कल्क को एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक मंदाग्नि से पाक करना चाहिए।

प्रयोग विधि—पान, अभ्यङ्ग, गण्डूष, नस्य, वस्ति में प्रयोग करें।

उपयोग—

स्थूलता, आलस्य, कण्डू और कफ के सब रोगों को दूर करता है।

त्रिफलाद्य तैल

अधिकार—क्षुद्ररोग चिकित्सा।

शिर में होने वाली 'रूक्षिका' (खोरी) को मिटाने वाला।

त्रिफलाऽयोरजोयष्टिमार्कवोत्पलशारिवैः।
ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गाद् रूक्षिकां जयेत्॥

– भै० र० ६०/१२९

घटक—स्नेह—तिल तैल १ भाग।

द्रव—जल ४ भाग।

कल्क—हरड़, बहेड़ा, आंवला, लौह चूर्ण, भृङ्गराज, नील कमल, अनन्तमूल और सैंधानमक। सब समभाग मिलित कल्क १/४ भाग लेवें।

निर्माण विधि—स्नेह, द्रव, कल्क को एकत्र मिलाकर विधिवत् मंदाग्नि से पाक करें।

उपयोग—

इसे शिर में लगाने से रूक्षिका (खोरी) मिटती है। बालों को काला व लम्बा करता है। (अनुभूत)।

—डा० श्री राजेन्द्र प्रकाश भटनागर
एम. ए., पी-एच.डी., एच.पी.ए.
प्राध्यापक—राजकीय आयुर्वेद कालेज, उदयपुर (राज०)

हिंग्वादि तैल

मुख्य घटक—हींग, तुम्बरु[*] और सोंठ को सरसों के तैल में सिद्ध किया जाता है।

तौल—हींग, तुम्बरु, सोंठ प्रत्येक ५० ग्राम और सरसों का तैल ६०० ग्राम। मात्रा—१० बूंद।

गुणावगुण—यह तैल उष्ण वीर्य वाला, तीक्ष्ण, लघु, स्निग्ध गुण वाला होता है। इसमें वेदना स्थापन, जन्तुघ्न, शीत प्रशमन, शोथहर एवं वातहर गुण विशेष रहता है। यह मुख्यतः कर्णशूल नाशक होता है।

नोट—इस तैल को थोड़ा गर्म कर कुनकुना करके डालना शीघ्र शूल नाशक गुण को बढ़ा देता है।

घटकों के वानस्पतिक नाम निम्न हैं—

क्रमांक	नाम	वानस्पतिक नाम
१	हींग	Ferula Narthex
२	तुम्बरु	Zanthoxylum Alatum
३	सोंठ	Zingiber Officinale
४	सरसों का तैल	Brassica Alba

घटकों के रस गुण वीर्य विपाक प्रभाव का विवरण निम्न हैं—

नाम	रस	वीर्य	विपाक	गुण	कर्म
हींग	कटु	उष्ण	कटु	लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण	वेदनास्थापन, शूलप्रशमन, वातहर
तुम्बरु	कटुतिक्त	उष्ण	कटु	लघु रूक्ष, स्निग्ध	जन्तुघ्न, कोथप्रशमन
सोंठ	कटु	उष्ण	मधुर	लघु, स्निग्ध	शीतप्रशमन, शोथहर, वेदनास्थापन
सरसों का तैल	कटुतिक्त	उष्ण	कटु	तीक्ष्ण, स्निग्ध	जन्तुघ्न, वेदनास्थापन, स्नेहन

वैज्ञानिक शोध—तुम्बरु में एक सुगन्धित तैल यूकेलिप्टस के तैल के समान होता है। इसमें तारपीन का तैल भी होता है। संभवतः इसी कारण से यह तैल अत्यन्त प्रभावशाली रहता है।

ज्ञात गुण धर्म—यह तैल वेदना हरण करने वाला, शूलनाशक, सूजन को नष्ट करने वाला, शीत प्रशमन करने वाला और जन्तुघ्न तथा स्नेहन करने में शीघ्र गुणकारी है।

उपयोगिता—कर्णशूल में मुख्यतया जब कर्ण शोथ न हो, रह रहकर कान चिलिक मारता हो अर्थात् कान में दर्द होता हो इसको गर्मकर सुहाता-सुहाता कान में डालने से तुरन्त आराम आता है। इस योग में सोंठ, तुम्बरु और सरसों हींग आदि सभी उष्ण वीर्य द्रव्य हैं। इसी गुण की उपयोगिता को ध्यान में रखकर शास्त्रकारों ने इस योग की आयोजना की है। हींग सरसों तीक्ष्ण होने से शीघ्र गुणकारी है। स्निग्धता शूल प्रशमन एवं वेदना स्थापन भी इसमें महत्वपूर्ण योग प्रदान करते हैं और अपने गुणयुक्त द्रव्यों का यथेष्ट प्रतिनिधित्व कर योग को प्रभावशाली बनाते हैं। यह हिंग्वादि तैल मेरे स्वतः के द्वारा स्वानुभूत है। इस योग को अकेले ही प्रयोग किया गया है। इसके साथ खाने आदि हेतु कोई औषधि नहीं दी गई। इस तैल का १०० कर्णशूल के रोगियों पर पांच दिन तक प्रयोग किया गया है। परिणाम नीचे वाली तालिका में प्रदर्शित है।—

कर्णशूल कारण	कुल रोगी	मात्रा	प्रयोग काल	पूर्ण लाभ	अल्प लाभ
पानी भरना	३०	१० बूंद	५ दिन	२५	५
शीत से	२५	,,	,,	२२	३
अचानक	२५	,,	,,	१९	६
चोट से	२०	,,	,,	१५	५

अपथ्य—खट्टी वस्तु, शीत एवं वात वर्द्धक पदार्थों का सेवन।

पथ्य—गर्म भोजन, दलिया, गर्म दूध, रोटी, गर्म चाय आदि का सेवन लाभकर है।

— वैद्य श्री सिद्ध गोपाल शुक्ल 'पुरोहित'
शासकीय आयुर्वेदिक औषधालय,
रामगढ़ (दमोह) म०प्र०

[*] तुम्बरु नेपाली धनियां को कहते हैं। इनके बीजों को ही तोमड़ के बीज भी कहते हैं। यह अधिकतर दन्त पीड़ा, दन्त मंजनों में उपयोग किया जाता है।
—विशेष सम्पादक
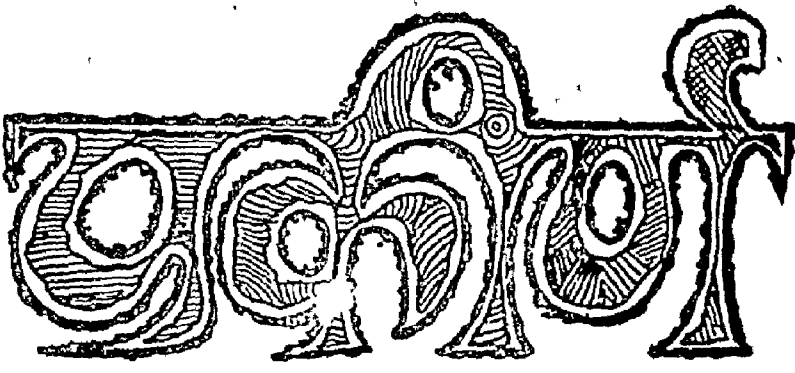
मेरे चिकित्सालय के पांच उपयोगी तैल

वैद्य श्री मनमोहन विहार आयु० रत्न

ग्रन्थ का नाम—रस रत्न समुच्चय।

ओस का अधिक सेवन करना, जल क्रीड़ा, कान का खुजलाना आघात आदि कारणों से कर्ण रोग उत्पन्न होते हैं विविध योगों के द्वारा कर्ण रोगों की चिकित्सा कर रोगी को रोगमुक्त किया जा सकता है योग निम्न प्रकार से हैं—

१. कर्णामयघ्न तैल—कूठ, सोंठ, बचा, हींग, सौंफ, सहजन की छाल का चूर्ण और सैन्धव लवण इन सबको समभाग लेकर जल के साथ पत्थर पर पीसकर कल्क बना लेवें, फिर कल्क से चौगुना तैल एवं तैल से चौगुना बकरा मूत्र लेकर कड़ाही में डाल देवें। तत्पश्चात् कड़ाही को चूल्हे पर चढ़ा कर मंद मंद अग्नि द्वारा पाक करें, जब समस्त कल्क एवं मूत्र का जलीयांश नष्ट हो जाय, तैल मात्र शेष रह जाय तब कड़ाही को चूल्हे से उतार लेवें। जब तेल ठण्डा हो जाय तो छान कर शीशी में भर देवें। इस तैल को कानों में टपकाने से सब कर्ण रोग नष्ट होते हैं।

२. कृमि कर्णारि तैल—समुद्रफेन, वच का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण, सेन्धव लवण इन सबको समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर कल्क बना लेवें। बाद में कल्क से चौगुना तैल एवं तैल के बराबर अदरख का स्वरस लेकर छान लेवें एवम् उपरोक्त चारों द्रव्यों को तीन-तीन माशे का महीन चूर्ण मिलाकर शीशी में भर लेवें। इस तैल की तीन चार बूंदें प्रतिदिन डालने से समस्त कर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। अगर कर्ण में कुत्ता, गाय, बैल की मक्षिका या अन्य जन्तु घुस गया हो तो इस तेल के डालने से वह बाहर निकल आता है।

३. छिन्न तेल—इस तैल को बालकों के शरीर पर प्रतिदिन मालिश करने से सब प्रकार की ग्रह पीड़ा शान्त होती है। इस प्रकार के इस गुणकारी तेल को बनाने की विधि निम्न प्रकार से है—

गिलोय, तुलसी, संसपरी और आक के पत्र इन सबका स्वरस गाय के दुग्ध से चौगुना तथा गाय का दुग्ध तेल से चौगुना, इन सबको (स्वरस, दुग्ध, तेल) लोहे की कड़ाही में मन्द अग्नि से पाक करें जब पकते-पकते तेल मात्र शेष रह जाय तब कड़ाही को नीचे उतार कर तेल को छानकर शीशी में भर लेवें। इस विधि से निर्मित तेल को बालकों के शरीर में प्रतिदिन मालिश करने से सब ग्रह पीड़ा शान्त हो जाती है।

४. निर्गुण्डकादि तेल—निर्गुण्डी के पत्ते तथा जड़, धत्तूरे की जड़ और कड़वी तुम्बी इनका स्वरस तेल से चौगुना लेकर उससे तेल पाक करें। जब कड़ाही में गर्म होते होते तेल मात्र शेष रह जाय तब उसे छान कर शीतल करके शीशी में भर लेना चाहिये।

उपयोग—इस विधि से निर्मित तेल से उन्माद रोगी के शरीर पर मालिश करनी चाहिए। इस प्रकार आधे माह तक मालिश करने से उन्माद रोग नष्ट हो जाता हैं। उन्माद का रोगी प्रलाप करता है, इधर उधर दौड़ता है लकड़ी पत्थर से दूसरों को मारता है।

५. गन्धपिष्टी तेल—गन्धक को खरल में घोंटकर पिष्टी बनाकर चौगुने कटु तेल में मिलाकर सूर्य की तीव्र धूप में रख देवें। जब वह तेल सूर्य की प्रखर गर्मी से गर्म हो जाय तब शीतल होने पर उसे शीशी में भर लेवें। इस तेल को शरीर पर लगाने से पामा, कुष्ठ दूर होते हैं।

—वैद्य श्री मनमोहन विहार आयुर्वेद रत्न
श्री नर्मदा विद्या मन्दिर,
खिड़िया, पो० भटगांव (होशंगाबाद)

× × ×

क्षवथु नाशनो योग

ग्रंथ संदर्भ—चक्रदत्त, भै०र० नासारोग।

शुण्ठी कुष्ठ कणाविल्व, द्राक्षा कल्क कषायवत्।
साधितं तैलमाज्यंणुवा, नस्यं क्षव पुट प्रलुत्।।

अर्थात्—सौंठ, कूठ, पीपल छोटी, विल्व छाल और मुनक्का ये प्रत्येक ५ तोला। इनको पीस कल्क बना लें और इन्हीं द्रव्यों का क्वाथ १ सेर लेवें। तिल तैल एक पाव (२० तोला) लेकर तैल सिद्ध करलें। इस तैल की नस्य दें या नासापुट में डालें तो जिन्हें विशेष छींकें आती हैं, छींकें आना वन्द होंगी।

वायु कफ की विकृति से प्रतिश्याय व पीनस होता है। कुपित वायु नासा में चारों ओर मार्ग में स्थिर होकर, सिर में भ्रमों को कर छींक को उत्पन्न करती है। अर्थात् नासागत श्लेष्म कला में प्रक्षोभ की उत्पत्ति होने से छींक आती हैं। इस क्षोभ में वायु की ही विशेषता होती हैं। उसे नष्ट करने के लिए उक्त तैल उत्तम है।

—वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त, वी. आई. एम.
८/६८ नीलवाली गली, कानपुर–६

× × ×

विल्व तैल पर प्रयोग

तिल तैल ४ सेर, गोमूत्र से पिसी हुई वेलगिरी एक सेर (कल्क), वकरी का दूध १६ सेर। इन सबको तैल पाक विधि से पका लें। इस तैल को कान में डालने से कान का दर्द, वहरापन, कर्ण-व्रण आदि रोग अच्छे होते हैं।

वातहर तैल का योग

आक के पत्तों का रस, धतूरे के पत्तों का रस, अरहर के पत्तों का रस, सहड़ के पत्तों का रस, तिल तैल प्रत्येक १-१ पाव। संखिया ६ माशे (मल संखिया) इन सबका तैल सिद्ध करे वाद में छानकर रखें।

नोट—तैल को मन्दी-मन्दी आंच से पकाये।

जहां दर्द हो उस जगह इस तैल की मालिश करें। तैल लगाने के वाद हाथों को गोवर से मलकर या सावुन से साफ करे क्योंकितैल में संखिया है। प्रसूत का दर्द, सर्व वात रोग, वाय तथा शरीर में कहीं भी दर्द क्यों न हो इस तैल से दूर हो जाता है।

—राजवैद्य श्री लक्ष्मणदत्त कौशिक
श्री कृष्ण आयु० चिकित्सालय,
जहाँगीरावाद (वुलन्दशहर)

× × ×

स्वानुभूत प्रचलित ग्रामीण प्रयोग

गाँवों में वृद्धों द्वारा निम्न प्रयोग काफी लाभप्रद वताये गये। ये चोट, मोच, सूजन, फोड़े आदि पर अत्यन्त लाभकारी हैं। मैंने उन्हें अपने प्रयोग में लाकर अनेकों वार अजमाया है। इनके घटक सरलता से सर्वत्र उपलब्ध हो जाते हैं। इनकी सद्यः लाभ प्रदान करने की शक्ति के कारण ही इनका ग्रामीण परम्परा में व्यवहार हुआ है।

१. राख तैल—कंडे की राख को छानकर उसमें खाने वाला तैल मिलाते हैं तथा छोटी रोटी सी वनाकर उसको फोड़े को पकाने एवं फोड़ने हेतु लगाते हैं। इसके प्रयोग से फोड़ा जल्द पक जाता है तथा पीव सरलता से निकल कर घाव भर जाता है।

२. हल्दी चूना—इसका प्रयोग मुख्यतः अचानक चोट, मोच, मुदीमार आदि में किया जाता है। हल्दी और चूना को मिलाकर लेप किया जाता है। हल्दी और चूना मिलाने से गर्मी उत्पन्न होती है। यह रासायनिक क्रिया के कारण होती है। इसके कारण खून आवागमन उस स्थान पर तेजी से होने लगता है और सूजन या गुल्म मिट जाता है ग्रामीण वोली में इसी को खून का फाड़ना कहा जाता है।

३. प्याज सेंक—इसमें प्याज को कूटकर उसमें थोड़ी अजवायन और घी मिलाकर सेकते हैं। जव वह पक जाय (लाल हो जाय) तव उसको एक कपड़े में रख पोटली वना कर चोट को सेंकने से मार आदि की चोट का दर्द मिट जाता है।

—राजवैद्य श्री सिद्धगोपाल शुक्ल पुरोहित
संयोजक—राजपत्रित आयुर्वेद चिकित्सक संघ,
पो० रामगढ़ (दमोह) म० प्र०

चूर्णमानीयतां तूर्णं पूर्णचन्द्र निभानने ?

निरुक्ति—

प्राचीन आयुर्वेद के मनीषियों ने स्वस्थ, आतुर, प्राणि जीवन व्यापार संरक्षण के निमित्त हेतु लिङ्गौषध रूप स्कन्धत्रय विशिष्ट वाङ्मय की सृष्टि कर मानव को आरोग्य प्रदान किया था।

१. विकार हेतु ज्ञानात्मक प्रथम स्कन्ध। २. विकार लिगज्ञानोपदेशात्मक द्वितीय स्कन्ध। ३. औषध ज्ञानोपदेशात्मक तृतीय स्कन्ध। इस प्रकार विकार हेतु और औषध द्रव्य गुणों की एकता का अनुभव आवश्यक हो जाता है, क्योंकि औषध द्रव्यों का असम्यग् प्रयोग ही विकार हेतु बनता है और सम्यक् प्रयोग विकार प्रशमकारक होता है। चिकित्सा सदा ही आवस्थिक क्रमानुसारिणी होती है और अवस्था प्रत्यातुर में भिन्न-भिन्न रूपानुसार परिलक्षित होती है क्योंकि असमान प्रकृति, आहार, देह, बल, सात्म्य, सत्वादि के कारण। अतएव आचार्य वाग्भट्ट कहते हैं कि—

दूष्यं देशं बलं कालं अनलं प्रकृतिं वयः।
सत्वं सात्म्यं तथाहारमवस्थाश्चपृथग्विधाः॥
सूक्ष्म सूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषध निरूपणे।
वर्तते यश्चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित्॥

मानव रोग निराकरण हेतु प्रयुक्त औषध के अनेक रूप हैं उन्हीं में एक रूप चूर्ण स्वरूप होता है।

चूर्ण धातु घञ् प्रत्यय होने पर व्याकरण के अनुसार 'चूर्ण्यते-सम्पिष्यते इति चूर्णः।' जो भली प्रकार से पीसकर तैयार किया जाता है वह चूर्ण कहाता है। आचार्य शार्ङ्गधर ने लिखा है कि—

अत्यन्त शुष्कं यद् द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्र गालितम्।
तद् स्यात् चूर्णं रजः क्षोदः तन्मात्रा कर्षसंमिता॥

अर्थात्—अत्यन्त शुष्क द्रव्य को पीसकर कपड़े में छान लिया जाय तो उसको चूर्ण कहते हैं। उसी को रज तथा क्षोद नाम से भी कहते हैं। उसकी मात्रा (उस काल में) १ कर्ष की थी। चूर्णों का प्रायः प्रत्येक रोग में व्यवहार होता है।

इसीलिए एक बार एक रोगाक्रान्त व्यक्ति के आगमन पर वैद्य जी ने कहा था कि—"चूर्णमानीयतां तूर्णं पूर्ण चन्द्र निभानने।" हे पूर्ण चन्द्र के समान मुखवाली प्रिये शीघ्र ही चूर्ण लाओ जिससे रोगी का रोग शमन हो। चूर्ण चिकित्सा आशुफलदायी चिकित्सा पद्धति है क्योंकि पाँचभौतिक मानव के दुख दूरीकरण के लिए पाँचभौतिक गुण विशिष्ट होने के कारण तुरन्त फलदायी होती हैं। इसीलिए वेद में भगवान् स्वयं कहते हैं कि—

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नोमुञ्चन्त्वहंसः॥ —यजुः

चूर्णों का प्रयोग वर्तमान में होता है पर कम क्योंकि रोगों की जटिलता के कारण रसायन पद्धति का प्रचुर प्रचार हो चला है किन्तु यदि सावधानीपूर्वक दीर्घकालिक रोगों में भी चूर्णों का प्रयोग किया जाय तो वैद्य वर्ग निश्चय ही सफलता प्राप्त कर सकता है।

—आचार्य श्री वेदव्रत शर्मा शास्त्री
कासगंज (एटा) उ० प्र०

अजमोदादि वटक व चूर्ण

वैद्य श्री पं० रामेश्वर दयाल शर्मा

ग्रंथ संदर्भ—शार्ङ्गधर, भैषज्य रत्नावली प्रभृति पुस्तकों में आमवात रोगाधिकार

घटक— अजमोद या (अजवाइन), कालीमिर्च, छोटी पीपल, वायविडंग, देवदारु, चित्रक की जड़, सौंफ, सैंधा नमक और पीपलामूल उक्त नौ द्रव्य ५०-५० ग्राम लेवें। विधारा ५०० ग्राम, सोंठ ५०० ग्राम, उत्तम हरड़ छाल २५० ग्राम लेकर कूट पीस सूक्ष्म चूर्णकर इसमें सबके समान भाग पुराना गुड़ मिलाकर खूब कुटाई कर छोटी-छोटी गोलियां बना लेवें। एक मात्रा ३ माशे से १ तोला तक उष्ण जल से देवें।

गुण—

आमवात या आमवात से उत्पन्न रोगों में यह वटक उत्तम लाभप्रद है। विसूचिका, प्रतितूनी, हृद्रोग, गृध्रसी, कटिप्रदेश, वस्तिप्रदेश और गुद स्थान में वातज स्फुटन, अस्थि और जङ्घागत वात विकार, सर्वांग और संधिप्रदेश में उत्पन्न शोथ और शेष सर्व प्रकार के आमवात के कारण उत्पन्न हुए कष्टसाध्य उपद्रवों, को यह अजमोदादि वटक विनष्ट करता है।

आज का वैद्य (चिकित्सक वर्ग) आमवात रोग की चिकित्सा में इधर उधर भटकता फिरता है। उसे यह नहीं मालूम कि यह अद्वितीय योग कितना लाभप्रद उनकी प्राचीन पुस्तकों में पहले से ही लिखा हुआ है। इसके सेवन से आम का तो पाचन होता ही है, वायु का शमन होता है, सूजन दूर हो जाती है। पाचनशक्ति बढ़ जाती है। पेट में जो अपक्व रस होता है उसका सम्यक् पाचन होता है।

नोट—इसमें गुड न मिलाकर चूर्ण रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है। यह चूर्ण अजमोदादि चूर्ण के नाम से सुप्रसिद्ध है। आरम्भ में इस योग में अजमोद है। इसके स्थान पर कई वैद्य इस वटक का सेवन यदि रसोनादि क्वाथ या रास्ना पंचक क्वाथ या रास्नासप्तक के साथ अथवा रास्नादि दशमूल क्वाथ के साथ सेवन कराया जाय तो शीघ्र लाभ होता है। इनके योग इस प्रकार हैं—
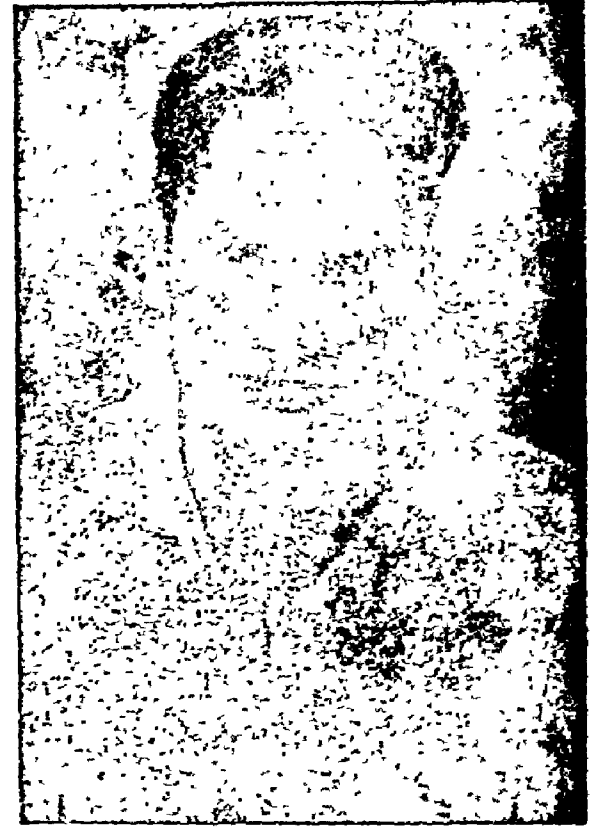
रसोनादि क्वाथ—लहसुन की गिरी, सोंठ, निर्गुण्डी की जड़, इनका जौकुट चूर्ण करें। मात्रा २ तोला, जल ३२ तोला लेकर चतुर्थांश क्वाथ कर लें।

रास्नापंचक क्वाथ—रास्ना, गुर्च, एरंड जड़, देवदारु, और सोंठ लेकर उक्त विधि से क्वाथ करें।

रास्ना सप्तक—रास्ना, गुरुच, अमलतास का गूदा, देवदारु, गोखरू, एरण्ड की जड़ और पुनर्नवा। उक्त विधि से।

रास्नादि दशमूलम्— दशमूल के १० द्रव्य, गुर्च, एरण्ड जड़, रास्ना, सोंठ, दारुहल्दी। उक्त विधि से।

इसी प्रकार आमवातनाशक दूसरे क्वाथों का भी उपयोग किया जा सकता है।

यदि इन क्वाथों में एरण्ड तेल मिलाकर (मात्रानुसार) सेवन किया जाय तो विशेष लाभ होता है।

आमवात गजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः।
निहन्त्यमावेक एव एरण्ड स्नेह केशरी॥ —भै. र.

साथ ही शास्त्रोक्त आमवात रोग में पथ्यापथ्य का भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

—वैद्य श्री पं० रामेश्वर दयाल शर्मा,
निर्मल आयुर्वेद संस्थान, अलीगढ़।

अर्जुनत्वक् चूर्ण

प्रायः प्रत्येक वैद्य अर्जुन से परिचित है। यह एक वृक्ष के रूप में होता है। इसकी बाहर की त्वचा चिकनी और सफेदी लिए होती है, भीतर की त्वचा लाल मोटी और नर्म होती है। इसका फल कमरख जैसा होता है।

महर्षि चरक ने सूत्र स्थान के चतुर्थ अध्याय में— तिन्दुक, पियाल, वदर, खदिर, कदर, सप्तपर्ण, अश्वकर्ण, "अर्जुन," असन, इरिमेद \को उदर्द प्रशमन गण में लिखा है। और भावप्रकाशकार नें शीत, हृदय को हितकारी, क्षतक्षय, विष, रक्तजित्, मेद, मेह. व्रण को दूर वाला कथन किया है। चरक ने रक्तपित्त में व्रणाच्छादनार्थ, अर्श में परिषेचन हेतु, कुष्ठ में स्नान पानार्थ इसका उल्लेख किया है।

सुश्रुतकार ने—रक्तपित्त, शुक्रमेह में इसका प्रयोग प्रकाशित किया है।

आचार्य वाग्भट ने–मूढ़ गर्भ में, व्यंग रोग में इसका उल्लेख किया है।

आचार्य वृन्द ने—

अर्जुनस्यत्वचासिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये।

उल्लेख कर भग्न सन्धानार्थ भी एवं इसकी अतिसार निरोधकता का भी वर्णन किया है। उन्होंने उदावर्त में इसे अच्छा कहा है।

चक्रदत्तकार ने—वल संचय के लिए एवं हृद्रोग पर इसको लिखा है।

भावमिश्र जी ने—मूत्ररोधज उदावर्त पर इसको लिखा है।

आचार्य शोढल ने—तैल, घृत, गुड़ और गोधूम और अर्जुन चूर्ण का हलुआ वनाकर दुग्ध के साथ सेवन का विधान कर समस्त हृदयामयों का नाशक कहा है।

वास्तव में इससे रक्त वाहिनियों का संकोचन होता है। इससे हृदय की क्रिया में सुधार होता है। रक्त वाहिनियों पर बहुत कुछ हृदय की क्रिया अवलम्बित है। यदि रक्त वाहिनियों का ठीक-ठीक संकोच न हो तो हृदय कदापि कार्यक्षम नहीं रह सकता है।

मेरा अनुभव—

दिनांक ३-८-७७ में श्री कामता प्रसाद जी पिलखतरा निवासी मेरे यहाँ चिकित्सा हेतु आये। उनकी शिकायतें थीं, नींद न आना, हर समय हृदय में भय का रहना, शरीर का सुन्न पड़ जाना, डकारें आना, हृदय के फेल हो जाने की आशंका, भूख न लगना, शौच का शुद्ध न होना आदि। यह ठेकेदार थे। प्रायः आस पास की सभी चिकित्सा पद्धतियों के उपरान्त आगरा चिकित्सा करा कर हताश हो चुके थे। मैंने—

व्यायाम तीक्ष्णाति विरेकवस्ति चिन्ता भयत्रास मदातिचाराः। छर्द्यामसंधारणकर्षणानि हृद्रोग कर्तृणि—

विचारकर—**हृच्छून्य भावद्रव शोष मेदस्तम्भाः समोहाः।** समझकर—

उस समय महावात विध्वंसन रस, आरोग्यदा, कृमिघातिनी का प्रयोग किया और रात्रि को दूध में अर्जुन त्वक सिद्ध कर दुग्धपान कराया। उत्तरोत्तर लाभ होता गया। अन्त में सभी औषधियां वन्दकर केवल अर्जुन सिद्ध दुग्ध ही बता दिया। परिणामस्वरूप जहाँ अर्जुन सिद्ध दुग्ध से लाभ हुआ वहाँ उसके शीतवीर्य के कारण विष्टम्भ बढ़ा, शरीर में हल्की वातवृद्धि भी हुई। अतः इसके साथ मुनक्का, कटेरी का योग किया। इस प्रकार [illegible]र्जुन अधिक शीत वीर्य है। केवल वातज हृद्रोगों म इसका दुग्ध या घृत के साथ ही प्रयोग करना चाहिए।

निर्माण विधि—

स्वच्छ ताजी अर्जुन की छाल को सुखाकर उसका कपड़छन चूर्णकर रख लेना चाहिए।

मात्रा—७ ग्राम से १० ग्राम तक।

अनुपान—दुग्ध से प्रातः सायँ।

विशेष—शीत ऋतु में इसका अल्पमात्रा में प्रयोग करना चाहिए या आचार्य शोढल के अनुसार हलुआ वना कर प्रयोग करें। यह विशेष लाभदायक रहता है।

—आचार्य श्री वेदव्रत शर्मा शास्त्री
कासगंज (एटा) उ० प्र०

श्री वैद्य मोहर सिंह आर्य

अपस्मारहर योग

ग्रन्थ निर्देश—भैषज्य रत्नावली, अधिकार–अपस्मार।

घटक	तोल	विशिष्ट गुणः
बच	१० ग्रा.	रस—तिक्त-कटु। वीर्य–उष्ण। विपाक–कटु। दोषशमन-वात। गुण—वामक, विरेचन, लेखन, अर्शोघ्न, तृप्तिघ्न, आस्थापनोपग, शीतशमन, सज्ञा-स्थापन, मेध्य, कण्ठ्य, स्वर्य, आमपाचन, दीपन, मल मूत्र विशोधन, उन्माद, अपस्मार नाशक है।

स्वच्छ एवं पुष्ट कृमि रहित नवीन बच लेकर सूक्ष्म श्लक्ष्ण वस्त्रपूत चूर्ण कर लें।

मात्रा—शक्त्यनुसार ५०० मि. ग्राम से १ ग्राम तक। अनुपान —मधु।

गुण—इससे जीर्ण अपस्मार भी दूर हो जाता है।

विशिष्ट अनुभव—

मधु के साथ मिलाकर बच का चूर्ण देने से किसी-किसी व्यक्ति को वमन हो जाता है। अतः आयुर्वेदिक निबन्धमालाकार के अनुसार मधु मिलाकर मटर सदृश गोलियाँ बना लें। हमारा अनुभव है इसके चूर्ण को कैपसूल में भर दिया जाय तो विशेष सुविधा रहती है।

हम बच के चूर्ण को गधी के दूध में २१ भावना दे कैपसूल में भरकर रखते है। अनुपान में खरमूत्र देते हैं। जैसा कि चरक ने कहा है–**'खरमूत्रमपस्मारोन्मादग्रहविनाशनम्।'** अर्थात् गर्दभी का मूत्र पीने से अपस्मार, उन्माद तथा बालकों का स्कन्दापस्मार रोग निवृत्त होता है। यह शतशः प्रत्यक्ष अनुभूत हैं। खरमूत्र की मात्रा ३० मि.लि. है। एक मात्रा प्रातःकाल तथा दूसरी मात्रा सायंकाल दें। यह स्मरण रहे कि मूत्र ताजा हो।

घटना १९५४ ई० की है। एक पुलिस कर्मचारी को अपस्मार के दौरे पड़ने लग गए। वहाँ पर्याप्त उपचार हुआ परन्तु रोग नष्ट नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा अस्पताल से ३ मास का अवकाश देकर भेज दिया। रोगी को दिन में २-२ तीन-तीन दौरे पड़ने लगे। एक दिन रोगी के पिता हमारे पास आए और सब वृतान्त बताया। रोगी निर्धन किसान का बेटा था, इसलिए हमने १४ कवच दे दिये और अनुपान खरमूत्र बताया। पुराने चावल तथा यव की रोटी, मूंग की दाल, गोदुग्ध, गोघृत खाने के लिए बताए। जीरा, धनिया, इलायची बड़ी तथा ताजे पानी का निर्देश दिया। ब्रह्मचर्य का पालन बताया। ७वें दिन रोगी के पिता हमारे पास आया और गद्‌गद् वाणी में कहा 'वैद्य जी' मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि मेरा लड़का ठीक हो जाएगा। तीसरे दिन ही मृगी के दौरे बन्द हो गये और आज तक कोई दौरा नहीं आया है। एक मास की दवा दे दी।

सर्वप्रथम कूष्माण्ड का स्वरस एक लिटर पिलायें। इससे दस्त साफ होता है और निद्रा आ जाती है। दूसरे दिन शिरोविरेचन दें। शिरोविरेचनार्थ जीमूतक फल दो को अर्धकुटा करके रात्रि को २० मि.लि. जल में भिगो, बाहर ओस में रख दें। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व हाथ से मसल वस्त्र से छानकर ५-१० बिन्दु नाक में टपकाने से दिन भर नासिका से पीला पानी टपकता रहता है। इससे शिरोगत सभी दोष निकल जाते है। रोगी को निद्रा आ जाती है। जब निद्रा से रोगी उठता है तो गले में पीड़ा बतलाता है। नस्य के दो दिन पश्चात् तक रोगी को लवण, मरिच तथा अम्ल पदार्थ न दें। इसके पश्चात् को 'वचा चूर्ण' सारस्वतारिष्ट के साथ दें।

विधि—दूधिया बच २० ग्राम ले सूक्ष्म श्लक्ष्ण वस्त्र-पूत चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को ब्राह्मी स्वरस में ७ दिन, शंखपुष्पी स्वरस में ७ दिन, श्वेत कूष्माण्ड स्वरस में ७ दिन, जटामांसी क्वाथ तथा कूठ के क्वाथ में ७-७ दिन खरल कर रख लें। मात्रा -१ ग्राम से ३ ग्राम तक। अनुपान—सारस्वतारिष्ट।

वचा चूर्ण को अल्प बल युक्त तत्कालोत्पन्न अपस्मार में १॥-१॥ ग्राम की मात्रा में दिन में चार बार ४-४ घण्टे के अन्तर से मधु मिलाकर चटा दें, ऊपर से सारस्वतारिष्ट पिला दें। बालापस्मार में चौथाई मात्रा देनी चाहिए। इस चूर्ण में वैद्यराज श्री गुगनराम यादव तथा श्री मंगल चन्द बच्चों के लिए प्रति मात्रा रस सिंदूर १ चावल भर मिलाते हैं।

—वैद्य श्री मोहर सिंह आर्य आयु. वृह.
मिसरी (भिवानी) हरियाणा

औषधि का नाम—अविपत्तिकर चूर्ण ।

ग्रन्थ का नाम—भैषज्य रत्नावली ।

रोग का अधिकार—अम्लपित्ताधिकार ।

घटक	घटक द्रव्य	शास्त्रीय तोल	वर्तमान तोल
१	सौंठ	१ तोला	१० ग्राम
२	पीपल	१ ,,	१० ,,
३	काली मिर्च	१ ,,	१० ,,
४	हरड़	१ ,,	१० ,,
५	बहेड़ा	१ ,,	१० ,,
६	आंवला	१ ,,	१० ,,
७	नागरमोथा	१ ,,	१० ,,
८	विड् नमक	१ ,,	१० ,,
९	वायविडंग	१ ,,	१० ,,
१०	छोटी इलायची	१ ,,	१० ,,
११	तेजपत्र	१ ,,	१० ,,
१२	लौंग	११ ,,	११० ,,
१३	निशोथमूल चूर्ण	४४ ,,	४४० ,,
१४	मिश्री	६६ ,,	६६० ,

मन्तव्य—(१) निसोथ मूल चूर्ण ही व्यवहृत होता है ।

(२) मिश्री के स्थान में दानेदार चीनी भी ली जा सकती है ।

(३) विड्नमक (काला नमक) के स्थान में नौसादर का प्रयोग भी उत्तम है ।

निर्माण-प्रक्रिया—सब औषधियों को कूट कपड़छन कर चूर्ण बनाकर सुरक्षित रखें ।

द्रष्टव्य—विड्नमक और मिश्री को छोड़कर शेष काष्ठौषधियों को अलग-अलग कूट—कपड़छन कर निर्दिष्ट परिमाणानुसार लेकर विड्नमक का चूर्ण मिला लें। तत्पश्चात् मिश्री या चीनी मिलाकर 'मर्दनं गुणवर्द्धनं' के अनुसार खूब मर्दन कर महीन कर लेने से चूर्ण के गुणों में अत्यधिक वृद्धि होती है । चीनी मिलाकर मर्दन करने से काष्ठौषधियां अपने सूक्ष्म कणों में विकीर्ण होती हैं और चीनी उनके क्रियाशील सूक्ष्म तत्वों को अपने में आत्मसात् कर उनके गुणों को सुरक्षित रखती है ।

शास्त्रीय दृष्टि से गुण प्रभाव—यह चूर्ण जठराग्नि प्रदीपक, पित्तशामक, मलबंध नाशक, मूत्र सारक, अम्ल-पित्त नाशक है ।

मात्रा—३ से ६ ग्राम तक ।

सेवनकाल—प्रातः सायं अथवा भोजनोत्तर काल एव रात को सोते समय ।

अनुपान—सामान्य अनुपान शीतल जल है। पित्त की अधिक विकृतावस्था में डाभ (कच्चा नारियल) के जल के साथ देने से पहली ही खुराक पेट की जलन एवं खट्टी डकारों को बन्द कर देती है। आमाशयिक व्रण (Peptic ulcer) की अवस्था में धारोष्ण दूध का अनुपान विशेष हितकर है।

संक्षिप्त द्रव्य गुण विवेचन

(क) सौंठ—रुचिकारक, पाचक, कटुरस युक्त, उष्ण वीर्य, स्निग्ध, कफवात नाशक, वृष्य, स्वर के लिए हितकारी, उत्तेजक सुगन्धित द्रव्य है। सोंठ में १-३ प्रतिशत उड़नशील तैल रहता है। जिंजरोल तथा शोगोल नामक कटु द्रव्य रहते हैं। उदरगत वायु के कारण होने वाले उदर शूल तथा हृदयशूल में लाभ होता है। पाचन क्रिया ठीक कर उदर में वायु का संचय नहीं होने देती तथा कफघ्न होने के कारण श्वास, कास, प्रतिश्याय और स्वरभंग आदि रोगों में भी उपयोगी है।

(ख) पीपल—अग्निदीपक, पाचक, वृष्य, उष्ण, वात हर, कफघ्न, रसायन है। आनाह, अपचन, अग्निमांद्य, उदरशूल, कास, श्वास, जीर्ण, प्रसूत ज्वर, आमवात गृध्रसी, कटिशूल में हितकर है।

(ग) कालीमिर्च—अग्निदीप, रुचिकर, स्वेदल, कृमिहर है। इसका उत्तेजक प्रभाव आन्त्र एवं मूत्र संस्थान की श्लेष्मल कला पर पड़ता है जिससे मूत्र की मात्रा बढ़ती है तथा आमाशयिक रस की वृद्धि होने से पाचन क्रिया सुधरती है तथा वायु का शमन होता है।

(घ) हरड़—हरड़ में मधुर तिक्त कषाय रस रहता है अतएव यह पित्तनाशक और कटु-तिक्त-कषाय रस होने से कफनाशक, अम्लरस होने से वायुनाशक-अतः त्रिदोष शामक दिव्य महौषधि है। निरापद श्रेष्ठ मृदु विरेचक, अग्निप्रदीपक रसायन है। पक्व हरीतकी में लगभग ३० प्रतिशत कसैला द्रव्य होता है जो चेब्यूलीनिक एसिड के कारण है। टैनिक ऐसिड २०-४० प्रतिशत, गैलिक एसिड, राल आदि द्रव्य हैं। शरीर की सभी क्रिया इसके सेवन से सुधरती हैं तथा किसी प्रकार की भी हानि नहीं होती है।

(ङ) बहेड़ा—मधुर विपाक वाला, कषाय रस युक्त, कफ व पित्त नाशक, उष्णवीर्य, मलभेदक, कासनाशक, कृमिहर, स्वरभेद दूर करने वाला है। इसके फल में १७ प्रतिशत टैनिक द्रव्य रहता है। इसकी मींगी में २५ प्रतिशत एक हलके पीले रङ्ग का तेल रहता है। इसके अतिरिक्त राल, सैपोनिन आदि द्रव्य रहते है। अर्द्ध पक्वफल और पूर्णपक्व या सूखा फल संकोचक माना जाता है।

(च) आँवला—अम्ल रस युक्त होने से वायु को तथा मधुर रस युक्त और शीतल होने से पित्त को तथा रूक्ष तथा कषाय रस युक्त होने से कफ को शमन करता है एतदर्थ त्रिदोषनाशक है। रासायनिक दृष्टि से इसके टैनिक में गैलिक एसिड, एलाइगिक एसिड और ग्लूकोज होता है। इसमें विटामिन 'सी" तथा पेक्टिन बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। विटामिन "सी" की मात्रा १०० ग्राम में ६१०-९२१ मि. ग्राम तक पाई जाती है। सूखे चूर्ण में भी विटामिन 'सी' पर्याप मात्रा में होता है क्योंकि इसके अन्दर का टैनिक 'सी' को नष्ट नहीं होने देता। आमला रसायन, वृष्य, रक्तपित्त को दूर करने वाला, शीतल, मृदु, विरेचन, मूत्रल, तथा यकृत ठीक करने वाला है। दीपन पाचक, ग्राही रक्तस्राव रोधक है।

(छ) नागरमोथा—शीतल, दीपक, पाचन, वातानुलोमन, ग्राही, स्वेदजनन, कफघ्न, भेदन, तृष्णानिग्रहण, स्तन्यजनन, कण्डूघ्न, मूत्रजनन गुणों से युक्त, उत्तेजक तथा जन्तुनाशक है। अरुचि, आमातिसार, वमन, कुपचन संग्रहणी, रक्तार्शनाशक है।

(ज) विड नमक—अग्नि दीपक, लघुपाकी, तीक्ष्ण और उष्ण वीर्य, रूक्ष, रुचिकारक, मुख मार्ग से कफ का एवं गुदामार्ग से वायु का अनुलोमन करने वाला है। रसायनिक दृष्टि से इसमें प्रधानतया ९५ प्रतिशत खाने का नमक तथा अत्यल्प मात्रा में खारी नमक (Sodium Sulphate) अल्यूमिना, मैंग्नेशिया, फेरिक आक्साइड एवं आयरन सल्फाइड आदि पदार्थ पाये जाते हैं। विरेचक एवं बल्य है।

(झ) वायविडंग—कटुरस युक्त, तीक्ष्ण और उष्णवीर्य है, उत्तम कृमिघ्न, वातानुलोमक, दीपन, पाचन, वातनाड़ी संस्थान के लिए बल्य, रक्तशोधन, अनुलोमन तथा रसायन है। रस ग्रन्थियों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। रासायनिक दृष्टि से इसके फलों में एम्बेलिक एसिड (Embelic acid) २.५ प्रतिशत पाया जाता है।

एम्बेलिक एसिड के कारण ही यह उत्तम कृमिघ्न है। अर्शोघ्न, शोथ प्रतिकारक, रसायन है।

(ञ) छोटी इलायची—दीपन, पाचन, रोचन, मूत्रल, वातानुलोमक, उत्तेजक एवं सुगन्धित है। अन्य सुगन्धित पदार्थों के साथ वातानुलोमक औषधियों में तथा विरेचक औषधियों के साथ मरोड़ न हो इसके लिए इसका प्रयोग किया जाता है। पाचन नलिका के शिथिलता प्रधान रोगों में तथा दाहयुक्त रोगों में इसका प्रयोग होता है। आम्लिक रस की उत्पत्ति कम होती हो तथा पित्त का उचित रूप से स्राव न होता हो तो छोटी इलायची का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है।

(ट) तेजपत्र—उष्ण, लघु, वातहर, दीपन, स्वेदजनन, मूत्रजनन तथा उत्तेजक है। मधुर रसयुक्त किञ्चित् तीक्ष्ण है, अरुचिनाशक है।

(ठ) लौंग—कटु तथा तिक्त रसयुक्त, पाचन, दीपन, वातानुलोमक उद्वेष्टन निरोधि, कफघ्नत, मूत्रजनन, रुचिकर, दुर्गन्धनाशक सुगन्धित, वृष्य, कृमिघ्न है।

(ड) निशोथ—रेचक, स्वादु, उष्णवीर्य, वातनाशक, तथा उदररोग नाशक है। सुख विरेचनों में श्रेष्ठ मानी है। ज्वर, रक्तपित्त, अर्श, विसर्प, वातरोग में इसका उपयोग गुणकारी है। रासायनिक दृष्टि से इसमें ५-१०% तक राल पाई जाती है जो उत्तम विरेचक है।

(ढ) मिश्री—सारक, लघु, शीतवीर्य, कफ पित्त-नाशक, वृष्य, दाह, तथा रक्तपित्तनाशक है। मिश्री पित्तशामक तो है ही साथ ही मिश्री में अन्य औषधियों की घुटाई होने से काष्ठौषधियाँ अपने सूक्ष्म अणुओं में विभक्त हो जाती हैं तथा मिश्री औषधियों के गुणों को अपने में सुरक्षित रखती है।

गुण और उपयोग—

अम्लपित्त रोग में इस महौषधि का प्रयोग अतीव लाभदायक है। पित्त के विकृत होने से वमन, खट्टी और जलती हुई वमन होने से कण्ठदाह, खट्टी डकारें, नेत्रों में जलन आदि अम्लपित्त के उपद्रवों में इस चूर्ण को ठण्डे पानी व नारियल जल से सेवन करने पर आमाशय का पित्त आंतों में चला जाता है जिससे उपद्रव शान्त हो जाते हैं तथा आंतों में पित्त का पाचन हो जाता है। पाचन संस्थान एवं मूत्र संस्थान पर इसका प्रभाव मल-मूत्र की क्रिया को समुचित रूप से विसर्जित करने में सहायता पहुँचाता है फलस्वरूप विरेचक गुण के कारण दस्त साफ होकर कब्जियत को दूर करता है तथा मूत्र के द्वारा दोषों का निर्हरण हो जाता है। अम्लपित्त रोग में शनैः शनैः प्रभाव करने वाला यह ऐसा योग है जो आमाशय में अम्ल को अधिक मात्रा में बनने से रोकता है तथा अम्लाधिक्यजन्य शूल आदि उपद्रवों को भी शांत करता है। जठराग्नि प्रदीप्त होकर खूब भूख लगती है तथा पाचक गुणों के कारण भोजन का समुचित पाक करता है। इसका वायु अनुलोमक गुण उदरवात के उपद्रवों को शांत करता है। मल बन्ध और मूत्रबद्धता में यह समान रूप से गुणकारी है फलस्वरूप अर्श और प्रमेह रोगों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है एवं अर्श एवं प्रमेह में सहायक औषधि के रूप में अन्य औषधियों के साथ भी इसे व्यवहृत किया जा सकता है। मन्दाग्निनाशक गुणों के कारण उदर रोगों मे प्रशस्त गुणकारी योग है।

हमारा विशेष अनुभव

(१) अम्लपित्त की तीव्रावस्था में जबकि तीव्र उदर-शूल भी हो, अविपत्तिकर चूर्ण ३ माशा के साथ सोडा बाई कार्ब (खाने का सोड़ा) $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ माशा तक मिलाकर ठण्डे पानी से सेवन करने पर तुरन्त उपद्रव शान्त होते हैं तथा शूल भी जाता है। अधिक दिन तक भी प्रयोग करना हानिप्रद नहीं है।

(२) श्वेत पर्पटी के साथ अविपत्तिकर चूर्ण का प्रयोग अतीव हितकर है। मूत्र मार्ग के द्वारा दोषों का निर्हरण हो जाता है। श्वेत पर्पटी अविपत्तिकर के कार्यों को आशुकारी बना देती है। अम्लपित्त के साथ उदर वात (Gas) के रोगियों पर भी हमने इसका प्रयोग अत्यन्त आशुफलप्रद देखा है।

सावधानियां—आमाशयिक व्रण में श्वेत पर्पटी देने से उदर शूल हो जाता है अतः न देवें। श्वेत पर्पटी लेते ही यदि तीव्र उदर शूल हो तो यह निश्चित निदान है कि रोगी को आमाशय व्रण है।

—कविराज श्री गिरधारीलाल मिश्र
प्रधान चिकित्सक-केदारमल मेमोरियल आयुर्वेद होस्पिटल,
तेजपुर (असम)

अश्वगन्धादि चूर्ण

वैद्य श्री मौहर सिंह आर्य

★

ग्रन्थ निर्देश—शार्ङ्गधर संहिता। अधिकार—चूर्ण कल्पना।

घटक	तौल	विशिष्ट गुण
१. असगन्ध	१०० ग्राम	वृंहण, बल्य, रसायन, वाजीकर।
२. विधारा	,,	रसायन, सारक, शुक्र, आयु, बल, मेधाप्रद।

निर्माण विधि—दोनों द्रव्यों को पृथक-पृथक कूट पीस सूक्ष्म चूर्ण कर लें। पीछे दोनों को एक मिलाकर घृत से स्निग्ध पात्र में रख लें।

विशेष ज्ञातव्य—इस चूर्ण में समान भाग मिश्री मिलाने से चूर्ण स्वादिष्ट एवं कोष्ठवद्धतानाशक वन जाता है।

मात्रा—३ से ६ ग्राम तक। अनुपान—दुग्ध, जल, मधु, घृत वा रोगानुसार। समय—प्रातः सायंकाल।

गुण—वृंहण, बल्य, रसायन, वाजीकर, शुक्रवर्धक, मेध्य है। रस—मधुर, तिक्त, कषाय। वीर्य—उष्ण। विपाक—मधुर। दोषशमन—त्रिदोष।

रोगोपयोग—क्षय, शोथ, व्रण, कुष्ठ, कास, श्वास, वालशोष, मानसिक रोग, कृमि, श्वित्र, आमवात, श्वेतप्रदर तथा प्रमेह एवं वीर्य विकार। शार्ङ्गधर संहिता में लिखा है—इस चूर्ण को सेवन करके स्त्रियों के साथ सम्भोग करने पर भी उसकी तृप्ति नहीं होती। यदि इस चूर्ण का सेवन करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करता रहे तो उसे वली एवं पलित रोग नहीं हो पाते।

स्वानुभूत सेवन विधि

१. शुक्राल्पता—अथवा वीर्य क्षय–इसका आदिमूल कारण बचपन की गलतियां-भूल हैं। बचपन में अत्यधिक हस्तमैथुन अथवा विवाहोपरान्त अत्यधिक स्त्री संग आदि से वीर्य क्षय हो जाता है। फलतः वीर्यक्षयजन्य नपुंसकता हो जाती है। वीर्यक्षयजन्य नपुंसकता में काम तृष्णा तो होती है, किन्तु लिंग में चेतना नहीं आती। शिश्न की नसें ढीली पड़ जाती है। उनमें संकोच शक्ति नहीं रहती, हेतुतः लिंगोत्थान नहीं होता। ऐसी अवस्था में असगन्धादि चूर्ण ६ ग्राम के साथ १२५ मि.ग्रा. विंग भस्म मिला, मक्खन के अनुपान से दें, ऊपर से दूध पिलायें। इससे शुक्राल्पता दूर होकर वीर्य क्षय जन्य नपुंसकता नष्ट हो जाती है। शतशः अनुभूत योग है।

२. शुक्रतारल्य—इस चूर्ण को असमान भाग घृत तथा मधु के साथ देकर ऊपर से दुग्ध पिलावें।

३. शुक्राणुहीन वीर्य—अनेक रोगी ऐसे मिले हैं जो हृष्ट-पुष्ट थे। किसी प्रकार की बीमारी उन्हें नहीं थी। परन्तु वे सन्तान उत्पन्न करने के योग्य नहीं थे, उनके वीर्य में सन्तान उत्पन्न करने वाले शुक्राणु नहीं थे। डाक्टरों ने वीर्य टेस्ट कर प्रमाणपत्र दे दिया था। ऐसे रुग्णों को ब्रह्मचर्य का पालन कराते हुए छः मास तक यह चूर्ण ३ ग्राम, मधु १० ग्राम तथा गोघृत २० ग्राम मिला दिया गया, ऊपर से दुग्ध पिलाया गया। फिर वीर्य की परीक्षा कराई गई तो शुक्राणु मौजूद थे।

४. स्तन्याल्पता—प्रसूता के पश्चात् दौर्बल्य के कारण अनेक स्त्रियों के स्तनों में दुग्ध कम हो जाता है। इस चूर्ण को शतावरी स्वरस के साथ दें, ऊपर से दूध पिलावें।

५. बालशोष—चूर्ण को गोदुग्ध में उबालकर दिन में २-३ बार बालक को पिलाने से सूखा रोग दूर होकर बच्चा हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। यदि बालक चूर्ण को चाट सके तो घृत तथा मधु विषम भाग मिलाकर चटा दें, ऊपर से नागबला २५ ग्राम, गोदुग्ध २५० मिलि. में उबाल, मिश्री मिलाकर पिलावें। इससे शीघ्र लाभ होता है।

६. स्वप्नदोष—प्रातः सायं काल ६ ग्राम की मात्रा में ताजा पानी के साथ दें।

७. गठिया-आमवात—यह चूर्ण ४ भाग, शुण्ठि १ भाग, सुरंजान मीठी १ भाग ले सूक्ष्म पीस मिला लें। मात्रा १० ग्राम प्रातः सायं काल उष्ण गोदुग्ध से दें। गठिया आमवात कमर की वेदना शान्त हो जाते हैं।

८. प्रमेह धातु गिरना—मूत्र त्याग करते समय मूत्र के साथ या पीछे वीर्य निकल जाता हो, शौचादि के समय थोड़ा बल प्रयोग करने पर २-४ विन्दु पतला सा वीर्य निकल जाता हो, ऐसी अवस्था में दोनों समय पानी से दें।

९. श्वेत प्रदर—यह चूर्ण ३ ग्राम, त्रिवंग भस्म १२५ मिग्रा., कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म १२५ मिग्रा. मिलाकर गोदुग्ध के साथ दें। यह पुराने श्वेत प्रदर को दूर करता है। जीर्ण रोग में ४-५ मास तक दें।

१०. शुक्रमेह—यह चूर्ण ३ ग्राम की मात्रा में प्रातः सायं काल गोदुग्ध या जल के साथ दें।

११. गर्भस्थापनार्थ—मासिक धर्म आरम्भ होने के दिन से निरन्तर आठ दिन तक यह चूर्ण उष्ण गोदुग्ध के साथ दें।

१२. अश्वगन्धा तथा वृद्धदारुक दोनों द्रव्य रसायन हैं। अनेक निर्धन यक्ष्मा पीड़ित रुग्णों को अश्वगन्धादि चूर्ण ६ ग्राम की मात्रा में नागवला साधित दुग्ध के साथ प्रतिदिन दोनों समय देकर रोगमुक्त किया है। नागवला मूल त्वक् २५ ग्राम ले, यवकुट कर ५०० मिलि० दुग्ध में औटायें।

सेवन विधि—अश्वगन्धादि चूर्ण ६ ग्रा०, घृत २० ग्रा., मधु १० ग्राम मिलाकर चटा दें। ऊपर से दुग्ध पिलादें।

विशेष ज्ञातव्य—नागबला को सन्दिग्ध मानते हैं। मैं 'गंगेरन' को नागवला मानता हूँ और इसी को योगों में प्रयोग करता हूँ।

अश्वगन्धा

पर्याय—(सं.) अश्वगन्धा, (हिं.) असगन्ध, (य.) डोरगुंज, (गु.) आक्संध, (ले.) वाइथेनिया सोम्नीफेरा (Withania Somnifera)।

परिचय—यह गुल्म जाति की वनस्पति २ से ५ फुट ऊंची होती है।

मूल—१ से २ फुट लम्वी, १ से ३ इंच मोटी, गोल, भूरे रंग की होती है।

तना—साधारण गोल। शाखा—कमरीगणी के समान एकाकी टेढी मेढी होती है।

पत्र—लम्वे, चौड़े, किञ्चित गोलाकार, हरितवर्ण युक्त, छः पत्र नाड़ी युक्त।

पुष्प—पत्रकोणोद्भूत ३-६ गुच्छों में, पुष्पवाह्यकोश, पुष्पाभ्यन्तरकोश तथा पुंकेशर ५-५ युक्त, रक्त या हरिताभपीत वर्ण युक्त।

फल—रसभरी के समान, कवच से ढका हुआ, अपक्व हरित तथा पक्व रक्त वर्ण युक्त, स्निग्ध, पत्र दण्ड के पास।

वीज—छोटे, चपटे, वनभण्टा के वीजों के समान, पीत वर्ण युक्त होते हैं। उपयोगी अङ्ग—मूल।

रस—मधुर, तिक्त, कषाय। वीर्य—उष्ण। विपाक—मधुर।

गुण—वृंहण, वल्य, रसायन, वाजीकर, शुक्रवर्धक। दोषशमन—त्रिदोष।

रोगोपयोग—शोथ, श्वित्र, क्षय, कास, व्रण, कुष्ट, कृमि, श्वास, वालशोष मानसिक रोग नाशक है।

शरीर सम्बन्धी प्रभाव—सम्पूर्ण शरीर।

शास्त्रीय योग—अश्वगन्धादि चूर्ण, अश्वगन्धारिष्ट।

नव्यमत—असगन्ध तथा विदारीकन्द के गुण समान हैं। यह उत्तम पौष्टिक है। ६ से १२ ग्राम इसके चूर्ण को गोघृत में सेंक, उसमें २५० मिलि० दुग्ध तथा यथारुचि मिश्री मिला गर्म करके दें। छोटे वच्चों के लिए यह उत्तम औषधि है। इससे वच्चों का सूखना वन्द होता है। स्त्रियों में कटि वेदना और श्वेत प्रदर इससे ठीक होता है। जङ्गली असगन्ध के मूल अवसादक, स्वापजनन, मूत्रजनन हैं। वात नाड़ी पर इसकी अवसादक क्रिया होती है। परन्तु हृदय पर अवसादक क्रिया नहीं होती। इसका स्वापजनन धर्म प्रसिद्ध है। वीज स्वापजनन तथा मूत्रजनन, वड़ी मात्रा में विष हैं। वद-ग्रन्थि आदि पर मूल का लेप करते हैं।

—डा० वा० ग० देसाई

विशेष ज्ञातव्य—असगन्ध दो प्रकार की होती है। एक स्वयं जात जिसे जंगली असगन्ध कहते हैं। दूसरी खेतों में वोई जाती है। जंगली असगंध के भी दो भेद होते हैं। जो काली मिट्टी डालकर जमीन में उत्पन्न होती है उसके मूल कठिन सख्त होते हैं, रेशेदार होते हैं, तोड़ने पर काले वर्ण के हो जाते हैं। इसके विपरीत वालू-रेत-भूड़ जमीन में उत्पन्न असगन्ध के मूल नरम-तोडने पर वर्ण नहीं वदलता, टूटने में नरम होते हैं। स्वयं जात काली मिट्टी में उत्पन्न असगन्ध श्रेष्ठ है।

अश्वगन्धा रसायन

पीताश्वगन्धापयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा।
कृशस्य पुष्टिं वपुषोविधत्ते बालस्य सस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः॥

अर्थात्—असगन्ध के चूर्ण का एक ग्राम से ६ ग्राम तक की मात्रा में घृत, तैल, दुग्ध या मन्दोष्ण जल के साथ मिश्री मिलाकर सेवन करने से दुबले शरीर की इस प्रकार पुष्टि होती है, जिस प्रकार वृष्टि से धान के नये अंकुर बढ़ते हैं। कुल पन्द्रह दिन के प्रयोग से ही पर्याप्त पुष्टि सेवन कर्त्ता की होती है। इसका सेवन बालशोष तथा यक्ष्मा के रुग्णों के रोगों में उत्तम लाभप्रद है।

शिशिरे चाश्वगन्धायाः कन्दचूर्णं पयोन्वितम्।
मासमति समध्वाज्यं सवृद्धोऽपि युवा भवेत्॥

शीत ऋतु में एक मास तक दूध के साथ असगन्ध मूल का चूर्ण सेवन करने से वृद्ध भी युवक के समान कार्यक्षम हो जाता है। चूर्ण को घृत और मधु से चाटकर ऊपर से दूध पीना चाहिए।

विधारा

पर्याय—(सं.) वृद्धदारक, (हिं.) विधारा, (बं.) विजताड़क, (गु.) समन्दर शोष, (म.) समुद्र शोष, (ले.) अरजीरिया स्पेसियोसा (Argyria Speciosa.)

परिचय—यह लता जाति की वृक्षारोही वनस्पति है।

मूल—लम्बे, काष्ठीय (Woody) तथा चिमड़ी (Tough) होती है। मध्य में सुषिर काष्ठीय ऊतियुक्त, तन्तुयुक्त।

मूलतत्व—गहरे भूरे वर्ण की होती है।

शाखा—श्वेताभ या तूलरोमश सघन आवरण युक्त।

पत्र—गोल, १५ से २० सेमी० व्यास में, ऊपरी भाग मसृण, अन्दर पृष्ठ श्वेत रोम युक्त, लट्वाकार, हृदवत तथा सवृत, अग्र पर कुण्ठित या तीक्ष्ण, पर्ववृत ७.५ से २२.५ सेमी० होते हैं।

पुष्प—गहरे, गुलाबी या जामुनी रंग के, घण्टाकृति, बाहर से श्वेत एवं तूल रोमश होते हैं।

फल—लम्ब गोल, अपक्व फीके हरे, पक्व पीताभ भूरे रंग के होते हैं।

बीज—तीन धारयुक्त, श्वेताभ भूरे होते हैं।

रस—कटु, तिक्त, कषाय। वीर्य—उष्ण। विपाक—मधुर।

गुण—रसायन, सारक, शुक्र, आयु, बल-मेधा, जठराग्नि, स्वर तथा कान्तिप्रद है।

रोगोपयोग—शोथ, आमवात, वातरक्त, व्रण, प्रमेह, श्वेत प्रदर नाशक है।

शरीर सम्बन्धी प्रभाव—समस्त शरीर।

वृद्धदारक रसायन

वृद्धदारक मूलानि श्लक्ष्ण चूर्णानि कारयेत्।
शतावर्य्या रसेनैव सप्तरात्राणि भावयेत्॥
अक्ष मात्रन्तु तच्चचूर्णं सर्पिषा सहभोजयेत्।
मासमात्रोपयोगेन मतिमान् जायते नरः॥
मेधावी स्मृतिमांश्चैव वली पलितवर्जित्॥
—च० द०

अर्थात्—विधारा की जड़ का चूर्ण बनाकर शतावर स्वरस से ७ भावना दें। इस चूर्ण को १२ ग्राम की मात्रा में घी के साथ प्रतिदिन सेवन कराना चाहिए। इससे बुद्धि मेधा तथा स्मृति बढ़ती है। वली, पलित नष्ट होते हैं।

सितोपला गुण

सितोपला सरागुर्वी वात पित्तहरा हिमा।
तृष्णाश्रमक्लमच्छर्दिदाहमूर्च्छा मदापहा॥—यो.र.

अर्थात्—मिश्री सारक, गुरु, वात-पित्त नाशक, शीतल वीर्यवर्धक, श्रम, क्लान्ति, वमन, दाह, मूर्च्छा तथा मद नाशक है।

—वैद्य श्री मोहर सिंह आर्य,
स्थान—मिसरी, पो० चरखीदादरी (भिवानी) हरियाणा

कट्फलादि चूर्ण

ग्रन्थ—चक्रदत्त

कायफल, पुष्करमूल, छोटी पीपल, काकड़ासिंगी—सबको समभाग ले खरल करें। महीन छलनी से छानकर पुनः सिल पर पीसकर पान का स्वरस या अदरख का छना रस, या तुलसी स्वरस से १ दिन खरल कर चूर्ण सुखाकर शीशी में भरकर रख लें।

मात्रा—२-४ रत्ती उचित अनुपान से दिन में ३-४ बार देवें। या ६-१२ रत्ती ३ माशे मधु से या ६ माशे

पान के स्वरस में डाल इंजेक्शन वाली शीशी में रखकर रोगी को दें और ३-४ मात्राओं को निर्देश करें।

उपयोग—

स्तनपायी, दुग्धपायी, क्षीरान्न सेवी तीनों प्रकार के शिशुओं के कफ प्रधान अनेक रोगों को यह लेह शमन करता है। शिशुओं के मीठा कर दें अतः मधु सह-योग के लिए अनिवार्य हैं।

रोगाबलि—ज्वर, प्रतिश्याय, कास, कुकास, श्वास, अरुचि, मुखस्राव, वमन, शिरोशूल, श्वसनक ज्वर, पसली रोग, संसनीरोग, श्वास पथावरोध, गलग्रन्थि शोथ, गल-शोथ, कर्ण मूल शोथ आदि रोगों में पूर्ण लाभकारी है। सहयोग के लिए मुलेठी चूर्ण, तुत्थ भस्म १ चावल, सुहागा खील २ चावल, श्रृंगभस्म १ चावल, वायविडंग २ चावल में से १-२-३-४ द्रव्य मिलाकर भी दे सकते है पर मिलाने की आवश्यकता गम्भीर दशा में ही पड़ती है वैसे प्राकृत योग पूर्ण सक्षम है। पसली रोग में यदि उदर में मल संचय हो तो २ चावल तुत्थ भस्म ६ मासा पानी में घोलकर उष्ण कर पिला दें या देवन्द चीनी ३-४ चावल जल या दूध से पिलावें। १-२ टट्टियाँ और वमन हो जाने के बाद योग का प्रयोग सदा सफल होता है। शिशु का हाँफना बन्द होता है। गम्भीर अवस्था में, मूर्च्छा में, वमन, अतिसार के बाद १-२ चावल कुमार कल्याण रस मधु चटा देने से भीति टल जाती है।

उक्त प्रयोग में अपामार्ग क्षार, अर्कक्षार, जवाखार भी मिला सकते हैं पर द्रव्य गुण युक्त हो तो लाभ निश्चित है। सूचिकाएँ लगवाना अनिवार्य नहीं। बड़ों को बड़ी मात्रा दूनी-तीन गुनी दी जा सकती है। चिकित्सक अनुपान की स्वयं रोगी के लिए वहीं पर व्यवस्था करें।

—श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव
अरौल (कानपुर)

कपित्थाष्टक चूर्ण

आचार्य श्री पं० वेदव्रत आर्य

औषधनाम—कपित्थाष्टक चूर्ण

ग्रंथ नाम—शार्ङ्गधर संहिता

घटक—कपित्थ ८० ग्राम, शर्करा ६० ग्राम, दाड़िम ३० ग्राम, तिंतिडीक ३० ग्राम, श्रीफल ३० ग्राम, धातकी ३० ग्राम, अजमोद ३० ग्राम, पिप्पली ३० ग्राम, काली-मिर्च १० ग्राम, जीरश्वेत (भुना) १० ग्राम, धान्यक १० ग्राम, ग्रन्थिक १० ग्राम, वालक १० ग्राम, सौवर्चल १० ग्राम, यवानी १० ग्राम, चातुर्जात (त्वक् एला, पत्रक, नागकेशर), चित्रक, शुण्ठी प्रत्येक १०-१० ग्राम।

निर्माण विधि—

प्रथम नं० ३ से १८ संख्या तक के द्रव्यों को शुष्क कर कूटकर बारीक छलनी में छान लेवें या मोटे कपड़े में छान लेवें। पीछे कपित्थ को कपड़छन कर शर्करा को छान कर मिलाकर शीशियों में भर लेवें।

मात्रा—७ ग्राम, अनुपान—जल, दही मठा।

उपयोग—गले के रोगों पर, अतिसार में, क्षय में, अग्निमांद्य होने पर, अरुचि होने पर, गुल्म में, ग्रहणी में प्रयोग करें।

गुण धर्म विवेचन

इस चूर्ण में मुख्य द्रव्य कपित्थ है। इसका वृक्ष बड़ा होता है, सभी वैद्य इससे परिचित हैं। आचार्य चरक ने—

कपित्थमामं कण्ठघ्नं विषघ्नं ग्राहि वातलम्।
मधुराम्लकषायत्वात् सौगन्ध्यात् च रुचिप्रदम्।
परिपक्वं तु दोषघ्नं विषघ्नं ग्राहि गुर्वपि॥

बताया है कि कच्चा कैथ—कण्ठ को हानि पहुँचाता है, विषघ्न है तथा ग्राही है रुचिकर है तथा वातल है।

अतिसार के लिए केवल कपित्थ की मज्जा को ही सव्योष क्षौद्रशर्करा के साथ सेवन करने का विधान आचार्य चरक ने किया है। यथा—

कपित्थमध्यं लीढ्वा तु सव्योष क्षौद्र शर्करम्।
... . **मुच्यते जठरामयात्॥**

दाड़िम—अतिसार, संग्रहणी, आंव, अन्त्र शैथिल्य एवं रक्त मिश्रित आम के आने में लाभदायक है। इसी प्रकार तिंतिडीक—जो कि समाक दाने के नाम से जाना जाता है, हृद्य, दीपन एवं ग्राही तथा रक्त प्रशमन और रूप संग्राहिकता के कारण रूप युक्त आम में एवं पित्त प्रकोपज वमन में तथा ज्वर में उत्पन्न दाह, तृषा में लाभदायक है और आमाशय को शक्तिप्रद है। इसी प्रकार—

श्रीफल भी—साग्राहिक दीपन और वात कफ प्रशमक है। इसका भी पृथक् प्रयोग आमशयिक रोगों का शमन करता है। शेष सभी द्रव्य नित्योपयोगी एवं दीपन पाचन है और जिनमें से अधिकांश का प्रयोग दैनिक जीवन में प्रायः सभी को होता है।

इस प्रकार कपित्थष्टक चूर्ण की योजनाकर अतिसार पर विजय प्राप्त की जा सकती है। ग्रहणी में पृथक् या किसी भी योग के साथ इसका प्रयोग चल सकता है।

अनुभव—

एक बार पं० दामोदर शर्मा को ज्वरोपरान्त अतिसार एवं अरुचि का प्रकोप बढ़ता गया। उन्हें किसीभी प्रकार जब शमन नहीं हुआ तो वह विजयगढ़ गये तब वहां श्री तिवारी जी ने कपित्थाष्टक का ही प्रयोग बताया। वह उसी से ठीक हो गये।

कल्याण चूर्ण

औषध नाम—कल्याण चूर्ण। ग्रन्थ नाम—योग रत्नाकर

रोगाधिकार—अपस्मार

घटक—पंचकोल (पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) प्रत्येक १०-१० ग्राम, कालीमिर्च, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला), विड्लवण, सेंधानमक, पीपल छोटी, वायविडंग, कंजा की मींग, अजवायन, धनियाँ, जीरा श्वेत (भुना) प्रत्येक १०-१० ग्राम।

निर्माण विधि—

समस्त द्रव्यों को कूट छानकर चूर्ण तैयार कर रखें।

मात्रा—६ माशे । अनुपान—उष्णोदक

प्रयोग—वातज कफज रोगों पर, अपस्मार, वातज, उन्माद, वातज अर्श, संग्रहणी और अग्निमांद्य पर इसका प्रयोग आशु लाभकारी है। इसमें जितने भी द्रव्य हैं वह सभी प्रायः वात कफ का विनाशकर अग्नि को प्रदीप्त करने वाले हैं इसीलिए वात कफज अपस्मार उन्माद रोगों पर तथा अर्श ग्रहणी अग्निमांद्य में इसका प्रयोग प्राचीन काल से प्रचुर मात्रा में होता चला आ रहा है।

अनुभव—

ग्रहणी अर्श एवं मन्दाग्नि के रोगियों पर इसका प्रयोग लाभदायक रहा है। अपस्मार, उन्माद, में मैं इसका प्रयोग कर अनुभव नहीं प्राप्त कर सका हूं। वैद्य गण अनुभव करें।

कुक्कुर विषहर चूर्ण

एक बार स्थानीय एक वैश्य के पुत्र को श्वान ने काट लिया था। उस समय तत्काल ही एक औषध का योग दिया था वही तब से प्रयोग में ला रहे हैं—

घटक—बावची १० ग्राम, स्वर्ण क्षीरी १० ग्राम, कालीमिर्च ५ ग्राम, धत्तूर पुष्प शुष्क ५ ग्राम।

निर्माण विधि—सबको कूट छानकर चूर्ण कर रखें।

मात्रा—६ ग्राम से १० ग्राम तक।

अनुपान—मधु या जल के साथ।

उपयोग—कुक्कुरविष में लाभदायक है।

विशेष—उस स्थान पर भीं सिरीश के बीज तथा अर्कमूलत्वक तथा कुपीलु का लेप कराया गया था। शास्त्र में जिन योगों का वर्णन है उनमें से कोई मेरे अनुभव में नहीं आ पाया है।

—आचार्य श्री पं० वेदव्रत शर्मा आर्य शास्त्री
नदरई गेट, कासगंज (एटा)

कासांतक चूर्ण

१. काकड़ा सिंगी २० ग्राम, छोटी पीपल १० ग्राम, लौंग १० ग्राम, जवाखार १० ग्राम, मुलहठी २० ग्राम, कालीमिर्च ५ ग्राम।

निर्माण विधि—उपरोक्त द्रव्यों को प्रथक्-प्रथक् कूट पीसकर एकत्र मिला लेवें।

मात्रा—३-३ ग्राम, ५-५ ग्राम शहद में मिलाकर

समय—प्रातः सायं चाटना चाहिए।

अपथ्य—तैल, गुड़, खटाई, मीठा आदि न लेवें।

रोगनाश—कफ, खांसी तथा श्वास में लाभदायक है।

विशेष अनुभव—

मेरे नाना जी को लगभग ३०-४० वर्ष से दारूण कास था इस दवा के २१ दिन सेवन से लाभ हुआ।

—श्री पं. नन्दकिशोर शर्मा वैद्यरत्न
आगर (मालवा) वाया उज्जैन (म. प्र.)

उपदंश की महान दवा—

गन्धक योग

(भारत भैषज्य रत्नाकर द्वितीय भाग)

शुद्ध आमलासार गन्धक, हर्र, बहेड़ा, आमला का चूर्ण समभाग लेकर उसमें सबके बराबर मिश्री मिलाकर खरल करें।

इसे प्रतिदिन प्रातःकाल ३ माशे की मात्रानुसार शहद में मिलाकर सेवन करने से ३ सप्ताह में उपदंश अवश्य नष्ट हो जाता है। इसके सेवन काल में नमक नहीं खाना चाहिए।

मैंने सन् १९३७ में रंगून में सन्तलाल इन्दोरिया को दिया बहुत ही लाभ हुआ।

—वैद्य श्री चन्द्र शेखर जी व्यास,
चूरू।

चन्दनादि चूर्ण

ग्रंन्थ—भैष. रत्नावली।

योग—श्वेत चन्दन, नेत्रवाला, अगर, तगर, वंशलोचन—प्रत्येक ५० ग्राम, मिश्री २५० ग्राम।

निर्माण विधि—सब द्रव्यों को कूट कपड़छन चूर्ण बनालें पश्चात् मिश्री चूर्ण कर अच्छी तरह मिलालें।

पहचान—यह चूर्ण देखने में श्वेत, स्वाद में मीठा और सुगन्धित होता है।

मात्रा—३ ग्राम से ६ ग्राम तक दिन में दो या तीन बार तक।

अनुपान—

अन्तर्दाह—शीतल जल अथवा गाय के दुग्ध से।

मूत्र कृच्छ—गोखरू स्वरस अथवा क्वाथ के साथ।

मूत्राघात—ग्लूकोज के शर्बत अथवा अंगूर स्वरस अथवा अभाव में शीतल जल।

रक्तपित्त—उशीर अथवा चन्दन अर्क से।

मूत्र विषमयता—चन्दन हिम के साथ।

हृदय दौर्बल्य—सेव के स्वरस के साथ।

तृष्णा—अर्क गावजवां अथवा सौंफ अर्क के साथ।

शिरः शूल—शर्बत सेव से।

रोग निर्देश (Indications)—इसका प्रयोग मूत्र विषमयताजन्य दाह, भ्रम, ज्वर, रौक्ष्य, रक्तपित्त, तृष्णा, मूत्र कृच्छ इत्यादि विकारों को दूर करने लिए किया जाता है।

सावधानी एवं प्रतिक्रिया—अति शीतावस्था में अथवा कफ प्रकोप काल में इसे प्रयोग न करें, अवरोधात्मक मूत्राघात में इससे कोई लाभ नहीं होता। प्रतिक्रिया की दृष्टि से यह योग न विशेष क्षारीय है और न आम्लिक।

घटक द्रव्यों के गुण धर्म एवं प्रभाव तथा रासायनिक संगठन

१. वंशलोचन (Bambus anundinacia)—कषाय, मधुर, शीतवीर्य, वात पित्त शामक, मधुर विपाक, तृष्णा निग्रह, ग्राही, मूत्रल, रक्त स्तम्भन एवं शोधक, कफ निस्सारक, श्वासहर, मूत्र कृच्छ, कामलानाशक है।

रासायनिक विश्लेषण—इसमें सिलिका ९० प्रतिशत, लोह अथवा मण्डूर ३० प्रतिशत, पोटाश, चूना, अल्यूमो- एवं कुछ वानस्पतिक पदार्थ जैसे कोलीन, विटेन न्युक्लिएस, युरिएस, कार्बो वेज के पाचक किण्व तथा स्नेह विलएक किण्व तथा कुछ सायनोजेनेटिक ग्लूको ईडसा आदि पदार्थ पाया जाता है।

२. श्वेत चन्दन (Santalum Album)—लघु, रूक्ष, कटुविपाक एवं मधुर, शीत वीर्य, तिक्त, कफ पित्त शामक, ग्राही, मूत्रल, शुक्रमेह, मूत्रकृच्छ, पूयमेह, रक्त प्रदर, तृषा, अतिसार, प्रवाहिका आदि नाशक है। रासायनिक विश्लेषण—इसके सार भाग के बुरादे से तैल निकाला जाता है जो पित्ताभ अथवा रंगहीन कुछ गाढ़ा चिप-चिपा सा द्रव्य रूप में तीक्ष्ण सुगन्धित एवं कटु तिक्त होता है। इसमें सेन्टलोल नामक सत्व ९० प्रतिशत होता है। मूल तथा काण्डसार में ३-६ प्र. श. तक एक उड़नशील तैल होता है।

३. नेत्रवाला (Parnonia odorata)—यह सुगन्धित, मधुर, लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु, शीत वीर्य, पित्तज्वर, कफ पित्त शामक, दीपन, पाचन मूत्र दाह, भ्रम, हृदय रोग, अरूचि आदि नाशक है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक लुआवदार तथा उत्तेजक सुगन्धित द्रव्य पाया जाता है।

४. अगर (Aquilaria Agallocha)—गरम, चरपरा, कड़वा, तीक्ष्ण पित्तजनक, हलकी, स्निग्ध, कान्ति वर्द्धक, रुचिकारी, दाह रोग, कोई इसे पित्त शामक भी मानते है। तृष्णा, मृगी आदि नाशक है।

रासायनिक विश्लेषण—इसमें एक उड़नशील तैल जो ईथर में विलय होता है। दूसरी राल रहती है जो मद्यसार (Alchohol) में घुलनशील है। कोई-कोई इसे उष्ण प्रकृति के लिए हानि कारक मानते हैं।

५. तगर (Valeriana wallichii)—यह तिक्त, कटु, मधुर, रूक्ष, लघु, स्निग्ध, कषाय, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, त्रिदोष शामक, मूत्रल, शूल प्रशमन आदि है।

रासायनिक संगठन-महत्वपूर्ण उड़नशील तैल ०.५-२ प्र. श. इसकी जड़ में पाया जाता है। इस तैल में मुख्यत—सेस्किटर्पेन (Sesquiterpenis) वेलरिक एसिड तथा टर्पेन, अल्कोहल तत्व होते हैं। और इसके अलावा आराचिडिक एसिड (Arachidic acid) स्नेहन अम्लों के मिश्रण रहते है।

(६) मिश्री—शीतवीर्य, पचने में हलकी, सारक, वात पित्त को दूर करने वाली है।

विशेष मन्तव्य—उपरोक्त घटक द्रव्यों में चन्दन मूत्र जनन संस्थान का वि:संक्रमण कर्ता तथा मूत्रल है। वंश लोचन, शीतवीर्य हृद्य होने से मूत्रल और नेत्रवाला शीतल तथा तगर और अगर अपने उड़नशील तैलीयांश से वृक्कों पर प्रभाव डालकर मूत्र की रुकी हुई उत्पत्ति को पुनः प्रारम्भ करके मूत्रघात को नष्ट करता है। अतः उपरोक्त रोगनिर्देशों मे भिन्न-भिन्न अनुपानों के द्वारा साधारण औषधि होते हुए भी आशा से अधिक लाभकारी है। मेरा यह हजारों बार का परीक्षित प्रयोग है। जय आयुर्वेद

—डा० श्री वी. एन. गिरि
आयुर्वेद विशारद, ए., एम.बी.एस.
डंगरा (गया) बिहार

जातिफलादि चूर्ण (शार्ङ्गधर संहिता)

जायफल, लौंग, तेजपात, छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, सफेद चन्दन, वंशलोचन, कपूर, तगर, काला तिल, आंवला, पिप्पली, तालीश पत्र, कलौंजी, हरड़, चित्रकमूल, छाल, सोंठ, वायविडंग, कालीमिर्च सभी औषधियाँ (प्रत्येक १२ ग्राम) समान भाग, और शुद्ध धोकर सुखाया हुआ भांग २४० ग्राम, मिश्री ४८० ग्राम।

निर्माण विधि—मिश्री एवं भाँग को छोड़कर सभी द्रव्यों को कूट कपड़छन चूर्ण बना लें, पश्चात् भाँग धोकर सुखाया हुआ भी कूट कपड़छन चूर्ण बना लें और मिश्री पीसकर अच्छी तरह मिलालें। इसे सदैव चौड़े मुंह वाली सीसी जो ढक्कन लगी हो उसमें रक्खें ताकि नमी से बचा रहे।

मात्रा एवं अनुपान—२ ग्राम से ४ ग्राम तक मधु अथवा गर्म जल के साथ दिन में दो बार तक शाम सुबह।

रोग निर्देश—

यह चूर्ण शार्ङ्गधर में मुख्यतः संग्रहणी के लिए ही लिखा है। काष्ठ औषधियों में संग्रहणी के लिए शायद ही इससे कोई अच्छी औषधि है। इसे संग्रहणी जीर्ण हो अथवा नवीन दोनों प्रकार की ग्रहणी में सफलतापूर्वक व्यवहार करता हूं। इसके अतिरिक्त श्वास, खांसी, अरुचि को भी यह नष्ट करता है क्योंकि इसमें पड़ने वाले घटक द्रव्य कास, श्वास, अरुचि नाशक है। यह आम पाचक, ग्राही, तीक्ष्ण, उष्ण, पित्तवर्द्धक तथा अग्निप्रदीपक है। इसमें भाँग मादक, निद्रापद, आक्षेपहर, गर्भाशय संकोचक, वेदना निवारक और उत्तेजक गुण है। इन गुणों के कारण यह विशूचिका में अधिक लाभ देता है। परन्तु इसमें अधिक भाँग रहने के कारण अत्यन्त संग्राही है अतः विशूचिका में अलसक उत्पन्न हो सकती है। इससे बचने के लिए महाशंख वटी २ गोली की मात्रा में हर ३-४ घण्टे बाद गर्म जल के साथ प्रयोग करें। अन्यथा गम्भीर स्थिति हो सकती है। भाँग मल का संग्रहण कर आन्त्र पेशियों के आक्षेपों को दूरकर शूल का शमन करके निद्रा लाती है। यह मूत्रल होने से दस्त को रोककर मूत्र की वृद्धि कर बाहर निकालता है। यह अनैच्छिक पेशी संकोचक रोककर

श्वास-प्रश्वास की क्रिया को ठीक करती है तथा रजःस्राव के समय शूल को दूर कर भूख बढ़ाती है। इस योग में पड़ने वाले अधिकांश द्रव्यों में उड़नशील तैल (Volatile Oil) पाया जाता है जो आंतों में पहुँच कर वात का शमन करता एवं कृमियों और कीटाणुओं को नाश करता है। कपूर हृदय को शक्ति देता है। यह संग्रहणी की एक उत्कृष्ट औषधि है।

पथ्यापथ्य—पुराना चावल, गेहूं, घृत, केला, मठा (तक्र), दही, लौकी, परवल, सहजने के फलों का साग, टमाटर आदि। अपथ्य—लालमिर्च, तैल, खटाई, गरिष्ठ भोजन, वासी अन्न, वेशन पिट्ठी के बने पदार्थ, आलू इत्यादि।

घटक द्रव्यों के गुण प्रभाव एवं रासायनिक विश्लेषण

१. जायफल (Myristica Fragrans)—यह लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु तिक्त कषाय, विपाक में कटु, उष्णवीर्य, कफवात शामक, ग्राही, वातानुलोमन आदि है।

रासायनिक संघठन—इसमें उड़नशील तैल २.८ प्रतिशत पतला रंग का तैल ही इसका कार्यकारीतत्व है। स्थिर तैल २४.४० प्रतिशत होता है और गाढ़ा होता है।

२. लौंग (Caryphyllus aromaticus)—यह गर्म तीक्ष्ण, पाक के समय मधुर, शीतवीर्य, शीतल, तिक्त, चरपरी, कड़वी, नेत्रों के लिए हितकारी, त्रिदोष, आम, क्षय, कास, कफपित्तशामक, रक्तरोग, तृष्णा, शूल, श्वास, हिचकी, मस्तक रोग आदि नाशक गुण प्रभाव हैं।

रासायनिक संघठन—लौंग से खिचे तैल में ७१ प्रतिशत युजीनोल, ८५ से ६१ प्रतिशत रासायन तत्व फेनोलवत, एसिति, केरियोफायलिन (Caryophyllene) आदि उपादान होते हैं।

३. तेजपात (Cinnamomum Tamala)—यह लघु, मधुर रस युक्त किंचित तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, स्वेदन, मूत्रल, उबकाई आदि नाशक है।

रासायनिक विश्लेषण—इसके पत्तों में लौंग के समान गन्धवाला एक उड़नशील तैल, युजीनल, टर्पिन, तथा सिनमिक अल्डीहाइड होता है।

४. छोटी इलायची (Elettaria cardamomum)—यह रस और विपाक में कटु एवं शीतवीर्य है। यह मधुर, हृद्य, रुचिकारक, सुगन्धित, दीपन, पाचन, लघु तथा वमन, मूत्रकृच्छ, श्वास, कास, मन्दाग्नि, तृष्णा, शूल, कफ पित्त शामक है।

५. दालचीनी (Cinnamaium zylanicum)—लघु, रूक्ष, कटु, तिक्त, मधुर, कटु विपाक, उष्णवीर्य, कफवात शामक, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक स्तम्भन, यक्ष्मानाशक, बाजीकरण, श्वास, कास इत्यादि नाशक गुण प्रभाव है। रासायनिक संघठन—इसकी छाल में एक उड़नशील तैल ०.५ से १ प्रतिशत, टेनिन, पिच्छिल द्रव्य, गोंद आदि पाया जाता है। उक्त तैल को ही सिन्नेमम आयल कहा जाता है। इसमें ५५ से ६८ प्रतिशत तक सिन्नेमिक एल्डीहाइड, लगभग १० प्रतिशत यूजोनोल आदि रासायनिक द्रव्य पाया जाता है।

६. नागकेशर (Mesua Ferrua)—यह किंचित उष्ण वीर्य, कटु विपाक, लघु, रूक्ष, कषाय, तिक्त, कफ पित्त शामक, दीपन, पाचन, ग्राही, सग्राहक, गर्भ स्थापक, वाजीकरण, उत्तेजक इत्यादि गुण प्रभाव है। रासायनिक संघठन—इसके फलों में एक तैलयुक्त राल होता है। जिसमें पीताभ तारपीन जैसा सुगन्धित उड़नशील तैल पाया जाता है। बीजों में एक स्थाई तैल ३६-४८ प्रतिशत, फलावरण में कषाय द्रव्य टेनिन तथा केशर में दो तिक्त पदार्थ पाये जाते हैं।

७. श्वेत चन्दन (Santelam album)—लघु, रूक्ष, कटु विपाक एवं मधुर, शीतवीर्य, तिक्त, कफपित्त शामक, ग्राही, मूत्रल, शुक्रमेह, मूत्रकृच्छ, पुयमेह, रक्तप्रदर, तृष्णा, प्रवाहिका आदि नाशक गुण प्रभाव है।

रासायनिक संघठन—इसके सार भाग के बुरादे से तैल निकाला जाता है तो पीताभ अथवा रंगहीन कुछ गाढ़ा चिपचिपा द्रव रूप में तीक्ष्ण सुगन्धित एवं कटु तिक्त होता है। इसमें सेन्टोलोल नामक सत्व ६० प्रतिशत होता है। मूल तथा काण्ड सार में २-६ प्रतिशत तक एक उड़नशील तैल होता है।

८. वंशलोचन—कषाय, मधुर, शीतवीर्य, वात पित्त शामक, मधुर विपाक, तृष्णा निग्रहण, ग्राही, मूत्रल, रक्त

स्तम्भन एवं शोधक, कफ निस्सारक, श्वासहर, मूत्रकृच्छ, कामला आदि नाशक गुण प्रभाव है।

रासायनिक संघठन—इसमें सिलिका (Silica) १०%, लौह अथवा मण्डूर ३०%, पोटास, चूना, अल्युमोनियम एवं कुछ वानस्पतिक पदार्थ जैसे कोलिन, विटेन। Betan, न्यूकिसस यूटिएस, कार्बोवज के पाचक किण्व तथा स्नेह विलयक किण्व तथा कुछ सायनोजेनेटिक ग्लूकोसाइड आदि पदार्थ पाया जाता है।

९. कपूर (Camphora officinarum)—यह लघु, रूक्ष, रस मे तिक्त कुछ मधुर होने से कफवात शामक, वीर्य मे शीत एवं विपाक में मधुर युक्त कटु होने से पित्त एवं तृष्णा आदि शामक, ज्वरघ्न, स्वेदजनन, नेत्रों को हितकारी आदि गुण प्रभाव है।

१०. तगर (Voleriana wallichii)–यह तिक्त, कटु, मधुर, रूक्ष, लघु, कषाय, स्निग्ध, कटुविपाक, उष्ण वीर्य, त्रिदोषशामक, मूत्रल, शूल प्रशमन आदि गुण प्रभाव है।

रासायनिक सगठन—एक महत्वपूर्ण उड़नशील तैल ५% इसकी जड़ मे पाया जाता है। इस तैल मे मुख्यत: सेस्क्विटर्पेन Sesquiter pens, वलटिक एसिड तथा टर्पेन अल्कोहल तत्व होते है और इसके अलावा आराचिडिक एसिड(arachidic acid)स्नेहीय अम्लों के मिश्रण रहते है।

११. काला तिल (Sesemum Indicum or Guizotia abyssynica cass—यह गुरु, स्निग्ध, अनुरस में कषाय तिक्त, मधुर अथवा कटु, विपाक में उष्णवीर्य, प्रभाव में केश्य, वात शामक, पित्तकफ प्रकोपक, योगवाही, दीपन, पाचन, ग्राही, शूल प्रशमन आदि गुण पाया जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—इसमें स्थिर तैल ५०-६० प्रतिशत (श्वेत तिल में ४८%) लाल में लगभग ४६%, मास तत्व Proteins २२%, कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrates) १८%, पिच्छिल द्रव्य (Mucilage) ४%, इसके अतिरिक्त १०० ग्राम तिल में लगभग ८ प्रतिशत मिलीग्राम लोहा १.४५ ग्राम कैल्शियम, ०.५७ ग्राम फासफोरस। इसमें Vitamin B_1 विटामिन भी पाया जाता है जो क्षुधावर्द्धक, पाचक है।

१२. आंवला (Phyllenthus Embelica)—यह कसैला, किंचित अम्ल, रसायन, कटु, शीतल, हल्का, रूक्ष, त्रिदोषनाशक है। यह अपने अम्लता प्रभाव के कारण से वात का, माधुर्य और शीतलता से पित्त का, कषाय एवं रूक्षता से कफ का नाश करता है। इसमें एसकॉर्बिक Vit. C (Ascorbic acid) प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। वैसे तो लवण को छोड़कर शेष सभी रस इसमें पाये जाते है। आंवले के गुण हरीतकी के समान पाये जाते है, किन्तु वीर्य मे विरोध है। आंवला शीत वीर्य है और हरीतकी उष्णवीर्य। आंवला अपने विशेष प्रभाव के कारण, रक्तपित्त प्रमेह आदि का नष्ट करता है परन्तु हरीतकी नहीं। इसमे ट्यानिक एसिड़ (Tanic acid) लगभग १८ प्रतिशत तक पाया जाता है। नारंगी के रस की अपेक्षा इसके रस मे २० गुणा अधिक विटामिन सी पाया जाता है।

१३. हरड़ (Terminalia chebula)—कषाय, अम्ल, मधुर, तिक्त, कटु, उष्ण वीर्य, विषम ज्वर नाशक है। इसमें टेनिक एसिड ४५ प्रतिशत, गैलिक एसिड, पिच्छिल द्रव्य, भूरा, पीला, रजक द्रव्य पाया जाता है।

१४. पीपल (Piper Longum) यह लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, कटु, मधुर विपाक, शीत वीर्य, रसायन है। ज्वरघ्न और कफघ्न है।

रासायनिक विश्लेषण—इसमें स्टार्च, गोंद, वसा तथा उड़नशील तैल १ प्रतिशत, क्षार तत्व १-२ प्र० श० पाया जाता है।

१५. तालीश पत्र (Abies webbiana)–यह लघु, तीक्ष्ण, तिक्त, विपाक में मधुर उष्ण वीर्य, कफ वात शामक, संकोचक, श्लेष्मा श्वासहर, मूत्रल, ज्वरघ्न, वल्य, अग्निमांद्य, वातानुलोमन इत्यादि गुण प्रभाव है।

रा० विश्लेषण–इसके पत्र में एक स्फटकीय क्षारतत्व तथा एक उड़नशील तैल पाया जाता है।

१६. कलौंजी (Nigella sativa)—यह कटु, तिक्त, तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु, विपाक मे कटु और उष्ण वीर्य है और दीपन पाचन, अनुलोमन, ग्राही, मूत्रल, उत्तेजक, पित्तवर्द्धक, गर्भाशय संकोचक, ग्रहणी, अतिसार, कृमिघ्न, कफ वात शामक आदि गुण प्रभाव है।

रासायनिक सगठन—इसमे एक प्रभावशाली उड़नशील तैल जो पीताभ रग का १.५ प्रतिशत तक तथा एक स्थिर तैल ३७.५ प्रतिशत इसके अलावा मेलन्थिन (Molanthin(

अरेबिक एसिड (Arebic Acid), अलव्युमिन, शर्करा आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

१७. चित्रकमूल (Plumbago zeylanica or Plumbago Rosea)—यह लघु, रूक्ष, दीपन, पाचन, तीक्ष्ण, ग्राही, कटु, विपाक में कटु एवं उष्ण वीर्य, ज्वरघ्न, कृमिघ्न आदि गुण हैं। कटु होने से कफ का, तिक्त होने से पित्त का एवं उष्ण वीर्य होने से वातनाशक है।

रासायनिक विश्लेषण—इसमें प्लम्बाजीन कटु स्फटिक पीले वर्ण, सूच्याकार सत्व ०.६१ प्र०श० पाया जाता है। कुछ विषैला, निद्राजनक, गर्भपातक, पसीना लाने वाला, मूत्रल आदि है।

१८. सौंठ (Zingiber officinale)—यह रुचिकारक, ग्राही, पाचक, आमवातनाशक, चरपरी, उष्ण वीर्य, पाक में मधुर, कफ वातशामक आदि गुण प्रभाव हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें उड़नशील तैल, पीले रंग का सुगन्धित १.५ प्रतिशत तक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कटु, पीत पदार्थ जिंजरौल (Gingerol) एवं जिंजरिन (Gingerin) नामक तेलयुक्त राल के स्वरूप मुख्य तत्व तथा स्टार्च पाया जाता है।

१९. कालीमिर्च (Piper Nigrum) यह लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष, कटु, विपाक में कटु एवं उष्ण वीर्य, ज्वरघ्न, स्वेदल, वातानुलोमन, उत्तेजक, कृमिघ्न, अजीर्ण आदि नाशक गुण प्रभाव है।

रासायनिक संगठन—इसमें उड़नशील क्षारतत्व पाइपरिन (Piperin) नामक ५.९ प्र.श. तथा पाईपरडिन (Piperdine) ५%, उड़नशील सुगन्धित तैल लगभग २प्रतिशत, वसा ७ प्रतिशत, चविकिन(Chavicine)नामक कटु, राल, प्रोटिन, क्षार आदि पाया जाता है।

२०. वायविडङ्ग (Embelia Ribes)—यह उष्ण वीर्य कटु विपाक, कफ वातशामक, कृमिघ्न, लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, दीपन, पाचन, अनुलोमन आदि गुण-प्रभाव हैं।

रासायनिक विश्लेषण—इसके फलों में एम्बेलिक एसिड (Embelic Acid) नामक सुनहरे पीले रंग का रवेदार पदार्थ २.४ प्रतिशत तथा अल्प मात्रा में क्रिस्टेम्बिन नामक क्षार, उड़नशील तैल, रंजक द्रव्य, टैनिन एवं राल सदृश पदार्थ पाया जाता है।

२१. भांग (Cannabis Indica)—कटु, तिक्त, तीक्ष्ण, लघु, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, वात कफहर, पित्तवर्द्धक, दीपन, पाचन, रोचक, शूल प्रशमन, शुक्र स्तम्भक, गर्भाशय संकोचक, अनिद्रा, अतिसार, ग्रहणी, उदरशूल, आदि गुण; प्रभाव हैं।

रासायनिक विश्लेषण—भांग तथा गांजा में एक ही प्रकार के तत्व पाया जाता है। इसके सार भाग चरस में केनोबियोन (Cannabione)नामक मुलायम बादामी रंग की राल होती है। यही इसका प्रभावशाली सत्व है। इसके अलावा भांग-गांजा में शर्करा, गोंद, कैल्शियम फास्फेट, अल्प मात्रा में उड़नशील तैल, सेन्द्रिय अम्ल, कलमी शोरा, नौसादर आदि द्रव्य पाया जाता है।

मिश्री—शीत वीर्य, पचने में हल्की, सारक, वातपित्त को दूर करने वाली है।

सावधानी—जिन रोगियों को भांग स्वभाव के विरुद्ध पड़ती है उन्हें इसका प्रयोग नहीं किया जाय, कारण यह मादक (नशा लाने वाला) है। दस्त आरम्भ होते हों या कालेरा, विशूचिका में और ज्वरातिसार में इसका प्रयोग न करें। यदि जीर्ण ज्वरातिसार अथवा प्रवाहिका हो तो कर सकते हैं।

इसके प्रयोग के साथ-साथ घण्टा अथवा २ घण्टा आगे अथवा पीछे २-२ गोली महाशंख वटी गर्म जल के साथ प्रयोग करने से अलसक और अन्य उपद्रव नहीं होने पाता है।

—डा० बी. एन. गिरि ए. एम. बी. एस.
डंगरा (गया) विहार

दन्त रोगाशनि चूर्ण

संदर्भ—भैषज्य रत्नावली मुख रोगाधिकार

योग—चमेली के पत्ते, पुनर्नवा, तिल, पिप्पली, झिण्टी के पत्ते, मोथा, बच, सौंठ, अजवायन, हरीतकी प्रत्येक १०ग्राम।

निर्माण विधि—चूर्ण बनाकर सुरक्षित रखें।

उपयोग विधि—चूर्ण में थोड़ी मात्रा में घृत मिलाकर मुख में धारण करें। अर्थात् कुछ समय तक मुख में रखें।

उपयोग—इस चूर्ण को मुख में धारण करने से वात रोग, कृमिदन्त, दन्तशूल, दन्तदाह, मुख दुर्गन्धि आदि दोष दूर हो जाते हैं।

विशेष—दन्त विकारों में घृत के साथ चूर्ण का दुथ पेस्ट की भांति उपयोग करने से शीघ्र लाभ होता है।

—साहित्यायुर्वेदाचार्य डा. श्री योगेशचन्द्र मिश्र
बी. ए. एम. एस., पी-एच. डी.
रीडर—ल. ह. रा. आयु. कालेज, पीलीभीत

दशन संस्कार चूर्ण

नाम प्रयोग—दशन संस्कार चूर्ण।

ग्रन्थ नाम—भैषज्य रत्नावली।

अधिकार—मुख रोग।

घटक—सोंठ, हरीतकी, मोथा, कत्था, कर्पूर, सुपारी की भस्म, मिर्चकाली, लौंग, दालचीनी प्रत्येक दस ग्राम, खटिका ९० ग्राम।

निर्माण विधि—

समस्त वस्तुओं को बारीक चूर्ण कर छानकर रखें। सुपारी की अन्तर्धूम भस्म बनावें। पीछे खटिका सबके बराबर छानकर मिलाकर खूब घोटकर शीशी में बन्द रखें।

मात्रा—यथायोग्य मंजन योग्य।

अनुपान—अनन्तर जल से मुख शुद्धि।

उपयोग—दन्त रोगों पर।

विशेष अनुभव—

यह प्रयोग दैनिक दन्त शुद्धि के लिए बड़ा ही लाभप्रद है। मैंने स्वयं भी वर्षों अपने पर तथा अपने रोगियों पर इसका प्रयोग किया है। दांतों की स्वच्छता तथा उन्हें विकाररहित बनाये रखने के लिए सर्व साधारण इस प्रयोग का प्रारम्भ कर लाभ उठा सकते हैं। सभी अन्य मंजनों की अपेक्षा इसमें पीपल, लौंग, दालचीनी, हरीतकी, कत्था का योग और कर्पूर का मिश्रण दांतों की अनेक बीमारियों को स्वतः ही प्रतिदिन ठीक करता रहता है। घटक के गुणों से सर्वसाधारण परिचित ही हैं अतः उनके गुणों का वर्णन कर कलेवर वृद्धि यहाँ अभीष्ट नहीं है।

—आचार्य श्री पं० वेदव्रत शास्त्री,
कासगंज (एटा)

द्राक्षादि चूर्ण

यह योग योग रत्नाकर में राजयक्ष्मधिकार में है। इसमें घटक द्रव्य निम्न प्रकार से ये हैं एवं संक्षिप्त गुण भी साथ में ही दिये हैं—

घटक द्रव्य	तोल	गुण धर्म
१. मुनक्का	५० ग्राम	मधुर, शीत, वृष्य, तृष्णा, ज्वरनाशक है।
२. धान की खील	,,	मधुर, शीत, दाह, रक्तपित्त शामक, शीतवीर्य।
३. श्वेत कमल पत्र	,,	शीतवीर्य, मधुर, कफपित्त नाशक, विष, विसर्पघ्न।
४. मुलेठी	,,	शीत, गुरु, तृषा, वमन, कासहर, मधुर विपाक।
५. छुहारा	,,	वृष्य, शीतवीर्य, मधुर, मूत्रल, वात पित्त नाशक।
६. अनंतमूल	,,	शीतवीर्य, वातरक्त नाशक, तृषा, दाह, पित्तनिवारक है।
७. वंशलोचन	,,	मधुर, वृष्य, शीतवीर्य, श्वास कासहर, क्षय रोगहर।
८. खस	,,	शीतल, स्तम्भक और तृषा, विष, विसर्प नाशक है।
९. आंवला	,,	वातपित्त, कफ नाशक, मधुर, शीतवीर्य है।
१०. नागरमोथा	,,	कटु, हिम, ग्राही, दीपन, पाचन।
११. सफेद चन्दन	,,	शीतल, कटु, दाह, रक्तपित्त नाशक, हृद्य है।

घटक द्रव्य	तोल	गुण धर्म
१२. तगर	५० ग्राम	मधुर, स्निग्ध, शिरोरोग, अपस्मार और विषनाशक है।
१३. शीतल चीनी	"	कफ, वात, अग्निमांद्यहर है।
१४. जायफल	"	अग्निदीपक, पाचक, लघु और स्वर शोधक है।
१५. दालचीनी	"	लघु, उष्ण, विष नाशक, कृमि, पीनसहर।
१६. तेजपात	"	उष्ण, श्वास, अर्श, वातरोग नाशक है।
१७. छोटी इलायची	"	कफ, श्वास, कास नाशक, मूत्रल, रुचिकर।
१८. नागकेशर	"	उष्ण, आमपाचक, दौगर्न्धहर और विषघ्न है।
१९. छोटी पीपल	"	अग्निदीपन, वृष्य, उष्ण, कफ वातहर, मधुरपाक।
२०. धनियाँ	"	हृद्य, स्निग्ध, मूत्रल, वृष्य, पाक में मधुर।
२१. मिश्री	१ किलो	वात, पित्तनाशक, मधुर तथा शीतल है।

ये सभी द्रव्य सही रूप में उपलब्ध हैं। वंशलोचन मात्र कृत्रिम ही उपलब्ध होता है और वही सर्वत्र प्रयोग में लाते हैं। इन सभी २० औषधियों को कूटकर कपड़छन कर लें या महीन चलनी में छान लेवें। बाद में मिश्री पीसकर समान भाग में याने चूर्ण के बराबर मिला बरनी में भर लेवें। चूर्ण तैयार है।

मात्रा—३ ग्राम से ४ ग्राम तक स्वतंत्र या अनुपान में भी देते हैं ऊपर कवोष्ण दूध पीना चाहिये। दिन में २ या तीन बार देवें।

गुण—

यह चूर्ण भिन्न-भिन्न अनुपान से अनेक रोगों में अच्छा लाभप्रद पाया है। मैं अपने यहां औषधालय में इसे ३० वर्ष से व्यवहार में ला रहा हूं और प्रायः ८० प्रतिशत लाभ होते पाया है।

उपयोग—१. चक्कर आने में—सौंठ ३ मासे, लवंग पांच नग पीसकर जल से दें। आधा कप जल डाल आधा तोला मिश्री या २ चम्मच शर्करा डाल १ उफान उतना मात्र उबल जावे, ३ ग्राम चूर्ण मुंह में डाल कवोष्ण यह पानी पी जावें। इसी तरह अनुपान से यह चूर्ण वमन, जीमिचलाना, अन्त में अरुचि हो तब भी बहुत लाभकारी पाया है।

२. विदग्धान्न से होने वाली जलन में—कवोष्ण दुग्ध से देने से लाभ होता है।

३. मूर्च्छा में—अचेतना होने पर चाय के साथ देने पर चेतना आती है।

४. उष्णवात-या मूत्रकृच्छ में—३ ग्राम चूर्ण में १ ग्राम श्वेतपर्पटी डाल या दूध की लस्सी बनाकर दें।

५. पैत्तिक अतिसार में केवल जल से देना चाहिए या बेल शर्बत में।

६. ग्रहणी में—पर्पटी के साथ भिन्न-भिन्न अनुपान से दिया जाता है।

रक्त पित्त में आंवले के मुरव्वे के साथ या चन्द्रकला रस भी साथ देवें तो अधिक शीघ्र लाभकारी होता है।

इस तरह यह चूर्ण रक्तप्रदर, रक्तार्श, तृष्णा, अरुचि, दाह, प्रमेह आदि विशेषकर पित्त जन्य विकारों में बहुत ही लाभप्रद पाया है।

नोट—यह योग सिद्धयोग संग्रह (वैद्य यादव जी त्रिक्रम जी आचार्य कृत) पुस्तक में भी देखने को मिला है। प्रायः समान ही योग है।

—वैद्य श्री शोभालाल हीरालाल शास्त्री ए. एम. एस.
प्रधान चिकित्सक—मोहता औषधालय
हिंगणघाट (वर्धा) महाराष्ट्र

नागबलार्जुन चूर्णयोः (द्विप्रयोगौ)

वैद्य श्री पं० रामशंकर शर्मा आयु० भिषक्

—०—

ग्रन्थ संदर्भ—भैषज्य रत्नावली, हृद्रोगे

मूलं नागबलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाययेत् ।
हृद्रोग श्वास कासघ्नं(२)ककुभस्य च वल्कलम् ॥
रसायनं परं बल्यं वातजिन्मांस योजितम् ।
सम्वत्सर प्रयोगेण जीवेद्वर्ष शतं ध्रुवम् ॥

घटक—नागवला (गंगेरण की जड़) का चूर्ण १ मासे की मात्रा से ४ मासे तक नित्य प्रातः सायं दोनों समय गो दुग्ध के साथ सेवन करें। या अर्जुन छाल का चूर्ण कर १ से ४ मासे तक दोनों समय–प्रातः सायं गोदुग्ध से सेवन करें तो हृद्रोग, श्वास तथा कास रोग में निश्चय ही लाभ होता है। इन्हीं योगों में से किसी एक योग का कम से कम एक मास तक अवश्य सेवन करना चाहिए। इससे वातज रोग भी नष्ट हो जाते हैं। जो रसायन विधि से निरंतर एक वर्ष तक सेवन कर लें तो उसके जीवन के दिनों में वृद्धि होना स्वाभाविक है।

अर्जुन को लेटिन भाषा में (Terminalia Arjuna व Terminalia Tomentosa) कहते हैं। आधुनिक संसोधकों के मत से अर्जुन की अपेक्षा "ऐन" ही हृद्रोग पर विशेष लाभकारी है। बाजार में अर्जुन छाल के साथ एन पेड़ की छाल मिली हुई मिलती है। कहीं-कहीं तो 'ऐन' को ही अर्जुन कहते हैं। आधुनिक संशोधकों का मत है कि अर्जुन छाल के जो महत्वपूर्ण गुण धर्म वैद्यक ग्रन्थ में हैं वह विशेष रूप से ऐन की छाल के ही हैं। अर्जुन के वृक्ष भी ऐन वृक्षों की तरह किन्तु ऊँचाई में उनसे छोटे लगभग ६० से ८० फीट तक श्वेत छाल युक्त होते हैं। लाल और श्वेत दो भेद हैं। श्वेत को अर्जुन और लाल को ऐन कहते हैं। आचार्य चक्रदत्त ने लिखा है कि—

घृतेन दुग्धेन गुड़ाम्भसावा पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये ।
हृद्रोग जीर्णज्वर रक्तपित्तं हत्वाभवेयुश्चिर जीविनस्ते ॥

अर्जुन छाल का चूर्ण घृत से या दूध से, या गुड़ से या जल से सेवन किया जाय तो हृद्रोग, जीर्ण ज्वर, रक्त पित्त रोग नष्ट होते हैं और वह चिरकाल तक जीता है।

अर्जुन के प्रयोग से हृदय को परिपूर्ण या यथा आवश्यक रक्त की पूर्ति होने से हृदय में संकोच, विकास और आराम तीनों क्रियायें मुख्यतः हुआ करती हैं।

हृद् शैथिल्य एवं तज्जन्य शोथोत्पत्ति में इसकी छाल का चूर्ण ६ मासे से १ तोला तक गुड़ में मिलाकर दूध के साथ या दूध के साथ पकाकर और छानकर पिलाने से लाभ होता है।

अर्जुन में हृदय शैथिल्य और उत्तेजक ये दो गुण एकत्र होने से हृद्रोग पर अति उत्तम कार्य करता है।

क्षयकारक जीर्ण ज्वर में भी हृदय अशक्त और नाड़ी बहुत तेज हो जाती है उस दशा में भी इसका प्रयोग उत्तम होता है। इसके उपयोग से रक्त में चूने के अंश के साथ ही रक्तकणों की वृद्धि होती है। शरीर के समस्त अवयवों में उत्साह की वृद्धि होती है।

अर्जुन वृक्ष की मोटी छाल ही लेनी चाहिए पतली छाल लाभकर नहीं होती। दूध के साथ सेवन कराया जाय तो दूध में मिश्री मिला लेनी चाहिए और यथा सम्भव खाली पेट ही सेवन कराना चाहिए। अर्जुन छाल का घन क्वाथ कर सत्व भी बनाया जा सकता है।

शीतवीर्य होती है। अतः यह वात पित्त शामक (मधुर विपाक होने से), अनुलोमक, स्नेहन, अम्लतानाशक, हृद्य, कफ निरसारक, वृष्य, गर्भ स्थापक, मूत्रल, दाहप्रशमन, रक्त स्तम्भक, वेदना स्थापक, व्रणरोपण, रसायन तथा कोष्ठगत वात, अम्लपित्त, विबंध, रक्तपित्त, हृद्रोग, नाड़ी दौर्बल्य, वात व्याधि, श्वास, कास, उरःक्षत, यक्ष्मा, स्वरभेद, शुक्र दौर्बल्य, रक्तप्रदर, गर्भपात, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह एवं पित्तज विषम ज्वर नाशक है। इसके क्षुप का मूल ही औषध कार्य में लेना चाहिए। जो क्षुप जंगल में और उत्तम स्थानों में उत्पन्न हों तथा जो बहुत कोमल तथा नया हो।

—श्री वैद्य पं० राम शंकर शर्मा आयु० भिषक्
विजयगढ़ (अलीगढ़)

नारसिंह चूर्ण

श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' भिषगाचार्य साहित्यायुर्वेदरत्न पचार, जिला सीकर (राज०)

प्रक्रिया लेखकानां क्व: क्व: चाहं विमूढधी: ।
गुरुचरणमाश्रित्य लेखोऽयं लिख्यते मया ।।

चक्रदत्त के वृष्याधिकार में यह नारसिंह चूर्ण आयुर्वेदीय कल्क कषाय कल्पना का एक महत्वपूर्ण प्रयोग है। इस प्रयोग की निम्नाङ्कित अमृतोपम घटक शोभा बढ़ाते हैं—
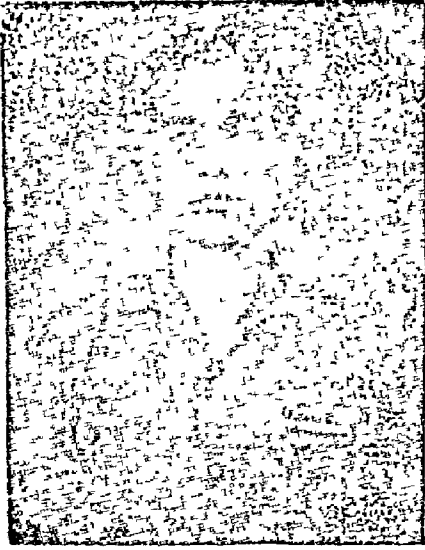
१. शतावरी	चूर्ण	१ प्रस्थ		७६८ ग्राम
२. गोक्षुर	,,	१ प्रस्थ		७६८ ,,
३. वाराहीकन्द	,,	२० पल		९६० ,,
४. गुडूची	,,	२५ पल	१ किलो	२०० ,,
५. मल्लातक	,,	३२ पल	१ किलो	५३६ ,,
६. चित्रकमूल	,,	१० पल		४८० ,,
७. शुद्ध कृष्ण तिल	,,	१ प्रस्थ		७६८ ,
८. शुण्ठी	,,	८ पल		३८४ ,
९. मिरच	,,	८ पल		३८४ ,,
१०. पिप्पली	,,	८ पल		३८४ ,,
११. शर्करा		७० पल	३ किलो	३६० ग्राम
१२. मधु		३५ पल	१ किलो	६८० ,,
१३. घृत		$१७\frac{१}{२}$ पल		८४० ,,
१४. विदारीकन्द चूर्ण		१ प्रस्थ		७६८ ,,

इन सब द्रव्यों को एक में मिलाकर चिकने पात्र में रखना चाहिए और मात्रानुसार प्रयोग में लेना चाहिये।

घटकों के रस, गुण, वीर्य, विपाक, कर्म—

द्रव्य	रस	गुण	वीर्य	विपाक	कर्म
१. शतावरी	मधुर, तिक्त	स्निग्ध, गुरु	शीत	मधुर	वातपित्तहर
२. गोक्षुर	मधुर	स्निग्ध, गुरु	शीत	मधुर	वातपित्तहर
३. वाराहीकन्द	मधुर, तिक्त, कटु	स्निग्ध, लघु	उष्ण	कटु	वातकफहर
४. गुडूची	तिक्त, कषाय	लघु, तीक्ष्ण	उष्ण	कटु	त्रिदोषहर
५. भल्लातक	मधुर, कषाय	स्निग्ध, गुरु, तीक्ष्ण	उष्ण	मधुर	वातकफहर
६. चित्रक	कटु, तिक्त	तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु	उष्ण	कटु	वातकफहर
७. कृष्ण तिल	मधुर	स्निग्ध, गुरु	उष्ण	मधुर	वातशामक
८. शुण्ठी	कटु	स्निग्ध, लघु	उष्ण	मधुर	कफवातहर
९. मिरच	कटु	तीक्ष्ण, लघु	उष्ण	कटु	कफवातहर
१०. पिप्पली	कटु	स्निग्ध, लघु, तीक्ष्ण	अनुष्ण शीत	मधुर	कफवातहर
११. शर्करा	मधुर	गुरु, सर	शीत	मधुर	वातपित्तहर
१२. मधु	मधुर	लघु, रूक्ष, सूक्ष्म	शीत	मधुर	कफपित्तहर
१३. घृत	मधुर	गुरु, स्निग्ध	शीत	मधुर	वातपित्तहर
१४. विदारीकन्द	मधुर	गुरु, स्निग्ध	शीत	मधुर	वातपित्तहर

१. शतावरी--भगवान् चरक ने वल्य, शुक्रजनन एवं प्रजास्थापन कषायों में शतावरी की गणना की है।

"वलाय हितं वल्यम्"—सर्वाङ्ग या शरीर के किसी विशेष अङ्ग के स्थाई वल को बढ़ाने वाली औषधियां (वल्य) कही जाती हैं। ये औषधियां अनुत्पन्न रोगों का प्रतिवन्ध एवं उत्पन्न रोग को दूर करने वाली शक्ति (Vitality) को बढ़ाती है। वल्य औषधियों के सेवन से जीवन क्रिया उत्तेजित होती है, आमाशय को वल मिलता, क्षुधा प्रदीप्त होती है, हृदय क्रिया एवं नाड़ी वलवती बनाती है, वात वाहिनियों की शक्ति में वृद्धि होती है। श्री कृष्णराम जी भट्ट ने पौष्टिक वर्ग में शतावरी की सर्व प्रथम गणना की है —

रसायनी स्वादुरसा गुर्वीहिमा
हिताहृशोः स्तन्यकरी शतावरी।
वलप्रदा मारुतपित्तरक्त-
रुक्क्षयानुसादश्वयथुव्ययथाहरी ॥
—सि. भै. मणिमाला २।६५

शतावरी शुक्र ग्रन्थियों की क्षीणता को विनष्ट कर शुक्र को बढ़ाती है। शुक्र में स्निग्ध गुरु शीत आदि गुण होते है। शतावरी शुक्र के समान गुणों वाली होने से शुक्र जनन है। रसिकराज लोलम्बराज कहते हैं—

भुक्त्वा वरीं क्षीरयुतां विलासी
भुङ्क्ते शतं सुन्दरि ! सुन्दरीणाम्।
—वैद्य जीवन ५।५

जो द्रव्य गर्भ की उत्पत्ति एवं स्थिति में बाधक दोष को नष्ट कर प्रजा की उत्पत्ति करते है वे प्रजास्थापन कहलाते हैं। ये द्रव्य गर्भाशय की विकृति एवं दुर्बलता को दूर कर उसकी कलावन्धन एवं पुष्टि करने में प्रभावकर होते हैं। गर्भावस्था में प्रयोग करने पर गर्भस्राव होने का भय नहीं होता है। शतावरी प्रजास्थापन के साथ स्त्री के सर्वाङ्ग को पुष्ट; करने में भी सहायक होती है। यह स्त्री जनन ग्रन्थियों पर प्रभाव डालकर उसके शरीरस्थ अन्तः स्रावों का संतुलन ठीक रखती है और गर्भिणी के स्तनों के विकास में सहायता पहुँचाती है। यह दुग्धवर्धक भी है। सुतरां मदनपाल नृपति ने इसे "शुक्रस्तन्यकरा" कहा है। शतावरी, चावल एवं जीरे के सम्मिलित चूर्ण को गोदुग्ध से कुछ दिन सेवन करने से दुग्ध वृद्धि होती है।

२. गोक्षुर—भगवान चरक ने "गोक्षुर को,मूत्रकृच्छ्रानिल हराणाम्" कहा है। मूत्र विरेचनीय, अनुवासनोपग एवं कृमिघ्न कषायों में गोक्षुर की गणना की है। इसकी क्रिया वृक्कों पर होती है। यह एक पौष्टिक मूत्रल औषधि है। अश्मरीजन्य मूत्रावरोध को भी अश्मरी द्रावक होने से दूर करता है। डाक्टरी मतानुसार उत्तेजक एवं शीतल दो प्रकार की मूत्रल औषधियां होती हैं। गोक्षुर शीतल मूत्रल औषधि (Refrigerant Diuretic) हैं। एतावता यह मूत्राशय एवं मूत्रमार्ग के प्रदाह को भी दूर करने में अद्वितीय है। ऐसी स्थिति में इसका फाण्ट उपयोगी है। एक प्रयोग है—

क्वाथे क्षुरोत्थे नवसारकेण
विकीर्य सञ्जीवनिकावचूर्णम्।
दीनोपकारप्रवणे ! नराणां
पीतं द्रुतं हि द्यति मूत्रकृच्छ्रम् ॥
—संजीवनी साम्राज्यम्

लघु पञ्चमूल का गोक्षुर द्रव्य होने से भी वातशामक यह है—

वातघ्न पित्तशमनं बृहंणं वलवर्धनम् ॥
—सुश्रुत सू० ३८।६७

जो द्रव्य अनुवासन द्रव्यों के साथ प्रयोग करने पर उसकी शक्ति बढ़ा देते हैं उन्हें अनुवासनोपग कहते हैं। उन द्रव्यों में गोक्षुर भी एक उत्तम द्रव्य है।

श्री विश्वनाथ द्विवेदी जी ने कृमिघ्न वर्ग के तीन भेद किये है—१. कृमिसूदन, २. कृमिप्रशमन ३. कृमिविकारघ्न। गोक्षुर कृमिसूदन होने के साथ कृमिविकारघ्न भी है, यथा सूत्रकृमि से वृक्कशोथ, रक्तमेह आदि लक्षण उत्पन्न होते है। गोक्षुर इन विकारों का शमन करने में सहायक होता है।

पित्त प्राधान्य प्रकृति वालों के लिए गोक्षुर शीतल, शुक्रल होने से वाजीकरण भी है। एक प्रयोग में गोक्षुर को प्राथमिकता दी है—

श्वदंष्ट्रेक्षुरमाषात्मगुप्ता बीज शतावरीः।
पिबन् क्षीरेण जीर्णोऽपि गच्छति प्रमदाशतम् ॥
—अ० हृदय उ० स्था० ४०।३४

३. वाराहीकन्द—वाराहीकन्द आनूप देश में उत्पन्न होने वाला अष्टवर्ग के ऋद्धि और वृद्धि का प्रतिनिधि द्रव्य

है। चक्रपाणि दत्त ने इसके विषय में कहा है— "पश्चिमे गृष्टिशब्दाख्य:"। पलाण्डुराजशतकम् नामक निघण्टु काव्य में एक योद्धा के रूप में इसकी कल्पना करते हुये वर्णन किया है—

स लोमशः शूकरवत् पराची
कन्दो महाशूकर नामधेयः।
कन्द प्रकाण्डस्य पुरश्चुकूर्दे
पराक्रमो देहमिव प्रपन्नः॥

—पलाण्डुराजशतक २२

वाराहीकन्द में स्टार्च अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। निघण्टु में इसके गुणों का इस प्रकार बखान किया गया है—

वाराही तु रसे स्वाद्वी तिक्ता पाके पुनः कटु।
शुक्रायुः स्वरवर्णाग्निबलपित्तविवर्द्धिनी ।
कफकुष्ठमरुन्मेह कृमिहृच्च रसायनी॥

—कैयदेव निघन्टु

रसायनार्थ—वाराहीकंदमार्द्रार्द्र क्षीरेण क्षीरपः पिबेत्।

—अ. हृ. उ. ३९।५८

४. गुडूची—"सर्वौषधीनाममृता प्रधाना" कह कर गुडूची का प्रशस्तिबखान किया गया है। यह त्रिदोष शामक है—

घृतेन वातं सगुडा विबन्धं,
पित्तं सिताढ्या मधुना कफञ्च।
वातास्रमुग्रं कटुतैलमिश्रा,
शुंठ्यामवातं शमयेद् गुडूची॥

—मदनविनोद नि० १।४३

जो द्रव्य दोषों का संशोधन नहीं करते और जो सम होते हैं उनको बढ़ाते नहीं और कुछ दोषों से हुई क्रिया को सम करते हैं उन्हें शमन कहते हैं। अमृता उनमें सर्वोत्कृष्ट द्रव्य है—

न शोधयति न द्वेष्टि समान् दोषांस्तथोद्धतान्।
समीकरोति विषमाञ्छमनं तद्यथाऽमृता॥

—शा. प्र. ख. अ. ४

नव्य मतानुसार गिलोय Columba की प्रतिनिधि औषधि है। इसमें भावी रोगोत्पत्ति निवारक (Antiperiodic) गुण है। यह जरा व्याधिनाशक होने से रसायन है। अमृतासर्वस्व नामक रसायन सप्तधातुगत ज्वर आदि व्याधियों का विनाशकर धातु वृद्धि करने एवं व्याधि क्षमत्व संपादित करने में अद्वितीय अनुभूत प्रयोग है—

१०० भाग अमृता चूर्ण तैयार कर लें, २० भाग घृत में ८ भाग गुड़ गरम कर पिघला लें और उसमें उक्त चूर्ण मिला दें। फिर शीतल होने पर गुड़ के समान मधु मिला कर कांचपात्र में रखें। आवश्यकतानुसार मात्रा में प्रयुक्त करें। —आयुर्वेद भूषण पं० श्री हरि शास्त्री

भगवान चरक ने इसे वयः स्थापन कहा है। जो द्रव्य तरुण वयः को स्थापित करता है वह वयः स्थापन कहा जाता है। इसी प्रकार दाह प्रशमन एवं तृष्णानिग्रहण गणों में भी गिलोय का उल्लेख किया गया है। अधिक मद्यपान, मर्माभिघात, रसक्षय, धातुक्षय आदि कारणों से रक्त में पित्त अधिक संग्रहीत होकर दाह, दवथु, ओप, चोस-प्लोष उत्पन्न करता है। गिलोय इन विभिन्न प्रकार के दाहों को शान्त करने के कारण सर्वांगिक दाहशामक है—

अमृतममृतजं निराकरोति द्रुतमुपलाकलितं करालपित्तम्।

—चमत्कार चिन्तामणि ४।२१

सौम्यधातु प्रदूषण या अम्बुवाही स्रोतःदुष्टि से तृष्णा की उत्पत्ति होती है। तृष्णा के निवारणार्थ गुडूची उत्तम भेषज है—

नीलोत्पल मधु लाज, कुष्ठ गुडूची गोस्तनी।
तृषा निवारण काज, उत्तम ये भेषज सभी॥

५. भल्लातक—आचार्य सुश्रुत ने कल्पस्थान द्वितीय अध्याय में स्थावर विषों के दश अधिष्ठान कहे हैं। उनमें फलविष १२ हैं, जिनमें भल्लातक एक प्रमुख विष है। यह अग्निसम तीक्ष्ण विष होने पर भी यथाविधि प्रयुक्त करने पर अमृत तुल्य बन जाता है—

भल्लातकानि तीक्ष्णानि पाकीन्याग्निसमानि च।
भवन्त्यमृतकल्पानि प्रयुक्तानि यथाविधि॥

—चरक चि० १।२।६७

घृत, दुग्ध, सिता एवं तिल भल्लातक विषशामक होने के साथ इसके गुणों में वृद्धि करते हैं सुतरां इस योग में भल्लातक के साथ इन द्रव्यों का भी समावेश किया गया है। भगवान चरक ने मूत्र संग्रहणीय, दीपनीय एवं कुष्ठघ्न कषायों में भल्लातक की गणना की है। मूत्र को गाढ़ा

करने वाले द्रव्यों को मूत्र संग्रहणीय कहा जाता है। सुतरां प्रमेह की विभिन्न अवस्थाओं में चरक चि० ६।३८,४५ सुश्रुत चि० ११।१०, और अष्टांग हृदय चि० १२।१८ में भल्लातक की उपयोगिता प्रकट की गई है।

वातकफ जन्य अजीर्ण एवं मन्दाग्नि के उपद्रवों को दूर करने में भल्लातक उत्तम द्रव्य है—

कफजो न स रोगोऽस्ति न विबन्धोऽस्ति कश्चन।
यं न भल्लातकं हन्याच्छीघ्रं मेघाग्निवर्धनम्॥

—चरक चि० १।२।१६

महाकुष्ठ वृहदन्त्र की विकृति से उत्पन्न होते है। मलावरोधक से उत्पन्न दुष्ट वायु पित्त कफ को दूषित करता है जिससे सेन्द्रियविष की उत्पत्ति होती है। यह विष त्वचा, रक्त, मांस आदि में पहुँचकर कुष्ठ को जन्म देता है सुतरां कुष्ठ की शमन चिकित्सा में भल्लातक, शिलाजीत, गुग्गुल, स्वर्णमाक्षिक लाभकारी सिद्ध होते हैं। यह त्वचा के लिए उत्तेजक होने से बाह्य प्रयोगार्थ तैल रूपेण उपयोगी है।

यह केन्द्रीय (Central) वेदनाहर होने से वात व्याधिहर है—

तिल प्रस्थो गुड प्रस्थो भल्लातकपलद्वयम्।
पालकी गुटिका हन्ति वातव्याधिः शनैः शनैः॥

—सि० भे० मणिमाला ४।४६२

यह शुक्रस्रुति-वृद्धिकर द्रव्य है। अमृत भल्लातक नामक रसायन वृष्य प्रयोग से कौन वैद्य अपरिचित है। समासतः इसके गुण निम्नङ्कित हैं—

भल्लातकः कटुस्तिक्त अत्युष्णः क्रिमिनाशनः।
रसायनो बलकरो गुल्मार्शोग्रहणीहरः॥
कुष्ठामयप्रशमनः कफ वातोदरापहः।
विबन्धाध्मानशूलघ्नः श्वासादिगदनाशनः॥

—रसतरङ्गिणी २४।४८०-८१

६. चित्रक—भगवान चरक ने लेखनीय, भेदनीय, तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, शूलप्रशमन आदि दशेमानि में इसका उल्लेख किया है। जो द्रव्य शरीर में मेद और कफ को सुखाकर शरीर को कृश करे वे लेखनीय कहे जाते हैं। ये द्रव्य वायु व अग्निगुण भूयिष्ठ होते हैं। शिलासिंदूर, रौप्य भस्म, ताम्र भस्म आदि के साथ चित्रक देने से उत्तम लेखन होता है। शल्यतन्त्र में व्रण पर उभरे हुए कठिन मांस आदि को छीलने को लेखन कहते हैं। यह कार्य जिस द्रव्य से संपादित होता है उसे लेखनीय कहा जाता है। नव्य चिकित्सक भी विद्रधि को पकाकर फोड़ने के लिए इसके मूल का लेप करते हैं। शरीर के स्रोतों में जमे हुए कफादि दोष और आंतों में जमे हुए सूखे मल को पतला कर बाहर निकालने वाले द्रव्य भेदनीय कहे जाते हैं। अधःकाय संशोधन के प्रधान चार भेद हैं—अनुलोमन, स्रंसन, भेदन और विरेचन। इनमें अनुलोमन और स्रंसन सामान्य विरेचन हैं एवं भेदन और विरेचन विशेष विरेचन। भेदन हेतु चित्रक उत्कृष्ट द्रव्य है। यह आंतों में क्षोभ उत्पन्न कर साम्वेदनिक नाड़ी मंडल पर प्रभाव डालकर द्रवत्व की वृद्धिकर आंत्र की पुरस्सरण क्रिया को बढ़ाता है।

चित्रकमूलत्वक तीक्ष्ण होने से आमपच्यमानाशय में रक्त की वृद्धि करता है। यह यकृत, अग्न्याशय आदि ग्रंथियों के पाचक रसों की वृद्धि करने के कारण उत्तम दीपनीय भी है। इसी प्रकार यह तृप्ति नामक श्लेष्मविकार का भी विनाश करता है। भेदनीय एवं दीपनीय होने से चित्रक अर्शोघ्न भी है। वातज कफज अर्शरोगों में विद्वद्वरेण्य वाग्भट ने दूध में चित्रक मूल चूर्ण अवचूर्णित कर उससे बनाये गये तक्र के सेवन की सलाह दी है। भगवान् चरक ने चित्रक लिप्त कुम्भ में जमाये गये तक्र सेवन को उत्तम कहा है—

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत्।
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत्॥

—चरक चि० १४।७६

भगवान चरक ने सूत्र २०/१२ में शूल को वायुविकार कहा है। शूल नामक रोग अधिकांशतः कोष्ठाश्रित वात विकृति में व्यवहृत होता है। भगवान चरक ने जिन दश शूल शमन द्रव्यों का उल्लेख किया है वे आम पाचक, श्लेष्महर, वात शामक व पित्त प्रसादक हैं। आमवाताविकार का एक योग है—

एरण्डमूलत्रिफला गोमूत्रं चित्रकं विषम्।
गुञ्जैका घृतसंपन्ना सर्वान् वातान् विनाशयेत्॥

—रसेन्द्र चिन्ता० आम० ३।

चित्रक का रसायन रूप में भी प्रयोग होता है जिसका वर्णन विद्वद्वरेण्य वाग्भट ने उत्तर स्थान अध्याय ३९ में किया है।

७. कृष्ण तिल—पुरीष का प्राकृत वर्ण करने वाले पुरीष विरजनीय एवं स्वेदन औषधियों की कार्मुकता बढ़ाने वाले स्वेदोपग द्रव्यों में तिल की गणना की गई है। ये व्रणालेपन पाचन हेतु भी उपयुक्त हैं। बहुमूत्र में ये अत्यन्त उपयोगी हैं—

यथा बहुलमूत्रत्वे तिला वैद्यैः किलाहृताः।
तथा न किञ्चिदपरं भेषजं प्रतिभाति मे ॥

—सि. भे. मणि० ४।५७७

किसी वृहद आशय या विस्तीर्ण स्थान में दाह-शोथ का आरम्भ होने पर उस स्थान में वात शक्ति विशेष मात्रा में संग्रहीत होती है। इस हेतु से इतर आशयों में से इस शक्ति का ह्रास होता है। परिणाम में जीवनीय शक्ति अवसन्न हो जाती है। ऐसे समय में जो उत्तेजक (Stimulant) औषधियां प्रयुक्त की जाती हैं उनमें तिल भी एक उपयोगी औषधि है।

तिल और मूली का सेवन करने से त्वचा के नीचे संग्रहीत जल का आचूषण होकर शोथ दूर हो जाता है। तिल और गोक्षुर के सेवन से षण्ढ़ता दूर होती है—

तिल गोक्षुर चूर्णेन साधितं छागलं पयः।
पीत्वा सशर्करा क्षौद्रं शीघ्रं गच्छति षण्ढता ॥

— योग रत्नाकर

शीघ्रपतन में काले तिलों का चूर्ण, दालचीनी, काली अरणी के पान, घीकुंवार का गूदा और भाँगरा पत्र सबको कूट छानकर मधु में मिलाकर एक दो माशा की गोलियाँ बना छाया में सुखा लें। एक घन्टे पूर्व एक दो गोली सेवन करें।

—व्यापक जी रामायणी

तिल दाँतों के लिए भी लाभकारी हैं। आधा छटांक काले तिल प्रातः दांतुन करने के बाद बिना कुछ खाये पिये धीरे-धीरे खूब चबाकर खाने से दाँत मजबूत होगें, काया कंचननुमा बनेगी।

—वैद्य बल्देव जी पनारा (शुचि जून ७५)

तिल त्वचा के लिए भी लाभदायक हैं। तिलस्थ स्नेह से त्वचा में स्थित 'सीवम' ग्रन्थियाँ अधिक क्रियाशील होकर स्निग्धता सम्पादित करती हैं। एक व्यङ्गनाशक लेप है—

कृष्णैस्तिलैरसित जीरक जीरकाभ्यां
सिद्धार्थकैश्च विहितैर्मसृणप्रपिष्टैः।
दुग्धान्वितो वदनचन्द्रमसः प्रलेपो
व्यङ्गं विलुम्पति मुहुः परिशील्यमानः ॥

—राजमार्तण्ड ४/१८

तिलों में कृष्ण तिल ही सर्वोत्कृष्ट होने से उपयोग में लाये जाते हैं—"तिलेषु सर्वेष्वसितः प्रधानः" (सुश्रुत सू० ४६)। इनके मुख्य गुण ये हैं—

बल्यः केश्यो हिमस्पर्शस्त्वच्यः स्तन्यो व्रणे हितः।
दन्त्योऽल्पमूत्रकृद् ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः ॥

—भावप्रकाश नि० ८/६६

८. शुण्ठी—दीपनीय, तृष्णानिग्रहण, शूलप्रशमन, तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, शीतप्रशमन, एवं स्तन्य शोधन, दशेमानि कषायों में शुण्ठी की गणना की गई है। हृद्य एवं वृष्य होने से इस योग में इसका समावेश किया गया है—

नागरं कफवातघ्नं विपाके मधुरं कटुः।
वृष्योष्णं रोचनं हृद्यं सस्नेहं लघु दीपनम् ॥

—सुश्रुत सू० ४६/२२६

९. मरिच—यह दीपनीय, कृमिघ्न, शिरोविरेचन और शूलप्रशमन कषायों की प्रमुख औषधि है। अपनी शक्ति से स्रोतों से अर्थात् रस रक्तादि वहन करने वाले मार्गों तथा कर्ण, मुख, नासा आदि छिद्रों से दोषों के संचय को दूर करने के कारण मरिच प्रमाथि द्रव्य है—

निजवीर्येण यद् द्रव्यं स्रोतेभ्यो दोषसञ्चयम्।
निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥

—शार्ङ्ग० प्र० खं० ४

कफोत्क्लेशन करने के कारण मरिच उत्तम छेदन द्रव्य हैं। भावमिश्र व खरनाद ने इसे वातकफशामक कहा है। वाग्भट्टाचार्य ने पित्त प्रकोपक एवं कफघ्न कहा है—

पित्तप्रकोपि तीक्ष्णोष्णं रूक्षं दीपनरोचम्।
रसे पाके च कटुकं कफघ्नं मरिचं लघु ॥

—अ० हृदय सू० ६/१६९

१०. पिप्पली—दीपनीय, कण्ठ्य, आस्थापनोपग, शिरोविरेचन, हिक्कानिग्रहण, कासहर, शीतप्रशमन और शूल प्रशमन आदि दशेमानि द्रव्यों में पिप्पली भी एक द्रव्य है।

छर्दि, श्वास एवं हिक्का विनाशार्थ कविराज जयदेव जी ने सुन्दर श्लोक में चिकित्सा प्रकट की है—

सकणं शिखिपिच्छकृतं भासितं
रसितं मधुना वमनापहरम् ।
गलहस्तयति प्रबलं श्वसनं
त्वरितं सुखयत्यपि हिक्किजनम् ॥
—सि० भै० मञ्जूषा हिक्का० २

यह कटु होते हुए भी वातशामक एवं वृष्य है—"प्राय: कटुकं वातलमवृष्यं चान्यत्र पिप्पली विश्वभेषजात् ।"
—चरक सू० २७/४

रसायनार्थ भगवान् चरक ने चि० १/३ में "वर्धमान पिप्पली रसायन" का उल्लेख किया है।

११. शर्करा—इसे शोणितस्थापन द्रव्यों में गिना गया है। सुश्रुत संहिता के व्याख्याकार डल्हण और चरक संहिता के व्याख्याकार योगीन्द्रनाथ ने रक्तस्राव को रोकने वाले द्रव्यों को शोणित स्थापन कहा है। चरक चतुरानन चक्रपाणि ने रक्त की विकृति को दूरकर उसको स्वाभाविक स्थिति में लाने वाले द्रव्य को शोणित-स्थापन कहा है। अष्टांग संग्रह के व्याख्याकार इन्दु ने रक्त की वृद्धि एवं स्थिरता करने वाले द्रव्य को शोणित स्थापन कहा है। आयुर्वेदशास्त्राचार्य श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी को प्रथम व्याख्या ही मान्य है।

आमाशय, मस्तिष्क एवं हस्त-पाद तलदाह का निवारण करने के कारण शर्करा दाह प्रशमन एवं ज्वरहर है। ससीका, फाणित, गुड़, खण्ड, मत्स्यण्डिका और सिता क्रमशः निर्मल, लघु एवं शीत वीर्य होते हैं—

श्वेतोपलानिलवमिज्वर रक्तपित्त-
दाहानिहार्दयति सौम्यगुणा सशुक्रा ।
—सि. भै. मणि० २।२७६

इक्षुविकारों में यह पथ्यतम है। —चरक. सू. २५

१२. मधु—"मधु श्लेष्मपित्त प्रशमनानाम्" —चरक
"योगवाहि परं मधु ।" —चरक सू० २७

आचार्य शार्ङ्गधर ने मधु को भेदनीय एवं संधानीय कहा है। मानव शरीर को शक्तिशाली बनाये रखने के लिए जिन तत्त्वों की आवश्यकता होती है वे सब मधु में पाये जाते हैं। होम्योपैथिक डा० ई० पी० एन्सूज ने भी मधु को अत्यन्त उपयोगी बतलाया है। प्रातः निम्बू और मधु कवोष्ण जल में मिलाकर लेने से स्फूर्ति प्रतीत होती है। शारीरिक और मानसिक शक्ति प्राप्त्यर्थ मधु सुखाद है। यह हृद्य, आयुवर्द्धक, अनिद्राहर, मेदोरोगहर, वृक्क रोगहर, रक्तशोधक एवं विसर्प व्रण नाशक है। भोजनोपरान्त एक चम्मच मधु के सेवन से रोगजन्य दुर्बलता दूर होती है। बच्चों के दन्तोद्भेदरोग, विबन्ध, कृमि, श्वसनक ज्वर, शय्यामूत्र आदि रोगों में यह हितकारी है।

१३. घृत—सब प्रकार के स्नेहों में संस्कारानुवर्तं होने से घृत को सर्वोत्कृष्ट कहा गया है। विद्वान व्याख्याकार इन्दु ने स्पष्ट किया है—

स्वगुणानजहत् संस्कारगुणान् गृह्णातीति संस्कारानुवर्ती। न ह्येतद् तैलादिषु सम्भवति ते हि स्वगुणास्त्यजन्ति तथा च चन्दनादौ तैलादीनां विपरीतैर्द्रव्यान्तरैरोष्ण्याविनाशो भवति नहि स्नेहनाशस्तस्य बहुत्वात् तथा माधुर्यगुणयोगाच्च सर्पिरेवोत्तमम् । - शशि लेखा

शर्करा-क्षीर-सर्पि को सर्वोत्तम रसायन कहा गया है—
शर्करा क्षीर सर्पींषि सर्वेषां विद्धि बृंहणम् ।
—चरक सू० २२।२८

सौभाग्य पुष्टिबलशुक्रविवर्द्धनानि
किं सन्ति नो भुवि बहूनि रसायनानि ।
कन्दर्पवर्द्धिनि ! परन्तु सिताऽऽज्ययुक्ताद्
दुग्धादृते न मम कोपि मतः प्रयोगः ॥
— वैद्य जीवन ५।८

आचार्य सुश्रुत ने सूत्र ४५/९६ में घृत को सौम्य, वातपित्तशामक, दीपन, स्मृति-मेधा-कान्ति-बलकर, आयुष्य, वयःस्थापन, चक्षुष्य, पापालक्ष्मी प्रशमन, विषहर एवं रक्षोघ्न कहा है। अत्यन्त गुणकारी होने से ही कहा गया है—

अन्नाद्दशगुणं पिष्टं पिष्टाशगुणं पयः ।
पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसाद्दशगुणं घृतम् ॥

घृत सदैव शुद्ध ही ग्रहण करना चाहिए। इस निमित्त परीक्षण निम्न प्रकार से कर लेना उपयुक्त है—

एक परखनलिका में १० सी० सी० घृत डालकर उसे गरम कर पिघलावें। उसमें ८ सी०सी० लवणाम्ल (Hydrochloric Acid) डालकर ५ बूंद Furforol solution

की डालें। असली घी होने पर घी के वर्ण में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। वनस्पति घी होने पर लाल रंग उत्पन्न हो जायेगा।

—द्रव्य परीक्षा (वैद्य श्री वनवारी लाल जी)

गव्यं सर्पिः सर्पिषां हिततमम्—च० सू० २५

होने से यहाँ गोघृत का ही उपयोग करना समीचीन है।

१४. विदारीकन्द—वृंहणीय, कंठ्य, वल्य और स्नेहोपग कषायों में विदारीकन्द का समुल्लेख है। जो द्रव्य शरीर को पुष्ट करते हैं या मोटापन लाते हैं उन्हें वृंहणीय और जो द्रव्य वल देने वाले होते हैं वे वल्य कहलाते हैं। वृंहण द्रव्य वल्य होते हैं—(वृंहण द्रव्याणि वल्यानि)। लोलिम्वराज कहते हैं—

सहितं घृतदुग्धाभ्यां विदारिप्रभवं रजः।
उदुम्वरमितं भुक्त्वा वृद्धोऽपि तरुणायते॥

—वैद्य जीवन ५।७

(सुश्रुत० चि० २६।२८, चक्रदत्त वृष्य० ५)

क्वचित् तीक्ष्ण वस्तु खाने में आ जाने से, कंठ आदि में दाह हो जाता है। उग्रविष या इतर पदार्थों के सेवन से श्लेष्मिक कला में उग्रता उत्पन्न हो जाती है तो विदारीकंद स्नेहोपग एवं कण्ठ्य होने से अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है।

विदारीकन्द उत्तम वृष्य एवं स्तन्यवर्धक है। विदारीकन्द अल्प क्षीर एवं बहुक्षीर (क्षीर विदारी) भेद से दो प्रकार का होता है जिनमें द्वितीय श्रेष्ठ है—

विदारीकन्दः स द्विविधः एको दीर्घकन्दो बहु क्षीरः क्षीर विदारीति व्यवह्रियते, अन्यो हस्तिपादकोऽल्पक्षीरः।

—भानुमति (सुश्रुत० सू० ३८।४)

अन्य गुण वर्णन में श्री कृष्णराम जी कहते हैं—

स्निग्धा हिमा समधुरा स्वरदाऽतिवृष्या
मूत्रप्रदा गुरुरतीव रसायनी च।
पित्तास्रमारुतविदाहरुजो विदारी
स्तन्या विदारयति दाररतिं ददाति॥

—सि० भे० मणि० २।६५

दाररतिं ददाति वाजीकरणत्वात्।

—श्री लक्ष्मी राम जी

एक उत्तम बाजीकरण योग है—

विदारिका श्वदंष्ट्रा च सिताज्यं मधु संयुतम्।
लीढ्वा निपीय दुग्धं च नारीणां शतमावहेत्॥

—कुचिमार तन्त्रम् ४।३०

गुण—धर्म एवं प्रयोग—

उपर्युक्त द्रव्यों से निर्मित यह चूर्ण त्रिदोषशामक है। उपर्युक्त अवस्था पर उपयुक्त अनुपान से प्रयुक्त यह सर्वरोगहर चूर्ण लाभदायक सिद्ध होता है। वैसे यह चूर्ण मुख्य रूपेण वातशामक एवं वाजीकरण है। यादव जी महाराज ने अपने सिद्धयोग संग्रह में वातरोगाधिकार में इसका वर्णन किया है। इसकी मुख्य कार्मुकता हेतु वर्णन किया है—

नारसिंहमिदं चूर्णं वातरोगहरं नृणाम्।
बल्यं वृष्यं तथा चैव रसायनवरं स्मृतम्॥

"प्रायो वृद्धिर्हितर्पणात्" होने पर भी वायु की वृद्धि तर्पण (वृंहण) से न होकर अपतर्पण (लंघन) से होती है एतावता जहाँ वातरोगों में तर्पण की आवश्यकता समझी जाय वहाँ निर्दिष्ट क्वाथ के अनुपान से इस चूर्ण का उपयोग करना लाभदायक है—

सरणी नागवला वला वर्षाभू दशमूल।
क्वथित कलित सेवत सदा वातामय निर्मूल॥

वृ० उपनिषद में कहा गया है कि "सर्वेषां (मांसारिकाणां) आनन्दानां उपस्थ एवैकायनम्"। फ्रायड आदि ने भी इन्हीं उक्तियों की व्याख्या की है। कामसूत्र की जयमंगला व्याख्या में यशोधर ने कहा है कि—"धर्मार्थयोर्हेतुत्वात्फल भूतः काम एव प्रकृष्टः पुरुषार्थ इति कामवादिनः"। यश, श्री आदि भी सन्तानाधीन होने से अपत्यसंतानकर बाजीकरण की आयुर्वेद में आवश्यकता प्रकट की है। नरसिंह निभ पुत्रप्रद एवं शतस्त्री भोग सामर्थ्यप्रद होने से नारसिंह चूर्ण का शास्त्र में विशेष महत्व प्रकट किया है। भल्लातक, विदारीकन्द, शतावरी, गोक्षुर एवं गोघृत आदि शुक्रवृद्धिकर द्रव्यों के समुच्चय इस चूर्ण के प्रयोग से शुक्र क्षय जन्य नपुंसकता विनष्ट होती है। ऐसी स्थिति में स्त्री प्रसङ्ग का निवारण एवं घी, दूध, रवड़ी, मलाई आदि पौष्टिक द्रव्यों का प्रयोग भी आवश्यक है। पुष्टि हेतु कहा गया है—

अचिंतया हर्षणेन ध्रुवं सन्तर्पणेन च।
स्वप्नप्रसंगाच्च कृशो वराह इव पुष्यति॥

—अष्टांग हृदय सू० १४/३०

कतिपय वर्णित रोगों में दोषादि की विवेचना करने के पश्चात् यथावश्यक संशोधन कर नारसिंह चूर्ण का उपयोग

करें। जहाँ बृंहण की उपयोगिता समझी जाय, वहाँ नारसिंह चूर्ण उपयोगी सिद्ध होता है। विस्तारभय से अधिक विश्लेषण न कर कुछ प्रयोग यहाँ दिये जा रहे हैं। लक्ष्मीराम जी महाराज के ये शब्द यहाँ समीचीन होंगे—

लेशोक्तं सुधियः स्वयं सुबहुधा ह्यर्थं स्फुटीकुर्वते।
मन्दानामधिकं प्रजल्पितमनुत्साहस्य संवर्धकम्॥

१. पाण्डु रोग पर—स्वर्णमाक्षिक भस्म १२५ मिग्रा०, मण्डूर भस्म २५० मिग्रा०, नारसिंह चूर्ण ५ ग्राम। यह १ मात्रा कुटकी, पुनर्नवा, त्रिफला, चिरायता क्वाथ के अनुपान से सेवन करें।

२. हलीमक में—ताप्यादि लौह १२५ मिग्रा०, अभ्रक भस्म १२५ मिग्रा०, प्रवाल पिष्टी २५० मिग्रा०, नारसिंह चूर्ण ५ ग्राम, एक मात्रा प्रातःकाल नवनीतरहित तक्र से एवं सायंकाल अर्कमकोय २५ मिली०+गोमूत्र २५ मिली० के अनुपान से देवें।

३. क्षय में—मुक्तापिष्टी ५० मिग्रा०, स्वर्ण भस्म ५० मिग्रा०, प्रवालपिष्टी १२५ मिग्रा०, नारसिंह चूर्ण ५ ग्राम १ मात्रा १० ग्राम च्यवनप्राश में मिलाकर अजादुग्ध से सेवन करें।

४. कुष्ठरोग में—सारिवा, खदिर, सोमराजी, मंजिष्ठा चूर्ण ३ ग्राम, नारसिंह चूर्ण ३ ग्राम—१ मात्रा—महातिक्त घृत में मिलाकर सेवन करें।

५. प्रमेह में—त्रिवंग भस्म १२५ मिग्रा०, प्रवालपिष्टी १२५ मिग्रा०, शिलाजीत सत्व १२५ मिग्रा०, निशा चूर्ण १ ग्राम, नारसिंह चूर्ण ५ ग्राम, १ मात्रा गोदुग्ध से।

६. मूत्रकृच्छ् में—कलमीशोरा १ ग्राम, राजिका चूर्ण १ ग्राम, नारसिंह चूर्ण ५ ग्राम। १ मात्रा—तृणपञ्चमूल क्वाथ से।

७. अर्श पर—एलवा १२५ मि० ग्राम, निम्बबीज चूर्ण १ ग्राम, वब्बूल पुष्प चूर्ण १ ग्राम, नागकेशर चूर्ण २ ग्राम, नारसिंह चूर्ण ३ ग्राम। १ मात्रा—मृद्विका पायस से।

८. उदररोगों में—गोमूत्र भावित हरीतकी चूर्ण १ ग्राम, इन्द्रायण वीज मज्जा १ ग्राम, शरपुंखा चूर्ण १ ग्राम, कपर्द भस्म ५०० मि० ग्राम, मण्डूर भस्म २५० मि०ग्राम, नारसिंह चूर्ण ३ ग्राम। १ मात्रा—उष्ण जल से।

९. गृध्रसी—चोपचीनी चूर्ण ५०० मि० ग्राम, शोभाञ्जन निर्यास १ ग्राम, एरण्ड फल मज्जा २ ग्राम, नारसिंह चूर्ण ४ ग्राम। १ मात्रा—महारास्नादि क्वाथ से।

१०. कास रोग पर—पुष्करमूल चूर्ण २ ग्राम, बहेड़ा चूर्ण २ ग्राम, नारसिंह चूर्ण ४ ग्राम। १ मात्रा—आर्द्रकरस, मधु, मिश्री मिलाकर मुलेहठी, कुलिञ्जन के क्वाथ से सेवन करें—

मधुक कुलिञ्जन क्वाथ, आर्द्रकरस मधु, शर्करा।
कास विकास अकाथ, गुणकारी गल रोग में॥

११. श्वास में—अर्कदुग्ध भावित शुभ्रा भस्म ५०० मि० ग्राम, शुद्ध सौभाग्य ५० मि० ग्राम, अजवाइन चूर्ण २ ग्राम, नारसिंह चूर्ण ४ ग्राम। १ मात्रा—दिन में तीन वार मुलैठी के २० ग्राम क्वाथ से

१२. पीनस रोग में—धातु क्षीण होने से कृश शरीर में सर्दी-गर्मी का प्रभाव शीघ्र हो जाता है अतः वहां यह व्यवस्था आवश्यक है—

नारसिंह चूर्ण ६ ग्राम, मुलैठी, मुनक्का, इलायची, अजवाइन, दालचीनी, अंजीर, बहेडा और वनफ्सा के क्वाथ से सेवन करें।

मधुक मृद्वीका द्राविडी, उग्रा वर अंजीर।
अक्ष वनफशा क्वाथ यह, मेटे पीनस पीर॥

१२. सौन्दर्य वृद्धि हेतु—रौप्य भस्म ६५ मि०ग्राम, केशर ०.२ ग्राम, विडंग कूर्ण २ ग्राम, नारसिंह चूर्ण ४ ग्राम। १ मात्रा—गोदुग्ध से सेवन करें।

—श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' भिष०
पचार (सीकर) राजस्थान

नारायण चूर्ण

योग नाम—नारायण चूर्ण।
ग्रन्थ नाम—भैषज्य रत्नावली।
उपयोग—उदर रोग।

घटक—अजवायन १० ग्राम, हाऊवेर, धनियां १०-१० ग्राम, त्रिफला ३० ग्रा. मिलित, कालाजीरा, सौंफ, पिप्पली मूल, अजमोद, कचूर, दुधवच, सोयाबीज, श्वेत-

जीरा ये सभी १०-१० ग्रा०, त्रिकटु ३० ग्रा० मिलित। स्वर्णक्षीरी की जड़ १० ग्रा०, चित्रकमूल १० ग्रा०, क्षारद्वय २० ग्रा., पुष्कर मूल १० ग्रा., कुष्ठ १० ग्रा., पंचलवण ५० ग्रा., विडंग १० ग्रा., दन्ती की जड़ ३० ग्रा., निशोथ २० ग्रा., इन्द्रायण की जड़ २० ग्रा., सातला की जड़ ४० ग्राम।

निर्माण विधि—

सभी को कूट पीसकर कपड़छन कर रखें।

मात्रा—६ माशे।

अनुपान—पृथक-पृथक रोगों में पृथक-पृथक।

उपयोग—उदर रोगों पर

विशेष अनुपान—

उदर रोगों में—मट्ठे के साथ

गुल्म रोग में—बेर के क्वाथ से या पत्रों के स्वरस से

आध्मान में—सुरा

वातव्याधि मे—प्रसन्ना

विविध रोगों में—दही के पानी से

अर्श में—दाड़िम के फलों के रस से

परिकर्तिका में—वृक्षाम्ल क्वाथ से

अजीर्ण में—गर्म जल से।

इसके अतिरिक्त यह चूर्ण भगन्दर, पाण्डु रोग, कास, श्वास, गलग्रह, हृदय रोग, ग्रहणी के विकार, कुष्ठ, अग्निमांद्य, ज्वर, दंष्ट्राविष, मूलविष, गरविष और कृत्रिम विष में भी अत्यन्त लाभकारी है।

विशेष वक्तव्य—

इस चूर्ण का प्रयोग करने से पूर्व रोगी को स्निग्ध कोष्ठ कर लेना चाहिए। इस चूर्ण से विरेचन होकर उदरस्थ वातनाड़ियों की एवं आमाशय अन्त्रस्थ विकृतियाँ दूर होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

एक जलोदर के गरीब रोगी को केवल इसी का प्रयोग मट्ठे के साथ किया गया। पथ्य में केवल दुग्ध तथा गोमूत्र का प्रयोग रखा गया था। रोगी दो माह में पूर्ण स्वस्थ हो गया था।

एक अन्य विवाहिता पर भी इसका प्रयोग किया गया था उसको मलग्रन्थि एवं आनद्धवात थीं। उसे भी इसके प्रयोग काल में दुग्ध सेवन ही कराया गया था वह भी स्वस्थ हो गई। वास्तव में इसमें सभी घटक पाचक, दीपक, एवं विरेचन अधिकार के हैं।

अग्निमांद्यजन्य सभी रोगों में प्रायः मलावरोध एवं उदरशूल रहता है, कभी-कभी मल की ग्रंथियाँ बन जाने पर विशेष शूल का अनुभव होता है। उदर रोग में अन्दर दोषों का सञ्चय हो जाने से रसवह स्रोतों में रुकावट उत्पन्न हो जाती है इसी कारण वह उदर में सञ्चित होता रहता है और उदर रोग बढ़ता रहता है अतएव विरेचन इसकी एक मुख्य चिकित्सा है। नारायण चूर्ण में यह विशेषता है कि वह रोगी की आंत्रिक क्रिया ठीक करने से अन्य विरेचनों से अधिक सबल है। इससे किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। इस चूर्ण में सातला मुख्य द्रव्य है यह

सातला शोधनी तिक्ता कफपित्तास्रदोषनुत्।
शोथोदरानाह हरा किञ्चिद् मारुतकृद्भवेत्॥

रक्तविकार, शोथ, उदर, आनाह एवं उदावर्त को यह नष्ट करती है। इससे नाड़ी का स्पन्दन कम होता है और मूत्र का प्रमाण बढ़ता है।

न्यग्रोधादि चूर्ण

नाम औषधि—न्यग्रोधादि चूर्ण।

ग्रंथ नाम—भैषज्य रत्नावली। अधिकार—प्रमेह।

घटक मान—वरी की जटा, गूलर, पीपल, अरलू, अमलतास, असन, आम्र, जामुन, कपित्थ, चिरौंजी, अर्जुन, धाय की छाल, महुआ, मुलैठी, लोध, वरना की छाल, नीम की छाल, परवर के पत्ता, मेढ़ासिंगी, दन्ती मूल, चित्रक, पाठर, कंजा की मींग, हरड़, वहेड़ा, आंवला, इन्द्रजौ, भिलावे की गिरी।

इसमें जिनकी छालें हैं प्रथम उन्हें सुखाकर कपड़छन करें पश्चात् शेष द्रव्यों को कूटकर कपड़छन कर मिलावें।

विशेष वक्तव्य—इसके मूल पाठ में चित्रक माढकी पाठ है। इसका कुछ लोग चित्रक और आढकी से अरहर की जड़ को ग्रहण करते हैं। आढकी वैसे प्रमेह रोग में पथ्य रूप से निर्दिष्ट है। इसी प्रकार आचार्य चरक ने तो रक्त पित्त अधिकार में 'समकुष्ठाढकीफला—प्रसस्तांसूपयूपार्थे

कल्पिता सममित्रनाम्' कहा है। जबकि व्यवहार मे अरहर को उष्ण एवं रूक्ष अनुभव किया जा रहा है। इसका तत्वाश यह है कि शीत प्रधान देश में शीत प्रकृति के पुरुष को यह पथ्य है। क्योंकि आचार्यों की चिकित्सा विधि एक देशीय तो है नही यह तो सार्वभौमिक है। इसलिए जो यहाँ अपथ्य है वह दूसरे स्थान पर पथ्य है। इधर के वैद्यगण आढकी से पाढर को ग्रहण करते आ रहे हे तथा प्रमेह रोगी के लिए तो आम जामुन की छाल डालकर ही चूर्ण निर्माण करते है, वहुमूत्री या मधुमेही के लिए आम की गुठली की मीग और जामुन की मीग का प्रयोग करते हे।

मात्रा—७ से १० ग्राम तक।

अनुपान--त्रिफला क्वाथ।

उपयोग--प्रमेह, वहुमूत्र, सोम, मधुमेह, प्रमेह पिडिका

इसके घटकों मे सभी द्रव्य सर्वत्र उपलब्ध होने वाले और अल्प व्यय साध्य है। यदि शान्त भाव से इसका सेवन कराया जाय तो सभी प्रकार के प्रमेहो मे यह लाभ करता है। वात, पित्त कफज सभी को शमन करने वाली दिव्य औषधों का इसमें सम्मिश्रण है।

विशेष अनुभव—

इसमें भिलावे की गिरी के अभाव मे हमने शु. भल्लातक डालकर चूर्ण का निर्माण कर दिया और केवल जल से इसको पकाया तो मलवद्धता हुई, दुग्ध के साथ देने पर ऐसा नही हुआ। त्रिफला क्वाथ के साथ देने पर विशेष लाभ हुआ। इससे उदर शुद्धि में भी सहायता मिली, मूत्रकृच्छ्र में भी लाभ हुआ। अत: इसे यथा सम्भव त्रिफला क्वाथ से ही सेवन कराना हितकर है। सर्वसाधारण के लिए यह एक सुन्दर और सस्ती औषधि है। वीसों प्रकार के प्रमेहों पर इसका आशु प्रभाव होता है। अत: वैद्य बन्धुओं को इसका प्रयोग कर लाभ उठाना चाहिए।

—आचार्य श्री वैद्य वेदव्रत शर्मा शास्त्री
कासगंज (एटा)
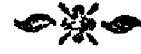
निम्बादि चूर्ण

ग्रंथ नाम—भैषज्य रत्नावली।

घटक—नीम की छाल, गुरिच, हरड़, आंवला, वाकुची १-१ पल तथा सौंठ, वायविडग, चकौड़ा की जड़ या वीज, पिप्पली, अजवाइन, वच, जीरा, कुटकी, खैर की छाल, सैंधा नमक, यवक्षार, हल्दी, दारू हल्दी, मोथा, देवदारू, कूट प्रत्येक १-१ कर्ष वस्त्रपूत चूर्ण करें।

मात्रा—१ शाण (आधुनिक मात्रा २ ग्राम लेकर ऊपर से गुडूची क्वाथ पिये)।

शास्त्रीय गुण—यह निम्बादि चूर्ण भयङ्कर वातरक्त, श्वेत कुष्ठ औदुम्बर नामक कुष्ठ, कोढ, चर्मदल, सिध्म, पामा, विष्लुता, कण्डु, विचर्चिका, विस्तृत दद्रु मण्डल, किट्टिम, आमवात तथा आमवातजन्य शोथ रोग, सर्व प्रकार का सन्निपातिक उदर रोग, प्लीहा वृद्धि, गुल्म, पाण्डुरोग, कामला और सर्व प्रकार की कण्डू तथा व्रणों को जैसे वृक्ष को विजली नष्ट कर देती है उसी भाँति विनष्ट करता है। इस चूर्ण को नागार्जुन मुनि ने कहा है।

इस चूर्ण के सम्पूर्ण घटकों में नीम, खदिर, वाकुची, कुटकी, गुरिच, चक्रमर्द एवं हरीतकी विशेष रूप से कुष्ठघ्न द्रव्य हैं। अन्य द्रव्य कुछ पाचन संस्थान प्रभावक जैसे पिप्पली तथा अन्य द्रव्य सार्वदैहिक प्रभाव वर्ग के हैं।

यह चूर्ण कटु, लघु एवं शीतवीर्य है। चर्मरोगों पर आशुलाभकारी है। इसके सेवनकाल में माँस, मदिरा, अत्यन्त धूप, उड़द, मूली, दही का प्रयोग न करने से विशेष लाभ होता है।

इस चूर्ण पर अपना अनुभव वतलाते हुए प्रस्तुत विशेषांक के यशस्वी सम्पादक वैद्य श्री मुन्नालाल जी गुप्त ने मुझे वतलाया कि यह विषम ज्वर में कुनैन की भाँति ही अत्यन्त लाभप्रद है।

—श्री वैद्य वृजविहारी मिश्र एम. ए.
श्री मन्नूवावा धर्मार्थ चिकित्सालय,
विन्दकी (फतेहपुर)

पंचसकार चूर्ण

ग्रन्थ निर्देश—यो. र., सि. भै. म.।

घटक—१. सनाय की पत्ती (तिनकों रहित) २. सौंफ (उत्तम नई), ३. सौंठ ४. सैंधानमक, ५. हरड़ (कोई छोटी लेता है कोई बड़ी)। इनको कूट पीस छान चूर्ण कर सुरक्षित रखें।

मात्रा—३ से ६ मासे निवाये जल से रात्रि में।

उपयोग—यह चूर्ण सौम्य विरेचक है, कब्ज, आमवृद्धि, शिर दर्द, अजीर्ण, उदर वात, अफरा, उदर शूल, गुदशूल आदि में दोषों के दूर करने के लिए उपयोग किया जाता है। यह पाचन क्रिया को भी सुधारता है।

यह चूर्ण सामान्य औषधियों के मिश्रण से बना है। फिर भी कफ प्रधान रोगी, जीर्ण आमवात पीड़ित, अर्श रोगी, जीर्ण आमातिसार और अन्य रोगों में होने वाली आमवृद्धि पर उपयोगी है।

नये अम्लपित्त रोगियों के लिए भी हितकारक है। इसके सेवन करने से आमाशय रस की अम्लता और उग्रता का ह्रास होता है। आँतों में गये हुये दूषित आम का पाचन होता है। नये आम की उत्पत्ति का ह्रास होता है। इसके अतिरिक्त यकृत्पित्त का स्राव बढ़ता है जिससे छोटी आँत में होने वाली पचन क्रिया सुधरती है। यकृत् पित्त पूरा मिलने पर मल में दुर्गन्धि नहीं होती। कीटाणु और विष नष्ट हो जाते हैं। मल को आगे फेंकने का कार्य सरलता पूर्वक होता है। शुद्ध होने के पश्चात् उसका आकुंचन होने में सहायता मिलती है।

आमातिसार में आमवृद्धि और मलावरोध होने पर यह चूर्ण २ मासे की मात्रा में सुबह निवाये जल के साथ देना चाहिए। मात्रा अधिक होने पर आँत्र में उग्रता की वृद्धि होती है और उदर में मरोड़ होने लगती है। मरोड़ का विशेष कारण सनाय में रहे हुए तंतु होते हैं। यदि इसी चूर्ण में एक भाग गुलाब के फूल तथा ४-५ बूंद सौंफ तेल मिलाकर दिया जाय तो मरोड़ नहीं होती।

—***श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त***, कानपुर

पिप्पल्यादि योग

पिप्पली कुञ्जिकाजाजी वृषकं सैंधव वचाम्।
यवक्षाराजमोदे च शर्करा चित्रकं तथा॥
पिष्ट्वा सर्पिषि भृष्टानि पाययेत्त प्रसन्नया।
योनि पार्श्वार्ति हृद्रोग गुल्मार्शो विनिवृत्तये॥

ग्रन्थ सन्दर्भ—संहिता योनिव्यापच्चिकित्सा अ० ३०

घटक पिप्पली, मंगरैल (या काला जीरा), जीरा सफेद, अडूसा की पत्ती, सेंधानमक, बच, जवाखार, अजमोद, चीनी (शक्कर) और चित्रक मूल इन्हें समान भाग लेकर जल में पीस घृत में भूनकर प्रसन्ना या कुमार्यासव में घोलकर देवें।

गुण—यह योनि शूल पार्श्वशूल, हृदय रोग, गुल्म और अर्शरोग की निवृति के लिए पिलावें। मेरे अनुभव में यह पेट (उदर) के वायु सम्बन्धी अनेक विकारों में सफल सिद्ध हुआ है। जिसका मैंने अनेक रोगियों पर प्रयोग कर लाभ उठाया है।

—वैद्या रामावती गुप्ता
ठेकमा बाजार (आजमगढ़) उ० प्र०

पुनर्नवादि चूर्ण

ग्रन्थ नाम—भैषज्य रत्नावली।

रोग—आमवात।

घटक—पुनर्नवा, गिलोय, सौंठ, सोंफ, विधारा, कचूर, मुण्डी प्रत्येक १०-१० ग्राम।

निर्माण विधि—समस्त द्रव्यों को कपड़छन कर रखलें।

मात्रा—६ ग्राम, अनुपान—कांजी या उष्णोदक

रोगाधिकार—आमवात।

विशेष वक्तव्य—इस चूर्ण के सेवन से आमाशयिक वात, आमाशयिक शोथ एवं आध्मानादि रोग नष्ट होते हैं तथा गृध्रसी एवं आमवात को भी यह मिटाता है। आमवात के रोगी को इसके सेवन से लाभ होता है। इसमें वर्णित सभी द्रव्य दीपन, पाचन और लघु विरेचक हैं। तथा रक्तकी केशिकाओं में संचालन क्रिया में सहायक है।

द्वितीय पुनर्नवादि चूर्ण

नाम - पुनर्नवादि चूर्ण ।

ग्रन्थ—भैषज्य रत्नावली ।

रोग—उदर रोग ।

घटक—पुनर्नवा, देवदारु, गिलोय, पाठा, बेलगिरी, गोक्षुर, छोटी कटेरी की जड़, बड़ी कटेरी की जड़, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, पिप्पली, चित्रक, अडूसा, प्रत्येक १०-१० ग्राम ।

निर्माण विधि—सबको कूट पीसकर छानकर तैयार करावें ।

मात्रा—२ ग्राम, अनुपान-मधु आर्द्रक और गोमूत्र ।

उपयोग—शोथ, शूल समस्त उदर रोग, दुष्टव्रण ।

विशेष वक्तव्य—इस चूर्ण के सेवन करने तथा साथ में पुनर्नवादि लौह या माण्डूर का प्रयोग करते रहने से सभी प्रकार के शोथों पर नष्ट होते हैं। केवल चूर्ण के प्रयोग से भी अनुपान में गोमूत्र का प्रयोग हो तो शीघ्र लाभ होता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान एलर्जी नामक व्याधि में भी इससे लाभ होता है यदि धैर्यपूर्वक पथ्यसह इसका सेवन किया जाय । आजकल यदि स्वल्प व्यय साध्य शोथ रोग चिकित्सा का कोई अनुभव करना चाहे तो रोगी को दुग्ध पर रखकर इसको गोमूत्र के साथ सेवन कराता रहे। रोगी को आशुलाभ दृष्टिगोचर होगा ।

इसके प्रयोग से बहुसंख्यक शोथ रोगियों को आरोग्य लाभ हुआ है। अतः वैद्य बन्धुओं से इसके प्रयोग का अनुरोध है।

—आचार्य श्री पं० वेदव्रत शर्मा शास्त्री
कासगंज (एटा)

बडवानल चूर्ण

वै. वि. वैद्य श्री कालूराम सेन सेविता डी. एस-.सी ए. आयु. वारिधि

ग्रन्थ निर्देश—शार्ङ्गधर संहिता (म. ख. ६ अध्याय)

अधिकार—मन्दाग्न्यादौ ।

घटक	तौल	वानस्पतिक नाम
१. सैंधा नमक	१० ग्राम	Chloride of Sodium
२. पीपलामूल	२० ,,	Piper longum lin
३. पीपल	३० ,,	Pipet longum
४. चाभ	४० ,,	Piper Chava hunter
५. चित्रक मूल	५० ,,	Plumbago geylanica lin
६. सोंठ	६० ,,	Zingiber officinale roscoe
७. हरड़	७० ,,	Torminoba Chebula

निर्माण विधि—

उक्त तौल्यानुसार द्रव्य संग्रहीत कर चूर्ण कर लेना चाहिए। चूर्ण तैयार है।

गुण—यह चूर्ण जठराग्नि की अत्यन्त वृद्धि करता है।

प्रत्येक द्रव्य के संक्षिप्त गुण—

(१) सैंधा नमक—किंचित गुरु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, रस मे लवण, विपाक, मधुर, शीत वीर्य ।

कर्म—त्रिदोष शामक, शोथहर, वेदना स्थापक, रोचन, पाचन, भेदन, अति मात्रा में शोथ जनन एवं शामक, श्वसन संस्थान में छेदन और कफ निःस्सारक है, प्रजनन संस्थान में वृष्य है, मूत्रवह संस्थान में मूत्रल है। नेत्र चक्षुष्य है, त्वचा स्वेद जनन है, ज्वरघ्न है। सात्मीकरण बलकारक, आयुवर्धक है।

(२) पीपला मूल—दीपन, कडुवा, गरम, पाचक, हल्का और रूखा होकर पित्तकारक है, भेदन से कफ, वायु, उदररोग नाशक, कफ खाँसी नाशक ।

(३) पीपल—कटु, उष्णता से पाचक, पित्त का अति स्राव कराती है, अजीर्ण, आध्मान, अपचन के दस्तों में लाभदायक है। भेदन और पाचन गुणों से आम प्रकोपस्य ज्वर एवं श्लैष्मिक ज्वर नाशक है। चरकाचार्य ने पीपल को कटु, रस, विपाक, मधुर, गुण में गुरु, किंचित स्निग्ध और उष्ण एवं क्लेदोत्पादक बताया है।

(४) चाभ—यह कास, श्वास, शूल नाशक और कफ पित्त को नष्ट करती है।

(५) चित्रक मूल—दीपन, पाचन, पित्त निःस्सारक, शोथ नाशक, कफ नाशक, गर्भाशय संकोचक, गर्भ स्राव

कारक है। ग्राही और वाजीकर तथा स्वेद जनन है।

(६) सौंठ—यह कफ, वात, और शीत का शमन करती है शोथहर है। रक्तशोधक, रोचन, पाचन, दीपन, वातानुलोमन और शूल नाशक है।

(७) हरड़—मधुर, तिक्त, कषाय रस युक्त है। अतएव यह पित्तनाशक, कटु, तिक्त से कफ नाशक है। अम्लरस से वायु नाशक है। मृदु विरेचक, अग्नि दीपक रसायन है।

मात्रा—

बड़वानल चूर्ण प्रातः दोपहर शाम एवं भोजन के पश्चात १-१ तोला की मात्रा में सेवन करें।

अनुपान—मैं उक्त चूर्ण को भिन्न-भिन्न रोगों में भिन्न-भिन्न अनुपानों से प्रयोग में लाता हूं जो निम्नांकित हैं—

मन्दाग्नि में—छाछ एवं जीरा के साथ।

शूल रोग में—आर्द्रक स्वरस से।

कास रोग में—लौंग के काढ़े से।

शोथ रोग में—मकोय के रस से।

दिनान्ध्यता में—हुलहुल के साथ।

पथ्यापथ्य—शीघ्रपाचक खाद्य पदार्थ, मूंग की दाल, तोरई, पालक आदि।

अपथ्य—गुड़, खटाई, गरिष्ट खाद्य पदार्थ, लालमिर्च, समस्त कब्ज कारक पदार्थ।

मैं अपने अल्प चिकित्सक काल में लगभग १०-१२ रोगियों पर उक्त चूर्ण का प्रयोग किया है एवं शतप्रतिशत सफलता प्राप्त की है। यह चूर्ण देश, काल, रोगी प्रकृति के अनुसार प्रयोग किया जाय तो अति लाभ करता है।

—वैद्य श्री कालूराम सेन "सविता"
आयुर्वेद वारिधि, डी. एस-सी. ए., वैद्य विशारद
सविता आयुर्वेदिक औषधालय
हाजीपुर, सिरोंज (विदिशा) म०प्र०

विषमारि चूर्ण

घटक—आक का दूध २५० ग्राम, शुद्ध गेरू १०० ग्राम, भुनी फिटकरी १०० ग्राम, शकर ५०० ग्राम।

सभी को मिलाकर ३ दिन खरल कर ६-६ रत्ती कवचों में भर लें या शीशी में रखलें और देते समय कवचों में भर लें। मात्रा—१-२ कवच या ६-१२ रत्ती या बरसाती आती है उसके टुकड़ों में रख मोमवती से चिपकालें या मशीन पर सिलालें।

उपयोग विधि—विषम ज्वर में प्रातः ५-७ बजे तक २-३ मात्राएं शीतल जल से दें। छोटे बच्चों को आधी मात्रा में १-२ बार दें। विषम ज्वर से मतलब मशक दंशज ज्वर, श्लैपदिक ज्वर, तिजारी, चौथिया आदि ज्वरों में है। यदि उदर में मल संचय हो तो पहिले रेचन दें फिर प्रयोग करें।

यह कफ ज्वर, कास, श्वास, श्वानविष, बिच्छू विष, उदर कृमि, शिरोशूल, नासाकृमि, कफज उदर शूल और जीवाणु प्रकोप में भी लाभकारी है।

वात कफज ज्वरों में अनुयोग के रूप में दे सकते हैं। श्वसनक ज्वर या कफोल्वण सन्निपात में अष्टांगावलेह के साथ या अकेला ३-४ तोले अदरख स्वरस को गर्म कर उसमें घोल कर मुख में धारण करा सकते हैं। मुख में धारण करने से फुफ्फुसों में भरा हुआ कफ आकर्षित होकर निकल जाता है और श्वास कास आदि शमन हो जाता है।

श्वान दंश में स्थानीय प्रलेप भी करना चाहिए। बिच्छू दंश के स्थान पर रखते ही विष उतर आता है।

प्रयोग निषेध—आन्त्रिक ज्वर, पित्त ज्वर, वात पित्त ज्वर, संतत ज्वर, अन्त्रक्षत, अन्त्रव्रण, फुपफुसव्रण, यक्ष्मा में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। अर्क दुग्ध उपविष होता है अतः उसकी मात्रा पर ध्यान रखें। अर्क दुग्ध की मात्रा १-४ बूंद तक है।

—वैद्य श्री जगदम्बा प्रसार श्रीवास्तव
अरौल (कानपुर)

भास्कर लवण

श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव वैद्य

—०—

ग्रन्थ निर्देश—भै. र. शार्ङ्गधर संहिता। ।

घटक—

भै. र.	तोल	शा. सं०	तोल
पीपल छोटी	८ तोला	छोटी पीपल	२ तोला
पीपलामूल	,,	पीपलामूल	२ ,,
धनियां	,,	धनियां	२ ,,
स्याह् जीरा	,,	स्याह् जीरा	२ ,,
सैंधानमक	,,	सैंधा नमक	२ ,,
विड नमक	,,	सैंचर नमक	२तो. नवसादर
तेजपत्ता	,,	तेजपत्ता	२ तोला
तालीसपत्र	,,	तालीसपत्र	२ ,,
नागकेशर	,,	नागकेशर	२ ,,
सौंचर नमक	२०,,	काला नमक	५ ,,
कालीमिर्च	४,,	काली मिर्च	१ ,,
सौंठ	४,,	सौंठ	१ ,,
श्वेत जीरा	४,,	श्वेत जीरा	१ ,,
दालचीनी	२,,	दालचीनी	½ ,,
छोटी इलायची	२,,	छोटी इलायची	½ ,,
समुद्र नमक	३२,,	समुद्र नमक	८ ,,
अनारदानासूखा	१६,,	अनारदाना सूखा	४ ,,
अम्लवेत	८,,	अम्लवेत	२ ,,

यह प्रयोग भास्कर लवण और लवण भास्कर इन दो नामों से ग्रन्थों में संग्रह किया गया है। यो. चि. अ. २, योग-तरङ्गिणी त. २४, वृ. यो. त. त. ७१, वृहन्निघण्टु रत्नाकर अ. रो., ग. नि. चू. में 'लवण भास्कर' नाम से है। 'भास्कर लवण' नाम से यो.र. गुल्म., वृ. मा., बंगसेन अ., र. र. चक्र दत्त और भै. र. अग्नि में आया है। ग्रन्थों का संदर्भ देने का आशय यह कि आयुर्वेदिक चिकित्सा का एक विशिष्ट योग है।

निर्माण विधि—सभी उत्तम गुणयुक्त द्रव्य लेकर चूर्ण करें। विडनमक के स्थान पर नौसादर ले सकते हैं। चूर्ण को महीन तारों वाली चलनी से छानकर छने हुए चूर्ण को पुनः बड़ी सिल पर पीस लें। मोटे चूर्ण को फिर इसी प्रकार खरल कर छान कर पीस लें। चूर्ण इतना बनावें जो २ मास में समाप्त हो जाता है। अधिक दिनों में रखने से गुणहीन हो जाता है। वर्षा से बचाये रखें और बड़ी शीशी में मजबूत कार्क लगाकर रखें।

विशेष वचन—नीबू के स्वरस को छानकर सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर लें। उसे चूर्ण में डालकर खरल करलें। यह एक भावना हुई। इसी प्रकार एक और भावना देकर चूर्ण तैयार करने से गुणवृद्धि एवं स्वाद में वृद्धि हो जाती है। दोनों तरह के चूर्ण रखे जा सकते हैं अथवा दूसरी प्रकार का बनाकर रखना चाहिये।

मात्रादि—१-२-३-४ माशे उष्ण जल से सेवन करना चाहिये। दिन भर में २-३-४ बार भी दिया जा सकता है भोजन के पूर्व, भोजन के साथ या भोजन के पश्चात् भी दिया जाता है।

गुण—

> **वात श्लेष्म भवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयम्।**
> **अर्शांसि ग्रहणी कुष्ठं विबन्धं च भगन्दरम् ॥१॥**
> **शोफं शूलं श्वास कासाम्ममवातं च हृद्रुजम्।**
> **मन्दाग्नि नाशयेदेतद्दीपनं पाचनं परम्। २॥**

यह लवण भास्कर चूर्ण मन्दाग्नि को दूर कर भोजन को ठीक तरह से पचा देता है अतः अग्निमन्दता से उत्पन्न अर्श, ग्रहणी, अतिसार, आध्मान, उदर रोग, शोथ, शूल, गुल्म, विबन्ध, कास, श्वास, आमवात और प्रायः वात कफज विकारों को दूर करता है। प्लीहावृद्धि को भी निवारण करता है। मूल ग्रन्थकार ने भगन्दर और क्षय तथा कुष्ठ पर भी कुछ लाभकारी बताया है। इन तीनों रोगों में प्रधान औषधि के अनुयोग के रूप में इसका प्रयोग किया जाना चाहिये। केवल इसके प्रयोग से अन्तिम तीनों रोग अच्छे नहीं होते। संग्रहणी में पर्पटी कल्प के अनुयोग के रूप में इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। यह साधारण सारक है, मल को अधोमार्ग से निकालता है अतः विबन्ध को भी दूर करता है। विबन्ध रोग में रात को सोने के पूर्व उष्ण जल से लेना चाहिए। साथ में २-३ माशे 'पंचसकार चूर्ण' लेने से प्रातः शौच (मलत्याग) खुल

कर होता है और उदर साफ हो जाता है । यह निर्भय और अहानिकारी प्रयोग है ।

रोगानुसार औषधि योजना –

१. अग्निमन्दता-निर्बलता—भास्कर लवण २ माशे, सोडाबाईकार्ब १ माशा, शुद्ध कुचिला चूर्ण आधा रत्ती । यह १ मात्रा है । १०-१५ दिन सेवन करावें ।

२. अन्त्र वातरोध (गैस)-भास्कर लवण २ माशे, लशुनादि वटी २ रत्ती, शुद्ध कुचिला चूर्ण १/४ रत्ती, सोडाबाईकार्ब १ माशा यह १ मात्रा है । ऐसी ३-४ मात्रायें दिन भर में द ।

३. हृदय-विकलता, शूल, अन्त्रगत वातरोध या गैस ऊर्ध्वगामी होने पर ३ माशे उष्ण घी में मिलाकर चटाने से लाभ हो जाता है । ऊपर से उष्ण जल पिलाने से विकार शमन हो जाता है । अधो वायु सरण होते ही आध्मान, शूल, हृदय शूल भी दूर हो जाता है । हृदय विकलता होते ही अनेक वार रोगी दफ्तरों के चक्कर में आ जाता है और शताधिक रुपये खर्च करता हैं जबकि यह साधारण प्रयोग लाभ कर सकता है । साथ में निम्न बाहरी प्रयोग भी किया जा सकता है–बरगद के नवीन पत्र पर उल्टी ओर अण्डी का तैल चुपड़कर अङ्गार पर सेक उदर-नाभि पर बाँध देने से १ बार में ही लाभ हो जाता है ।

४. आमाशय में पाचक रसों के स्राव की न्यूनता–३-४ माशे भास्कर लवण को भोजन के पूर्व उष्ण जल से लेना चाहिए । अर्क सोंफ का अनुपान भी लिया जा सकता है । भोजन के बाद भी तक्र आदि से उक्त चूर्ण लें ।

५. ग्रहणी—इस विकार में पञ्चामृत पर्पटी या अन्य योग के सेवन से मलावरोध हो जाता है तब १-२ वार उक्त चूर्ण के सेवन करने से मल उतर आता है । पंचसम चूर्ण या पञ्चसकार चूर्ण भी समभाग मिलाकर सेवन किया जाता है ।

६. अर्श—यह रोग प्राय: मन्दाग्नि से होता है । लवण भास्कर को मठ्ठे के साथ सेवन करने से रोग वृद्धि नहीं हो पाती ।

७. आमातिसार, ऐंठन, मरोड़, रक्तातिसार, अजीर्ण, उदर का भारीपन-उक्त चूर्ण को २-३ माशे की मात्रा में १-२-३ तोला दही में मिलाकर दिन भर में ४-५-७ बार प्रति दस्त के बाद देने से रोग १ दिन में ही शमन हो जाता है । पथ्य में अनार, चावल, दही दिया जाता है । अर्क सौंफ १-२ तोले अनुयोग के रूप में दिया जाना चाहिए । पर यदि रोगी के ज्वर हो तो दही का प्रयोग न करें ।

८. विविध शूल— हिंग्वाष्टक चूर्ण–यह अग्निवर्धिनी वटी, अग्नितुण्डी वटी के सहयोग से भी दिया जाता है । यदि इसकी १ मात्रा मधु से दें तो सारक गुण दर्शाता है ।

९. आन्त्रक्षय का सन्देह—सर्व ज्वरहर लौह, प्रवाल, सितोपलादि, हरताल भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, त्रिभुवनकीर्ति रस का मिश्रण दें और अनुयोग के रूप में लवण भास्कर, लाई चूर्ण आदि का प्रयोग करें तो इससे अपचन, अग्निमांद्यता, आध्मान आदि लक्षण दूर होने पर क्षयरोग की शंका का समाधान हो जायगा ।

१०. भगन्दर रोग—खाने वाले प्रधान योग के अनुक्रम से भास्कर लवण का प्रयोग किया जा सकता है और स्थानीय क्षार सूत्र का भी प्रयोग करें तो लाभ होगा ।

प्रयोग निषेध—आमाशयिक व्रण, अंत्र-क्षत-व्रण, आमाशय में लवणाम्ल की अधिकता आदि विकार होने पर लवण भास्कर एवं नौसादर युक्त अन्य किसी योग का प्रयोग न करें, मन्थर ज्वर में भी न करें । ऐसी अवस्थाओं में कुमार्यासव का भी प्रयोग न करें । कुचिला या जमालघोटा युक्त योगों का प्रयोग न करें अथवा आन्त्र विदीर्ण हो रक्तस्राव हो सकता है । ऐसी अवस्था में स्वर्ण सूतशेखर, अविपत्तिकर चूर्ण आदि का प्रयोग लाभ कर सकता है । मुख में या अंत्रमार्ग में व्रण, छाले होने पर निम्बू या नौसादर युक्त योग वेदनाकर पीड़ा(कष्ट) देता है यह ध्यान रखें अन्यथा रोगी की श्रद्धा आयुर्वेद पर से उठ जायगी । उदर में जलन, मरोड़, रक्तातिसार, ज्वरांश होने पर अर्क सौंफ या गुलाब जल में इसबगोल की भूसी भिगोकर उसे पिलाना चाहिए । इससे ही सभी विकार शमन हो जाते हैं । हिंगु, कर्पूर आदि मिलाकर भी दिया जा सकता है । कम व्यय में भयंकर रोग का निवारण हो जाता है । *द्रव्यों के गुण धर्म अन्य लेखों में देखें । यहाँ अति विस्तार के कारण नहीं किया गया है ।*

—श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव वैद्य
प्रधान चिकित्सक–आयुर्वेदिक औषधालय
पो० अरौल (कानपुर)

रसेन्द्र चूर्णम्

ग्रन्थ—भै. र. ग्र. रो.

घटक—रस सिंदूर ८० ग्राम, बंशलोचन, मुक्ता भस्म, स्वर्ण भस्म प्रत्येक ६-६ ग्राम। ६ ग्राम अफीम को थोड़े से दूध में घोलकर छान लें। पश्चात् मिश्रित रस सिन्दूर आदि को इसमें मिलाकर खरल कर लें। तदनन्तर इसे छांह में या धूप में सुखाकर शीशी में रखलें।

मात्रा—२ से ४ रत्ती।

अनुपान—दूध के साथ।

पथ्यापथ्य—दुग्धोदन का सेवन करना चाहिए। लवण तथा जल इसके सेवन काल में निषिद्ध हैं। गर्म जल से ही शौचादिक करें। गण्डूष भी गर्म जल से करें तथा सर्वदा रोगी के शरीर को वस्त्र द्वारा आच्छादित रखना चाहिए। इसमें स्नान निषिद्ध है। यह रस ग्रहणी, रक्तातिसार,सूतिका रोग को नष्ट करता है। यह रसायन है, बङ्गाल में यह लालगुड़ा के नाम से प्रसिद्ध है।

सर्व प्रथम मैंने संवत् १९१९ में इसका प्रयोग,किया है।

रोगी नाम—श्रीमती हीरालाल लवोटिया।

उम्र—४५ वर्ष।

ग्राम—इस्लामपुर।

रुग्णा ५-६ साल से बीमार थी मेरे पास चूरू में रुग्णा का भानजा लेके आया। दस्त घोड़े के मूत्र जैसा होता था। रसेन्द्र चूर्ण की एक पुड़िया लेने के बाद मल बंधकर आने लगा। परिणाम—रुग्णा पूर्णरूप से स्वस्थ होकर घर गई, दवा १०० दिन तक दी गई।

—वैद्य श्री चन्द्रशेखर जी व्यास
चूरू (राजस्थान)

रोहितकाद्य चूर्ण

संदर्भ ग्रंथ—भैषज्यरत्नावली।

रोहीतकं यवक्षारं भूनिम्बः कटुरोहिणी।
मुस्तकं नृसारञ्च वीरा विश्वं सुचूर्णितम्॥
माषमात्रं ततः खादेच्छति तोयानुपानतः।
यकृद्रोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥

घटक—रोहेड़ा की छाल, यवक्षार, चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, वीरा (रस काकोली, कोई अर्जुन छाल तो कोई अतीस ग्रहण करते हैं) और सोंठ प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण करें।

मात्रा—१ माशा। अनुपान—शीतल जल। समय प्रातः और सायं दोनों समय सेवन करना चाहिए। यह यकृत वृद्धि रोग को नष्ट करता है।

नोट—वीरा से अतीस ग्रहण करना अधिक उत्तम है। यदि इस चूर्ण को रोहेड़े की छाल के क्वाथ से दिया जाय तो विशेष गुणकारी सिद्ध होता है। यदि रोगी को ज्वर भी रहता होगा तो वह भी इसके सेवन से दूर हो जाता है। यह आम का निष्कासन कर उसका बनना भी बन्द कर देता है। यह अग्निदीपन और पाचन भी है।

यकृत विकार के कारण उत्पन्न शोथ रोग में मण्डूर भस्म के साथ सेवन कराना चाहिए।

इस चूर्ण को रोहिड़ा की छाल के क्वाथ से भावित कर शुष्क कर उपयोग किया जाय तो विशेष लाभ करता है। अकेला रोहिड़ा की छाल का क्वाथ भी बढ़ी हुए तिल्ली तथा यकृत को ठीक कर देता है। रोहेड़ा की छाल का चूर्ण के समान भाग हरड़ छोटी लेकर चूर्ण कर गोमूत्र से भावित कर सेवन कराया जाय तो यकृत रोग, प्लीहा वृद्धि, उदर रोग, अर्श, कृमि रोग और गुल्म रोग तथा प्रमेह रोग भी दूर होते हैं ऐसा भै० र० कार का कथन है यथा—

रोहीतकाभयाक्षोद भावितं मूत्राम्बु वा।
पीतं सर्वोहर प्लीहमेहार्शः क्रिमि गुल्मनुत्॥

—विशेष सम्पादक

विश्वादि चूर्ण

संदर्भ ग्रंथ—वैद्य रहस्य ।

भागस्तु दश विश्वायास्तत्तुल्यो वृद्धदारुकश्चापि ।
पथ्या च (त्रि) पंच भागा चतुरं संहिगु संभृष्टम् ॥
एकः सैंधव भागस्ततुल्यं चित्रकं चात्र ।
संवृद्धमूर्ध्ववातं हन्त्येतच्चूर्णितं भुक्तम् ॥

—वात व्याधि रोगे

उक्त छन्द में पथ्या के पश्चात् 'त्रि' लिखा मिलता है। उसके हिसाब से ५×३=१५ तोला (भाग) हरड़ लेना चाहिए। टीकाकार ने ५ तोला ही लिखा है। यह भूल टीकाकार की प्रतीत नहीं होती । इसलिए हमने 'त्रि' के स्थान पर 'च' कर दिया है और इस चूर्ण को बनाकर अपने उर्ध्ववात जिसे दिन-रात डकारें आती थीं उसे दिया। उसे इससे पूर्णलाभ मिला। हमने यह योग इस प्रकार बनाया—

सौंठ १० तोला, विधारा १० तोला, हरड़ बड़ी ५ तोला, घी में भुनी हींग ४ तोला और सैंधानमक १ तोला। लेकर कूट पीस चूर्ण बनाकर उपयोग किया था। जिन्हें डकारें बहुत आती हों उसके लिए यह योग निश्चय ही लाभकारी है। यह हमारा अनेक बार का अनुभूत है।

—विशेष सम्पादक

शत पुष्पादि चूर्ण

हमारे वैद्यक शास्त्र में उदर विकार पर कई सर्वोत्तम निर्दोष योग प्रस्तुत हैं, उनमें से हम एक शास्त्रीय निम्न योग लिख रहे हैं। जो हमारा अनेक बार का अनुभूत है—

नाम शास्त्रीय योग—शत पुष्पादि चूर्ण

ग्रन्थ का नाम—भेषज्य रत्नावली

शतपुष्पा विडङ्गश्च सैन्धवं मरिचं समम् ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमग्नि संदीपनं परम् ॥

—आमवात चिकित्साधिकारे ।

घटक योग—शतपुष्पा (सौंफ) १ तोला, विडंग (वायविडंग) १ तोला, सैन्धव लवण १ तोला, कालीमिर्च १ तोला इन चारों द्रव्यों को पीसकर चूर्ण बनाकर शीशी में रख लें।

सेवन विधि—मात्रा ६ माशा चूर्ण भोजन के बाद सेवनीय है।

गुण—भूख लगाता है। आमाशयिक रस, यकृत के कार्य में सुधार करता है और उदरीय वायु नाशक है तथा पाचन विकार दूर करता है। यह पेचिश में भी गुणकारी है।

—वैद्य श्री झिनकूप्रसाद गुप्त आयुर्वेदरत्न, वैद्य विशारद
रामा आयुर्वेद भवन, ठेकमा (आजमगढ़) उ० प्र०

शिवाक्षार पाचन चूर्ण

ग्रंथ निर्देश—आ. नि. मा.।

घटक—हिंग्वाष्टक चूर्ण १ भाग, छोटी हरड़ चूर्ण १ भाग, सज्जीखार (शुद्ध) पिसो (खाने का सोडा) सबको मिलाकर शीशी में रखें। मात्रा—३ से ४ मा. जल से।

उपयोग—यह चूर्ण वायु, अजीर्ण, कब्ज, अफरा, हिचकी, वमन, अरुचि, शूल, हैजा और कृमिरोग में उपयोगी है। इसके सेवन से अग्नि प्रदीप्त होती है। आम का पाचन होता है। अपान वायु शुद्ध होती है और मलावरोध दूर होता है।

इसी प्रकार हिंग्वाष्टक चूर्ण १ भाग, लवण भास्कर चूर्ण १ भाग, छोटी हरड़ चूर्ण १ भाग एक में मिश्रण करें। इतना ही उत्तम कार्य करता है।

यह दीपन, पाचन, यकृत शक्तिवर्द्धक और सारक है। इस चूर्ण का उपयोग अधिकतर उदर में भारीपन होने पर होता है। जब आमाशय के पित्त में अम्लता बढ़ने तथा यकृत में पित्तस्राव कम होने से उदर में वायु भरी रहती है, शूल चलता है, उद्गार शुद्धि नहीं होती, आंत में सूक्ष्म कृमि हों, तब इस चूर्ण का उपयोग सत्वर लाभकारी प्रमाणित होता है। यह चूर्ण यकृत को सबल बनाता है, आम का पाचन करता है, उदर में संग्रहीत वायु को बाहर निकाल देता है, कीटाणुओं को नष्ट करता है। शौच शुद्धि कराने में सहायक होता है। विकृत पाचन क्रिया और निर्बल यकृत वाले बालकों के लिए हितकर है।

—विशेष सम्पादक

वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त

ग्रन्थ निर्देश—चरक चि. अ. ८।१०३।१०४

सितोपलां तुगाक्षीरीं पिप्पलीं बहुलां त्वचम् ।
अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेन्मधु सर्पिषा ॥
चूर्णितं प्रायेद्वातच्छ्वासकास कफातुरम् ।
सुप्तजिह्वारोचकिनमल्पाग्निं पार्श्वशूलिनम् ॥

घटक—मिश्री १६ तोला, वंशलोचन ८ तोला, पीपल छोटी ४ तोला, छोटी इलायची बीज २ तोला, दालचीनी असली १ तोला। इन समस्त द्रव्यों को पृथक पृथक कूट पीस चूर्ण बना लें। बाद में मिला लें।

मात्रा—१ माशे से १॥ माशे तक।

अनुपान—मधु और घृत मिलाकर।

उपयोग—श्वास, कास, तथा कफ से पीड़ित रोगियों का कफ नष्ट होता है। जिह्वा की शून्यता, अरुचि, अल्पाग्नि और पार्श्वशूल से पीड़ित रोगियों को इसके सेवन से लाभ मिलता है। यह वात और पित्त प्रधान तथा वात और पित्त प्रकृति वालों को देना हो तो अनुपान में शहद १ भाग और घी २ भाग, यदि कफ प्रधान रोग में और कफ प्रकृति वालू को देना हो तो शहद दो भाग घी, एक भाग में मिलाकर दें। सूखी खांसी में घी के साथ, कफ अधिक सरलता से निकलता हो ऐसी खांसी में शहद के साथ-साथ सेवन करें।

इस सितोपलादि को अनेक योगों के साथ उपयोग में लाया जाता है जैसे—

शुद्ध सिंगरफ १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला शृङ्ग भस्म १ तोला, सत्व गुर्च १ तोला, लौंग चूर्ण १ तोला, मधु १० तोला।

मात्रा—१ माशा, दिन में ३ बार, इसे चाटकर ऊपर से अडूसे का क्वाथ पीवें। ५-१० मिनट बाद थोड़ा बकरी का दूध पीवें।

इस अवलेह के सेवन से खाँसी, उरःक्षत, हृद्शूल, ज्वर मन्दाग्नि, निर्बलता आदि दूर होते हैं। क्षय के लिए सरल और लाभदायक है। क्षय कीटाणुओं की वृद्धि में प्रतिबन्ध होता है और शक्ति का संरक्षण होता है।

आजकल इसके साथ स्वर्ण वसन्त मालिनी और रुदन्ती चूर्ण का भी उपयोग किया जाता है। देखो-स्वर्ण वसन्त मालिनी का योग।

नोट—बाजार में आजकल नकली वंशलोचन ही प्रायः मिल रहा है असली का अभाव हो गया है। नकली को असली बताकर बेचा जा रहा है। पहचान निम्न है—

असली	नकली
घिसने से रेखा नहीं होती	लकड़ी पर घिसने से रेखा होती है।
नीलाभ होता है	श्वेत होता है
जिह्वा पर चिपकता है	जिह्वा पर चिपकता नहीं।
जीवनीय शक्तिप्रद	ये गुण इसके नहीं होते।
प्राणत्वयुक्त होता है	,, ,, ,,

चरकोक्त प्रथम योग गर्भपाल रस के साथ-साथ सगर्भा स्त्री को ३-४ मास सेवन कराया जाय तो गर्भ पुष्ट और तेजस्वी होता है।

यक्ष्मा की प्रथम अवस्था में श्वास प्रणालिका और फुफ्फुसों के भीतर रहे हुए वायु कोषों में क्षय कीटाणुओं

के विष प्रकोप से शुष्कता आ जाती है। उस अवस्था में यदि ज्वर शमनार्थ उष्ण गुण प्रधान औषधि के सेवन से फुफ्फुस संस्थान में रूक्षता आकर शुष्कता की वृद्धि होती है उससे शुष्क कास और बढ़ जाता है। किसी-किसी को रक्त मिश्रित थूक या झाग आता रहता है। दिन में शान्ति नहीं मिलती, रात्रि में पूरी नींद नहीं आती। व्याकुलता बनी रहती है। ज्वर प्रायः ९९° डिग्री से अधिक नहीं बढ़ता। अग्निमांद्य, शारीरिक निर्बलता, मलावरोध, मूत्र में पीलापन, शुष्क कास का वेग, चलने पर बार-बार पसीने आते रहना, नेत्रों में जलन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्था में अभ्रक भस्म आदि उत्तेजक औषधि से लाभ नहीं मिलता, किन्तु कष्ट वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में सितोपलादि जैसी सौम्य और शामक औषधि अमृत के सदृश कार्य करती है।

मात्रा—२-२ मासे, गोघृत और मधु मिला कर दिन में चार-चार बार दें। यदि इसी के साथ प्रवालपिष्टी, मुक्तापिष्टी भी १-१ रत्ती मिला दी जाय तो सत्वर लाभ मिलता है। क्षय के कीटाणुओं की क्रिया में प्रतिबन्ध लग जाता है। इस योग से मस्तिष्क, रक्त और अस्थि संस्थान सबल बनते हैं। यक्ष्मा की प्रथम अवस्था में कफ की उत्पत्ति विशेष होती है, आरम्भ में झाग सदृश कफ निकलता है। क्रमशः सफेद, पतला कफ, बाद में सफेद गाढ़ा, पीला कफ, पीला बंधा हुआ कफ इस प्रकार रूपान्तर होता है। कफ जितना जीर्ण हो जाता है उतना ही पीतवर्ण और गाढ़ापन उसमें आ जाता है। इस कफ से श्वास प्रणालिकायें और वायु कोष्ठ सब भरे रहते हैं जिससे श्वासोच्छ्वास क्रिया भी सम्यक नहीं होती और उस कफ में से दूष्य द्रव का शोषण रक्त में होता रहता है और क्षय कीटाणुओं की वृद्धि होती रहती है। इससे वे कीटाणु भी फुफ्फुस के भीतर विवर (Cavity) बनाने की क्रिया बराबर, शनैः-शनैः करते रहते हैं। ऐसी अवस्था में अभ्रक भस्म, शृंग भस्म, रस सिंदूर आदि से युक्त कफघ्न औषधियों के सेवन की आवश्यकता रहती है परन्तु किसी-किसी को फुफ्फुस संस्थान में अधिक शुष्कता आ जाने से केशिका आदि के टूटने से कफ के साथ रक्त निकलता रहता है जिससे उग्रता शमनार्थ और रक्तस्राव के रोकने हेतु शामक प्रवाल पिष्टी मुक्ता पिष्टी जैसी औषधि का भी प्रयोग आवश्यक होता है। इससे विष की भी शुद्धि होती है। ज्वर मर्यादित बनता है साथ ही रस रक्त के पाचन को भी बल मिलता है। कास वेग का ह्रास होता है, व्याकुलता दूर होकर आवश्यक शान्ति व नींद मिलती। पित्त प्रकोप के कारण यदि कण्ठ, छाती, नेत्र, हथेली, पैरों के तलवों आदि में जलन, मुखपाक, मस्तिष्क में उग्रता, व्याकुलता, मूत्र में दाह आदि लक्षण प्रतीत हों तो उक्त शामक योग से युक्त सितोपलादि से पित्त का शमन होकर लक्षणों की निवृत्ति होती है साथ ही कफ की उत्पत्ति, ज्वर और कीटाणु विष का भी ह्रास होता है।

जीर्ण ज्वर होने पर देह निर्बल बन जाती है फिर थोड़ा परिश्रम सहन नहीं होता, आहार-विहार में थोड़ा भी अन्तर आ जाने से ज्वर बढ़ जाता है, वैसे मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है। किन्तु रात्रि में ज्वर बढ़ता है, शुष्क कास भी चलती है। ऐसी अवस्था में सुदर्शन चूर्ण आदि तिक्त औषधियां सहन नहीं होतीं, उस उस समय कास में वृद्धि हो जाती है और ज्वर की निवृत्ति भी नहीं होती, उन रोगियों को प्रवाल पिष्टी से युक्त सितोपलादि चूर्ण शहद मे मिलाकर दिन मे तीन बार देने से, सहज ही, चन्द दिनों में कास शान्त हो जाती है। ज्वर का विष भी शमन हो जाता है।

जिनकी सन्तान माता की निर्बलता से निर्बल होकर, निर्बल ही रह जाय, उनकी हड्डियां बहुत निर्बल होती हैं। ऐसे बच्चों का उपचार प्रथम वर्ष ही में कर लिया जाय तो उत्तम है। इसके लिए प्रवाल और सितोपलादि का मिश्रण दिन मे दो बार उस समय तक देते रहें।

निर्बल पुरुष की सन्तान भी यदि निर्बल उत्पन्न हो तो उसकी सन्तान को या गर्भवती होने पर गर्भवती स्त्री को अभ्रक भस्म, प्रवाल भस्म और सितोपलादि का सेवन ५-६ माह तक कराना चाहिए जिससे सन्तान बलवान, तेजस्वी और बुद्धिमान बने।

कितनी ही माताओं को अधिक सन्तान होने के कारण, या छोटी आयु में ही देह कृश होने के कारण गर्भावस्था में अति कष्ट होता है यहां तक थोड़े परिश्रम या चलने फिरने में भी आलस्य रहता हो उन्हें अभ्रक+प्रवाल+सितोपलादि का मिश्रण देते रहने से गर्भ पुष्ट बन जाता है। गर्भिणी को भी लाभ होता है, शरीर में पुष्टता के

साथ-साथ स्फूर्ति में भी वृद्धि होती है।

कभी-कभी किसी-किसी को गरम मसालों, उष्ण चाय या चूर्ण आदि सेवन से पित्त की वृद्धि कर आमाशयिक पित्त (Gastric Juice) व लवणाम्ल (Acid Hydro-chloric) की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे छाती और कण्ठ में जलन, मुख पाक, खट्टी-खट्टी डकारें आती रहना, ये लक्षण प्रतीत होते हैं तथा आहार का सम्यक् पाचन नहीं होता और अरुचि भी बनी रहती है। ऐसे रोगियों को सितोपलादि के साथ प्रवाल भस्म, कपर्द भस्म सेवन कराने से अम्लपित्त के लक्षण और अरुचि दूर होकर, अग्नि अपना सम्यक् कार्य करने लगती है।

आमाशय-पित्त तीव्र बनने के कारण पचन क्रिया मन्द हो जाती है उसका उचित उपचार शीघ्र न होने से, किसी-किसी को विदग्धाजीर्ण हो जाता है और पित्त प्रमेह, हारिद्रामेह की प्राप्ति होती है, पेशाब का वर्ण अति पीला दीखता है। सर्वांग में दाह, तृषा, मूत्र के परिमाण में कमी, मूत्रस्राव अधिक बार होना, देह शुष्क, चक्कर आते रहना आदि लक्षण उपस्थित होने पर ऐसी अवस्था में चन्द्रकला रस सेवन के साथ-साथ आमाशय पित्त की शुद्धि हेतु सितोपलादि चूर्ण का भी सेवन करायें।

जीर्ण ज्वर या प्रकुपित हुआ ज्वर दीर्घकाल पर्यन्त रह जाने पर शरीर अशक्त बन जाता है और मस्तिष्क में उष्णता आ जाती है जिससे सहनशीलता कम हो जाती है, थोड़ी-सी प्रतिकूलता होने या विचार विरुद्ध होने पर अति क्रोध आता है। यकृत् निर्बल हो जाता है, मलावरोध रहता है, मल में दुर्गंध आती है एवं मन्द-मन्द पित्त प्रकोप, पाण्डुता, हृदय में धड़कन और अति निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते है, ऐसे रोगियों को सितोपलादि चूर्ण खमीरे-गाजवां के साथ कुछ दिनों तक देते रहने पर सब लक्षणों सह पित्त प्रकोप दूर होकर शरीर बलवान बन जाता है।

सितोपलादि चूर्ण में निम्न द्रव्य मिलाकर भी उपयोग किया जाता है। ऐसे प्रयोगों को वृहत् सितोपलादि कहते है। ३१ तोला सितोपलादि चूर्ण, ४ तोला मुलैठी चूर्ण, ४ तोला बनफसा के फूल का चूर्ण, ४ तोला गावजवां चूर्ण, ४ तोला तालीस पत्र चूर्ण-सबको एक में मिश्रित करके रखें। मात्रा २ से ४ माशे घी शहद से। यह सितोपलादि के समान व कुछ अधिक उपयोगी है, शामक है तथा कफ को सरलता से बाहर निकालता है। सब ऋतुओं में सब प्रकृति वालों पर उपयोगी है।

—श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त (विशेष सम्पादक)
कानपुर

आवश्यक-सूचना

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ़ में अभी तक मैं तथा मेरे चार पुत्र भागीदार थे और श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन द्वारा 'धन्वन्तरि' का प्रकाशन, औषधि-निर्माण, क्रय-विक्रय, मीरा प्रिंटिंग प्रेस तथा दाऊ मैडीकल स्टोर्स का कार्य किया जा रहा था। अब भवन का बटवारा निम्न प्रकार हो गया है—

१—"धन्वन्तरि" के प्रकाशन तथा लाभ-हानि का दायित्व एवं दाऊ मैडीकल स्टोर्स श्री दाऊदयाल गर्ग को दिया है। उन्होंने "निर्मल आयुर्वेद संस्थान" नवीन संस्था स्थापित करके यह कार्य करना निश्चित किया है।

२—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन का शेष कार्य–औषधि निर्माण, क्रय-विक्रय, पुस्तक-प्रकाशन व विक्री आदि मेरे तथा मेरे दो पुत्र श्री रामकृष्ण अग्रवाल एवं श्री गिर्राज किशोर के अधिकार में रहेगा।

३—मीरा प्रिंटिंग प्रेस का कार्य श्री श्रीनाथ अग्रवाल को दिया गया है।

अस्तु, 'धन्वन्तरि' मासिक पत्र विषय में सम्पूर्ण पत्र-व्यवहार "निर्मल आयुर्वेद संस्थान, मामू भांजा रोड, अलीगढ़" के पते से करना चाहिये तथा श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन की औषधियों, पुस्तकें आदि के विषय में पत्र व्यवहार श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन के पते से ही पूर्ववत् करना चाहिए।

—ज्वाला प्रसाद अग्रवाल

महा सुदर्शन चूर्ण

वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त

—:—

ग्रन्थ निर्देश—शा. स.।

घटक—हरड़, बहेड़ा, आमला, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी कटेरी की जड़, बड़ी कटेरी की जड़, कपूर, सोंठ, मिर्च, पीपल छोटी, पीपलामूल, मरोड़फली, गुर्च, जवासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, मोथा (नागरमोथा), त्रायमाण, नेत्रवाला (सुगन्ध वाला), नीम की छाल, पोहकर मूल, मुलैठी, कूड़ा की छाल, अजवाइन, इन्द्रजौ, भारङ्गी, सँहजन बीज, फिटकरी भुनी, बच, तज (दालचीनी), पद्माख, खस, श्वेत चन्दन, अतीस, बरियारी की जड़, माषपर्णी (शालपर्णी), मुद्‌गपर्णी (पृश्निपर्णी), वायविडंग, तगर, चित्रकमूल छाल, देवदारु, चव्य, परवल के पत्ते, जीवक, ऋषभक, लौंग, बंशलोचन, कमलपत्र, काकोली (मुलैठी), तेजपत्ता, जावित्री, तालीसपत्र। उक्त सभी वस्तु एक-एक भाग, चिरायता २६॥ भाग। सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें। मात्रा—१ से ३ माशे।

अनुपान—शीतल जल। आवश्यकतानुसार दिन में २ या अधिक बार दें।

उपयोग—

वातज, पित्तज, कफज, द्वन्दज, सान्निपातिक, आगन्तुक, धातुगत (जीर्ण) ज्वर, विषम ज्वर, मानसिक ज्वर, शीतसह ज्वर, एकाहिक ज्वर, अन्येद्युष्क ज्वर, तृतीयक ज्वर, चतुर्थक ज्वर इन सब में उपयोगी होने से ज्वर मात्र में इसका उपयोग किया जाता है। इसके घटकों में सभी ऐसे द्रव्य हैं जो दोषों को तो नष्ट करते ही हैं साथ ही कीटाणुनाशक गुण भी है एवं सब प्रकार की निर्बलता को भी दूर करने वाले द्रव्य हैं। जिन ज्वरों में मूर्च्छा, तन्द्रा, भ्रम, प्यास, श्वास, कास, पाण्डुता, हृदयरोग, कामला, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, कटिशूल, जानुशूल तथा पार्श्वशूल रहता हो उन सब में भी उपयोगी है। इस चूर्ण के उपयोग में विशेष निर्णय की आवश्यकता नहीं रहती। स्त्री-पुरुष, बालक, सगर्भा, प्रसूता, वृद्ध, युवक सभी को निर्भयपूर्वक दिया जा सकता है।

ज्वरों की उत्पत्ति अधिकतर आमदोष प्रकोप होने के पश्चात्, प्रस्वेद बाहर न निकलने पर होती है। इस चूर्ण से (१) आम का पाचन, (२) कोष्ठ शुद्धि, (३) विष को निर्विष बनाना और (४) प्रस्वेद ग्रन्थियों को बंधन मुक्त बनाना, ये चारों कार्य सरलतापूर्वक सम्पन्न हो जाते हैं। अतः प्रायः सब प्रकार के ज्वरों में प्रयोजनीय है।

इस योग में सर्वाधिक चिरायता है जो स्वाद में तिक्त है। उसका विपाक कटु होता है। शीतवीर्य, कफपित्तशामक, दीपन है, तृष्णा को कम करता है, आम पाचन है, कफघ्न है, श्वासहर है, यहाँ तक कि स्त्री के स्तन्य का भी शोधन करता है, दाहप्रशमन है। अग्निमांद्य, अजीर्ण, यकृत विकार, कामला, पाण्डु, आध्मान, कृमि, रक्तविकार, शोथ, रक्तपित्त, अम्लपित्त, कास, स्तन्यविकार, चर्मरोग, जीर्ण ज्वर, विषम ज्वर, मूत्रकृच्छ्र नाशक गुण हैं। फिर यह सुदर्शन चूर्ण तो एक बहुमूल्य उपयोगी औषधि है।

जीर्ण ज्वर में इसका उपयोग निम्न प्रकार फाण्ट बना कर किया जाता है—

विधि—उबलते हुए परिस्रुतजल (Boiling dist. water) १/२ पाव में इस चूर्ण की एक मात्रा डालकर ढक्कन बन्द कर दें, १५ मिनट बाद छानकर मात्रा १। से २॥ तोले तक यह फांट (चाय की रीति से पकाया जल) १२ घण्टे तक उपयोग में लाया जा सकता है। इसका प्रयोग रोगोत्तरकालिक दौर्बल्य निवारणार्थ उत्तम होता है। इससे क्षुधा में वृद्धि होती है। आहार का पाक ठीक तरह से होता है।

आमज्वर या नूतन ज्वर में इसका फांट दिन में २-३ बार देने से ज्वर शीघ्र ही शमन होता है। यदि रोगी को मलावरोध हो तो इसी में १॥-२ माशे कुटकी का चूर्ण मिलाकर फांट बनाकर देना चाहिए।

धातुगत ज्वर में या दीर्घकालीन मन्द ज्वर में इसका चूर्ण ४ माशे, सोंठ और डीकामाली ६-६ माशे लेकर जौकुट चूर्ण कर फांट बनाकर दें।

कभी-कभी मधुर (आंत्रिक) ज्वर उतर जाने पर रोगी आहार विहार में भूल कर देता है जिससे ज्वर पुनः प्रकुपित होकर आ जाता है। मधुरा के पहले आक्रमण में रोगी बहुधा क्षीण हो जाता है। उस पर पुनः आक्रमण से और भी अधिक कृश और दीन हो जाता है। उस समय दूध में सुदर्शन चूर्ण मिलाकर या दूध के अनुपान से देते रहने से सरलतापूर्वक कीटाणुओं का विष और आम जलकर ज्वर का शमन हो जाता है। क्षुधा प्रदीप्त होकर शरीर में बल आने लगता है।

यह निश्चित है कि अधिक दिनों तक ज्वर आता रहे तो देह निर्बल हो जाती है और ज्वर भी मन्द-मन्द रहने लगता है—जिसे अस्थिगत ज्वर कहते हैं। या रात्रि में कुछ ज्वरांश हो जाता है। मूत्र में पीलापन, बेचैनी, अग्निमांद्य, अरुचि, निर्बलता, आलस्य, हाथ-पैर टूटना, मलावरोध, स्वभाव में उग्रता आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस समय किसी भी तीव्र औषधि के सेवन से प्रायः हानि होते देखी जाती है। उस समय ४ से ६ मासे सुदर्शन चूर्ण का फांट, २ रत्ती शिलाजीत, १ रत्ती कपूर और ६ मासे मधु मिलाकर प्रातः सायं देते रहने से थोड़े ही दिनों में ज्वर का निवारण हो जाता है, पाचन क्रिया सुधर जाती है, स्फूर्ति आ जाती है और बल की वृद्धि भी होती है।

कोमल स्वभाव की निर्बल रुग्णा या रोगी जो पित्त प्रकोप से पीड़ित हों उनको विषम ज्वर आने पर क्विनाइन जैसी औषधि नहीं दी जा सकती। यदि उस समय दे दिया जाय तो विविध स्थानों से रक्तस्राव, निद्रानाश, वृक्क कार्य में प्रतिबन्ध, दाह, व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। किन्तु यह सुदर्शन चूर्ण का उपयोग निरापद सिद्ध होकर उस ज्वर को दूर कर देता है।

रक्त में लीन विष से रोगी की पाचन क्रिया अधिक निर्बल हो जाती है। भोजन करने की रुचि नहीं रह जाती। मूत्र में पीलापन, अग्निमांद्य, कठोर उदर, कभी-कभी उदर में शूल चलना, हाथ पैर टूटना, किसी किसी की छाती में जलन, किसी को श्वास कास हो जाना, शिर में भारीपन बना रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस समय इस चूर्ण का उपयोग उत्तम लाभकर प्रमाणित होता है।

जीर्ण ज्वर जिसमें रक्त के रक्तकणों का ह्रास हो गया हो, थोड़ा परिश्रम करने पर हृदय की गति बढ़ जाती हो, आलस्य बना रहता हो, पाण्डुता के साथ शारीरिक निर्बलता, मलावरोध, शिर में भारीपन, अरुचि और अग्निमांद्य के लक्षण हों उसमें सुदर्शन चूर्ण का फांट और संशमनी वटी (गुर्च घनसत्व से तैयार वटी) सेवन कराने से थोड़े ही दिनों में शरीर स्वस्थ हो जाता है।

सगर्भावस्था में कब्ज रहने पर कितनी ही स्त्रियों को बार-बार ज्वर ९९ डिग्री तक आ जाता है, पचन क्रिया मन्द हो जाती है, खाया अन्न काफी समय तक जड़ होकर उदर में पड़ा रहता है। उस समय स्वर्णमालिनी वसन्त या लघुमालिनी वसन्त के साथ-साथ इस चूर्ण का फांट देना चाहिए। और लवण भास्कर चूर्ण भोजन के पश्चात् देते रहने से सब विकार कुछ ही दिनों में नष्ट हो जाते हैं।

प्रसव होने के पश्चात् भी किसी-किसी महिला के दूसरे तीसरे दिन पित्त प्रकुपित होकर मन्द-मन्द ज्वर आ जाता है। तृषा वृद्धि, दाह, व्याकुलता, प्रस्वेद आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यदि उन्हें दशमूल क्वाथ से दस्त हो जांय, दाह बढ़े तो उन्हें सुदर्शन चूर्ण का फांट अति हितकर, लाभदायक रहेगा। यदि किसी को मलावरोध हो तो इस चूर्ण के साथ निशोथ चूर्ण शक्कर मिलाकर दे सकते हैं। यदि ज्वर ९९ डिग्री से अधिक बढ़ जाय तो उसे सुदर्शन चूर्ण फांट के साथ रत्नगिरी रस देना चाहिए।

यदि गर्भाशय में अशुद्ध रक्त रह जाने के कारण शूल भी चलता हो तो आरम्भ में गर्भाशय शोधक प्रताप लंकेश्वर रस, उसी के साथ दशमूल क्वाथ की योजना परमावश्यक होती है। गर्भाशय का शूल बन्द होने पर सूतशेखर के साथ सुदर्शन चूर्ण का सेवन कराया जाय।

कितने ही बालकों को मधुर पदार्थ अत्यधिक सेवन से या दिन भर खाते रहने से, मलावरोध और अपचन होकर

बार-बार ज्वर आता रहता है, फिर धीरे-धीरे प्लीहा बढ़ जाती है, अग्निमांद्य हो जाता है, उनको पथ्यसह सुदर्शन चूर्ण का सेवन थोड़े दिनों तक नियमित रूप से कराया जाय, मधुर पदार्थ खाने को कदापि न दिया जाय तो ज्वर निवृत्ति हो जाती है। प्लीहा वृद्धि का भी ह्रास होता है, पचन क्रिया भी सबल हो जाती है।

सुदर्शन चूर्ण का फांट सोडा बाई कार्ब मिलाकर दिन में २ बार देते रहने से मलावरोध, आमप्रकोप, अग्निमांद्य सह जीर्ण ज्वर निवृत हो जाता है। बहु संख्यक रोगियों पर इस चूर्ण का प्रयोग करके उत्तम परिणाम मिले हैं।

हिंग्वाष्टक चूर्ण

ग्रन्थ निर्देश—अ. हृ., शा-सं, वै. र.।

घटक—सौंठ, मिर्चकाली, पीपल, अजवायन (अजमोद के स्थान पर), सैंधानमक, जीरा सफेद भुना हुआ, स्याह जीरा, तालाब व हीरा हींग घी में भुनी समस्त वस्तु समभाग। इस चूर्ण को प्राय: स्वाद की दृष्टि से हींग १/८ व १/४ भाग ही मिलाते हैं। समभाग नहीं मिलाते। लेकिन सत्वर लाभ के लिए समभाग ही हींग मिलाना चाहिए। इस चूर्ण में प्रधान द्रव्य हींग है। हींग में उदर वातघ्न और शूलहर गुण विशेष है। आमाशय और अंत्र में संग्रहीत वायु को दूर करती है। उदर शूल शमन होता है। पाचक रस का स्राव बढ़ जाता है। कीटाणुओं का नाश करती है। हींग युक्त त्रिकटु, आदि द्रव्य भी यकृत पित्त को सबल बनाकर पित्तस्राव कराने में सहायक होते हैं। इसलिए आमाशय और अन्न नलिका के कौड़ी स्थान में जिन्हें दर्द रहा करता है वे इस चूर्ण को घी से सेवन करें तो कुछ ही दिनों वह दर्द चला जाता है।

जिन्हें पाचन शक्ति की निर्बलता के कारण भोजन करने के पश्चात् तुरन्त शौच जाना पड़ता हो अथवा दिन में ३-४ बार थोड़ा-थोड़ा मल त्याग होता हो, उदर में भारीपन बना रहता हो, मुख का स्वाद फीका हो उन्हें यह चूर्ण जायफल, जावित्री और कपूर मिलाकर थोड़ी-थोड़ी देर में, अल्प मात्रा में देते रहने से सब विकार नष्ट हो जाते हैं।

अपचन, मन्दाग्नि, हैजा, पतले दस्त, वातज संग्रहणी, वात गुल्म रोग, वातशूल, अफरा, तथा अपचन रोग में देने से उन समस्त रोगों को नष्ट करता है। यह वात, कफज विकारों में लाभदायक है।

—विशेष सम्पादक

त्रुट्यादि चूर्ण

ग्रंथ—वृ. नि. र. आमवाताधिकार

घटक—इलायची छोटी, लवङ्ग, विडङ्ग, सौंठ, मिर्च, पीपल, मोथा, हर्रे, आंवला और तेजपत्ता १-१ भाग निशोथ इन सबसे ३ गुना, मिश्री सबके बराबर। सबको कूट छान कर चूर्ण कर लें। इसके सेवन से आमवात एवं विदग्धाजीर्ण अम्लपित्त में आशातीत लाभ होता है।

मात्रा—२-२ ग्राम।

अनुपान—जल, दिन में तीन बार लेवें।

यह चूर्ण आमवाताधिकार का है परन्तु आमशूल में बहुत ही लाभकारक है।

मैंने सर्वप्रथम रामगोपाल सोनी २५ वर्ष को चूरू में इस चूर्ण का सेवन करवाया। बहुत ही उत्तम लाभ हुआ। यह सुकुमार कुमार घृत, कृष्ण चतुर्मुख रस भी ले चुका था।

—वैद्य श्री चन्द्रशेखर जी व्यास,
चूरू

आयुर्वेद में चूर्ण

डा० श्री हरिशङ्कर शर्मा वैद्य

आयुर्वेद में चूर्ण का इतिहास आदि काल से ही मिलता है। आज के युग में तो चूर्ण का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। कैपसूल के कारण !

चूर्ण क्या है ? इसके लिए आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ शार्ङ्गधर संहिता का यह श्लोक देखिये—

अत्यंत शुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्र गालितम् ॥

अर्थात्—अत्यन्त सूखी औषधियों को कूट पीस कपड़छन करने पर जो प्राप्त होता है उसे चूर्ण कहते हैं। आयुर्वेद में चूर्ण दो प्रकार के माने हैं—

तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षौद्रस्तन्मात्रा संस्थिता ॥

अर्थात्—१. रज चूर्ण, २. क्षौद्र चूर्ण ये दो प्रकार के बताए गए हैं तथा चूर्ण की मात्रा एक कर्ष (१ तोला) बताई है।

अनुपान—यदि चूर्ण में गुड़ मिलाना हो तो चूर्ण के बराबर मिलावें। हींग डालनी हो तो घी में भूनकर डालें जिससे विकलता न करें। घी, शहद आदि चिकने पदार्थ डालने हों तो चूर्ण से दुगने डालें। यदि दुग्ध, गौमूत्र, पानी या अन्य तरल पदार्थ चूर्ण में डालें तो चूर्ण से चार गुना डालें।

कारण—उपरोक्त के अनुसार मिलाने से चूर्ण शरीर में उत्तमता के साथ फैल जाता है। जिस तरह पानी में तेल की बूंद फैल जाती है उसी प्रकार शरीर में चूर्ण की औषधि फैलकर रोग का नाश करती है।

चूर्ण में नीबू या दूसरी वनस्पति की पुट दें तो चूर्ण रस में डूब जाय तब ही पुट माना जाता है।

इस प्रकार प्रत्येक प्रकार के चूर्ण बनाने का विधान आयुर्वेद प्रवर्तकों एवं विद्वानों ने विधान बनाया है।

चूर्ण वर्णन—आयुर्वेद ग्रन्थ चूर्णों से भरे पड़े हैं १-१ रोग पर बहुत से चूर्णों का वर्णन है। यहाँ सभी को लिखा जाय तो बहुत बड़ा ग्रंथ बन जाय। यहाँ पर मैं उन चुने हुए चूर्णों का वर्णन कर रहा हूं जो अनुभव में अद्वितीय प्रमाणित हो चुके हैं तथा अनेक कम्पनियाँ बना रही हैं। तथा जिनको मैंने भी प्रयोग कर अद्वितीय पाया है—

१. आमलक्यादि चूर्ण—

घटक—आंवला, चीते की छाल, बड़ी हरड़, पीपल, सैंधा नमक।

निर्माण—सबको बराबर मात्रा में लेकर पीस कूटकर चूर्ण बनालें।

मात्रा—५ से १० ग्राम तक गर्म जल से।

प्रयोग—यह सम्पूर्ण ज्वरों का नाश करता है, दस्तावर है, रुचि बढ़ाता है, कफ को दूर करता है, अग्नि प्रदीपन करके अन्न को पचाता है।

२. त्रिफला चूर्ण—

घटक—हरड़, बहेड़ा, आंवला समभाग।

निर्माण—सबको कूट पीसकर रखें।

मात्रा—५ से १० ग्राम तक पानी से।

प्रयोग—इसके सेवन से प्रमेह, सूजन, विषमज्वर, कफ-पित्त, कुष्ठ नष्ट होता है। अग्नि प्रदीपक एवं रसायन रूप है।

नोट—इस चूर्ण को विषम भाग (१-२-३ के अनुपात में) घी शहद के साथ सेवन करें तो सम्पूर्ण नेत्र रोगों को नष्ट करता है।

३. पञ्चकोल चूर्ण—

घटक—पीपल, आंवला, सौंठ, पीपलामूल, चीते की छाल समभाग।

निर्माण—सबको कूटपीस कर चूर्ण बनाकर प्रयोग करें।

मात्रा—५ से १० ग्राम पानी से।

प्रयोग—यह पाचन व दीपन है। अफरा, प्लीहा, गोले का रोग, शूल एवं कफोदर को नष्ट करता है।

४. सुदर्शन चूर्ण—

घटक—हरड़, बहेड़ा, आंवला, हल्दी, दारु हल्दी, छोटी बड़ी कटेली, कचूर, सौंठ, कालीमिर्च, पीपाल, पीपलमूल, मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्त पापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाण, नेत्रबाला, नीम की छाल, पुहकर मूल, मुलहठी, कुडे की छाल, खु० अजवायन, इन्द्रजौ, भारङ्गी, सहजने के बीज, फिटकरी, वच, दालचीनी, पद्माख, चन्दन, अतीस,

खरेटी, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, वायविडंग, तगर, चीते की छाल, देवदार, चव्य, पटोलपत्र, जीवक (न मिले तो विदारी कन्द), ऋषभक (इसके भी अभाव में विदारीकन्द) लौंग, वंशलोचन. सफेद कमल, पत्रज, जावित्री, तालीस पत्र, काकोली (न मिले तो मुलहठी लें) ।

निर्माण—इन दवाओं को समभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण बना लें। तथा पूरी दवाओं का आधा चिरायता चूर्ण मिला लें ।

मात्रा—५ से १० ग्राम पानी के साथ ।

प्रयोग—इसका प्रयोग वात, पित्त, कफ, द्वन्द्वज सन्निपात से होने वाले ज्वर, विषम ज्वर, आगन्तुक ज्वर, धातुजन्य ज्वर, मानस ज्वर, शीत ज्वर आदि सब ज्वरों को नष्ट करता है। मोह, श्वास, खांसी, तन्द्रा, भ्रम, तृषा, पाण्डु, हृदय रोग, कामला, त्रिक (पीठ), कमर, जानु, पसवाड़ा आदि शूलों को नष्ट करता है। यह बहुत गुणकारी चूर्ण है ।

५. लघु गंगाधर चूर्ण—

घटक—नागरमोथा, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पठानी लोध्र, मौचरस, धाय के फूल ।

निर्माण—सबको समभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण कर लें ।

मात्रा—५ से १० ग्राम-छाछ में गुड़ तथा चूर्ण मिलाकर पीवें ।

उपयोग—यह चूर्ण सर्व प्रकार के अतिसार एवं प्रवाहिका को नष्ट करता है ।

६. वृद्ध गंगाधर चूर्ण—

घटक—नागरमोथा, टेंटू, सोंठ, धाय के फूल, लोध, नेत्रबला, बेलगिरी, मोचरस, पाढ़, इन्द्रजौ, कूडे की छाल, आम की गुठली, अतीस, लज्जालू (लाजवन्ती) ।

निर्माण—सबको समभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण बनालें ।

मात्रा—५ से १० ग्राम चूर्ण चावलों के धोये पानी से शहद मिलाकर पीवें ।

प्रयोग—प्रवाहिका, सर्व अतिसार, संग्रहणी नष्ट होती हैं।

नोट—असाध्य प्रवाहिका (नदी की तरह बहने वाली) अतिसार को नष्ट कर देती है ।

७. सितोपलादि चूर्ण —

घटक—मिश्री १६ भाग, बंशलोचन ८ भाग, पीपल ४ भाग, छोटी इलायची के बीज २ भाग (मैं छोटी की जगह बड़ी इलायची के बीज डालता हूं), दालचीनी १ भाग।

निर्माण—सबको कूट पीसकर चूर्ण बनालें ।

मात्रा—३ ग्राम से १० ग्राम तक शहद व घी के साथ खाने से ।

प्रयोग—श्वांस, खाँसी, हाथ-पैरों तथा शरीर की दाह, मन्दाग्नि, जीभ की शून्यता, पीठ का शूल, अरुचि, ज्वर. मस्तक का रुधिर विकार तथा पित्त विकारों को शीघ्र में नष्ट करता है ।

८. शतावरी चूर्ण—

घटक—शतावर, गोखरू, कौंच के बीज, गंगेरन की छाल, कंघी की छाल, तालमखाना ।

निर्माण—सबको समभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण बनालें ।

मात्रा—५ से १० ग्राम की मात्रा में रात को गाय के दूध के साथ सेवन करें ।

प्रयोग—यह काम शक्ति को बढ़ाता है। नपुंसक को घोड़े के समान मैथुन शक्ति प्रदान करता है ।

९. अश्वगन्ध चूर्ण—

घटक—अश्वगंध १० भाग, विधारा १० भाग ।

निर्माण—दोनों का चूर्ण करके घी के बर्तन में रखें।

मात्रा—१-१ तोला (१०-१० ग्राम) चूर्ण गाय के दूध से सेवन करें ।

प्रयोग—नपुंसकता नष्ट करता है वीर्य को बढ़ाता है। अगर स्त्री त्याग करके सेवन करें तो शरीर में फुर्ती, काँपना, बालों को सफेद न होने देना तथा बूढ़ों में जवानी का जोश भरता है। रसायन रूप है ।

१०. मूसली चूर्ण—

घटक—सफेद मूसली, गिलोय सत्व, कौंच के बीज, गोखरू, सेमर का मूसला, मिश्री, आंवला ।

निर्माण—सबको समभाग लेकर कूट पीस कर चूर्ण कर लें ।

मात्रा—५ से १० ग्राम, गाय के दूध में घी मिलाकर सेवन करें ।

प्रयोग—यह वीर्य का बढ़ाता है तथा वाय की कमी से नपुंसकता को नष्ट करता है।

११. नवायस चूर्ण—

घटक—चीते की छाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागर मोथा, वायविडंग, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, सोंठ।

निर्माण—सबको समभाग लेकर चूर्ग कर लें तथा चूर्ण के बराबर लोह भस्म मिलाकर रख लें।

मात्रा—३ से ५ ग्राम तक शहद तथा घी या गोमूत्र या गौ छाछ के साथ सेवन करें।

प्रयोग—इसके सेवन से घोर पाण्डु व कामला, त्रिदोष भगंदर, सूजन, सर्व कोढ़, सर्व उदर रोग, अर्श, मदाग्नि, अरुचि, कृमि रोग को नष्ट करने में अपूर्व प्रभाव रखता है।

नोट—उपरोक्त सभी चूर्ण शार्ङ्गधर संहिता क हैं तथा शतशोनुभूत है।

१२. यमानिका चूर्ण—

घटक—खुरासानी अजवायन, चीता, जवाखार, वच, जमालगोटा की जड़, पीपली।

निर्माण—सबको समभाग लेकर चूर्ण बनाकर रख लें।

मात्रा—५ से १० ग्राम। गर्म जल या दही के पानी से या मदिरा, आसव के साथ।

प्रयोग—यह प्लीहा रोग को नष्ट करता है।

१३. शोथारि चूर्ण—

घटक—सूखी मूली, ओगा, सौंठ, काली मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, जमालगोटा, तीनों प्रकार के मद।

निर्माण—सबको समभाग लेकर कूट पीस कर चूर्ण बनालें।

मात्रा—५ से १० ग्राम बेलपत्र के रस के साथ।

प्रयोग—इसके सेवन से पाण्डु एवं दारुण सूजन नष्ट होती है।

१४. विमलेश चूर्ण—

घटक—दारू हल्दी, रसौत, नेत्रबला, बांसा, चिरायता, बेलगिरी, भिलावा।

निर्माण—सबको समभाग लेकर कूट पीस कर चूर्ण बनाकर रखें।

मात्रा—५ से १० ग्राम तक। चूर्ण का काढ़ा बनाकर।

प्रयोग—यह असाध्य प्रदर को भी नष्ट करता है।

नोट—यह मेरी पत्नी का सफल प्रयोग है। मैंने उसी के नाम से इस चूर्ण का प्रचार किया है। शास्त्रों में इसका क्या नाम है कह नहीं सकता।

१५, पुष्यानुग चूर्ण—

घटक—पाठा, जामुन व आम की गुठली, पाषाणभेद, रसौत, लक्ष्मणा, मोचरस, मंजीठ, कमल केशर, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, लोध्र, गेरू, कायफल, काली मिर्च, सौंठ, दाख, लालचन्दन, कुटकी, धमासा, धाय के फूल, काला अगर, कुड़ा, मुलहठी, अर्जुन।

निर्माण—सबको पुष्य नक्षत्र में समभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण बनाकर रख लें।

मात्रा—५ से १० ग्राम तक। चावलों के धोये पानी में शहद मिलाकर।

प्रयोग—इसके सेवन से अर्श, अतिसार का रक्त नष्ट होता है तथा बच्चों के आगन्तुक रोग नष्ट होते हैं। योनि दोष (रजदोष—सफेद, नीला, पीला, लाल आदि) सभी रजोदोषों को नष्ट करता है।

कहते हैं इसके निर्माणकर्त्ता आत्रेय ऋषि थे।

नोट—चूर्ण में अम्बष्ठा की जगह लक्ष्मणा लिखा है सफेद फूल की कटेली को कहते हैं। वो न मिले तो नीले फूल की बेर कटेली डालें। मैं उसी का प्रयोग करता हूं।

१६. स्तम्भक चूर्ण—

घटक—शुद्ध पारद १० ग्राम, अफीम १० ग्राम, दोनों को मिला पान रस की ७ भावना देकर अकरकरा, खु० अजवायन, पान की जड़, जायफल, लौंग, जावित्री ३-३ ग्राम।

निर्माण—पारद व अफीम के भावना दिये चूर्ण में सब दवाओं को कूट पीसकर मिलाकर चूर्ण बनाकर रखलें।

मात्रा—चने बराबर भोजन के ४ घंटे बाद खायें डेढ़ घंटे बाद मैथुन करें। जब तक कोई खट्टी वस्तु न खायी जायगी वीर्य नहीं गिरेगा।

नोट—यह अत्यन्त वाजीकरण है तथा स्तम्भक भी।

—डा० हरिशंकर शर्मा वैद्य (खेड़ेवाले)
छोटा बाजार, कैराना (गाजियाबाद) उ० प्र०

लेप प्रकरण
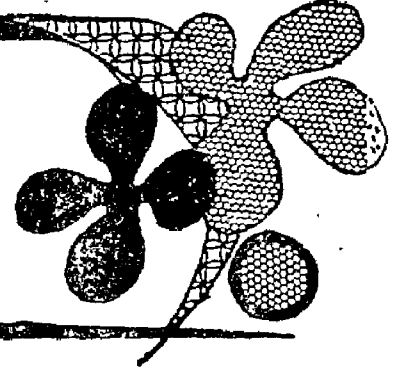
किसी भी औषधि को जल, दूध, कांजी, मूत्रादि के साथ पीसकर त्वचा व रोग स्थान पर लगाने को लेप कहते हैं। लेप को लिप्त, लेपन और लेप भी कहते हैं। यह तीन प्रकार के होते हैं। (१) दोषघ्न, (२) विषघ्न-विषहा, और (३) वर्ण्य।

(१) दोषघ्न—वातादि के प्रकोप को शान्त करने वाला।

(२) विषहा—कुत्ता, गीदड़, सर्प, बिच्छू प्रभृति विषों के असर को नाश करते हैं।

(३) वर्ण्य—शरीर में कान्ति, सुन्दरता उत्पन्न करने वाला, नीलिका, व्यंग आदि को दूर करने वाला होता है। उसे उद्वर्तन भी कहते हैं।

आचार्य चरक ने बत्तीस सिद्धतम चूर्ण प्रदेह का वर्णन सूत्र स्थान में किया है।

चूर्ण प्रदेह-शब्द के अर्थ आचार्य चक्रपाणि ने दो किये हैं—(१) चूर्ण और (२) प्रदेह (चूर्णानिच प्रदेहाश्च-चूर्ण प्रदेहाः) चूर्ण किए हुए प्रदेह (चूर्णी कृतानां प्रदेहाश्चूर्ण प्रदेहाः) चूर्ण के प्रदेह रूप में प्रयोग करने के लिए गोमूत्र, गोरोचन इत्यादि का प्रयोग करने के लिए हैं। लेप के प्रदेह और प्रलेप दो भेद हैं। "शीतस्तनु विशोषी च प्रलेपः पित्तहृन्मतः" के अनुसार पित्त विकारों को दूर करने के लिए शीतल, पतले और सूख जाने वाले लेप को प्रलेप कहा जाता है। और "आर्द्रो घनस्तथोष्णः स्यात्प्रदेहः श्लेष्म वातहाः" के अनुसार कफ वात विकारों को दूर करने के लिए जो मोटा, गरम और गीला (देर में सूखने वाला) लेप किया जाता है उसे प्रदेह कहा जाता है। अतः गीला रहने पर ही उतार लिया जाता है।

शार्ङ्गधराचार्य के मतानुसार लेप त्वचा में रोमकूपों द्वारा अन्तः प्रविष्ट होकर रोग का नाश करता है। वह लेप जब तक वह गीला रहता है तभी तक उसका लाभ है। लेप को रात्रि में लगाने का निषेध है। कहा है—"न चालेपं रात्रौ प्रयुञ्जीत मामूच्छैत्य पिहितोष्मणस्तदनिर्गमाद्विकारः प्रवृत्तिरिति॥"

दोषघ्न लेप की मौटाई $\frac{1}{8}$ अंगुल, वर्ण्य लेप की $\frac{1}{3}$ अंगुल होनी चाहिए। जब तक गीला रहे तब तक ही लगा रहे बाद में उतार देना चाहिए। अन्यथा वह सूखने पर त्वचा की छवि को नष्ट कर देता है।

लेप का वीर्य (शक्ति) शरीर के अन्दर रोपकूपों से प्रवेश कर स्वेदवाही शिराओं से शरीर में फैलकर दोषों को नष्ट करता है। लेप शीतल हो चाहे उष्ण गीला रहने पर ही उतार लिया जाता है।

१. लेप लगाते समय रोग के विरुद्ध भाग (दिशा) से लगाया जाय जिससे लेप रोमकूपों में प्रवेश पा सके।

२. जो लेप फोड़ों को फोड़कर, पूय निकालने वाले होते है वे शुष्क होने तक भी लगे रह सकते है।

३. पीसकर रखा हुआ देर का या बासी लेप न लगाया जाय। वह घन होने के कारण गरमी और पीड़ा उत्पन्न करता है।

४. अत्यन्त चिकनाकर पिसा हुआ लेप, चन्दन का भी न लगाया जाय। वह अत्यन्त श्लेक्ष्ण होने के कारण उष्मावरोध करके दाह उत्पन्न करता है।

५. एक लेप सूखने पर उसी के ऊपर दूसरा लेप न लगाया जाय।

५. रात्रि में लेप लगाने का निषेध है क्योंकि रात्रि स्वभावतः शीत होती है। लेप भी शीत होने से गरमी को रोक देता है। यदि लेप गरम हो तो उसे शीत होने से पूर्व ही हटा लेना चाहिये।

लेप के प्रकार—

१. शोथघ्न लेप—पुनर्नवा की जड़, देवदारु, सौंठ, सफेद सरसों और सहजने की छाल, समान भाग लेकर काजी के साथ पीसकर लेप करने से सब प्रकार के निज (दोषज) और आगन्तुक (चोट आदि से उत्पन्न) शोथ नष्ट हो जाते है। यह शोथघ्न उत्तम योग है।

२. दाहनाशक—बहेड़ा फल की मज्जा (गिरी) को जल के साथ पीसकर दाह स्थान पर लगायें।

३. सिरस की छाल या पंचांग, मुलेठी, तगर लाल चन्दन, बड़ी इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारूहल्दी, कूट, सुगन्ध वाला, इन दस द्रव्यों को कूट पीसकर चूर्ण बना लेवें और सुरक्षित रखें। आवश्यक समय जल से पीस उष्ण या शीतल उसमें $\frac{1}{5}$ (पाँचवा भाग) घी मिलाकर लेप करे। यह लेप विसर्प, विष विकार, सूजन तथा दुष्ट वर्णों को ठीक करता है और अत्यन्त उपयोगी है।

४. भल्लातक विषघ्न लेप–(१) काले तिल को बकरी दूध में पीसकर मक्खन मिलाकर लेप करना चाहिए। या

(२) काली मिट्टी का लेप भी उत्तम रहता है।

(३) कच्चे तिल तेल का लेप भी उत्तम कार्य करता है।

(४) नारियल का तेल भी दूध मिलाकर लेप किया जाता है।

दारुण रोग में—(१) पोस्ता के दाने (खसखस) को दूध में पीसकर लेप करने से दारुण रोग नष्ट होता है।

(२) आम की गुठली की मज्जा, हरड़ की बकली इन दोनों का चूर्ण समभाग ले दूध मे पीसकर लेप करने से कष्टसाध्य दारुण रोग भी नष्ट होता है। कांजी के साथ भी लेप किया जाता है। इसके लेप का समय ३ सप्ताह तक लगाने का भी निर्देश है। यह दारुण रोग शिर में होता है। केश भूमि में दारुण खुजली, रूखापन, कफवात से होती है उसे दारुणक[1] रोग कहते है। श्लेष्मा, रक्त और कृमियों के कोप से मनुष्यों के शिर पर बहुमुख-वाली, कलकलाती हुई रूसी जम जाती है। उसे अरूंषिका[2] (रूसी) कहते है।

आचार्य आत्रेय ने ५ योग लेप के बताये है। आपका लिखना है कि इन योगों का प्रयोग मनुष्यों के कृच्छ साध्य कुष्ठ, नया किलास (श्वेत कुष्ठ), इन्द्रलुप्त, किटिभ (एक कुष्ठ विशेष), दाद, भगन्दर, अर्श, अपची और पामा रोग शीघ्र नष्ट करते है। योग निम्न है—

१. अमलतास, चकबड़ बीज, करञ्ज, अडूसा, गिलोय, मैनसिल, हल्दी और दारु हल्दी।

२. गंधा विरोजा, देवदारु, खदिर, धव, नीम, वाय-विडंग और कनेर छाल।

३. भोजपत्र के बीच की गांठ, लहसुन, सिरस, कशीस, गुग्गुल, और सहेंजना की छाल।

४. वन तुलसी, कुटज, सप्तपर्ण, पीलू, कूठ और चमेली की पत्ती।

५. कड़वी वच, सम्भालु बीज, निशोथ, दन्तीमूल, भिलावा, गेरू, और काला सुरमा।

---

[1] दारुणः कण्डुरा रूक्षाः केशभूमिः प्रचक्यते। कफ वात प्रकोपेन विद्याद्दारुणकन्तुतत् ॥ —मा. नि. क्षुद्र रोगे

[2] अरुंषि बहुव वक्त्राणि बहु क्लेदानि मर्धनि। कफासृक्कृमि कोपेन नृणां विद्यादरुंषिकाम् ॥

६. मैनसिल, पिण्ड हरताल, घर का धूवा, बड़ी इलायची, कशीस, लोध, अर्जुन, नागरमोथा, और राल।

उक्त छः योग हैं। इन्हें पृथक-पृथक पीसकर रखें। और इन्हें पीतरंग में रंगने के लिए गोरोचन के जल की भावना दें। इसके स्थान पर दारु हल्दी या रेवन्द चीनी के क्वाथ की भी भावना दे सकते हैं। पुनः सरसों तैल में मिलाकर, यथा आवश्यक चूर्ण, रोग स्थान पर मलने के लिए या लेप के लिए उपयोग करें। ये छः ही योग सिद्धतम बताये गये हैं। पाठक उपयोग करें।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत से योग कुष्ठनाशक लिखे हैं। जिन्हें वहीं पर देखें।

उदर शूलघ्न तथा वात व्याधिहर लेप—

जौ का आटा और यवक्षार दोनों को तक्र में पीस गरम कर पेट पर लेप करें। उदर पीड़ा, शूल को तो नष्ट करेगा ही यदि पेशाब रुका होगा और मूत्रकृच्छ्र से पीड़ा होगी तो वह भी दूर हो जायेगी।

वात विकार पर लेप—कूठ, सौंफ, वच, जौ का आटा इन चारों को कांजी के साथ पीस, तिल तेल मिलाकर गरम कर लेप करें।

वातरक्तहर लेप—सौंफ, सोयाबीज, मुलेठी, महुआ फूल, वरियारा मूल, चिरौंजी, कशेरू, विदारीकन्द और मिश्री इन सबको बराबर-बराबर लेकर पीस कूटकर चूर्ण करके रखें। घृत मिलाकर वातरक्त पर उपयोग करें।

पार्श्वशूल पर लेप—रासना, हल्दी, दारुहल्दी, जटामांसी, सौंफ, सोयाबीज, देवदारु, मिश्री और जीवन्ती मूल। इनका लेप घृत व तैल मिलाकर सुखोष्ण लेप पार्श्वशूल में लगावें। या बारहसिंहा को घिसकर लेप करें।

स्वेदहर लेप—शिरीष, खस, नागकेशर और लोध्र इनका लेप त्वक्दोष नाशक और स्वेदावरोधक होता है।

दुर्गन्ध नाशक—तेजपत्ता, सुगन्धवाला, लोध्र, खस, चन्दन और कपूर इन सबका लेप स्वेद जनित त्वक गन्ध नष्ट होती है।

बच्चों के शिर की फुंसियों (अरुंषिका) पर लेप—

१. एक वर्ष पुरानी खली (तिल की), मुर्गी की विष्ठा, समभाग लेकर गोमूत्र में लेप करें। उससे पूर्व नीम की पत्ती के औटाये जल से शिर को धोना चाहिए। इनके बार-बार उपयोग से शिर की फुन्सियां दूर होंगी।

२. खैर (कत्था), नीमपत्ती, जामुन की छाल इनका भी लेप गोमूत्र से किया जाता है।

इन्द्र लुप्तहर लेप—

१. हाथी दांत की पुटदग्ध काली भस्म और रसौत समभाग लेकर बकरी के दूध से लेप करें।

२. कड़वे पटोलपत्र का रस का लेप करें।

३. शहद के साथ कटेली के फल का रस मिलाकर लेप करें।

४. गुंजा की जड़ व फल को भेड़ी के दूध में पीस कर लेप करें।

५. मुलेठी, नीलकमल, मुनक्का समभाग लेकर पीस तिल तेल, घृत में और दूध मिलाकर लेप करें।

केश कृष्णकरण योग—

इन्द्रायण बीजों का तिल निकलवाकर उस तेल को नित्य शिर पर लगावें।

श्वेत कुष्ठ नाशक लेप—

१. बावची बीज, अद्रक रस को थूहर के दूध में पीस गोली बना लें। जब लेप लगाना हो अद्रक रस में घिस दाग पर लेप करें।

२. बावची बीज, वेत, लाख, कठूमर की जड़, पीपल छोटी, रसौत, लौह चूरा, काले तिल समभाग लेकर पीस गोरोचन या गोमूत्र के साथ सान कर श्वेत कुष्ठ पर लेप किया करें। कुछ दिनों में अवश्य लाभ मिलेगा।

रात्रि में भी लेप का उपयोग किन्हीं परिस्थितियों में आवश्यक होता है। वह स्थिति यह है कि—अपक्व शोथ को पकाने के लिए अधिक गरमी की आवश्यकता होती है अतः रात्रि में किए गए लेप से ऊष्मा एकदम रुककर व्रण शोथ बहुत जल्दी परिपाक को प्राप्त होता है। अपक्व व्रण शोथ, गम्भीर धातु में उत्पन्न व्रण शोथ या रक्त एवं कफ से उत्पन्न व्रण शोथ में बुद्धिमान वैद्य रात्रि में भी लेप लगवाते हैं।

—वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त (विशेष सम्पादक)

अर्कक्षार लेप

अर्क पंचांग—तिक्त, कटुरस, उष्णवीर्य, कटुविपाकी, वात कफ नाशक, कृमिहर, मूलत्वचा, स्वेदल, वामक, श्वास शामक, वेदना स्थापन, दीपन, पाचन, श्वास, कास, रेचक, गर्भपातक, कृमिहर, जलोदर, प्लीहा, कास, न्यूमोनियां, फिरंगोपदंश नाशक योग है।

अर्क लवण क्षारम्—जैसे क्षारेन चैतान प्रतिसारयेत्, ग्रन्थ्यर्वुदितजा लेपः अर्कपत्र सलवणमन्तधूर्म दहेन्नरः मस्तुनातत्पिवेत्क्षारप्लीह जलोदरापहम्-इसका लेप प्लीहा यकृत्, शूलोदर में किया जाता है। अर्क दो प्रकार का सफेद फूल का और बैंगुनी फूल का होता है। सफेद आक का वृक्ष बड़ा होता है लेकिन मिलता भी नहीं है। आयुर्वेद में अनेक रोगों में काम आने वाली जो औषधियां हैं उनमें आक भी अपना बहुत ही महत्व रखता है। इसका पंचाँग शुद्ध कर क्षार विधि से क्षार बनाया जाता है। कोष्ठवद्धता, कृमि, यकृत, प्लीहा, जलोदर, श्वास कास, विच्छुडंक, विशूचिका, शोथ, कर्णशूल आदि में काम आता है। मात्रा ४-६ रत्ती।

तारा मण्डूर

निर्माण विधि—

मण्डूर छिद्र रहित, वजनदार और चिकना, लौह (मण्डूर) लाकर उसको गर्म जल से खूब धोकर अग्नि में तपा-तपाकर गोमूत्र में २१ बार बुझा लें। शुष्क करके चूर्ण कर लेवें। गोमूत्र से पीसकर टिकिया बना सुखाकर गजपुट आधी अग्नि देवें। इस प्रकार सात बार गोमूत्र से, सात बार त्रिफला क्वाथ से, सात बार घीकुमार, ग्वार पाठा रस से भावना देकर पुट देते रहने से मण्डूर की उत्तम भस्म बन जावेगी। यह भस्म मण्डूर की लेकर १०० ग्राम, गोमूत्र २०० ग्राम में पकावें। १०० ग्राम इसमें गुड़ भी डालेंगे। यथाविधि आँच पर पकने पर इसमें निम्नलिखित औषधियाँ ११-११ ग्राम लेकर कूट छानकर उसमें मिलाकर शुष्क कर बुकनी बना लेवें या गुटिका तीन-तीन रत्ती की गोली बनाकर रखें।

प्रयोग में निम्नलिखित औषधियाँ हैं—वायविडंग, चित्रक, चव्य, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सौंठ, कृष्णमिर्च, पीपल लेनी है।

प्रयोग विधि—तीन-तीन रत्ती गर्म जल से भोजन के पूर्व, भोजन के मध्य एवं भोजन के अंत में लेने से परिणाम शूल, आध्मान, कामला, पाण्डु, शोथ, मन्दाग्नि, अर्श ग्रहणी, कृमि, गुल्म, उदररोग, अम्लपित्त, शूल वगैरा में फायदा विशेष करता है।

अनुपान भेद से—अन्य व्याधियों में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसमें अपथ्य सूखे साग, विदाही अन्न, विदाही भोजन, अम्ल (खट्टे), कटु द्रव्य, मैदा और मावा, वेसन व तली हुई वस्तु न खावें। इस योग को मानवों के लिए तारा ने कहा है अतः इसका नामकरण तारा मण्डूर हुआ। दूसरे ग्रन्थों में भी इसका यही विधान है सिर्फ गोमूत्र चौगुना लेने की विशेषाज्ञा है। संक्षेप में प्रत्येक घटक के अलग-अलग गुण इस प्रकार है।

(१) काली मिरच—मन्दाग्नि, ज्वर, कास, सर्दी, आध्मान, चर्मरोगादि में।

(२) पीपल—अनुष्ण, मधुरपाकी, लेखन, दीपन, उदररोग, जीर्ण ज्वर, अग्निमांद्य में।

(३) आंवला—दोषानुलोमन, लघु, दीपन, पाचन, कुष्ठ, गुल्म आदि रोगों में।

(४) बहेड़ा—प्रमेह, अर्श, स्वरभेद, कफ, उत्क्लेश, पित्त, कृमि, कास आदि में।

(५) हरड़—उदररोग, ग्रहणी, प्रमेह, अर्श, द्वन्द, अविषमज्वर, छर्दि, हिक्का, अग्निमांद्य आदि में।

(६) सौंठ—दीपन, पाचन, कंठशोधक, आमवात, अतिसार, भेदक, गुरु, अतीसारादि में।

(७) विडंग—लघु, उदर कृमिघ्न, दीपन, अनुलोमन, शोथघ्न, मेदवृद्धि आदि रोग में।

(८) चव्य—रुचिकर, लघु, दीपन, पाचन, शूल, अजीर्ण, कफज कास, अर्श, गुल्म नाशक।

(९) चित्रक—अग्निमांद्य, ग्रहणी, अर्श, प्रतिश्याय, मक्कल शूलहर है।

(१०) गुड़—वात, रक्तशोधक, कफ, कृमि, तृष्णा आदि नाशक है।

—आयुर्वेदाचार्य श्री विरिञ्चिलाल शास्त्री
भिषगरत्न, आयुर्वेदवाचस्पति (एम.-एस सी. ए.)
इस्लामपुर (झुंझुनूं) राज०

अर्क क्षार सूत्र

श्री वैद्य प्राणाचार्य डा० महेश्वर प्रसाद

सुश्रुत संहिता में क्षार का प्रयोग अर्श रोग में करने का उल्लेख मिलता है। इसी सिद्धान्त का अनुसरण करके सिद्ध सम्प्रदाय जो पूर्वी बंगाल के चाँदसी दवाखाना, मद्रास के मद्रासी दवाखाना, राजस्थान के धन्वन्तरि चिकित्सा संस्थान वाले परम्परा से चली आ रही क्षार सूत्र द्वारा अर्श और भगन्दर की सफल चिकित्सा करके सुयश लूटते रहे हैं। इन्हीं क्षार सूत्रों में प्रमुख अर्कक्षार सूत्र का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

घटक एवं तौल

घटक	शास्त्रीय (प्राचीन) तोल	वर्तमान तोल
अर्क पंचांग क्षार अपामार्ग क्षार कड़वी तरवी का क्षार कड़वी तुम्बी का क्षार हल्दी चूर्ण (सूक्ष्म) थूहर का दूध और कबूतर का मल	प्रत्येक एक पल (आठ तोला)	प्रत्येक १०० ग्राम

निर्माण विधि—सर्व प्रथम हल्दी और कबूतर के मल (बीट) को भली भाँति पीसकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इसके बाद क्षारों को भी पीसकर और उपर्युक्त में मिलाकर एक काँच पात्र में रख थूहर का दूध मिलावें। तत्पश्चात् इस मिले योग में घोड़े के बाल के समान मोटे कार्पाससूत्र को २१ बार डुबा-डुबाकर सुखा लेवें।

प्रयोग विधि—सर्वप्रथम गुदांकुरों को और गुदवल्ली को गाय के घी या अभाव में तिल तैल से स्निग्ध कर लेवें एवं अर्शोयंत्र (Proctoscope) डालकर अभिप्रेत अर्शांकुर को अंगुली से अलग कर उपर्युक्त क्षार-सूत्र से कसकर बाँध दिया जाता है। क्षार सूत्र बन्धन के २४ घंटे से ३ दिनों में या तो अंकुरों का पतन हो जाता है अथवा अंकुरों के निर्जीव हो जाने पर विसंक्रमित (Sterilized) कैंची से काटकर अंकुरों को अलग कर दिया जाता है। अंकुर के गिर जाने के बाद घाव को ठीक करने के लिए 'जात्यादि घृत' को निरन्तर आक्रान्त स्थान पर लगाया जाता है जिससे व्रण का शीघ्र रोपण हो जाता है।

भगन्दर में मुँह खोलने के लिए क्षार सूत्र का प्रयोग किया जाता है। विधि यह है कि क्षार सूत्र को सुई में पिरोकर बाँध दिया जाता है तथा प्रत्येक रोज गाँठ खोलकर उसी धागे (सूत्र) पर उपर्युक्त क्षार मिश्रण लेप कर फिर बाँध देते हैं। ऐसा करने से जब कुछ ही दिनों में भगन्दर का मुँह खुल जाता है तो उसकी सम्यक् चिकित्सा की जाती है।

सावधानी—क्षार सूत्र प्रयोगकाल में मल त्याग में रुकावट नहीं आने पावे इस हेतु 'शिवाक्षार पाचन चूर्ण' २ से ४ माशा या आवश्यकतानुसार अधिक मात्रा में सेवन कराया जाता है।

गुणावगुण—

अर्क क्षार सूत्र के विधिवत् प्रयोग से अर्श के भीतरी और बाहरी दोनों अंकुरों का पतन हो जाता है तथा गुदवलियों में फिर से प्राकृतिक स्थिति पैदा हो जाती है, स्थानीय स्रोतोरोध सदा के लिए दूर हो जाता है तथा निर्मूल हुआ अर्श पुनः नहीं होता। अर्श की इस प्रकार की आभ्यन्तरिक चिकित्सा पूर्ण निरापद, आशुफलप्रद तथा शतप्रतिशत लाभप्रद है। किन्तु अधिक क्षतक्षीण रुग्ण व्यक्ति में अधिक क्षार का प्रयोग हानिकारक भी सिद्ध हो सकता है। अतएव पूरी सतर्कता से से सम्यक् मात्रा में ही क्षार सूत्र का प्रयोग करना चाहिए।

पथ्यापथ्य—पथ्य में पुराने गेहूं की रोटी, चने की दाल, परवल, नारंगी, सेव, अंजीर, मुनक्का आदि दें तथा लाल मिर्च, खटाई, वातवर्धक (वादी) द्रव्य आदि से परहेज करावें।

प्रत्यक्ष अनुभव—

अर्क क्षार सूत्र बवासीर के आभ्यन्तरिक मस्से को जड़मूल से मिटाने की विशिष्ट प्रक्रिया है। परीक्षाओं तथा विविध प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि जो अर्श एलोपैथिक शल्य कर्म से भी असाध्य हो चुका वह इस प्रयोग से निर्मूल हो जाता है।

—श्री वैद्य प्राणाचार्य डा० महेश्वर प्रसाद 'उमाशंकर'
जी०ए०एम०एस०(ऑनर्स),
एम० एस-सी० ए०, डी लिट्० ए०,
महेश्वर विज्ञान भवन,
मंगलगढ़ (समस्तीपुर) बिहार

अपचीहरो लेप

वैद्य श्री पं० गोपाल जी द्विवेदी

लिप्त, लेप और लेपन ये तीन नाम लेप के "शार्ङ्गधर संहिता" में बताये गए हैं। अपची गंडमाला का भेद है।

नीचे शार्ङ्गधर संहिता अध्याय ११ में वर्णित निम्न दो लेपों को बनाकर लाभ उठावें—

१. द्रव्य—सरसों, नीम की पत्ती, भिलावा।

मात्रा—सभी २०० ग्राम।

निर्माण विधि—सभी द्रव्यों को बराबर लेकर आग से जलाकर राख कर लें। पुनः बकरे के मूत्र में मिलाकर अपची पर लेप करें। लाभ मिलेगा।

समय—दिन में २-३ बार अवस्थानुसार।

२. द्रव्य—सरसों, सहजन के बीज, अलसी के बीज, सन के बीज, जौ, मूली के बीज।

मात्रा—सभी बराबर।

निर्माण विधि—सबको खट्टी छाछ में पीसकर अपची, कण्ठमाला आदि पर लेप करें। लाभ मिलेगा।

३. अपचीहर लेप (अष्टांग हृदय)—

गोव्यजाश्व खुरा दग्धा कटुतैलेन लेपनम्।
एंगुदेन तु कृष्णाहिर्वायसो वा स्वयं मृतः॥

—अ. हृदय उत्तर स्थान अ. ३० श्लोक २८

घटक—गौ के सूखे खुर, भेड़ के सूखे खुर, बकरी के सूखे खुर, घोड़ा के सूखे खुर, कटु तैल।

मात्रा—बराबर।

निर्माण विधि—इनके खुरों को अग्नि में दग्ध कर कटु तैल में मिला पकाकर लेप करने से अथवा काला सांप या स्वयं मरा हुआ काग दग्ध कर उसकी स्याही इंगुदी के तेल में मिला लेप करने से अपची रोग नष्ट हो जाता है।

कुछ विशेष अनुभूत शास्त्रीय औषधि व्यवस्था—

अपची वाले रोगी को कांचनार गुग्गुल की पूरी मात्रा ६ गोली सेवन कराता हूं। अनुपान—ताजा जल।

अपथ्य—चावल व नमक का सेवन।

लेप—अपची वाली जगह पर नालुका या दशांग लेप गोमूत्र में पीसकर गर्म कर बाहर लेप कर पान का पत्ता घी लगा सेंककर बांधने की राय देता हूं। सेंक करना भी जरूरी है। उपर्युक्त चिकित्सा से २५-३० अपची के रोगी लाभान्वित हुए हैं।

नीचे एक लेप जो स्वानुभूत है अपची में अच्छा लाभ दिखाता है—

घटक—राई, कनेर की छाल, करजीरी, गेरू, सहजन की छाल। मात्रा—बराबर।

निर्माण विधि—पानी से पीसकर कडु तेल मिला गर्म कर दिन में २ बार लेप करायें। लाभ मिलेगा।

उपर्युक्त वर्णित दशांग लेप की सामग्री—

ग्रन्थ—शार्ङ्गधर संहिता

घटक—सिरस की छाल, मुलहठी, तगर, लालचन्दन, इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कूट, नेत्रबाला।

मात्रा—समान मात्रा में ले बारीक पीस चूर्ण बनाकर उपर्युक्त विधि से लेप करें।

—वैद्य श्री पं० गोपाल जी द्विवेदी
चिकित्सक—जिला परिषद आयुर्वेदिक औषधालय
ग्राम—नरहन कलाँ, पो० मैढ़ी (चन्दौली)
जि० वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

कुष्ठघ्न लेप

डा० श्री दौलतराम शास्त्री

करवीर निम्बकुटजाच्छम्याकाच्चित्रकाच्च मूलानाम् ।
मूत्रे दर्वीलेपी क्वाथो लेपेन कुष्ठघ्नः ॥
(अष्टांग हृदय चि० १६।६१

अर्थ—कनेर, नीम, कुड़ा, अमलतास और चित्रक की जड़ों को समभाग लेकर जौकुट करें। फिर १६ गुने पानी में पकावें। अष्टमांश रहने पर छान लें। इस क्वाथ को फिर पकावें और करछुली से चलाते जावें। जब इतना गाढ़ा हो जावे कि करछुली में लगने लगे तब उतार कर शीशी में रखें। यह कुष्ठघ्न लेप है। इसे लगाने से कुष्ठ नष्ट होता है।

कुष्ठ वेहद जबर्दस्त व्याधि है। अतः यह सोचना सर्वथा गलत होगा कि लेप लगाने मात्र से यह व्याधि नष्ट हो जावेगी। लेप सहायक औषधियाँ है। रोगी का संशोधन करके मुखमार्ग से उचित औषधि देने के साथ-साथ लेप भी लगवाया जाता है, तभी लाभ होता है। यह भी जानना आवश्यक है कि लेप की औषधियाँ केवल बाहर ही काम नहीं करतीं, उनका एक भाग रोमकूपों के द्वारा चूषित होकर भीतर प्रविष्ट होकर भी कार्य करता है।

उपर्युक्त कुष्ठघ्न लेप एक उत्तम, अत्यन्त सस्ती, सुलभ और हानिरहित औषधि है। इसकी औषधियाँ सर्वत्र आसानी से मिल जाती हैं। आइये हम इनके गुणधर्मो पर विचार करें—

कनेर (करवीर, (Nerium Oleander)—कड़वी, कसैली, चरपरी, उष्णवीर्य तथा व्रण को लाभदायक और नेत्रपीड़ा, कुष्ठ, व्रण, कृमि एवं खुजलाहट को नष्ट करने वाला है तथा खाने पर विष के समान है। निघण्टु में लाल और सफेद दोनों प्रकार की कनेर के गुण समान बतलाये गये हैं किन्तु परम्परानुसार सफेद कनर अधिक गुणयुक्त मानी गयी है, अतः उसी का उपयोग करना बेहतर है।

नीम (Melia Azadiracta Willd)—शीतल, हल्की, मल बाँधने वाली, पाक में चरपरी (स्वाद में कड़वी), अग्निनाशक, वात, पित्त, कफ नाशक, हृदय को हानिकारक तथा थकावट, प्यास, खाँसी, ज्वर, अरुचि, कृमि, व्रण, वमन, कुष्ठ, उबकाई और प्रमेह को नष्ट करने वाली है।

कुड़ा (कुटज, कुरैया Holarrhena Antidysenterica)—चरपरा, कसैला, शीतल, रूखा, अग्निप्रदीपक तथा अर्श, अतिसार, तृष्णा, आम और कुष्ठनाशक तथा कफ, पित्त, और रक्त के विकारों को नष्ट करने वाला है। सफेद और काले का कोई विचार ग्रंथ में नहीं है तथापि काला अधिक गुणकारी माना जाता है अतः जहां तक तक सम्भव हो वही लेना चाहिए।

अमलतास (आरग्वध, राजवृक्ष, झगड़आ, Cassia Fistula)—मधुर, शीतल, दस्तावर, मृदु, वात- पित्त नाशक तथा ज्वर, हृदय रोग, रक्तविकार, उदावर्त और शूल को नष्ट करने वाला है। केवल अमलतास के पत्तों का लेप भी कुष्ठ रोग नाशक है।

चित्रक—(चितावर, चीता, Plumbago Zeylanica)—पाक में चरपरी, रूक्ष, गरम, वात, कफ नाशक, ग्राही, हल्की, पाचक, अग्निवर्धक, कफ, पित्तनाशक, तथा ग्रहणी, कुष्ठ, शोथ, अर्श (विशेषतः वातज अर्श), कृमि और खांसी को नष्ट करने वाली है।

इस प्रकार इसमें ५ कुष्ठ नाशक द्रव्यों का समावेश है। मैंने अनेक बार इसका प्रयोग किया है और अच्छे परिणाम प्राप्त किये हैं। लगाने पर थोड़ी जलन होती है।

यह लेप अधिक दिनों तक नहीं ठहरता इसलिए ताजा ही बनाना चाहिए अथवा रोगी से बनवा लेना चाहिए। यदि अधिक दिनों तक रखना हो तो सड़न निरोधक द्रव्य (Preservative) मिला सकते हैं अथवा धूप में सुखाकर रख सकते हैं और जरूरत पड़ने पर जल में घोलकर पकाकर लेप कर सकते हैं।

कुष्ठनाशक कुछ अन्य लेप—

१. श्वेतकरवीरमूलं कुटजकरंजात्फलं त्वचो वार्व्याः ।
सुमनः प्रवालयुक्तो लेपः कुष्ठापहः सिद्धः ॥
—अष्टांग हृदय चि. १६/६२

अर्थ—सफेद कनेर की जड़, कुड़े के फल, करञ्ज (कंजी, कंजा) के फल, दारुहल्दी की मूल की छाल और चमेली के कोमल पत्ते, जल के साथ पीसकर लेप करने से कुष्ठ नष्ट होता है।

२-५. शैरीषीत्वक् पुष्पं कार्पास्या राजवृक्षपत्राणि ।
पिष्ट्वा च काकमाची चतुर्विधः कुष्ठहा लेप ।।
—अष्टांग हृदय चि. १९/६३

अर्थ—सिरस की छाल, कपास के फूल, अमलतास के पत्ते और मकोय (पंचाग) ये ४ कुष्ठ नाशक लेप हैं। इन्हें जल के साथ पीसकर लेप करना चाहिए।

यदि चाहें तो मिलाकर भी लेप कर सकते हैं।

६. विडंगसैंधवशिवाशशिरेखासर्षपकरञ्जरजनीभिश्च ।
गोजलपिष्टो लेपः कुष्ठहरो दिवशनाथसमः ।।
—भै. र. कुष्ठाधिकार १०

अर्थ—वायविडंग, सैंधानमक, हरड़, बाकुची, सरसों, करञ्ज और हल्दी—इन्हें समभाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करें। यह कुष्ठ को नष्ट करने में सूर्य के समान है।

उपर्युक्त सभी लेप मेरे द्वारा परीक्षित हैं। उचित आभ्यन्तर औषधि के साथ इनमें से किसी एक का उपयोग धैर्यपूर्वक करते रहने से ६ माह से १ वर्ष तक में गलने वाला कुष्ठ निश्चित रूप से नष्ट होता है।

शास्त्र में कुष्ठ चिकित्सा प्रकरण में कुछ ऐसे लेप भी वर्णित है जिनमें हरताल, मैनशिल, आक, थूहर आदि दाहक पदार्थ सम्मिलित हैं। ऐसे लेप त्वचा को गलाकर घाव कर देते हैं। गलने वाले कुष्ठ में अङ्ग स्वतः गलते हैं और यदि किसी प्रकार की चोट से मामूली 'सा घाव भी वन जावे तो उसका अच्छा होना बहुत कठिन हो जाता है इसलिए ऐसे गलाने वाले लेपों का प्रयोग गलित्कुष्ठ में भी कभी नहीं करना चाहिए अन्यथा हालत और बिगड़ जावेगी। गलाने वाले लेप दद्रु (दाद) सरीखे क्षुद्र कुष्ठों के लिए हैं किन्तु आज के जमाने में ऐसी दवायें कोई पसन्द नहीं करता।

—डा० दौलतराम शास्त्री
गुप्तरोग और विद्युत चिकित्सालय, १४५८ नेपियर टाउन,
मदनमहल स्टेशन के पास, जबलपुर (म० प्र०)

दशाङ्ग लेप

श्री कविराज गिरिधारी लाल मिश्र एम. एस-सी ए., ए. एम. बी. एस.

योग का नाम—दशाङ्ग लेप, सन्दर्भ ग्रन्थ—भैषज्य रत्नावली, चक्रदत्त, शार्ङ्गधर।

मूल पाठ—शिरीष यष्टीनत चन्दनैला मांसी हरिद्राद्वय कुष्ठ बालैः।
लेपोदशांग सघृतः प्रदिष्टो विसर्प कण्डू ज्वर शोथहारी॥

घटक द्रव्य

सं०	संस्कृत नाम	(हिन्दी नाम)	Botanic Name	उपयोग अंग	तोल	निर्माण विधि
१	शिरीष	(सिरस)	Albisia Lebbeck	त्वक्	सभी औषधियां समान भाग	सभी द्रव्यों के उपयोगी अंगों का समान भाग चूर्ण बना कर अच्छी तरह घुटाई करके या कपड़े से छानकर रख लेवें। दश औषधियों से निर्मित "दशांग" लेप तैयार है।
२	यष्टी	(मुलहठी)	Glycyrriza Glabra	मूल		
३	नत	(तगर)	Valeriana Jatamansi	मूल		
४	चन्दन लाल	(लालचन्दन	Pterocarpus Santalinus	काष्ठ		
५	एला	(छोटी इलायची)	Elettaria damamum	फल		
६	मांसी	(जटामांससी)	Nordostachya Jatamansi	मूल		
७	हरिद्रा	(हल्दी)	Curcuma Longa	कन्द		
८	दारुहरिद्रा	(दारुहल्दी)	Berberis Aristata	काष्ठ		
९	कुष्ठ	(कूठ)	Sausserea Lappa	मूल		
१०	बाला	(सुगन्ध बाला)	Valeriana Wallichi	मूल		

शास्त्रीय दृष्टि से गुण प्रभाव—दशाङ्ग लेप बाह्य प्रयोग का योग है, चक्रदत्त तथा भैषज्य रत्नावलीकार ने विसर्प–विस्फोटक चिकित्साधिकार में उक्त योगों का वर्णन देकर शोथ, कुष्ठ, विसर्प, व्रण, सद्योव्रण (Accidental wounds) में उपयोगी बताया है। शास्त्रीय बचनानुसार निर्दिष्ट रोगों पर इसका प्रयोग किया गया तथा सर्वदा आशातीत आशुफलप्रद पाया गया।

संक्षिप्त द्रव्य गुण विवेचन—

१. सिरस की छाल (Albissa labbeck)—चरकाचार्य ने "शिरीषोविषघ्नानाम्" कहकर इसे विषघ्न, वेदनास्थापक, शिरोविरेचक तथा लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण गुणयुक्त बताया है। रक्तवह संस्थान पर रक्तशोधक, शोथहर कुष्ठघ्न है। बाह्यशोथ, गण्डमाला तथा व्रण पर बीजों का लेप करते हैं, पत्र स्वरस व बीजों को घिसकर नेत्र रोगों में विशेषतः रतौंधी में अंजन का विधान है। शिरीषो मधुरोऽनुष्णस्तिक्तश्च तुवरो लघु। दोषशोथ विसर्पघ्न कास, व्रण विषापहा—भावप्रकाश निघण्टु में मधुर, तिक्त, कषाय रसयुक्त किञ्चित् उष्ण लघु एवं वातादि दोष शोथ विसर्प, कास, व्रण तथा विषघ्न माना है।

२. यष्टि मधु (मुलहठी) Glycyrrhlza glabra—मधुर, शीतल, स्नेहन, वल्य, वृष्य, स्वर्य, नेत्र्य, कफशामक, मूत्रल शोथहर है। कफ निस्सारक गुण होने के कारण स्वरभग, कास, श्वास, श्वसनिका शोथ, गल शोथ आदि में उपयोगी है। चर्मरोग, कुष्ठ, व्रणशोथ एवं विषों में बाह्य लेपनार्थ प्रयुक्त होती है।

३. तगर (Valeriana Jatamansi)—

तगरं स्यात् कषायोष्णं स्निग्धं दोषत्रय प्रणुत्।
दृक् शीर्ष विषदोषघ्नं भूतापस्मार नाशनम्॥

गुण और रस की दृष्टि से त्रिदोषहर, त्वचा पर इसका कार्य कुष्ठहर, चर्मरोगहर, व्रणरोपक, वेदनास्थापक है तथा विसर्प एवं आमवात में लेपनार्थ प्रयुक्त होता है।

४. लाल चन्दन (*Pterocarpus Santinus*)—

रक्तं शीतं गुरू स्वादुच्छर्दितृष्णासृपित्तहृत्।
तिक्तं नेत्रहितं वृष्यं ज्वर व्रण विषापहम्॥

गुण की दृष्टि से गुरु और रूक्ष, रस की दृष्टि से तिक्त मधुर, रक्त पित्तशामक, रक्तशोधक, दाह, क्षत, शोथ, शिरःशूल, चर्मरोग, कुठघ्न, विषघ्न है।

५. छोटी इलायची (Elettrria Cardamomum)–

कफ, श्वास, कास, अर्श, मूत्रकृच्छ्र वातशामक है। कटु रसयुक्त शीतवीर्य है। दाह प्रशमन है। व्रणों पर बाह्य लेपन से व्रणों का रोपण होता है तथा दाह का प्रशमन होता है।

६. जटामांसी (Nardostachys Jatamansi)—

मांसी तिक्ता कषाया च मेधाकान्ति बलप्रदा।
स्वाद्वीहिमा त्रिदोषास्रदाह विसर्प कुष्ठनुत् ॥

रस की दृष्टि से तिक्त, कषाय, मधुर है। इसका प्रलेप दाह प्रशमक, वर्ण्य, वेदना स्थापक है। कुष्ठघ्न एवं शोथहर है, व्रणशोथ पर लेप उपयोगी है।

६. हल्दी (Curcuma Longa)—

वर्ण्या त्वग्दोषमेहास्र शोथ पाण्डु व्रणापहा।

गुण में रूक्ष, लघु है, रस में तिक्त कटु है, बाह्य लेप वर्ण्य, कुष्ठघ्न, व्रण शोधक, व्रण रोपक, शोथहर है, श्वास पाण्डु रोगहर, विषघ्न, कण्डु उदर्दनाशक है।

८ दारू हल्दी (Berberis Aristata)—

तिक्ता दारु हरिद्रास्याद्रूक्षोष्णाव्रणमेहनुत्।
कर्ण नेत्र मुखोद् भूतां रुजं कण्डू च शोषयेत् ॥

गुण में रूक्ष, लघु है, रस में तिक्त कषाय है। शोथहर, वेदना स्थापन, व्रणशोधक, व्रण रोपक, चक्षुष्य, वर्ण्य है, त्वचा के कण्डु स्फोट में लेप उपयोगी है।

९. कूठ (Sausseria lappa)—उष्ण, दीपक मूत्रल, शिरःशूल नाशक, वाजीकर है। त्वक्दोषहर, प्रतिदूषक (Antiseptic) तथा उपसर्गनाशक (Disinfectant) दुर्गन्ध नाशक, जन्तुघ्न, वेदनास्थापक, वर्ण्य, कुष्ठघ्न है।

१०. नेत्रवाला (सुगन्धवाला) Veleriana wallichi- "**त्वग्दोष स्वेदाय नयन प्रलेपनात्**" इसका लेप दाह प्रशमः त्वगदोषहर स्वेदापनयन, स्वेद दौर्गन्ध्यहर, कुष्ठघ्न है।

द्रव्यगुण की दृष्टि में-कोई द्रव्य त्वगदोषहर है तो कोई दाह प्रशमक है, कुष्ठघ्न, चर्मरोग नाशक, वर्ण्य, स्वेद दौर्गन्ध्यहर, विषघ्न गुणों से ओत प्रोत "दशांग लेप" आयुर्वेद की दिव्य औषधि है। विगत कई वर्षो से गलशोथ, श्वास नलिका शोथ, व्रण, विसर्प, दाह प्रमशनार्थ सैकड़ों रोगियों पर सफलतापूर्वक प्रयोग कर रहे हैं—आशातीत आशुफलप्रद योग है।

गुण और उपयोग

विशेषत: अधोलिखित रोगों पर शतशोऽनुभूत है—

रोग का नाम	गुण	उपयोग विधि
व्रण, सद्योव्रण (Accidental Wound, Boils)	व्रणशोथ, वेदना, जलन का शमन करता है यदि प्रारम्भ में ही इसका प्रयोग किया जाय तो शोथ बैठ जाता है तथा पकना आरम्भ हो गया हो तो जल्दी पककर फूट जाता है तथा मवाद निकलकर व्रण स्थान शुद्ध हो जाता है. फिर रोपण व्यवस्था करनी चाहिए, व्रण फूट जाने पर भी जब तक पूय निकलता रहे तब तक (२-३ दिन) इसका प्रयोग करना चाहिए।	**दशांग उपनाह**—दशांग लेप, घृत. शहद, चूना (सूखा) बुझाया हुआ, गेहूं आटा प्रत्येक १० ग्राम, कूटी हुई अलसी ५० ग्राम सब १०० ग्राम। लेप विधि—व्रण शोथ स्थान पर एक कपड़ा रखकर ऊपर से उपनाह फैलाकर कपड़ा बांध दें। ३-३ घण्टे पर पुल्टिस बदलता रहे। विधि—दशांगलेप में घी, शहद मिलाकर, अलसी आटा मिला मिला जल डालकर रबड़ी जैसा घोलकर मन्दाग्नि पर पाक करें। पकाते समय चम्मच से चलावेंपकने पर नीचे उतारकर उष्णता थोड़ी कम होने पर चूना मिलावें।
गलशोथ, तुण्डिकेरी (Tonsillitis)	गलशोथ, स्वर नलिका शोथ (Pharyngitis) में इसका लेप शोथ, वेदना, प्रदाह नाशक है।	दशांग लेप में आवश्यकतानुसार थोड़ा सरसों तैल और पानी मिलाकर पकावें तथा गले पर सुखोष्ण लेप कर पट्टी बांधलें, रात्रि में सोते समय प्रयोग करने से प्रात: लाभ मिलेगा।
विसर्प (Erysipelas) परिसर्प (Herpes)	असाध्य विसर्प रोग भी निश्चित रूप से ठीक होता है जबकि एलोपैथी में इस रोग की कोई विश्वसनीय औषधि नहीं। दाह शान्त होकर ठण्डक प्रतीत होती है तथा व्रणरोपण हो जाता है।	शतधौत—(सौ बार ठण्डे पानी से धोया हुआ घी) में दशांग लेप मिलाकर आक्रान्त स्थान पर लेप करना चाहिए, लेप कर ऊपर से रुई चिपका लेना चाहिए।

रोग का नाम	गुण	उपयोग विधि
पामा (Itch Scabies) व्यूची (Eczema)	पामा, (खाज-खुजली) पर लेप करने से दाह, खुजली का शमन होता है, विष का आकर्षण होकर व्रण सूख जाते हैं।	दशांग लेप के साथ स्वर्ण गैरिक मिलाकर गुलाब जल में चटनी के समान पीसकर लेप करें। २-४ दिन के लेप से ही आराम हो जाता है।
अण्डवृद्धि (Hydrocele)	वृषण शोथ का शमन होता वेदना का नाश होता है।	दशांग लेप को निर्गुण्डी स्वरस में मिलाकर लेप करना चाहिए।
ज्वर (Fever) शिरःशूल (Headache)	ज्वर का वेग शान्त होता है तथा शिरः शूल में लाभ होता है।	दशांग लेप १० ग्राम को २५० ग्राम पानी में मिलाकर उसमें कपड़ा भिगोकर उसकी पट्टी शिर पर चढ़ानी चाहिए।

दशांग लेप वैद्य वर्ग का एक सुप्रसिद्धि लेप प्रयोग है तथा समस्त भारत का वैद्य समाज इसका प्रयोग करता है। उपरोक्त रोगों में मैंने इसका सफलता के साथ प्रयोग किया है तथा आज भी कर रहा हूं। निसन्देह यह एक औषधरत्न है।

—कवि. श्री गिरिधारीलाल मिश्र M.Sc.(A), A.M.B.S. आयुर्वेदवाचस्पति, साहित्यायुर्वेदरत्न प्रधान चिकि.-केदारमल मेमो. आयु. हॉस्पीटल तेजपुर (असम)

दशाङ्ग लेप

ग्रन्थ सन्दर्भ—चक्रदत्त, भैषज्य रत्नावली।

शास्त्रोक्त गुण—विसर्प, कुष्ठ, ज्वर और शोथ दूर होवें। इसका उपयोग शतधौत घृत में मिलाकर करना चाहिए।

विसर्प एक भयंकर फैलने वाला शोथ होता है जिसमें रक्त, लसिका, त्वचा, मांस, वातादि तीनों दोष विकृत होकर बहुत शीघ्र सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में इसे ७ प्रकार का बताया गया है। यह पकता भी है।

(१) वायु से, (२) पित्त से, (३) कफ से, (४) सन्निपात से, (५) आग्नेय–इसमें वात-पित्त का विकार होता है। (६) ग्रन्थमाला–इसमें कफ, वात का विकार होता है। (७) अग्निकर्दमिका–इसमें पित्त, कफ का दोष होता है।

एक क्षतज भी होता है जिसका बाह्य कारण चोट होती है। सन्निपातज और क्षतज को साध्य नहीं बताया है। जिस पित्तज विसर्प में देह, अंजन के समान काला पड़ जाय या हृदय आदि कोमल स्थान में होता है वह भी साध्य नहीं होता है। ऐसा शास्त्रकारों का मत है। विशेष जानकारी के लिए निदान शास्त्र देखें।

इस दशाङ्ग लेप पर तीन योग्य विद्वान वैद्यों का अनुभव नीचे दिया जा रहा है—

आचार्य श्री पं० कृष्णदत्त जी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य गणेशगढ़ श्रीगंगानगर, आप लिखते हैं—

दशाङ्ग लेप का प्रयोग--विषज शोथ, शोथ, दुष्ट व्रण तथा सद्यव्रण जिसमें से जलवत् रस धातु स्रवित होती रहती है, अलर्जी, अनूर्जता जन्य सम्पूर्ण शरीर या अंग विशेषकर गज चर्मवत् चर्मरोग पर किया गया।

प्रयोग विधि—लेप को जल के साथ पीसकर उसमें एक हिस्सा घी (गाय या भैंस का) मिलाकर लेप किया। मुझे आशातीत लाभ मिला। इसका कारण यह है कि इस लेप के सम्पूर्ण घटक बहुत ही उपादेय हैं यथा—

१. शिरीष—विषघ्न, वेदना स्थापक है।

२. मधुयष्टि—शोणित स्थापक, वर्ण्य, कण्डूघ्न है। व्रणशोथ, चर्मरोगों में भी प्रशस्त है।

३. तगर—शीत प्रशमन, तिक्त है। संस्थानिक बाह्य कर्म में वेदना स्थापक और व्रणरोपण है, त्वचा पर कुष्ठघ्न कार्य करता है कुष्ठ, विसर्प तथा रक्तविकारों में लाभप्रद है।

४. लालचन्दन—दाहनाशक, स्तम्भन, शोथहर तथा त्वगदोषहर है।

५. एला—दाह प्रशामक है।

६. जटामांसी को चरक ने संज्ञास्थापक कहा है। शोथ, शूल, दाह में उपयोगी है। व्रणशोथ में लेप किया जाता है।

७. हरिद्रा--कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न है।

८. दारुहल्दी--अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, लेखनीय है।

९. कूठ--दुर्गन्धनाशक, वेदनास्थापक, वर्ण्य और कुष्ठघ्न है।

१०. नेत्रवाला--दाह, तृषा, ज्वर, बेचैनी नाशक है व्रणशोथ, विसर्प में प्रयुक्त होती है।

श्री श्रीनिवास जी व्यास बी.आई.एम.एस.,पी.जी.एस. नई दिल्ली का अनुभव--दशाङ्ग लेप का प्रयोग शार्ङ्गधर संहिता में भी है। इसे पीस कूट बारीक करके रखें। पुनः जल सहित पीस १/४ भाग घी मिलाकर लेप करें। ऊपर से रुई चिपका दें। यह लेप उग्र विस्फोटक, विसर्प, दाह, विष दोष, शोथ, सर्वांग शोथ, व्रण शोथ, सिरदर्द और दुष्ट व्रण आदि रोगों में उपयोगी है। पामा और व्यूची में हितकारक है। इन रोगों में दशाङ्ग लेप के साथ स्वर्ण गैरिक मिलाकर गुलाब जल में चटनी के समान पीस लेप लगाने से दाह, कण्डूसह विकार शमन हो जाते हैं। दो चार दिन में विष का आकर्षण होकर पामा व्रण और व्यूची सूख जाती है।

इस लेप से पैत्तिक शोथ और रक्तज शोथ में सत्वर लाभ पहुँचता है। वृषण पर शोथ हो जाने पर दशाङ्ग लेप के साथ निर्गुण्डी के पत्र मिला पीसकर लेप से तुरन्त शोथ शमन हो जाता है।

ज्वर में--१ तोला दशाङ्ग लेप को १०-१५ तोले शीतल जल में मिलाकर, उसमें कपड़ा भिगोकर उसकी पट्टी कपाल पर रखने से शिर दर्द और पित्तज ज्वर शान्त हो जाता है। बढ़ा हुआ ज्वर कम हो जाता है।

दशाङ्ग लेप का प्रयोग मैंने सैकड़ों रोगियों पर कर लाभ प्राप्त किया है।

आयुर्वेदाचार्य श्री पं० अनन्तराम जी शर्मा हरिद्वार का अनुभव--मैंने दशाङ्ग लेप को शतधौत घृत में मिलाकर उपयोग किया है। इस प्रकार विसर्प अर्थात् हरपीज में आशातीत सफलता मिली है।

शुद्ध घृत को कटोरी में डालकर कटोरी में पानी डालता जाता था और अंगुली से चलाता जाता था, पानी को बदलता रहता था, इसी घृत में दशाङ्ग लेप के चूर्ण को मिलाकर लेप कराया गया। लेप लगाते ही जलन शान्त होकर ठण्ड प्रतीत होने लगी। दो चार दिन में व्रण रोपण होकर रोग से छुटकारा मिल गया।

यह दशाङ्ग लेप अत्यन्त उपयोगी योग है।

वैद्य रहस्यकार लिखते हैं--विसर्प रोग में विरेचन, वमन, लेप, सेंचन, फस्त खोलना इत्यादि उपचार तो हितकर हैं ही दशाङ्ग लेप भी अत्यन्त उपयोगी है।

पंच वल्कल के कल्क को शतधौत घृत में मिलाकर लेप किया जाय तो अत्यन्त दाह और अग्नि विसर्प को भी दूर कर देता है। भूनिम्बादि क्वाथ का पान कराना चाहिए। बड़ की जटा, गोदन्ती और केला का गाया इनको पीस घुले हुए घृत के साथ लेप किया जाय तो ग्रन्थि विसर्प को दूर करता है।

कर्दमाभिध विसर्प में सिरस की छाल के चूर्ण को शतधौत घृत में मिलाकर लगाना चाहिए।

पंच वल्कल (वल्कल) में नीम, कचनार, मौलसिरी, सिरस और बबूल की छाल ली जाती हैं। इनके जल से प्रसेक भी किया जाता है। यथा--

प्रसेकाः परिषेकाश्च शस्तंते पंचवल्कलैः।

इस रोग की चिकित्सा में कुष्ठ, विस्फोटक और मसूरिका की चिकित्सा विधि का अनुसरण करना होता है यथा--

कुष्ठामयस्फोट मसूरिकोक्त चिकित्सयाप्याशु हरेद्विसर्पान्।

या

जलौका पातनं शस्तं चातु जीताम्बु सेचनम्।

विसर्प रोग में जलौका लगवाना उत्तम है तथा चातुर्जात के क्वाथ से सेंचन करना चाहिए।

--विशेष सम्पादक

ज्वर नाशक धूप

वच, हर्रे, गाय का घी सब समभाग मिलाकर आग पर धूप करें। रोगी को कपड़े से ढककर अन्दर धुंवा देवें इससे ज्वर और जाड़ा दूर होता है।

बच्चों को नजर तथा बाधा आदि से मुक्त कराने के लिए "मोरपंखी" थोड़ी सी लेकर जरा से तेल में मिलाकर

--शेषांश पृष्ठ २९६ पर देखें

श्री डा॰ दाऊ दयाल गर्ग ए॰ एम॰ बी॰ एस॰

एक मिट्टी के पात्र में ४ तोला औषध द्रव्य जौ कुटकर डालें। उसमें सोलह गुना जल डालकर मन्द-मन्द अग्नि पर उसका परिपाक करें। जब जल चुरते-चुरते आठवां हिस्सा रह जाय, तब अग्नि पर से उतार कर छान लेना चाहिए। और गुनगुना रहते-रहते रोगी को पिलाना चाहिए। इसे व्यवहारिक भाषा में काढ़ा कहते हैं।

काढ़े में प्राय: अनेक द्रव्यों को पकाया जाता है, यदि उस काढ़े में एक ही द्रव्य वह भी मृदु (नरम) हो तो जल उससे चार गुना ही पर्याप्त होता है, मध्यम मृदु द्रव्य में अष्ट गुण और कठिन द्रव्य में १६ गुना जल डाला जाता है। क्वाथ के सात प्रकार बताये गये हैं—

१. पाचन, २. दीपन, ३. शोधन, ४. शमन, ५. तर्पण, ६. क्लेदन और ७. शोषण।

पाचन और शोधन क्वाथ चतुर्थांश शेष रहने चाहिए।

१. अन्य क्वाथ अष्टमांश शेष रहने चाहिए।

२. क्वाथ पकाते समय हांड़ी को ढकना नहीं चाहिए।

३. क्वाथ के ठण्डा हो जाने के बाद पुन: गरम करके नहीं पिलाना चाहिए।

४. क्वाथ की मात्रा दोष बलादि के अनुसार हो।

५. क्वाथ को शृत, कषाय, निर्यूह भी कहते हैं।

६. क्वाथ में यदि चीनी (शक्कर) डालें तो—

वातज रोग में $\frac{1}{4}$ हिस्सा (क्वाथ का)
पित्तज रोग में $\frac{1}{8}$,, ,,
कफज रोग में $\frac{1}{16}$,, ,,

७. मधु की मात्रा इसके विपरीत होती है। वात में ½, पित्त में ⅓, कफ में ¼ ।

८. जीरा, गुग्गुल, क्षार, नमक, शिलाजीत, हींग व त्रिकुटा चूर्ण, १ मात्रा १ से ४ माशे तक है।

क्वाथ के कुछ प्रसिद्ध एवं उपयोगी योग

शार्ङ्गधरोक्त योग—

१. **दशमूल क्वाथ**—इसमें दस द्रव्य होते हैं—सरिवन, पिठवन, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, गोखरू, वेल, अरणी, अरलु, गम्भीरी और पाढ़ल।

इनमें सबकी जड़ ही लेनी चाहिए। बाजार में पत्ते तथा अन्य संदिग्ध वस्तु दशमूल में डालकर बेचते हैं। जो ठीक नहीं हैं। प्रक्षेप में पीपल चूर्ण डाला जाता है। इसका वात श्लैष्मिक ज्वर, सन्निपात ज्वर, प्रसूति ज्वर, हृद् ग्रह, कण्ठग्रह, पार्श्वशूल, तन्द्रा, शिरःशू ल तथा श्वास रोग में उपयोग किया जाता है।

२. **अभयादि क्वाथ**—हरड़, नागरमोथा, धनियां, लालचन्दन, पद्माख, अड़ूसा, इन्द्र जौ, खस, गिलोय अमलतास गूदा, पाठा, सौंठ और कुटकी समान भाग ले चूर्ण करें। प्रक्षेप में पीपल डालें। इससे क्वाथ त्रिदोषज ज्वर, प्यास, दाह, प्रलाप, श्वास, तन्द्रा नष्ट होती है। अग्निदीपन है, आम पाचक है, मल-मूत्र और वायु की रुकावट को दूर करता है। वमन, शोष रोग और अरुचि में भी हितकर है।

३. **अष्टादश क्वाथ**—चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, धनिया, इन्द्र जौ, सौंठ, दशमूल के दस द्रव्य प्रथक-प्रथक, देवदारू और गजपीपल यह २८ द्रव्यों का क्वाथ होता है। समान भाग लेकर अष्टमांस क्वाथ किया जाता है। इसके साथ शृङ्ग भस्म का उपयोग कर सकते हैं। इसके सेवन से पार्श्वशूल, सन्निपात ज्वर, खाँसी, श्वास, वमन, हिचकी, तन्द्रा और हृदशूल नष्ट होते हैं।

४. **प्रसूति ज्वरे देवदार्वादि क्वाथ**—देवदारू, वच, कूठ, पीपल छोटी, सौंठ, कायफल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनियाँ, हरड़, गजपीपल, जवासा, गोखरू, धमासा, कटेली, अतीस, गिलोय, काकड़ासिंगी, स्याह जीरा-ये सब समान भाग लें। इनका अष्टमांश क्वाथ करें। इसका उपयोग प्रसूता के शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कँपकपी और शिर पीड़ा में उपयोग किया जाता है। अत्यन्त उपयोगी है।

५. **पाण्डु शोथ रोगे-पुनर्नवादि क्वाथ**—पुनर्नवा की जड़, हरड़, नीम छाल, दारुहल्दी, कुटकी, पटोल-पत्र, गिलोय और सोंठ। इनके क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर पीने से पीलिया, खाँसी, उदर रोग, श्वास, शूल और सर्वांगशोथ नष्ट होता है।

६. **उदर शोथ रोगे-पुनर्नवादि क्वाथ**—पुनर्नवादि, गिलोय, देवदारू, हरड़ और सौंठ समान भाग लेकर क्वाथ करें और इसमें गोमूत्र मिलाकर पीवें।

७. **यकृत प्लीहा रोग पर पथ्यादि क्वाथ**—हरड़ और रोहेड़ा की छाल समान भाग लेकर क्वाथ करें। इसमें जवाखार, पीपल चूर्ण और नवसादर का चूर्ण मिलाकर सेवन करावें तो यकृत वृद्धि, प्लीहा वृद्धि तथा गुल्म रोग नष्ट होता है।

८. **शोथरोगे पुनर्नवादि क्वाथ**—पुनर्नवा, देवदारू, हल्दी, सौंठ, हरड़, गिलोय, चित्रक, भारंगी और इनको समभाग ले क्वाथ करें। इसके सेवन से हाथ, पैर, मुख, चेहरे की सूजन दूर होती है।

९. **शिर पीड़ा पर पथ्यादि क्वाथ**—हरड़, बहेड़ा, आमला, चिरायता, हल्दी, नीम छाल और गिलोय इनका क्वाथ बनाकर और इसमें थोड़ा सा गुड मिलाकर सेवन किया जाय तो प्रतिश्यायजनित शिरपीड़ा, दन्तपीड़ा इत्यादि नष्ट होती है।

१०. **बृहन्मञ्जिष्ठादि क्वाथ**—यह रक्तशोधक प्रसिद्ध योग है। मजीठ, नागरमोथा, कूड़े की छाल, गिलोय, कूठ, सौंठ, भारंगी, छोटी कटेली, वच, नीम छाल, हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आमला, पटोलपत्र, कुटकी, मूर्वा, वायविडंग, असन, चित्रकमूल, शतावर, त्रायमाण, पीपल, इन्द्रजौ, अड़ूसा, भागरा, देवदारू, पाठा, खैरसार, लालचन्दन, निशोथ, वरुणा की छाल, चिरायता, बाकुची, अमलतास का गूदा, सहोड़ा, बकायन, करञ्ज, अतीस, नेत्रवाला, इन्द्रायण की जड़, जवासा, अनन्तमूल, पित्तपापड़ा ये सब समान भाग लेवें। इनका क्वाथ करें। इसका सेवन कैशोर गुग्गुल या चोबचीनी चूर्ण इत्यादि के साथ करना चाहिए। यह रक्तदोषजनित अनेक रोगों के लिए परम हितकर है। अनेक कुष्ठ रोगों में भी हितकर है।

—श्री डा० दाऊदयाल गर्ग आयु० वृ०, ए. एम. बी. एस.
सम्पादक-'धन्वन्तरि'
निर्मल आयु० संस्थान, अलीगढ़

इन्द्र वारुणादि क्वाथ

—विद्या वाचस्पति पं० आर. वी. त्रिवेदी वैद्य साहित्यायुर्वेदोत्तमा, वैद्याचार्य, आयु. शास्त्री

रोगाधिकार—आमवात (आमनिष्कासन)

यह इन्द्र वारुणादि क्वाथ किसी शास्त्र या ग्रन्थ विशेष का योग नहीं यह वयोवृद्ध अनुभवी चिकित्सक का योग है। इसके द्रव्यों को देखने से साधारण और भौंड़ा सा योग प्रतीत होता है, लेकिन अनुभवी चिकित्सक की विचित्र बुद्धि का परिचय अवश्य मिलता है। यह अनुभूत योग रोगियों के लाभार्थ प्रस्तुत है।

इस क्वाथ के द्रव्य निम्न है—

१. इन्द्रवारुणी मूल, २. कटेरी मूल, ३. कचनार छाल, ४. वबूल की फली, ५. सौंठ, ६. गुड़। इन छहों द्रव्यों के गुणधर्म देखें।

द्रव्य नाम	गुण धर्म
१. इन्द्रवारुणी (इन्द्रायण मूल)	रस में कटु, वीर्य में उष्ण, विपाक में कटु, रेचक एवं लघु है। कामला, पित्त, कफ, प्लीहोदर, श्वास, कास, कुष्ठ, गुल्म, व्रण, प्रमेह, मूढ़गर्भ, आमदोष, गण्डमाला और विषनाशक है।
२. कटेरी मूल	लघु, रूक्ष, ग्राही, हृदय वलप्रद, पाचक, कफवात नाशक, कटु तथा चरपरी, उष्ण वीर्य तथा मुख की विरसता, मल, अरुचि, त्वचा रोग, ज्वर, कास, पीनस, शूल, पार्श्व शूल तथा अग्निमांद्य नाशक है।
३. कचनार छाल	शीतल, मलावरोधक, कषैली है। कफ, पित्त, कृमि, कुष्ठ, गुदभ्रंश, गण्डमाला तथा अपची नाशक है।
४. वबूल की फली	ग्राही, कफ, कुष्ठ, कृमि, विष विकार, मूत्रकृच्छ नाशक है। रुक्ष, विशद, स्तम्भक, गुरु, कषाय, मधुर, शीतल, लेखन तथा कफ, पित्त नाशक व मूत्रल है।
५. सौंठ	रस में कटु, उष्ण वीर्य, मधुर विपाकी, वात कफ नाशक, रुचिकारक, पाचक, लघु, स्निग्ध, वृष्य एवं स्वर्य है। आमवात, विवन्ध, वमन, श्वास, कास, आनाह, आध्मान, श्लीपद, शोथ, अर्श, हृदय रोग, वातशूल तथा वात रोगहर है।
६. गुड़ (पुराना)	भारी, पौष्टिक, वीर्य वर्द्धक, स्निग्ध, वात शामक, मूत्र शोधक, पाचक, मेद, वलवर्द्धक, कफ, कृमि कारक तथा किंचित् पित्तहर है।

नोट—उक्त योग में सौंठ नहीं थी। हमने सौंठ का मिश्रण करके अधिक उपयोगी पाया है। इसमें गुड़ नया न डालें लगभग एक वर्ष पुराना तथा मीठा हो तो ला[illegible] अधिक मिले।

वक्तव्य—इन्द्रायण मूल (फरफेंदुआ), कटेरी मूल, कचनार की छाल, बबूल की फली कच्ची या अधपकी ही लाकर छोटे-छोटे टुकड़े कर छायाशुष्क करें। फिर सब द्रव्यों को समभाग लें तथा सौंठ भी समभाग लेकर यवकुट चूर्ण करें।

क्वाथ निर्माण विधि—उक्त चूर्ण को १५ से २५ ग्राम की मात्रा में लेकर किसी मिट्टी, काँच या चीनी के पात्र में ३०८ या ३५० मि०ली० ताजे जल में लगभग २ घंटा गलाने के बाद पतीली मे डालकर उबालें आधा पानी जलने पर ८-१० ग्राम पुराना गुड़ डालें तथा चौथाई जल शेष रहने पर कपड़े के छन्ने में छानकर निचोड़ लें। शेष छूंछा को पुनः उक्त प्रकार भिगो दें। इसे उक्त प्रकार से ही बनाकर रखें। क्वाथ बनाते समय पतीली का मुख ढकें नहीं।

प्रातः सायं सुखोष्ण क्वाथ जल रोगी को पिलावें।

प्रयोग—इस क्वाथ को प्रायः आम निष्कासन हेतु सायं तथा छूंछा प्रातः काल बनाकर पिलाने से प्रातः शौच के साथ उदरस्थ आंव निकालने लगती है। यह क्वाथ लगातार ५-६ दिन देने से आँव निकल जाती है।

लाभ—इस क्वाथ के प्रयोग से आँव दोष, कफदोष, आमवात तथा गठिया व वातशूल, श्वास, कास आदि रोगों में लाभ मिलता है।

विशेष—आमवात, गठिया, वातशूल आदि रोगों में विशेष उपयोगी इस क्वाथ के साथ यदि लेखक के पते से प्राप्त आमवात प्रमथनी वटी १-२ अथवा विषमुष्टि या तिन्दुक वटी २-३ का प्रयोग प्रातः सायं करें तो शूल व शोथ शीघ्र ठीक हो। रोगी को क्वाथ प्रयोग काल में सुपाच्य हल्का भोजन दें। क्वाथ भी लेखक से प्राप्त कर सकते है।

निवेदन—द्रव्यों के गुणों को ध्यान में रखते हुए इच्छुक जल कृमि, गण्डमाला, गुदभ्रंश, पीनस आदि रोगों पर प्रयोग कर फला-फल से सूचित करें।

—विद्या वाचस्पति श्री पं० आर.वी. त्रिवेदी वैद्य
साहित्यायुर्वेदोत्तमा, वैद्याचार्य, आयु० शास्त्री
ए.एस.वी. वी.एन.एस. (प्रा. चि. रत्न) सि. अलंकार
श्री ऋषि आरोग्य सेवाश्रम, जसराना
पो. सासनी (अलीगढ़) उ०प्र०

ज्वर नाशक धूप : : पृष्ठ २९२ का शेषांश

आग पर डालते जावें। बच्चे को गोद में इस प्रकार रखें कि धूंआ उसकी ओर जावे।

विशेष—मोरपंखी इधर क्षेत्र में अमरकोट के पुराने किले में कठिनता से प्राप्त होती है। हम थोड़ा बहुत एकत्रित करवाते है। यह विचित्र वनौषधि कई चमत्कृत गुणों से ओत प्रोत है। गुजरात के एक प्रसिद्ध डाक्टर महोदय की लड़की को काली खांसी इंग्लैण्ड से प्राप्त दवाओं से ठीक न होने पर हमने मोरपंखी भस्म से ठीक की थी।

—वैद्य श्री नन्दकिशोर शर्मा,
आगर (मालवा) म० प्र०

व्रण नाशक मलहम

तिल तैल १ कि०, सिंदूर असली २५० ग्राम, नीला थोथा, राल, देशी मोम, मुरदा संग, काशगिरी सफेदा, सुखा बहरोजा, धूप लकड़ी प्रत्येक १०-१० ग्राम।

निर्माण विधि

समस्त औषधियों को बारीक पीसकर तैल को कढ़ाही में चढ़ावें। जब गर्म हो जाय चलाते रहें उफान न आने पावे, गाढ़ा मलहम जैसा हो जावे तब उतार लेवें।

एक कपड़े की पट्टी पर मलहम लगाकर पट्टी चढ़ा देना चाहिए।

यह मलहम फोड़ा, व्रण, जख्म कैसा ही सड़ा व गला हो उसे आराम करता है।

—वैद्य श्री नन्दकिशोर शर्मा वैद्यरत्न
आगर (मालवा)

एरण्ड मूलादि क्वाथ

श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव वैद्य अरौल (कानपुर)

घटक—अण्डी की मूल-छाल, कच्चे बेल की गिरी, बड़ी कटेली पञ्चांग, छोटी कटेली पञ्चांग। इन चारों को कूटकर २ तोला लें, पानी १६ तो० में पकावें, ४ तो. शेष रहने पर छान लें, ६ रत्ती काला नमक मिला कर गर्म गर्म पिलावें। यह एक मात्रा है। ऐसी ३-४ मात्राएँ एक दिन में सेवन करावें। इनमें शंकाली, हार सिंगार, संभालू, निर्गुण्डी या सिन्धुवार में से कोई भी १-२ द्रव्य मूल छाल, पत्र, बीज १ भाग उक्त द्रव्यों में मिलाकर काढ़ा बनाकर सेवन करावें। इसी काढ़े से दशमूल घनसत्व ४-६ की मात्राएँ सेवन करावें।

उपयोग—विश्वाची, गृध्रची, बाहुशूल, वस्तिशूल, उदर शूल, शिरोशूल आदि वातज शूलों को १-२ दिनों में शमन कर देता है। यदि उदर में मल सञ्चय हो तो पहिले रेचन देना चाहिये। अन्य वातज रोगों में यह एरण्डमूलादि क्वाथ अनुपान रूप से प्रयोग किया जा सकता। ग्रामीण वैद्य जिनके औषधालय में २०-३० रोगी प्रतिदिन आते हैं उन्हें इस क्वाथ को स्वयं तैयार कर रखना चाहिये। द्रव्य सभी उत्तम प्राप्त हो जाते हैं।

दशांग कषाय

ग्रन्थ—वै. स.।

घटक—वासा, गिलोय, पित्तपापड़ा, नीम की अन्तर-छाल, चिरायता, हर्र, आमला, बहेड़ा, परवल के पत्ते, धनिया, मुनक्का में से कोई भी ९-१० द्रव्य १२-१२ रत्ती लेकर आधा सेर जल में काढ़ा बनावें। आधा पाव या १० तो. क्वाथ शेष रहने पर मोटे कपड़े से छानकर शीतल होने दें। फिर इसमें १ तोला मधु मिलाकर एक ही बार में सब पी डालें। दिन में १ या २ बार पीवें।

उपयोग—इसके प्रयोग से अम्लपित्त रोग, नये या पुराने दोनों में लाभ करता है। यह पित्त और दाह शामक साधारण रेचक काढ़ा बनता है। वै. स. में दशांग कषाय नाम लिखा पर द्रव्य ९ ही हैं एक द्रव्य छूट गया है। इसमें हमने धनियां और मुनक्का दो द्रव्य शामिल किए हैं। शतावरी या भांगरा भी ले सकते हैं। यह साधारण प्रयोग अधिक लाभ करता है। छुहारा, श्वेत चन्दन, खस में से कुछ द्रव्य मिलाकर प्रयोग कर सकते हैं। अनेक रस योगों से जो रोगी ठीक नहीं हुए वे भी इस प्रयोग से ठीक हो गए। यह क्वाथ रक्त प्रदर को भी दूर करता है। अम्लपित की वमन यदि न रुकती हो तो सुदर्शन अर्क सेवन करावें अथवा मुनक्का और हरड़ १ तोला की मात्रा में मिलाकर खिलावें पथ्य का पालन करें।

—श्री वैद्य जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव
अरौल, (कानपुर)

पुनर्नवादि क्वाथ : : पृष्ठ ३०७ का शेषांश

हो जाता है, इसीलिए कोषकारों ने इसे "वर्षाभू:" नाम दिया है।

गुणाढ्यता व प्रभावशालिता—

सभी प्रकार की प्रयुक्त होने वाली पुनर्नवा न्यूनाधिक गुण रखती हैं। यहां वनस्पति या औषधि विवेचन न होकर स्वानुभव में सर्वोत्तम पुनर्नवा उसी को मैंने स्वीकार किया है जिसकी मूल मूलिका की तरह टूट जाती है। इसमें सांठ के समान कठोर रेशे नहीं होते। प्राय: पथरीली जमीन में प्राप्त होती है, यह भी श्वेत और रक्तवर्ण दोनों प्रकार की होती है, हमें रक्तवर्ण की सरलता से मिल जाती है।

इस प्रकार का पुनर्नवा अधिक प्रभावशाली है। इसमें गुणाढ्यता है। मैंने सभी प्रान्तों में इस प्रकार के पुनर्नवा को देखा है। शरद् ऋतु में दीपावली के आसपास इसका संग्रह कर लेना चाहिए। राजस्थान में यत्र तत्र पथरीली, उन्नत भूमि भागों पर इसकी उपलब्धि होती है। मैं तथा कई प्राचीन वैद्य इसको असली पुनर्नवा मानते आये हैं। अन्य सभी प्रकार के पुनर्नवा में इनके सहयोगी व इससे हीन गुण हैं। मेरा वैद्य बन्धुओं से निवेदन है कि इस पुनर्नवा का अन्वेषण व प्राप्ति कर अपने योगों को सिद्ध व प्रभावशाली बनावें।

—श्री वैद्यराज डा० रणवीरसिंह शास्त्री
आयुर्वेदाचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०
आगरा।

कट्फलादि क्वाथ

वैद्य श्री छगनलाल समदर्शी आयुर्वेदरत्न, आयुर्विद्या भूषण

औषधि का नाम—कट्फलादि क्वाथ[1]

ग्रन्थ संदर्भ—शार्ङ्गधर संहिता, चक्रदत्त

विशेष—कट्फलादि क्वाथ का आचार्य शार्ङ्गधर ने सन्निपात ज्वर की चिकित्सा में उल्लेख किया है जबकि चक्रदत्त में इस क्वाथ का वर्णन कास चिकित्सा में है। आचार्य शार्ङ्गधर ने एक 'कट्फलादि पाचन क्वाथ का योग पित्तज्वर के पाचनार्थ दिया है।

घटक द्रव्यों की तालिका

क्रम	द्रव्य नाम	मान	सहायक द्रव्य	उपकरण
१	कायफल (Myrica Naga)	२ ग्राम	जल २५० ग्राम	१. अंगीठी
२	नागरमोथा (Cyperus Rotundus)	,,		२. मिट्टी का
३	भारंगी (Clerodendrum Serratam)	,,		३. स्वच्छ वस्त्र
४	धनियाँ (Coriandrum Sativum)	,,		४. स्वच्छ पात्र
५	रोहिष तृण (Cymbopogon Schoenanthus)	,,		
६	पित्तपापड़ा (Fumaria Parviflora)	,,		
७	वच (Acorus Calamus)	,,		
८	हरड़ (Terminalia Chebula)	,,		
९	कर्कट शृङ्गी (Rhus Succedanea)	,,		
१०	देवदारू (Cedrus Deoders)	,,		
११	सोंठ (Zingiber officinale)	,,		
१२	मधु[2] (Mel)	१० ग्राम		
१३	भुनी हींग[3] (Ferula Foetida)	२ ग्राम		

निर्माण विधि—

एक मिट्टी के वर्तन में २५० ग्राम जल लेकर उसमें उपरोक्त नं० १ से ११ तक की औषधियों का यवकुट चूर्ण मात्रानुसार लेकर डाल दें। इसके वाद मिट्टी के को कोयले की मन्द-मन्द आंच वाली अंगीठी पर चढ़ा जब जल उड़कर अथवा जलकर लगभग ५० ग्राम

---

[1] कट्फलाम्बुदभार्ङ्गीमिर्धान्यरोहिषपर्य हैः। बचा हरीतकी शृङ्गी देवदारू महोषधैः ॥
हिक्का कासं ज्वरं हन्ति श्वासश्लेष्मगलग्रहान्। —शा० सं० म० खं० २/४५

कट्फलं कतृणं भार्गी मुस्तं धान्यं वचाऽभया। शृङ्गी पर्पटकं शुण्ठी सुराह्वा च जले श्रतम् ॥
मधु हिङ्गुयुतं पेयं कासे वातकफात्मके। कण्ठरोगे क्षये, शूले श्वासहिक्का ज्वरेषु च ॥
—च० द० कास चि० ११/२३, २४

[2] कट्फलेन्द्र यवापाठातिक्तामुस्तैः श्रतं जलम्। पाचनं दशमेऽह्नि स्यातीन पित्तज्वरे नृणाम् ॥

[3—4] मधु तथा हींग की गणना शार्ङ्गधर ने नहीं की है। परन्तु चक्रदत्त के अनुसार इन द्रव्यों को क्वाथ में अवश्य डालना है।

तब मिट्टी के बर्तन को नीचे उतार लें और ठण्डा होने पर उसे साफ वस्त्र से छान लें। इसमें मधु व हींग मिलाकर रोगी को पीने को देना चाहिए।

शास्त्रीय दृष्टि से गुण प्रभाव—

कटुफलादि क्वाथ सन्निपात ज्वर, कास, श्वास, हिक्का, गलग्रह, कण्ठरोग, क्षय, शूल एवं वात कफज रोगों में गुणकारी है।

मात्रा—५० ग्राम की मात्रा प्रातः सायं या आवश्यकता होने पर दोपहर में भी रोग की अवस्थानुसार सेवन कराना चाहिए।

प्रत्येक घटक द्रव्यों के गुण धर्म—

१. कायफल—वातकफहर, पित्तवर्धक, उत्तेजक, वेदनास्थापक, संज्ञास्थापक, आक्षेपहर, दीपन, पाचन, रेचन, अनुलोमन, शूलप्रशमन, कृमिघ्न, हृद्य, श्वासहर, मूत्रजनन, आर्त्तवजनक, ज्वरघ्न, बाजीकर और बल्य है।

२. नागरमोथा—कफपित्त शामक, मेध्य, बल्य, दीपन, पाचन, ग्राही, तृष्णानिग्रहण, मूत्रल, कृमिघ्न, रक्त प्रसादन, त्वग्दोषहर, ज्वरघ्न विषघ्न और स्वेदजनन है।

३. भारंगी—कफवात शामक, रक्तोत्क्लेशक, शोथहर, व्रणपाचक, दीपन, पाचन, अनुलोमक, कासघ्न, श्वासहर, स्वेदजनक, आमपाचक और ज्वरघ्न है।

४. धनिया—त्रिदोषघ्न, मस्तिष्क बल्य, तृष्णानिग्रहण, रोचन, दीपन, पाचन, कृमिघ्न, ग्राही, यकृदुत्तेजक, हृद्य, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, मूत्रविरजनीय, शीतप्रशमन और दाह प्रशमन है।

५. रोहिप तृण—कफवात शामक, वेदनास्थापक, रोचक, दीपक, पाचक, अनुलोमक, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, रक्तशोधक, स्तन्यजनन, मूत्रजनन, स्वेदजनन और ज्वरघ्न है।

६. पित्तपापड़ा-कफपित्त शामक, तृष्णाशामक, दीपन, ग्राही, कृमिघ्न, यकृदुत्तेजक, रक्तशोधक, रक्तस्तम्भक, मूत्रल, स्वेदजनन, कुष्ठघ्न, दाहशामक और ज्वरघ्न है।

७. वच—कफवात शामक, पित्तवर्धक, शोथहर, वेदनास्थापक, मेध्य, संज्ञास्थापन, दीपन, आक्षेप शामक, संज्ञानाशक, तृषिघ्न, अर्शोघ्न, मूत्रजनन, कृमिघ्न, शूल शामक, अनुलोमक, आस्थापक, कास श्वासहर, स्वेदजनन, और ज्वरघ्न है।

८. हरड़—त्रिदोघ्न, शोथहर, वेदनास्थापक, व्रणशोधक एवं रोपक, बल्य, मेध्य, दीपक, पाचक, यकृदुत्तेजक, अनुलोमक, मूत्रल, मृदुरेचक, कृमिघ्न, रसायन, कुष्ठघ्न और ज्वरघ्न है।

९. कर्कट शृङ्गी—कफवात शामक, शोथघ्न, रक्त रोधक, दीपन, वातानुलोमन, ग्राही, कफनिःसारक, कफघ्न, हिक्काहर और ज्वरघ्न है।

१०. देवदारू—कफवात शामक, वेदनास्थापक, दीपन, पाचन, कृमिघ्न, अनुलोमन, कुष्ठघ्न, शोथघ्न, हृदयोत्तेजक, कफ निःसारक, श्लेष्मपूतिहर, हिक्काहर, मूत्रघ्न, प्रमेहघ्न, स्तन्यशोधक, स्थौल्यहर और ज्वरघ्न है।

११. सोंठ—कफवात शामक, तृषिघ्न, रोचन, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, शूलप्रशमन, अर्शोघ्न, हृदयोत्तेजक, शोथहर, रक्तशोधक, श्वासहर, वृष्य, उत्तेजक, बल्य और ज्वरघ्न है।

१२. मधु—त्रिदोषघ्न, लघु, रूक्ष, पिच्छिल, उष्ण और योगवाही है।

१३. हींग—कफवात नाशक, पित्तवर्धक, उत्तेजक, वेदनास्थापक, संज्ञास्थापन, आक्षेपहर, दीपन, पाचन,

रोचन, अनुलोमन, शूलहर, कृमिघ्न, हृद्य, जन्तुघ्न, श्वासहर, मूत्रजनन, शीतशामक, विषम ज्वर प्रतिबन्धक और ज्वरघ्न है।

विशेष गुण धर्म विवेचना

कट्फलादि क्वाथ में सभी औषध द्रव्य ज्वरघ्न और त्रिदोषघ्न हैं। अतः यह सन्निपात ज्वर को निर्मूल करने में परमगुणकारी है। सभी द्रव्य वातकफघ्न, कफनिःसारक और कफघ्न होने से वातज एवं कफज कास और श्वास रोग नाशक हैं। कर्कटश्रृङ्गी, देवदारू इत्यादि हिक्काहर एवं अन्य दीपक, पाचक, अनुलोमन होने से हिक्का रोग का नाश करते हैं। इस क्वाथ में सभी द्रव्यों की योजना इस प्रकार की है कि वे सभी संज्ञास्थापक, शूलशामक, कृमिघ्न, स्वेदजनक हैं जिनके कारण शरीर में अजीर्ण, विबन्ध, आध्मान, वातिक मूत्राघात, रजःकृच्छ, अश्मरी, मूत्रकृच्छ इत्यादि रोगों से उत्पन्न शूल को यह क्वाथ नष्ट करता है। कट्फलादि क्वाथ के सभी द्रव्य हृद्य, मेध्य, बल्य, वृष्य, और उत्तेजक हैं जिनके कारण यह उपरोक्त जनित दुर्बलता को तो नष्ट करता ही है साथ ही .. लेते रहने से क्षय रोग में भी लाभकारी है।

विशेष अनुभव—ज्वर को तुरन्त हटाता है। एक . में कास नष्ट हो जाता है। शूल रोग भी रोग की अ नुसार शीघ्र ही नष्ट होता है परन्तु श्वास रोग : रोग में निरन्तर कुछ काल तक लेते रहने पर ही होता है। हिक्का रोग भी तुरन्त बन्द हो जाता है।

अर्थात् कायफल, इन्द्र जौ, पाठा, कुटकी, न .. इनका काढ़ा तीव्र पित्तज्वर पर दशवें दिन पाचनार्थ चाहिए। क्योंकि पित्तज्वर का पाक दशवें दिन हो है।

—श्री वैद्य छगनलाल समदर्शी आयुर्वेदरत्न, ..विद्य
प्रधान चिकित्सक-समदर्शी मल्टीपर्पज ह..
रायपुर (जिला झालावाड़) ..

दार्व्यादि क्वाथ

ग्रन्थ निर्देश - शार्ङ्गधर संहिता।

योग घटक—दारूहल्दी, रसौत, नागर मोथा, भिलावा, वेलगिरी, अडूसा पत्र, चिरायता, शहद।

परिवर्तन—भिलावे के बदले रक्त चन्दन।

प्रत्येक घटक का संक्षिप्त गुण-धर्म

(क) दारु हल्दी—इसका मूल एवं काष्ठ वल्य, तिक्त, पौष्टिक, दीपन, पाचन, ग्राही, पित्त विरेचक, ज्वरहर, पार्यायिक ज्वरहर, स्वेदन, श्लेष्मघ्न, रसायन एवं त्वक् दोषहर है। इसका उपयोग मलेरिया आदि विषम ज्वर, कुपचन, फिरंग, गण्डमाला, अपची, त्वक् दोष, भगन्दर, प्रदर, अत्यार्तव, व्रण, गर्भिणी वमन, यकृत-प्लीहा वृद्धि, कामला एवं सर्पदंश आदि में किया जाता है।

(ख) रसौत—यह कड़वा, पौष्टक, ज्वरहर, पार्यायिक, ज्वरहर, स्वेदल, अर्शोघ्न, शोथघ्न, रक्तशोधक, श्लेषमघ्न, व्रण रोपक एवं नेत्र विकारहर है।

इसका आन्तरिक उपयोग ज्वर, यकृत-प्लीहा वृद्धि, कामला, अर्श एवं आमाशय तथा पक्वाशय के व्रण में लाभदायक है। इसका बाह्य प्रयोग अर्श, प्राच्य कटे हुए, फोड़े फुँसी एवं पुराने व्रणादि में किया जाता

(ग) नागरमोथा—यह शीतल, दीपन, वातानुलोमक, ग्राही, स्वेदजनन, कफघ्न, मेध्य, न निग्रहण, स्तन्यजनज, स्तन्य शोधन, कण्डूघ्न, : त्रज उत्तेजक तथा जंतुनाशक है। यह गर्भाशय उत्तेजक, वर्द्धक, व्रणरोपक एवं कृमिघ्न है। ज्वर, प्रसूति ज्वर पैत्तिक में विकारोंइसके प्रयोग से प्यास कम होती है, आता है, उत्तेजना आती है। जीभ का स्वाद अच्छा ह है। पेशाब साफ होता है तथा गर्भाशय का थोड़ा सा भी होता है। प्रसूता को दुग्ध शुद्धि तथा वृद्धि के। खिलाते एवं जल में पीसकर स्तन पर लगाते हैं।

(घ) भिलावा—यह उष्ण, मेध्य, रसायन, वाजीक वातकफहर, मूत्रजनन, वातनाड़ी वल्य, अग्निवर्धक, प्र स्वादक तथा कुष्ठघ्न है। रस ग्रन्थियों की उत्तेजना से कणों की वृद्धि होती है जिससे शोथादि में लाभ होता है शरीर की सभी क्रियायें ठीक होने से, योग्यरूप में इस

सेवन से अमृत के समान लाभदायक एवं रसायन माना जाता है। इसका उपयोग अर्श, वातविकार, कफविकार, फिरंग, कृमि, गण्डमाला, विसूचिका, गुल्म, आमवात एवं कुष्ठ में होता है।

(ङ) रक्त चन्दन—यह शीतल, वल्य, सौम्य एवं ग्राही है। इसका प्रयोग पैत्तिक विकार, रक्तदोष, रक्तार्श, रक्त-पित्त, अतिसार, संग्रहणी, शिर:शूल, शोथ, त्वचा के रोग एवं व्रणों में किया जाता है। इसका बाह्य लेप शीतल, शोथघ्न एवं व्रणरोपक है। ग्राही होने के कारण अन्य औषधियों के साथ इसका क्वाथ प्रयोग किया जाता है।

(च) वेलगिरी—यह कटु, तिक्त, कषाय, स्निग्ध, उष्ण, दीपन, ग्राही, वात-कफ नाशक एवं आन्त्र को वल देने वाला है। इसका उपयोग अतिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी मधुमेह, कर्णरोग, वातरोग, वमन, कामला, अर्श, शोथ एवं ज्वर में किया जाता है। कच्चे फल का सुखाया गूदा (गिरी) ग्राही एवं दीपन होने के कारण अतिसार, रक्ता-तिसार एवं प्रवाहिका के जीर्ण विकारों में अति गुणकारी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। आंव, रक्त तथा कुंथनयुक्त तीनों जीर्ण विकारों में लाभदायक होता है।

(छ) अडूसा (बासक पत्र)—यह उत्तेजक, कफ नि:सारक, शीतवीर्य, उद्वेपहन निरोधी, स्वर्य, कृमिघ्न, कुष्ठहर, रक्तपित्तघ्न, श्वासहर, कासहर एवं क्षयघ्न है। स्वेदजनन होने के कारण कफ को पतला कर आसानी से बाहर निकाल देता है। स्नेहन एवं शोथघ्न होने के कारण जरायु शोथ में विशेष फलदायक होता है।

(ज) चिरायता—यह दीपन, पाचन, तिक्त, पौष्टिक, ज्वरहर, पित्त विरेचक एवं कृमिघ्न है। इसके प्रयोग से भूख बढ़ती है, पाखाना साफ होता है। पुराने ज्वर में लाभदायक है। इसका प्रयोग ज्वर, विषम ज्वर, दाह, अग्निमांद्य, शैथिल्य, आध्मान, अम्लपित्त, यकृत विकार, कामला, पाण्डु, श्वास, शोथ, गण्डमाला एवं कृमिरोग तथा व्रण में किया जाता है।

(झ) शहद (मधु)—शीतल, लघु, स्वादिष्ट, रूक्ष, ग्राही, विलेखन, नेत्रों के लिए हितकर, अग्निदीपक, स्वर को उत्तम बनाने वाला, व्रण शोधक, व्रण रोपक, मधुर-कषाय रस युक्त, आह्लादकारक, सुकुमारक, सूक्ष्म, स्रोतो-मार्ग का अत्यन्त शोधन कारक, अत्यन्त प्रसादजनक, वर्ण कारक, मेधाशक्ति वर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, विशद गुणयुक्त, रोचक, योगवाही, कुष्ठ, अर्श, कास, पित्त, रक्तविकार, कफ, प्रमेह, क्लान्ति, कृमि, मेद, तृष्णा, वमन, श्वास, हिचकी, अतिसार, मलबंध, दाह, क्षत तथा क्षय को नष्ट करने वाला होता है। जिस औषधि के साथ इसका प्रयोग किया जाता है उसके सदृश गुण को बढ़ाता है।

निर्माण विधि एवं प्रयोग—दारुहल्दी, रसौत, नागर-मोथा, भिलावे के स्थान पर रक्त चन्दन, वेलगिरी, अडूसा पत्र, चिरायता सबको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। उक्त औषधि चूर्ण २॥ तोला का क्वाथ सुबह एवं २॥ तोला क्वाथ शाम को मधु के साथ सेवन करने से रक्तप्रदर, श्वेत प्रदर, जरायु शोथ, मासिक धर्म पीड़ा से होना, कम होना या अनियमित होना आदि शिकायत दूर होती है। कष्टपूर्ण रज:स्राव, शिर:शूल, कमर दर्द, पेडू दर्द तथा बेचैनी, नेत्रों एवं हस्तपक्षादि की जलन, अत्यार्तव आदि रोग दूर होकर ऋतु धर्म भी समयानुकूल होने लगता है। सौन्दर्य एवं शक्ति की प्राप्ति होती है तथा स्त्रियों को सन्तान प्राप्ति होती है। उक्त क्वाथ के सेवन के साथ ही भोजन के बाद अशोकारिष्ट २॥ तोला मात्रा में सम-भाग जल के साथ रात दिन पीना चाहिए। यह परीक्षित प्रयोग नया नहीं पुराना है तथा बहुतों द्वारा बहुत बार अजमाया भी जा चुका है। मैं इसे सभी रोगियों को उक्त रोग में देता हूं। कृपया प्रयोग कर परीक्षा करें। फिटकरी जल से योनि प्रक्षालन करना परमावश्यक है।

—श्री डा० रामप्रसाद सिंह 'शंकर, आयर्वेदरत्न
आयुर्वेद निकेतन महदेश पो० परवाना
वाया—इलमासनगर, जि० समस्तीपुर (विहार)

देवदार्वादि क्वाथ

श्री वैद्यराज डा० जहानसिंह चौहान

ग्रन्थ निर्देश वै० सा० सं०, भैषज्य रत्नावली।

घटक—देवदारू, दारुहल्दी, पीपल, चिरायता, इन्द्रजौ, मजीठ, अमलतास का गूदा, पाठा, पद्माख, कूड़े की छाल, धनियाँ, सौंठ, नागरमोथा, नेत्रबाला, काली मिर्च, पियावांस की छाल, कुटकी, धमासा, गिलोय, एरण्ड की जड़, छोटी कंटकारी, हरीतकी (हरड़) एवं पित्तपापड़ा।

उपरोक्त २३ औषधि द्रव्यों को समभाग लेकर जौकुट चूर्ण कर लें।

पूर्ण मात्रा—२४ ग्राम (२ तोला), जल ६ औंस २ ड्राम (१६ तोला), शेष क्वाथ ४८ ग्राम। प्रातः सायं।

अनुपान—शहद एवं पीपल।

गुण एवं उपयोग—

ज्वर की जीर्णावस्था में देवदार्वादि क्वाथ का उपयोग परम लाभकारी होता है। यह क्वाथ धातुगतज्वर, विषमज्वर, त्रिदोषज ज्वर, जीर्ण ज्वर आदि को कुछ ही दिनों में शमन कर देता है। आमाशय एवं आन्त्र का उत्तम शोधक है। इसके उपयोग से पाचन क्रिया शक्ति बढ़ती है और खाया हुआ भोजन शीघ्र ही बिना विलम्ब के पच जाता है। यकृत एवं प्लीहा वृद्धि में भी परम उपयोगी है।

यह क्वाथ साम ज्वरों में आम, विष एवं कीटाणुओं को जलाकर नवीन ज्वर का शमन करता है।

ज्वर की जीर्णावस्था में सर्व ज्वर लौह के साथ इसे अनुपान रूप में दिया जाता है।

सन्निपातिक उदर में वातोदर या श्लैष्मिक उदर में लक्षणों के प्रकट होने पर रोग की प्रथमावस्था में गोमूत्र के साथ इस क्वाथ को देना चाहिये। इससे शोथ नष्ट होते हैं और कृमि का निष्कासन होता है।

सूतिका रोग में वात, पित्त, कफ इनके प्रकोप से कास, श्वास, मूर्च्छा, कफजन्य शिरःशूल, प्रलाप, तृष्णा, दाह, तन्द्रा अतिसार, वमन आदि उपद्रव होने पर यह क्वाथ रोगी को अवश्य ही सेवन कराना चाहिए। सूतिका रोग में इसे अभ्रक भस्म के साथ देना उत्तम रहता है।

प्रवाहीकरण—

इस आधुनिक युग में औषधि निर्माण संस्थान क्वाथों को प्रवाही रूप में भी प्रस्तुत कर रही हैं। क्वाथ का उपरोक्त विधि से निर्माण करने के पश्चात् उसमें आसव-अरिष्ट प्रक्रियानुसार सन्धानकारक द्रव्य मिलाकर उसमें मद्यसार को प्राकृतिक रूप में उत्पन्न किया जाता है। अथवा क्वाथ किये हुए द्रव्य में ५ या १० भाग मद्यसार मिलाकर प्रयोग किया जाता है।

देवदार्वादि क्वाथ (प्रवाही)—

देवदारू, वचा, कूठ, पीपल, सौंठ, नागरमोथा, कुटकी धनियां, हरीतकी, गजपीपल, जवासा, गोखरू, धमासा बड़ी कंटकारी, अतीस, गिलोय, काकड़ासिंगी, काला जीरा

प्रत्येक औषधि ३८४ ग्राम लेकर जौकुट करें और १२५ लिटर जल डालकर पकावें। जब आठवां भाग शेष रहे, उतार कर छान लें, तत्पश्चात् गुड़ ६ किलो + धातकी पुष्प ६०० ग्राम का प्रक्षेप दें और आसवारिष्ट विधि १ माह तक संधान करके रखें। १ माह पश्चात् छान कर सुरक्षित बोतलों मे रख लें।

(यह प्रवाही योग—शा० सं० का योग आसवारिष्ट विधि से निर्मित है)

मात्रा—२ से ४ ड्राम तक।

अनुपान—प्रातः सायं समान भाग जल से।

गुण एवं उपयोग—

यह क्वाथ परम दीपक एवं पाचक है। ग्राही (Astringent) गुण इसकी विशेषता है।

इस क्वाथ का उपयोग सभी प्रकार के अतिसार, संग्रहणी, एवं आमातिसार में किया जाता है। आम का उत्तम पाचन कर्त्ता है। अतिसार एवं संग्रहणी को नष्ट करने इसमें विशेष क्षमता है, साथ ही इन रोगों की श्रेष्ठ एवं निरापद औषधि है।

आमातिसार, पित्तातिसार एवं रक्तातिसार में अर्क सौंफ ४ ड्राम (१/२ औंस) के साथ देना चाहिये इससे इन रोगों में सर्वाधिक लाभ होता है।

विशेष—सूतिका के भयंकर ग्रहणी रोग, घोर अतिसार, प्रवाहिका, दुर्बलता एवं अग्निमांद्यता में जब अन्य औषधियां असफल हो गई हों तब इस (वै० सा० स० के अनुसार नहीं) प्रवाही क्वाथ का प्रयोग अनुपान रूप में 'सूतिकावल्लभ रस' के साथ करने से अति उत्तम लाभ होता है।

प्रतिदिन २५-५० बार मरोड़ के साथ दस्त आते हों, उदर में तीव्र ऐंठन रहती हो, दस्तों के कारण रोगियों में पर्याप्त दुर्बलता आ गई हो, बार-बार चक्कर आते हों, हृदय की धड़कन बढ़ गई हो, खाया-पीया भोजन न पचता हो, आम एवं रक्तमिश्रित दस्त आ रहे हों, प्यास की अधिकता हो, ज्वर बना रहता हो, ऐसे समय पर देवदार्वादि क्वाथ का उपयोग सूतिकावल्लभ रस अथवा महारस-शार्दूल के साथ अनुपान रूप में विशेष उपयोगी होता है।

उपर्युक्त विशेष अनुभव सिद्ध प्रयोग अपना स्वयं का शत अनुभूत है। विशेष ज्ञान के लिए लेखक की "स्त्री रोग चिकित्सा सचित्र" नामक पुस्तक का सूतिका प्रकरण अध्ययन करें।

भैषज्य रत्नावली के अनुसार—देवदार्वादि क्वाथ में ४८० मिलीग्राम सेंधानमक+६० मिलीग्राम हींग का प्रक्षेप देकर प्रसूता स्त्री को पिलाने से शूल, कास, ज्वर, श्वास, मूर्छा, कम्प, शिरःशूल, प्रलाप, तृष्णा, दाह, तन्द्रा, अतिसार एवं वमन सभी उपद्रव दूर होकर सूतिका रोग नष्ट होता है। साथ ही वातज, पित्तज तथा कफज इन तीनों प्रकार के सूतिका रोग की अमोघ औषधि है। प्रसूति ज्वर तोड़ने के लिए सुप्रसिद्ध औषधि है। जैसा कि कहा है—

शूलकासज्वरश्वासमूर्छाकम्पशिरोऽर्तिभिः ।
युक्तं प्रलापतृड्दाहतन्द्रातिसारवान्तिभिः ॥
निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम् ।
कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम् ॥

—साहित्यायुर्वेद वाचस्पति, वैद्यराज डा. जहानसिंह चौहान
आयुर्वेद बृहस्पति, आयुर्वेदरत्न, चौहान
आयुर्वेद निकेतन-नवीगंज, मैनपुरी (उ० प्र०)

दुरालभादि कषाय

ग्रन्थ नाम—भैषज्य रत्नावली।

अधिकार—ज्वराधिकार (पैत्तिक ज्वर)।

घटक—

दुरालभा, पर्पटक, प्रियंगु, भूनिम्ब, वासा, कटु, रोहिणीनाम्।

अर्क घमासा दुरालभा, (पित्तपापड़ा,) प्रियंगु, चिरायता, अडूसा तथा कुटकी। सबको समान भाग लेना चाहिये।

निर्माण विधि—सब द्रव्यों को समान भाग लेकर जौकुट करके क्वाथ निर्माण विधि से निर्माण करें। क्वाथ में हरी ताजी औषधियां शुष्क औषधि से दुगनी मात्रा में मिलानी चाहिये। तथा सब द्रव्यों को सम्मिलित करके एक पल अर्थात् चार तोला लेकर १६ पल जल मिलावें। अष्टमांश अर्थात् दो पल शेष रहने पर छान लेवें।

पानीयं षोडश गुणं क्षुण्णो द्रव्य पले क्षिपेत् ।
मृत्पात्रे क्वाथयेद् ग्राह्क-मष्टभागावशेषितम् ॥

इस दुरालभादि क्वाथ में शर्करा का प्रक्षेप डालकर पीना चाहिये।

यह क्वाथ पैत्तिक ज्वर तथा अन्य पैत्तिक विकार यथा दाह, तृष्णा, रक्तपित्त एवं अंगदाह में लाभ करता है। क्योंकि इस क्वाथ में सभी द्रव्य पित्तशामक हैं। प्रियंगु दाह, पित्त शामक तथा तृप्तिकर है, वामक, रक्त पित्त शामक है।

इसके अलावा भैषज्य रत्नावली में मूत्रकृच्छ प्रकरण में दुरालभादि कषाय के नाम से दूसरा क्वाथ भी है। इसके घटक दुरालभा (धमासा), पाषाणभेद, हरीतकी, कण्टकारी, मुलैठी एवं धनिया हैं। इस क्वाथ की कार्य संस्तुति में लिखा है कि—

.... मूत्रकृच्छ्र विबन्ध नुत् ।
दाह शूलं निहन्त्याशु तमः सूर्योदये यथा ॥

अर्थात् इस क्वाथ के प्रयोग से मूत्रकृच्छ्र, विबन्ध, दाह, और शूल इसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं—जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है।

—श्री डा. वेदप्रकाश शर्मा ए०, एम० बी० एस०
चिकित्साधिकारी—राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
माँट (मथुरा)

पथ्यादि क्वाथ

वैद्य श्री हरिशंकर शाण्डिल्य

संदर्भ ग्रन्थ—योग रत्नाकर।

घटक द्रव्य — व्यवहारिक नाम वानस्पतिक (लेटिन) नाम

१ हरड़	1 Terminalia Chebula.
२ वहेड़ा	2 Terminalia Belerica
३ आँवला	3 Embelica officinalis
४ हरिद्रा	4 Curcuma Longa
५ गिलोय	5 Tinospora Cordifolia
६ चिरायता	6 Swertia Chirata
७ नीम की अन्तर्छाल	7 Melia Azadiracta

द्रव्यानुसार गुण धर्म विवरण—

प्रस्तुत क्वाथ के घटक द्रव्यों का प्रथकशः गुणकर्मात्मक ज्ञान पाठकों को प्राप्त हो सके; एतदर्थ निम्न तालिका में सूक्ष्म रूप से सातों द्रव्यों के शास्त्रीय गुणधर्मों का विवेचन किया है—

क्र.सं.	द्रव्य नाम	रस	गुण	वीर्य	विपाक	प्रभाव	कर्म
१.	हरड़	कषायप्रधान अम्ल, कटु, तिक्त, मधुर रसयुक्त,	लघु, रूक्ष, सर	उष्ण	मधुर	त्रिदोषघ्न	चक्षुष्य, मेध्य, वृंहण, अनुलोमन, रसायन, कुष्ठघ्न।
२.	वहेड़ा	कषाय	लघु, रूक्ष,	उष्ण	मधुर	त्रिदोषघ्न	केश्य, चक्षुष्य, भेदन, अनुलोमन, कासघ्न, रसायन।
३.	आँवला	अम्ल, कषाय, मधुर, कटु, तिक्त तथा लवण रस रहित	लघु-शीत रूक्ष	शीत	मधुर	त्रिदोषघ्न	चक्षुष्य, केश्य, दाह प्रशमन, दीपन, वृंहण, रसायन।
४.	हल्दी	कटु, तिक्त	रूक्ष, लघु	उष्ण	कटु	श्लेष्म वातहर	कुष्ठघ्न, वर्ण्य, शोथहर, वेदनास्थापन, श्वासकासहर, विषघ्न।
५.	गिलोय	कटु, तिक्त	लघु, उष्ण	उष्ण	मधुर	त्रिदोषघ्न	ज्वरघ्न, प्रमेह नाशक, रसायन, वातघ्न, हृद्य, कुष्ठघ्न, मूत्रल, वल्य, रक्तवर्द्धक, शामक।
६.	चिरायता	कटु, तिक्त	लघु, रूक्ष	शीत	कटु	श्लेष्मपित्तघ्न	रक्त विकारनाशक, पौष्टिक, रेचन, ज्वरघ्न, दाह प्रशमन।
७.	निम्बत्वक्	तिक्त	लघु, उष्ण	उष्ण	कटु	श्लेष्मपित्तहर	कुष्ठघ्न, कृमिघ्न (Antiseptic) प्रमेह, ज्वर नाशक, विषघ्न, व्रणरोपण व शोधन

विशेष ज्ञातव्य—वैद्य यादव जी, त्रिकम जी आचार्य ने अपने सिद्ध योग संग्रह नामक ग्रन्थ में उक्त क्वाथ का वर्णन करते समय उपरोक्त विवरणानुसार क्रमाँक १ (हरड़) से ६ (चिरायता) पर्यन्त मात्र छः द्रव्यों का ही उल्लेख किया है तथा गिलोय का नीम वृक्ष पर चढ़ी हुई (नीम गिलोय) लेने का निर्देश किया है। लेखक की व्यक्तिगत सम्मति में गुण वृद्धि दृष्ट्या निम्ब अन्तस्त्वक का समीचीन ही है। इससे क्वाथ के ज्वरघ्न कर्म में पर्याप्त सहायता मिलती है।

निर्माण प्रक्रिया—उपरोक्त सात द्रव्यों को समान भाग लेकर यवकुट (मोटा मोटा चूर्ण) करके सुरक्षित रखें। इसमें से १० से २० ग्राम चूर्ण को षोडश गुण (१६० से ३२० मि. ली.) जल में मन्दाग्नि पर मृत्तिका पात्र में या स्टेनलैस स्टील के (प्रति क्रिया रहित) पात्र में पकावें, चतुर्थांश जल (४० से ८० मि. ली.) अवशिष्ट रहने पर वस्त्रपूत कर तथा ६ ग्राम गुड़ मिलाकर पिलावें।

मात्रा—दिन में २-३ बार तक आवश्यकतानुसार स्वतन्त्र रूप से या तत्तदरोग नाशक रस भस्मों के अनुपान रूप में दिया जा सकता है।

उपयोग—

यह क्वाथ सर्वविध शिरःशूलों में उपयोगी सिद्धयोग है। शिरोरोग चिकित्सा का प्रकरण उपस्थित होने पर आयुर्वेदज्ञों द्वारा अत्यन्त सफलता के साथ प्रयोजित होता है। साम दोषजन्य एवं मलावरोध सह शिरःशूल, भ्रू, शंख, कर्ण, एवं नेत्रगत शूल (अनन्तवात) एवं अर्धावभेदक शिरःशूल सद्यः प्रभावी औषधि कल्प है।

द्रव्य गुण कर्म विवेचना के आधार पर यह एक श्रेष्ठ दीपन, पाचन, शूलहर, विवन्धनाशक, ज्वरघ्न, रक्त शोधन एवं त्वक् रोगों पर अप्रतिम प्रयोग है।

पित्त प्रकृति वाले रोगियों को एवं सगर्भा स्त्रियों को होने वाले विषम एवं जीर्ण प्रकार के ज्वरों के लिए तो अमोघ वरदान के रूप में सिद्ध हुआ है।

वर्तमान युग की सुप्रचलित व्याधि गैस बनना (अजीर्ण जन्य उदर विकार) रोग के परिणामस्वरूप जब शिरःशूल होता हो ऐसी स्थिति में इस क्वाथ का धैर्यपूर्वक सेवन रोग के मूल कारणों को नष्ट कर प्रकृति स्थापन करने में श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

नस्यार्थ प्रयोग—पानार्थ विधिवत् प्रस्तुत क्वाथ का नस्य (Nassal drops) रूप में प्रयोग करने से भी भ्रू, शंख, कर्ण एवं नेत्रगत तीव्र शूल एवं अर्धावभेदक शिरोरोग का शीघ्र प्रशमन होता है।

कतिपय स्वानुभविक प्रयुक्त मिश्रण—

पित्तज शिरःशूल—ग्रीष्म ऋतु में धूप में अधिक घूमने फिरने से, कार्य करने से सिर में तीव्र शूल उत्पन्न होने पर निम्न प्रयोग से लाभ उठावें।

गोदन्ती भस्म ५०० मिग्रा., प्रवालपिष्टी २५० मिग्रा., सिताचूर्ण १ ग्राम। मात्रा १×३ मधु से चाटकर, पथ्यादि क्वाथ ऊपर से पिलावें।

अर्धावभेदक शिरःशूल पर—शिरःशूलादि वज्ररस २५० मिग्रा०, स्वर्ण सूतशेखर १२५ मिग्रा०, गोदन्ती भस्म ५०० मिग्रा०, मात्रा १×३ एक मात्रा नवनीत+सिता चूर्ण से चाटकर ऊपर से पथ्यादि क्वाथ सिद्ध क्षीरपाक सेवन कराया जाने पर प्रथम दिवस में लाभ प्रतीत होने लगा।

मलावरोधजन्य प्रतिश्याय एवं शिरःशूल पर—मधुयष्ट्यादि चूर्ण ३ ग्राम, टंकण पुष्प २५० मिग्रा०, १×३ मात्रा।

पथ्यादि क्वाथ के अनुपान से सेवन करने से शीघ्र आन्त्रस्थ विष (Indo Toxins) का निष्क्रमण होकर उपद्रव रूपेण सम्प्राप्त प्रतिश्याय एवं शिरःशूल का सद्यः प्रशमन होता है। कुछ आधुनिक चिकित्सक शिरःशूल के इस प्रकार में प्रथम दिन "लिक्विड पैराफीन" देकर रोगी को स्वास्थ्य लाभ कराने का प्रयास करते हैं।

विषमज्वर, जीर्णज्वर—वर्तमान समय में प्रचलित मलेरिया प्रायः जीर्णज्वर, विषम ज्वर का रूप धारण कर रोगी को दीर्घ काल तक परेशान करता रहता है। ऐसी स्थिति में ७ से १५ दिन तक धैर्य व पथ्यपालनपूर्वक इस क्वाथ का नियमित सेवन करने से ज्वर से मुक्त होने के अनेक उदाहरण चिकित्साभ्यास काल में देखने को मिले हैं। इसके साथ में संशमनी वटी का प्रयोग यदि कराया जाय तो रोग मुक्ति के साथ-साथ रक्ताल्पता की स्थिति भी नष्ट होती है। इस क्वाथ के घटक भी स्वय में रक्त प्रसादक एवं रक्तवर्धक गुण संजोये हुए हैं।

सारांशतः यह एक उत्तम ज्वरघ्न, शिरोरोगहर एवं पौष्टिक तथा चिकित्सकों की परम मित्र, यशप्रद औषधि सिद्ध हुई है। आशा है सुयोग्य चिकित्सक वन्धु इसे अपनी चिकित्सा में अपनाकर जनता जनार्दन को उत्तम एवं सस्ती चिकित्सा प्रदान कर केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के सपनों को साकार बनाते हुए आयुर्वेद की उन्नति में भागीदार बनेंगे।

—श्री हरीशंकर शर्मा 'शाण्डिल्य'
भिषगाचार्य, आयु. वारिधि, डी.एस-सी.ए.
प्रभारी—राज. आयु. चिकि.,
वरिधा (भरतपुर) राज.

पुनर्नवादि क्वाथ

वैद्यराज डा० श्री रणवीर सिंह शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, एम.ए., पी-एच.

ग्रंथ निर्देश—भावप्रकाश, भैषज्य रत्नावली

क्वाथ्य द्रव्य कल्पना—पुनर्नवामूल, देवदारु नई गांठ, हल्दी, कुटकी, पटोल पत्र, हर्र वैजवाड़ा, नीम की अन्तर-छाल, नागरमोथा, सौंठ, गिलोय हरी, प्रत्येक औषधि ५०-५० ग्राम लें। औषधियाँ नवीन व शुद्ध हों, उक्त सभी उपादानों को जौकुट करलें।

मात्रा—२ तोले से ४ तोले तक (प्रातः सायं दोनों काल के लिए) १६ गुने पानी में ८ घण्टे पूर्व भिगो दें। वर्तन कलई या मिट्टी का होना चाहिए। कोरा मिट्टी का वर्तन पानी शोष लेता है अतएव २ छटाँक पानी अधिक डालना चाहिए। चौथाई शेष रहने पर (अग्नि पर पकाते हुए) कपड़े से छान गोमूत्र और शुद्ध गूगल मिलाकर प्रातः सेवन करावें। क्वाथ का फोक पुनः भिगोकर पूर्ववत् सायं पीना चाहिए।

गूगल की मात्रा १ माशे से ३ माशे तक, गोमूत्र २॥ तोले से ५ तोले तक प्रति बार लेनी चाहिए। मात्राओं की कल्पना रोगी और रोग का बलाबल और देशकाल की परिस्थिति के अनुकूल होनी चाहिए। चिकित्सा में वैद्य की सम्मति प्रधान है।

शास्त्रीय गुण—

सर्वांग शोथ, एकाङ्गशोथ, उदर रोग, कास, शूल, श्वास और पाण्डु रोग नाशक है।

चिकित्सक परामर्श—यह पुनर्नवादि क्वाथ शोथरोग (सूजन) को नष्ट करता है। यकृत्, प्लीहा, वृक्क, मांसपेशी आदि सभी देहाङ्गों में व्याप्त शोथ को यह क्वाथ निरन्तर पथ्यपूर्वक सेवन से अवश्य नष्ट कर देता है और जठराग्नि दीप्त करके सभी रोगों को दूर करता है।

१. इस क्वाथ में रेचक (मलरेचक व मूत्र रेचक) औषधियाँ हैं। पेट में चिरकाल से सञ्चित आम को निकाल कर आंतों की भित्तियों को सबल बनाता है। आम के अतिरिक्त कृमि दूषित मल की गांठें, आदि शनैः शनैः निकलती हैं और औदरिक विकार शान्त होते हैं।

२. उदर रोगों में वातोदर, जलोदर की भाव यकृत् प्लीहोदर, गुर्दों की सूजन आदि में भी नियम सेवन से शीघ्र गुणकारी है और शोथ को शान्त कर देता

३. मूत्र व पसीने के कारण बहुत से शोथ दोषों व कीटाणुओं को नष्ट करता व बाहर ... देता है।

४. रक्त में जलीयांश की वृद्धि, ओजःस्राव (Alb in) लवणीय तत्वों की वृद्धि से शोथ होना स्वाभाविक पुनर्नवा आदि औषधियाँ उक्त विकारों को मूत्र द्वारा नि देतीं व शोथ का निरसन करती हैं। बाह्याघात, चोट, भग्न, आस्फालन आदि से भी जो शोथ हो जाता है उस भी यह क्वाथ नष्ट कर देता है। इनमें बाह्य उपचार आवश्यक है। शोथनाशक क्वाथ, पोटली, लेप, कल्क, वाष्प आदि के प्रयोग को भी करना चाहिए।

५. इस क्वाथ के साथ गोमूत्र और शुद्ध गुग्गुलु ... प्रभावकारी वातकफ नाशक हैं। शोथ में इन दोषों प्रधानता रहती है। अतएव इन दोनों का सेवन भी स में करना चाहिए।

६. किसी-किसी रोगी के हृदय में शोथ होने से र संवहन क्रिया में व्यतिक्रम होने से श्वास, कास, ... आक्षेप आदि रोग उपद्रव रूप में उत्पन्न हो जाते हैं। ... क्वाथ के प्रयोग से सारे उपद्रव व शोथ शान्त ... जाता है।

७. किसी रोगी को इस क्वाथ के पीने में अरुचि हो तो उसे इस क्वाथ का वाष्पयन्त्र से अर्क खींचकर २-२ तोले ४ बार पिलाना चाहिए। यद्यपि अर्क में क्वाथ के सारे गुण धर्म नहीं पहुँचते, तो भी रोगी को सौकर्य्य होता है। अर्क छोटे-छोटे बालकों को भी ३ मासे से १ तोले तक की मात्रा से दे सकते है। अर्क पीने में किसी प्रकार की अरुचि या ग्लानि नहीं होती।

८. पुनर्नवादि क्वाथ में सभी औषधियां रक्त शोधक भी हैं अतएव इसके अतिरिक्त २१ दिन तक सेवन से, पुराने रक्तदोष में ४२ दिन तक पथ्यपूर्वक पीने से रक्त

के सारे ही विकार दूर हो जाते हैं। प्रातः सायं दो बार अवश्य पीना चाहिए।

६. यदि पित्त प्रधान शोथ हो तो इस क्वाथ में अर्क सौंफ तथा अर्क मकोय २-२ तोले मिलाकर पीवें। क्वाथ को शीतल कर लें अथवा इस क्वाथ का अर्क पीवें।

१०. क्वाथ को चिरस्थायी रखने की व्यवसायिक परिपाटी आजकल फार्मेसियों ने स्वीकार करली है। इस व्यस्त जीवन, नागरिक रहन संहन में क्वाथ निर्माण का अवकाश कहाँ है? क्वाथ को चिरस्थायी रखने के लिए सेलिसिलिक एसिड (Acid Salicylic) ४ रत्ती प्रति-बोतल में मिलाना चाहिए। गर्म क्वाथ में मिलाने से एसिड घुल जाता है। यद्यपि रासायनिक पदार्थ हृदय, मस्तिष्क व रक्त को हानि पहुँचाते हैं। थोड़ी मात्रा में मिलाने से हानि की सम्भावना कम रहती है। कुछ फार्मेसी लोहवाणसत्व भी मिलाती है। परन्तु इन सबका प्रयोग हानिप्रद ही रहता है, बाजार में ये क्वाथ "प्रवाही क्वाथ" के नाम से प्राप्त होते हैं।

पथ्यापथ्य—इस क्वाथ के सेवन काल में सभी प्रकार के अम्ल, नीबू, सन्तरा, अनन्नास, खट्टा अनार, टमाटर, इमली, दही, मठ्ठा, सिरका, अचार, कांजी, वासी भोजन, सभी प्रकार के नमक, अरवी, भिण्डी, रतालू, कटहल, केला, उड़द की दाल, चावल, अण्डा, मांस, मछली आदि दुर्जर, विष्टम्भी, आमोत्पादक, दुष्पाच्य, वातकफोत्पादक अन्नपान व शाक और फल नही सेवन करना चाहिए। मैथुन, पूर्व की वायु, कुसंगति और पापिष्ठ।

पथ्य के रूप में—गेहूं, जौ, साठी चावल, कंगनी, सामक, परवल, लौकी, तोरई, टिंडे, मटर, पपीता, मकोय फल, बथुआ, मेंथी, पालक, चौलाई, करेला, ककोड़ा, हुल-हुल व मकोय के पत्तों का शाक, मूंग, मसूर, मुनक्का, बादाम, चिरौंजी, नारियल आदि पदार्थ सेव्य हैं। ब्रह्मचर्य, इन्द्रियों का संयम, धर्माचरण सदा करना चाहिए। सुपाच्य, आमनाशक, मूत्रल व अग्निदीपक पदार्थ सदा हितावह हैं। अन्य पथ्यापथ्य चिकित्सक की सम्मति के अनुसार करना चाहिए।

अन्य औषधियों का सहयोग—उक्त क्वाथ के सेवन के साथ-साथ पुनर्नवा मण्डूर, यकृदरिलोह, शिलाजतु, लोह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, अर्क मकोय, अर्क पुनर्नवा, अर्क झाऊ व फरास, अर्क दशमूल आदि का वैद्य के आदेश से यथासमय प्रयोग करना चाहिए।

इस क्वाथ का प्रभाव—

(क) औषधि कल्पना के अनुसार पुनर्नवादि क्वाथ साधारण प्रतीत होता है परन्तु अनुभव साक्षी है कि सभी पैथियों की चिकित्सा से निराश, व्यर्थ के अन्धाधुन्ध व्यय से विह्वल परेशान रोगियों पर इस क्वाथ ने चमत्कारिक गुण दिखाया है। जिसने पथ्यपूर्वक इस क्वाथ को पिया है वह रोगमुक्त हो गया है।

(ख) समस्त देह यन्त्रों, सेन्द्रिय व निष्क्रिय विषों, रक्तमांद्य, मेदादि धातुओं की शुद्धि और कार्यक्षमता को बढ़ाता है, विकारी पदार्थों को रोम कूपों व देहस्रोतों द्वारा देह से बाहर निकाल कर स्वास्थ्य संवर्धन में सहायक होता है। औषधियां जितनी शुद्ध व नवीन होंगी, लाभ भी उतना ही शीघ्र होता है।

पुनर्नवा का परिचय—

उक्त क्वाथ का मुख्य घटक पुनर्नवा है। इसके विषय में पूर्ण जानकारी न होने से वैद्यों को पंसारियों की शिष्यता करनी पड़ती है। वे जैसी भी सड़ी, गली, पुरानी, नकली व असली पुनर्नवामूल दे दें उसी पर सन्तोष करना पड़ता है। यथार्थ में पुनर्नवा के विषय में अनेक मत हैं।

१. कुछ वैद्य श्वेत व लाल सांठ को ही पुनर्नवा स्वीकार करते हैं। बाजार में इसी की जड़ सूखी हुई प्राप्त होती है, श्वेत पुनर्नवा स्वल्प मात्रा में मिलता है।

२. अन्य वैद्य विषखपरा नामक वर्षाकाल में उत्पन्न छत्तेदार, पुनर्नवा जैसा गुण धर्म रखने वाली बूटी को ही पुनर्नवा कहते हैं।

३. मेरा व अनेक वैद्यों का अनुभव है कि सांठ से मिलते जुलते पत्तों वाली कुछ नुकीले व छोटे कंगूरे वाले पत्तों से युक्त, लाल वर्ण के पत्र डंडी व प्रतान वाली, छोटी मूली के समान टूटने वाली जड़ से युक्त वर्षाकाल अर्थात् श्रावण, भाद्रपद में पूर्ण यौवन को प्राप्त यह पुनर्नवा शीतकाल पर्यन्त सप्रतान रहता है, ग्रीष्म के आने पर केवल मूलमात्र शेष रहता है, आषाढ़ में मेघोदय या प्रथम वर्षा होने पर शीघ्र ही अंकुरित व पल्लवित

—शेषांश पृष्ठ २६७ पर देखें।

वत्सकादि क्वाथ

डा० जगदीश चन्द्र असावा बी. ए., ए., एम. बी. एस.

ग्रन्थ प्रमाण—भैषज्य रत्नावली अतिसार चिकित्सा प्रकरण में इस क्वाथ का उल्लेख किया गया है—

सवत्सकः सातिविषाः सविल्वः
सोदीच्य मुस्तश्च कृतः कषायः ।
सामे सशूले सह शोणिते च
चिर प्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे ॥

अर्थात् वत्सक, अतिविषा, बिल्व, सुगन्धवाला एवं मुस्तक इनका क्वाथ-आमातिसार, शूल सहित अतिसार, रक्तयुक्त अतिसार तथा चिरकालीन अतिसार में हितकारी होता है। इस संक्षिप्त वर्णन में आमसहित, शूलसहित, रक्त सहित तथा चिरकालीन शब्दों से सहज में ही वैद्य समुदाय का ध्यान अतिसार की अपेक्षा प्रवाहिका (Dysentery) रोग की ओर आकृष्ट हो जाता है।

घटक वर्णन—

१. वत्सक—साधारण भाषा में कुटज या कुड़ा नाम से प्रसिद्ध हैं। वृक्ष के कांड की त्वक तथा बीजों का औषधि रूप में प्रयोग किया जाता है। बीज इन्द्रयव या इन्द्रजौ नाम से जाने जाते हैं।

गुण—रूक्ष लघु, रस तिक्त कषाय, विपाक कटु, वीर्य शीत कफ पित्त शामक।

पाचन संस्थान पर प्रभाव—दीपन, स्तम्भन, अर्शोघ्न तथा कृमिघ्न होता है।

इन्द्र यवं त्रिदोषघ्नं संग्राहि कटु शीतकम् ।
ज्वरातिसार रक्तार्शः कृमि विसर्प कुष्ठनुत ।
दीपनं गुद कीलास्त्र वातास्त्र श्लेष्म शूलजित ॥

(भावप्रकाश निघंटु)

अर्थात् इन्द्रजौ त्रिदोष नाशक, संग्राही, कटु, रस शीत वीर्य होते हैं। ज्वरातिसार, रक्तार्श, कृमिरोग, विसर्प, कुष्ठ रोगहर होते हैं। ये दीपन, अर्श रोग, वातरक्त, श्लेष्म तथा शूल रोग शामक होते है। रासायनिक दृष्टि से कुटज में सक्रिया क्षाराभ Kurchin तथा Kurchicin होते है। यह क्षाराभ प्रवाहिकाहर (Anti Dysenteric) होते है।

२. अतिविषा—जन साधारण की भाषा में इसको अतीस कहते हैं। गुण–लघु रूक्ष, रस–तिक्त कटु, विपाक कटु वीर्य उष्ण।

विषा सोष्णा कटुस्तिक्ता दीपनी पाचनी हरेत् ।
कफ पित्तातिसाराम विष कास वमि क्रिमीन ॥

—भाव प्रकाश निघण्टु

अर्थात् यह दीपन पाचन, छर्दि निग्रहण, ग्राही, कफज एवं पित्तज अतिसार, आमातिसार, विषहर तथा कृमि नाशक है।

रासायेनिक संगठन—एटीसिन नामक प्रधान क्षाराभ, एकोनाइटिक एसिड, टेनिक एसिड, पेक्टीन, स्टार्च, वसा तथा शर्करा आदि तत्व होते है। जो कि आंत्र को ... प्रदान करते है ग्राही होते है। आंत्र के अन्तःस्तर ... आलेप (Coat) कर व्रण की रक्षा करती है।

३. विल्व—साधारण भाषा में वेल नाम से ... है। पाचन संस्थान पर कार्य कर ग्राह्य अंग अपक्व फल मज्जा है। भाव प्रकाश के अनुसार—

श्रीफलस्तुवरस्तिक्तो रूक्षोऽग्नि पित्त कृत ।
वात श्लेष्माहरी बल्यो लघुरूष्णश्च पाचनः ।

गुण—रूक्ष लघु, रस-कषाय तिक्त, विपाक-कटु वीर्य, उष्ण, कफ वात शामक, कर्म- दीपन, पाचन, ग्राही होता है। इसके अतिरिक्त रक्त स्तम्भन, ... भी होता है। अग्निमांद्य, प्रवाहिका एवं ग्रहणी में ... लाभकारी होता है। Indian Pharmaceutial Co[illegible] 1953 में इसके सम्बन्ध में कहा गया है—

Unripe or half ripe Bael is astringent, ... stive, Stomachic, and demulcent. These ... make Bael an ideal rremedy for ... and chronic diarrhoca and dysentery.

४. सुगन्ध वाला—प्रचलित नाम - तगर—... मूल। गुण-मधुर, स्निग्ध, रस-तिक्त मधुर कषाय, ... कटु, वीर्य-उष्ण।

त्रिदोष शामक, शूल प्रशमन तथा मृदुरेचन, अग्निमांद्य, आनाह, उदरशूल आदि में लाभकारी।

५. मुस्त—प्रचलित नाम–मोथा या नागरमोथा, ग्राह्यांग, मूल। गुण-लघु रूक्ष। रस–कटु तिक्त कषाय। विपाक–कटु, वीर्य, उष्ण, दीपन, पाचन, ग्राही, तृष्णा, निग्रहण, तथा कृमिनाशक होता है। अरुचि, वमन, अग्निमांद्य, अजीर्ण, तृष्णा तथा कृमिरोगनाशक।

गुण धर्म (Pharmacology)—

घटकों के पृथक-पृथक गुण धर्म ही सम्मिलित रूप से वत्सकादि क्वाथ के गुण धर्मो का निर्धारण करते हैं। संक्षेप में यह क्वाथ—

दीपन, पाचन, ग्राही, आमनाशक, रक्त स्तम्भक, कफ वात शामक तथा कृमिनाशक होता है।

पाचन संस्थान पर मुख्य रूप से आंत्रों पर इसकी क्रिया होती है। यह आंत्रों के व्रणों का रोपण करता है तथा उसको प्राकृतिक क्षमता (Natural flora) प्रदान करता है। आंत्र की आन्तरिक कला (internal membrane) का स्नेहन कर वाह्य आघात से रक्षा करता है तथा मल सरलता से सरण कराता है। वातानुलोमक (Carminative) होने से वात (वायु) का अधोमार्ग द्वारा निष्कासन होता है।

वेदना स्थापन होता है। (Anodyne)

आमाशयोत्तेजक होता है। (Stomachic)

वत्सकादि क्वाथ का आमयिक प्रयोग
(Therapeutics)

ग्रन्थ वर्णन के अनुसार यह क्वाथ आमातिसार, रक्तातिसार या चिरकालीन अतिसार में हितकारी कहा गया है।

१. आमातिसार—जब आम सहित मल का सरण हो तब आमातिसार कहा जाता है। आमयुक्त मल का सरण मुख्य रूप से कफज अतिसार का लक्षण है।

आम शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की गई है—

जठरानल दौर्बल्याद विपाकस्तु यो रसः।
ह्याम संज्ञको सर्वं दोष प्रकोपणः॥

अर्थात् जठराग्नि की दुर्बलता से जो अपक्व रस का निर्माण होता है उसे "आम" कहते हैं।

प्रत्यक्ष हष्ट्या आम का सरण मुख्य रूप से प्रवाहिका में होता है। प्रवाहिका में वात एवं कफ का प्रकोप होता है। अतः उपरोक्त क्वाथ वात कफ शामक तथा दीपन, पाचन होने से अग्नि को वल मिलता है तथा आम का पाचन होता है। अतः क्वाथ आमातिसार में अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है।

२. रक्तातिसार—पित्त के अत्यधिक कुपित होने से अथवा नव दृष्टि से आंत्र में जव व्रण वन जाते हैं तव मल में रक्त का सरण होने लगता है। यह लक्षण मुख्य रूप से Amoebic and Bacillary dysentery में पाया जाता है। उपरोक्त क्वाथ रक्त स्तम्भन तथा ग्राही गुण के कारण इन अवस्थाओं में भी लाभ पहुँचाता है।

३. चिरकालीन अतिसार—रोग की उग्र (acute) अवस्था में मन्द वीर्य औषध सेवन अथवा अहिताहार सेवन से रोग चिरकालीन हो जाता है। प्रवाहिका में प्रायः चिरकालता का गुण पाया जाता है। अतः Subacute तथा Chronic होने पर जब आंत्रों में व्रण वन जाते हैं तव यह क्वाथ अपने अनुलोमन, मृदु सरण तथा पिच्छिल गुण के कारण शनैः शनैः रोग नाश करता है।

Dysentery, Giardiasis आदि रोगों में जब आधुनिक औषधियों के सेवन से पाचक रसों का निर्माण नहीं होता, Enzymes नष्ट हो जाते हैं, आंत्र की अन्तःकला व्रणित हो जाती है तब प्राकृतिक कार्य के पुनः प्राप्ति हेतु वत्सकादि क्वाथ का सेवन करते रहना अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है। मल से रक्त अप्रकट होने लगता है। मल पिंडीभूत हो जाता है, शनैः शनैः आम का सरण भी वन्द हो जाता है।

जब रोगी को विवंध तथा अतिसार का पुनरावर्तन होता है विवंध हो जाने से व्रण रोपण में वाधा पड़ती है क्योंकि शुष्क मल से घर्षण हो जाता है। ऐसी स्थिति में वत्सकादि क्वाथ मृदुता प्रदान कर मल को सरलता से सरण कराता है तथा रोग में शीघ्र सुधार होता है।

क्वाथ निर्माण, पथ्यापथ्य तथा अन्य व्यवस्था शास्त्र सम्मत विधि से करें।

नोट—वत्सकादि क्वाथ के नाम से यह क्वाथ भावप्रकाशकार ने भी आमातिसार चिकित्सा में दिया है। नागरमोथा के स्थान में वहाँ कचूर है यथा—

वत्सकाति विषा विल्वं मुस्तकं वालकं शटी।
अतिसारं जयेत्सामं चिरजं रक्त शूलजित॥

—विशेष सम्पादक

बृहत् मञ्जिष्ठादि क्वाथ

वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य

द्रव्य—मंजिष्ठा, मुस्ता, कुटज, गुडूची, कुष्ठ, शुण्ठि, भारङ्गी, कण्टकारी, वच, निम्बत्वक्, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, हरीतकी, बिभीतक, आमलक, पटोल, कटुकी, मूर्वा, विडङ्ग, असन, चित्रक मूलत्वक्, शतावरी, त्रायमाण, पिप्पली, इन्द्रयव, वसा, भृङ्गराज, देवदारु, पाठा, खदिर, रक्तचन्दन, त्रिवृत, वरुण, किरात, वाकुची, अमलतास, शाखोटक, बकायन, करञ्ज, अतिविषा, नेत्रवाला, इन्द्रायण मूल, यवास, सारिवा, पर्पट प्रत्येक समभाग लें।

—शार्ङ्गधर संहिता मध्यम खण्ड अध्याय २/१३९-१४४

निर्माण विधि—उपर्युक्त द्रव्यों का यवकुट चूर्ण यथावश्यक ले क्वाथ तैयार करें।

सेवन विधि—इसमें पिप्पली तथा गुग्गुल का प्रक्षेप कर सेवन करावें।

सेवन काल—प्रातः काल निहार मुंह एवं सायं काल।

लाभ—यह क्वाथ अठारह प्रकार के कुष्ठ, समग्र रक्त विकार, वातरक्त, अर्दित, विसर्प, उपदंश, श्लीपद, सुप्तिवात, पक्षाघात, मेदोविकार तथा नेत्र रोगों में प्रशस्त है।

स्मरणीय—१. आजकल इसका अर्क खींचकर भी प्रयोग करते हैं।

विधि—क्वाथ के द्रव्यों को ५ किग्रा० ले यवकुट कर १० लीटर जल में भिगो दें। २४ घण्टे के पश्चात् भवके में डालकर मन्दाग्नि से औटावें और ५ बोतल अर्क खींच लें।

मात्रा—३० मि०लि०। समय—प्रातः सायं काल।

अनुपान—मधु या शर्बत उन्नाव।

पथ्यापथ्य—इसके सेवन काल में लालमिर्च, गुड़, तैल, खटाई, लवण आदि हानिकारक पदार्थ न लें।

२. क्वाथ्य द्रव्यों को समान भाग लेकर यवकुट कर जल में भिगो दें। २४ घण्टे के अनन्तर मन्दाग्नि से क्वाथ करें। जब चतुर्थांशावशेष रहे, उतार कर छानलें। पुनः छने हुए क्वाथ को अग्नि पर चढ़ायें और मंद-मंद आँच से घन बनायें। इस घन की वटिकायें बना लें।

द्वितीय विधि—अर्क खींचने के पश्चात् भवके में शेष क्वाथ को छान लें और छाने हुए क्वाथ को आँच पर चढ़ा घन तैयार करें।

विशिष्ट ज्ञातव्य—इन बृहत् मंजिष्ठादि क्वाथ घन वटिकाओं का प्रयोग उक्त अर्क के साथ किया जाए तो वह विशेष गुणप्रद होता है, यह मेरा अनुभव है।

३. कुछ फार्मेसियां 'प्रवाही क्वाथ' का निर्माण करती हैं। तैयार प्रवाही क्वाथ का वैसा गुण दृष्टिगत नहीं होता, ऐसा भी मेरा अनुभव है।

अनुभूत गुण

यह सहस्रों बार का परीक्षित क्वाथ है। तत्काल प्रभावक रक्तशोधक है। इसके उपयोग से सर्वांग कच्छू, छाजन, सिध्म कुष्ठ, अरुण कुष्ठ, श्वित्र कुष्ठ, चकत्ते, फोड़े फुन्सियाँ आदि रक्त विकार एवं समस्त चर्म रोग नष्ट हो जाते हैं।

१. पामा कच्छु खुजली Scabies

लक्षण—श्वेत अरुण तथा श्याम वर्ण की कण्डू युक्त पिड़काएँ छोटी-छोटी कण्डू के साथ अल्प स्राव एवं दाह, पूयोत्पत्ति, आर्द्रता, वेदनायुक्त बहुसंख्यक, बहुधा गुह्य अवयव, हाथ तथा कूर्पर पर होने वाली।

भेद—

१. कफज कण्डू—इसमें रात को विशेष खुजली होती है।

२. पित्तज कण्डू—इसमें कण्डू दिन में विशेष होती है।

उपचार—१ प्रथम दिन घृत १०० ग्राम उष्ण दुग्ध में मिलाकर पिलायें। मध्याह्न में मूंग चावल से बनी खिचड़ी घृत के साथ खिलायें। सायंकाल केवल दुग्धपान करायें।

२. दूसरे दिन प्रातः काल इच्छाभेदी से विरेचन करायें।

३. तीसरे दिन निम्बबीज तैल में गन्धक मिलाकर अभ्यङ्ग करायें।

४. अन्तर औषधि—बृहत् मंजिष्ठादि क्वाथ पिलायें।

२. घटना १९५३ ई. की है। एक ३५ वर्षीय शिवन कोरी नामक रुग्णा को देखने का अवसर मिला। रुग्णा के शरीर पर अनेकों कापालाभ चिह्न स्पर्श में रूक्ष, अरुण वर्णन, कठिन, शरीर से बाहर उभरे हुए, सुई चुभने सी वेदनायुक्त, अल्पकण्डू वाले थे। कई चिह्न पीप-लसीका युक्त थे।

उपचार—सर्व प्रथम एक सप्ताह पर्यन्त रुग्णा को प्रातः काल प्रतिदिन १०० ग्राम की मात्रा में गोघृत दिया गया। एक सप्ताह के पश्चात् श्याम विरेचन दिया गया। फिर शुद्ध हरताल तवकी (शार्ङ्गधरोक्त विधि से शोधित) को अजा मांस में मर्दन करें। तत्पश्चात् कपड़मिट्टी की हुई शीशी में डाल, बालुका यन्त्र में रख सत्व उड़ा लें। विशेष देखो रस रत्न समुच्चय)।

मात्रा—१ से ४ चावल तक।

अनुपान—वृ० मंजिष्ठादि घन में लपेट कर दें। ऊपर से अर्क पिलावें या क्वाथ। इस प्रकार एक वर्ष तक उपचार चलाता रहा रुग्णा स्वस्थ हो गई। यह घटना कानपुर की है। इसी प्रकार का दूसरा रोगी पानागढ़ (वर्धमान) में ठीक किया। जनवरी १९५७ ई. में शिलांग (असम) में दो रोगी ठीक किये।

३. विचर्चिका, छाजन, उकौता (Eczyma)

यह दो प्रकार का होता से। एक स्रावी तथा दूसरा शुष्क। अनेकों स्रावी विचर्चिका के रुग्णों की चिकित्सा निम्न प्रकार कर सफलता प्राप्त की है—

लक्षण—स्रावी विचर्चिका में सर्व प्रथम चर्म पर छोटे छोटे दाने निकलते हैं, जो गहरे रक्ताभ भूरे रंग के होते हैं। दाने फूटने पर पीव निकलती है। दाह एवं खुजली बहुत होती है। पीव जहाँ जहाँ लग जायेगा वहीं उकवत बन जायेगा। पीव जमकर खुरण्ड-पपड़ी बन जाती है, उसी पपड़ी के नीचे जल सदृश पूय उत्पन्न हो जाती है।

उपचार—सर्व प्रथम वमन विरेचनादि से शोधन करावें, स्वेदन परमावश्यक है। रक्तमोक्षण भी करावें। तत्पश्चात्—वृहद् मंजिष्ठादि घन १ चणक प्रमाण, माणिक्य रस १२ मि.५ ग्राम, दोनों को मिलाकर वृहद् मंजिष्ठादि क्वाथ या अर्क के साथ दिन में दो बार दें।

स्वेदन विधि—एक पकी ईंट को लेकर आग में गरम करें कि लाल हो जाये। फिर इस ईंट पर गोमूत्र थोड़ा-थोड़ा डालते रहें। यह वाष्प विर्चाचिका पर लगाते रहें। ऊपर वस्त्र से ढक दें। गोमूत्र एक लीटर होना चाहिये। पीछे पंचगुण तैल (सि. यो सं.) लगावें।

४. श्वित्र कुष्ठ किलास (Leukodarma)

यह व्याधि प्रसिद्ध है। विशेष परिचय देना अनावश्यक हैं। अयः उपचार ही लिखते हैं—शरीर का शोधन करें। पीछे श्वित्रारि रसायन, १ ग्राम की मात्रा में क्वाथ के साथ दिन में दो बार प्रातः सायं काल देते रहें। श्वेत दागों पर श्वित्रारि लेप लगाते रहें।

५. जीर्ण शीतपित्त

रोगी कुष्ठी के समान हो जाता है। कण्डू तो इस रोग का प्रधान लक्षण है ही समस्त शरीर का चर्म हाथी के चर्म के समान हो जाता है। ऐसी अवस्था में शरीर शोधनोपरान्त क्वाथ पिलाते रहने से पूर्ण लाभ हो जाता है। यदि साथ में मल्ल चन्द्रोदय दिया जाए तो सोने में सुगन्ध समझो।

६. वातरक्त

वातदोष रक्त दूष्य के संयोग से हुआ यह रोग इस क्वाथ से शान्त हो जाता है। साथ में गन्धक रसायन ५०० मि.ग्राम तथा माणिक्य रस १२५ मि.ग्राम दें।

७. जीर्ण ध्वजभंग उपदंश

इस रोग में शिश्नेन्द्रिय सड़कर गिर जाता है। इस क्वाथ के साथ सवीर वटी (सि. यो. सं.) दीजिए, पूर्ण लाभ होगा। शतकृत अनुभूत है।

८. गलतकुष्ठ

इसका प्रमुख लक्षण स्पर्श नाश है। फिर धीरे-धीरे हाथ पैर की अंगुलियां गिर जाती हैं। ऐसे कुष्ठ रोगी तीर्थों, गली कूचों और मन्दिरों के सामने एवं स्टेशनों पर भीख मांगते देखे जा सकते हैं।

उपचार—शरीर संशोधनोपरान्त इस क्वाथ के साथ आरोग्य वर्धनी वटी का व्यवहार करायें। कानपुर में १९५३ ई. में २ रोगी ठीक किये, पानागढ़ (वर्धमान) में एक रोगी ठीक किया।

९. चर्मरोग

समस्त चर्म रोगों पर इस क्वाथ का अकेले या चर्म रोग नाशक औषधों के साथ व्यवहार करें।

—वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य
मिसरी जि० भिवानी (हरियाणा)

महारास्नादि क्वाथ (शार्ङ्गधर संहिता)

रास्ना २ भाग, धमासा, खरैंटी, एरण्ड की छाल, देवदारू, कचूर, वच, वासा के पत्ते, सौंठ, हरीतकी, चव्य, नागरमोथा, पुनर्नवा की जड़, गिलोय, विधारा, सौंफ या सोया के बीज, गोखरू, असगन्ध, अतीस, अमलतास का गूदा, शतावर, पीपल छोटी, पियाबांसा (कटसरैया), धनियां, छोटी कटेली, बड़ी कटेली हरेक १-१ भाग।

इन सबका जौकुट चूर्ण करके रखलें। इसमें से १॥ तोला लेकर २० तोला पानी में काढ़ा करें। ५ तोला रहने पर छानकर इसमें सौंठ का चूर्ण या पीपल का चूर्ण या अजमोदादि चूर्ण १ माशा डालकर पी लें। या एक तोला एरण्ड स्नेह डालकर प्रातः सायं दो बार पीवें। या महायोगराज के साथ पीवें।

गुण—यह क्वाथ सर्व प्रकार के वात रोगों में खास तौर से पक्षाघात, आमवात, उरुस्तम्भ, गृध्रसी, अपतानक (टिटिर्नस), सर्वाङ्ग कम्प स्त्रियों के अनार्तव या कष्टार्तव में लाभ करता है।

महारास्नादि क्वाथ का मैं अनेक रूपों में प्रयोग करता हूं। जैसे महारास्नादि आसव, महारास्नादि अरिष्ट, महारास्नादि अर्क, महारास्नादि घृत, महारास्नादि घन और महारास्नादि तैल।

महाविषगर्भ तैल, (योग चिन्तामणि) सम्भालू के पत्ते, कड़वी तुम्बी के बीज, पुष्करमूल, असली कूठ, बच, भारंगी, शतावर, सौंठ, हल्दी, दारुहल्दी, लहसुन, विडंग, देवदारू का बुरादा, असगन्ध, अजमोद, काली मिरच, पीपलामूल, खरैंटी, रास्ना, प्रसारणी (खीप), सहजने के बीज या छाल, गिलोय, हाऊबेर, हर्र, कवांच के बीज, इन्द्रायण, सोया के बीज, शालपर्णी, पृष्णपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, अरलु की छाल, अरनि, पाढला की छाल, काश्मरी की छाल, वेलगिरी, गोखरू और शृंगिक विष हरेक ५-५ तोला। इनका जौकुट करके चतुर्गुण जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश जल रहने पर वस्त्र से छान लें। इस क्वाथ में तिल का तैल १ सेर, सरसों का तैल १ सेर, अण्डी का तेल अण्डी के पत्तों का रस १ सेर, धतूरे के पत्तों का रस १ सेर, भांगरे का रस १ सेर, भैंस के गोबर का रस १ सेर डालकर पकावें। तैल सिद्ध होने पर उतारकर छान लें। छानने के बाद कुछ गरम रहने पर ही हम १० तोला कपूर भी डालते हैं इससे सुगन्धित भी हो जाता है और गुण भी बढ़ जाता है। यह तेल हरे वर्ण का बनता है। इस तेल की मालिश करने के बाद साबुन से या गोबर से हाथ धोना चाहिए। मालिश के समय हाथ आंख नाक से नहीं लगाना चाहिए।

गुण—गृध्रसी, कमर का दर्द, उरःस्तम्भ, त्वचा की सुप्तता, सन्धिवात, आमवात और सर्वाङ्गवात की अच्छी औषधि है।

चन्द्रोदयवर्ति शार्ङ्गधर संहिता

शंखनाभि, बहेड़ा की मींग, हर्र की छाल, मैनसिल, पीपल छोटी, काली मिरच, कूठ कड़वा, घुड़वच हरेक समभाग लें।

विधि—शंखनाभि को पृथक कूट लें। बाकी सब चीजों को कूटकर कपड़छन करके शंखनाभि को मिला लें फिर बहेड़े की मींग को मिलाकर खरल में बकरी के दूध में घोटकर वर्ति बनालें या गोली बनाकर रख लें। सोते समय रात को और प्रातःकाल पानी में घिसकर सलाई से लगावें।

गुण—मांसवृद्धि, तिमिर, रतौंध और एक वर्ष के फूले को नष्ट करती है।

अनुभव मैं केवल रोहों पर बर्तता हूं अच्छा लाभ करती है। अनुमान है रतौंधी पर भी लाभ कर सकती है।

—श्री रघुवीर शरण शर्मा वैद्यरत्न
आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद वृहस्पति
ज्वार खेड़ा (बुलन्दशहर) उ० प्र०

महारास्नादि क्वाथ

प्राणाचार्य डा० श्री महेश्वर प्रसाद

रास्ना द्विगुणभागा स्यादेकभागास्ततः परे ।
धन्वयासबलैरण्डदेवदारुशटी वचाः ॥
वासको नागरं पथ्या चव्या मुस्ता पुनर्नवा ।
गु्ची वृद्धदारुश्च शतपुष्पा च गोक्षुरः ॥
अश्वगन्धा प्रतिविषा कृतमालः शतावरी ।
कृष्ण सहचरश्चैव धान्यकं बृहतीद्वयम् ॥
एभिः कृतं पिबेत्क्वाथं शुण्ठीचूर्णेन संयुतम् ।
कृष्णचूर्णेन वा योगराज गुग्गुलुनाऽथ वा ॥
अजमोदादिना वाऽपितैलेनैरण्डजेन वा ।
सर्वाङ्गकम्पेकुब्जत्वे पक्षाघातेऽववाहुके ॥
गृध्रस्यामामवाते च श्लीपदे चापतानके ।
अन्त्रवृद्धौ तथाऽऽध्माने जङ्घाजानुगतेर्दिते ॥
शुक्रामये मेढ्ररोगे वन्ध्यायोन्यामयेषु च ।
महारास्नाऽर्दिरारख्यातो ब्रह्मणा गर्भकारणम् ॥

संदर्भ ग्रंथ—शार्ङ्गधर संहिता, म.ख.अ. २ श्लो.९०-९६

घटक एवं तोल—

घटक	शास्त्रीय (प्राचीन) तोल	वर्तमान तोल
रास्ना असली (Pluchea lancedata)	५० तोला (२ भाग)	६०० ग्राम
दुरालभा (धमासा), खरैटी (बला), एरण्ड की जड़ छाल, देवदारु, कचूर, वच, वासक के पत्ते, सौंठ, हरड़, चाम, नागरमोथा, पुनर्नवा (सांठी) की जड़, गिलोय, विधारा, सौंफ, गोखरु, असगन्ध, अतीस, अमलतास का गूदा, शतावर, पिप्पली, पियाबाँसा, धनियाँ, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी ।	प्रत्येक १-१ तो. (सब द्रव्य मिलाकर एकत्र एक भाग) [अर्थात् २५ तोला]	प्रत्येक १२ ग्रा. (सब मिलाकर कुल ३०० ग्रा.)

निर्माण विधि—

सर्वप्रथम उपर्युक्त समस्त औषधि द्रव्यों को एकत्र लेकर जौकुट चूर्ण करें। पश्चात् चूर्ण का अठगुना जल डालकर मन्द अग्नि पर विधिवत् क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष बचने पर उतार कर छान लें।

सेवन विधि—

१ से २ तोला क्वाथ प्रतिदिन दो बार पिलायें। रोगानुसार इसके साथ अजमोदादि चूर्ण, सौंठ चूर्ण अथवा पिप्पली चूर्ण या एरण्ड तैल अथवा योगराज गुग्गुल सेवन करावें। अर्थात् आमवात में सौंठ चूर्ण १ से ३ माशा के साथ, श्लीपद में पिप्पली चूर्ण १ से २ माशा के साथ सर्वांगकाय एवं वात में योगराज गुग्गुल १ से २ गोली के साथ, आध्मान में अजमोदादि चूर्ण ३ माशा के साथ तथा गृध्रसी एवं अण्डकोष वृद्धि में एरण्ड तैल १ तोला का प्रक्षेप देकर सेवन करावें।

गुणावगुण—

यह क्वाथ विविध वात व्याधि की तेज अवस्था में अधिक लाभप्रद है। सर्वांगवात, कम्पवात, अर्धांगवात, गृध्रसी, कमर, जांघ आदि में भ्रमण करता हुआ वात विकार तथा तज्जन्य वेदना, कनकनी, झनझनी एवं टीस, श्लीपद, आमवात, अन्त्रवृद्धि, पक्षाघात, अपतानक, कुब्जवात, मूत्राशय एवं वीर्यग्रन्थि में अवस्ति वात, आध्मान, स्त्रियों के योनि रोग, योनि विकृति एवं वन्ध्यापन आदि को दूर करने की यह उत्तम औषधि है। इसके अतिरिक्त यह अर्दित वात (Facial paralysis), अपबाहुक, लकवा, चोट, मोच में भी यह परम गुणकारी है।

इसके सेवन से किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं है और न यह किसी भी प्रकार की विषैली प्रतिक्रिया ही उत्पन्न करती है। अतएव इसे बालक-वृद्ध, युवा, प्रसूता तथा गर्भवती सभी को सेवन करा सकते हैं।

पथ्यापथ्य—गेहूं की रोटी, चने की रोटी, सत्तू तथा दाल, मूंग की दाल, घी, गोदुग्ध, परवल, नारंगी, सेव,

गाजर पथ्य में दें तथा वातवर्द्धक चीजें, दही, मैथुन, दिवाशयन, खेसारीकी दाल आदि पूर्णरूपेण वर्जित कर दें।

घटकों के गुण धर्म—

अनेक वात-व्याधि के रोगियों पर परीक्षण एवं सूक्ष्म निरीक्षण के उपरान्त महारास्नादि क्वाथ को अकेले सौंठ चूर्ण के साथ कमर दर्द, आमवात, गृध्रसी, जांघ के दर्द एवं अण्डकोष में दर्द में ७५ प्रतिशत गुणकारी पाया। आमवात तथा गृध्रसी में जब इसको योगराज गुग्गुलु एवं सौंठ चूर्ण सहित कागजी नींबू के स्वरस १ तोला के साथ प्रातः सायं लगभग १५ दिनों तक सेवन कराया गया तो आशातीत अर्थात् ९५ प्रतिशत लाभ प्राप्त हुआ। पक्षाघात, आध्मान, श्लीपद, मूत्राशय एवं शुक्राशय की विकृति में भी उपर्युक्त प्रकार से सौंठ चूर्ण सहित १ तोला कागजी नींबू के रस के साथ इस क्वाथ का विधिवत् सेवन कराने से उत्तम लाभ पहुँचता है। अवसाद की अवस्था में सौंठ चूर्ण सह महारास्नादि क्वाथ का सेवन पूर्ण गुणकारी है। स्त्रियों के योनिरोग, वन्ध्यापन में इस क्वाथ को लक्ष्मणा बूटी चूर्ण १ से ३ माशा के साथ सेवन कराने पर आंशिक लाभ प्राप्त होता है। अर्दित वात, लकवा, चोट, मोच, गठिया, सन्धिशोथ आदि में इस क्वाथ का सेवन एरण्ड तैल के साथ करने से अपेक्षित लाभ होते देखा गया है।

वातनाड़ियाँ जो ऐच्छिक मांसपेशियों को संचालित करती हैं तथा संज्ञा प्रदान करती हैं, उनमें ठण्ड लग जाने, स्नायुविक विकृति होने उपदंश, मधुमेह, प्रमेह आदि के कारण नाड़ियाँ दूषित होने से पक्षाघात हो जाता है तो महारास्नादि क्वाथ के नियमित सेवन से तथा साथ में योगराज गुग्गुलु चन्द्रप्रभा वटी एवं शिलाजीत के सेवन से प्रचुर लाभ होता है।

शरीर के किसी भी अंग-अवयव में चोट लगने से पूया की उत्पत्ति हुई हो अथवा रक्त ने जमकर व्रणशोथ या विद्रधि का रूप धारण कर लिया हो तो इस क्वाथ के सेवन से उत्तम लाभ पहुँचता है। यह जमे रक्त का संचार करता है तथा पूययुक्त कीटाणुओं को ही नहीं वरन् तज्जन्य विष को भी नष्ट कर दूर हटाता है।

—प्राणाचार्य डा० महेश्वर प्रसाद 'उमाशंकर'
जी.ए.एम.एस., एम.एस्-सी.ए., डी.लिट्.ए.,
महेश्वर विज्ञान भवन, मंगलगढ़ (समस्तीपुर)

क्षुद्रादि क्वाथ (भै०र० ज्वर चिकित्सा प्रकरणे)

घटक—छोटी कंडाई, नीम की अंतर छाल, गिलोय, सौंठ, पोहकर मूल, उपरोक्त पाँचों द्रव्यों को तीन-तीन माशा लेकर कूटकर एक पाव जल में क्वाथ करके एक छटांक शेष रहे तब छानकर बिना ही किसी प्रक्षेप के सुखोष्ण पीने से कास, श्वास, अरुचि, पार्श्व शूल सहित वात श्लैष्मिक सन्निपात ज्वर, फुफ्फुसों में रक्त का जमाव (लोबर न्यूमोनिया) और फुफ्फुसों में श्लेष्मा का जमाव (ब्रोंको न्यूमोनिया), उरस्तोय (प्ल्यूरिसी) प्रतिश्याय ज्वर (इंफ्लूएन्जा) आदि में महान उपकारक होता है।

मात्रा—ऊपर लिखित १ मात्रा है। इसी प्रकार दिन में दो बार या तीन बार पिलाना चाहिए।

विमर्श—यह क्वाथ हमारा हजारों बार का अनुभूत है। अनेक रसायनों के साथ यह अनुपान रूप में भी महान उपकारक सिद्ध हुआ है।

न्यूमोनिया में यह क्वाथ अभ्रक भस्म और विषाण भस्म के साथ और शुष्क उरस्तोय में विषाण भस्म तथा जलीय उरस्तोय में यवक्षार मिलाकर देना चाहिए। इंफ्लूऐंजा में अष्टांग अवलेह के साथ देना हितावह है।

भैषज्य रत्नावली में दूसरा क्षुद्रादि क्वाथ अष्टविध ज्वर शान्त्यर्थ इसी ज्वराधिकार में लिखा है उसका योग इस प्रकार है—

छोटी कंडाई की जड़ की छाल, चिरायता, सौंठ, गिलोय, पोहकर मूल। इसको भी हम सर्व प्रकार के ज्वरों पर देते हैं और शरद ऋतु में आने वाले मलेरिया ज्वर में इसे करंजादि वटी के अनुपान के रूप में देते हैं जो शत प्रतिशत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

इसी प्रकार भै० र० में एक तीसरा क्षुद्रादि क्वाथ और है जो इसी ज्वराधिकार में सन्निपात ज्वरों पर लिखा है, मगर हम उपरोक्त दो क्वाथों का ही प्रयोग करते हैं। और उनके जो गुण हमारे अनुभव में आये हैं वही लिखे हैं।

—श्री गंगाचरण शर्मा आयु०
गौशाला रोड, भिवानी (हरियाणा)

अवलेह चिकित्सा पर हमारा अनुभव

श्री पं० नन्दकिशोर शर्मा वैद्यरत्न

शरीर को जिस समय वल तथा पुष्टि की आवश्यकता हो उस समय उसे अवश्य प्राप्त होने से शरीर व्यापार सम्यतापूर्वक जारी रहता है। चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य भी यही है कि शरीर में जब-जब जिस वस्तु की कमी हो तब-तब विविध प्रयत्न द्वारा वे द्रव्य उसमें पहुँचा दिये जावें।

मोदक तथा अवलेह चिकित्सा में मुख्य बात यह है कि कोमल प्रकृति वाले भी इसे ग्रहण कर लेते हैं और ये शरीर के भीतर पहुँचकर धातुओं में मिलकर रोगों को दूर करती हैं।

अतः इस बहते हुए प्रवाह में पूज्य त्रिवेदी जी द्वारा जो सिद्ध कहे जाने वाले प्रयोग हमें प्राप्त हुए तथा जिनकी परीक्षा की जा चुकी है वे शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगांक के पाठकों को भेंट स्वरूप प्रस्तुत हैं। आशा है धन्वन्तरि के सुज्ञ पाठक इनसे लाभ उठावेंगे।

१. वासावलेह

अडूसे का स्वरस १ किलो, शकर ८० ग्राम, पीपल का चूर्ण ८० ग्राम, शुद्ध घृत ८० ग्राम मिलाकर धीरे-धीरे पाक करें। जब गाढ़ा होने लगे तब उतार लेवें। शीतल होने के पश्चात् उत्तम शहद ३०० तोले मिलाकर रख लेवें।
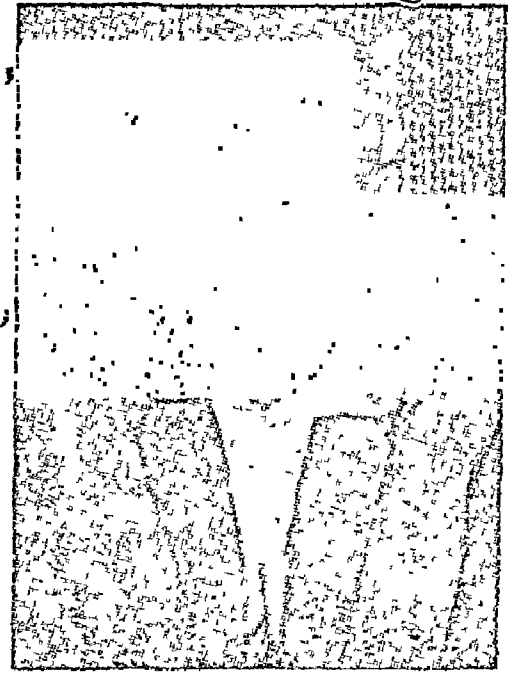
मात्रा—१० या २० ग्राम तक वयानुसार।

रोग नाश—तरुण कास तथा श्वास पर सद्यः लाभप्रद है, इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा की प्रथम अवस्था में लाभदायक है। तथा श्वास, पार्श्व शूल, हृदयशूल, रक्तपित्त और ज्वर को नष्ट करता है।

२. अष्टांगावलेह

कालाजीरा, जवासा, मिर्च, सौंठ, पीपल, काकड़ा सिंगी, पोहकर मूल, कायफल आठों द्रव्य समान भाग लेकर प्रथक-प्रथक कूट पीसकर एकत्र मिलावें।

मात्रा—२ ग्राम से ५ ग्राम तक रोगानुसार।

अनुपान—शहद एवं अदरक स्वरस से।

रोगनाश—कास, श्वास, सन्निपात में लाभदायक है। नियमानुसार पथ्य पालन आवश्यक है।

३. पाचकावलेह

निम्बू का स्वरस १ किलो, अमलतास की फली का गूदा ५०० ग्राम, हींग, काली मिर्च, पीपल, सौंठ प्रत्येक २०-२० ग्राम, काला नमक, सैंधा नमक, काला दाना, सफेद जीरा प्रत्येक ५०-५० ग्राम, मुनक्का तथा किशमिश १००-१०० ग्राम।

निर्माण विधि—निम्बू के रस में अमलतास का गूदा डालकर हाथ से मसलकर छान लें। तदुपरांत जीरा तथा हींग को घी में भून लें। कालादाना को बालू रेत में भूनें। पश्चात् सिल पर पीस लेवें। मुनक्का तथा किशमिश की लुगदी बनाकर समग्र द्रव्यों को निम्बू के रस में डाल देवें।

इस औषधि को कांच या चीनी के पात्र में ही रखें।

गुण—स्वादिष्ट तथा पाचक है, मल को साफ लाता है, उदर सम्बन्धी कई रोगों में लाभप्रद है।

४. औदुम्बरावलेह

पके हुए गूलर के फलों का चूर्ण, गूलर की छाल, आम की गुठली (गिरी), जामुन की गिरी ५०-५० ग्राम, वंशलोचन, छोटी इलायची के बीज, धनियां, लाख, लोध्र प्रत्येक १५-१५ ग्राम।

निर्माण क्रिया—उत्तम मिश्री ५०० ग्राम लेकर चाशनी करें। जब अवलेह योग्य चाशनी हो जावे तब उपरोक्त प्रक्षेप द्रव्य चाशनी में मिलाकर अमृतवान में सुरक्षित रखें।

मात्रा—१० से २० ग्राम, अनुपान—गाय का दूध।

गुण—समस्त प्रकार के प्रदर को नाश करता है।

५. कूष्मांडावलेह

पेठा १ किलो इसे छिलकर घिशनी पर घिस लेवें।

प्रक्षेप द्रव्य—जायफल, जावित्री, लौंग, छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, कमलगट्टे की मिंगी प्रत्येक २०-२० ग्राम लेकर कपड़छन कर लेवें।

तदनन्तर बादाम गिरी को जल में भिगोकर ऊपर का छिलका निकालकर पिठ्ठी बना लेवें। इसके पश्चात् मावा १ किलो लेकर मावा तथा बादाम की पिठ्ठी एवं पेठा के कल्क को प्रथक-२ घृत में भून लेवें। पुनः तीनों को एकत्र कर घृत में अग्नि पर हल कर लेवें। दुगनी मिश्री की चाशनी बनाकर मावादि डालकर नीचे उतारकर प्रक्षेप द्रव्य डाल देवें।

मात्रा—१० या २० ग्राम तक शक्ति अनुसार।

अनुपान—गोदुग्ध।

गुण—चक्कर आना, शोप, अम्लपित्त आदि नष्ट होकर धातुक्षय को दूर करता है। अग्निवर्धक है।

६. बाहुशालो गुड़

कचूर, इन्द्रायण, मोथा, सोंठ, वायविडंग, हरड़, चीता छाल निशोथ, चव्य, दन्तीमूल, गोखरू प्रत्येक १००-१०० ग्राम, भिलावा शुद्ध किया हुआ ६०० ग्राम, विधायरी ५०० ग्राम, जिमीकन्द १। किलो, जल २५ किलो में डालकर पकावें। चतुर्थांश रहने पर उतार कर छान लेवें। गुड़ १३ किलो, निशोथ, चव्य, जिमीकंद, चीता छाल, प्रत्येक का चूर्ण १५०-१५० ग्राम, छोटी इलायची एवं दालचीनी २००-२०० ग्राम।

पूर्व निर्मित क्वाथ को छान गुड़ मिला पाक करें पाक सिद्ध होने पर उत्तार कर प्रक्षेप द्रव्य का वस्त्रपूत चूर्ण मिला काम में लावें।

मात्रा—१ से ३ तोला तक वय तथा शक्ति अनुसार।

अनुपान—जल या दूध।

गुण—अर्श, प्रमेह, पांडु तथा ग्रहणी को नाश करता है।

—श्री पं० नन्दकिशोर शर्मा वैद्यरत्न
प्रमुख प्रतिनिधि-युग निर्माण योजना
मु० पो० आगर (मालवा) वाया-उज्जैन (म०प्र०)

अगस्त्य हरीतकी

आयुर्वेद वाचस्पति डा० श्री जहानसिंह चौहान

औषधि का नाम—अगस्त्य हरीतकी।

ग्रन्थ का नाम—भैषज्य रत्नावली।

रोगाधिकार का नाम—कासरोगाधिकार।

	घटक द्रव्य	शास्त्रीय तोल	वर्तमान तोल	मन्तव्य
१	हरीतकी (बड़ी)	१०० नग	१०० नग	
२	जौ	४ सेर	३,७३० ग्रा.	
३	दशमूल	११ सेर	११६६ ग्रा.	
४	चित्रक	१० तोला	१०० ग्रा.	
५	पिपलामूल	१० तोला	१०० ग्रा.	
६	अपामार्ग	१० तोला	१०० ग्रा.	
७	कपूर	१० तोला	१०० ग्रा.	
८	कौंच के बीज	१० तोला	१०० ग्रा.	
९	शंखपुष्पी	१० तोला	१०० ग्रा.	
१०	भारंगी	१० तोला	१०० ग्रा.	
११	गजपीपल	१० तोला	१०० ग्रा.	
१२	खरैंटी	१० तोला	१०० ग्रा.	
१३	पुष्करमूल	१० तोला	१०० ग्रा.	
१४	जल	४० सेर	३७ लीटर	
१५	घृत	४० तोला	४०० ग्रा.	
१६	तैल	४० तोला	४०० ग्रा.	
१७	गुड़	६। सेर	५,८३३ ग्रा.	
१८	मधु	४० तोला	४०० ग्रा.	
१९	पिप्पली चूर्ण	२० तोला	२०० ग्रा.	

निर्माण प्रक्रिया—

प्रथम सारिणी में दी हुई मात्रानुसार हरीत की (बड़ी) जौ, दशमूल, पिप्पली, पिप्पलामूल, अपामार्ग, कपूर, कौंच के बीज, शंखपुष्पी, भारङ्गी, गजपीपल, खरैंटी, पुष्करमूल यह सब द्रव्य एकत्र करें। बड़ी हरीतकी (हरें) तथा जौ को एक पोटली में बांधे और शेष औषधियों को मिलाकर अधकुटा करके दी हुई पानी की मात्रा में पकावें। साथ ही इसीमें उक्त पोटली को रख दें। जब हरें तथा जौ उबल जाये और क्वाथ तैयार हो जावे तो उतार लें। इस क्वाथ को छान लें और उबली हुई हरें इसमें मिलालें। तत्पश्चात् उसमें घृत एवं तैल गुड़ मिलोकर पकावें। अवलेह सिद्ध होने पर उसे ठण्डा करें, तत्पश्चात् उसमें मधु एवं पिप्पली चूर्ण मिलालें और सुरक्षित रख लें। यही शास्त्रीय विधि से निर्मित अगस्त्य हरीतकी' है।

शास्त्रीय दृष्टि से गुण प्रभाव—

यह अवलेह रसायन तथा बल वर्ण प्रदायक है। यह रसायन मृदु, विरेचक, कामोद्दीपक और अवस्था स्थापक है। आयुर्वेद में हरीतकी के गुण धर्म विस्तार से लिखे हैं।

मात्रा—१-१ हरड़+अवलेह।

सेवन काल—प्रातः सायं।

अनुपान—हरड़ सेवन कर अवलेह चाटें और ऊपर से गर्म जल या दूध पीवें।

संक्षिप्त द्रव्य गुण विवेचन—

हरीतकी—यह बल्य, मेघ्य, चक्षुष्य, दीपन, पाचन, अनुलोमन, मृदुरेचन, कृमिघ्न, हृद्य, शोणितस्थापन, कफघ्न, वृष्य, मूत्रल, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न एवं उत्तम रसायन है।

जौ—बल्य, मेघ्य, दीपन, पाचन, शीतवीर्य एवं पौष्टिक द्रव्य है।

दशमूल—बल्य, दीपन, पाचन, मृदुरेचन, ज्वरघ्न तथा रक्तशोधन है।

चित्रक—कटु रस, लघु रूक्षण तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य एवं कटु विपाकी है। वातकफ शामक एवं पित्तवर्धक है। यह दीपन, पाचन, पित्तसारक, संग्राही एवं कृमिनाशक है।

पिप्पलामूल—यह कटु रस, रूक्ष गुण, उष्णवीर्य एवं कटु विपाकी है। कफ वातशामक, पित्तकारक, दीपन, पाचन एवं मलभेदक है। उदर रोग, आनाह, कृमि, गुल्म, श्वास एवं क्षय नाशक है।

अपामार्ग—कटु तिक्त रस, लघु रूक्ष तीक्ष्ण गुण, उष्णवीर्य एवं कटु विपाकी है। कफवात शामक एवं कफ पित्त संशोधक है। यह दीपन, पाचन, रेचन, पित्तसारक तथा कृमिनाशक है। हृद्य, रक्तशोधक तथा रक्त.वर्धक है। मूत्रल, अश्मरीनाशक तथा मूत्राम्लता नाशक है।

कपूर—तिक्त, कटु, मधुर रस, लघु तीक्ष्ण गुण, शीत-

वीर्य एवं कटु विपाकी है। त्रिदोषनाशक, मुखशोधक, रुचिकारक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, हृदय उत्तेजक, कफनिःसारक, विषघ्न तथा अल्पमात्रा में वाजीकरण है।

कौंच के बीज—मधुर तिक्तरस, गुरु स्निग्ध गुण, उष्ण वीर्य एवं मधुर विपाकी है। त्रिदोष नाशक तथा परम वाजीकरण एवं बृंहण है।

शंखपुष्पी—कषाय, कटु, तिक्तरस, स्निग्ध, पिच्छिल, गुण रस, शीतवीर्य, मधुर विपाकी तथा मेध्य प्रभावक है। त्रिदोषनाशक तथा वातपित्त शामक है। यह मेध्य, स्वर-हितकारक सारक रसायन तथा कान्तिकारक है। आयुवर्धक बलवर्धक, अग्नि तथा वीर्य वर्धक है। यह रक्त स्तम्भक द्रव्य है।

भारंगी—कटु तिक्त, कषाय रस, लघु खर गुण, उष्ण-वीर्य, कटुविपाक, वातकफ शामक, रोचक, पाचक, दीपक एवं कृमिनाशक है।

गजपीपल—कटु रस, लघु, रूक्ष गुण, उष्णवीर्य तथा कटु विपाकी है। कफवात शामक, दीपन, पाचन तथा मलभेदक है। उदर कृमि नाशक है।

खरैंटी—शीतल, मधुर, बलकारक, कान्तिवर्धक, स्निग्ध तथा ग्राही है। वातपित्त, रक्तपित्त, रुधिर विकार तथा क्षयनाशक हैं।

पुष्करमूल—तिक्त, कटु रस, लघु. तीक्ष्ण गुण, उष्ण-वीर्य तथा कटु विपाकी है। यह वातकफ शामक, मस्तिष्क तथा नाड़ी उत्तेजक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, रक्तशोधक, कासनाशक, हिक्कानाशक, मूत्रजनन तथा वाजीकरण है।

घृत—यह रसायन, मधुर, नेत्रहितकारी, अग्नि प्रदीपक शीतवीर्य एवं वात पित्त नाशक है। उत्तम मेधा हितकारी, आयुवर्द्धक, बलकारी, भारी, स्निग्ध, वर्णक्षय एवं [illegible] नाशक है। गाय का घी इन गुणों के अतिरिक्त शीतल, कफनाशक, लावण्य, कान्ति, ओज एवं तेजवर्धक, राक्षसनाशक, आस्थापक, सुगन्ध प्रदायक है।

तैल—मेधा हितकारी, आयुवर्धक, बलवर्धक, स्निग्ध एवं कान्तिवर्धक है।

गुड़—वीर्यवर्धक, गुरु, स्निग्ध, वातशामक, मूत्रल, मेद, कफ, कृमि एवं बलवर्धक है। पुराना गुड़ लघु है।

मधु—वीर्यवर्धक, वात कफ शामक, मधुर, मेधा हितकारी, आयुवर्धक एवं बलकारी है।

अगस्त्य हरीतकी के गुण तथा उपयोग—

यह अगस्त मुनि का बताया हुआ उत्तम रसायन है। यह पांचों प्रकार के कास, श्वास, हिक्का, क्षय, विषम ज्वर, ग्रहणी, अर्श, हृद्‌रोग, अरुचि एवं पीनस रोग नाशक है। इसके सेवन से बलीपलित आदि जरा के चिह्न नष्ट होते हैं तथा वर्ण्य, आयु एवं बल की वृद्धि होती है।

अगस्त हरीतकी में हरीतकी की प्रधानता है। हरीतकी का प्रधान गुण यह है कि वह शरीर में उत्पन्न विजातीय पदार्थों का पूर्ण रूप से निष्काशन करती है और शरीर के प्रत्येक अंग की क्रियाशीलता को बढ़ाकर सुव्यवस्थित करती है। हरीतकी के प्रयोग से जब शरीर से विजातीय पदार्थों का निष्कासन हो जाता है तो जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है जिससे भूख खुलकर लगने लगती है। अपचन आदि दूर होकर संग्रहणी तथा अतिसार में उत्तम लाभ होता है।

यह औषधि रसायन विरेचक होने के कारण अर्श में विशेष उपयोगी है।

ऐसे रोगी जिन्हें निरन्तर मलावरोध बना रहता है उन्हें इससे विशेष लाभ होता है। उन्हें बिना किसी असुविधा के पेट साफ होता रहता है। न तो किसी प्रकार की मरोड़ होती है और न ही तकलीफ। इसके सेवन से १-२ दस्त खुलकर आ जाते हैं जिससे पेट साफ बना रहता है।

अगस्त हरीतकी चिकित्सा में एक उत्तम काम यह है कि इस औषधि का प्रयोग चाहे कितने समय तक क्यों न किया जाय पर किसी प्रकार की हानि की लेशमात्र भी सम्भावना नहीं रहती है।

यह औषधि वीर्य को गाढ़ा करती है जिससे वीर्य का स्खलन विलम्ब से होता है और स्त्री सम्भोग में पर्याप्त आनन्द आता है। वीर्य वृद्धि से शरीर की कान्ति बढ़ती है। शरीर का वजन पर्याप्त बढ़ जाता है। रक्तसंचार में पर्याप्त सुधार हो जाता है जिससे मस्तिष्क में अधिकाधिक रक्त पहुँचता है, अच्छी नींद आती है।

इस का सेवन निरन्तर कुछ समय तक किया जाय तो उत्तम लाभ होता है। कास, श्वास, यक्ष्मा में इसके उपयोग से विशेष लाभ होता है।

—आयुर्वेद वाचस्पति श्री डा० जहानसिंह चौहान
आयुर्वेद बृहस्पति, आयुर्वेद वारिधि, आयुर्वेदरत्न
चौहान आयुर्वेद निकेतन, नवी गंज (मैनपुरी) उ. प्र.

अमृत भल्लातक अवलेह

—प्राणाचार्य डा० महेश्वर प्रसाद 'उमाशंकर'

सन्दर्भ ग्रन्थ—रस योग सागर।

घटक एवं तौल

घटक	शास्त्रीय (प्राचीन तौल)	वर्तमान तौल
सुपक्व उत्तम भिलावे।	चालीस पल (चार सेर)	चार किलो ग्राम
जल।	आठ प्रस्थ (सोलह सेर)	सोलह किलो०
गाय का दूध ताजा।	चार प्रस्थ (आठ सेर)	आठ ,,
गाय या भैंस का घी।	एक प्रस्थ (दो सेर)	दो ,,
शक्कर।	बीस पल (दो सेर)	दो ,,
सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, हरड़, वहेड़ा, आँवला, ढेला कर्पूर, जटामांसी, निशोथ, वंशलोचन, कत्था, सफेद चन्दन, अकरकरा, पिप्पली (पुनः), शीतल मिर्च, लौंग, सफेद मूसली, काली मूसली, शीतल मिर्च (पुनः), मोचरस, अजवायन, अजमोद, गजपीपल, विदारीकन्द, जायफल, नागरमोथा, जावित्री, नदी वृक्ष की छाल, जीरा, समुद्रशोष, मेदा, महामेदा, मल्लमारित लोह भस्म, रस-सिंदूर, हरताल मारित बंग भस्म, केशर।	प्रत्येक द्रव्य एक तोला (एक कर्ष)	प्रत्येक द्रव्य बारह ग्राम (१२ ग्राम)

निर्माण विधि—

सर्व प्रथम पेड़ से पककर गिरे हुए और जल में डूब जाने वाले उत्तम भिलावे को ईंटों पर भली-भांति घिसकर जल से धोलें। पश्चात् उनको दो-दो टुकड़ों में कर-करके सोलह सेर जल में डालकर विधिवत् काढ़ा बनावें, चौथाई भाग काढ़ा बचने पर उसको उतारकर जल को छान लेवें।

सावधानी—ध्यान रहे कि इस क्वाथ को नीचे उतारते और छानते समय यहाँ तक कि क्वाथ निर्माण करते समय भी काढ़ा की भाप शरीर के किसी भी भाग पर विशेषकर चेहरे और दोनों हाथों में न लगने पावे, अन्यथा जिस भाग में इसका भाप लगेगा, वह भाग काफी सूज जायगा। अच्छा तो यह होगा कि चेहरे और दोनों हाथों पर तिल या सरसों तैल भली भांति लगाकर तब क्वाथ कार्य में प्रवृत हों तथा क्वाथ को छानें। इसके बाद उक्त अवशिष्ट क्वाथ जल में ८ सेर दूध मिलाकर औटावें तथा फलघु से बराबर चलाते रहें। जब दूध केवल ४ सेर बचे तो उसमें दो सेर घी मिला पकाकर गाढ़ा खोवा निर्माण करें। पश्चात् इसमें दो सेर शक्कर की चाशनी पृथक पात्र में निर्माण कर मिला दें। तत्पश्चात् सौंठ, काली मिर्च आदि ३६ औषधि द्रव्यों में से प्रथम काष्ठौषधियों का कपड़छन सूक्ष्म चूर्ण निर्माण कर उसमें रस-भस्मों को मिश्रित कर इन्हें उपर्युक्त पाक में भली भांति मिलालें और कांच डाटयुक्त कांच पात्र या चीनी मिट्टी (पोर्सलेन) डाटयुक्त पात्र में सात दिनों तक वन्द कर सुरक्षित रख लें और तब इन्हें प्रयोग में लावें।

सेवन विधि—

आवश्यकतानुसार तथा रोगी की अवस्था एवं शक्ति के अनुसार १-१ तोला (१२-१२ ग्राम) प्रातः और रात में प्रतिदिन दो बार दें।

गुणावगुण

जिन व्यक्ति की प्रकृति वात और कफ प्रधान हैं और जिनको भिलावा अनुकूल बैठता है उनको इस औषधि का

सेवन पौरुषता बढ़ाने वाला, शक्तिवर्द्धक, मेधावर्द्धक इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाने वाला, कांति को स्वर्णमयी तेजस्वी बनाने वाला, हिलते हुए दांतों को सुदृढ़ बनाने वाला, सिकुड़ी और मुरझाई हुई त्वचा को कान्तिवान और पुष्ट बनाने वाला तथा दीर्घ आयु प्रदान करने वाला होता है। संक्षेपतः यह औषधि अमृत के सदृश गुणकारी है। यह वात व्याधि, श्वास रोग, वातरक्त, कुष्ठ, अर्श, फिरङ्ग, पूयमेह, श्वासप्रणालियों की किसी भी प्रकार की विकृति में लाभप्रद है। वंशपरम्परानुगत रोग जिसमें कफ और वात की प्रधानता हो उसमें अमृत भल्लातक परम गुणकारी है। सूनबहरी (शून्य कुष्ठ), गलितकुष्ठ जिसमें अंगुलियों के पोरुए टूट गये हों तथा उन पर्वों में से रस बहता हो तथा मुंह फूलकर कुप्प और कुरूप हो गया हो, नाक-कान गल गये हों, किसी-किसी के शरीर में कीड़े पड़ गये हों, तो यह उत्तम लाभकारक सिद्ध होता है। किन्तु पूर्ण लाभ की उपलब्धि के लिए इस औषधि को धैर्यपूर्वक एवं पथ्य पालन के साथ नियमित रूप से २-३ महीने तक सेवन करना चाहिए। साधारणतः यह औषधि अति ही तीक्ष्ण वीर्य वाली है अतएव इस औषधि के सेवन काल में लाल मिर्च, खटाई, चटपटे मसाले युक्त भोजन, स्त्री प्रसंग, सूर्य की धूप सेवन, आग तापना आदि ही नहीं अधिक गोल-मिर्च, राई, अधिक नमक का सेवन भी अवश्यमेव वर्जित करा देना चाहिए। इस औषधि के सेवन काल में दूध की अपेक्षा दही सेवन अधिक अनुकूल बैठता है। अधिक गरम-गरम भोजन या पदार्थ हानिकारक हैं अतः समशीतोष्ण भोजन करें।

पथ्यापथ्य—पथ्य में पुराने साठी चावल का भात, गेहूं की रोटी, दूध, घी, शर्करा, तिल, नारियल की गिरी या नारियल तैल, मूंग, मसूर, चना एवं अरहर की दाल, परवल, पपीता, टमाटर, गोभी, मूली, करैला की सब्जी, नारंगी, सेव, अंगूर आदि मीठे रसदार फल, बादाम, पिस्ता काजू, चिरौंजी आदि तैल युक्त सूखे फल सेवन करावें। इसके विपरीत अधिक उष्ण पदार्थ, तेज खटाई आदि अपथ्य हैं।

घटकों के गुण धर्म—

शुद्ध भिलावा दीपनीय, कुष्ठघ्न, अग्नि के सदृश उष्ण वीर्य वाला तथा कफवात शामक है। यह मेधावर्धक तथा नाड़ियों के लिए बल्य है। यह दीपन, पाचन, भेदन, यकृदु-त्तेजक एवं आन्त्र कृमिनाशक है तथा हृदय को उत्तेजित करता है तथा रक्त के श्वेत कणों की वृद्धि करता है। शोथ में इसकी सूक्ष्म मात्रा लाभप्रद है। प्रारम्भ में इससे अधिक मूत्र आता है किन्तु जल्द ही वृक्कों के थक जाने के कारण मूत्र आना घट जाता है तथा इसके पश्चात् भी इसका सेवन चालू रहा तो मूत्र में रक्त आना प्रारम्भ हो जाता है। उपर्युक्त मात्रा और अनुपान में इसके सेवन से यह वृष्य गुण के कारण कामोत्तेजना उत्पन्न करता है और स्त्रियों के गर्भाशय को भी उत्तेजित करता है। इसके सेवन से प्रारम्भ में त्वचा में लाली और खाज उत्पन्न होती है और फिर यह कुष्ठ को दूर करता है तथा पसीना पैदा करता है। गाय का दूध, घी, शक्कर आदि सौम्य पित्त शामक, पौष्टिक, स्निग्धता वर्धक तथा ओज-वीर्य वर्धक है।

सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली से लेकर केशर पर्यन्त प्रायः सभी द्रव्य उष्णगुणयुक्त, बलवर्द्धक, उत्तेजक, शरीर संशोधन, कफवात शामक एवं दीपन, पाचन हैं। साथ ही ये त्वचा विकारनाशक, वात व्याधिहर तथा हृद्य हैं।

सांस्थानिक कर्म—

इस रसायन गुण वाले पाक (अवलेह) का प्रभाव रक्त संचालन क्रिया, यकृत, फुफ्फुसद्वय, हृदय आदि पर पड़ता है। यह रक्ताभिसरण की क्रिया की वृद्धि करता है, यकृत, फुफ्फुसद्वय, हृदयादि को शक्ति प्रदान करता है तथा शारीरिक शक्ति की पुष्टि करता है। यह रसायन रक्त, मांस, मेद आदि धातुओं में अवस्थित निकृष्ट एवं विजातीय द्रव्यों को तथा मृत घटकों को जला डालता है। एवं उक्त रिक्त स्थानों पर नवीन घटकों को समयोजित करता है। और दुर्बल घटकों को शक्तिशाली बनाता है। इसके सेवन से कफोत्पत्ति का ह्रास होकर बल, वीर्य एवं ओज की वृद्धि होती है। यही कारण है कि इसे अमृत सदृश रसायन कहा जाता है। यह जरा (वृद्धावस्था) एवं मरण पर विजय प्राप्त करने के लिए गवेषणा के योग्य औषधि-रसायन है।

वैज्ञानिक गवेषणा द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव—

इस औषधि रसायन का सेवन कफ, विकृति, वात

व्याधि, श्वासरोग, वातरक्त, कुष्ठ, अर्श, फिरंग, पूयमेह, शून्य कुष्ठ एवं कैन्सर से पीड़ित अनेक रोगियों पर अकेले रूप में एक-एक मास तक धैर्यपूर्वक नियमित रूप से सावधानी के साथ कराया गया तथा उनका प्रतिवेदन तैयार किया गया तो अन्ततोगत्वा यह निर्णय उपलब्ध हुआ कि यह अर्श, वात व्याधि, वात रक्त में अधिकतम, फिरंग, पूयमेह, शून्यकुष्ठ में मध्यम तथा अन्य (गलित) कुष्ठ, श्वास रोग एवं कैन्सर में न्यूनतम गुणकारी है। ऐसा हो सकता है कि इनमें से कुछ रोगियों को और अधिक इस रसायन सेवन की अपेक्षा हो जिसकी पूर्ति के बाद न्यूनतम परिणाम से भी अधिक उतम परिणाम मिलने की सम्भावना हो, किन्तु गवेषणा की अवधि में अर्थात् एक महीने के सेवनकाल में जो परिणाम उपलब्ध हुए उनका प्रतिवेदन अंकित किया गया। इसका प्रयोग पौरुषतावर्द्धक, ओजस्वीकर, शक्तिवर्द्धक, मेध्य, शरीर को स्वर्णमयी, कान्तिप्रदायक, श्वेत बाल को काला करने के लिए तथा हिलते हुए दांत को सुदृढ़ बनाने के ध्येय से किया गया और पूर्ण सतर्कता से उनका निरीक्षण व परीक्षण किया गया तो परिणाम यह निकला कि इसके १-२ मास के प्रयोग से फल की उतनी आशा नहीं की जा सकती जितना शास्त्रों में वर्णित है। जब पूर्ण पथ्यापथ्यसह पालन के साथ इस औषधि का प्रयोग धैर्यपूर्वक नियमित रूप से निरन्तर एक-दो वर्षों तक किया जाय तब उत्तम कोटि के परिणाम मिल सकते हैं।

—आयुर्वेद बृह० डा० महेश्वर प्रसाद 'उमाशंकर'
जी.ए.एम.एस., एम.एस.सी.ए., डी.लिट्.ए.
महेश्वर विज्ञान भवन, मंगलगढ़ (समस्तीपुर) बिहार

अमृत भल्लातकी

Anacardiacae वर्ग की भल्लातकी (भिलावां Semicarpus Anacardium) आचार्य चरक[1] की वाणी में कफ (आमदोष), विबन्ध (Constipation) को दूर करने वाली तथा मेधा (बुद्धि) और अग्नि को प्रदीप्त करने वाली अमोघ औषधि है तथा इसी पर निरन्तर रिसर्च करने के बाद वैद्य, सर्जन आचार्य सुश्रुत[2] ने कुष्ठादि त्वचागत रोगों तथा वात, कफज (बादी बवासीर) अर्श में भिलावा को और रक्तपित्तज अर्श (खूनी बवासीर) में कुटज (कोरैया) को सर्वोत्तम घोषित किया जो अमीबिक एवं बेसीलरी डिसेन्टरी (पित्तातिसार) दोनों में हृदय में किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना समानरूपेण लाभकारी है। जिसकी सम्पुष्टि में भैषज्य रत्नावली[3] में गलितकुष्ठ में नवाङ्कुरों की उत्पत्ति की भांति इसे कार्यकारी द्रव्य माना है। यही मूल द्रव्य 'अमृत-भल्लातकी रसायन' का है जो जाड़ों के दिनों में सेवनीय पौष्टिक योग है।

योग—शुद्ध भिलावा ३ किलो, दूध ३२ किलो, गोला ३ किलो, बादाम १ किलो, पिस्ता २५० ग्राम, चीनी १६ किलो, लौह भस्म २ तोला, स्वर्ण माक्षिक भस्म २ तोला, प्रवाल २ तोला, रससिन्दूर ६ माशा, शिलाजीत २ तोला, घी १॥ किलो।

विधि—शुद्ध भिलावों का प्रथम काढ़ा बनालें, फिर उसे दूध में शिलाजीत डाल उबालें। जब गाढ़ा होने लगे तो घी चीनी डाल सबको कड़ाही में कलछुल से चलावे फिर भट्टी पर से उतार भस्मों को डाल मिलावें और कलईदार थाली में बर्फी के समान डाल जमा दें और प्रातः ६ माशा से १ तोला तक की बर्फी काट रखलें। प्रातः सायं १ टुकड़े को दूध के संग खाने से उक्त बीमारियों के निवारण के साथ बुढ़ापे को भी दूर भगाता है—

—श्री डा० सत्यनारायण शर्मा ए.एम.एस.
गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा) उ.प्र.

---

[1] कफजो न स रोगोऽस्ति न विबन्धोऽस्ति कश्चन। येन भल्लातक हन्याच्छीघ्रं मेधाग्नि वर्धनम्॥ —चरक

[2] यथा कुष्ठानि सर्वाणि हतः खदिर बीजकौ। तथैवार्शांसि सर्वाणि वृक्षकारुष्करौ हतः॥ —सु० चि० ६

[3] विशीर्ण कर्णाङ्गुलि नासिकोऽपि क्रिमर्यार्दितो भिन्न गलोऽपि कुष्ठी।
सोऽपिक्रमादङ्कुरिताग्र शाखा स्वरूपैया भाति नभोऽम्बुसिक्तः॥ —भैषज्य रत्नावली

कण्टकार्य्यविलेह

औषधि पकाने की कार्य्या द्वारा राध पकाकर जो औषधि निर्माण की जाती है उसे पाक कहा जाता है। खाये हुए पदार्थ जो पचता है उसे भी पाक कहते हैं। औषधि क्वाथ दोनों को पकाकर जो लेह चाटने योग्य द्रव्य औषधि उन्हें अवलेह कहा जाता है। कोमल प्रकृति के पुराने या नये रोगी चूर्णादि औषधि सेवन करते-करते थक गये हों या सेवन करने में असमर्थ हों उन्हें पाकावलेह योजना अनुकूल होती है। पाक अवलेहादि स्वादिष्ट होने के कारण तरुण, वालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी खा चाट लेते हैं। यह पाक १ वर्ष तक सेवन योग्य गुण युक्त रहता है।

(क्वाथादिनां पुनः पाकाद घनत्वं सा रसः क्रिया। सोऽवलेहश्च लेहस्यात्…………)

औषधि के कषाय काढ़ा फांट को पुनः औटाकर गाढ़ा किया जाता है। उसे लेह अवलेह चाटने योग्य औषधि को अवलेह कहते हैं। इसमें मिश्री चीनी रखकर देने का निर्धारण यह है।

(सिता चतुर्गुणा कार्य्या चूर्णाञ्च द्विगुणोगुडः द्रवं चतुगुणं दद्यात इति सर्वत्र निश्चयः)

निम्न योग स्व. पं. शिवसहाय मिश्र जी ग्रामीण राज्य वैद्य, ओड़ो जि० नवादा निवासी का आज से १०० वर्ष पूर्व के हजारों रोगियों पर स्वानुभूत परीक्षित प्रयोग है।

घटक—रेगनी के जड़ पत्ता फूल फल सहित ५ किलो ऐंठनी, काकड़ासिंगी, काकर, मगरैला, छोटी इलायची, सौंठ, पीपर, गोल मिर्च, कूठ मीठा, सेंधानमक, नागरमोथा, जवासा, जीरा सफेद, जीरा स्याह, सज्जीखार, अजवाइन खुरासानी, चीता की जड़, अजमोदा, गुड़ रसाहा ३ किलो, हर्रे १०० नग, मधु २५० ग्राम।

निर्माण—प्रथम कटेरी रेगनी को कूटकर हर्रे के साथ १६ गुना जल में क्वाथ करें। जब चौथाई काढ़ा रहे तो छानकर उसमें गुड़ मिला के चासनी बनावें जब चाशनी १ तार हो जाय तब सभी दवा कूट पीस कपड़ा में छान के डाल दें। चलाते जाय जब गाढ़ा चाटने योग्य हो तब उतार लें। बाद में मधु देकर चलावें।

अनुपान—गर्मपानी या दूध या कोई अरिष्ट आसव वैद्य की राय से।

प्रभाव—प्रवल कास, श्वास, कफ, ज्वर, वालक के कुकुर कास, सूखी खांसी के कफ प्रकोप श्वास यंत्रों पर सीधे प्रभाव पड़ता है। मुझे स्मरण है कि एक बार बालापन में ही जोरों से कफ ज्वर हो गया था उस समय यह कन्टकार्य्यविलेह सेवन किया था।

गुण विवेचन—इसमें प्रधान घटक कण्टकारी रेगनी है जो श्वास कास स्वरभेद हिचकी के अलावा ज्वरघ्न भी है। वह विशिष्ट सीधे श्वास यंत्र पर प्रभाव दिखाता है। दूसरे हरड़ भी है जो सारक गुण युक्त है। इससे रेचन होकर कुपित वायु के साथ कफ निकलता तथा श्वास को अनुलोमन कर शांत करता है। इसमें जीरक कटफल आदि सभी योगवाही द्रव्य के साथ गुण वायुनाशक शुण्ठी के साथ कफनाशक होता है।

भाव प्रकाश का योग—

घटक—गुरिच, चाय, चीता, मोथा, ककड़ासिंगी, सौंठ, गोलमिर्च, पीपर, भारंगी, रासना, कचूर, मिश्री २० पल (१२५ ग्राम) मधु १००० ग्राम, प्रत्येक दवा २०० ग्राम, कण्टकारी २ किलो, जल २० किलो, शेष ५ किलो।

शार्ङ्गधर का योग—

घटक—कण्टकारी फलमूल पत्ता सहित ४ किलो, गुरिच, चाय, चीत्ता, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, सौंठ, पीपर, गोलमिर्च, जवासा, भारंगी, रास्ना, वंशलोचन, कचूर प्रत्येक १०० ग्राम। मिश्री ११२५ ग्राम, शहद २५० ग्राम।

प्रभाव—श्वास, कास, हिचकी, ज्वर, कफाधिक्य, शुष्क कास में। बालकों को कुकुर कास पर एवं कफ ज्वर में प्रयोज्य।

अष्टाङ्गऽवलेहिका…योग भाव प्रकाश कफ ज्वराधिकार…

घटक द्रव्य—पीपर, गोल मिर्च, जवासा, काकड़ासिंगी, सौंठ, कालानमक, काकर, पुहकरमूल।

निर्माण—सभी दवाओं को कूट कपड़े में छानकर बराबर मधु (शहद) के साथ चटाने से कफ ज्वर वालक को कुकर खाँसी मे आशातीत गुणकारी प्रयोग है।

—श्री वैद्य द्वारका मिश्र आयुर्वेदाचार्य
ओड़ो जि० नवादा (बिहार)

कुटजावलेह

होमियो रत्न श्री डा. बनारसीदास दीक्षित एच.एम.डी.एस.

ग्रन्थ—रस. तन्त्रसार।

घटक—कुड़ेकी छाल ४०० तोला, गुड़ १२० तोला, रसौत, मोचरस, सौंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, वहेड़ा, आंवला, लजालू, चीते की छाल, पाढ़, कच्चा बेल, इन्द्रजौ, बच, भिलावा, अतीस, वाय विडंग, नेत्रवाला प्रत्येक ४ तो., घी १६ तोला, शहद १६ तो० (हम २५ तोला मिलाते है)।

१—निर्माण विधि—

कुड़े की छाल ४०० तोला को जौकुट करके (मोटी-मोटी कूटकर) शाम को १०२४ तोला जल में भिगो देवें। प्रातः उसका काढ़ा बनावें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर कपड़े से छान लेवें। इस काढ़े में १२० तोला गुड़ डालकर फिर उस काढ़े को औटावें। जब आग पर काढ़ा गाढ़ा होने पर रसौत से नेत्र वाला तक की १८ औषधियों का चूर्ण डालकर नीचे उतार लेवें। घी १६ तोला और शहद २५ तोला मिलाकर ठण्डा होने पर कांच के पात्र में रख लेवें।

मात्रा—१ से २ तोला तक दिन में ३ बार बकरी के दूध, मट्ठा, दही, अथवा घी के साथ देवें।

गुण—

यह अवलेह आंव को पचाता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है एवं पित्त शामक है। अतः बवासीर, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी, पांडु, कामला, अम्लपित्त में लाभप्रद है। मलाश्रित वायु और गुद पाक का भी शमन करता है।

दूसरी विधि—

ग्रन्थ—चक्रदत्त।

(२) निर्माण विधि—

कुड़े की छाल को १६ गुणे जल में उबालकर ८ वां भाग शेष रहने पर छान लेवें। फिर इस क्वाथ को कढ़ाही में डालकर आग पर चढ़ा देवें और इस में कुड़े की छाल का चौथा भाग गुड़ डालकर अवलेह बनावें गाढ़ा होने पर आठवां भाग (कुड़े की छाल से आठवां भाग) अतीस का चूर्ण मिला देवें।

मात्रा—आधा आधा तोला दिन में ३ बार देवें।

गुण—

इस अवलेह में कुड़े की छाल, गुड़, और अतीस तीन ही द्रव्य हैं। इनमें कुटज कटु तथा कषाय रस युक्त, रूक्ष, अग्नि दीपक और शीत वीर्य होता है। बवासीर अतिसार, पित्तरक्त, कफ, तृषा, आंव एवं कुष्ठ को दूर करता है।

अतीस के गुण—उष्ण वीर्य, कटु तथा तिक्तरस युक्त, पाचक, अग्नि दीपक एवं कफ, पित्त, अतिसार, आम, विष, कास, वमन, कृमि रोगों में लाभप्रद है।

उपयोग—

इस अवलेह के सेवन से सभी प्रकार के अतिसार (आमातिसार, त्रिदोषज अतिसार, रक्तातिसार, ज्वरातिसार) अरुचि, संग्रहणी, पेचिस, अम्लपित्त आदि रोग शमन होते हैं। यह अवलेह अन्त्रप्रदाह को दूर करके आंतों को शक्ति देता है।

नोट—अग्निमन्द हो तो मात्रा कम देवें।

(३) निर्माण विधि—

ग्रन्थ - भैषज्य रत्नावली।

घटक—कुटज मूलत्वक् ५ सेर को जौकूट कर २५॥ सेर जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर पुनः पकावें। गाढ़ा होने पर उस में सोंचर नमक, जवाखार, विड नमक, सैंधा नमक, पीपल, धाय के फूल, इंद्र जौ और काला जीरा प्रत्येक का मिलित चूर्ण ८ तोला का प्रक्षेप दें और नीचे उतार कर सुरक्षित रखें।

मात्रा—४ से ६ माशा मधु से सुबह शाम देवें।

मेरा अनुभव—

पुराने रोगों में प्रथम विधि को बहुत ही उपयोगी पाया एवं बच्चों के रोग में दूसरी वाला विशेष लाभकारी रहा है।

नोट—अधिक दिनों का होने पर अवलेह गुणहीन हो जाता है अतः ताजा बनाकर प्रयोग करने पर अधिक लाभ होता है।

—होमियोरत्न डा. श्री बनारसीदास दीक्षित
एच.एम.डी.एस
दीक्षित फार्मेसी, रक्सौल (चम्पारन)

कूष्माण्डावलेह

भारत भैष. रत्नाकर, रस तन्त्रसार सिद्ध प्रयोग संग्रह।

द्रव्य—पेठा १ किलो, बादाम की गिरी भूने हुए पेठे के बराबर लें। पेठे के बराबर खोया लें। जायफल, लौंग, जावित्री, छोटी एलादाना, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, मगज, कमलगट्ठा २२-२२ ग्राम लें। केशर १० ग्राम, खांड २२०० ग्राम।

सन्दिग्ध द्रव्य—नागकेशर—यह बाजार में दो तरह का आता है। एक गोल भूरा लाल रंग का कालीमिर्च के समान गोल आकार का दूसरा तुरियोंवाला। तुरियोंवाला नागकेशर उत्तम होता है।

वंशलोचन—यह भी बाजार में नकली चूने के समान का मिलता है असली वंशलोचन बांसों की गांठों से निकलता है। कलकत्ता की एक कम्पनी इसका व्यापार करती है। यह श्वेत रंग का नीलापन लिये हुए होता है। असली न प्राप्त होने पर संगजराहत का प्रयोग विद्वान करते हैं।

दालचीनी—इसके स्थान पर भी पंसारी लोग तज ही दे देते हैं। दालचीनी बहुत बारीक-बारीक छाल सी होती है। बारीक-बारीक पतल के समान देखकर लेनी चाहिए।

केशर—यह भी बाजार में बहुतायत से नकली पाया जाता है। यह जम्बू, काश्मीर में उत्पन्न होता है इसकी तुरिये होती है। इसे परीक्षा कर ज्ञातव्य स्थान से ही प्राप्त करना चाहिए।

निर्माण विधि—पक्के पेठे को मूलीकस द्वारा कसकर जल निचोड़ लेवें। फिर कसे हुए पेठे को कलईदार पात्र में डालकर उचित मात्रा में शुद्ध घृत डालकर भूनकर लाल रंग का बना लेवें। तत्पश्चात् बादाम की गिरियों को गर्म पानी में भिगोकर ऊपर से पतले छिल्के निकालकर तथा उनकी पीठी बनाकर अलग से घृत में भून लें। खोये को भी अलग से घृत में भूनलें। तत्पश्चात् शेष द्रव्य दालचीनी इलायची आदि को भी कूट छानकर बारीक चूर्ण करलें। चूर्ण बन जाने पर भुना हुआ पेठा, बादाम तथा खोया को पात्र में इकट्ठा कर उसमें उपरोक्त चूर्ण भी मिला दें। तत्पश्चात् २ किलो २०० ग्राम खाण्ड की चाशनी बनाकर उस चाशनी में इसे मिला दें तथा बाद में केशर को जल मे घोलकर इसमें मिलाकर एकजान करलें। इस प्रकार यह उपरोक्त कूष्माण्डावलेह तैयार हो गया।

उपयोग—यह अवलेह ग्रीष्म ऋतु में सेवन किया जाता है। अम्लपित, दाह, भ्रम, शोष, तृषा, धातुक्षय तथा पाण्डु, कामला आदि व्याधियों को हरता है। अग्नि को प्रदीप्त करता है और शरीर को पुष्ट करता है।

मात्रा—१-२ ग्रा. दिन में २ बार गोदुग्ध के साथ दें।

मैंने इस अवलेह का स्वतन्त्र रूप से निम्नलिखित रोग ग्रसित रोगियों पर प्रयोग किया आशातीत सफलता प्राप्त की है। पित्त दूषित रोगियों को नियमित इसका सेवन १५-२० दिनों तक कराता रहा हूँ। शिरोरोग में भी पित्त जन्य शिरोरोग में इसका अत्यधिक लाभ हुआ है। भ्रम के रोगियों को भी इसका सेवन कराकर सफलता प्राप्त कर चुका हूं। कामला के रोगी भी इसका नियमित एक माह तक सेवन कर रोग मुक्त हुए है। दाह, जलन, हाथ, पैरों में अग्निदाह ऐसी अवस्था में भी इसके सेवन से लाभ प्राप्त होता है। यह जठराग्नि को बढ़ा समस्त धातुओं को पुष्ट कर शरीर को पुष्ट करता और कान्ति को बढ़ाता है। बल वीर्य की वृद्धि करता है।

१. कास रोग में—इस अवलेह में रससिंदूर, वराट भस्म मिलाकर सेवन कराता हूँ।

२. क्षय रोग में—स्वर्ण वसन्तमालती का मिश्रण कर सेवन कराता हूँ।

३. कामला में—कान्तलौह भस्म, प्रवाल, मुक्ताशुक्ति भस्म तथा अकीक भस्म मिलाकर सेवन कराता हूं।

४. दाह रोग में—अकीक भस्म, तृणकांत मणि, संगयशव भस्म आदि मिश्रित कर सेवन कराता हूं।

५. रक्तपित्त में—जहरमोहरा पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, तथा वासा स्वरस मिश्रित कर सेवन कराता हूं।

६. शिरो रोग में—प्रवाल पिष्टी, लक्ष्मीविलास रस, स्वर्णमाक्षिक भस्म, गोदन्ती भस्म मिलाकर सेवन कराता हूँ। धातु और शरीर पुष्टी के लिए शुद्ध कपीलू चूर्ण मिश्रित करता हूं इससे स्वाद कुछ कड़ुवा हो जाता है।

उपरोक्त प्रकार से इसका सेवन कराकर बहुत सफलता प्राप्त कर चुका हूँ।

—श्री मदनलाल शर्मा आयुर्वेद वृहस्पति, आयुर्वेदरत्न
प्रभारी—राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय
धुरवाईन (ऊना) हि० प्र०

चित्रक हरीतकी—एक अनुभूत सिद्ध औषधि

कविराज डा० श्री वेदप्रकाश शर्मा (त्रिवेदी)

✱

चिकित्सा काल में विशेष रूप से अनुभव हुआ कि जब किसी जीर्ण रोग से आक्रान्त रोगी का आधुनिक विज्ञान के आधार पर नानाविधि यान्त्रिक परीक्षणों निदानार्थ व्यय कर चुकने व चिकित्सा से लाभ न होने की दशा में स्वयं के रोग को असाध्य समझ बैठता है। एवं आधुनिक चिकित्सक की ब्रोड स्पेक्ट्रम एन्टी बायोटिक्स के असफल होने पर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में आयुर्वेदीय औषधिओं का सेवन रोगशमन में सफल सिद्ध होता है।

लगभग दस वर्ष पूर्व की घटना का संस्मरण अङ्कित कर रहा हूँ जबकि मैं साहू राम नारायण मुरली मनोहर आयुर्वेदिक डिग्री कालेज बरेली में प्राध्यापक के रूप में कार्यरत था एवं चमन कोठी आलमगीरी गंज बरेली में निजि चिकित्सा व्यवसाय था। वहां के प्रतिष्ठित औषधि विक्रेता का पुत्र जीर्ण प्रतिश्याय से ग्रसित था जो चिकित्सा कराने पर अस्थाई शमन होता था। उसके निवारणार्थ अनेक आधुनिक यान्त्रिक परीक्षणों के द्वारा निदान व आधुनिकतम औषधियों का सेवन किया गया किन्तु कोई स्थायी लाभ नहीं हुआ। नगर के अनेक प्रतिष्ठित चिकित्सकों से परामर्श किया किन्तु स्थायी लाभ नहीं हुआ। अन्त में उसको परामर्श दिया गया कि रोग अत्यधिक पुराना होने से इसिनोफिलीया के कारण स्थायी चिकित्सा सम्भव नहीं है।

अन्त में मैंने उसकी चित्रक हरीतकी ६ माशा प्रातः काल, ६ माशा सायंकाल एक मात्र औषधि का उष्णजल के अनुपान से सेवन का निर्देश किया। इसके साथ ही दूध में चाय की पत्ती पकाकर छानकर पीने के लिए कहा गया। गुड़, तेल, मिर्च, अम्ल पदार्थों का सेवन वर्जित किया गया। इस योग से एक मास की अवधि के पश्चात् स्वयं को पूर्ण स्वस्थ अनुभव किया एवं यान्त्रिक परीक्षण में भी रक्तकण प्राकृतावस्था में पाये गये।

इसके पश्चात् जीर्ण प्रतिश्याय, पीनस के रोगियों में इस योग का निरन्तर प्रयोग करता रहा। अनुपानार्थ उष्णोदक या चाय का निर्देश दिया जाता रहा है। जीर्ण प्रतिश्याय आदि की शतशः अनुभूत अव्यर्थ औषधि सिद्ध हुई।

वस्तुतः अवलेह के रूप में निर्मित यह योग अधिक व्यय साध्य नहीं है किन्तु अत्यधिक तिक्त, कषाय होने से कभी-कभी रोगी को अरुचि का अनुभव होता है। अथवा इसके प्रति अनिच्छा व्यक्त करता है। इसके निवारणार्थ चिकित्सक थोड़ी-थोड़ी मात्रा अनुपान से निगलवा सकते हैं अथवा मधु का आवरण चढ़ाकर निगलवा सकते हैं अथवा किसी मधुर पदार्थ के योग से खिला सकते हैं। पाठकों के लाभार्थ इस योग की निर्माण विधि अंकित की जा रही है—

ग्रन्थ—भैषज्य रत्नावली।

घटक—चित्रक त्वक ५० पल, जल ४०० पल, आमलकी स्वरस १०० पल, गुडुची ५० पल, दशमूल ५० पल, हरीतकी ६४ पल, गुड़ १०० पल, त्रिकटु १२ पल, दालचीनी १२ पल, छोटी इलायची १२ पल, तेजपात १२ पल, यवक्षार आधा पल, मधु आधा प्रस्थ।

निर्माण विधि—

चित्रकत्वक ५० पल, जल ४०० पल, का शीत क्वाथ १०० पल, आंवला स्वरस १०० पल एवं गिलोय तथा दशमूल ५०-५० पल, पृथक लेकर उनका उक्त विधि से सिद्ध क्वाथ १००-१०० पल लेकर संयुक्त करके पुनः हरीतकी चूर्ण ६४ पल तथा गुड़ १०० पल मिलाकर पाक करें। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि प्रथम क्वाथों में गुड़ घोलकर छान लेवें। पुनः हरीतकी चूर्ण मिलावें तथा अग्नि पर पाक करें। पाक के घनीभूत होने पर उसमें त्रिकटु, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात का मिश्रित चूर्ण १२ पल तथा यवक्षार $\frac{1}{2}$ पल मिलाकर आयोडित करके रख देवें। आधा प्रस्थ मिलाकर रखें।

मात्रा—६ माशा से १ तोला (५-१० ग्राम)
अनुपान—उष्णोदक अथवा उष्ण दूध (चाय युक्त),
अधिकार—क्षय, कास, दुःसाध्य, पीनस, कृमि, गुल्म, उदावर्त और श्रम आदि चित्रक हरीतकी के घटकों की प्रमाणिकता के लिए उनका वानस्पतिक कुव्यादि परिचायक तालिका प्रस्तुत की जा रही है—

क्रम संख्या	घटक का नाम	आयुर्वेदीय वर्ग	वानस्पतिक नाम	वानस्पतिक वर्ग
१	चित्रक	हरितक्यादि	Plamlagozeylanicum.	Plamboginaceae.
२	आमलकी	,,	Comblica officinelis	Euphorbiaceae.
३	जल	वारि	Aqua	—
४	गुडूची	गुडूच्यादि	Tinospora Cordifolia.	Manispermaceae.
५	गम्भारी	निगुण्ड्यादि	Gmelbna Arborca.	Verberaceae.
६	पाटला	श्योनाकादि	Sterospenum Suacolince.	Bignoniaceae.
७	अरणी	निगुण्ड्यादि	Cleredendren Phlomidis.	Verberaceae.
८	श्योनाक	श्योनाकादि	Oroxylum Indicum.	Bignoniaceae.
९	क्षुद्र कंटकारी	कंटकार्यादि	Solanum xanthocarpum.	Solanaceae.
१०	वृहती	,,	,, Indecum.	,,
११	विल्व	हरमक वर्ग गुडूच्यादि	Aegle Marmelos.	Rutaceae.
१२	गोक्षुर	गोक्षुरादि	Tribulus Terrestns.	Zygophyllaceae.
१३	पृश्निपर्णी	शिम्बी वर्ग	Uraria Picta	Leguminoceae.
१४	शालपर्णी	,,	Desmodicum Gagenticum	,,
१५	हरीतकी	हरितक्यादि	Terminalia chebula	Combretaceae.
१६	गुड़	यवादि	Jagery of Saccharum officinnerum	Graminaceae.
१७	शुण्ठी	हरितक्यादि	Zingiber officinale	—
१८	मरिच	,,	Piper Nigerum	Piperaceae.
१९	पिप्पली	,,	Piper Longum	,,
२०	त्वक	कर्पूरादि	Cinamon Cartex	Lauraceae.
२१	एला	हरिद्रादि	Elleteria Cardmon	Scieaminaceae.
२२	तेजपात	कर्पूरादि	Connamomum Tamala.	Lauraceae.
२३	यवक्षार	यवादि	Horeum Valgart	Graminaceae.
२४	मधु	मधु वर्ग	Mel	—

अनुसन्धानीय उहापोह—

चित्रक हरीतकी योग को अवलेह के स्थान पर यदि वटिका के रूप में निर्माण किया जाय तो रोगी को अरुचि भी नहीं होती क्योंकि अवलेह की अपेक्षा वटी के स्वाद का (पान होने से) रोगी को कम अनुभव होता है। इसको वटी के रूप में अधिक समय तक स्थायी भी बनाया जा सकता है एवं शर्करा आवृत (शुगर कोटेड) बनाकर मनोहर सुस्वादु भी बनाया जा सकता है। ऐसा लेखक का दृष्टिकोण है। यदि आगामी अनुसन्धानीय अवक्षेण जन्य परिणामों का निष्कर्ष आशाजनक सिद्ध हुआ तो लेखक उनका प्रकाशन कर अपने प्रयास को सार्थक समझेगा।

—डा. वेदप्रकाश शर्मा त्रिवेदी ए., एम.बी.एस., एच.पी.ए.
लाला बिल्डिंग, जोशीपुर
पो० जूनागढ़ (गुजरात)

वासा अवलेह

श्री वैद्य मोहनलाल गुप्त बी० ए०, बी० टी० आयुर्वेदरत्न
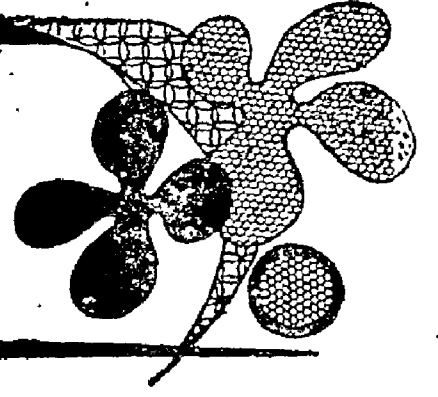
ग्रन्थ निर्देश—आरोग्य प्रकाश।

योग—अड़ूसा की जड़ की छाल २ किलो, पीपल बिरेजा २५० ग्राम, ताजा घृत २५० ग्राम, मधु १ किलो, चीनी १ किलो, पानी १६ किलो।

निर्माण विधि—सर्व प्रथम अड़ूसा की जड़ की छाल पानी में औटाई जाय। जब पानी चतुर्थांश अर्थात् ¼ भाग (४ किलो) रह जाय तब उसमें १ किलो चीनी (शक्कर) डालकर गाढ़ी चाशनी बनाई जाय। गाढ़ी हो जाने पर नीचे उतारकर पीपल का चूर्ण, घृत एवं मधु उक्त प्रमाण में मिलाकर अच्छी तरह घोट लें। यह सभी क्रिया लोहे की कढ़ाई में की जानी चाहिये। तत्पश्चात् शीतल होने पर किसी कांच, चीनी, या कलई के पात्र में भर दें।

मात्रा—आधा तोला से १ तोला तक प्रातः सायं।

मुख्य घटक गुण एवं कर्म—इस योग का मुख्य द्रव्य अड़ूसा है जिसे वासा, वासक आदि नाम से जाना जाता है। यह कड़वा, कसैला, शीतल, कफ रक्त विकार, श्वास, खांसी, ज्वर, प्रमेह, क्षय रोग नाशक है तथा हृदय को हितकारी है। किसी का कथन है कि—

बांसा जग में यूं कहे, जिस थल में मम वास।
क्यों पीड़ित नर रक्तपित्त, श्वास अरु खांस॥

२. पीपल—यह दीपन, पाचन, वातहर, उदरशूल नाशक तथा कफघ्न है। जीर्ण ज्वर, प्रसूता ज्वर, कटि-शूल में भी प्रयोग की जाती है।

३. मधु—यह शहद के नाम से भी जानी जाती है। यह मधुमक्खी के द्वारा संचित पुष्पों का रस है जो आयुर्वेद में स्वयं एक अमूल्य औषधि है। यह मधुर, वात वातपित्त शामक, नेत्र ज्योति वर्धक, रुचिकारक है। आयुर्वेद की अधिकांश औषधियों में यथा आसव, अरिष्ट, अवलेह, गुटिका आदि में तो इसे डाला ही जाता है, साथ ही भस्में आदि के योगों को भी शहद के साथ ही दिया जाता है। इसके योग से औषधि के गुण प्रभाव में विशेष वृद्धि होती है।

सूचना—यहाँ यह भी बता देना चाहता हूं कि जहाँ गुण है वहाँ अवगुण भी है। समान भाग घृत और शहद मिलने पर उपविष बन जाता है। अतः दोनों की समानता न होने पावे इसका पूरा-पूरा ध्यान रखें।

—श्री वैद्य मोहनलाल गुप्त बी० ए०, बी० टी०
आयुर्वेदरत्न

भार्गीगुड़ः

ग्रन्थ का नाम—भैषज्य रत्नावली आदि।

निर्माण में प्रत्येक घटक—भारंगी, सौंठ, कृष्ण मिरच, पीपल, दशमूल, गुड़, दालचीनी, छोटी एला, तेजपत्र, यवक्षार, मधु।

निर्माण विधि—भारंगी की जड़ २॥ किलो, दशमूल २॥ किलो, हरड़ बड़ी (छोटा हरड़) आधा किलो, जल क्वाथ के लिए २३। किलो लेकर उबालकर चतुर्थांश शेष रखकर ५॥ किलो गुड़ २। किलो डालकर गुड़ पाक विधि से पकाकर चाशनी कर लेना पश्चात् प्रक्षेप में त्रिकटु, दालचीनी, छोटी एला, तेजपात दो-दो तोला लेकर यव-क्षार २ तोला, शहद १५ तोला मिलाकर भार्गीगुड़ तैयार

कर लेवें। इसके सेवन से दारुण, श्वास तथा पाँचों प्रकार के कास हिक्का आदि नष्ट होते हैं। यह स्वर भेद में भी अच्छा है। वैसे लिखा है स्वर और वर्ण को देने वाला है जठराग्नि का प्रदीपक है। यह श्वास रोग व्याधि की विपरीत चिकित्सा है। तमक श्वास के दौरे से अतिरिक्त समय के बाद विशेषकर इसका प्रयोग करना चाहिए। इसके सेवन काल में कई बार प्रत्यक्ष में देखा गया है कि दौरे का बल कम होता है और कफ निकालने में भी बेचैनी नहीं रहती। यह औषधि श्वास कास रोग में अत्यन्त प्रसिद्ध औषधि मानी जाती है।

अनुपान में—भारंग्यादि क्वाथ में कृष्ण मिरच व हींग थोड़ा दे देने मात्र से विशेष फायदा करता है वैसे जनरल अनुपान गरम दूध भी है मात्रा १ तोला से दो तोला तक की है।

विशेषकर श्वासनली पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है और स्वरभेद वगैर के ही निर्माण के समय इसके मर्दन कूटने से ही फायदा होता है। इसके लगातार प्रयोग से स्थायी फायदा होता है यह निश्चित है।

इससे पूर्व तो श्वासकुठार, श्वासचितामणि एवं कफकेतु: वगैर का प्रयोग उत्तम है।

इसके बाद अभ्रक, विषाण, प्रवाल, पंचामृत वगैर यष्टीमधु क्वाथ का प्रयोग लाभप्रद है।

इसका प्रयोग शास्त्रीय दृष्टि से अनुलोमक, कफनाशक, कफनि:सारक, दीपन एवं पाचन भी है। गुणों में यह रूक्ष तथा तीक्ष्ण गुणों से युक्त है।

मैंने इसका बहुत रोगियों पर प्रयोग किया है जिसमें बहुत संख्या में रोगियों पर अच्छा प्रभाव रहा है यहाँ तक कि श्वासघ्नी अन्य औषधियों के साथ प्रयोग कराने में यह शतशः ही फायदा किया है। वात श्लैष्मक प्रकृति वालों के लिए विशिष्ट प्रभाव यह दौरे के अलावा ही अपना प्रभाव करता है न कि दौरे के समय।

यह सीधे सोने पर खाँसी का ज्यादा होना एवं वात कास शुष्क कास के समय इसे थोड़ी दो रत्ती काली मिरच एवं चीनी की चासनी से देने पर तत्काल कास को मिटाता है। संक्षेप में इसके घटकों का गुण निम्न प्रकार है—

१. सोंठ—रूक्षावातकफावहा: मलभेदक तीक्ष्ण उष्ण आदि दीपक है।

२. कालीमिरच—उष्णं पित्तकर रूक्षं, श्वास, शूल, कृमि आदि को नष्ट करती है।

३. पीपल—दीपनी वृष्या, स्वादुपाका, श्वास, कास, ज्वर को नष्ट करती है।

४. भारङ्गी—रूक्षोष्णा, पाचनी, लघु, दीपनी, शोथ, कास कफ को नष्ट करती है।

५. दशमूल—त्रिदोषघ्नां, श्वास, कास, शिरभेदादि, पीड़ा को नष्ट करता है।

६. गुड़—वृष्यो: गुरुसंदिग्ध, वातघ्नो, मूत्र शोधक।

७. दालचीनी—कफवातं, मुखे कृमि, कटु, मधुर, उष्ण, वीर्य, लघु, रूक्षं, हृद्रोग, कण्डु, शोर्याश, प्रतिश्याय, कास को हरता है।

८. छोटी इलायची—सूक्ष्मा कफ श्वास कासर्शो मूत्रकृच्छ रोग को दूर करता है।

९. तेजपत्र—कफ श्वास कासा मलादि मूत्रकृच्छ निवारणम्।

१०. यवक्षार—लघु ग्राही दीपन शूल वाताम वदेन्ति श्वास गुणामयाम्।

११. मधु—शीतलम् चक्षुष्यं दीपनं व्रण विशोधनम् श्वासपित्ता रक्त श्वयथु हिक्का अतीसार नाशक।

मेरे विशिष्ट अनुभव में यह भी आया है कि हिक्का बड़ा भयानक रोग है शास्त्र भी यही कहता है 'कामे प्राण हरा रोग वहवो न तु ते तथा। यथा श्वास हिक्काय हरतः प्राणमांशवैः॥ तो मेरी चिकित्सा में श्वास के अलावा जिनकी चिकित्सा की भूल अथवा कुपथ्यादि के कारण हिक्का रोग हो गया है और बहुत काल तक चिकित्सा कराने पर भी इस रोग से छुटकारा नही मिला यह हिक्का और श्वास जितनी जल्दी रोगी के प्राण घातक है उतने अन्य रोग नहीं किन्तु इन रोगों पर श्वास पर तो प्रयोग ऊपर लिखितानुसार किया लेकिन असाध्य हिक्का में भार्गी गुड़ की गोलियाँ जलाकर उनकी भस्म मधु से चटाई गई' निष्फल नहीं गई।

—वैद्य श्री विरिंचिलाल
प्रधान चिकित्सक—श्री माहेश्वरी दातव्य औषधालय
इस्लामपुर (राजस्थान)

रसोनादि चटनी

वैद्य श्री गुलाबचन्द 'अभय' आयुर्वेदाचार्य

आज इतना फैशन हो गया है कि लोग सादा भोजन न करके चिरकी, नमकीन, चटनी और खटमिठे पदार्थ अधिक पसन्द करते हैं। इसलिए यदि इन्हीं के स्वाद वाला द्रव्य खाया जाय तो ऐसा पदार्थ खाया जाय जो स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हो। वह है रसोनादि चटनी जो स्वास्थ्य के लिए आज के फैसन के अनुसार व उदर रोगों में अत्युत्तम है। वैसे इसका मुख्य घटक रसोन ही है और जैसा रोग हो या जैसा स्वाद बनाना हो उसी के अनुसार उसी तरह के घटक मिला देवें। इस चटनी के घटक निम्न हैं—रसोन, हींग, अदरख, हरा धनियाँ, कच्चे आंवले, प्याज, जीरा और सैंधव नमक।

आज के इस महान वैज्ञानिक युग में हर व्यक्ति की आदतें इतनी बिगड़ गई हैं कि अपनी प्रतिदिन को दिन-चर्या को बिल्कुल भूल गया है। प्रातः जल्दी उठकर शीतल जल से मुंह साफकर शीतल जल पीकर शौच को जाना चाहिये जो देर से उठकर प्रथम चाय पीता है जिसे आज-कल 'बेड टी' कहते हैं को लेने पर दस्त का दबाव पड़ता है तब शौच जाता है कई इससे भी दस्त नहीं जाते और इस तरह आदतें बिगाड़ने पर उनके विवन्ध व उदर रोगों में उदावर्त, गैस बनना, अग्निमांद्य, अजीर्ण, अर्श, रक्त भारवृद्धि, स्नायु दौबल्य, भ्रम आदि से पीड़ित हो जाता है। गेस्ट्रिक ट्रबल व रक्तभार वृद्धि रोग की कोई उत्तम औषधि नहीं बन पाई है जिससे इस रोग में पूर्ण लाभ मिल सके। उनके लिए यह रसोनादि चटनी अत्यधिक लाभप्रद है। इनके अलवा आजकल का भयानक रोग रक्तभार वृद्धि के लिए भी चटनी बहुत ही लाभदायक है। इस चटनी को हमेशा लेते रहे तो भी कोई हानि नहीं और न अन्य दूसरा रोग भी नहीं होता तथा स्वाद में भी रुचिकारक है।

चटनी का योग—

रसोन छिलके उतारा हुआ २५ ग्राम, हींग ५ ग्राम, हरे आंवले गुठली निकाले हुए ५ ग्राम, सैंधव नमक ५ ग्राम, जीरा साफ किया हुआ, ५ ग्राम, अदरख ५ ग्राम, प्याज १० ग्राम, हरा धनियाँ १० ग्राम लेवें। प्रथम अदरख को बारीक शिला पर पीसकर उसमें लहसुन पीस लहसुन के बाद प्याज मिलाकर पीसें इसके बाद बाकी सभी द्रव्य मिलाकर पीसकर चटनी तैयार करलो।

मात्रा—इस चटनी की मात्रा १० ग्राम से २५ ग्राम तक यथावश्यकतानुसार व रोग के अनुसार देवें। बच्चों को आधी देवें।

घटक गुण क्रिया—

इस चटनी का मुख्य घटक रसोन है जो वेदना स्थापन संस्थान का घटक है, उष्ण व तिक्त गुण वाला होने से वायु का नाश करता है, तथा इसमें मधुर रसके अलावा पांचों रसों का समावेश है जो उदर रोगों के लिए लाभदायक हैं। इस चटनी में इसका मुख्य प्रभाव होने से उदावर्त, रक्तभार वृद्धि, उदरशूल में लाभकर दीपन, पाचन, कृमिनाशक, मुख शोधन, विवन्ध नाशक आदि में बड़ा ही लाभदायक है। इसमें जो हींग है वह वायुनाशक, कृमिनाशक, दीपन, पाचन है। उक्त चटनी में अदरख, धनियां, प्याज, नमक सभी द्रव्य दीपन, पाचन, वायुनाशक, कृमिनाशक होने से उदर रोगों के लिए रामवाण चटनी है।

यह चटनी जब प्रथम मुख में जाती है तो इससे लाला स्राव ग्रन्थियों में लार अधिक मात्रा में आती है और भोजन आसानी से पच जाता है। आंतों में पहुँच कर आंत्र की क्रिया शक्ति को बढ़ाती है जिससे उसमें आचूषण शक्ति बढ़कर अन्न रस का पर्याप्त मात्रा में रस का ग्रहण होता है। रस पर्याप्त मात्रा में होता है तो धातुओं का पोषण भी पर्याप्त मात्रा में होता है। अग्निदीप्त करता है जिससे भोजन आसानी से पच जाता है।

प्रयोग—

इस चटनी का प्रयोग ज्वर के रोगी को देने के लिए इसमें पीपल चूर्ण व दाख मिलाकर चटानी चाहिये।

अग्निमांद्य रोगी के लिए रसोनादि चटनी खाना खाने

के आधा घण्टे पूर्व चटावें। इसको और भी अधिक रुचि कारक बनाने के लिए मिनकादाख व पीपल चूर्ण मिलावें। इसके प्रयोग से अग्निमांद्य रोगी की अग्नि दीप्त होकर वह स्वस्थ अवस्था को प्राप्त होगा।

रक्तभार वृद्धि उदावर्त, अजीर्ण और गैस के रोगी के लिए भोजन के बाद देकर उष्ण जलपान करावें।

विबन्ध के रोगी के लिए इस चटनी में छोटी हरड़ व मुनक्कादाख और मिलाकर चटाने के बाद ऊपर से कुमार्यासव पिलावें।

अन्त में सारांश यही है कि रासोनादि चटनी करीब-करीब सभी रोगों में काम में ली जा सकती है पर उदर रोगों के लिए विशेष लाभकारी है। यह मेरी तीन साल का रक्तभार वृद्धि पर प्रयोग की हुई है।

—वैद्य श्री गुलावचन्द अभय
सहायक चिकित्सा अधिकारी—चादमल मोदी राजकीय
'अ' श्रेणी आयुर्वेदिक चिकित्सालय, ब्यावर

हरीतकादि अवलेह

संदर्भ ग्रन्थ—वैद्य रहस्य अण्डवृद्धि चिकित्सा

मूलपाठ—

हरीतकी द्वे भूनिम्ब धनिकाक्ष द्वयं पृथक्।
लवंगं सार्धकर्षस्यात्सनाप्यक्ष चतुष्टयम् ॥
सर्वतः सार्ध गुणिता सिता तावत्तथामधु।
लेहोऽण्डवृद्धि नाशाय द्वितीयोनास्त्यतः परम् ॥

घटक—हरड़ की छाल, चिरायता, धनियां ये प्रत्येक १ तोला, लौंग १½ तोला, सनाय ४ तोला, इनका चूर्ण करें। इस चूर्ण से डोढ़ी अर्थात् १२॥ तोला देशी ख- (शक्कर) शक्कर के बराबर उत्तम शहद मिलाकर अ- करें। इस अवलेह के सेवन से अण्डवृद्धि रोग निश्चय ही होता है। इसे अनेक बार उपयोग करके देखा गया है फलप्रद योग है।

श्री राजेन्द्रसिंह सा०व०
नहटी,

सालम पाक

सालम मिश्री (पंजा सालम) २५० ग्राम, पिस्ता १२५ ग्राम, बादाम मिंगी १२५ ग्राम, चिरौंजी ५० ग्राम, अखरोट २० ग्राम, सफेद मूसली ४० ग्राम, गोखरू २५ ग्राम, असगन्ध, तालमखाना, शतावर, कौंच बीज १०-१० ग्राम, जावित्री, लौंग, शीतल मिर्च, वंशलोचन, दालचीनी और विहीदाना ५-५ ग्राम, मिश्री ७५० ग्राम, शुद्ध उत्तम घृत २५० ग्राम।

निर्माण विधि—पहले सालम के चूर्ण को १०० ग्राम शुद्ध घृत में भून लें। फिर पिस्ता, बादाम, चिरौंजी और अखरोट के कल्क को १५० ग्राम घी में भून लें। पश्चात् मिश्री की चाशनी कर उसमें सब को मिलादें तथा शेष औषधि के महीन चूर्ण को भी उसी में मिलाकर ५०-५० ग्राम के लड्डू बनालें। वृहत्माणिक्य रस १० ग्राम भी लड्डू बन- के पूर्व उसी में मिला देना नित्य प्रात १ लड्डू ख- ऊपर से २५० ग्राम सुखोष्ण गोदुग्ध पिया करें। पथ्यापथ्य का विशेष ध्यान रखें।

गुण—वीर्य के प्रवाह को रोकते हुए शरीर तथा मस्तिष्क को पुष्ट करता है वाजीकरण है। शीतकाल में सेवनीय है।

—पं० नन्दकिशोर जी शर्मा वैद्यरत्न
आगर (मालवा) म० प्र०

श्री कालूराम सेन 'सविता'

नाम औषधि—अश्विनी कुमार रस।

ग्रन्थ निर्देश—अनुपान ज्ञान तरंगिणी, रतन एन्ड को, दरीबा कलां, दिल्ली, उक्त रस स्वर्ण चिकित्साविद आचार्य प्रवर अश्विनी कुमार द्वारा निर्मित है।

घटक—सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, अफीम, बच्छनाग, पीपलामूल, लवंग, जमालगोटा, हरिताल, टंकण, गन्धक, पारा–प्रत्येक १ तोला।

प्रत्येक द्रव्य के गुण संक्षेप में।

१. **सौंठ**—उष्णवीर्य, वात कफनाशक, रुचिकारक, पाचन, आमवात, विबन्ध, वमन, श्वास, कास, आनाह, आध्मान, शोथ, अर्श, हृदशूलनाशक।

२. **मिर्च**—कटुरस, उष्णवीर्य, कफवातहर, दीपन, तीक्ष्ण, पित्तकारक, रूक्ष, कास, श्वासशूल एवं कृमिनाशक।

३. **पीपल**—वातकफ शामक, दीपन, तृप्तिघ्न, वातानुलोमन, शूल शामक, मृदुरेचक, यकृदुत्तेजक, प्लीहानाशक, कृमिनाशक, रक्तवर्धक एवं शोधक, श्वास कासहर, हिक्का हर, मूत्रल, कुष्ठनाशक, ज्वरघ्न, रसायन।

४. **हरड़**–त्रिदोष नाशक, दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक, अनुलोमक, मृदुरेचक, कृमिघ्न, शोथहर, वृष्य, मूत्रल, कुष्ठनाशक, ज्वरघ्न, रसायन।

५. **आंवला**—पित्तशामक, दाह प्रशमन, चक्षुष्य, केश्य, दीपन अनुलोमन, बृंहण, रसायन आदि।

६. **बहेड़ा**—मधुर रस, विपाक, कषाय रस, कफपित्त नाशक, उष्णवीर्य, मलभेदक, कासनाशक, कृमिनाशक।

७. **लौंग**—कटुतिक्त रसयुक्त, पाचन, दीपन, वातानुलोमन, कफनाशक, मूत्रल, रुचिकारक, दुर्गन्धनाशक, सुगन्धित, वृष्य, कृमिनाशक।

८. **गन्धक**—वीर्य वर्धक, अग्निवर्धक, कण्डू, पामा, दाद, कुष्ठ, चर्मरोग नाशक, त्रिदोषनाशक, जीर्णज्वर, प्रमेह, धातुरोग, इन्द्रलुप्त, कान्ति वर्धक, उष्णवीर्य आदि।

९. **टंकण**—कफ नाशक, पित्त वर्धक, अग्नि वर्धक, किंचितवात नाशक, श्वास, कास, आध्मान अनेक व्रण और विषनाशक।

१०. पारा—मधुर, अम्ल, कटु तिक्त, कषाय, स्निग्ध, त्रिदोष नाशक, रसायन, योगवाही, महावृष्य, दृष्टि एवं बलवर्धक, सर्वरोग नाशक, कुष्ठनाशक, पुष्टिकारक, राजयक्ष्मा नाशक, असाध्य रोगों का साधक, अतुल बलवीर्य वर्धक।

११. हरताल—लघु स्निग्ध, कटु एवं कषाय रस, वीर्योष्ण, दीपन, पाचन, कफवात शामक, लेखन, कृमिनाशक, अनुलोमन, रक्तशोधक, शोथहर, आर्तवजनन, कुष्ठ नाशक, ज्वरघ्न, बलवर्धक।

१२. पीपलामूल—पीपलामूल में पीपल के ही समान गुण होते हैं। अतः लिखने की आवश्यकता ही नहीं।

१३. जमालगोटा—तीक्ष्ण, उष्ण, चरपरा, भारी, स्निग्ध, दीपक, रेचक यह तिक्त विरेचक है।

१४. अफीम—रूक्ष, तिक्त, कषाय रस, कटु, वीर्योष्ण, मादक, कफवात शामक, पित्त प्रकोपक, अधिक मात्रा में प्रयोग से ओजक्षय, वायु वृद्धि।

१५. वत्सनाभ—शुद्ध वत्सनाभ प्रसेक कारक, ज्वरघ्न, मधुर, चरपरा कटु, कषाय, उष्ण व्यवायी, विकासि, योगवाही, मदकारी, लघु, पुष्टिकारक एवं बलवर्धक है।

निर्माण विधि

सर्व प्रथम गन्धक पारद को सूक्ष्म कज्जली बनावें। अन्य द्रव्यों का वस्त्रपूत चूर्ण कर पुनः सब औषधियों को खरल में ३२ तोला गोदुग्ध से मर्दन कर तदनन्तर ३२ तो. गोमूत्र से, फिर ३२ तोला भांगरे के स्वरस से सूक्ष्म खरल कर चने प्रमाण वटी निर्माण कर लें।

मात्रा—प्रातःसायं १-१ वटी एवं रोगी के बलवनुसार एवं स्वयं बुद्धी अनुसार प्रयोग करावें।

अनुपान भेद से औषधि प्रयोग

रोग	अनुपान
प्रमेह	हल्दी के साथ
नपुंसकता	मधु के साथ
ज्वर	सौंठ के साथ
मुंह दुर्गन्ध	पान में तज के साथ
शीत ज्वर	कपास के रस के साथ
एकतरा ज्वर	तुलसी रस, शक्कर सौंठ से
तृतिपक ज्वर	मिर्च, जीरा, तुलसी रस से
चतुर्थक ज्वर	भृङ्गराज रस से
मस्तक रोग	नींबू रस से
प्लीहा एवं उदर रोग	इन्द्रायण रस से
जीर्ण ज्वर	शक्कर के साथ
बृद्धि वर्धनार्थ	ब्राह्मी स्वरस से
आम रक्तातिसार	जायफल क्वाथ से
सूतिका रोग	हल्दी घृत हीरा बोल के साथ

— वैद्य श्री कालूराम सेन "सविता"
वैद्य विशारद, आयुर्वेद वारिधि डी. एस. सी. ए
हाजीपुर, सिर
जि० विदिशा म० प्र०

इन्दुकला वटी

कविराज श्री गिरधारीलाल मिश्र एम. एस-सी. (ए), ए. एम. बी. एस.

योग नाम—इन्दुकला वटी।

ग्रन्थ नाम—भैषज्य रत्नावली मसूरिकाधिकार।

क्रम सं.	घटक द्रव्य	तौल	निर्माण प्रक्रिया
१	शुद्ध शिलाजीत	सब समभाग	तुलसी के रस में ३ दिन खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया में सुखा लें।
२	लौह भस्म		
३	स्वर्ण भस्म		

मात्रा—१ से २ गोली (१२० मि.ग्रा. से २४०मि.ग्रा.

सेवनकाल—प्रातःसायं एवं आवश्यकतानुसार।

अनुपान—मधु, दूध। उदर साफ हो तो द्राक्षादि क्वाथ से और मलावरोध हो तो निम्बादि क्वाथ से देना चाहिए।

गुण उपयोग—इन्दुकलावटी, मसूरिका, विस्फोटक, लोहित ज्वर और सब प्रकार के व्रणों को दूर करती है। मसूरिका रोग में यह योग प्रशस्त है। मसूरिका कीटाणुजन्य रोग है तथा कीटाणुओं का विष रक्त में लीन होने

पर शारीरिक उत्ताप १०२° से १०४° तक बना रहना, तेजनाड़ी, तृषावृद्धि, बार-बार प्रलाप और शक्तिपात आदि लक्षण उपस्थित होकर रोग के गम्भीर रूप धारण कर लेने पर प्रबल घातक अवस्था में भी इन्दुकलावटी बिल्कुल निर्भय और श्रेष्ठ औषधि है जिसके सेवन से जीवन की रक्षा होती हैं।

शिलाजीत—अपक्रांति नाशक, प्रदाहहर, और अन्तरोत्पन्न पिडिका नाशक है।

लौहभस्म—रक्त प्रसादन, सेन्द्रिय विषहर, रक्तवर्धक, बल्य है।

स्वर्ण भस्म—मस्तिष्क शोधन, कीटाणुनाशक, और हृदय शक्तिदायक है।

तुलसी स्वरस—ज्वरघ्न, मूत्रजनन और वातशमन कारक है।

अतः अपने तीव्र कीटाणुनाशक प्रभाव के कारण मसूरिका रोग नाशनार्थ उक्त योग प्रशस्त है ही सभी प्रकार के व्रण रोगों में भी दी जाती है।

द्रष्टव्य—रुग्ण को गर्म किया हुआ शीतल जल पिलावें। शरीर पोषणार्थ आवश्यकता हो तो पानी में थोड़ा दूध भी मिलाया जा सकता है पर प्रलापावस्था और शक्तिपातावस्था में दूध न देना हितकर है।

इन्दु वटी

श्री कविराज गिरिधारी लाल मिश्र

योग नाम—इन्दुवटी।

ग्रन्थ का नाम—भैषज्य रत्नावली कर्ण रोगाधिकार।

घटक	घटक द्रव्य	तौल	निर्माण प्रक्रिया
१.	शु. शिलाजीत	१२ग्रा.	घटक द्रव्यों को लेकर खरल में घोंटकर मकोय, शतावरी, आंवला, कमल के रस से पृथक-पृथक भावना देकर २-२ रत्ती की गोली बना लेवें। स्वर्ण भस्म के स्थान में स्वर्ण वर्क ले सकते हैं।
२.	अभ्रक भस्म	१२ ,,	
३.	लौह भस्म	१२ ,,	
४.	स्वर्णभस्म	३ ,,	

मात्रा—गो गोली (२ रत्ती, २४० मिग्रा०)।

अनुपान—आंवला स्वरस वटी को पीसकर आंवले के रस में मिलावें।

समय—प्रातः काल।

गुण और उपयोग—भैषज्य रत्नावली के कर्णरोगाधिकार में उल्लिखित यह वटी कर्ण रोगों के लिए अतीव गुणकारी बताई गयी है। विशेषतः कर्णनाद (बिना कारण कान में आवाज आना) में प्रातः काल १ गोली आंवले के रस में मिलाकर लेना चाहिए। इस योग की प्रशंसा में शास्त्रकार ने लिखा है कि जैसे संसार को अमृत देकर चन्द्रमा संसार के रोगों को दूर करता है इसी प्रकार यह 'इन्दुवटी' सब रोगों के तापों का नाश करती है। कर्णरोग, वातरोग, २० प्रकार के प्रमेह को नष्ट करने में सक्षम है।

शिलाजीत—वात नाशक, पीडिका नाशक, मूत्र रोग, प्रमेह रोग नाशक, शक्ति-स्फूर्तिदायक है। अभ्रक भस्म—वात नाड़ियों की उग्रता को दूर कर उनका पोषण करती है। मस्तिष्क की कलाओं को सक्रिय एवं बलवान् बनाती है। लौह भस्म रक्तवर्द्धक, शक्तिवर्धक है। स्वर्ण शरीर के प्रत्येक कोषाणु की पाचन क्रिया के लिए लौह परमावश्यक है। स्वर्ण भस्म कीटाणु नाशक है तथा योगवाही है। एतदर्थ स्वर्णघटित योग अपनी चमत्कारिक आशुगुणकारिता के लिए प्रसिद्ध है। इस प्रकार बहुमूल्य उपादानों से निर्मित 'इन्दुवटी' कर्णरोगों में तो प्रशस्त है ही अन्य वातविकार तथा मूत्रविकारों में भी अत्यन्त लाभदायक योग है।

—कविराज श्री गिरिधारीलाल मिश्र
एम. एस. सी. (ए), ए. एम. बी. एस.
आयुर्वेद वाचस्पति, साहित्यायुर्वेदरत्न
प्रधान चिकित्सक–केदारमल मेमोरियल आयुर्वेदिक चिकि०,
तेजपुर (असम)

उदकमञ्जरी रस

ग्रंथ नाम—भैषज्य रत्नावली, ज्वराधिकार।

सं.	घटक द्रव्य	तौल	निर्माण प्रक्रिया
१	शु. पारद	१०ग्रा.	पहले पारद-गंधक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर एक जीव करलें फिर रोहू मछली के पित्त से तीन भावना देकर २-२ रत्ती की गोली बनालें।
२	शु. गंधक	१० ,,	
३	शु. टंकण	१० ,,	
४	कालीमिर्च	१० ,,	
५	चीनी	४० ,,	

मात्रा—२ रत्ती (२४० मिग्रा०)।

अनुपान—अदरख का रस।

सेवन विधि—२ रत्ती की मात्रा में अदरख स्वरस से।

गुण और उपयोग—यह रस एक ही दिन के प्रयोग से घोर से घोर ज्वर को तत्काल नष्ट करता है। ऐसा रसयोग सागर कार का मत है। यह योग उग्र सामदोष को अपने प्रभाव से शीघ्र दूर करता है, इससे पसीना आकर ज्वर भी उतरता है और रोगी निर्वल भी नहीं होता। इस रस के सेवन से गर्मी मालूम पड़े तो शीत उपचार करना चाहिए। वारिभक्त (चावल पकाकर उसी समय शीतल जल में डाल दिया जाय तो उसे वारिभक्त कहते हैं) छाछ तथा बैंगन का शाक खिलाना चाहिए तथा अधिक गर्मी मालूम होवें तो सिर पर पानी की धारा भी देनी चाहिए।

द्रष्टव्य—किन्हीं-किन्हीं पुस्तकों में 'उदक मञ्जरी' के स्थान में यह रस 'चन्द्र शेखर' नाम से भी कहा गया है। योगरत्नाकरकार ने इसी योग को 'चन्द्रशेखर रस' के नाम से उल्लेख करते हुए बताया है कि यह रस अति तीव्र कफ-पित्त ज्वरनाशक है। रसरत्न समुच्चय में यही रस जल-मञ्जरी' के नाम से थोड़ा परिवर्तन करके लिखा गया है। रसेन्द्रसार सं ह में कहा गया है कि यदि "शर्करा" के स्थान में 'शुद्ध मनःशिला" डाल कर बनाने से 'चन्द्र शेखर' बनता है जो निराम ज्वर को दूर करने वाला है। रसयोग सागर में इसके दो योग उल्लिखित हैं जिसमें एक योग उक्त भैषज्य रत्नावली का तथा दूसरा रसालंकार ग्रन्थ का है, भैषज्य रत्नावली में 'सम्यक् तापे वारिभक्तं सतक्र" (अर्थात् ताप अधिक प्रतीत होने पर वारिभक्त दें) के स्थान पर रसयोग सागर का "तापे शीतं भोजयेत् तक्र भक्त" पाठ है। गर्मी अनुभव होने पर पीने के लिए ठण्डा पानी और चावल, छाछ का पथ्य दें अधिक उपयुक्त लगता है।

—कविराज श्री गिरिधारी लाल मिश्र
एम.एस-सी. (ए), ए.एम.बी.एस.
आयुर्वेद वाचस्पति, साहित्यायुर्वेद रत्न
केदारमल मेमोरियल आयुर्वेदिक, तेजपुर (असम)

श्री भाग चन्द्र जैन आयु. बृह.

शुद्ध पारा २ तोले और शुद्ध गन्धक २ तोले दोनों को खरल करके स्वल्प गजपुट में फूंक लो। फिर निकालकर उसी में शुद्ध धतूरे के बीज २ तोले, अभ्रक भस्म २ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले और शुद्ध मीठा विष २ तोले मिला दो और पानी के साथ ३ दिन तक खरल करो। यही उन्माद गज केशरी रस है। इसकी मात्रा १ रत्ती की है। और अनुपान वायु नाशक क्वाथ है। इस रस का सेवन करने से उन्माद रोग में आराम हो जाता है।

१. उन्माद (पागलपन) पर—जो उन्माद रोग से पीड़ित हैं, नींद का अभाव वात, पित्त, कफ बढ़कर अपनी-अपनी राहों को छोड़कर और मन के बहने वाली धमनी नाड़ियों में घुसकर, मन को उन्मत करने या मन में भ्रम उत्पन्न करते हैं। इसे ही उन्माद या पागलपन कहते हैं।

प्रयोग—उन्माद गज केशरी २ रत्ती, ब्राह्मी २ रत्ती, कूठ २ रत्ती, शंखाहुली २ रत्ती।

समस्त द्रव्यों को पीस छानकर सुबह+दोपहर+रात्रि ३ बार शंखाहुली के सीरप के साथ मात्रा १॥ आ० के करीब एक बार में खिलावें। शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

२. वात (वायु) रोग ८४ प्रकार के—साइका, गठिया, आमवात, समस्त वात रोगों में निम्न प्रयोग करें—

उन्माद गज केशरी २॥ रत्ती, बृहद्वात चिन्तामणिरस २ रत्ती, गोदन्ती हरताल १॥ रत्ती।

समस्त द्रव्यों को एकत्र करके सुबह+दोपहर+रात्रि ४-५ रत्ती के करीबन एक बार में शहद के साथ सेवन करें, ऊपर से रास्नादि क्वाथ पीवें।

३. अपस्मार (मृगी)—अपस्मार, अपतानक, हिस्टेरिया, पागलपन रोगों के लिये निम्न प्रयोग रामबाण है—

उन्माद गज केशरी रस २ रत्ती, चतुर्भुज रस (स्वर्ण कस्तूरी युक्त) २ रत्ती, प्रवाल चन्द्रपुटी २ रत्ती।

समस्त द्रव्यों को एकत्र करके सुबह+दोपहर+रात्रि मक्खन या (घी के साथ) १॥ आ० की मात्रा एक बार दें।

४. मूर्छा (फिट)—मस्तिष्क की वातवाहिनी स्नायु मंडल में अभाव पैदा होने से मूर्छा उत्पन्न हो जाती है चैतन्यता की याददास्त खत्म होकर घबड़ाहट पैदा हो जाती है।

उन्माद गज केशरी २ रत्ती, शुद्ध कुचला २ रत्ती, गोदन्ती हरताल २ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती।

समस्त द्रव्यों को एकत्र करके १॥ आ० की मात्रा सुबह+दोपहर+रात्रि ३ बार ठंडे पानी या दूध के साथ सेवन करने पर १५ दिन में यह रोग नष्ट हो जाता है।

—श्री डा० भाग चन्द जैन डी० एस-सी० ए०
जनता आयुर्वेद औषधालय,
परकोटा, सागर-२ (म० प्र०)

कस्तूरी भूषण रस

डा० शिवपूजन सिंह कुशवाह एम० ए०

रस सिन्दूर, कस्तूरी, अभ्रक भस्म, सुहागे की खील, सौंठ, पीपल, कालीमिर्च, भांग के बीज, कपूर, दन्ती की जड़, प्रत्येक समभाग लेवें। सर्वप्रथम काष्ठौषधियों को कूट, कपड़छन चूर्ण बनालें, पुनः भस्मों में मिलाकर अदरख रस की सात भावनायें दें। इसके पश्चात् अदरख के रस में कस्तूरी और कपूर को भली-भांति घोंटकर औषधि में मिला, कुछ देर तक घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। —भैषज्य रत्नावली

मात्रा व अनुपान—१ से २ गोली, प्रातः सायं अदरख रस और शहद के साथ दें।

गुण व उपयोग—मन्दाग्नि, श्वास, कास, कफवात जन्य रोग, पित्त कफाधिक्य रोग, त्रिदोषज घोर कास, क्षय, ऊर्ध्वजत्रुगत रोग, विषम ज्वर प्रभृति रोगों का नाशक है।

श्लैष्मिक या वात श्लैष्मिक ज्वर की प्रथमावस्था में तन्द्रा, कास, पार्श्वशूल आदि लक्षण हों, ज्वर ताप विशेष

—शेषांश पृष्ठ ३३६ पर देखें।

घटक—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गंधक २ भाग, छोटी पीपल ४ भाग, हरड़ छाल ८ भाग, बहेड़ा छाल १६ भाग, वासामूल छाल ३२ भाग।

निर्माण विधि—सर्व प्रथम पारा और गन्धक को खरल में डालकर तब तक घोटें जब तक चमक समाप्त न हो जाये। चमक समाप्त होने पर शेष चारों काष्ठौषधियों का पृथक-पृथक कूटकर किया हुआ सूक्ष्म चूर्ण मिला देवें। तत्पश्चात् बब्बूल की छाल का (ताजा छाल का स्वरस अथवा सूखी छाल का क्वाथ) रस या क्वाथ इतना डालें कि वह भीज जाये फिर खरल में खूब घोटें। शुष्क होने पर पुनः बब्बूल रस या क्वाथ में दृढ़ मर्दन करें। इस प्रकार २१ बार भावना दें। प्रत्येक बार स्वरस क्वाथ ताजा तैयार करके डालें और सूखने पर ही दूसरी भावना दें, क्योंकि अधिक समय तक गीला पड़े रहने से औषधि गुणहीन हो जाती है। अतः सूखने तक घोटते रहें। घोटना बन्द करने पर खरल को अच्छी तरह ढक दें ताकि उसमें धूल गर्द न पड़ने पाये। इसी प्रकार जहाँ धूल गर्द उड़ती हो वहां पर खरल में न घोटें। ३-३ रत्ती की गोलियां बनायें।

मात्रा—१-१ गोली (३-३ रत्ती) दिन में ३ या ४ बार।

अनुपान—ग्रन्थकार ने मधु के साथ सेवन करना बताया है। वैसे चिकित्सक अपनी बुद्धि से दोषों का विचार करके विभिन्न अनुपान की योजना कर सकते है। यथा—पित्तज कास में मिश्री के साथ, वातपित्तज में च्यवनप्राश के साथ दूध से और वातिक शुष्क कास में यवक्षार और नवनीत या मक्खन के साथ दें। रक्तकास में मिश्री वंशलोचन इलायची मिलाकर वासावलेह के साथ इसी प्रकार विद्वान वैद्य अनुपान की योजना करें।

गुण—

इस प्रकार कास कर्तरी रस के घटकों का विवेचन करने पर ज्ञात होता है कि यह रस उष्णवीर्य कषाय रस प्रधान है। यह कफ नाशक, वातकफ नाशक, अनुलोमक, स्रोतोविशोधक है। कण्ठ और श्वास नलिका पर अधिक प्रभावकारी है। स्वरभेद में लाभकारी है। इसके सेवन से कफ आसानी से निकल जाता है। वात कफज कास में विशेष लाभ करता है। पित्तज में भी मिश्री के साथ उपयोगी है। गले की खराबी में १-१ गोली मुख में रखकर चूसें। दिन में ६-७ गोली तक ले सकते हैं। इससे वार-वार खांसी आना और गले की खराबी में आराम आता है।

—पीयूषपाणी राजवैद्य श्री ईश्वरीदत्त शर्मा
आयुर्वेदाचार्य,
धन्वन्तरि आयु० चिकित्सालय,
२६४ आर्य नगर, अलवर (राज०)

पृष्ठ ३३५ का शेषांश

हो, तो इसका सेवन करना चाहिए। इसी प्रकार श्लेष्मप्रधान या वातश्लेष्म प्रधान सन्निपात ज्वरों की प्रथमावस्था में कास, तन्द्रा, सिरदर्द, सर्वाङ्गशूल और पार्श्वशूल आदि लक्षण हों, ज्वर १०३ डिग्री से ऊपर हो तो इसका सेवन करना चाहिए। सन्निपात ज्वर (त्रिदोष) में जिस समय हाथ-पैर ठण्डे हो रहे हों या नाड़ी की गति क्षीण होती जा रही हो, उस समय 'कस्तूरी भूषण रस' देने से नाड़ी की गति ठीक हो जाती है और पैर भी गर्म होने लगते हैं। सन्निपात ज्वर में अवस्थानुसार दूसरी औषधियों का तो प्रयोग करते ही रहना चाहिए, किन्तु साथ ही साथ 'कस्तूरी भूषण रस' का भी प्रयोग करते रहने से सन्निपात ज्वर में नये उपद्रव नहीं बढ़ पाते है। शोथ युक्त विषम ज्वर में और कास-श्वास में भी इसके सेवन से लाभ होता है।

—डा० शिवपूजनसिंह कुशवाह एम.ए., साहि०
कानपुर

वैद्य महन्त श्री सन्तराम मेहरदास

सन्दर्भ ग्रन्थ—रस योगसागर।

घटक—मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, शुक्ति भस्म, वराटिका (कपर्द) भस्म, शंख भस्म, शुद्ध स्वर्ण गैरिक और सत्व गिलोय। इन सात औषधियों को सममात्रा में लेकर खरल करें और शीशी में सुरक्षित रखें।

मात्रा—१ से ३ रत्ती। दिन में दो बार।

अनुपान—जीरा और मिश्री दोनों के मिश्रित चूर्ण के साथ। अम्लपित्त में आंवले के चूर्ण सहित घृत मिलाकर।

गुण—यह योग शीतवीर्य, क्षोभनाशक, शक्तिदायक होने के साथ-साथ पचनक्रिया, रुधिराभिसरण क्रिया, वात वहन क्रिया तथा मूत्रमार्ग पर शामक प्रभाव रखता है।

जीर्ण ज्वर, पित्तज विकार, अम्लपित्त, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, चक्कर, उन्माद, अपस्मार, मस्तक शूल, सोमरोग, प्रदर, रक्तपित्त आदि रोग भी इसके प्रयोग से दूर होते हैं। मस्तिष्क, निर्बलता, मूत्रदाह, मुखपाक, रक्तार्श, सगर्भा की वमन और मानसिक त्रास इत्यादि में भी लाभप्रद है।

यह शीतवीर्य होने से इसका शामक प्रभाव पाचनक्रिया रुधिराभिसरणक्रिया, वात वहन क्रिया और मूत्र मार्ग पर होता है। इन अवयवों में उत्पन्न दाह कम होता है।

इसका कार्य भ्रम, चक्कर आदि विकारों से लेकर उन्माद की परिस्थिति पर्यन्त मस्तिष्क के विकार, आमाशय से लेकर सब महास्रोतों के विकार, मूत्राघात, मूत्रोत्सर्ग, मूत्रकृच्छ्र आदि मूत्रविकार तथा सामान्य रक्तस्राव और नाक से रक्तस्राव व रक्तपित्त की भयंकर स्थिति तक, सब पर विभिन्न अनुपानों से उपयोगी है।

इस योग का निर्माण अधिकतर सुधा (चूना) कल्प से होने के कारण शक्ति वर्द्धक भी होता है। जीर्णज्वर में शक्तिपात होता ही है उसे यह दूर करता है।

इसके योग घटक में शंख कपर्दिक होने से प्लीहावृद्धि दूर होकर वह स्वस्थ स्थिति में आ जाता है। मन्दाग्नि दूर होकर क्षुधा लगने लगती है।

शीत सह ज्वर (मलेरिया ज्वर) में कड़वी (तिक्त) औषधियों का अधिक उपयोग किया जाता है। उनमें भी क्वानाइन तो मुख्य रूप से प्रयोग होती है, उसके अधिक उपयोग से बधिरता, मंदाग्नि, भ्रम, अरुचि, अन्न की इच्छा का कम हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। उस अवस्था में भी यह उपयोगी है। यदि उक्त लक्षणों के साथ साथ निस्तेजता, उबाक, उदर पीड़ा, बड़ी-बड़ी वमन भी हो तो यह स्वर्ण माक्षिक भस्म के साथ देने से अधिक लाभदायक होती है।

पित्त के विदग्ध होने से रक्त भी विदग्ध हो जाता है। इस हेतु से रक्तवाहिनियों की श्लैष्मिक कला विकृत होकर दीवार पतली हो जाती है। ऐसी स्थिति में चूने का अंश बहुत कम हो जाता है। इस रक्तपित्त के साथ सर्वांग में दाह, निर्बलता, मूत्र में दाह, जहां से रक्तस्राव होता है वहां से गरम-गरम निकलता है। वह पित्त प्रधान रक्तपित्त होने से यह उत्तम शमन कार्य करता है।

पित्त भूयिष्ठ—वात भूयिष्ठ शिरःशूल में भी इससे उत्तम लाभ मिलता है। जिन्हें बहुत दिनों से शिरदर्द, शिरदर्द के साथ-साथ वमन, वमन होने से शिर दर्द में कमी, ऐसी अवस्था में यह विशेष उपयोगी है।

यदि वमन होने पर भी शिर दर्द बना ही रहे तो उस अवस्था में सूतशेखर का उपयोग करना चाहिए।

पित्तज शिरःशूल में रोगी, अति व्याकुल, क्रोधी, जरा से कारण पर ही शिर फूटने लगना, अस्पृन शील व जोर से हँसना, जोर से बोलना, बालकों का रोना, गाजा वाजा की आवाज पक्षियों का कलरव इत्यादि भी सहन नहीं होता। रोगी की मानसिक स्थिति बड़ी नाजुक हो जाती है, ऐसी स्थिति में कामदुधा अधिक लाभप्रद है। चूंकि यह पित्त शामक अधिक है। सूतशेखर रस से पित्त की उत्पत्ति नियमित होती है तथा अधिक तीव्र गति से या अधिक परिमाण में उत्पन्न नहीं होता और कामदुधा रस से पित्त की तीक्ष्णता, अम्लता कम होकर उसकी प्रवलता शमन होती है। इसका ध्यान रखकर ही दोनों का उपयोग करें।

जागरण, मानसिक श्रम की अधिकता, अति पढना, सूर्य के ताप या अधिकाधिक सेवन से उत्पन्न नेत्रों में त्रास पहुँचता है शिर दर्द होने लगता है। यदि क्षोभ बढ़कर मस्तिष्क के विकार तथा धारणा शक्ति कम हो जाती हैं तो उस अवस्था में भी कामदुधा सदृश क्षोभ नाशक शक्तिदायक औषधि की योजना उपयोगी रहती है जैसे प्रवाल पिष्टी, मुक्तापिष्टी आदि।

पित्तज विकार जब आमाशय में होता है तब खट्टी डकारें, शिर दर्द, चक्कर, खट्टी, कड़वी वमन होने लगती हैं। उसे अम्लपित्त कहा जाता है। पित्त का स्राव आवश्यकता से अधिक होने से होता है या पित्त की तीव्रता बढ़ जाती है। पित्तस्राव की अधिकता से भोजन खट्टा हो जाता है। खट्टी वमन होती है। उस समय सूतशेखर अधिक उपयोगी है। परन्तु पित्त की तीव्रता अधिक होकर वमन होने से अधिक त्रास होना, पित्त थोड़ा-थोड़ा निकलना आदि लक्षण होने पर कामदुधा उपयोगी है। अनुपान में आमलक चूर्ण और घी, या नागकेक्षर चूर्ण और घी मिलाकर देना चाहिए। जिससे पित्त की तीव्रता से बाघात पहुँचकर अम्लपित्त शमन हो जाय।

अम्लपित्त रोग के बढ़ जाने पर क्षोभ और दाह होते हैं फिर क्वचित सूक्ष्म-सूक्ष्म व्रणों की उत्पत्ति होती है। इस तरह के अम्लपित्त जनित विकारों पर कामदुधा का उत्ताम उपयोग है।

इसके योग में स्वर्णिक गेरू होता है जो अधिक शामक स्तम्भक होने से भी पित्त का स्राव कम हो जाता है रक्त और रक्तवाहिनियों का प्रसादन भी हो जाता है। पित्तजनक क्षोभ भी दूर हो जाता है। पित्तातिसार, रक्तपित्तातिसार, पर कामदुधा का शामक प्रभाव है। किसी औषधि के योग से उत्पन्न अन्तस्त्वचा पर क्षोभ होता है तो उसका शमन भी इससे हो जाता है। अधिकतर देखा जाता है कि रक्तातिसार और पित्तातिसार में लघु और बृहदन्त्र की अन्तस्त्वचा का क्षोभ होता है। उदर में दाह होता है, बार-बार जल पीने की इच्छा होती है, शौचादि जाने पर गुदा में जलन, इत्यादि पित्तज विकारों में कामदुधा उत्ताम कार्य करता है।

संक्षेप में यह ही समझना चाहिए जब पित्त विदग्ध हो पित्त विकृत हो उसका स्राव अधिक हो, उससे उत्पन्न विकारों में, चाहे वे विकार किसी अवयव विशेष में हों या सर्वांग में, उदर में, हृदय में, नेत्रों में, गवीनियों (Uretes), गर्भाशय में कहीं भी हों उन सब में कामदुधा उपयोग होता है। उसमें अनुपान भेद कर सकते हैं।

बालकों की काली खांसी में भी उपयोगी है। अति निर्बलता आ जाने पर आमाशय में अधिक उग्रता होने पर अन्य औषधियां निष्फल होने पर कामदुधा का उपयोग करके अवश्य देखें।

—वैद्य महन्त श्री सन्तराम मेहरदास लीहरे वाले
थाना बाजार, रायकोट (लुधियाना)

डा. योगेश चन्द्र मिश्र बी.ए.एम.एस.

ग्रन्थ—भैषज्य रत्नावली

विभिन्न कारणों से उत्पन्न स्वरभेद की अवस्थाओं में किन्नर कण्ठ रस अत्यन्त लाभदायक है।

योग—शुद्ध पारद १० ग्राम, शुद्ध गन्धक १० ग्राम, अभ्रक भस्म १० ग्राम, स्वर्णमाक्षिक भस्म १० ग्राम, लौह भस्म १० ग्राम, वैक्रान्त भस्म २.५ ग्राम, रौप्य भस्म ५ ग्राम, स्वर्ण भस्म १.२५ ग्राम।

निर्माण विधि—प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनाकर फिर शेष द्रव्यों को मिलाकर घोंटें। इसके उपरान्त वासा स्वरस, भारंगी, बड़ी कण्टकारी, अदरख तथा ब्राह्मी इनके स्वरस अथवा क्वाथ से प्रथक-प्रथक भावित कर दो रत्ती (२५० मि. ग्रा.) परिमाण की गोली बनाकर छाया में सुखा लें।

उपयोग—भैषज्य रत्नावली के अनुसार रुद्र निर्मित यह रस स्वरभेद, भयंकर कास, श्वास, कफज रोग, तथा वात कफ जन्य रोगों को शीघ्र ही नष्ट कर देता है। इस रस के निरन्तर सेवन से मनुष्य किन्नर (गन्धर्व किन्नर देवलोक के गायक सम्पद्राय के लोग माने गये हैं) के समान मधुर स्वर वाला हो जाता है।

मात्रा—१ वटी प्रातःसायं।

अनुपान—इस रस को खाकर खांड तथा शुण्ठी चूर्ण मधु के साथ मिलाकर चाटने से स्वर मधुर हो जाता है।

किन्नर कण्ठ रस के उपादानों एवं भावना द्रव्यों का योग अत्यन्त उपयोगी है। यह स्वर तन्त्रियों को बल प्रदान करता है, स्वर तन्त्रियों में संचित जलीयांश और प्रदाह जन्य परिस्थितियों को दूर करता है। वैक्रान्त, स्वर्ण तथा रौप्य आदि का योग होने के कारण यह रस क्षयज एवं क्षतज तथा अन्य उपसर्ग जन्य जीवाणुओं को भी नष्ट करने में सक्षम है।

यह रस सभी प्रकार के उपसर्गों से उत्पन्न Laryngitis, Pharyngitis आदि स्थितियों में भी अति शीघ्र लाभ करता है।

—साहित्यायुर्वेदाचार्य डा० योगेशचन्द्र मिश्र
बी. ए. एम. एस., पी. एच. डी.
रीडर एवं विभागाध्यक्ष—मौलिक सिद्धान्त विभाग
ल० ह० राज० आयु० कालेज, पीलीभीत

बृ० काम चूड़ामणी रस (भै.र.)

मोती भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, स्वर्ण भस्म, कपूर (भीमसेनी), जावित्री, जायफल, लवंग, वंग भस्म प्रत्येक १-१ ग्राम, चांदी भस्म आधा ग्राम, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर प्रत्येक आधा-आधा ग्राम।

निर्माण विधि—काष्ठादि औषधियों का वस्त्रपूत चूर्ण करें। कपूर को खरल में डालकर महीन कर लें। फिर समस्त भस्मों को तथा काष्ठादि औषधियों के चूर्ण को मिलाकर शतावरी के रस से सात भावना दें और १-१ रत्ती की वटी बना लें।

मात्रा—२-२ वटी दूध की मलाई में या बादाम के हलवे के साथ सुबह शाम देवें।

पथ्य—तेल, गुड़, खटाई का परित्याग करें दवा लेने के आधा घण्टा बाद दूध लेवें। सेव, मोसम्मी, दाडिम, अंगूर, अंजीर, आम आदि ऋतु फल सेवन काल में खावें।

बादाम, किशमिश, काजू आदि सूखे मेवा भी पथ्य हैं।

यह रस विविध रोगों को नष्ट करता है। इसके सेवन से रतिशक्ति बढ़ती है। यह वीर्यवर्द्धक तथा लिङ्गदार्ढ्य

कर है। इसके प्रयोग से ध्वजभङ्ग, प्रमेह, मूत्ररोग, मन्दाग्नि, शोथ, स्त्रियों के आर्तव सम्बन्धी रोग नष्ट होकर पुष्टि होती है।

सर्व प्रथम रामजीवन नामक युवक पर सन् १९५७ में 'रंगून' (वर्मा) में यह रस वनाकर अजमाया गया। पूर्ण रूप से लाभान्वित हुआ। यह पूर्ण रूप से ध्वजभङ्ग युक्त था। दवा ६० दिन तक दी गई आशातीत लाभ हुआ। यह रस वहुत उत्तम है।

—श्री वैद्य चन्द्रशेखर जी व्यास
चूरू (राजस्थान)

क्रव्याद रस

योग—शुद्ध पारा ४ तोला, शुद्ध गन्धक ८ तोला, ताम्र भस्म २ तोला, लौह भस्म २ तोला, शुद्ध टंकण १६ तोला, काला नमक ८ तोला, कालीमिर्च ४० तोला, पहले पारा और गंन्धक की कज्जली बना ताम्र और लौह भस्म को डाल खूब घोटें। इसके बाद एरण्ड के पत्तों पर पर्पटी की भांति गलाकर पर्पटी वनालें। फिर पर्पटी को चूर्ण कर लोहे के पात्र में डाल ४ सेर जम्बीरी नीवू का रस डाल मन्द मन्द आंच पर पकावें। जब गाढ़ा हो जाय तब इसमें पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सौंठ के क्वाथ से ५०भावना दें। फिर अम्लवेत के क्वाथ से भी ५० भावना दे सुखालें। सूखने पर टंकण, कालानमक और कालीमिर्च को कूट कपड़छन चूर्ण को इसमें मिला दें। बाद में चने के क्षार के पानी की ७ भावना देकर सूखा लें। यही द्रव्याद रस के निर्माण की संक्षिप्त प्रक्रिया है। मात्रा—२ रत्ती

गुण—नामाभिधान में ही क्रव्य मांस को अद् खाने वाला का महान गुण विद्यमान है जिसे छाछ के साथ सेवन करने से वसापाचन (Fat Metabolism) दोष के कारण मेदोभिवृद्धि से स्थूलकाय वाले पुरुषों की तोंद को नष्ट करने वाला, आमदोष को नष्ट करने में लशुनादि वटी और चित्रकादि वटी से भी बढ़कर कार्य करने वाली, गरिष्ठ से गरिष्ठ भोजन को अधिक मात्रा में खा लेने पर भी ६ घण्टे में पचा देने वाली, पाचक पित्त को सवल वना पित्त-रस (Bile juice) को यथासमय उत्सर्जित करने के महान गुण के कारण ही अलसक विसूचिका में (Calomel ½ ग्रेन सोडावाई कार्व ५ ग्रेन की १ मात्रा को प्रति १५ मिनट पर देने के एलोपैथिक विधान से) अजीर्ण कण्टक रस से भी बढ़कर कार्य करने वाली प्रशस्त औषध है।

संक्षिप्त में आमदोष को पचाने में उत्तम कार्य करने के कारण यह अग्निमांद्य, विषम ज्वर, काला ज्वर, बादी बवासीर में इस रस को शुण्ठी चूर्ण और सेंधानमक मिला मठ्ठा के साथ सेवन कराने से बहुत उत्तम लाभ होता है।

कफाधिक्य के कारण जठराग्नि मन्द होने से ग्रहणी, संग्रहणी आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में दीपन पाचन औषधि के रूप में क्रव्यादि रस का गर्म पानी से सेवन अच्छा कार्य करता है।

श्वास रोग–मन्दाग्नि हो जाने से अजीर्ण हो जाता है। जिससे वायु सारे पेट में भर जाती है और इसका नीचे निस्सरण न हो उर्ध्वगामी होने पर वार-वार डकारें आने लगती हैं। वायु की वृद्धि से श्वास की गति में भी तेजी आ जाती है जिससे श्वास ज्यादा चलने लगती है और हृदय निर्वल हो जाता है। फुफ्फुस के आस-पास कफ भर-जाने से (Bronchial Asthma) के लक्षणों में यह रस बहुत शीघ्र कार्य करता है।

—विशेष सम्पादक

गर्भ चिन्तामणि रस

गर्भ चिन्तामणि रस—जातीफल चूर्ण, शुद्ध टंकण, शुण्ठी, व्योष, मरिच, पिप्पली, शुद्ध हिंगुल, ताम्र प्रत्येक १०-१० ग्राम।

नोट—कई वैद्य ताम्र डालते हैं। ताम्र अधिक गुणकारी अनुभव में प्राप्त हुआ।

इनको पीसकर मिलायें। उसके जम्बीरी रस से भावना देकर घोटकर २५० मिग्रा० की वटी बनायें। आर्द्रक रस या गरम जल से देने पर सूतिका के रोगों में लाभदायक है।

इससे उत्तम योग प्रचलित वृहत् गर्भ चिन्तामणिरस है—

शुद्ध पारद, गन्धक, स्वर्ण भस्म, लोह भस्म, रजत भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, शुद्ध हरताल, बंग भस्म, अभ्रक भस्म सब समान भाग मिश्रित कर कज्जली मिलायें। उसके पश्चात् ब्राह्मी पत्र रस, भृङ्गराज, वासाका स्वरस, पर्पट स्वरस, दशमूल क्वाथ की पृथक-पृथक ७-७ भावनायें देकर १२५ मिग्रा० की वटी बनायें। मधु के साथ देने से विशेष रूप से लाभप्रद है।

गर्भ चिन्तामणि रस के उपयोग

गर्भिणी ज्वर—सन्निपात विकार, शरीरदाह, रक्त, प्रदर सूतिका रोग सेवनीय धातुओं में लोह भस्म, अभ्रक भस्म और स्वर्ण भस्म इस योग में है।

गर्भावस्था (नौ मास के भीतर के काल)—साधारणावस्था (१) वमन–प्रातः काल, (२) मूत्रप्रवृत्ति की अधिकता कुछ मास तक, (३) मूत्रावरोध (अल्व्यूमिन के होने पर) (४) विबन्ध (वस्ति का प्रयोग कभी न करें)–स्नेह के प्रयोग से दूर करें, पंचसकार चूर्ण दें। (५) अपचन–अन्तिम मास में आध्मान और अजीर्ण रोग, लघु और अल्प आहार (६) आक्षेप–मांसपेशियों में शूल (७) पैरों की शिरायें फूलना (८) पाण्डु।

वर्तमान में अनेक युवतियां विवाह से पूर्व ही अनेक रोगों से पीड़ित होती हैं यथा हृदयरोग, राजयक्ष्मा, वृक्करोग, मधुमेह इत्यादि। रुग्णायों को गर्भ रहने पर गर्भ चिन्तामणि इतना लाभ नहीं करती उन्हें वृहत् गर्भ चिन्तामणि ही दें। आधुनिक चिकित्सक गर्भस्राव करवाते हैं परन्तु आयुर्वेद में यह महान औषधि रुग्णा और गर्भ दोनों की रक्षा करती है।

इसके अतिरिक्त सूतिका रोगों (Puerperal disease) अंगमर्द ज्वर, कंपन, तृषा, शरीर का भारीपन, शोथ, शूल इत्यादि प्रायः राजयक्ष्मा, वृक्करोग, मधुमेही रुग्णाओं को हो जाते हैं उनको इससे ही लाभ पहुँचता है क्योंकि यह रोगों के धातुक्षय होने पर ही होते हैं। जीवनीय धातु के अभ्रक, स्वर्ण, लोह, धातुक्षयजन्य विकारों में उत्तम लाभ देता है।

चरक–आयुर्वेद शास्त्र में सूतिका रोग कृच्छ्र साध्य होते हैं क्योंकि गर्भ वृद्धि से शरीर की सभी धातुयें क्षीण व शिथिल हो जाती हैं। गर्भ के प्रसव काल की वेदना, क्लेद व रक्तस्राव से रोगी दुर्बल हो जाता है ऐसी अवस्था में यही औषध लाभ देती है।

गर्भ धारण होते ही गर्भ रक्षार्थ और विकारों से बचने के लिए

शुद्ध पारद ४० ग्राम, शुद्ध गन्धक ४० ग्राम, लोहभस्म २० ग्राम, अभ्रक भस्म ४० ग्राम, कर्पूर, वङ्गभस्म, ताम्र भस्म, जायफल, जावित्री, गोक्षुर, शतावरी, खरैटी, गंगरेन प्रत्येक २०-२० ग्राम। कज्जली समभाग कई ग्रंथों में रस सिंदूर का प्रयोग लिखा है।

सबको कूट पीसकर शतावरी स्वरस की भावना देकर २५० मि० ग्राम की वटी बनावें।

यह गोली प्रातः और सायं गाय के मक्खन वाले दूध के साथ देने से निम्न रोग नहीं होंगे—

ज्वर, अग्निमांद्य, तृषा, दाह, कास, श्वास, हिक्का, दुर्बलता, वातवृद्धि, वमन की प्रवृति।

इसमें जीवनीय धातु लोह और अभ्रक होने से धातुओं की पुष्ठि-वृद्धि होती है। यह गर्भ और गर्भणी दोनों की रक्षा करती है

—वैद्य श्री वेदप्रकाश गुप्त बी. आई. एम.
ई-६, कृष्णानगर, दिल्ली–११००५१

आचार्य श्री हरदयाल वैद्य वाचस्पति, आयुर्वेदाचार्य

गर्भ विनोद की व्युत्पत्ति—"गर्भं विनोदयतीति गर्भ विनोदः"—इस नामकरण में योग निर्माता की हार्दिक अभिलाषा यह है कि गर्भ को प्रसन्न (स्वस्थ) रखना ही है।

गर्भाशयस्थ शिशु कैसे प्रसन्न होता है ? उसकी यह प्रसन्नता गर्भस्थ अवस्था में तब ही सम्भव है जब कि माता के आहार रस से प्राप्त होने वाले पोष्य और सन्तुलित तत्वों से भरपूर रस रक्त परिपूर्ण है। माता की अपनी शारीरिक और मानसिक दशा अनुकूल न हो तब माता के पाचक संस्थानों में विकृत दशा रहती है। अथवा पाचक पिण्डों से परिश्रुत होने वाले रसों में ही मिथ्यादि दोष की व्याप्ति उपस्थित हो तब गर्भस्थ शिशु की प्रसन्नता या स्वस्थता का प्रश्न ही नहीं उठता। गर्भ विनोद रस का पाठ इस प्रकार है—

त्रिभागं त्रिकटोर्देयं चतुर्भागश्च हिंगुलम् ।
जाति कोषं लवङ्गं च प्रत्येकं च त्रिकार्षिकम् ॥
सुवर्ण माक्षिकं चैव पलार्धं प्रक्षिपेद् बुधः ।
जलेन मर्दयित्वाथ द्विरक्ति प्रमितावटी ।
निहन्ति गर्भिणी रोगं भास्कर स्तिमिरं यथा ॥

—भैषज्य रत्नावलीस्तिरोगाधिकार

घटक—कालीमिर्च, पिप्पली, शुण्ठी चूर्ण ३ भाग (मिलित ६ तोला), शुद्ध हिंगुल ८ तोला, जावित्री चूर्ण, लवंग चूर्ण प्रत्येक ६ तोला, सुवर्ण माक्षिक भस्म ४ तोला मर्दनार्थ जल। मात्रा २ रत्ती। गर्भिणी रोग को नष्ट करने में यह वैसा ही प्रभाव करता है जैसे सूर्य अन्धकार को दूर करता है। इसकी गुण प्रशस्ति में किसी विशेष रोग का आविष्कारक ने स्मरण नहीं किया। समय, सेवनविधि और अनुपान या सहपान का भी उल्लेख नहीं। गर्भिणी को समय-समय पर अनेक कष्ट होते हैं। परन्तु किसी विशिष्ट या साधारण रोग का भी नामोल्लेख नहीं है।

इसके प्रयोग और विशिष्ट या अद्भुत महत्व के बोध का भार सुयोग्य चिकित्सक को सौंप दिया है। चिकित्सक को पूर्ण अधिकार दिया गया है कि वह अपनी सूझ-बूझ और अनुभव के आधार पर यथेच्छ प्रयोग करें।

जब आयुर्वेद का अध्ययन गुरु परम्परा पद्धति से होता था तब ऐसे योगों की ऐतिहासिक स्मरणता को जनता श्रद्धा से स्मरण रखती थी। यह रहस्य यथासमय गुरुजी द्वारा प्रयुक्त और अभूतपूर्व फल प्राप्ति का गुप्त ज्ञान सहज ही शिष्य को प्राप्त होता था। सम्प्रति नवयुग का वैद्य ऐसे योगों के चमत्कारिक गुण प्राप्ति से वंचित रहता है।

शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगों के सम्बन्ध में भिषग्वर शार्ङ्गधर ने बड़े मान्य विचार प्रस्तुत किये हैं—

प्रसिद्धयोगा मुनिभिर्प्रयुक्ता चिकित्सकैः येबहुशोऽनुभूताः।
विधीयते शार्ङ्गधरेण तेषां सुसंग्रहः सज्जन रंजनाय ॥

अतः बहुशोऽनुभूत सिद्ध योगों को इस अंक में स्थान प्राप्त होना ही चाहिए।

सिद्ध और बहुशोऽनुभूत योगों में से ही यह गर्भ विनोद भी है। अनेक रस ग्रन्थों में गर्भ विनोद रस की उपस्थिति पाई जाती है।

अब देखना यह है कि यह दिव्य योग किन गुण सम्पदाओं से घटित है। इसका भली प्रकार बोध होने से स्वयं ही इसकी विशिष्टता का ज्ञान हस्तामलक हो सकता है।

प्रथम घटक त्रिकुटा है। द्वितीय हिंगुल है। तृतीय

घटक जायफल और चतुर्थ घटक लवंग है। इन ६ वस्तुओं के समवेत योग को गर्भ विनोद की संज्ञा दी गयी है। इन्हीं औषधियों के पृथक-पृथक गुण यथास्थान एकत्रित होकर और यथाविधि निर्मित होने पर ही इसमें विशिष्ट गुण सम्पदा उत्पन्न होती है।

त्रिकटु के द्रव्यों में उष्णवीर्य—पित्तवर्धन के कारण ही ये पित्त की वृद्धि करके शरीर की स्वाभाविक तापमान को स्थिर रखता है। शरीर में मंदाग्नि के होने पर स्वतः ही देह में स्वाभाविक तापमान की न्यूनता होती है। तीक्ष्णत्वेनये आमाशयस्थ क्लेदक कफ की वृद्धि को दूर करते हैं परिणामतः पाचक रस की शक्ति जो क्लेदक कफ की वृद्धि से उत्पन्न होकर मन्द पड़ जाती है, तीक्ष्ण गुण के कारण पुनः बलवती हो जाती है। त्रिकटु में सौंठ भी है। मन्दाग्नि कफ प्रधान रोग है। जब आमाशय के अधोद्वार के इतस्ततः श्लेष्म संचय रहता है तब गर्भिणी को भोजन करते ही उदर बोझल हो जाता है। साथ ही मुखस्राव, भोजन के प्रति अनिच्छा, भुक्त भोजन कई घण्टे बाद भी क्षुद्बोध नहीं होता, श्लेष्मा की मन्दता तथा मन्दाग्नि के कारण ऊर्ध्वाधः वातनिःसरण की अप्रवृत्ति स्वल्पता उपस्थित हो जाती है। कटि प्रदेश और पिण्डलियों में वेदना के साथ-साथ शैत्यता भी आ जाती है। पाचकाग्नियों की विकृति या दुर्बलता के कारण गर्भिणी को क्षुन्नाश, अनन्नाभिलाष उपस्थित होने पर भोजन की उचित मात्रा न तो खाई जाती है और न उसका सम्यक्तया पाक होकर गर्भिणी के आहार से परिपक्व रस उतनी मात्रा में निर्मित नहीं होता तब उसका शरीर दुर्बल होने लगता है। परिणामतः गर्भस्थ शिशु तक उसके लिए आवश्यक रस रक्त नहीं पहुँचता। ऐसी अवस्था में शिशु के पोषण एवं संवर्धन प्रश्न ही नहीं उठता।

अतः ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर गर्भ विनोद रस का सेवन गर्भिणी को सेवन कराने से सरलता से ही गर्भ विनोद (प्रसन्न और स्वस्थ रखना) का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

दूसरा घटक हिंगुल है। हिंगुल पारद और गन्धक का यौगिक है। दोनों पदार्थ व्यष्टि एवं समष्टि रूप से योग वाही (जिस भी रोग को नष्ट करने वाले योग में डाले जाते हैं उसकी रोगहारक शक्ति को बढ़ाते हैं) दोनों पृथक् पृथक् एवं यौगिक के रूप में बल्य (सेवनकर्ता के बल की वृद्धि करने वाले), हृद्य (हृदय को बल देने वाला), बृंहण (पाचकाग्नियों को सशक्त बनाकर शरीर की पुष्टि करने वाला) रसायन (उत्तरोत्तर धात्वग्नियों की शक्ति बढ़ाकर शरीर की कृशता या क्षय से बचाने वाला) एवं दोनों घटक जीवाणु नाशक हैं। स्वतन्त्र और परतन्त्र दोनों में ही इसकी कीटाणु नाशक शक्ति को स्वीकार किया गया है। कीटाणु जन्य व्याधियों द्वारा शरीर हानिकर विजातीय विष (त्रिदोष, धातूपधातु) मल मूत्रादि मलों में एवं स्रोतों में अवस्थिति पाकर रोगोत्पादकता रूप धारण करते हैं। स्वतन्त्र में उपर्युक्त त्रिदोषादि की हीन, मध्य और उल्वण वस्था को रोगोत्पादक माना है।

सम्भव है कि कुछ अधिक समय की खोज परतन्त्र वालों को भी त्रिदोषादि की विकृति ही रोग का कारण मान्य हो जाए। कारण कि परतन्त्र वाले अब अनेक रोगोत्पादक कीटाणु उग्रवीर्य औषधियों का सतत प्रयोग करने और उनके विफल होने पर यह तो मानने में सहमत नहीं होते कि सल्फा ड्रग की औषधों के नाकारा होने का कारण अनुपयुक्त प्रयोग है। अपनी अकर्मण्यता छुपा सीधे सादे ढंग से रोगी से कहा जाता है कि—अब रोग के जीवाणु इतने प्रौढ़ और अभ्यस्त हो गए हैं कि उन पर अब कीटाणुनाशक औषधि का प्रभाव नहीं होता। कुछ दिन निरन्तर ऐसे प्रयोगों के पश्चात् सम्भव है निकट भविष्य में ही इस सम्बन्ध में पुनरीक्षण करने की आवश्यकता अनुभव होने लगे।

ऐसे उग्रवीर्य शुभ अशुभ आशुप्रभावोत्पादक औषधों का दूसरा प्रभाव यह होता है कि अनुपयुक्त काल पर इनका सेवन अधिसंख्य रोगियों में अनिवार्य रूप से कोई न कोई अन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हें सेवनोत्तर अन्य रोगों को कहते हैं। आयुर्वेद इस पक्ष में नहीं। वह इस प्रकार की चिकित्सा को चिकित्सा ही नहीं कहता। आयुर्वेद का सिंहनाद तो यह है कि–"प्रयोगः शमयेद् व्याधिं नान्यमषद् उदीरयेत्–चरको"। ऐसे अधिसंख्य रोगी सर्वत्र उपलब्ध हैं जिनको ऐसी चिकित्सा के द्वारा अनेक रोग, अंगवध, व्याकुलता अथवा कोई सर्वदा रहने वाला विकार साथी बन जाता है। आश्चर्य यह है

रोगी मृगमरीचिका से सचेत नहीं होता।

तृतीय घटक—जावित्री है। यह जायफल के ऊपर का आवरण प्रकृतिप्रदत्त रक्षिका स्थूलत्वक् होती है। फलपाक होने पर स्वतः ही यह जायफल के ऊपर फूट जाती है और पृथक् हो जाती है। देखने में यह बड़ी सुन्दर, किंचित् स्थूल रक्त पीत वर्ण तथा प्रचुर मनमोहक गन्धयुक्त होती है। यह गन्ध इसमें रहने वाले उड़नशील तैल के प्रयोग से होती है। जावित्री के गुण बाहुल्यता में यही मूलभूत द्रव्य है। यह जब तक इसमे रहता है जब तक ही जावित्री गुणकर रहती है। जैसे-जैसे तैलांश न्यून होता जाता है गुणवत्ता भी क्षीण होती जाती है। जावित्री की इस दशा में जावित्री के वर्ण, गन्ध, रस और गुणों में निश्चित ही अन्तर आ जाता है। जावित्री देखने में तुरन्त त्रुटित होने वाली, रक्तपीत वर्णता में पीतप्रभता, स्वाद में नाम मात्र का चरपरापन रह जाता है। ऐसी जावित्री निर्गुण होने के कारण त्याज्य होती है। इसके प्रयोग से योग की प्रभावक शक्ति नगण्य सी रह जाती है। अतः सर्वदा ही जावित्री नूतन, प्रौढ़, पूर्ण गन्ध प्रधान ग्रहणीय है।

एवंविध जायफल के ठीक आकार प्रकार के वृक्ष और भी होते है। उनसे भी नकली जायफल और जावित्री भी नकली बम्बई की जावित्री दुकानदार बेचतेहैं। औषधि को नकली असली माल को पूरी पहिचान होनी चाहिए अन्यथा योगोक्त गुण नकली मात्रा से बने योग से नदारद रहेंगे। जावित्री क निघण्टु शास्त्र में अनेक गुण उल्लेख हैं परन्तु हम इसके उन्हीं गुणों का यहाँ उल्लेख कर रहे हैं, जो गर्भ विनोद रस से सम्बन्धित हैं—शारीरिक शैत्यता को दूर करके शरीर के आवश्यकतावमान को स्थिर रखना, हृदय को शक्ति देना, वातिक नाड़ी सूत्रों के कार्य वैषम्य को संतुलित रखना। इसी संतुलन के प्रभाव से हृद्य कहलाती है। कफ वृद्धि (तद्रत जलीयांस की वृद्धि) का निरोध करके पाचन यंत्रों की शक्ति बढ़ाकर अग्निदीपन करके मन्दाग्नि के प्रभाव से आहार रस के आमत्व दोष को नष्ट करके शुद्ध रस का उत्पादन होकर यही रस आहार रस यकृत-प्लीहा स्थित पित्त की सहायता से किंचित रंजित होकर रक्तधातु में रक्तधात्वग्नि से पूर्ण रक्त में परिणत होकर समग्र शरीर में भ्रमित होता हुआ अन्त में गर्भस्थ शिशु का जीवनाधार पोषक बनता है। शुद्ध रक्त प्राप्ति से ही गर्भस्थ शिशु का विनोद, स्वास्थ्य और प्रसन्नता सम्भव है। जायफल और जावित्री समान गुण कर्मा है। एक के स्थान पर प्रायः प्रयुक्त होते हैं। सगर्भा स्त्री को समय समय पर जिन रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है उन सबके प्रशमनार्थ जावित्री पूर्ण सहयोग देती है। गर्भ के तुरंत पश्चात्—अवसन्नता, अरुचि, पूर्ण मात्रा में भोजन की अनिद्रा, प्रातर्वांति, हृल्लास उत्साह हीनता, शिरोव्यथा, मन्दाग्नि, कोष्ठवद्धता, कभी-२ अतिसार शिरोव्यथा, भ्रम, आंत्रिक पीडिकायें, वर्ण में पीत प्रभाव—आदि-आदि समय पर न्यूनाधिक रूप से उत्पन्न होते ही रहते हैं। ये सब लक्षण समूह मन्दाग्निजन्य ही है। गर्भिणी की पाचनशक्ति दीप्त रहे तब एसी अवस्था उत्पन्न ही नहीं होती। वनस्पति विज्ञान विशारद वैद्यवर कैयदेव अपने पथ्यापथ्य विवोधक स्वनिर्मित में जायफलो द्रव तैल के गुण विवेचन में लिखते हैं—

> **तैलं जातिफलोद्भूतं समुत्तेजनमग्निदम् ।**
> **जीर्णातिसार शमनमाध्मान क्षेप शूलहृत् ॥**
> **आमवातहर बल्यं दंतवेष्ठं व्रणार्तिनुम्**
>
> —**आत्रेय संहिता**

गर्भकालिक तथा प्रसूतोत्तर उपर्युक्त रोग कष्ट रहता ही है। माता यदि इन रोगों में से किसी से ग्रस्त है अथवा प्रसवानन्तर यदि उक्त रोग हों तब दोनों ही अवस्थाओं में श्रेयस्कर है। स्वस्थ्य गर्भिणी का गर्भ ही विनोदित और स्वस्थ रहता है।

जातिफल या जावित्री के तैल की मात्रा ५-१० बिन्दु।

सहपान—दूध, चाय अथवा असगंध और दशमूल साधित जल से दूध से प्रातः और रात्रि को दिया जा सकता है।

चौथा घटक है—लवंग। जायफल, जावित्री, लवंग, सूक्ष्मैला। ये एक ही श्रेणी के द्रव्य हैं। गुण धर्म में भी समान है लवंग गुण धर्म वर्णन में—कैयदेव निघण्टु का अध्ययन विशेष निर्देशक है। हमारे विवेच्य योग के सम्बन्ध का पाठ इस प्रकार है—

'चक्षुष्यं पाचनं हंति शूलानाहि क्षतक्षयान'

प्राय: प्रत्येक द्रव्य में अपना विशिष्ट गुण होता है। उस गुण के नाम पर भी उसका नामकरण होता है जैसे वह्निदीपन, पाचन आदि। दीपन द्रव्य प्रायश: पाचन क्रिया को उद्दीप्त करते हैं। इनके दौर्बल्य के कारण आहार रस में कुछ आमत्व रह जाता है। रसस्थ आमरस पाचक द्रव्यों को पाचन कहा जाता है। यह शक्ति लवंग में पर्याप्त मात्रा में रहती है। लवग के पाचन गुण का श्रीगणेश मुख में आहार द्रव्य पहुँचते ही जिह्वा की लाला ग्रन्थियां उत्तेजित होकर लालास्राव प्रचुर होता है। यही आद्य पाचक रस है। इसके अभाव मे आंत्रस्थ पाचक रस भी पूर्ण कार्य कर नहीं करपाते। लालाग्रन्थियों के इसी स्राव को पेपसीन के नाम पुकारते हैं—

आत्रेय संहिता में लवंग तैल के विशिष्ट गुण का उल्लेख है।

देवपुष्पोद्भवं तैलमग्नि कृद्वात नाशनम्।
दंतवेष्ट कफार्तिघ्नं गर्भिण्यावमनापहम्॥

९५% गर्भिणियों को उत्क्लेश, हृल्लास, प्रातर्वान्ति। अनेक महिलाओं को वमन प्रवृत्ति कई मास तक चलती है। कभी-कभी इतनी अधिक वमन होती है कि गर्भवती जो कुछ खाती पीती है तुरंत वमन हो जाता है। इस क्लेश से गर्भाशयस्थ शिशु क्लेशित होता है। आहार रस न बनने से रक्त भी कम ही बनता है। जो रक्त बनता भी उसकी गर्भवती को अपने शरीर की पुष्टि के लिए भी आवश्यकता होती है। अत: पोष्य तत्व की क्षीणता के कारण गर्भ की सामयिक उचित वृद्धि नहीं हो पाती है परिणामत: गर्भ की प्रसन्नता कैसे सम्भव होगी।

साधारणतया प्रातर्वात पर विशिष्ट ध्यान देना गर्भ और गर्भिणी के सुख स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक है।

प्रातर्वात शमनार्थ—आमलकी चूर्ण १ तोला, मिश्री ४ तोला मिलाकर चुटकी भर चूर्ण को थोड़ी-थोड़ी देर बाद मुख में डालकर चूसते रहना हितकर होता है।

वृद्ध या दीर्घकालिक वमन शमनार्थ—लवंग तैल ५-१० बूंद ग्लूकोज या सन्तरा, मोसमी, अनार के रस से दिन में १५-२० बार देना चाहिए, बार-बार 'की मात्रा में तैल बिन्दु की मात्रा २/३ से अधिक न रहनी चाहिए।

सितोपलादि चूर्ण ६ मा०, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ मा०, कर्पूर ४ रत्ती को मिलाकर पीस लें। तदनुसार कंधारी (खटमिट्ठा) अनार का रस १० तोला या फालसा उपलब्ध हो तो उसका रस १० तोला अथवा १ नीबू का रस मिला लें। इस योग में मिश्री या बूरा अथवा ग्लूकोज में से कोई सा ५ तोला मिला दें। इस घोल का एक-एक चम्मच हर १५-२० मिनट के बाद चाटते रहने से दुःखद वमन प्रवृत्ति में अच्छा लाभ होता है।

पंचम घटक—स्वर्ण माक्षिक भस्म है। इस योग में यह एक महत्वपूर्ण घटक है।

यह खनिज पदार्थ है। लौह और गन्धक के अणु जब उचित मात्रा में परस्पर मिलते है तब यथासमय भूगर्भ की ऊष्मा से सम्मिश्रित होकर चतुष्कोण तथा अन्य भिन्न-भिन्न आकृतियों में परिणित हो जाते हैं। भिन्न-भिन्न आकृतियों का कारण द्रवीभूत घोल स्थानीय सुविधानुसार प्राप्त स्थान में अवस्थित होकर आकृति धारण करते है। किसी-किसी स्थान पर जमे हुए घोल के स्थान पर यदि कृष्ण वर्ण की स्थिति हो तब यह—'किंचिरकृष्ण छविर्वहि:। कहीं-कहीं 'किंचिद् स्वर्ण साहित्यात् स्वर्णमाक्षिक मीरीतम्' ये वर्ण इसके स्थानीय प्रभावजन्य है। इसके घोल को सहित होते हुए स्थानीय पत्थरों के खण्ड भी साथ ही चिपट जाते हैं और बाजार से प्राप्त होने वाली स्वर्णमाक्षिक के टुकड़ों में प्रत्यक्ष देखे जाते है। इन पाषाण खण्डों को सम्पूर्णतया पृथक करके ही इसका शोधन मारण करना चाहिए। इसकी भस्म—श्लक्षण, सूक्ष्म होने से अंगुली रूप में घर्षित करने से खरस्पर्श प्रतीत नहीं होती। उत्तम स्वर्णमाक्षिक का वर्ण रक्तप्रभ होता है। इसके प्रयोग से शरीर का पाण्डुत्व दूर होता है। गर्भावस्था मे गर्भ के कारण स्त्री का वर्ण पीतप्रभ हो जाता है। पीतप्रभता का कारण रक्तगत रक्ताणु की अल्पता का परिचायक है। जब माता का रक्त ही सबल और बलिष्ठ रक्ताणुओं से रहित होगा तो गर्भस्थ शिशु का स्वस्थ होना कैसे सम्भव होगा ?

इसके अतिरिक्त स्वर्णमाक्षिक भस्म, बल्य, वृष्य, हृद्य तथा रसायन गुणों से भरपूर है। पित्तशामक गुण इसमें पर्याप्त है।

इस प्रकार यह सात द्रव्यों से निर्मित योग गर्भ विनोद रस के नाम से अपने निश्चित अर्थ को पूर्ण करता है।

निर्माण विधि—

शास्त्रीय गुणों की प्राप्ति के लिए औषधि निर्माण काल में सर्वथा ही स्वच्छ, नवीन और उत्तम द्रव्य ही लेने चाहिए तब ही उत्तम योग प्रस्तुत होगा। सर्वप्रथम एक सुदृढ़ न घिसने वाले लाभदायक पत्थर के खरल में शुद्ध हिंगुल और स्वर्णमाक्षिक भस्म को डालकर थोड़ा जल मिलाकर दृढ़ मर्दन करें। मर्दन अवधि २-३ दिन तक रहनी चाहिए। तदनुसार वानस्पतिक द्रव्यों के वस्त्रपूत चूर्ण को एक चीनी के बर्तन में डाल दें। ऊपर से जल उतना ही डालें जितने से चूर्ण प्लावित हो सके इसे २४ घण्टा पड़ा रहने दें। जब हिंगुलादि की घुटाई पूर्ण हो तब भीगे हुए कल्प सदृश पिण्ड को खरल में डालकर २-३ दिन तक दृढ़ मर्दन करें। गुटिका बनाने योग्य होने पर गुटिका बनालें अथवा सुखाकर चूर्ण रूप मे ही रख लें।

सावधानी—योग के घोटने में लोह छुरिका का प्रयोग न करें। अन्यथा प्रस्तुत औषध सुन्दर रक्त प्रभ नहीं रहकर कृष्णाभता युक्त हो जायेगी।

मात्रा—२-३ रत्ती दिन में ३ बार।

सहपान—गर्भिणी की दशा पर निर्भर होता है। घृत, मधु, अनाररस, फालसा का रस, सन्तरा का रस, मौसम्बी का रस, बूरा, मिश्री, या ग्लूकोज मिलाकर दिया जाता है। अनुपान ऋतु के अनुसार प्रयोग करना होता है।

गर्भ विनोद रस का सेवन माता को ही करना पड़ता है। अतः माता के आहार रस से यह रक्त में मिश्रित होकर उससे गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य की वृद्धि होती है।

विशेष—अनेक माताओं को गर्भकाल में जैसे-जैसे गर्भ वृद्धि होती है दूसरे, तीसरे, चौथे मास में गर्भस्राव हो जाता है। ऐसी मृतवत्सा की अवस्था में गर्भ विनोद रस की प्रत्येक मात्रा में ७ शिरीष बीजों की मज्जा का वस्त्रपूत चूर्ण १ माशा, मुक्ताभस्म १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी ३ रत्ती प्रति पुड़िया में दी जाती है। इसके द्वारा मृतवत्सा का दुःखद कष्ट सर्वदा के लिए मिट जाता है।

—श्री हरदयाल जी गुप्त वैद्य वाच. आयु.
ई-२१ आनन्द निकेतन, मोती बाड़ा-२
न्यू दिल्ली-२३

प्रोफेसर श्री बदरी नारायण पाण्डेय

'चन्द्रामृत रस' का प्रथम उल्लेख 'रसेन्द्रसार संग्रह' नामक रसग्रन्थ में प्राप्त होता है। भैषज्य रत्नावली में जो पाठ मिलता है, वह भी उसी पाठ का प्रायः प्रतिरूप है। इसके अतिरिक्त रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह तथा सिद्ध प्रयोग संग्रह में भी इसका उल्लेख मिलता है। सभी ग्रन्थों में इसका उल्लेख कास चिकित्सा अधिकार में ही किया गया है। अर्थात् कास रोग की महौषधि के रूप में यह सर्वत्र वर्णित है।

इस प्रधान एवं प्रचलित पाठ के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर कई अन्य पाठ अन्य रोगाधिकार में प्राप्त होते हैं। रसयोग सागर प्रथम भाग में चन्द्रामृत रस (वृहद्), चन्द्रामृत रस (द्वितीय), एवं चन्द्रामृत रस (तृतीय) इस प्रकार के पाठ उपलब्ध होते हैं। ये सभी पाठ राजयक्ष्मा चिकित्सा अधिकार में प्राप्त होते हैं। इस द्वितीय पाठ का उल्लेख रस रत्नाकर में भी प्राप्त होता है।

इस महौषधि के नाम 'चन्द्रामृत रस' से ही यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह एक शीतवीर्य प्रधान, वातपित्त शामक एवं कफ निःसारक औषधि है। 'चन्द्र+अमृत' इन दो शब्दों से निर्मित 'चन्द्रामृत' शब्द उपर्युक्त आशय को पूर्णतया दृढ़ करता है।

आजकल वैद्य समाज में सर्वाधिक प्रचलित पाठ भैषज्य रत्नावली का है, जो रसेन्द्रसार संग्रह से उद्धृत

है। आधुनिक आयुर्वेद के निर्माता वैद्य श्री यादव जी त्रिक्रम जी आचार्य द्वारा लिखित पुस्तक 'सिद्ध योग संग्रह' में उल्लिखित पाठ भैषज्य रत्नावली से किंचित् परिवर्तित करके लिखा है। ऐसा उन्होंने पाठ के नीचे स्वयं ही उल्लेख किया है। मेरे विचार से यह पाठ उपलब्ध अन्य सभी पाठों से अधिक लाभप्रद है। मेरे स्व० पू० पिता पं० अवध विहारी पाण्डेय जो एक यशस्वी चिकित्सक थे इसी पाठ का अनुसरण करते थे। जिसका प्रत्यक्ष लाभ मुझे भी देखने का सौभाग्य मिला था। अतः इसी को आधार मानकर इसका वर्णन यहां किया जायेगा। पाठ निम्नप्रकार है—

> त्रिकटु त्रिफला चव्यं धान्यजीरक सैन्धवम्।
> रसगन्धक लोहाभ्रं प्रत्येकं कार्षिकं शुभम्॥
> टंकणात् द्विपलं दत्वा वासानीरेण मर्दयेत्।
> गुञ्जात्रयप्रमाणेन वटिका चैव कारयेत्॥
> कासं पञ्चविधं चापि श्वासं ज्वर समन्वितम्।
> अनुपान विशेषेण हन्ति चन्द्रामृतो रसः॥
> कासे सरक्ते दातव्यो रक्तोत्पलरसाप्लुतः॥

—सिद्ध योग संग्रह—भै. र. से किंचित् परिवर्तित

त्रिकटु (सौंठ, मिर्च, पीपल), त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला), चव्य, धनियां, जीरा, सैन्धव नमक, शु. पारद, शु. गन्धक, लौह भस्म, अभ्रक भस्म प्रत्येक १-१ कर्ष (१ तो० प्रायः १० ग्राम), शु. टंकण २ पल (८ तो. प्रायः ८० ग्राम)। इन सभी द्रव्यों को ग्रहण करें। प्रथम पत्थर के बड़े खरल में पारद, गन्धक की कज्जली निर्माण करते हैं। कज्जली निर्मित हो जाने पर उसमें लोह भस्म तथा अभ्रक भस्म मिलाकर सम्यक्तया सबको मिला लेंगे। पश्चात् सभी द्रव्यों के कपड़छन चूर्ण इसमें डाल, मिला वासापत्र स्वरस से एक दिन (कम से कम ८ घण्टे) खूब मर्दन करके तीन-तीन रत्ती (३ ग्राम) की गोलियाँ बनाकर छाया शुष्क कर लेना चाहिए। यह चन्द्रामृत रस अनुपान विशेष (भेद) से पाँचों प्रकार के कास, ज्वर युक्त श्वास रोग इन्हें समूल नष्ट करता है। सरक्त कास में इसे लाल कमल पुष्प स्वरस या शीतकषाय के साथ प्रयोग करना चाहिए—

उपर्युक्त सामान्य विवेचन के इसके विविध पाठों तथा निर्माणादि के सम्बन्ध में मतमतान्तरों का अवलोकन भी करना चाहिए।

सि. यो. सं.	र. सा. सं.	भै. र.	र. तंत्रसार व. सि. सं.
१. सौंठ १ तो.	+	+	+
२. मिर्च ,,	+	+	+
३. पीपल ,,	+	+	+
४. हरड़ ,,	+	+	+
५. बहेड़ा ,,	+	+	+
६. आंवला ,,	+	+	+
७. चव्य ,,	+	+	+
८. धनियाँ ,,	+	+	+
९. जीरा ,,	+	+	+
१०. सैंधा नमक,,	+	+	+
११. शु.पारद,,	+	+	+
१२. शु.गंधक,,	+	+	+
१३. लौह भस्म,,	+	+	+
१४. अभ्रक भस्म,,	+	+	+
१५. शु. टंकण८ तो.	४ तो.	४ तो.	४ तो.
१६. वासास पत्र स्वरस की की भावना	—	—	—
१७. अजादुग्ध की भावना	+	+	+

नोट—उपर्युक्त सारिणी से परस्पर भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। यद्यपि यह भिन्नता नही है, परन्तु जो भिन्नता हैं वह महत्वपूर्ण अवश्य है।

सिद्ध योग संग्रह में घटक द्रव्यों में अभ्रक भस्म अधिक ग्रहण किया गया है तथा शुद्ध टंकण की मात्रा अन्य ग्रन्थों से द्विगुण ली गई है। भावनार्थ सिद्ध प्रयोग संग्रह में वासा स्वरस का ग्रहण किया गया है जबकि अन्यत्र अजादुग्ध की भावना देने का विधान है। संक्षेप में पाठों में यही स्पष्ट अन्तर है। शेष सर्वत्र समानता उपलब्ध होती है।

रसयोग सागर वर्णित चन्द्रामृत रस (वृहत्) तथा दो अन्य सभी के घटक द्रव्य एवं निर्माण विधि भिन्न हैं। प्रस्तुत वर्णनार्थ योग खरलीय रसायन है। परन्तु रस योग सागर का प्रथम योग तो खरलीय रसायन है। शेष दोनों योग कूपीपक्व रसायन हैं।

निर्माण विधि—

यादव जी महाराज ने सिद्ध योग संग्रह में 'वासापत्र

स्वरस' की भावना देकर सम्यक् मर्दन करके ३-३ रत्ती की गोलियां बनाने को लिखा है। परन्तु इसके अतिरिक्त प्रायः सभी स्थलों पर 'अजाक्षीर' की भावना देकर उसकी गोलियाँ बनाने को लिखा है। कुछ स्थानों में अजाक्षीर से भावित करके मर्दनोपरान्त चूर्णरूप में ही सुखाकर रख लेने को कहा है।

वटी की मात्रा के सम्बन्ध में मतभेद प्राप्त होते हैं। सिद्धयोग संग्रह में ३-८ रत्ती की गोलियां बनाने को लिखा है। भैषज्य रत्नावली में १-१ रत्ती की गोली बनाने का निर्देश है। जबकि इन सबसे प्राचीन रसग्रन्थ 'रसेन्द्रसार संग्रह' में "नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद् भिषक्" ऐसा लिखकर ६-६ रत्तियों की गोली बनाने का आदेश दिया है। इस प्रकार शंका जैसी उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में वैद्य समाज को एक मध्यम मार्ग चुनकर आधुनिक युग में मनुष्यों के बलाबल का विचार करते हुए २-३ रत्ती की गोलियां बनानी चाहिए। रसेन्द्रसार संग्रह में उल्लिखित वटी की मात्रा 'नवगुञ्जा प्रमाण' अत्यधिक प्रतीत होती है। यहां मेरे विचार से नवगुञ्जा से नवीन नया गुञ्जा ऐसा अर्थ ग्रहण करते हुऐ नया गुञ्जा अर्थात् नवीन एक गुञ्जा के बराबर की वटी का निर्माण करना चाहिए। इस प्रकार संशोधन कर लेने से भैषज्य रत्नावली के पाठ से भी पूर्ण साम्य स्थापित होता है। १ या २ रत्ती की वटी बना लेने के पश्चात् सुविधानुसार प्रयोग के समय उसकी मात्रा निश्चित करने में पूर्ण सुविधा रहेगी।

गुणधर्म—

उपर्युक्त रीति से निर्मित 'चन्द्रामृत रस' वटी या चूर्ण दोनों ही रूपों में रखा जा सकता है। परन्तु वटी बना लेने से प्रयोग सौकर्य अवश्य होगा। सर्वप्रथम घटक द्रव्यों के गुण कर्मों का संक्षिप्त विवेचन करना आवश्यक है—

त्रिकटु—'त्रिकटु' में सोंठ, मिर्च एवं पिप्पली ये तीन द्रव्य ग्रहण किये जाते हैं। ये तीनों द्रव्य प्रायः कटु रस प्रधान हैं। सोंठ, मिर्च उष्णवीर्य हैं तथा पिप्पली अनुष्ण-शीत है। विपाक में मिर्च कटु विपाक तथा सोंठ एवं पिप्पली मधुर विपाक हैं। ये तीनों ही द्रव्य कफवात शामक है। त्रिकटु दीपन है तथा श्वास, कास, त्वग्रोग, गुल्म, प्रमेह, कफदोष, स्थूलता, मेदोरोग, श्लीपद तथा पीनस आदि रोगों का नाश करता है। इस प्रकार कास रोग नाशार्थ उत्तम द्रव्य है।

त्रिफला—त्रिफला के अन्तर्गत हरड़,बहेड़ा, आँवला ये तीन द्रव्य आते हैं। ये तीनों ही द्रव्य कषाय रस प्रधान हैं। हरड़ एवं आंवला इन दोनों द्रव्यों में कषाय रस के साथ-साथ लवण रस को छोड़कर अन्य सभी रसों का समावेश है। इस प्रकार ये दोनों द्रव्य पञ्चरस रसयुक्त हैं। हरड़ उष्णवीर्य एवं आँवला शीतवीर्य द्रव्य है। परमोपयोगी एवं रसायन द्रव्यों में इनकी गणना होती है। तीनों ही द्रव्य मधुर विपाकी हैं। इस प्रकार ये तीनों अलग-अलग एवं मिश्रित रूप में (त्रिफला) त्रिदोष शामक एवं रसायन युक्त महौषधि सिद्ध होते हैं।

चव्य—पंचकोल का एक द्रव्य चव्य है जो कटुरस प्रधान द्रव्य है। इसके गुणधर्म भी त्रिकटु के सदृश ही हैं।

धनियाँ—यह कषाय रस प्रधान द्रव्य है। साथ में तिक्त, मधुर एवं कटु रस भी यत्किञ्चित् रूप में रहते हैं। इसका विपाक मधुर एवं वीर्य उष्ण है तथा त्रिदोषहर द्रव्य हैं स्निग्ध-उष्ण होने से वात, कषाय, तिक्त, मधुर होने से पित्त तथा तिक्त, कटु तथा उष्णवीर्य होने से कफशामक द्रव्य है। आर्द्र धनियाँ इन गुणों से युक्त रहते हुऐ भी विशेषकर पित्तशामक है। इस प्रकार त्रिदोषहर होने से कासरोग नाशार्थ उत्तम लाभकर है।

जीरा—कटु रस प्रधान, उष्णवीर्य एवं कटु विपाक द्रव्य है। इस प्रकार यह कफवात शामक तथा पित्तवर्धक द्रव्य है। इस प्रकार प्रायः समस्त उदर रोगों में-कफवात विकारों में प्रयुक्त होता है।

सैन्धव—सैन्धव लवण शीतवीर्य होने से त्रिदोष शामक है। इसके साथ ही रोचक, दीपन, चक्षुष्य, अविदाही एवं हृद्य है। अरुचि, अजीर्ण, शूल तथा विबन्धादि में प्रयोग होता है।

पारद—पारद तो आयुर्वेदीय औषधि विज्ञान तथा विशेषकर रसशास्त्र का सर्वप्रमुख (नायक) द्रव्य है। यह सभी प्रकार की रसौषधियों में एक प्रधान घटक के रूप प्रयुक्त होता है। यह रसायन, त्रिदोष नाशक, योगवाही तथा अति शुक्रल है। इसका भस्म अनुपान भेद से सभी प्रकार के रोगों का नाश करता है। इसका सबसे प्रधान

कार्य सभी प्रकार की रसौषधियों में प्रधान घटक के रूप में स्थिति होकर योगवाही का कार्य सम्पादन करता है।

गन्धक—जिस प्रकार सृष्टि में प्रकृति-पुरुष का संयोग आवश्यक होता है, ठीक उसी प्रकार रसौषधियों के निर्माण में गंधक, पारद का संयोग होना परमावश्यक है। यह पारद के दोषों को शान्त करता हुआ उसके योगवाहीत्व एवं रोगनाशक शक्ति को प्रचुर रूप में बढ़ाता है। यह कफ, वात एवं रक्त जनित रोगों को नष्ट करता है एवं रसायन है।

लौह भस्म—लौह भस्म तिक्त, मधुर, कषाय, शीतवीर्य, सर (पित्तसारक), गुरु, रूक्ष, वयःस्थापक, लेखन, चक्षुष्य एवं वातवर्धक है। कफवात जनित रोग, कृत्रिम विष, शूल, शोथ, अर्श, प्लीहा रोग, पाण्डु रोग, मेदोरोग आदि नाशक है। यह त्रिदोषहर होने से त्रिदोषज व्याधियों में प्रयुक्त होता है। प्रमुख रूप से यह रक्तवर्द्धक है।

अभ्रक भस्म—अभ्रक भस्म बल्य, रसायन एवं त्रिदोषहर है। अतः शरीर के सभी अंगों पर इसका प्रभाव अवश्य होता है। विशेषतः यह मेध्य, रसायन, नाड़ी बल्य, दीपन, अनुलोमन, हृद्य, शोणितास्थापन, शोथहर, कफघ्न, प्रमेहघ्न आदि गुणयुक्त है। इसका प्रयोग अन्य रोगों के साथ-साथ कास, श्वास, जीर्णज्वर, यक्ष्मा, बालशोष आदि रोगों में विशेष होता है। अनुपान विशेष से यह प्रायः सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करता है।

शु. टंकण—कटु, लवण रस, विपाक में कटु, उष्णवीर्य, रूक्ष, तीक्ष्ण, सारक, कफनिःसारक, हृद्य, बल्य, दीपन, आर्तव जनन, पित्तकारक, मूढ़गर्भ प्रवर्तक है तथा वातरोग, कास, श्वास, विष, आध्मान और व्रणादि का नाशक है। यह वत्सनाभ के विष का निवारक (प्रतिविष) माना जाता है।

वासा—यह वासा घटक द्रव्य के रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है। सिद्ध योग संग्रह में यह भावना द्रव्य के रूप व्यवहृत हुआ है। अन्यत्र इसकी जगह अजादुग्ध का प्रयोग भावना के लिए किया गया है। प्रस्तुत योग में इसकी तीन भावनाएँ दी गई हैं। अतः इसके गुणकर्मों पर भी थोड़ा विचार कर लेना अनुचित न होगा। वासा में प्रधान रस-तिक्त, अनुरस कषाय है। विपाक कटु, शीतवीर्य, लघु, रूक्ष गुण प्रधान औषधि है। यह लघु, रूक्ष तथा तिक्त, कषाय होने से कफ का, तिक्त रस प्रधान होने से पित्त का शमन करता है। इसकी मुख्य क्रिया श्वसन संस्थान पर होती है। यह कफ को पतला कर बाहर निकालता है तथा श्वास नलिकाओं का प्रसार करता है। यह प्रसार अपेक्षाकृत कम किन्तु स्थायी होता है। इस रीति से यह श्लेष्म निःसारक के रूप में श्लेष्महर, कास, श्वासहर माना जाता है। अतः कफ पित्त विकारों में इसका कार्य होता है। इन्हीं कारणों से आचार्य यादव जी ने इसका भावनार्थ प्रयोग विशेष रूप से किया है।

इस प्रकार प्रायः सभी घटक द्रव्यों के गुण धर्मों का विवेचन किया जा सकता है। इसी क्रम में घटक द्रव्यों में थोड़ा बहुत अन्तर प्राप्त होता है, इस पर विचार करना आवश्यक है। आचार्य यादव जी ने अपने दीर्घ अनुभवों के आधार पर भैषज्य रत्नावली के पाठ से यत्किञ्चित् परिवर्तन कर उसे सिद्ध योग संग्रह में लिखा है जिसमें दो परिवर्तन हैं—प्रथम अभ्रक भस्म का योग करना, दूसरा शुद्ध टंकण की मात्रा को द्विगुणित करना एवं तीसरा वर्धन वासा पत्र स्वरस की तीन भावनाएँ हैं।

गुण कर्म—

शास्त्रीय आधारों पर प्रधान गुण कर्म निम्न हैं—

कासं पञ्चविधं चापि श्वासं ज्वरसमन्वितम्।
अनुपान विशेषेण हन्ति चन्द्रामृतो रसः॥
कासे सरक्ते दातव्यो रक्तोत्पल रसाप्लुतः।

—सि. यो. सं.

अर्थात् मुख्यरूप से पाँचों प्रकार के कास तथा ज्वर युक्त, श्वास रोग को अनुपान भेद से यह नष्ट करता है। यदि कास के साथ रक्त भी आता हो तो उस अवस्था में रक्त कमल पुष्प स्वरस या शीत कषाय के साथ इसका प्रयोग लाभकर है। इस प्रकार सभी प्रकार के कास एवं श्वास रोग के लिए यह एक उत्तम औषधि मानी गई है।

मात्रा—इसकी मात्रा रोगी के बलाबल के अनुसार निश्चित करनी चाहिए। उपर्युक्त निर्मित वटी या २-३ रत्ती ($\frac{1}{4}$ ग्राम) की ३-४ मात्रा देनी चाहिए।

अनुपान—सिद्ध योग संग्रह में श्री यादव जी का स्पष्ट उल्लेख नहीं हैं। परन्तु टिप्पणी में उसे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है—३ मात्रा शहद से चाटना चाहिए। पश्चात् अजाक्षीर, गोजिह्वादि क्वाथ, द्राक्षारिष्ट या शर्बत

जूफा पिलावें। यदि कास के साथ रक्त आता हो इसका प्रयोग निम्न प्रकार से करना चाहिए—

चन्द्रामृत रस १ गोली (२-३ रत्ती या ¼ ग्राम), नाग केशर चूर्ण ५ रत्ती (½ ग्राम), खून खराबा चूर्ण ५ रत्ती (½ ग्रा.)। १-२ तोला रक्तकमल पुष्प स्वरस या शीत कषाय के साथ। यदि कास के साथ श्वास भी हो तो १ मात्रा में ५-८ रत्ती (½ ग्रा.) तक सोम चूर्ण मिलाकर मधु से चटावें। (सि. यो. सं.) रसेन्द्रसार संग्रह एवं भैषज्य रत्नावली में अनुपान द्रव्यों की सूची विस्तृत रूप में दी गई है। जो निम्न प्रकार है—

रक्त कमल पुष्प स्वरस, नीलोत्पल पुष्प स्वरस, कुलत्थ-यूष, पिप्पली चूर्ण+शहद, आर्द्रक स्वरस+शहद यथा दोषानुसार इन अनुपानों का प्रयोग करना चाहिए। अन्त मे दो पंक्तियों में विशेष बातें लिखी हैं जो वैद्यों के लिए विशेष ध्यान देने योग्य है। यथा—

वासा गुडूची भार्गी च मुस्तकं कण्टकारिका।
सेवनान्ते प्रकर्तव्यो रसोऽयं वीर्यवर्धनः॥

—भैं० र०

अर्थात् वास, गुडूची, भारंगी, मोथा, छोटी कण्टकारी इनके सम्यक् प्रकार से क्वाथ बनाकर इस महौषधि को शहद से चाटकर क्वाथ का पान करना चाहिए।

इस क्वाथ के सहानुपान रूप में प्रयोग करने से इस रस की कार्यकारी शक्ति में वृद्धि हो जाती है। अत: इसको औषधि लेने के बाद पीने से औपधि के गुण कर्म में निश्चित वृद्धि हो जाती है।

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है अन्य स्थलों से इस वर्णित योग में अभ्रक आदि एक दो घटक अधिक लिखे गये है। इन घटकों के मिश्रण से निश्चित रूप में इसके गुणों की वृद्धि हो जाती है। अभ्रक भस्म स्वयमेव एक महौषधि है। "अनुपान विशेषेण सर्व रोगांस्तुनाशयेत्"। यह मधुर कषाय, विपाक में मधुर, शीत वीर्य होते हुए अपने प्रभाव से त्रिदोषहर का कार्य करती है। इस प्रकार कास रोग में विशेष रूप से हितकर है। इसी प्रकार शुद्ध टंकण की मात्रा भी अन्यत्र से यहाँ द्विगुणित कर दी गई है। शुद्ध टंकण अपने अन्य गुणों के साथ-साथ विशेष रूप से कफ नि:सारक है। इसी कफ नि:सारक गुण को बढ़ाने के उद्देश्य से इसकी मात्रा दुगनी कर दी गई है। इसी गुण के कारण यह रस शुष्क कास (वातज, वातपित्तज या त्रिदोषज) में कफ नि:सारण का कार्य करता हुआ कास रोग में अत्यन्त हितकारी है।

मेरे स्व० पूज्य पिता पं० अवधविहारी पाण्डेय जो एक सिद्धहस्त वैद्य थे जैसाकि पूर्व उल्लेख कर चुका हूं उनकी यह एक प्रिय औषधि थी। परन्तु उनके प्रयोग का ढंग कुछ अलग ही था। वे शुष्ककास के रोगियों को इसे (गोली को) मिश्री के साथ चार-पाँच बार चूसने को दिया करते थे। इस अनुपान से लेने से 'चन्द्रामृत' बहुत शीघ्र ही कफ को ढीलाकर आसानी से उसे निकाल देता है। इसके साथ वृ० वासावलेह १-२ तोला (१०-२० ग्राम) की मात्रा में सुबह शाम सुखोष्ण गोदुग्ध चीनी के साथ खिलाते थे। यह उनका अपना प्रिय ढङ्ग था। इस प्रक्रिया से रोगी अत्यधिक लाभान्वित होते रहे हैं। आशा है वैद्यवर इसका प्रयोग कर अवश्य लाभ उठायेंगे।

—वैद्य श्री बद्रीनारायण पाण्डेय प्रोफेसर
स्टेट आयुर्वेदिक कालेज, लखनऊ

जलोदरारि रस

वैद्य श्री उमाशंकर दाधीच

जलोदरारि रस के दो पाठ प्रचलित हैं। पहला भैषज्य रत्नावली का है तथा दूसरा रस कामधेनु का।

घटक—शु० पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मनशिल, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध जयपाल बीज, हरिद्रा, हरीतकी, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक प्रत्येक २-२ तोला।

भावना—दंतीमूल, सेंहुड, भृङ्गराज स्वरस की।

निर्माण क्रिया—प्रथम पारद गंधक की कज्जली बनावें, फिर मनशिल तथा अन्य काष्ठौषधियों का वस्त्रपूत चूर्ण मिलाकर भावना द्रव्य के सम्पूर्ण औपधि डूब जावे इतना रस डालकर रस सूखने तक खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया में शुष्क करलें।

मात्रा व अनुपान—१-१ गोली दो या तीन बार आवश्यकतानुसार घृतकुमारी रस, पुनर्नवा रस या दशमूल क्वाथ या अन्य रोगानुसार।

विशेष—इस प्रयोग में प्रत्येक द्रव्य की ७-७ भावना देने का विधान है।

घटक—पीपल, ताम्र भस्म, हरिद्रा चूर्ण १-१ भाग, शुद्ध जयपाल बीज ३ भाग।

भावना—सेहुँड दूध।

निर्माण प्रक्रिया—काष्ठौषधियों के सूक्ष्म चूर्ण में ताम्र भस्म मिलाकर सेहुँड के दूध में १ दिन घुटाई करके १-१ रत्ती की गोली बनालें।

मात्रा अनुपान—१-२ गोली गर्म पानी से आवश्यकतानुसार दो या तीन बार।

विवेचना—दोनों प्रयोगों में पीपल, हरिद्रा, सेहुँड तथा जयपाल समान द्रव्य हैं। दूसरे प्रयोग में जयपाल की मात्रा अधिक है एक गोली में आधा भाग जयपाल है अतः यह तीव्र रेचक है। पतले दस्त के द्वारा पेट के जलीयांश को बाहर निकाल देता है। दीपन पाचन यकृतदोषहर औषधियां प्रयोग नं० १ में त्रिकटु चित्रक आदि हैं तो प्रयोग नं० २ में पीपल तथा ताम्र भस्म के संयोग से यह कार्य सम्पन्न होता है। ताम्र भस्म का सीधा कार्य यकृत की क्रिया पर होता है। पीपल इस कार्य में उसकी उचित सहयोगिनी है। हरिद्रा रक्त प्रसादन कार्य करने वाली दोनों ही प्रयोगों में है। प्रथम प्रयोग में पारद अपने योगवाही गुण के कारण अन्य औषधियों के गुण में वृद्धि करता है तथा मनशिल का विशेष प्रभाव कृमिनाशक है।

इस प्रकार दोनों ही प्रयोगों में जलोदर चिकित्सा के आवश्यक तत्व विद्यमान हैं। दीपन पाचन, यकृत प्लीहा दोषहर, रक्त प्रसादक, मूत्रल, विरेचक, शोथहर गुणदोनों में ही है। यह चिकित्सक के ज्ञान पर निर्भर करता है कि वह रोगी की कैसी स्थिति पर किस प्रयोग से उपचार करे। मेरे अनुभव के अनुसार प्रथम प्रयोग ही श्रेष्ठ है द्वितीय प्रयोग अति तीव्र रेचक होने के कारण क्षीणवल रोगी को हानि पहुँचा सकता है।

जलोदर चिकित्सा का प्रथम उद्देश्य उदरस्थित जलीयांश का निष्कासन है और यह कार्य प्रयोग नं० १ सुखपूर्वक कर लेता है। इसमें जयपाल की मात्रा $\frac{1}{23}$ होने से जयपाल से होने वाली कुँथन आदि दोषों से रोगी को परेशानी नहीं होती है।

यह तो हुई शास्त्रीय जलोदरारि की बात अब मैं आपको जलोदरारि का एक शास्त्रोतर योग बतलाता हूं। यह प्रयोग मुझे एक ग्रामीण से अकस्मात प्राप्त हुआ था। मैं तब से इसका ही प्रयोग करता हूं अन्य लाक्षणिक चिकित्सा साथ ही करता रहता हूं। सस्ते सरल और सहज साध्य इस प्रयोग के दो ही घटक हैं—सोडा मीठा तथा गोमूत्र। प्रयोग विधि निम्न है—

सोडा १ से ३ माशा तक।

गोमूत्र २ तोला से १० तोला तक। यह एक मात्रा है। ऐसी मात्रा दिन में आवश्यकतानुसार दो चार बार तक द सकते हैं। विज्ञ वैद्यों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रयोग जलोदर चिकित्सा के सभी सूत्रों की पूर्ति करता है।

इससे जायपाल के समान पेट में कुँथन नहीं होती अधिक मात्रा से कोई विशेष परेशानी भी रोगी को नहीं होती है।

—वैद्य श्री उमाशंकर दाधीच
१०८ लोधीपुरा नं० १, इन्दौर—२ (म.प्र.)

नष्ट पुष्पांतक रस

डा० श्री जहानसिंह चौहान आयु० वृह०

ग्रंथ निर्देश—रस चण्डांशु, भैषज्य रत्नावली।

तारलौहाभ्रसौभाग्यवलिवङ्गार्कसूतकम्॥
पृथक पलैकप्रमितं समादाय भिषग्वरः।
वराकुष्ठ देवदारु वन्ती वासावलासता॥
शेफाली गोक्षुरश्चैव वेत्राग्र वृहतीद्वयम्।
करंजश्चैव जीवन्ती तालीशंकाकमाचिका॥
त्रिवारं भावयेत्काममेतोषां स्वरसैः पृथक्।
वांशी रास्ना च मधुकं सैन्धवश्च लवङ्गम्॥

दन्ती गोक्षुर वीजञ्च तोलकार्द्ध मितं पृथक ।।
जयन्ती तुलसीद्रावैः सम्मर्घ खलु यत्नतः ।
वटिकाः कारयेद्वैधो रक्तिकाद्वायसम्मिताः ।।

निर्माण विधि—

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, लौह भस्म, वंग भस्म, सुहागे की खील, चांदी भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म प्रत्येक औषधि द्रव्य १०-१० ग्राम लें। प्रथम पारा एवं गन्धक की कज्जली कर उसमें अन्य औषधियां मिश्रित कर उसे गिलोय, त्रिफला, दन्तीमूल, हारसिंगार, छोटी कंटकारी, मकोय, देवदारु, जीवन्ती, कूठ, बड़ी कंटकारी, हल्दी, तालीसपत्र, वेत की कोपल, गोखरू, अडूसा एवं खरैंटी के स्वरस अथवा क्वाथ की पृथक्-पृथक् ३-३ भावना दें।

तत्पश्चात् सैंधानमक, मुलैठी, दन्तीमूल, लौंग, वंशलोचन, रास्ना, गोखरू प्रत्येक ३-३ ग्राम कूट पीसकर कपड़े से छान उपरोक्त औषधि में मिला लें। तत्पश्चात् जयन्ती एवं तुलसी स्वरस में १-१ दिन घोटकर २४० मिलिग्राम परिमाण की गोलियां बना लें और छाया में सुखाकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा एवं अनुपान—१-१ गोली प्रातः सायं दिन में २ बार तिल एवं गुड़ के क्वाथ से।

गुण एवं उपयोग—

यह रस उग्र एवं उष्णवीर्य है। स्त्रियों में मासिक धर्म लाने वाली सुप्रसिद्ध औषधि है। जब किसी स्त्री में मासिक धर्म रुक गया हो अथवा पीड़ा के साथ अल्प मात्रा में होता हो उस समय इसका प्रयोग परम लाभकारी होता है। रुका हुआ मासिकधर्म कुछ दिन औषधि सेवन से खुल जाता है। पीड़ायुक्त मासिक धर्म में तो सत्वर लाभ करता है। ऐसी स्त्री जिसको जीवन भर मासिक धर्म ही नहीं हुआ है इसके सेवन कराने से लाभ होता है। स्त्रियों के रक्तगुल्म में इस औषधि से पर्याप्त लाभ होते देखा गया है। इस औषधि के प्रयोग से रक्तगुल्म विदीर्ण हो जाता है और रक्त के रूप में लोथड़े सहित बाहर निकल जाता है। रजोधर्म के कारण स्त्रियों की आंखों में जलन, अनिद्रा, हाथ-पैरों में हड़फूटन, शिरःशूल, कटि एवं पृष्ठशूल, हृच्छूल, तलवों में जलन, उन्माद, हिस्टीरिया तथा वात एवं पित्त के विभिन्न विकार उपस्थित हो जाते हैं, ऐसे लक्षणों से युक्त रोगिणी को अवश्य ही इस रस औषधि का सेवन कराना चाहिये। इसके सेवन से यह सभी लक्षण शान्त होते हैं और स्त्री को मासिक धर्म खुल कर साफ आने लगता है।

कुछ स्त्रियां ऐसी हैं जिनका स्वास्थ्य विभिन्न कारणों वश गिरा हुआ है और उनके शरीर में खून की अत्यधिक कमी है। ऐसी स्त्रियों में रक्त की अल्पता से उन्हें मासिक धर्म नहीं होता है। ऐसी स्थिति में उनको कसीस भस्म या लौह भस्म के साथ सेवन कराना चाहिये। इस प्रकार औषधि सेवन से स्त्री में रक्त की पर्याप्त वृद्धि हो जाती है और उसे बिना किसी विलम्ब से नियमित समय पर मासिक धर्म होने लगता है।

इसके अतिरिक्त यह रस योनिशूल, योनिदाह, योनि क्लेद, योनिनष्टपुष्पता प्रभृति व्याधियों को सत्वर नष्ट करता है।

स्वानुभव—

प्रथम अनुभव—

नष्ट पुष्पान्तक रस का प्रयोग 'बाधक वेदनायुक्त रक्त रजःकृच्छ्रता' में हमने निम्न सामान्य चिकित्सा व्यवस्था में विशेष लाभकारी पाया है—

१. चन्द्रांशु रस २ गोली, प्रदरान्तक लौह २ गोली, यवक्षार १ ग्राम। सबको मिश्रित कर २ मात्रायें बना लें। ऐसी एक मात्रा की पुड़िया प्रातः ६ बजे शीतल जल से सेवन करायें।

२. नष्टपुष्पान्तक रस—१-१ गोली तिल एवं गुड़ के क्वाथ से दिन के ८ बजे एवं रात्रि ८ बजे सोते समय।

३. अशोकारिष्ट—१ औंस (८ ड्राम) भोजनोपरान्त दिन में दो बार।

नोट—यदि नं० १ के पश्चात्, तुरन्त अशोकारिष्ट का सेवन और कराया जाय तो शीघ्र उत्तम लाभ मिलता है।

उपर्युक्त चिकित्साक्रम पूर्ण परीक्षित है।

द्वितीय विशिष्ट अनुभव—

स्त्रियों के योनिशूल एवं योनिदाह पर—

१. नष्ट पुष्पान्तक रस—१-१ गोली तिल एवं गुड़ के क्वाथ से प्रातः ८ बजे एवं सायं ६ बजे।

२. प्रदरारि लौह (भै. र.)—२ गोली अशोक छाल क्वाथ के साथ १० बजे एवं ५ बजे।

३. अशोकारिष्ट—१ औंस भोजनोपरान्त।

नोट—यह औषधि चिकित्साक्रम उन रोगिणियों में भी विशेष लाभकारी होता है जिन्हें मासिक धर्म के समय कमर एवं कोष्ठ में दर्द होता है और दुर्बल स्त्री रोगिणी बेहोश तक हो जाती हैं उनमें हमने अति उत्तम पाया है।

विशेष ज्ञातव्य—

नष्ट पुष्पान्तक रस के व्यवहार से नष्ट हुआ आर्तव पुनः आरम्भ होता है। जिन स्त्रियों को मासिक धर्म के समय अत्यधिक कष्टदायक पीड़ा होती है उनके लिए विशेष उपयोगी है। इसके नियमित सेवन से आर्तव सम्बन्धी सभी विकार नष्ट होते हैं।

यदि मासिक धर्म सर्वथा कष्ट के साथ होता है तो २-२ गोली कुमारी आसव के साथ प्रातः सायं सेवन करायें।

—डा० श्री जहानसिंह चौहान, आयु० बृह०
चौहान आयुर्वेद निकेतन
नवीगंज (मैनपुरी) उ० प्र०

पंचामृत रस का सफल प्रयोग

प्राणाचार्य पं० हर्षुल मिश्रा बी. ए., प्रवीण

वास्तव में पंचामृत रस नासा रोगाधिकार का योग है। यह नासा रोगों की सर्वोपरि और सफल औषधि है, परन्तु जलोदर में भी इसका प्रयोग सुखदायक है।

शुद्ध सूतं समावाय गन्ध भाग द्वयं ततः।
त्रिभागं टंकणंचापि विषंभाग चतुष्टयम्॥
पंच भागस्तथा देयो मरिचस्तत् प्रयत्नतः।
शृंगबेर रसैः पिष्ट्वा गुटिका पंचरक्तिका॥
अनुपानं हितं योज्यं सर्व रोग प्रशांतये।
जलदोषोद्भवे रोगे महति उग्रे जलोदरे॥
सन्निपातेषु रोगेषु नासा व्याधौ स पीनसे।
व्रणशोथे व्रणेचैव नखदन्त विघातके॥
पंचामृत रसो योज्यः सर्वरोग प्रशांतये॥

उपर्युक्त पाठ के अनुसार शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, टंकण भस्म ३ तोला, शुद्ध वत्सनाभ विष ४ तोला, कालीमिर्च ५ तोला। सबका महीन चूर्णकर अद्रक के स्वरस की भावना देकर पत्थर के खरल में खूब मर्दन करें। सब द्रव्य मक्खन सदृश गाढ़ा और मृदु हो जाय, तब पांच-पांच रत्ती की गोलियां बनालें। वयस्क व्यक्ति को १ गोली बच्चों को आधी गोली। गुण—जल के दोषों से उत्पन्न सभी रोगों पर लाभकारी है। यह घोर जलोदर, सन्निपात, नासारोग, पीनस, व्रणशोथ, व्रण, नख और दंत घातक रोगों को दूर करता है।

रोगानुसार पंचामृत रस के सफल प्रयोग

मात्रा—आधी गोली से एक गोली।

१ जलोदर—जलोदर बड़ा कष्टदायक असाध्य रोग है। यह उदरावरण कला में जल संचित होने से होता है। रोगी को पेशाब कम होता है, और पेट भरी हुई मसक के समान फूला हुआ रहता है। पेट को हलाने से जल जैसा कलरव होता है। रक्तहीनता (पाण्डु) यकृत विकार आदि अनिवार्य रूप से रहते हैं। हमने बिलासपुर में एक रुग्णा पर, तरेसर ग्राम में एक रुग्णा पर, बालाघाट शहर में एक रुग्णा पर तथा बैतूल में एक रुग्ण पर पंचामृत रस का सफल प्रयोग किया है। यह शोथ युक्त जलोदर में भी लाभ करता है। हम जलोदर में पंचामृत रस का प्रयोग फाड़े हुए दूध के जल के साथ करते हैं प्रातः मध्याह्न सायं।

मात्रा—आधी गोली। रोगी को ताजे दूध को फाड़कर उसका जल पिलाते हैं। इसे जल नहीं पिलाते। नमक बिल्कुल नहीं देते। क्षुधा लगने पर गाय और बकरी का गरम दूध ही प्रति ४ घण्टे के अन्तर से १० तोला से २० तोला की मात्रा में पिलाते हैं। पंचामृत के प्रयोग से ७ दिन में ही जलोदर की वृद्धि थमकर उसका आकार छोटा होने लगता है। मूत्र विसर्जन खुलकर होने लगता है। रोगी शरीर में हलकापन अनुभव करने लगता है। ७ दिन

के बाद हम पंचामृत रस आधी गोली + प्रवाल पंचामृत २ रत्ती + कांत लौहभस्म १ रत्ती = १ मात्रा प्रातः सायं ताजे गोदूध के फाड़े हुए जल के अनुपान से १ माह तक सेवन कराते हैं, जिससे जलोदर लगभग आराम हो चुका होता है, परन्तु औषधि और पथ्य वन्द होने पर पुनः जल भरने का अंदेशा बना रहता है। ऐसी स्थिति में अगले दो माह तक सिर्फ सवेरे १ मात्रा औषधि दी जाती है। पथ्य—दूध का ही चलता है। नमक लगभग वन्द ही रहता है, जब रोगी के पेट का आकार दो माह तक स्वाभाविक बना रहता है, और क्षुधा उत्तरोत्तर बढ़ती है, तब उसे थोड़ी-थोड़ी गेहूँ का दरिया और दूध से बनी यवागू देना प्रारम्भ किया जाता है बीच-बीच में पुराने शाली चावलों की नमकीन यवागू, अद्रक की चटनी, चौलाई की भाजी, मेंथी की भाजी आदि भी रोगी को सेवन कराई जाती है। बस इसी प्रकार, जब रोगी स्वाभाविक भोजन करने लगता है, तब पंचामृत का सेवन बन्द करा दिया जाता है।

२. सन्निपात के प्रलाप पर—पंचामृत रस आधी गोली से १ गोली तक अद्रक स्वरस के साथ सेवन करने से तत्काल लाभ होता है। प्रलाप बंद हो जाता है। इस औषधि से ७२ घण्टे में रोगी स्वस्थ चित्त हो जाता है।

३. जीर्ण प्रतिश्याय और पीनस में—पंचामृत रस आधी गोली से १ गोली की मात्रा में १॥ माशा मधुयष्ठी चूर्ण और मधु के साथ चटाने से प्रतिश्याय और उसके कष्ट निःसंदेह दूर होते हैं और फिर बार-बार नहीं होते, यदि रोगी केला, जाम, दही, मही, खटाई, लाल-हरी मिर्च खाना छोड़ देता है।

४. व्रणशोथ, व्रण—व्रणशोथ यदि पकी नहीं है और पूय रहित है, तो पंचामृत रस को त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन करने से व्रणशोथ निःसंदेह बिना पके बैठ जाता है। बण और विस्फोट में १ माशा कालीमिर्च ३ माशा, शक्कर के साथ आधी गोली पंचामृत रस मिलाकर जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है। शरीर में होने वाले छोटी-छोटी पीड़िका, ददोरे, व्रण तो इस अनुपान के साथ सेवन करने से दश से पन्द्रह दिन के अन्दर मिट जाते हैं। व्रण और चर्मरोगों में पंचामृत रस खाते समय नमक, खटाई और मिर्च का सेवन बिलकुल बन्द कर देना चाहिए तभी आशातीत लाभ होता है।

५. नख दन्त घातक रोगों पर—पंचामृत रस आधी गोली + प्रवाल पंचामृत २ रत्ती + लौह भस्म १ रत्ती मक्खन मिश्री के साथ प्रातः सायं चाटकर तत्काल गरम दूध पीने से नखशोष मिटता है तथा दांतों को हानि पहुँचाने वाले रोग प्रायः नहीं होते। दांतों की जड़ें मजबूत होती हैं।

—प्राणाचार्य पं. श्री हर्पुल मिश्रा बी.ए., प्रवीण
सेवा निवृत्त विभागीय आयुर्वेदीय निरीक्षक
रायपुर

पारिभद्र रस

ग्रंथ नाम—र० सा० सं०

मूर्च्छितं सूतकं धात्रीफलं निम्बस्य चाहरेत्।
तुल्यांशं खदिरक्वाथैर्दिनं मर्द्यञ्च भक्षयेत्॥
गुञ्जैकं दद्रुकुष्ठघ्नः पारिभद्राह्वयो रसः॥
श्लोक—१३७

रस सिंदूर, आंवले के फलों का तथा नीम के फलों की गिरी का चूर्ण १-१ भाग तोले भर (अनुमानतः १०-१० ग्राम) लेकर खदिर क्वाथ के साथ एक दिन तक घोटकर सुखाकर रख देवें। इस 'पारिभद्र रस' को एक रत्ती भर (१२५ मिलिग्राम) की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करने से दद्रु और कुष्ठ विनष्ट हो जाते हैं।

वक्तव्य—पारिभद्र रस दद्रु तथा कुष्ठ रोग का नाश करने वाला एक सरल सुलभ प्रयोग है। भैषज्य रत्नावली कार ने पारिभद्र रस का वर्णन कुष्ठ रोग चिकित्सा प्रकरण में किया है।

—वैद्य कृष्णदत्त शर्मा
आयुर्वेदाचार्य, एच.पी.ए. मेडीसिन (जाम.)
राजकीय आयुर्वेदिक 'अ' श्रेणी चिकित्सालय
सादूलशहर (श्रीगङ्गा नगर) राज०

पुष्पधन्वा रस

धातुक्षयजन्य श्वास रोग में—पुष्पधन्वा रस

इस युग में आहार-विहार के परिवर्तन हो जाने से रोग पूर्व काल की अपेक्षा अधिक हो गये हैं—

शक्ति से अधिक व्यायाम, हाकी, क्रिकिट, फुटावल, दौड़, टैनिस इत्यादि खेल, स्ट्रौंग काफी, चाय, शीतल पेय, दही बड़ा, इठली डोसा इत्यादि आहार द्वारा आमाशय और यकृत के कार्य शिथिल हो जाते हैं। रस धातु के बजाय आम बनाने लगते हैं। यह उत्तम वायु प्राणवाही स्रोतों को अवरुद्ध करके जब फुपफुसों की श्वास नलिका में अवलम्बक कफ से निरन्तर निकलने वाला रस मार्ग वन्द कर देता है परिणाम श्वास लेना कठिन हो जाता है। जिसे क्षुद्र श्वास कहते हैं।

इसके अतिरिक्त उपरोक्त कारणों से वमन, विरेचन, ज्वर, पाण्डु, आमातिसार, कास वृद्धि, प्रतिश्याय, रक्तपित्त विसूचिका हो तो इन रोगों के पश्चात् भी श्वास हो जाता है।

मर्म स्थान पर चोट, विष सेवन, अति स्त्री सेवन, अति धूम्रपान के कारणों से धातुक्षय होकर भी श्वास होता है।

क्षयात सम्धारणात (मूत्र-मल, क्षुधा, तृष, वेगों के धारण) रौक्ष्यात् व्यायामात क्षुसितस्य च। (चरक विमाना-स्थान)।

उपरोक्त वर्णित कारणों से उत्पन्न श्वास रोग में पुष्पधन्वा रस ही महान सिद्ध औषधि है।

पुष्पधन्वा रस के घटक—

रस सिंदूर, नागभस्म, लौहभस्म, अभ्रक भस्म, बंगभस्म प्रत्येक १० ग्राम।

भावित काय एवं स्वरस

१. शुद्ध धतूरे के बीज का क्वाथ।
२. भांग (विजया) के पत्रों का स्वरस।
३. मुलहठी (मधुयष्ठी) का क्वाथ।
४. सेमलमूल का स्वरस (शाल्मी मूल)।
५. नागवेल का स्वरस।

विधि—रस सिंदूर को पीसकर चूर्ण वना लें, पश्चात् अन्य चार भस्में मिलाकर घोटें।

सर्व प्रथम शु० धतूरा बीज के क्वाथ से भावना दें उसे इतना घोटें कि वह सूख जाय। उसके पश्चात् भांग के पत्रों के स्वरस की, इसी प्रकार क्रमशः मुलहठी क्वाथ, सेमल मूल क्वाथ, नागवेल पत्र स्वरस की भावनायें दें। यह क्रम सात बार प्रत्येक औषधि से दें। १२५ मिग्रा. की गोली बनालें।

प्रत्येक औषधि पर विचार करने पर धातुजन्य श्वास रोग के लिए उपर्युक्त सिद्ध होता है।

—वैद्य श्री वेदप्रकाश गुप्त बी.आई.एम.एस.
कृष्णानगर, दिल्ली–५१

पञ्चामृत रस

ग्रन्थ—भै० र० नासा रोगाधिकारे।

घटक—पारद शुद्ध १ तोला, गन्धक शुद्ध २ तोला, सुहागा खील ३ तोला, विष ४ तोला और कालीमिर्च ५ तोला।

विधि—प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करके तदनन्तर उसमें उपरोक्त द्रव्यों का सुपिष्ट चूर्ण मिला अदरख के रस में ६ घण्टे घुटाई करके दो-दो रत्ती की वटी बनावें और छाया में शुष्क करके शीशी में भरकर रख दें।

मात्रा—१ से २ गोली तक।

अनुपान—अदरख का रस और रोगानुसार अनुपान के साथ।

गुण धर्म—वारिशोषण शरीर की आचूषक ग्रंथियों को बल प्रदान करना, और धमनियां सिराओं तथा रसवहा नाड़ियों की भित्ति को बल प्रदान करना, उपसर्गहर, प्रतिश्याय, पीनस और सन्निपात ज्वरहर।

उपयोग—पीनस, प्रतिश्याय, वातश्लैष्मिक ज्वर (इन्फ्लूएंजा), शिरःशूल, व्रणशोथ, व्रण, नाड़ीव्रण, भगन्दर एवं उपदंशादि पर तथा घोर वातश्लैष्मिक, सन्निपात ज्वर में अष्टांग अवलेह के साथ मुख में रखने से गले, तालु, नासा आदि स्थानों के कफ को एक ही दिन में वाहर निकालकर वड़े अच्छे निष्ठीवन का कार्य करता है। अष्टांग अवलेह के साथ इसे मुख में धारण करें।

—श्री डा० गंगाचरण शर्मा आयु०
भिवानी (हरियाणा)

प्रवाल पंचामृत रस

ग्रन्थ—यो. र.

बनावट—शुद्ध प्रवाल शाखा २ तोला, शुद्ध मुक्ता, शुक्त मुक्ता शुक्ति, शुद्ध शंख, शुद्ध पीली कौड़ी प्रत्येक १-१ तोला सबको मिलाकर खरल करें। फिर ६ तोला आक के दूध में खरल कर गोला बनावें। फिर सम्पुट कर गजपुट की अग्नि देने से भस्म तैयार हो जाती है।

नोट—कुछ वैद्य गोदुग्ध में खरल कर गोला बना भस्म बनाते हैं। यह सौम्य होती है।

२. अर्क दुग्ध से निर्मित उग्र होती है। कफ, श्वास, ज्वर जीवाणु नाशक उत्तम होती है। अतः केवल पित्त दाह शमन के लिए प्रथम विधि, पर अनेक रोगों को दूर करने के लिए दूसरी विधि उत्तम है भस्म मिलाते समय यह ध्यान रखें।

मात्रादि—१-२ रत्ती दिन में २-३ बार मधु, नवनीत, गुलकन्द, अनार का रस, नीबू रस, वासा शर्वत, कासनाशी आदि का अनुपान लेना चाहिए। जो मिश्रित योग दिये हैं उनमें रोगानुसार अनुपान ले सकते हैं।

उपयोग—

पित्तरोग, कफयुक्त पित्तरोग, सवात पित्तज रोगों को दूर करती है। इसका प्रभाव नाभि, यकृत, ग्रहणी, प्लीहा, फुफ्फुस और रक्त पर विशेष रूप से होता है।

रोग—गुल्म, आनाह, उदररोग (छिद्रोदर आदि को छोड़कर) बद्धोदर, यकृत वृद्धि, शूल, शोथ, प्लीहा रोग, कास, श्वास, कफवात प्रकोपज रोग, फुफ्फुसों में पूय, जीवाणु का संचय, उरस्तोय, फुफ्फुस पाक, उद्गम् अजीर्ण, उदरशूल, ग्रहणी, हृद्रोग, मन्दाग्नि, अतिसार, प्रमेह, मूत्ररोग, मूत्ररोध, मूत्र का कष्ट से आना आदि रोगों में लाभकारी। अश्मरी में भी सहायक रूप से और पुरःस्थ ग्रन्थि वृद्धि में भी सहायक रूप से प्रयोग होता है। बालकों के ग्रह उपद्रवों के सहित अन्य अनेक रोगों में लाभ करती है। गोदुग्ध से भस्म किया हुआ शुद्ध, पित्तज रोग दाह, जलन, रक्तपित्त, पित्त की अम्लता आदि में लाभकारी है। प्रमेह में यदि काला नीला, पीला मूत्र त्याग हो तो, और अतितृषा कर-पाद, तल आदि में भी लाभ करता है।

जब पाचक पित्त के विकृत होने पर अन्त्र, विदाह, अपचन आध्मान उदरशूल होता है तब इमली के पानी के हिम आलु बुखार के हिम वा नींबू रस से देने से लाभ होता है। यह क्षाररूप से होता है मुख में अकेला रखने से जीभ फट जाती है छाले पड़ सकते हैं गला खराब हो सकता है। अतः अनुपान में मिलाकर या शुद्ध योग में मिलाकर देना चाहिए। या कवच में रखकर देना चाहिए। इसको प्रयोग करते समय पित्तज विकृति पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। शुद्ध वातज रोग या कफयुक्त वातज रोग में यह लाभकारी नहीं है। शीत ऋतु में कम प्रयोग करना चाहिए।

प्रवाल पञ्चामृत मिश्रण

१. संग्रहणी—प्रवाल पञ्चामृत रस ३ रत्ती, पञ्चामृत पर्पटी २ रत्ती, स्वर्ण पर्पटी ½ रत्ती, यह १ मात्रा है। तक्र या दूध कल्प से वर्द्धमान क्रम से या अन्य उचित क्रम से देने से लाभ होता है। पर्पटियों में कज्जली होने के कारण पित्त दोष की तीव्रता और अम्लता यदि बढ़ती हो तो केवल प्रवाल पञ्चामृत देना चाहिए। या पञ्चामृत पर्पटी और स्वर्ण पर्पटी की मात्रा आधी या आधी से कम करदें। यह संग्रहणी पर अनुपम प्रयोग है। संग्रहणी में मल संचय, आम संचय हो जाता है तब भयंकर शूल उत्पन्न होता है। अतः ३-४ दिनों के बाद सरल विरेचन देकर मल निकालते रहना चाहिए।

२. अम्लपित्त—प्रवाल पञ्चामृत रस, कामदुधा रस, कपर्दिका भस्म प्रत्येक २-२ रत्ती यह १ मात्रा है। ३ माशे मधु से चटावें। ऐसी ३-४ मात्रायें दिन भर में दें।

सुदर्शन अर्क १-२मात्रा पिलाने से विशेष लाभ होता है। अम्लपित्त का वमन भी रुक जाता है। पहिले अविपत्तिकर चूर्ण १ तोला शीतल जल से खिलाकर १-२ टट्टी करालें। कामदुधा के स्थान पर या इसी योग में १-२ रत्ती स्वर्ण माक्षिक भस्म भी मिला सकते हैं। परिणामशूल और अन्न द्रव शूल में भी लाभकारी है।

३. पित्तज विकृतियां—प्रवाल पञ्चामृत रस ३ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण ४ रत्ती, नवनीत ६ माशे, बताशे ६ माशे

सब बराबर १ माशा बनावें। ऐसी अनेक मात्रायें सेवन करावें।

इससे अर्न्तदाह, रक्तपित्त, सर्वांगदाह, नयनदाह, पित्तज प्रमेह, उष्ण ऋतु के विकार, वमन, पाद दाह, पित्तज अन्य रोग, अन्त्रव्रण, वृहदान्त्र शोथ, रक्तातिसार आदि रोग दूर होते हैं। कास श्वास में नवनीत के बिना भी मधु में मिलाकर देते हैं।

४. हृदय रोग—प्रवाल पंचामृत रस २ रत्ती, विश्वेश्वर रस २ रत्ती, हृदयार्णव २ रत्ती।

सबको खरल कर १ मात्रा बनावें। ३ माशे मिलाकर चटावें। इसके प्रयोग से हृदय यन्त्र की, हृदय नाड़ियों की, दुर्बलता दूर हो जाती है। यह हृदय के वातज कफज पित्तज विकारों में लाभकारी है। हृदय की गति वृद्धि, हृदय की वेदना, हृदय का गौरव, सीढ़ी पर चढ़ने से दम फूलना, मन का उत्साहहीन होना, बिना श्रम थकावट होना उदर में वायु भरी होना आदि लक्षणों का निवारण करता है। यदि मूत्र साफ न उतरता हो तो प्रभाकर वटी २ रत्ती उक्त प्रयोग में मिलाकर दें या अलग से दें। यदि व्यक्ति स्थूल हो तो प्रभाकर वटी अवश्य दें।

५. अतिस्वेद—प्रवाल पंचामृत रस २ रत्ती, वृ०वात चिन्तामणि रस २ रत्ती, कपर्दिका भस्म ४ रत्ती, ३ मा. मधु में खरल कर चटावें यह एक मात्रा है। इसके प्रयोग से सन्निपात ज्वर का भयङ्कर प्रस्वेद, पसीना झरना बन्द हो जाता है। विदेशी जीवावसादक अनेक दवाइयों के देने से प्रस्वेद आकर शीतांग हो जाता है या नाड़ी पतन हो जाता है। तब यह पसीना को रोक देता हैआवश्यकता पड़ने ५-१० मिनटों पर भी मात्रायें देनी चाहिए।

६. यक्ष्मा—मृगांक रस १ रत्ती, प्रवाल पंचामृत, शोणितार्गल रस २-२ रत्ती।

यह एक मात्रा है। वासा शर्बत, कासनासी या कासारि या वासा घृत ३-४ माशे में मिला चटाना चाहिए। इसके प्रयोग से यक्ष्मा का रक्तपूय वमन, दाह कास दूर होती है। मृगांक रस के स्थान पर स्वर्णवसन्त मालती या स्वर्ण-सर्वांग सुन्दर भी ले सकते हैं। ४ रत्ती सितोपलादि भी ले सकते हैं।

७. प्रवाल पञ्चामृत रस २ रत्ती, योगेन्द्र रस १ रत्ती, सितोपलादि ४ रत्ती, यह १ मात्रा है। ऊपर की तरह सेवन करावें। शुक्रक्षय जनित यक्ष्मा में प्रयोग करें अन्य गुण ऊपर लिखे हैं। रुदन्ती फल चूर्ण, अभ्रक भस्म, शुद्ध गुग्गुल भी १-१ रत्ती मिला सकते हैं।

८. पुरःस्थग्रंथि वृद्धि—प्रवाल पञ्चामृत २ रत्ती, यवक्षार ४ रत्ती, कान्तलौह भस्म १ रत्ती, छोटे गोखरू चूर्ण २ रत्ती, त्रिफला चूर्ण ३ माशे मधु ६ माशे में मिला कर चटादें, यह १ मात्रा है।

इसके प्रयोग से मूत्र और मल साफ उतरता है। मुहुर्मुह मूत्रण या थोड़ा-थोड़ा मूत्र उतरने का रोग, पुरःस्थ ग्रन्थि या पौरुष ग्रन्थि (Enlargement of prostrate gland)की वृद्धि, शोथ, शूल, सरक्त मूत्रता, व्रण, उष्णवात मूत्रनलिकान्त मांसाकुर आदि विकार १५ दिनों के पूर्व ठीक हो जाते हैं। प्रवाल पंचामृत अर्क दुग्ध से भावित भस्मीकृत हो। अश्मरी से भी लाभकारी है।

९. अन्त्रक्षय—प्रवाल पञ्चामृत २ रत्ती, स्वर्णवसन्त मालती १ रत्ती, सहजना घनसत्व २ रत्ती, मधु ३ माशे मात्रा १, खरल कर चटावे। सहजना घनसत्व के अभाव में ३ रत्ती मूल छाल चूर्ण या १० बूंद स्वरस मिला लेना चाहिए। इसके प्रयोग से अन्त्रगत यक्ष्मा दण्डाणुओं का विनाश हो जाता है। यक्ष्मिकायें, कोटर, सिष्ट आदि दूर हो जाते हैं। शूल अतिसार, रक्तातिसार ज्वर, गुटिकायें सब दूर हो जाती हैं। शिलाजत्वादि लौह शास्त्री सि. प्र. या रास्नादि लौह २ रत्ती, उक्त प्रयोग में और मिश्रण करना चाहिए। संग्रहणी का प्रयोग भी विवेचनानुसार इसमें भी दे सकते हैं।

१०. पित्ताश्मरी-पित्तशूल—प्रवाल पञ्चामृत रस २ रत्ती, तालमखाना का क्षार ६ रत्ती, मात्रा १। खरल कर शीतल जल से सेवन करावें। रोगानुसार १ दिन में ५-६ मात्रायें भी दे सकते हैं।

११. दाह-रक्तपित्त—प्रवाल पञ्चामृत रस, चन्द्रकला रस २-२ रत्ती, गिलोय सत्व ४ रत्ती खरल कर १ मात्रा बनावें, नवनीत ३ मा. मिश्री ६ माशे में मिला चटावें। मार्तण्ड के प्रवाल की सूचिका बाहु की त्वचा में लगावें। अन्य पित्तज रोगों में भी देना चाहिए।

—श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव 'साहित्य सम्राट'
पो० अरौल (कानपुर) उ० प्र०

पूर्णचंद्र रसायन

ग्रन्थ —अ० हृ० रसायनाधिकार।

शुद्ध शिलाजतु, वायविडंग, लौह भस्म शतपुटी, हर्र, रससिंदुर, स्वर्ण माक्षिक भस्म ये ६ द्रव्य समभाग ले खरल कर चूर्ण करें। फिर छानकर शीशी में रखलें। मात्रा ६-६ रत्ती मधु ६ माशा, घृत १२ माशे मिलाकर चाटलें। ऊपर से गर्मकर मीठाकर १ पाव दूध पीवें।

१-२ वमन और १-२ विरेचनों के द्वारा पहिले शरीर शुद्ध करलें फिर इसका प्रयोग दिन में २ बार करें।

उपयोग—इसके प्रयोग से शरीर शोधन भी साथ-साथ होता जाता है और सप्त धातुओं का निर्माण भी, जिससे १५ दिनों में कृश शरीर चन्द्रमा की तरह पुष्ट हो जाता है फिर भी इसका सेवन १-२ मास करना चाहिए और ब्रह्मचारी रहकर पथ्य का पालन करना चाहिए।

इसके सभी द्रव्य मिलकर त्रिदोष शामक बनते है। लौह भस्म और स्वर्ण माक्षिक के प्रभाव से यकृत की क्रिया सत्वर होने लगती है जिससे रक्तक्षय दूर होता है। रस सिन्दूर, विडंग और शिलाजतु से द्रपीविष और जीवाणु प्रकोप दूर होता है यह योग मल और मूत्र को साफ लाता है जिससे शरीर शोधन होता है। शिलाजीत सभी रोगों का निवारण करता है। इससे शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होती है और शरीर पुष्ट होता रहता है। मूल श्लोक में जो १५ दिनों का समय दिया है। वह अति अल्प है अधिक दिनों के सेवन का फल अधिक होता है।

यदि १५ दिनों के बाद दूसरा प्रयोग सेवन करना चाहें तो विडंग के स्थान पर आमला+गोखरू+गिलोय तीनों का मिश्रत चूर्ण विडंग के बराबर रखलें और हर्र के स्थान पर त्रिवंग भस्म उतना ही रखलें। यह दूसरा प्रयोग भी रसायन बनता है। इसके सेवन से सप्त धातुओं की वृद्धि होती है। त्रिवंग भस्म से शुक्र वर्द्धन और शुक्र का स्तम्भन होता है। पुरुषेन्द्रिय में विशेष शक्ति आ जाती है। २ मास इसका सेवन करने से असमय में श्वेत हुए केश काले होने लगते है और नपुंसकता दूर हो जाती है। इस काल में घी दूध का अधिक सेवन करना चाहिए और अपथ्य त्याग करना चाहिए।

अपथ्य—गर्म भात, मादक द्रव्य, चाय, काफी, अधिक नमक क्षार, खटाई, नीबू आदि।

नोट—शरीर के भार के अनुसार मात्रा दूनी भी ली जा सकती है। प्रमेही और स्वप्नदोषी भी घी से रहित दोनों प्रयोग सेवन कर सकते है।

—श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव वैद्य
भरौल, (कानपुर)

वसन्तकुसुमाकर रस

वैद्य श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव

घटक	वैद्य सहचर	र.सा.सं.	र.र.स.
स्वर्ण भस्म	१ तो.	२ तो.	२ तो.
रजत भस्म	२ तो.	२ तो.	×
वंग भस्म	३ तो.	३ तो.	३ तो.
शीशा भस्म	३ तो.	३ तो.	×
कान्तलौह भस्म	३ तो.	३ तो.	३ तो.
अभ्रक भस्म	४ तो.	४ तो.	२ तो.
प्रवाल पिष्टी	४ तो.	४ तो.	४ तो.
मुक्तापिष्टी	४ तो.	४ तो.	४ तो.
अम्बर	१ तो.	×	×
०. कस्तूरी	३ मा.	३ मा.	३ मा.
१. रससिंदूर	×	×	४ तो.

भावना द्रव्य और उनकी ७-७ भावना—१. गोदुग्ध, . गन्ने का रस, ३. अडूसे का रस, ४. लाक्षारस, ५. ान्धवाला का क्वाथ, ६. केले के जड़ का रस, ७. ़त कमल पुष्प रस, ८. मालती पुष्प रस, ९. श्वेत न्दन क्वाथ, १०. हरिद्रा स्वरस। —वैद्य सहचर

१-८ पूर्वोक्त, ९-केले के फूल का रस.१०—कस्तूरी ो भावना—र. सा. सं.

१-३, ५-८ पूर्वोक्त, ४—हरिद्रा स्वरस, ८—छोटे खस, ०—बड़े उशीर, ११—कस्तूरी—र. र. स.।

विवेचन—र. सा. सं. में 'चन्द्र' शब्द है जिससे ानन्दी टीकाकार रजत ग्रहण करते हैं 'रजत हेमनी द्वयं' ो. र. 'अहि' से नाग भस्म और कान्तक से कान्त लौह ़स्म उदीच्य से वालक या नेत्रवाला का क्वाथ, मालती । जाती यो. र. जातिः श्वेत सुगन्धि पुष्पा प्रायः श्रावण ़ासतः पुष्पति। शा. सं. में रजत, नाग और अम्बर नहीं । र. र. स. में अम्बर, नाग और रजत नहीं है। हीरक ुक्त योग में हीरक के कारण निर्माण कठिन एवं बहुमूल्य है। स्वर्ण की मात्रा वै. स. के अतिरिक्त सभी में दूनी है इस तरह सभी का मूल्य बढ़ जाता है किसी में केसर जल की भी भावना है। केसर कामोत्तेजक है जिसकी आवश्यकता मधुमेह में प्रतीत नहीं होती। मधुमेही के हृद्‌साद में आवश्यकता पड़ सकती है और तब हीरक और कस्तूरी जल की भावना भी उचित है। वैद्य सहचर में स्वर्ण की मात्रा आधी है। रजत, नाग और अम्बर भी है इसलिए अन्यों के अनुपात में मूल्य कम हो गया है। कस्तूरी भी ३ माशे की मात्रा खोल दी गई है अन्यों में मात्रा का उल्लेख नहीं। अतः अनेक प्रकार से विचार करने पर हम वै.स. के प्रयोग का अनुमोदन करते हैं। यह लेखक का अनेक बार का अनुभूत है। वै.स. ७७ अप्रैल के संस्करण में भावना के ८ ही द्रव्य लिखे हैं। दो द्रव्य आचार्य जी से पूछे जा सकते हैं। आचार्य जी ने मूंगा भस्म और मोती भस्म लिखा है हम दोनों की पिष्टी मिलाते हैं। यह भी उनसे पूछा जा सकता है। वै.स. का वसन्त कुसुमाकर का प्रयोग शंका रहित, निर्माण में सरल और अनुभूत भी है। गुण वर्धन के लिए वेलपत्र स्वरस, करेला स्वरस, गुड़मार स्वरस, पलाश स्वरस, सप्तरंगी स्वरस में से कुछ की या किसी एक की भावना बढ़ाई जा सकती है। यह प्रयोग रोग निवारण करता है तब अन्य प्रयोग पर विचार कर ही निर्माण करें। आगे हम आचार्य जी के शब्दों में कुछ पंक्तियां दे रहे हैं—

रोगानुसार अनुपान योजना

१. प्रमेह—हल्दी स्वरस ६ माशे+वाल सेमल मूल चूर्ण १ माशा, मधु ३ माशे।

२. अम्लपित्त—स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, निम्बु स्वरस ६० बूंद+मिश्री २ माशे।

३. अम्लपित्त—चन्दन का भासा १मा., २ मा. मिश्री।

४. अम्लपित्त—वासा स्वरस २. माशे+मधु २ माशे+मिश्री २ माशे।

५. रक्तपित्त—अम्लपित्त के समान।

६. अशक्ति, अपुष्टि—चातुर्जात चूर्ण २ माशे+मधु २ माशे, दूध २५० ग्राम।

७. छर्दि-बुद्धिभ्रन्श—शंखपुष्पी स्वरस १ तोला, मधु २ माशे।

८. व्यवाय, शोष, शुक्रहानि—घृत ३ माशा, मधु २ माशा, मिश्री २ माशा।

९ बहुमूत्र-मधुमेह—गूलर फल स्वरस १ तोला, या। जम्बूबीज चूर्ण २ माशा या गुड़मार चूर्ण २ माशा।

१०. बाजीकरणार्थ—केशर चूर्ण २ रत्ती+त्रिबंग भस्म २ रत्ती+मधु २ माशा, दूध २५० ग्राम।

११. श्वास—सोमकल्प ३ रत्ती+मधु १ माशा।

१२. क्षय—स्वर्ण वसन्त मालती १/२ रत्ती+रुदन्ती फल चूर्ण २ रत्ती+गुग्गुल शुद्ध २ रत्ती+मधु २ माशे।

१३. (अ) प्रमेह—ताल माखाना चूर्ण १ माशा, जायफल चूर्ण २ रत्ती+मिश्री २ माशा।

(ब) प्रमेह—हल्दी चूर्ण ३ रत्ती+आमला चूर्ण ४ रत्ती।

१४. मधुमेह आदि—मधु कवच—वसन्त कुसुमाकर रस १ रत्ती, गिलोय सत्व २ रत्ती, गुड़मार चूर्ण २ रत्ती, करेला बीज चूर्ण २ रत्ती। सबको खरल कर १ कवच में। ऐसे १ कवच प्रातः तथा १ सायं दें।

१५. प्रदर-नारी मधुमेह—इसके अनुयोग के रूप में चरक बम्बई का फीमेलसैक्स दें या ल्यूकोल कैपसूल (निर्मल आयु. संस्थान) का दें। स्थानीय प्रक्षालन भी करें पिचु भी धारण करें। स्वर्ण मालती मिश्रण शा. सि. प्रयोगांक पृ. २८६ का प्रयोग करें।

लाभ—यह औषधि मधुमेह और बहुमूत्र की अव्यर्थ औषधि है। यह उच्चश्रेणी का रसायन योग है। यक्ष्मा, प्रमेह, श्वास, कास, जीर्ण ज्वर, तृषा, निर्बलता, धातु क्षीणता, ओज क्षीणता आदि अनेक रोगों में लाभ पहुँचाती है। इस का प्रभाव नाड़ी-मण्डल तथा मूत्र संस्थान पर होता है। फुफ्फुसों को और हृदय तथा मस्तिष्क को यह बल प्रदान करता है। यह वातपित्त और कफशामक विस्तृत क्षेत्र प्रभावी योग है।

वसन्त कुसुमाकर की २-३ मात्राएँ गुड़मार के अनुपान से दी गईं। केवल ७ रोगियों पर प्रयोग किया गया। ये रोगी ५-६-७ वर्षों से इन्स्यूलिन लेते थे न लेने पर मूर्च्छा हो जाती थी। इन रोगियों पर प्रयोग करने से लाभ हुआ, इन्स्यूलिन लेना बन्द हो गया। धीरे-धीरे रोगी अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ गए।

योग मिश्रण—१. वसन्तकुसुमाकर १ माशा, २. गिलोयसत्व ३ माशा, ३. गुड़मार चूर्ण २ माशा, मिश्रित मात्राएँ आठ। अनुपान—विल्वपत्र स्वरस २ तो., आम के कोमल लाल पत्रों का स्वरस ३ तो. मिलाकर सेवन करना चाहिए। समय—प्रायः सायं।

लाभ—इससे भयंकर से भयंकर मधुमेह जिसमें इन्स्यूलिन इत्यादि के इन्जेक्शन से लाभ नहीं होता। वहां पर उक्त मिश्रण मूत्र की मात्रा को कम कर शर्करा का आना रोक देता है। तथा शक्ति बढ़ाकर रोगी को स्वस्थ कर देता है।

मधुमेही के प्रधान लक्षण—

प्रथम—१. मूत्र में शर्करा की प्राप्ति १-२ प्रतिशत।
२. मूत्र राशि में वृद्धि।
३. मूत्र का आविलत्व।
४. अल्प प्यास। ५. दुर्बलता।

द्वितीय—१. मूत्राधिक्य। २. तृषा।
३. मूत्र में शर्करा १-४%
४. दुर्बलता। ५. कण्डू।
६. सर्वाङ्ग-मर्द, सन्धि वेदना।
७. भोजन-आकांक्षा तीव्र।

तृतीय—१. शर्करा ४-८%
२. तृषा।
३. क्षुधा।
४. मांस दौबल्य।
५. कान्ति हीनता, दृष्टि हीनता।
६. सन्धि, जानु कटि-वेदना।
७. मूर्च्छा।

—वैद्य-सहचर से साभार।

—वैद्य श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव
अरौल, (कानपुर)

बहुमूत्रान्तक रस

डा० राजेन्द्रप्रकाश भटनागर एम० ए०, पी-एच० डी०

भैषज्य रत्नावली में 'बहुमूत्रचिकित्सा प्रकरण' में 'बहुमूत्रान्तक रस' नाम से दो योग दिये हैं।

प्रथम योग

रसश्च शाल्मली मूल चूर्णं कदलीमूलजम्।
उदुम्बरबीज चूर्णं लौहो वङ्गञ्च वविद्रुमम्॥
मुक्ताहिफेनसारौ च प्रत्येकं समभागिकम्।
मर्द्येन्मालती पुष्परसेन कुशलो भिषक्॥
रक्तिद्वयमितां कुर्याद्वटिकामति शोभनाम्।
बहुमूत्रान्तको नाम रसः परमाशोभनः॥
मधुमेहं सोमरोग हन्ति भास्वान् यथा तमः॥
—भै० र० ६/३५–३८

घटक—रससिन्दूर, सेमल की जड़, केले का कन्द, उदुम्बर के बीज, लौह भस्म, वंग भस्म, प्रवाल भस्म, मुक्ता भस्म, शुद्ध अफीम प्रत्येक समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर। भावना—चमेली के फूलों के रस की भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाकर सुखाकर रख लेवें।

मात्रा—१ से २ गोली, प्रातः सायम् जल से।

उपयोग—मधुमेह और सोमरोग (बहुमूत्र)।

द्वितीय पाठ

सिन्दूरञ्च तथा लौहो वङ्गाहिफेनसारकौ।
उदुम्बरभवं बीजं विल्वमूलं सुरप्रिया॥
सर्वं समं जन्तुफलस्वरसंमर्दितं भवेत्।
रक्तिद्वयमितां खादेद्वटिकामनुपानतः॥
दद्यादौदुम्बरफलरसं पथ्यविधिं शृणु।
मांस प्रधानं भक्षञ्च तथा गोधूमपिष्टकम्॥
बहुमूत्रान्तकरसो नाशयेदविकल्पतः।
बहुमूत्रं तथा चान्यान् रोगांश्चैव तदुद्भवान्॥
—भै० र० ८६/३९–४२

घटक—रससिन्दूर, लौहभस्म, वंगभस्म, शुद्ध अफीम, गूलर (उदुम्बर) फल के बीज, बेल का मूल, सुरप्रिया (शीतलचीनी या तुलसी) समभाग।

निर्माण विधि—प्रत्येक सममाग लेकर, सूक्ष्म चूर्ण बना लेवें। उसे गूलर (उदुम्बर) फल के रस की भावना देकर खरल कर २-२ रत्ती (२५० मिग्रा०) की गोलियां बनाकर सुखा लेवें।

मात्रा—१ से २ गोली, प्रातः सायम्।

अनुपान—सहपान—उदुम्बर के फलों का रस १० ग्राम और शहद ३ ग्राम के साथ मिलाकर सेवन करें।

पथ्य—माँस, मांसरस, गेहूँ का दलिया, दूध।

उपयोग—बहुमूत्र और तज्जन्य सब रोगों में हितकर है।

समीक्षा

उक्त दोनों पाठों में से वैद्यों में द्वितीय पाठ विशेष प्रचलित है। प्रथम योग 'स्वर्णमुक्ता' प्रधान होने से महँगा है और सर्व सुलभ नहीं है।

द्वितीय योग पर यहां चिकित्सकीय समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है।

यह योग अफीम युक्त है अतः इसे सावधानीपूर्वक और लम्बे समय तक प्रयोग नहीं करें। अन्यथा पाचक स्रावों की कमी से क्षुधामांद्य और कब्ज होने की संभावना रहती है। अफीम को शुद्ध करके मिलानी चाहिए। अफीम को जलमें घोलकर उबालने से वह शुद्ध हो जाती है। इसे छानकर पुनः घन करें। इससे कंकड़ आदि हट जाता है परन्तु अफीम की मात्रा आधी रह जाती है।

मूलपाठ में 'सुरप्रिया' लिखा है, इससे कुछ लोग शीतलचीनी तो कुछ तुलसी मानते हैं। परंतु मूत्ररोग प्रकरण की दृष्टि से यहां शीतलचीनी लेना अधिक उपयुक्त है। इस का उपयोग बहुमूत्र और तज्जन्य तृष्णा, बलहानि, कृशता, दाह, भ्रम, विषाक्तता आदि उपद्रवों की शांति के लिए बताया गया है।

बहुमूत्र को 'उदकमेह' (Diabetes Insipidus) कहते हैं। मधुमेह में भी बहुमूत्र पाया जाता है। मूत्र का स्राव अधिक मात्रा में और अधिक बार होना ही 'बहुमूत्र' कहलाता है। उदकमेह में मूत्र जलसदृश, निर्गन्ध, वर्णहीन, स्वच्छ, अतिपरिमाण में और शर्करारहित होता है परन्तु मधुमेह में यह कुछ कम मात्रा में अधिक गंदला, शर्करायुक्त और कुछ गाढ़ा होता हैं। इन दोनों ही अवस्थाओं में बहुमूत्रान्तकरस का प्रयोग किया जाता है।

अफीम और वंगभस्म से मूत्र की शर्करा की मात्रा कम होती है, तृषा आदि उपद्रव कम होते हैं, वात नाड़ी संस्थान पर शामक परिणाम होता है। कुछ बल की वृद्धि होती है। इन दोनों द्रव्यों का शुक्र संस्थान पर भी शामक प्रभाव होता है। इससे शीघ्रपतन, स्वप्नदोष और वीर्य की कमजोरी (पतलापन) दूर होती है।

लोहभस्म—रसायन, रक्तवर्धक, पौष्टिक और बल्य है।

रससिन्दूर—रसायन, बल्य, जीवाणुनाशक, योगवाही और विषनाशक है।

गूलर—ठंडा, कषैला, ग्राही, जन्तुनाशक, रक्तशोधक, मधुमेहनाशक, रक्तस्राव और रक्तार्श, रक्तप्रदर नाशक है। स्त्रियों में रक्तप्रदर और श्वेतप्रदर की उत्तम औषधि है सूजाक में भी उपयोगी है। इसके पत्तों के रस या क्वाथ से उत्तरबस्ति देने से रक्तप्रदर में अमोघ लाभ मिलता है। कविराज गणनाथसेन ने इसके पत्तों के रस का घन बनाकर बाह्य और आभ्यान्तर प्रयोग कर अनेक लाभ पाये थे। इसे 'उदुम्बर पत्रसार' कहा गया। इसका बाह्य प्रयोग व्रण, क्षत, शोथ, भगन्दर, रक्तवाहिनी क्षत, मोच, चोट, नेत्ररोग, कंठरोग, कर्णपाक, अग्निदग्ध में और आभ्यन्तर सेवन अतिसार, प्रवाहिका, अजीर्ण में गुणकारी पाया गया है। सुजाक, मधुमेह और जीर्णज्वर में भी गुणकारी है।

बेल मूल की छाल—रसायन, बुद्धिवर्धक, विषनाशक, जीवाणुनाशक, ग्राही, शोधक, मधुमेहघ्न है। सुश्रुत ने 'मेधायुष्कामीय' अध्याय में बिल्वमूल क्वाथ को सुवर्ण भस्म के साथ कल्करूप में १ वर्ष तक सेवन का विधान है।

चमेली के फूल—व्रणरोपक, जीवाणुनाशक, रक्तशोधक।

आशाविक प्रयोग

१. बहुमूत्र और मधुमेह में इसे जामुन की गुठली व गुड़मार के चूर्ण (१-१ ग्राम) के साथ मिलाकर मधु से चटावें।

२. प्रमेह में गिलोय के क्वाथ में हल्दी का चूर्ण (२ ग्राम) डालकर इसके अनुपान के साथ प्रयोग करें।

३. शीघ्रपतन आदि वीर्य रोगों में अच्छे औटाये दूध के साथ सेवन करायें।

सावधानी या निषेध—कब्ज की शिकायत में इसे न देवें। अफीम होने से यह तीव्र क़ब्ज करता है।

विशेष—आचार्य ने इसके प्रयोगकाल में मांस प्रधान पौष्टिक आहार का सेवन बताया है। यह अफीम प्रधान योग होने से ही समझें। शाकाहारी लोग इसके स्थान पर जौ चने की 'मिस्सी' की रोटी खायें। तैल के पके पदार्थ, गुड़, खटाई, अधिक शक्कर का वर्जन करें। इनसे पाचन क्रिया बिगड़ती है।

—डा० राजेन्द्रप्रसाद भटनागर एम. ए., पी-एच. डी.,
भिषगाचार्य आयु., एच.पी.ए.
प्राध्यापक—राज० आयु० महाविद्यालय,
उदयपुर (राज.)

ब्राह्मीवटी

डा० राजेन्द्रप्रकाश भटनागर एम० ए०, पी-एच० डी०

सन्निपात ज्वर, प्रलाप और ज्वरोत्तर दौर्बल्य की दृष्टि से 'ब्राह्मीवटी' वैद्य जगत् में सर्वत्र प्रचलित और बहुशोऽनुभूत योग है।

भैषज्य रत्नावली में इसका पाठ इस प्रकार दिया है—

पञ्चकर्षात्मकं ब्राह्मीपत्रं कर्षद्वयात्मकम्।
उत्तमं स्वर्णसिन्दूरं गृह्णीयात् कुशलोभिषक्॥
मृतं वंगं तथैवाभ्रं विशुद्धं च शिलाजतु।
मरिचं पिप्पली चैव विडङ्गं कर्षसम्मितम्॥
अर्द्धकर्षोन्मिता शुद्धा कस्तूरी यत्नतो बुधैः।
सर्वमेकत्र संयोज्यं भाव्यं चैव त्रिवारकम्॥
ब्राह्मीरसेन वा शीतकषायेण यथाविधि।
ततो द्विरक्ती प्रमिताः प्रकल्प्या वटिकाः शुभाः॥
तस्याः प्रयोगतो दोषानुसारेणानुपानतः।
ज्वरोत्तरसमुद्भूतं दौर्बल्यं नालवज्वरः॥
प्रलापको मन्थरको ज्वरोऽन्येऽपि च ये ज्वराः।
मस्तिष्कस्य हृदश्चापि दौर्बल्यं सूतिका ज्वरः॥
मल्लबलः सप्राधान्यसन्निपात समुद्भवा।
तेषु सर्वेषु दोषाणां पाचनेन फलं शुभम्॥

—भै० र०, ५/६६६-६७२

घटक—ब्राह्मी के पत्ते ५ कर्ष, स्वर्ण सिन्दूर (मकरध्वज) २ कर्ष, बंगभस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध शिलाजीत, मरिच, पीपर, वायविडंग प्रत्येक १-१ कर्ष, शुद्ध कस्तूरी १/२ कर्ष, सबका महीन चूर्ण बनालें।

भावना—ब्राह्मी के रस की ३ भावनायें लगाकर २-२ रत्ती (२५० मिग्रा०) की गोलियां बना सुखा लेवें।

मात्रा—१ से २ गोली शहद से।

उपयोग—ज्वरोत्तरकालीन दौर्बल्य, जीर्ण ज्वर, मस्तिष्क और हृदय की दुर्बलता, प्रसूति ज्वर, मन्थर ज्वर (Typhoid), प्रलापक ज्वर, अन्य वात-कफजन्य, सन्निपात। इन रोगों में यह दोषों का पाचन करती है।

विशेष—ब्राह्मी वटी के नाम से निम्न तीन योग भी मिलते हैं। ये अनुभूत, कल्पित और बाद के हैं—

१. ब्राह्मीवटी (स्वर्णयुक्त)—सिद्धयोग संग्रह-आचार्य यादव जी।

२. ब्राह्मीवटी (बुद्धिवर्धक), सिद्ध भेषज मणिमाला कृष्णराम भट्ट।

३. ब्राह्मीवटी (चेचक)-आयुर्वेद सारसंग्रह (वैद्यनाथ) प्रमुख रूप से वैद्यों में प्रचलित और फार्मेसियों द्वारा ब्राह्मीवटी के नाम से बनाया जाने वाला योग भैषज्य रत्नावली का उपर्युक्त योग ही है।

यह वात प्रधान और कफप्रधान सान्निपतिक विकारों में अत्यन्त लाभप्रद है।

इसकी मस्तिष्क और नाड़ीव्रण संस्थान पर विशेषरूप से क्रिया होती है। यह शामक है। स्मरणशक्ति को बढ़ाता है। हृदय व मस्तिष्क को बल प्रदान करता है।

पित्त के प्रकोप से ज्वर जीर्ण हो जाता है। धातुओं की दुर्बलता से भी ज्वर जीर्णावस्था प्राप्त करता है। तब इस योग का प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद प्रमाणित होता है।

रक्तगत विषाक्तता को भी यह दूर करता है। मन्थर ज्वर की चिकित्सा में इसका विशेष प्रयोग परिलक्षित होता है। ब्राह्मीवटी १२५ मिग्रा०+सौभाग्यवटी २५० मिग्रा०+सितोपलादि चूर्ण १ ग्राम मिलाकर लवंगोदक से देवें।

—डा० राजेन्द्रप्रकाश भटनागर, एम. ए पी-एच. डी.
भिषगा०, आयु., एच.पी.ए.
प्राध्यापक-राजकीय आयु. महाविद्यालय,
उदयपुर (राज.)

महागन्धक रस

ग्रंथ नाम—भैषज्य रत्नावली ग्रहणी रोग प्रकरण।

घटक—हिंगुलोत्थ पारद, शुद्ध गन्धक, जायफल, जावित्री, लौंग, निम्बपत्र, सम्भालू के पत्ते और इलायची दाना-सब औषधियां समान भाग।

विधि—पारद गन्धक की श्लक्ष्ण कज्जली बना लेवें। तदनन्तर शेष औषधियों का भी खूब बारीक मैदा के माफिक चूर्ण करके रख लेवें। इसके बाद पारद गंधक की कज्जली से पर्पटी निर्माण विधि से पर्पटी बनाकर उस पर्पटी को खरल में डालकर खूब रगड़ाई करें जिस प्रकार वह कज्जली रूप में पहिले था। वैसा ही उसे बनाकर तदनन्तर शेष औषधियों का सूक्ष्म पिसा हुआ चूर्ण भी उसी में मिलाकर इतनी देर रगड़ें कि कज्जली और चूर्ण एक जीव हो जावे, तदनन्तर उसमें थोड़ा सा जल डालकर रगड़ाई करके पिष्टवद् हो जाने पर एक शुक्ति में डालकर दूसरी शुक्ति उसके ऊपर ढककर दोनों की सन्धियों को सुहागे की पिट्टी लेपन द्वारा बन्द करें और शुक्तियों पर कदली पत्र लपेट २-२ अंगुल मिट्टी का लेपकर सुखाकर बालुका यंत्र में इतनी देर पाक करें कि ऊपर की बालू गर्म हो जावे अथवा आरने उपलों की अग्नि में रखकर तब तक पाक करें, जब तक ऊपर की मिट्टी लाल न हो जावे। तदनन्तर अग्नि बन्द करके स्वांग शीतल होने पर इसके बाद सम्पुट से निकाल कर रख लेवें और जिस समय रोगी को औषधि देनी हो उस समय उतनी ही औषधि खरल में पीसकर देवें।

मात्रा—पूर्ण वयस्क को २ से ६ रत्ती और बालकों को उनकी आयु के अनुसार आधी से ३ रत्ती।

गुण—ज्वरघ्न, उपसर्गहर, दीपन, पाचन तथा शोष रोग अर्थात् क्षीणता नाशक है।

प्रयोग—इस रसायन का प्रयोग कास, श्वास, उरःक्षत

बालकों के शोष रोग, आंत्रिक ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी और ज्वरातिसार में सफलता से किया जाता है।

अनुपान—आंत्रिक ज्वर में अतिसार भी हो तब रोगी को मथे हुए दही के पथ्य पर रखकर धान्यचतुष्क या धान्य पञ्चक क्वाथ के अनुपान से देवें और अतिसार रहित आंत्रिक ज्वर में गौ या बकरी के पकाये हुए दूध के साथ दें। कास श्वास उरःक्षत में मधु या मधु, मक्खन के साथ दे और ऊपर से मिश्री एवं सितोपलादि या तालीसादि चूर्ण मिला हुआ दूध पिलावें। बालकों के शोष रोग में मधु और मलाई मिश्री से दें। शेष ज्वरातिसार, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी और रक्तातिसार में धान्य पंचक या धान्य चतुष्क क्वाथ से देवें।

सीप जो सामान्य तालावों में बड़ी-बड़ी यानि इतनी बड़ी जिसमें एक सीप में तीन-चार तोले पदार्थ आ जावे उन सीपों मे बनाने से भी उतना ही लाभ करता है। मुख में जब दाह होने लगे तो मुनक्काओं को शहद के साथ सिल पर घोटकर चटनी बनालें और बीच-बीच में दाह शान्त्यर्थ इस मीठी चटनी को भी मुख में धारण करने को रोगी से कहें।

—प्रो० श्री गंगाचरण शर्मा आयु०
गोशाला रोड, भिवानी (हरियाणा)

मुक्तापञ्चामृत रस

द्रव्य—मुक्ताभस्म, प्रवाल भस्म, कपर्दिका भस्म, शंख भस्म, शुक्ति भस्म।

विधि—पांचों भस्मों को समान भाग लेकर खरल मे डालकर इसमें गन्ने का रस, गोदुग्ध, विदारीकन्द क्वाथ, शतावरी रस अथवा क्वाथ, तुलसीपत्र रस, हंसराज रस, घृतकुमारि रस पृथक-पृथक डालकर भली-भांति मर्दन कर सुखाकर रख लेवें।

मात्रा—१ से २ रत्ती तक।

अनुपान—शहद, पीपल चूर्ण, गुलकन्द, अनार का रस और नीबू का रस। समय—प्रातः सायं।

अवधि—१ सप्ताह से ३ सप्ताह पर्यन्त अथवा आवश्यकतानुसार।

उपयोग—यह आनाह, गुल्म, उदर रोग, प्लीहा, जीर्णज्वर तथा क्षय, कास, श्वास, शरीर में कैल्शियम की कमी, रक्ताल्पता, दौर्बल्यतानाशक, बल वीर्यवर्द्धक, स्फूर्ति प्रदायक है। मन्दाग्नि, अजीर्ण, उद्गार, ग्रहणी, अतिसार, हृद्रोग, प्रमेह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, बालकों के ग्रह उपद्रव तथा सूखा रोग नाशक है।

मुक्तापञ्चामृत अम्लपित्त में नीबू अथवा अनार के शर्बत के साथ सेवन करने से अति लाभदायक सिद्ध हुआ है। रोग निवृत्ति के उपरान्त हुई निर्बलता में शहद के साथ चटाकर ऊपर से मिश्री मिश्रित औटाया गौदुग्ध पान कराने से सत्वर आरोग्यता होती है। ऊपरलिखित रोगों में विभिन्न अनुपानों द्वारा प्रयोग करने से आश्चर्यजनक गुण-प्रदर्शक यह मुक्तापञ्चामृत मेरा सहस्रों रोगियों पर अनुभव सिद्ध शास्त्रीय प्रयोग है।

—कवि. श्री हरिवल्लभ म. सिलाकारी शास्त्री
श्री निरंजन निवास, सागर (म. प्र.)

पाण्डु रोग और योगराज रसायन

वैद्य श्री फूलचन्द्र जैन शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

पाण्डु रोग पित्तजदोष तथा यकृत प्लीहा की विकृति से होता है। उक्त रोग में पित्त विकृति होकर सर्व शरीर में पीतता पैदा कर देता है विशेपतया नेत्रों में, मूत्र में तथा नखों में स्पष्ट पीलापन दिखाई देता है। पाण्डु रोग की अनुकूल चिकित्सा न होने पर या अपथ्य सेवन करने से रोग विकृत होकर कामला, कुम्भ कामला, हलीमक में परिवर्तित होकर असाध्य हो जाता है और रोगी काल कवलित हो जाता है।

> **त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रि कटुकस्य च।**
> **भागाश्चित्रकमूलस्य विडंगानां तथैव च ॥**
> **पञ्चाश्म जतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च।**
> **माक्षिकस्य च शुद्धस्य लौहस्य रजसस्तथा ॥**
> **स्पष्टौ भागाः सितायाश्च तत्सर्वं सूक्ष्म चूर्णितम्।**
> **माक्षिकेषाधुतं स्याप्यमायसे शुभे ॥**
> **उदुम्वर समां मात्रां ततः खादेद्याथाग्निना।**
> **दिने दिने प्रयुञ्जीत जीर्णे भोज्यं यथेप्सितम् ॥**
> **वर्जयित्वा कुलत्थानि काकमांची कपोतकम्।**
> **योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥**
> **रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं शिवम्।**
> **पाण्डु रोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम् ॥**
> **कुष्ठान्य जीर्णकं मेहं शोषं श्वासमरोचकम्।**
> **विशेषाद्धन्त्यपस्मार कामलां गुदजानि च।**

हरड़, बहेड़ा, आंवला, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रक, बायविडंग प्रत्येक औषधि एक-एक भाग शुद्ध शिलाजीत, रजत माक्षिक भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, लौह भस्म ५-५ भाग, मिश्री आठ भाग इन सभी औषधियों का चूर्ण करके एक पात्र में मिलाकर मधु मिलायें। मधु की मात्रा इतनी हो कि जिसमें चूर्ण गीला हो सके फिर सुन्दर लोहे के पात्र में ढक रसायन को सुरक्षित रखें।

मात्रा—४ रत्ती से ८ रत्ती तक प्रतिदिन सेवन करायें। यह रसायन अमृत के सदृश सभी रोगों से मुक्त कराने वाला तथा रोग विमुक्ति के वाद की दुर्बलता एवं रक्त कणों की वृद्धि के लिए अतीव उपकारी महौषध है।

विशेषतया पाण्डु रोग, कास, राजयक्ष्मा, विषम ज्वर, रक्तपात, कुष्ठ, प्रमेह, कास, श्वास, अपस्मार, वृद्धावस्था जन्य दुर्बलता में गुणकारी है।

मैं उक्त रसायन को भिन्न-भिन्न रोगों में निम्न औषधियों का मिश्रण करके प्रयोग करता हूं—

पाण्डु रोग में—योगराज रसायन ४ रत्ती, प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, कामदुधारस ४ रत्ती, प्रातःसायं दो बार। अनुपान—मधु अथवा शक्कर की चासनी से। भोजनोत्तर—द्राक्षावलेह १ तोला। उक्त योग से शीघ्र लाभ देखा गया।

राजयक्ष्मा—मुक्ता पंचामृत २ रत्ती, अभ्रकभस्म १ रत्ती, योगराज रसायन ४ रत्ती, खर्पर भस्म २रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशा। अनुपान—च्यवनप्राशावलेह से प्रातःसायं। भोजनोत्तर चन्दनासव २ तोला + द्राक्षासव २ तोला, समान जल का मिश्रण।

कास श्वास में—योगराज रसायन ४ रत्ती, शृङ्गभस्म २ रत्ती, तालीसादि चूर्ण २ माशा। अनुपान—वासावलेह दिन में ३ बार चूसनार्थ मरिच्यादि वटी।

प्रमेह रोग में—योगराज रसायन ४ रत्ती, त्रिवंग भस्म २ रत्ती, प्रवाल भस्म २ रत्ती। अनुपान—मधु से प्रयोग करने पर आशातीत लाभप्रद रहा।

अपथ्य—कुल्थी, मकोय, कबूतर का मांस वर्जित है। तथा भिन्न रोगों में रोग के लक्षणानुसार पथ्यापथ्य सेवन आवश्यक है।

विशेषता—उक्त रसायन की विशेषता है कि रोग मुक्ति के समय या जब से औषधि प्रारम्भ की जाय तभी से अंगप्रत्यंग का पोषण करके शारीरिक शक्ति की वृद्धि करने में उत्तम योग है।

—वैद्य श्री फूलचन्द्र जैन शास्त्री
आयुर्वेदाचार्य, जैन दर्शनाचार्य
प्रधान चिकित्सक—श्री दिगम्बर जैन औषधालय
जयपुर ३ (राज०)

रक्तपित्त कुलखण्डन रस

वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त बी. आई. एम. (विशेष सम्पादक)

ग्रन्थ संदर्भ— यो. र. रक्तपित्त रोगे।

योग—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, प्रवाल भस्म (या प्रवाल पिष्टी), स्वर्ण माक्षिक भस्म, नाग भस्म, वंगभस्म प्रत्येक १-१ तोला। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर बाद में भस्में मिलाकर एकजीव करें। तत्पश्चात् निम्न द्रव्यों के क्वाथ व स्वरसों की पृथक्-पृथक् १-१ भावना देकर एक-एक रत्ती की वटी बना लें।

भावना वाले द्रव्य -

(१) चन्दन, (२) कमल, (३) मालती की कली, (४) वासक पत्र रस, (५) धनियाँ, (६) गजपीपल, (७) शतावर, (८) सेमल की छाल, (९) वटजटा।

मात्रा—१-१ गोली आवश्यकतानुसार दिन में ४ बार तक।

अनुपान—मधु, वासा पत्र स्वरस, कूष्माण्ड रस, दूर्वारस आदि।

यह रक्तपित्त के लिए अत्यन्त उपयोगी है नया पुराना दोनों प्रकार के रक्तपित्त में सेवनीय है। इसके अतिरिक्त अधिक रजःस्राव, रक्तप्रदर, खूनी बवासीर, इत्यादि में भी उपयोगी है। वीर्य विकार, स्वप्नदोष्त प्रमेह, शुक्राल्पता में भी लाभप्रद है। यह सौम्यगुण, पित्तनाशक, रक्त प्रसादक, रक्तस्रावरोधक, तथा यक्ष्मा के कीटाणु नाशक, गर्भाशय को बल देने वाला है। यह पौष्टिक व बलवर्धक भी है।

—वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त, बी. आई. एम.
५८/६८ नील वाली गली कानपुर

रसराज रस

कवि० श्री गिरिधारीलाल मिश्र, एम.एस्-सी.(ए.), ए., एम.बी.एस.

योगनाम—रसराज रस, ग्रन्थनाम—सिद्धयोग संग्रह

घटक द्रव्य—रससिन्दूर ४० ग्राम, अभ्रक भस्म १० ग्राम, सुवर्ण भस्म, मोती पिष्टी, प्रवाल पिष्टी ५-५ ग्राम, लौह भस्म, रौप्य भस्म, वंगभस्म, अश्वगन्धा, लौंग, जावित्री, जायफल, क्षीरकाकोली प्रत्येक २५० ग्राम।

निर्माण विधि -प्रथम रससिंदूर की मर्दन गुणवर्धन के अनुसार खूब घुटाई कर भस्में तथा अन्य काष्ठौषधियों को मिश्रित कर घोटें तथा एक भावना ग्वारपाठा की तथा एक भावना मकोय के रस की देकर २-२ रत्ती की गोलियां बना, छाया में सुखालें।

विशेष—रसराज रस के १२ पाठ रस योगसागर में दिये हैं। भैषज्य रत्नावली से किञ्चित् परिवर्तित पाठ सिद्धयोग संग्रह में जो बहु प्रचलित एवं परमोपयोगी होने के कारण यहाँ उद्धृत हैं।

शास्त्रीय दृष्टि से गुण प्रभाव—यह रस उत्तम शक्तिदायक, वातशामक, त्रिदोषनाशक, शुक्रवर्धक, रक्तचाप (Blood pressure) नियामक, मस्तिष्क पोषक तथा हृदय को बलवान बनाकर बल, बुद्धि, कान्तिवर्धक, कठिन वात रोगों पर रामबाण रसायन है। मस्तिष्क, हृदय तथा वातवाहिनियों (Nervous System) पर विशेष फलदायक, सामान्यतः वातदोष और रसरक्त आदि सब धातुओं को बल प्रदान करता है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती की १ से २ गोली, प्रातः सायं या आवश्यकतानुसार।

अनुपान—मधु से चाटकर ऊपर से दूध पीना चाहिए।

गुण और उपयोग—रससिन्दूर, स्वर्ण, अभ्रक आदि बहुमूल्य उपादानों से निर्मित यह रसायन अमृत तुल्य गुणकारी है। यह रस हृद्य होने के कारण हृदय को बल देता है। हृत्स्पन्दन और रक्ताभिसरण क्रिया सबल बनती है। रक्त में रहे हुए विष और कीटाणुओं का नाश होता है।

रक्तचाप (Blood Pressure)—में यह रसायन परमोपयोगी है तथा हीन रक्तचाप (Low Blood Pressure) एवं उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure)

दोनों में ही इसका प्रयोग थोड़ा बहुत अनुपान भेद से करने पर चमत्कारिक लाभ दृष्टिगोचर होता है।

रसराज रस—हीन रक्तचाप में २ गोली दूध से सेवन करने पर रक्तचाप सामान्यावस्था में आ जाता है तथा हाथ, पैर, पीठ, हृदय आदि अवयवों में वायु का स्पन्दन या पीड़ा होती हो, तो वह भी इसके सेवन से दूर हो जाती है।
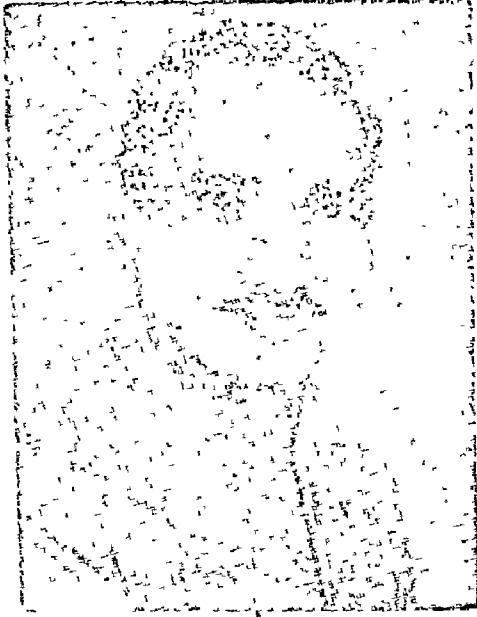
उच्च रक्तचाप में रसराज रस २ रत्ती, सर्पगन्धा चूर्ण ½ माशा, अश्वगन्धा चूर्ण ½ माशा के साथ देने से तीव्रावस्था में पहुँचा हुआ रक्तचाप भी नियन्त्रित हो जाता है तथा रोगी को गाढ़ी निद्रा आती है। रक्तचाप जब तीव्रावस्था में पहुँचता है तो रक्त का प्रवाह ऊपर की ओर चलता है। उस समय रोगी का चेहरा तमतमाया हुआ तथा कपाल की लाल-लाल नसें तनी हुई सी, आंखें सुर्ख तथा शिर में चक्कर, शरीर का तापमान बढ़ जाना तथा बार-बार प्यास लगना आदि उग्र अवस्था में भी उक्त योग को मोती पिष्टी के साथ देने से दौरा रुक जाता है तथा रोगी की जीवन रक्षा होती है।

वीर्यविकार—सुवर्ण, वंग, क्षीरकाकोली, असगन्ध के योग बने रसराज रस में शुक्रवर्धक विशेष गुण होने के कारण शरीर में वीर्य की कमी, वीर्य का पतलापन, वीर्य नाड़ियों की कमजोरी से वीर्य का शीघ्रपतन, अप्राकृतिक ढङ्ग (हस्त मैथुनादि) बचपन की कुटेवों के कारण आयी नपुंसकता में रसराज रस का प्रयोग मक्खन, मलाई, मिश्री मिले हुए दूध से करने पर शीघ्र लाभ होता है। शुक्र धारण शक्ति बढ़ने से कामोत्तेजना बढ़ जाती है, मुख मण्डल तेजस्वी बनता है और मन भी प्रसन्न रहता है।

मूत्र पिण्ड या वृक्क पर भी इसका प्रभाव होता है। वृद्धावस्था में शारीरिक अवयवों के शिथिल हो जाने पर बार-बार पेशाब होने लगता है। इस विकार को दूर करने में भी यह परम गुणकारी है।

वातरोग—वातरोगों में विशेषतया पक्षाघात, अर्दित, अपतन्त्रक, आक्षेपक, कान में आवाज होना, अन्तरायाम, वहिरायाम, अपतानक, शिर में चक्कर आना, हनुग्रह, धनुर्वात आदि कठिन से कठिन वात रोगों में यह रामवाण की तरह अचूक काम करता है।

पक्षाघात, अर्दित आदि वातरोगों में इस रसायन का अधिक प्रयोग होता है। पक्षाघात की संप्राप्ति बहुधा रक्तवाहिनियों और वातवाहिनियों पर आघात पहुँचाने पर होती है। अतः जीर्णावस्था में दोनों पर लाभ पहुँचाने वाली औषधि दी जाती है। एकांगवीर, योगेन्द्ररस, वृहद् वातचिन्तामणि और रसराज रस में रक्तवाहिनी तथा वातवाहिनी दोनों पर लाभ पहुँचाने का गुण है. पर एकांगवीर अति तीक्ष्ण होने के कारण सबसे सहन नहीं होता तथा जिन रोगियों में पित्त प्रकोप न हो बल्कि शुक्रक्षय हो तथा अधिकांशतः शुक्रक्षय ही होता है, उनके लिए वृहद् वातचिन्तामणि और योगेन्द्ररस की अपेक्षा रसराज रस ही विशेष अनुकूल आता है तथा आशुफलप्रद है।

वृद्ध पुरुषों के लिए च्यवनप्राश के साथ इसका प्रयोग अमृत तुल्य है। रोगी निर्बल होने पर तथा रोग के जीर्ण होने पर इसकी अल्पमात्रा ही देनी चाहिए। भूतकाल में उपदंश रोग हुआ हो तो मल्लसिंदूर ¼ से ½ रत्ती तक इसके साथ देना लाभदायक है आयुर्वेद का यह योगरत्न है।

—श्री गिरिधारीलाल मिश्र एम.एस्-सी.(ए.), ए.एम.बी.एस.
प्रधान चिकित्सक—केदारनाथ आयुर्वेदिक हास्पीटल,
तेजपुर (असम)

श्री वदरी नारायण पाण्डेय

रस माणिक्य एक छोटी सी औषधि जैसी प्रतीत होते हुए भी वैद्य समाज में एक महौषधि के रूप में संपूजित है। इसका घटक एकमात्र हरिताल ही है। इस प्रकार एक एकौषधि (Single drug) के रूप में भी इसे माना जा सकता है। परन्तु इसके नाम से ऐसा भ्रम (प्रतीत) होता है कि यह एक रस (पारद) का यौगिक है। इसके नाम रस+माणिक्य ये दो शब्द खण्ड प्राप्त होते हैं। जिसका अर्थ हम यों कर सकते हैं "एक ऐसा रस जो माणिक्य-मणि की आभा से युक्त हो।" रस अर्थात् पारद का मिश्रण इसमें कतई नहीं है। साथ ही इसमें माणिक्य मणि का संयोग भी नहीं है। माणिक्य मणि की आभा (चमक) की तरह होने से इसका नाम लाक्षणिक रूप में 'रस माणिक्य' रखा गया प्रतीत होता है। रस शब्द इसकी विशिष्टता या आशुकारिता का बोधक है।

इसका प्रथम वर्णन संभवतः 'रसेन्द्र संग्रह' नामक रस ग्रन्थ (१६ वीं श.) से प्राप्त होता है। घटक द्रव्य तो मात्र हरिताल ही है। अतः निर्माण विधियों में यत्र-तत्र कुछ विविधता अवश्य मिलती है। भैषज्य रत्नावली की निर्माण विधि भी प्रायः पूर्ववत् ही है। रस तरंगिणी में निर्माण की विधियां मिलती हैं। इसकी विधियां पूर्वापेक्षया आधुनिक एवं सरल हैं। आचार्य यादव जी ने अपनी एक पुस्तक 'रसामृत' में रसतरंगिणी से ही उसकी निर्माण विधि और उद्धृत की है। यह अन्य विधियों की अपेक्षा सरल, वोधगम्य है, अतः इसीको आधार मानकर निर्माण आदि प्रक्रियाओं पर प्रकाश डाला जायेगा। यथा—

माषद्वयोन्मितं तालं न्यसेद् मध्येऽभ्रपत्रयोः।
अङ्गारानौ निधायाथ बंकनालेन धुक्षयेत् ॥
माणिक्याभं भवेद्यावत् पचेत्तावत् प्रयत्नतः।
अङ्गारानपसार्याथ रसमाणिक्यमुद्धरेत् ॥

—र. त. अ. ११

अर्थात् २-३ माशे शुद्ध हरताल का चूर्ण करके उसे सफेद अभ्रक पत्र पर फैलाकर ऊपर से दूसरा अभ्रकपत्र सावधानीपूर्वक ढककर, निर्धूम कोयले की अग्नि पर रख वंकनाल यन्त्र (सोनारों की फूकनी) से फूंककर अग्नि को प्रदीप्त करें। जब अभ्रक पत्र के बीच का ताल पिघल कर माणिक्य के समान लालवर्ण का हो जाय तब चिमटे से पकड़कर अभ्रक पत्र को अग्नि से उतार लेवें। स्वांगशीत होने पर सूक्ष्म चूर्ण कर (पीसकर) शीशियों में बन्द कर रख लेवें। माणिक्यमणि की तरह रक्तवर्ण के कारण ही इसे 'रस माणिक्य' कहा गया है।

नोट—रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह में आयुर्वेद निबन्ध माला से उद्धृत है। जिसमें अशुद्ध ताल का ही प्रयोग किया गया है।

विमर्श—रसमाणिक्य का निर्माण प्रधानतः पत्रताल से होता है। वैसे पिण्डताल से भी निर्माण किया जा सकता है। पर पिण्डताल गुणहीन होने से इससे निर्मित रसमाणिक्य भी हीनवीर्य गुण वाला होगा। रसमाणिक्य का अधिक पाक करने से काला हो जाता है तथा न्यूनपाक करने से पीला रह जाता है। इसीलिए ये दोनों ही पाक क्रमशः खर पाक एवं मृदुपाक होंगे। दोनों ही दोषयुक्त पाक हैं। अतः माणिक्य सदृश्य रक्तवर्ण का रसमाणिक्य प्राप्त होने पर उत्तम पाक (मध्यम पाक) समझना चाहिए।

रसेन्द्रसार संग्रह एवं भैषज्य रत्नावली में "शरावक यंत्र" अर्थात् सकोरे में रखकर दूसरे सकोरे से ढंक-

कर बदरीपत्र कल्क से सन्धिबन्द कर, सुखाकर, कोयले की अग्नि पर पाक करना लिखा है तथा जब नीचे का अरुणाभ हो जाय तो उसे स्वांगशीत होने दें। पश्चात् शीतल हो जाने के उपरान्त उसे ग्रहण करें। यह माणिक्य की आभायुक्त रस माणिक्य तैयार प्राप्त होगा। इस विधि की अपेक्षा पूर्व की विधि सरल, सुलभ है। इससे भी सरल तरीका निम्न है—

बिजली के फ्यूज बल्ब को लेकर उसके ऊपर से धातु का अंश सावधानीपूर्वक हटा दें। मात्र कांच का भाग सुरक्षित रखें। इसी कांच के भाग में २-३ माशे शुद्ध हरताल चूर्ण डालकर स्टोव पर १०-१५ मिनट तक गरम करें। क्रमशः उसमें धुआँ उठना शुरू होगा। धीरे-धीरे उसका रङ्ग भी बदलना प्रारम्भ होगा। प्रथम हल्के लाल रंग का होता है जो मृदु पाक होता है, द्वितीय अगले कुछ मिनट में वह लाल माणिक्य की तरह चमकदार लाल हो जाता है। इसे पूर्ण तैयार समझना चाहिए। अगर अग्नि की अधिकता से यही काला हो जाय तो खरपाक अर्थात् जला हुआ समझना चाहिए।

इस विधि से—१०-१५ मिनट में वैद्य रसमाणिक्य बनाकर रोगियों के लिए उपलब्ध करा सकते हैं। यह विधि सभी विधियों से सरल एवं सुकर है। यह विधि कई बार अपनी संस्था में परीक्षित है।

रस माणिक्य निर्माण के पूर्व हरताल का शोधन कर लेना आवश्यक है। जिसकी मुख्य निम्न विधियां हैं—

१. पत्रताल का मोटा चूर्ण बनाकर एक पोटली में बांध कर श्वेत कूष्माण्ड (पेठा) के स्वरस में दोलायंत्र में १ याम (३ घण्टे) स्वेदन करना चाहिए।

२. तिलक्षार के घोल में दोलायंत्र की सहायता से १ याम स्वेदन करना चाहिए।

३. एक पत्थर के खरल में हरताल का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उसमें चूर्णोदक की सात भावना देते हुए खूब मर्दन करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त अन्य विधियां भी शास्त्रों में वर्णित हैं। किसी भी ढंग से शोधन करना चाहिए।

गुण कर्म—

कासं श्वासं ज्वरंजीर्णं फिरङ्गमतिदारुणम्।
वातरक्तं च कुष्ठानि तथा नाड़ीव्रणं हरेत्॥

—रसामृत

रसमाणिक्य कफ वातजन्य कास, तमक श्वास, जीर्ण ज्वर, फिरंग रोग, वातरक्त, कुष्ठ और नाड़ीव्रण को नष्ट करता है यह बालक, वृद्ध, युवा स्त्रियों को कीटाणु प्रकोप और आम विषज या वात कफज व्याधियों पर प्रयुक्त होता है। शुद्ध हरताल में संखिया के दो परमाणु तथा हरताल के तीन परमाणु (AS_2 S_3) होते हैं। रसमाणिक्य बनाते समय अग्नि संयोग से इसमें जो रासायनिक परिवर्तन होते हैं, उसमें गन्धक के एक परमाणु प्रायः नष्ट हो जाते हैं। इस रसायन में संखिया और गन्धक का इस प्रकार संयोजन हो जाता है कि यह रक्त में मिलकर (शोषित होकर) अपना प्रभाव तत्काल करता है।

वर्षा ऋतु में भीगने या शीत लग जाने पर कफस्थान (फुफ्फुस आदि श्वसन संस्थान) प्रभावित हो जाता है, ज्वरादि उपद्रव होने लगते हैं। इस अवस्था में इसका प्रयोग अति लाभदायक है।

मात्रा—आधी रत्ती से १ रत्ती २-३ बार रोगी की अवस्थानुसार।

अनुपान—मधु और घृत विषम मात्रा में। साथ में मंजिष्ठादि क्वाथ, महा मंजिष्ठादि क्वाथ, सारिवाद्यरिष्ट, खदिरारिष्ट आदि रक्तशोधन औषधियां यथोचित मात्रा में देनी चाहिए। इनके सहानुपान से अत्यधिक लाभ होता है तथा रस की तीक्ष्णता में भी कुछ कमी होती है।

निषेध—इसके सेवनकाल में क्षार, अम्ल, उष्ण, तीक्ष्ण आदि पित्तवर्धक द्रव्यों का प्रयोग निषेध है। इसका प्रयोग अधिक दिनों तक नहीं करना चाहिए।

विष शामकता—हरताल चूंकि संखिया का यौगिक है, अतः इसके योग रसमाणिक्य या अन्य योगों का अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि प्रयोग करने से पित्तज उपद्रव हो जाय तो उसकी शान्ति के लिए कूष्माण्ड स्वरस या जीरा चूर्ण चीनी के साथ मिलाकर दिन में ३ बार शान्त होने तक प्रयोग करना चाहिए।

आधुनिक दृष्टि से—

१. आमाशय शोधन।

२. लाक्षणिक चिकित्सा।

३. Hydrated Ferric Oxide as the Antidote.

—श्री बदरी नारायण पाण्डेय
स्टेट आयु० कालेज लखनऊ।

रस माणिक्य

डा० श्री वेदप्रकाश शर्मा ए., एम. बी. एस.

रस माणिक्य हरिताल से बना योग है जो कि संखिया तथा गंधक के मिश्रण से बना है। हरताल दो प्रकार की होती है। (१) वर्की हरताल (पत्रताल) (२) पिण्ड हरताल। पत्रताल पिण्ड हरताल से गुणों में श्रेष्ठ होने से यही औषधि कार्य में प्रयोग करना चाहिए।

जैसा बताया गया कि हरताल एक संखिया योग है अतः इसे पूर्ण शोधित करके ही प्रयोग करना चाहिए अन्यथा अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं—यथा दाह, क्षोभ, शरीर कम्प, पीड़ा तथा रक्तदुष्टि एवं कुष्ठ प्रभृति लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं और शरीर की सुन्दरता नष्ट हो जाती है।

हरताल शोधन--पत्रताल का मोटा चूर्ण एक पोटली में बांधकर दोला यन्त्र में नीबू का स्वरस अथवा पेठा स्वरस अथवा चूने का पानी अथवा तिलक्षार जल अथवा सेमल मूल से एक प्रहर तक स्वेदन करने से यह शुद्ध हो जाती है।

रस माणिक्य निर्माण विधि—

शुद्ध हरताल को पेठे के स्वरस अथवा खट्टे दही की सात भावना देकर गरम पानी से धोकर सुखा लेवें। फिर इन दानों को दो अभ्रक पत्रों के बीच में रखकर अभ्रकपत्रों को सुई डोरे से सिलकर बेर के पत्रों के कल्क से सन्धि बन्धन कर देवें। फिर इस पत्र को जलते हुए कोयलों की तेज अग्नि पर रख कर पकावें। बीच-बीच में इस पत्र को चिमटे से पकड़कर पलट देवें। जब हरताल माणिक्य के समान चिपकने लगे तो अभ्रक पत्रों को खोलकर रस माणिक्य प्राप्त करें। खरल में सूक्ष्म पीसकर प्रयोग करें।

मात्रा—आधा रत्ती से १ रत्ती तक।

गुण एवं उपयोग—यह एक विशेष प्रतिदूषक (Anti Septic) और जीवाणु नाशक (Dis infectant) होने के कारण यह सभी प्रकार के कुष्ठ रोगों को नष्ट करता है। भयंकर फिरंग रोग भी ठीक कर देता है। इसके अलावा वातरक्त, विसर्प, विपादिका, दद्रु, पामा, फिरंग जन्य अन्य रोग, भगन्दर, पुराने व्रण, नाड़ी व्रण, विस्फोट आदि रोगों को ठीक करता है।

इसके प्रयोग से कृमिजन्य संक्रामक ज्वर नष्ट होते हैं। त्वचा के सभी विकार इसके सेवन से ठीक होते हैं। यह रसायन तथा वाजीकरण भी है। यह वात नाशक तथा कफ शोषक होने के कारण श्वसन संस्थान पर विशेष क्रिया करके कास, श्वास को ठीक करता है।

रस माणिक्य को कुष्ठ में पंचतिक्त कषाय से, श्वास-कास में वासा स्वरस के साथ, रक्त विकार में आंवा हल्दी के स्वरस या कषाय के साथ तथा वात रक्त में देवदाली स्वरस के साथ और अर्श रोग में हरीतकी के स्वरस या कषाय के साथ सेवन कराना लाभप्रद होता है।

भगन्दर, नाड़ी व्रण, क्षत तथा नासा स्राव रोग में मधु, घृत के साथ सेवन करावें।

पाण्डु में हल्दी के साथ, क्षय में पान के साथ, प्रमेह में तुलसी स्वरस के साथ, जलोदर में बकरी के मूत्र के साथ और शुक्र मेदह में दालचीनी, लौंग तथा केशर के साथ प्रयोग करावें।

वातिक शूल में त्रिकटु चूर्ण एवं ताम्र भस्म के साथ प्रयोग करावें।

अपथ्य—रस माणिक्य के सेवन काल में क्षार, अम्ल एवं कटु पदार्थ एवं पित्तवर्द्धक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

सावधानी—इसका प्रयोग लगातार बहुत समय तक न करें। पन्द्रह दिन सेवन करने के बाद एक सप्ताह इसको बन्द रखें और फिर पुनः सेवन करायें।

इसके अधिक प्रयोग से, किसी-किसी रोगी को तो अल्प मात्रा में सेवन से ही विस्फोट आदि त्वक् विकार उत्पन्न हो सकते हैं। उस समय इसका सेवन बन्द करके पेठे का स्वरस और मिश्री जीरा डालकर प्रयोग करावें।

—डा. श्री वेदप्रकाश शर्मा ए., एम. बी. एस.
चिकित्साधिकारी–राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
मांट (मथुरा)

शशिशेखर रस

ग्रंथ संदर्भ—भै. र. क्लोम रोगे।

क्लोम किस स्थान पर है इसका निर्णय नहीं हो सका है। कुछ विद्वानों का मत है कि अग्न्याशय (Pancreas) ही क्लोम है। आयुर्वेद मतानुसार हृदय के दक्षिण भाग में क्लोम की स्थिति है। 'अधस्तु दक्षिणे भागे हृदयात् क्लोम तिष्ठति।' इसे जल को वहन करने वाली शिरा तथा पिपासा का स्थान माना गया है। जब अत्यन्त स्निग्ध तथा भारी पदार्थों के निरन्तर अधिक मात्रा में सेवन किया जाता है या आघातादि से क्लोम की वृद्धि या मृदुता हो जाती है एवं उसमें रक्त का अधिक संचय होने लगता है। कभी-कभी विद्रधि भी हो जाती है। इस ग्रंथि के विकृत हो जाने से, कभी-कभी अन्य मधुमेहादि भयंकर रोग हो जाते हैं। उस समय क्लोम रोग में अग्नि की मन्दता, पाण्डुता, कृशता, चक्कर आना, अवसाद (शिथिलता) एवं उदर के ऊर्ध्व भाग में उष्णता तथा कठिनता की प्रतीति, जी मिचलाना, वमन तथा कामला उत्पन्न हो जाते हैं।

क्लोम स्थान में विद्रधि उत्पन्न होने पर शूल, आध्मान तथा प्यास ये लक्षण होते हैं। अश्मरी के समान घोर और अत्यन्त कष्टदायक पथरी के लक्षण भी देखे जाते हैं—

क्लोम रोग में शशिशेखर रस का उपयोग शास्त्रकारों ने उपयोगी माना है उपयोग योग इस प्रकार है—

घटक—शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, अभ्रक भस्म, स्वर्ण-भस्म, प्रवाल भस्म, मुक्ताभस्म सम मात्रा में लेकर घृत-कुमारी के रस के साथ घोट एक-एक रत्ती की वटी करें और उसे नित्य शहद से चटाकर निम्न क्वाथ पिलावें—

हरड़, आमला, देवदारु, धनियां, सौंठ, मुनक्का और अनन्तमूल समभाग २ तोले की मात्रा में लेकर क्वाथ बनाकर पिलावें। यह क्वाथ क्लोमरोग नाशक है।

—वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त, बी. आई. एम.
५८/६८, नीलवाली गली, कानपुर

शीतपित्त भञ्जन रस

विशेष सम्पादक—शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगांक

ग्रन्थ संदर्भ—रसयोग सागर, भैषज्य रत्नावली।

घटक—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, कासीस भस्म ये प्रत्येक १-१ भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर ताम्र भस्म और कासीस भस्म का मिश्रण करें और भांगरे के रस और सरफोंका के रस की ७-७ भावना देकर, गोला बनाकर शुष्क कर किसी मृत्तिका पात्र में उसे बन्द कर गजपुट की अग्नि दें। ऐसी ३ पुट देनी चाहिए, बाद में पीसकर रख लें।

मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—गुड़ या मधु।

गुण—इसके सेवन से शीतपित्त, वातरक्त और कुष्ठ रोग में लाभ होता है।

अपथ्य—इस रस का सेवनकर्ता शीतल जल से स्नान, शीत वायु, जागरण और विदाही अन्न का सेवन न करें। एक वृद्ध स्त्री वर्षों से शीतपित्त की बीमारी से पीड़ित थी, उसने अनेक उपचार कराये थे अन्त में वह मेरे पास आई। मैंने भी उस पर अनेक योगों का प्रयोग किया लाभ नहीं मिला। इस रस का सेवन कराया, २ महीना सेवन कराने से रोग समूल नष्ट हो गया, कई वर्ष हो चुके उसे शीतपित्त का रोग पुनः नहीं हुआ।

निदान शास्त्र में शीतपित्त का कारण बताते हुए लिखा है कि यह रोग शीतल वायु के लगने से कफ और वायु दूषित होकर, पित्त को साथ लेकर, त्वचा में तथा भीतर रक्त आदि में विकृति उत्पन्न होती है। उससे यह शीतपित्त रोग उत्पन्न होता है।

अन्य विद्वानों का मत है कि ठण्ड लगने, आहार दोष, पाचन विकृति, जरायु दोष प्रभृति से यह रोग होता है। इसमें पित्तवृद्धि और यकृत विकृति ही विशेष कारण हैं। यह रोग कभी-कभी ज्वर के साथ भी होता है।

ताम्र का कार्य प्रथम शीत वायु और कफ को अपनी

तीव्र उष्ण, तीक्ष्ण प्रकृति से नष्ट करता है। बाद मे बढ़े हुए पित्त को भी रेचन द्वारा निकाल देता है।

इस तरह यह शीत पित्त की एक अद्भुत औषधि है। यकृत प्लीहा की वृद्धि में भी ताम्र उसकी वृद्धि एवं विकृति को हरता है। ताम्र तिक्त, कषाय और मधुर रस युक्त, पाक में कटु, वीर्य मे उष्ण, स्निग्ध गुण, विष नाशक तथा लेखन–वामक तथा शोथहर होता है। इसके प्रयोग से सभी कफ प्रकोपजन्य तथा कफ पित्त प्रकोपजन्य विकार, रोग तथा सभी प्रकार के प्रतलन रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

यही नहीं ताम्र उत्तम दीपन, कृमिहर, कुष्ठ रोगहर, श्वास, कास, क्षय, पाण्डुरोग, बवासीर, ग्रहणीरोग, ज्वर, उदर रोग, वात विष नाशक है। आयुवर्द्धक और रसायन है। विशेष जानकारी के लिए रस तरंगिणी नामक ग्रन्थ में इसके गुण दोष देखें।

इसी प्रकार कासीस भस्म सरफोंका क्षार के साथ या कुमारी स्वरस, मुरब्बा के साथ सेवन किया जाय तो प्लीहा वृद्धि में परमहितकर है। स्त्रियों का मासिक धर्म खोलती है। रक्त की कमी से होने वाले हृदय की घबराहट में अत्यन्त उपयोगी है। विसर्प के शोथ को रोकने में उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग लोह भस्मवत्, पांडु, कामला आदि में किया जाता है विशेषकर यह श्वेत कुष्ठ नाशक है। इसकी भस्म में खट्टापन बिल्कुल नहीं होना चाहिए। शुद्ध कासीस को निम्ब रस की भावना देकर या थूअर पत्र स्वरस की भावना देकर लघु वटी से भस्म की जाती है जब तक उसमें खट्टापन रहता है तब तक भस्म करनी चाहिए। (१) यावन्निरम्लं तद्भस्म तावदेवं पुनः पुनः। (२) निरम्ली भावपर्यन्तं कासीसं भस्म तामियात्।

—विशेष सम्पादक

शोथ कालानल रस

डा. श्री जगदीश चन्द्र असावा बी. ए., ए. एम. बी. एस.

ग्रन्थ प्रमाण–भैषज्य रत्नावली शोथ चिकित्सा प्रकरण

चित्रं कुटज बीजं च श्रेयसा सैंधवं तथा।
पिप्पली देव पुष्पश्च जातीफल सटङ्कणम्।
लोहमभ्रं तथा गन्धं पारदेनैव मिश्रितम्॥

चीता की छाल, इन्द्रजौ, गज पीपल, पिप्पली, सैंधव लवण, लौंग, जायफल, टंकण, लौह भस्म, शुद्ध गन्धक तथा शुद्ध पारद इस योग के घटक द्रव्य है।

निर्माण विधि—उपरोक्त सभी द्रव्य समभाग ग्रहण किये जाते है। सर्व प्रथम शुद्ध पारद एवं शुद्ध गन्धक की कज्जली बना ली जाती है। तत्पश्चात् शेष द्रव्यों को चूर्ण कर लेते है। यह चूर्ण कज्जली मे मिश्रित किया जाता है इस मिश्रण को जल के साथ खरल में घोटकर २५० मिली ग्राम प्रमाण की वटिकायें बना ली जाती है तथा शुष्क करके कांच पात्र में संचित कर लेते है।

गुण-धर्म

शोथ कालानल रस के गुणधर्मो की समीक्षा इस प्रकार हो सकती है—

१. पाचन संस्थान—दीपन पाचन होने से यह रस अग्नि को बढाने वाला तथा आम का पाचक होता है अतः अग्नि सम्बन्धी विकारों में यह लाभकारी होता है अग्नि के ऊपर शरीर की सभी चयापचय की प्रक्रिया निर्भर करती है। पाचकाग्नि की सम्यक् क्रिया होने पर शेष धात्वग्नियां एवं भूताग्नियां भी सम्यक् पाचन धातुपाक (Metabolism) करती है अतः यह रस धातु पोषक, बलवर्धक, रसायन तथा आयुष्य होता है।

२. रक्त एवं रक्त वहन संस्थान—योग में लौह भस्म, रक्त के लौहित कणों के निर्माण (Erythro poises) में भाग लेता है। पारद योगवाही होने से सभी क्रियाओं को उत्प्रेरित करता है अतः यह योग रक्तवर्धक, हृदयोत्तेजक, यकृतोत्तेजक होता है।

४. श्वास संस्थान—योग कफ शामक होने से श्वास संस्थान पर क्रिया कर कास, श्वास आदि विकारों में क्रिया करता है।

४. कृमिहर प्रभाव—योग कृमिहर, जन्तुघ्न होता है अतः कण्डु, कुष्ठ आदि विकार शामक होता है।

स्वेदल एवं मूत्रल प्रभाव—स्वेदल होने से ज्वर शामक तथा मूत्रल होने से शोथहर होता है। वृक्कोत्तेजक होने से यह योग प्रमेह आदि रोग शामक होता है।

संक्षेप में यह योग दीपन, पाचन, ग्राहि, त्रिदोषशामक, शोथहर, बलवर्धक होता है।

आमयिक प्रयोग

ज्वरमष्ठ विधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि च।
कासं श्वासं तथा शोथं प्लीहानां हन्ति दुस्तरम्॥
मेहं मन्दानलं शूलं संग्रह ग्रहणी तथा।
अवश्यं नाशयेच्छोथं कर्दमं भास्करो यथा॥
शोथ कालानलो नाम रोगानीक विनाशनः।

अर्थात् अष्टविध ज्वर, कास, श्वास, शोथ, दुसाध्य प्लीहा वृद्धि, प्रमेह, मन्दाग्नि, शूल तथा संग्रहणी रोग नाशक तथा अनेकों रोग नष्ट करने वाला होता है।

इस योग का उपयोग विभिन्न व्याधियों में अनुपान भेद तथा सह औषधि भेद से किया जाता है।

अनुपान—सामान्यतया शास्त्रानुसार इसका सेवन "कोकिलाक्ष रसेन" अर्थात् तालमखाना स्वरस के साथ कहा गया है।

वैद्य समाज अपने अनुभव के आधार पर व्याध्यनुसार अनुपान की व्यवस्था करता है। सुविधानुसार इस योग का प्रयोग निम्न अनुपान भेद से करना चाहिए—

शोथ में—पुनर्नवाष्टक क्वाथ के साथ।
अग्निमांद्य में—हिंग्वष्टक चूर्ण के साथ।
ग्रहणी में—वत्सकादि क्वाथ के साथ।
अतिसार में—धान्य पंचक क्वाथ के साथ।
ज्वर में—अमृता सत्व के साथ।
कास श्वास—वासा स्वरस एवं वासावलेह के साथ।

मात्रा—१५० मि० ग्रा०, १-१ वटी प्रातः साय अनुपान भेद से व्याधि के अनुसार।

—श्री डा० जगदीश चन्द्र असावा
बी.ए., ए.एम.बी.एस.
रीडर—ललित हरि राजकीय आयु० कालेज
पीलीभीत,

भृङ्गाराभ्र रस

ग्रंथ—भै. र. और रसेन्द्र सा. सं.

योग-अभ्रक भस्म २०० ग्रा. कपूर, जावित्री, सुगन्धवाला (नेत्रवाला), गज पीपल, तेजपात, लौंग, जटामांसी, तालीस पत्र, दालचीनी, नागकेशर, कूठ, धाय के फूल ये बारह औषधियां प्रत्येक ६-६ ग्राम, आंवला, हरड़, बहेड़ा, सौंठ, पीपर, गोल मिर्च प्रत्येक ३-३ ग्राम की मात्रा में, छोटी-इलायची, जायफल, शुद्ध गंधक प्रत्येक १२ ग्राम, शुद्ध पारा ६ ग्राम।

निर्माण विधि—सभी औषधियों का कपड़छन चूर्ण उपरोक्त वजन में लेकर जल के साथ अच्छी तरह खरल में घोटकर लग-भग १२५ मिलीग्राम की गोली बनालें।

मात्रा एवं अनुपान—एक गोली से दो गोली तक। प्रातः काल खाकर (अदरख स्वरस के साथ) ऊपर से पान चबावें, पश्चात् आधा घण्टा बाद गुन-गुना जल पियें। अथवा पान एवं आदी स्वरस के साथ खाकर ऊपर से गुन-गुना जल पीवें। श्वास, खांसी, कफ, पसली के दर्द में अदरख स्वरस और मधु के साथ। अम्लपित में परवल के पते का रस अथवा आंवला स्वरस, ज्वर और मन्दाग्नि में पान रस और मधु के साथ, ताकत और कमजोरी के लिए केवल मधु के साथ चाट कर ऊपर से गाय का दुध यथेष्ठ मात्रा में पीवें। इसे शाम और सुबह आवश्यकता पड़ने पर दिन में तीन बार तक भी प्रयोग किया जा सकता है।

रोग निर्देश—इसके सेवन से कोष्ठगत मन्दाग्नि जनित रोग समूह, ज्वर, उदर रोग, मेदोवृद्धि राजयक्ष्मा, क्षय, खांसी, श्वास, सूजन, नेत्र रोग, प्रमेह, वमन, शूल, अम्लपित्त, तृष्णा, पाण्डु, रक्तपित, विषज रोग, पीनस, प्लीहा वृद्धि तथा वात पित और कफ जन्य व्याधियां नष्ट होती हैं। खांसी और मन्द ज्वर, भूख की कमी, कृश शरीर, रक्ताल्पता आदि हो तो यह अमृत तुल्य लाभदायक है। यह बल वीर्य वर्द्धक तथा शरीर को नवीन शक्ति प्रदान करने वाली तथा पुष्ट करने वाली है। इस औषधि के प्रभाव से मनुष्य कान्तिवान, रूपवान, प्रभावयुक्त और दीर्घायु हो जाता है। इस दवा के सेवन से फुफ्फुस और श्वास यन्त्रों की बीमारियों में अत्यधिक लाभ होता है। श्वास, कफ, खांसी, छाती और पसलियों में दर्द होना,

ज्वर, सूजन आदि बीमारियां यथाशीघ्र ५-६ दिन के प्रयोग से ही नष्ट होने लगती हैं। इसमें अभ्रक का विशेष मात्रा में मिश्रण के कारण अम्लपित्त, पाण्डु, आमवात तथा वात पित्त और कफजन्य व्याधियों में इसका अत्यन्त ही सफल प्रयोग होता है। यह बल्य, वृष्य, रसायन होने के कारण नवयौवनों को शक्ति प्रदान करता है एवं दिव्य रूपवाला तथा वृद्धावस्था की कमजोरियों में शीघ्र बल प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त प्रतिश्याय, आन्त्रिक क्षय आदि को नष्ट करने में इसका कार्य सराहनीय है। आधुनिक युग की औषधियों में जहां सल्फा ड्रग्स, टेटरासाइक्लिन, वीटामिन्स आदि की प्रधानता है वहां इस औषधि की महत्ता कम नहीं हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इसे विश्वास के साथ प्रयोग करें।

पथ्यापथ्य—घृत में पकाया हुआ मांस रस, अंडा, गाय का दूध, चावल, गेहूं, मूंग, अरहर की दाल, नेनुआं, परवल, लौकी, मधुर भोजन, सेव विन दाना, केगोला, अंगूर आदि। अपथ्य में लाल मिर्च, गरिष्ठ भोजन, बासा अन्न, तैल अधिक न हो, अम्ल रस (इमली, आम) ज्यादा मसालेदार सब्जी इत्यादि। जब तक दवा सेवन करें अपथ्य को त्याग दें और पूर्ण ब्रह्मचर्यता के साथ सेवन करें।

विशेष मन्तव्य—इसमें पड़ने वाले अधिकांश घटक द्रव्य शीत वीर्य, विपाक में मधुर, कटु, तिक्त एवं उड़नशील तैलियांश तथा सुगन्धि है, जिसके कारण कोष्ठगत रोग समूह, कफ, खांसी, श्वास को शीघ्र नष्ट करता है। अभ्रक रसायन है और शीत वीर्य, कषाय, मधुर के कारण शरीर के सम्पूर्ण अङ्गों पर प्रभाव पड़ता है जिसके कारण कुपित दोषशमन होकर स्वाभाविक अवस्था हो जाती है।

—डा० बी० ए० गिरि ए., एम. बी. एस.
डंगरा, (गया) बिहार

सर्वतोभद्र रस

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी, आयु० केशरी

आयुर्वेद शास्त्र में अनेक सर्वतोभद्र रसों का उल्लेख है। रस योग सागर में इनकी संख्या ४ है। प्रस्तुत लेख में हम रसेन्द्रसार संग्रह में लिखित सर्वतोभद्र रस का विवरण देंगे। यह योग सभी प्रकार से उपयोगी है।

योग—अभ्रक भस्म २० ग्राम शुद्ध गंधक आंवलासार १० ग्राम, शुद्ध पारद (संस्कारित) ५ ग्राम। कपूर, केशर, जटामांसी, तेजपत्र, लवंग, जायफल, जावित्री, इलायची छोटी, गजपीपल, कुष्ठ, तालीस पत्र, धात्री पुष्प, दालचीनी, नागरमोथा, हरड़, कालीमिर्च, सुंठ, बहेड़ा, पीपर, आंवला २॥-२॥ ग्रा.। सर्व प्रथम पारद गंधक की कज्जली बनाकर फिर अभ्रक भस्म मिलाकर घोटें। तदनन्तर सभी काष्ठ औषधियों को कूट वस्त्रपूत कर मिला दें। फिर घोटें तदनन्तर आर्द्रक के रस में मर्दन कर फिर गोली बंधने जैसी होने पर केशर तथा कपूर मिला दें। १-१ रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा—२ से ४ गोली, मधु, मिश्री मिला अनार का स्वरस या कच्चे नारियल के जल के साथ।

उपयोग—मेरे एक मित्र वैद्यराज का कथन है कि सर्वतोभद्र रस हर व्याधि में स्वतन्त्र रूप से या अन्य औषधि के गुण वर्धनार्थ सहायक औषधि के रूप में दिया जा सकता है। वे अपनी चिकित्सा में सर्वतोभद्र रस का पर्याप्त प्रयोग करते हैं।

शास्त्रोक्त गुण

यह रस अग्निमांद्य, विसूचिका, आम वृद्धि, वातकफ प्रकोप, आनाह, मूत्रकृच्छ, संग्रहणी, वमन, अम्लपित्त, शीतपित्त, रक्तपित्त, पित्तप्रकोपज जीर्ण ज्वर, धातुगत विषम ज्वर, पांचों प्रकार के कास, कामला, पांडु आदि रोगों को दूर करता है।

सर्वतोभद्र का उपयोग विशेषतः वात दोषज जीर्ण आमाशय विकृति पर होता है। यह वात नाड़ी पौष्टिक, शूलहर तथा कीटाणुनाशक है। शनैः शनैः अग्नि को प्रदीप्त कर शक्ति को बढ़ाता है।

प्रसूति के बाद उदरस्थ नाड़ियों का ढीला पड़ जाना उदर का लटक जाना रोग में यह रस उत्तम कार्य करता है। दीर्घ समय से आ रहे वात कफ प्रकोपक जीर्ण आमाशय विकृति पर इस रस का प्रयोग होता है। विष के प्रकोप से देह के निर्बल होने पर यह रस लाभ करता है। अल्प अवधि में पुनः पुनः सन्तान होने के कारण उदर की नाड़ियों में वात संग्रह होकर उदर के लटक आने पर यह रस लाभ करता है।

अजीर्ण, असमय भोजन मानसिक व्याघात, रात्रि जागरण, अपचन, निद्रा ह्रास आदि के कारण आमाशय भारी होकर उसमें वायु भर जाना, थोड़ा-थोड़ा शौच होना, वायु की अधः प्रवृति में कष्ट होना, गैस बनना, घबराहट, सिर शूल, हल्का शोथ होना, विबन्ध तथा विविध विचार आना आदि उपद्रवों में यह रस लाभ करता है। शीतपित्त में तो यह रस का आश्चर्यजनक लाभ करता है। शुष्क कास में भी इस रस का प्रयोग अमोघ है।

जीर्ण आम प्रधान रोग में यह रस पंचामृत लौह गुग्गुलु के साथ प्रयोग किया जाता है।

अम्लपित्त रोग में भी जब मुख खट्टा रहता है खट्टी वमन आती है तब यह योग अति लाभ करता है। मेरे मित्र वैद्य श्री वल्लभ जी शर्मा जो बाडमेर नगर में रहते हैं तथा चिकित्सा कार्य करते है इस सर्वतोभद्र रस पर विविध प्रयोग किये हैं जो अधिकांशतः ऊपर लिखे गये हैं और सत्य पाये गये हैं।

हमने अश्मरी रोग में भी सहायक औषधि के रूप में इस रस का प्रयोग किया है और लाभ उठाया है। हृदय में गैस तथा आंव के कारण शिथिलता आने की अवस्था में इस योग का स्वतन्त्र प्रयोग कर लाभ प्राप्त किया है। वास्तव में यह रस सर्व व्याधियों में भद्र (लाभप्रद) है।

—वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु०,
मकराना मोहल्ला, जोधपुर।

सुवर्ण रसायनम्

श्री डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी एम.ए., पी-एच. डी.

धन्वन्तरि के 'शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगाङ्क' के लिये मुझे भी कुछ लिखना है, इस ओर जब मेरा ध्यान आकृष्ट हुआ तो मैंने गुरु परम्परा से प्राप्त एक ऐसे योग का उल्लेख करना चाहा जिसका वर्णन रसायन ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। मुझे इसकी जानकारी काशी पण्डित मण्डली द्वारा सम्मानित धन्वन्तरि कल्प गुरुवर्य्य पण्डित लालचन्द्र जी वैद्य के शुभाशीर्वाद स्वरूप हुई जिसका सविधि वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। उक्त विशेषांक की औषध सूची में 'सुवर्ण रसायन' के न होने पर भी स्वानुभूत योग लिखने की छूट से आत्मबल मिला, फलतः एक इस प्रकार का शास्त्रीय विधि सम्पन्न योग धन्वन्तरि के माध्यम से समाज के सम्मुख पहुँचाया जा रहा है जो हमारा विगत २५ वर्षों से अनुभूत एवं निम्नोक्त रोगों में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ है।

सुवर्ण शुद्धि—१ तोला सोने के पत्रों को तिल तैल, मठा, गोमूत्र, कांजी, कुलथी का काढ़ा में सात-सात बार बुझालें। इस शुद्ध सुवर्ण में गुणों की अधिकता लाने के लिये पुनः इसको कांजी, नीबू का रस, मठा, गाय के दूध में सात-सात बार बुझायें। यह अपेक्षाकृत अधिक गुणवान होता है।

सुवर्ण भस्म विधि—१ तोला शुद्ध सुवर्ण, ३ तोला शुद्ध पारद इन दोनों को खूब घोट लें। बाद में घी कुआर का रस, नीबू का रस और सैंधा नमक इनके साथ घोटें। जब रस सूख जाय तब पिट्ठी को पानी से धोलें। इसमें ४ तोला शुद्ध गन्धक डालकर कज्जली बनालें, अन्त में नीबू के रस की तीन भावनायें देकर कपड़ मिट्टी की हुई आतशी शीशी में कज्जली को भरकर वालुकायन्त्र में दो दिनों तक पकायें। स्वांग शीतल होने पर शीशी के गले में लगे हुए स्वर्णसिन्दूर को निकालकर रखलें और शीशी के तल भाग में स्थित सुवर्ण भस्म को घी कुआर के रस

में घोटकर टिकिया बनालें। सूख जाने पर इन टिकियों को कुक्कुट अथवा शराव सम्पुट में रखकर फूंक दें। इसका प्रयोग सुवर्ण के रूप में किया जाता है।

सावधान—यदि उक्त सुवर्ण भस्म में सोने की चमक दिखायी दे रही हो तो पूर्ववत् पारद-गन्धक के साथ घोट-कर आतशीशीशी में दो दिन की आंच देकर पकालें। शीशी के गले का भाग सुवर्ण सिन्दूर है, तल भाग में स्थित सुवर्ण को घी कुआर के रस में घोटकर फिर कुक्कुट पुट में फूंक कर प्रयोग करें। तात्पर्य यह है कि भस्म में सोने की चमक न दिखायी दे।

ज्ञातव्य—रसायन निर्माण कर्ताओं को यह ध्यान देना चाहिये कि जिस धातु का निर्माण पारद या शिगरफ के योग से करना हो, उसको गजपुट कभी न दें। ऐसा करने से पारद या शिगरफ उड़ जायगा अतः इनका पाक डमरू-यन्त्र या आतशी शीशी में ही करें।

स्वर्ण रसायन के घटक-द्रव्य

सुवर्ण भस्म १ तोला, वंग की सुनहरी भस्म २ तोला, षड्गुणबलि जारित चन्द्रोदय आधा तोला, हिरण्यगर्भ-पोटली आधा तोला, कस्तूरी १/४ तोला, अम्बर* १/४ तोला, भीमसेनी कपूर आधा तोला, बाकुची २ तोला, छोटी इलायची के दाने २ तोला, मुलहठी २ तोला, बालवच २ तोला, मुनक्का (दाख) २ तोला, सतगुरुच २ तोला, वंशलोचन २ तोला, लौंग २ तोला, सोंठ २ तोला, मरिच २ तोला, पीपल २ तोला, हरड़ २ तोला, बहेड़ा २ तोला, आंवला २ तोला, बादामगिरी २ तोला।

निर्माणविधि—क्रम सं० १ से ७ तक द्रव्यों को खरल में घोटकर रखलें। इसके पश्चात् बादामगिरी के छिलके निकलवालें। फिर मुनक्का और बादामगिरी को छोड़कर शेष सभी द्रव्यों को लोहे के खरल में कूटकर कपड़ छान करलें, मुनक्का और बादाम गिरी को अलग से पीसकर फिर सबको एक में मिलाकर साफ सुथरे पात्र में रखलें।

मात्रा—चार रत्ती से दो मासा तक।

अनुपान—दूध, मलाई, घी, मिश्री, शहद, केसर, पुनर्नवा स्वरस, भांगरे का स्वरस तथा रोगानुसार चिकित्सक के परामर्श से।

सहपान—मिश्री मिश्रित गाय का दूध पाचन शक्ति के अनुसार।

लाभ—कान्तिवर्धक, बलकारक, शुक्रवर्धक, पुष्टि-कारक, नेत्र ज्योतिवर्धक, बुद्धिवर्धक तथा नेत्र रोग, क्षय रोग, वार्धक्य, वमन, प्रमेह, श्वास, कास, हृदरोग, अपस्मार, पित्तज एवं रक्तज रोग नाशक है। नीरोग व्यक्ति यदि इसका सेवन नियमानुसार करें तो यह माता के दूध के समान सर्वदा हितकारक है।

विशेष—निर्माण में निर्दिष्ट उपर्युक्त २२ द्रव्य अपने गुण धर्मो से सर्वथा पूर्ण हों तब इसका चमत्कार देखने योग्य है। श्रीमानों के लिये सदैव सेवनीय है। हमारा निवेदन है इसका एक बार कुशल वैद्य द्वारा निर्माण करा-कर सेवन करें।

—डॉ० श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
के० ३०/६ घासी टोला, वाराणसी-१

सूतिकाभरण रस

आयुर्वेद बृहस्पति डा० श्री जहानसिंह चौहान

ग्रंथ निर्देश—यो०र०, र० यो० शा०।

घटक—स्वर्ण भस्म, रौप्य भस्म ताम्र भस्म प्रवाल भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, अभ्रक भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैन्सिल, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, कुटकी—प्रत्येक समान भाग लें।

औषधि निर्माण प्रक्रिया - प्रथम पारा और गन्धक को लेकर कज्जली बनावें। तत्पश्चात काष्ठ औषधियों का कपड़-छन चूर्ण बनाकर इसमें शेष भस्में मिलालें और आक का दूध, चित्रकमूल छाल का क्वाथ, पुनर्नवा मूल-स्वरस की १-१ भावना दें और १-१ दिन मर्दन कर छोटी-

*अम्बर परिचय—युवावस्था में मदमत्त मगर के मुख से निकलकर समुद्रतट पर सूखा हुआ झाग अम्बर है। सफेद वर्ण तथा छोटे-छोटे मोती के से दाने जिसमें दिख पड़े वह उत्तम अम्बर है। इसके अतिरिक्त अल्पगुण वाला होता है।

छोटी टिकिया बनालें। इसके बाद इन्हें सराव सम्पुट में रखकर सन्धि बन्द कर, धूप में सुखायें तत्पश्चात् लघु पुट फूंकें। स्वांगशीतल होने पर निकाल लें और सूक्ष्म मर्दन कर सुरक्षित रखलें।

योग रत्नाकर में गजपुट की अग्नि देने का विधान है जो युक्तिसंगत नहीं हैं। क्योंकि स्वर्णयुक्त रसायन जो बहुमूल्य द्रव्य है अधिक मात्रा में लेना सम्भव नहीं है। इसे अल्प मात्रा में ही लिया जाता है इसलिए लघु पुट में ही पकाना उचित रहता है।

शास्त्रीय दृष्टि से औषधि के गुण—

सूतिकाभरण रस विषघ्न, आक्षेपहर, कीटाणु नाशक एवं ज्वरघ्न है। गर्भाशय एवं वातवाहिनियों पर शामक प्रभावकारी है। वातादि धातुओं, रस, रक्त, मांस आदि दूष्यों के लिए हितकारी है। इसके अतिरिक्त यह रस सुषुम्ना के मुख तथा अग्रभाग पर भी शामक प्रभाव दिखाता है।

मात्रा—१/२ से १ रत्ती (६० से १२० मिलिग्राम) तथा आवश्यकतानुसार।

सेवन काल—दिन में २ बार प्रातः सायं।

अनुपान—रोगानुसार अनुपान के साथ।

गुण तथा उपयोग—

यह औषधि सूतिका तथा धनुर्वात की एक अति प्रसिद्ध औषधि है। कभी-कभी प्रसव के समय असावधानी, अस्वच्छता आदि के कारण बच्चा उत्पन्न होने के बाद ज्वर, गर्भाशयिक वेदना, दुर्गन्धयुक्त योनि स्राव, त्रिदोष, प्रलाप, ऐंठन आदि उपद्रव हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में प्रसूता की स्थिति पर्याप्त दयनीय हो जाती है यहाँ तक कि उसकी मृत्यु तक सम्भव हो जाती है। ऐसी स्थिति में इस औषधि के प्रयोग से सूतिका ज्वर के सेन्द्रिय विष एवं कुपित हुए दोषों से उत्पन्न विकारों का विनाश हो जाता है। सूतिका के हृदय एवं पार्श्वशूल में भी पर्याप्त लाभ पहुँचाती है।

वातकफ जन्य त्रिदोष (सन्निपात) में यह औषधि उपयोगिता की दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सूतिकाविष से उत्पन्न सन्निपात ज्वर में यह औषधि उत्तम कार्य करती है। इस अवस्था में उत्पन्न विभिन्न स्थानों की वेदना शीघ्र समाप्त हो जाती है।

सूतिका के श्लैष्मिक सन्निपात में भी यह विशेष उपयोगी औषधि है। कुक्षिशूल के साथ-साथ जब सूतिका की रोगिणी को आक्षेप भी आते हैं तब सूतिकाभरण रस का प्रयोग सर्वोत्तम लाभकारी होता है।

सूतिका ज्वर के साथ जब योनिस्राव में दुर्गन्ध आने लगती है। गर्भाशय के स्पर्श करने पर वेदना, रक्तयुक्त अथवा श्वेत तथा दुर्गन्धयुक्त स्राव आदि लक्षण होते हैं तब इस रसायन का प्रयोग उत्तम लाभकारी होता है। इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि इस अवस्था में योनि तथा गर्भाशय की सफाई (प्रक्षालन) वस्ति आदि से अवश्य कर लेना चाहिये। यह कार्य सावधानीपूर्वक कुशलता के साथ होना चाहिये। ताकि कोमल गर्भाशय को आघात न पहुँचे।

सूतिका विष एवं दोष प्रकोप के कारण वातवाहिनियाँ एवं स्नायु प्रभावित हो जाते हैं जिससे धनुर्वात की उत्पत्ति हो जाती है। इसमें रोगिणी को आक्षेप आते हैं और शरीर धनुष की भांति मुड़ जाता है। ऐसी स्थिति में इस रसायन का प्रयोग परम लाभकारी होता है।

यदि सूतिका को रक्तस्राव भी इस हो रहा हो तो भी औषधि का प्रयोग करें। इस समय यह औषधि स्वर्ण माक्षिक भस्म के साथ देनी चाहिए।

अनुपान भेद से औषधि प्रयोग—

१. सूतिका के ज्वर, आक्षेप एवं प्रलाप में—अदरक रस, मधु से घटाकर दशमूल क्वाथ ३० मिलिलिटर के साथ।

२. रक्तस्राव की स्थिति में-स्वर्णमाक्षिक भस्म के साथ।

३. मक्कलशूल में—यवक्षार २४ ग्राम+जल ५७ मिलिलिटर के साथ। जल कुछ गर्म लेना चाहिये।

४. सूतिका के उपद्रवों से बचाव हेतु—प्रसव पर्यन्त दशमूल और देवदार्वादि कषाय तथा सूतिकाभरण रस को दिन में २-३ बार मिलाकर देते रहने से सूतिका के उपद्रवों से पूर्ण बचाव हो जाता है।

—आयु. वृह. डा. श्री जहानसिंह चौहान,
चौहान आयुर्वेद निकेतन, नवीगंज,
मैनपुरी (उ०प्र०)

सूतशेखर रस

वैद्यराज श्री युधिष्ठिर सिंह सोमवंशी

द्रव्य—शुद्ध पारा, शुद्ध आमलासार गन्धक, सुहागे का लावा, शुद्ध बच्छनाग, स्वर्ण भस्म, ताम्र भस्म, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, शुद्ध धतूरे के बीज, दालचीनी, तेजपात नागकेशर, गुडूची, छोटी बेलगिरी, शंखभस्म, कचूर ये सब १-१ तोले।

निर्माण—सबको कूट कपड़छन करलें फिर अंगूर के रस में १२ घण्टे घोटकर मटर बराबर गोली बना लें।

मात्रा—१ से ३ गोली दिन में २-३ बार दूध, मिश्री, घी और शहद से रोगानुसार अनुपान से दें। अम्लपित्त में सूतशेखर रस अपामार्ग घृत, लोटिया सज्जीक्षार, सोडाबाई कार्ब और गुलकन्द के साथ दिन में २-३ बार देवें अथवा प्रवालपिष्टी, अमृतासत्व और द्राक्षावलेह के साथ मिला कर प्रातः सायं काल दें।

प्रयोग—इस रसायन के सेवन से अम्लपित्त, वमन, शूल, पाँचों प्रकार के गुल्म, पांचों प्रकार की खांसी, संग्रहणी, दाह, त्रिदोषज अतिसार, श्वास,मन्दाग्नि, भयंकर हिचकी, उदावर्त, ज्वर,क्षय आदि रोग ४० दिन में निःसंदेह नष्ट होते हैं।

गुण—

सूतशेखर रस पित्त की अम्लता और तीक्ष्णता का शमन करता है एवं वात प्रकोप को भी नष्ट करता है। जिससे वात पित्तात्मक विकारों को दूर करने में यह अत्यन्त हितकर है। यह रसायन आमाशय और पित्ताशय में पित्त प्रकोप को शमन करके पित्तोत्पत्ति को नियमित बनाता है जिससे अम्लपित्त, खट्टी वमन, पित्त वृद्धि से उत्पन्न होने वाला कोष्ठस्थ शूल हिक्का, उदावर्त, पित्तज शीर्ष-शूल, दाह, घबराहट, चक्कर आना, निद्रानाश, पित्तज उन्माद, नाक में से होने वाला रक्तस्राव, मुँह में छाले और संग्राह्य होने से मधुरा सूतिका रोगक्षय की प्रथमा और द्वितीयावस्था, पित्तातिसार, रक्तातिसार, ज्वरातिसार तथा पित्तज ग्रहणी रोग आदि में सेन्द्रिय विष को नष्ट करके दस्त को बाँधता है। दाह को कम करता है और ज्वर को शमन करता है। वात पित्तात्मक सूखी खाँसी जो घण्टों तक आती है, जिसमें कफ नहीं निकलता, जो सोने के समय अधिक त्रास पहुँचाती है और पित्त प्रधान श्वास रोग को भी यह दूर करता है। पित्ताशय कमजोर होने से पित्तोत्पत्ति कम होती है, उस हेतु से अरुचि, मन्दाग्नि, निर्बलता आदि रहते हों तो वह भी इस रसायन के सेवन से नियमित होती हैं। यह कल्प की औषधियों में शामक है। पित्त और वात पित्तात्मक व्याधियों में विशेषतः मध्यम कोष्ठ के भीतर पाचन क्रिया करने वाले अवयव समूह पर शामक असर पहुँचाता है। यह औषधि अफीम के समान तीव्र शामक नहीं है, इसलिए इसके सेवन के पश्चात् तीव्र प्रतिक्रिया भी नहीं होती। अफीम तीव्र शामक होने से सेवन करने पर स्वल्प समय में ही शामक गुण प्रदर्शित करती है और वेदना का शमन करती है। परन्तु वेदना जितनी जल्दी कम होती है उतने ही जल्दी पुनः जाग्रत हो जाती है। जिससे रोगी को पुनः सन्ताप होने लगता है। इतना ही नहीं क्वचित वेदना अधिक तीव्र हो जाने का भी अनुभव में आया है। ऐसी शामक औषधि का परिणाम वात वाहिनियों की वेदना शक्ति को कम करने के लिए होता है। रोग के मूल कारण या वेदना के मूल कारण का नाश इससे नहीं होता किंचित् काल पर्यन्त संवेदना का ह्रास हो जाने से उस स्थान की पीड़ा का रोगी को बोध नहीं होता। शामक औषधि में जितनी अधिक तीव्रता हो प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीव्र होती है।

परन्तु सूतशेखर आदि शामक औषधियों की शामकता इस तरह की है कि इसके योग से वेदना के मूल कारण रूप जो विकार हैं वही दूर होते हैं और वेदना का निवारण होता है। उदाहरणार्थ सूतशेखर अम्लपित्त में शामक है। इसमें उदर पीड़ा और उदर में दर्द होकर वान्ति के साथ अम्लपित्त पड़ता है। यह लक्षण बहुधा मुख्य होता है। इस विकार में, उदर में दर्द यह लक्षण वातपित्त के संयोग से होता है। इस स्थान पर अनेक भिन्न-भिन्न प्रकार की योजना शामक और संशोधक रूप से की जाती हैं। इसमें तीव्र शामक पर केवल पित्त की अम्लता कम करने पर स्निग्ध द्रव्य आदि का परिणाम केवल काम चलाऊ होता है। यदि यथोचित सच्चा शुद्ध प्रयोग करना हो तो दोष प्रत्यनीक चिकित्सा करनी चाहिए। वात और पित्त ये दोष आमाशय में बढ़ने पर अम्लता और वेदना ये दो प्रमुख लक्षण उपस्थित होते हैं।

ये ही दोष पक्वाशय में बढ़ने पर लक्षण पृथक हो जाते हैं। वेदना तो होगी ही परन्तु अम्लता के स्थान पर अधोधातु वृद्धि होगी और अतिसार हो जायगा अथवा स्थूल वायु वृद्धि होकर आध्मान हो जायगा। यहाँ पर पाचक पित्त और समान वायु का कार्य क्षेत्र होने से उनमें दुष्टि उत्पन्न होती है तथा पाचन पित्त और समान वायु, धातु रूप जो हैं वे अपने साम्य को स्थिर रखने के लिए प्रयत्न करते हैं। विकार को निर्बल करने की चेष्टा लड़ाई करने पर उस स्थान पर युद्ध के आविष्करण होने पर ये लक्षण उपस्थित होते हैं। पाचक पित्त में अम्लता बढ़ना यह पित्त विकार का लक्षण है और अन्न ग्रहण कार्य विकृत होना यह समान वायु का दोष लक्षण है। इस दुष्टावस्था को दूर करने के लिए जीवनी शक्ति का प्रयत्न चालू रहता है। इस हेतु से अम्लता और वेदना उत्पन्न होती है। सूतशेखर के द्रव्य समूहों का परिणाम पित्त की अम्लता और समान वायु दोनों पर होता है जो औषधि आमाशयस्थपित्त वृद्धि पर उपयुक्त होती है वही औषधि पक्वाशय वातपित्त वृद्धि पर भी शामकता दर्शाती है। इन-इन स्थानों में मुख्य धातुओं की साम्यावस्था स्थापित करना यह सूतशेखर का विशिष्ट कार्य है। इससे वातवाहिनियां बधिर नहीं होती वातवाहिनियों में वातवहन कार्य व्यवस्थित होता है। जिस तरह लक्षण के योग से पित्तस्राव की अम्लता नष्ट होकर मधुरता आ जाती है, उस तरह इस औषधि से रूपान्तर न होकर मूल पित्त धातु व्यवस्थित होती है। फिर अम्लपित्त में अधिक बढ़ी हुई अम्लता स्वयंमेव शमन हो जाती है।

बढ़े हुए दोषों की चिकित्सा करने में जो क्षणिक शामक औषधि हो जिसका प्रयोग दोषों के वृद्धि ह्रास रूप वैषम्य जिस तरह की विषमता हो उस मूल विकृति को शमन करने वाला हो उससे चिकित्सा करनी चाहिए। दोष का शमन अर्थात् किसी स्थान में उत्पन्न विकृति का शमन नहीं है एवं विकृत हुए अवयवों का शमन भी नहीं है। परन्तु जिसके योग से अवयवों में विकृति होती है और विकृत द्रव्य उत्पन्न होता है जो सभी स्थानों में रहने पर देह का संचारण करते हैं तथा जिनमें वैषम्य होने पर जो दोष रूप कहलाते हैं, उन मूल धातुओं को मूल स्थिति में आस्थापित करना वही सच्चा दोषशमन है। यह कार्य अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु पर्यन्त होता है। अम्ल पित्त में वेदना और अम्लता का इतनी गहराई में सम्बन्ध होने से ऊपर से कार्य करने वाली तीव्र शामक औषधि से सूतशेखर की समानता नहीं हो सकती। सूतशेखर से मूल धातुओं का वैषम्य नाश होकर धातु साम्य प्रस्थापित होता है। इस तरह यह मूल ग्राह्य चिकित्सा सूतशेखर से साध्य होती है। यद्यपि सूतशेखर से कार्य होने में कुछ विलम्ब लगता है। परन्तु कार्य होने लगता है, फिर प्रतिपलित क्रिया अधिक सम्भव न हो तो इस हेतु से इस औषधि से अधिक विपरीत परिमाण की प्रतीति नहीं होती।

सूतशेखर शामक होने से हृद्य भी है। सूतशेखर का परिणाम वात वाहिनियों और रक्तवाहिनियों दोनों पर शामक होता है। रक्तवाहिनियों का कुछ आकुंचन होता है। इस हेतु से हृदय की जवाबदारी कुछ कम होकर उसे कुछ विश्रान्ति मिलती है। इस तरह यह हृद्य है। इससे कुछ अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। किसी भी प्रकार के सन्निपातिक संक्रामक या सेन्द्रिय विषजन्य ज्वर में हृदय की क्रिया अधिक वेगपूर्वक होने लगती है। इसका कारण रक्त में प्रवेशित सेन्द्रिय विष या कीटाणुओं को नष्ट करने पर इनका प्रतिरोध करने के लिए रुधिराभिस्सरण क्रिया अधिक बल से होती है। इस हेतु से हृदय को अधिक काम करना पड़ता है। हृदय और नाड़ी दोनों बलपूर्वक

अधिक कार्य और अधिक स्पन्दन करते हैं। फिर अधिक व्यापार के हेतु से आगे-आगे हृदय को थकावट आती है। रोगी भी क्लान्त होता है। फिर आगे की स्थिति शक्ति-पात की है। बुद्धिमानों को चाहिए कि इस अवस्था को प्राप्त होने से पहले ही हृदय को सम्भाल लें। यह कार्य उत्तेजक औषधियों से नहीं होता। उत्तेजक औषधि देने पर हृदय को उत्तेजना मिलने से हृदय क्रिया अधिक वेग से होने लगती है। परिणाम में हृदय जल्दी थक जाता है। फिर शक्ति वातावस्था की प्राप्ति होती है। हृदय के कार्य में होने वाली यह अवस्था वात पित्तात्मक है ऐसे समय पर हृदय को उत्तेजक औषधि नहीं देनी चाहिए। यह एक प्रकार की हृदय क्रिया ही है। सूतशेखर रस के सदृश औषधि से हृदय की क्रिया कम हो जाने से कुछ अंश में विश्रान्ति मिलती है और वह सबल बनता है। इस दृष्टि से हृद्य औषधियों में सूतशेखर उत्तम औषधि है।

सन्निपातिक ज्वरों में विशेषत: आन्त्रिक सन्निपात में सूतशेखर का उपयोग होता है। वह यह है कि इस रोग के निमित्त कारणरूप कीटाणुओं का प्रतिकार होता है। रक्त में कीटाणुजन्य विष से और दोष प्रकोप से, रक्ताभिसरण क्रिया वेगवती होती है। इस हेतु से सन्निपात ज्वरों पर सूतशेखर के शामक गुण का उपयोग होता है।

जब आंत्रिक सन्निपात, मधुरा में पित्त प्रकोप की प्रधानता हो तब इसका उपयोग होता है। निद्रानाश, अति पीला जलता हुआ पतला दस्त, तृषा, चक्कर आना, शीर्षशूल, प्रलाप आदि लक्षण होने पर सूतशेखर, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व मिलाकर दिये जाते हैं। इस तरह रक्तपित्त के लक्षण उपस्थित हों, रक्तस्राव होने लगे तो कामदुधा और रक्त कमल के फूलों के अवलेह के साथ सूतशेखर रस दिया जाता है।

यदि आंत्रिक ज्वर में अधिक दाह और शुष्क कास हो, शौच शुद्ध न होता हो और पेशाब में अधिक पीलापन या लाली हो तो सारिवा, नागरमोथा, कुटकी, चिरायता और धमासा ३-३ रत्ती मिला, क्वाथ कर फिर शक्कर मिलाकर सुबह शाम देते रहने से ज्वर विष को दूर करने में सहायता मिल जाती है।

सूतशेखर रस का कार्य सहस्रार और वात वाहिनियों पर शामक होता है। इनमें भी हृदय, फुफ्फुस, आमाशय, और आंत्र पर अधिकार रखने वाली वात वाहिनियों पर विशेष कार्य होता है।

सूतशेखर देने योग्य वातवाहिनियों और वात नाड़ी केन्द्र विकृति के रोगी के मस्तिष्क की स्थिति अति विलक्षण होती है। यह उन्माद रोगी के सदृश भ्रम पीड़ित और जड़ होता है। कुछ विलक्षण असम्बद्ध और स्पष्ट बोलता है। ऐसे रोगी के प्रलाप में एक विशेष विलक्षणता यह है कि उसे सचेत करने पर यह बुद्धि पर आ जाता है और नेत्र बन्द होने, तन्द्रा आने या निद्रा के लक्षण प्रतीत होने पर बड़-बड़ करने लग जाता है। वात विध्वंसन देने योग्य रोगी का प्रलाप सर्व अवस्था में सम रहता है। रोगी को बिलकुल सुध नहीं रहती। बेसुध में निरन्तर बकवाद करता रहता है। कई-कई बार रोगी स्वच्छन्द क्रुद्ध होकर मारना काटना, जोर से चिल्लाना, रोना, भागना आदि कार्य करने लगता है। यह अवस्था केवल वात वृद्धि से होती है। इस पर रोगी को महावातविध्वंसन देना चाहिए सूतशेखर से कार्य नहीं होता।

निद्रा में बोलते रहना, करवट लेकर शयन करने पर प्रलाप, अर्द्धावभेदक, नेत्र में दर्द आदि लक्षणों के साथ आधी तन्द्रा होने पर सूतशेखर रस अप्रतिम औषधि है।

भ्रम, चक्कर रोग में भूमण्डल फिरने का भास होता है अथवा कुम्हार चाक को जैसे भ्रमण कराता है या कांटे में डालकर वस्तु तोलने के समय जैसे दण्ड ऊपर नीचे होता रहता है, उस तरह रोगी को भ्रमण या गति का भास होता है उस पर सूतशेखर अति उत्तम कार्य करता है। यह भ्रमणावस्था कभी-कभी इतनी बढ़ जाती है कि शय्या पर पड़े रहने पर भी अपने को कोई फेंक देता है या चक्कर फिरा रहा है या खींच रहा है ऐसा भ्रम हो जाता है। इस अवस्था पर सूत शेखर अमृत सदृश हितकारक औषधि है।

कोई भी कार्य आरम्भ करने, पुस्तक पढ़ने और दूसरे के साथ वार्तालाप करने पर मस्तिष्क को थकावट आ जाना, शिर में बार-बार चक्कर आना, यहाँ तक कि चलते-चलते सन्तुलन भंग होकर एक ओर गिर जायेंगे ऐसा लगना, यहाँ पर सन्तुलन बिगड़ जायेगा

ऐसा भासता है परन्तु नष्ट नहीं होता और रोगी गिरता नहीं है। यदि संतुलन नष्ट होकर बेहोशी आ जाती है तो स्मृति सागर देना चाहिए। सूतशेखर से पूर्ण लाभ नहीं होता। सन्तुलन नष्ट होने का भासना या भ्रमणावस्था की वृद्धि हो, नेत्र के समक्ष अन्धकार छा जाता हो सर्वत्र अन्धकार फैल जाता हो, रोगी को ऐसा भास होता हो कि मैं गहरे अंधेरे में किसी कोने में पड़ा हूँ। यह स्थिति निमिष मात्र रहती है, फिर नेत्र के समीप का अन्धकार कम हो जाता है। रोगी पूर्ण शुद्धि पर आ जाता है। इस पर सूतशेखर रस का उपयोग होता है स्मृति सागर के योग्य रोगी को पहले चक्कर आना नेत्र के पास अन्धकार छा जाना फिर पूर्ण होश जाना आदि लक्षण होते हैं। यह दोनों के कार्य में अन्तर है।

आक्षेपक वात में झटके अधिक आने पर सूतशेखर उपयोगी होता है। इस रसायन से झटके बन्द होते हैं। केवल ये वात पित्तात्मक होने चाहिए। छोटे बच्चे के वालग्रह में आने वाले झटके में सूतशेखर का उपयोग अधिक होने का अनुभव में नहीं आया परन्तु बड़े मनुष्य विशेषतः स्त्रियों को होने वाले उन्माद के सौम्य झटके या डिफ्थीरिया के झटके सूतशेखर से कम होने के उदाहरण मिले हैं। उन्माद के झटके वेग को कम करना और दोष से या दोष दूष्य संयोग से उन्माद रोग उत्पन्न हुआ हो उसका भी शमन करना ये दोनों कार्य वात पित्तात्मक दोष का निवारण सूत शेखर के योग से होते हैं।

परन्तु सन्यास रक्तज मूर्च्छा में झटके आने पर सूत शेखर रस नहीं देना चाहिए। कारण रक्तज मूर्च्छा में मस्तिष्क के भीतर सहस्रार या उसके समीप रक्त का संचय हो जाता है उस पर मस्तिष्क में रक्त संचय कम करने वाली रक्त शामक विरेचन और शीतल औषधि देनी चाहिए। चिकित्सा भी इसी तत्व के अनुसार करनी चाहिए। सूतशेखर से यह कार्य नहीं होता। उन्माद में मनोवृत्ति के विभ्रम का कारण वातवाहिनियों का क्षोभ है उस पर क्षोभ नाशक और वातशामक औषधि देनी चाहिए। सूत शेखर रस में ये दोनों गुण अवस्थित हैं।

कितनी ही स्त्रियों को गर्भपात के पश्चात् या कष्टार्तव में उन्माद के सदृश झटके आते हैं। रक्तस्राव होने में पीड़ा होती है। गर्भाशय संकुचित होने से या गर्भ कोष्ठ में से गये हुये रक्त के अति बड़े-बड़े टुकड़े गिरने से वेदना होती है तथा बीज कोषों के भीतर से शूल निकलता है। इस हेतु से रुग्णा अतिशय क्लान्त और अस्वस्थ हो जाती है यह अस्वस्थता भी सब समय सर्वत्र एक समान नहीं होती कुछ काल अस्वस्थता अधिक और कुछ समय में कम हो जाती है। अर्थात् अस्वस्थता और वेदना के दौरे आते रहते है। चक्कर आना, छाती बाध देने समान घबराहट, व्याकुलता, बार २ थोड़ी-थोड़ी वमन, वमन होने में अतिशय त्रास, वमन होने पर उदर में ऐंठन और वेदना होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस पर सूतशेखर रस लाभ पहुँचाता है। इस तरह अन्य किसी कारणों से वात के आक्षेप आते हों और रोगी पूर्णांश में बेहोश न हो तो सूतशेखर रस देना चाहिए।

शिर दर्द—यह लक्षण सामान्य जुकाम से लेकर सहस्रार के आवरण के शोथ परिपत्र विविध छोटे-मोटे रोगों में प्रतीत होता है। सामान्यतः जनसमूह की प्रवृत्ति सिर दर्द होने पर सूतशेखर रस ले लेने की बढ़ती जा रही है।

यदि जुकाम से शिर दर्द हो तो सूतशेखर के सदृश बलवान औषधि न देकर दूसरी सौम्य औषधि या वाह्योपचार से दर्द को शमन करना हितकारक माना जाता है। यदि मस्तिष्क के आवरण का ही कुछ विकार होने से शिर दर्द होता हो तो भी उस स्थान पर सूतशेखर रस का कुछ भी विशेष उपयोग नहीं होता। इन दोनों स्थानों पर सूतशेखर रस का सदुपयोग नहीं होता।

पित्त प्रकोप से उत्पन्न सिर दर्द पर सूतशेखर रस का विशेष उपयोग होता है। पित्त दोष का अधिक संचय होने पर कण्ठ में जलन, वमन, वमन होने पर शिर दर्द कम हो जाना आदि लक्षण होने पर सूतशेखर रस का अच्छा उपयोग होता है। यद्यपि पित्त या पित्त की अम्लता की वृद्धि होने पर उसे रूपान्तरित करा स्वादुता उत्पन्न कराने का धर्म सूतशेखर रस में नहीं है तथापि सूतशेखर रस के योग से पित्तस्राव अधिक होने की और उदर में संचित होने की प्रवृत्ति कम हो जाती है।

कितने मनुष्यों में शिर दर्द की व्यथा आनुवंशिक होती है इसमें पित्तप्रकोप या संचय के लक्षण स्पष्ट प्रतीत

नहीं होते। कुछ विकृति हुई किसी स्थान पर दोष संचय हुआ कि तत्काल सिर दर्द होने लग जाता है। इस वंश परम्परागत शिर दर्द विकार पर सूतशेखर रस का अच्छा प्रयोग होने के उदाहरण मिले हैं।

वातज शिरःशूल में वात प्रकोप कारण होता है। वात प्रकोप से वेदना अति तीव्र होती है, रोगी अति व्याकुल हो हो जाता है। इसमें शिर के भीतर बाहर से कोई कील गाड़ता है ऐसी वेदना सारे मस्तिष्क में होती है। यह वेदना कभी-कभी इतनी असह्य हो जाती है कि रोगी मस्तक को पीटने लगता है और बड़े जोर से चिल्लाने या रोने लगता है। यदि कदाचित वमन हो जाय तो तत्काल रोगी को आराम हो जाता है। वातज शीर्ष शूल में वात बहुधा नहीं होती और जल्दी शान्ति भी नहीं होती। इस पर भी सूतशेखर रस का उत्तम उपयोग होता है।

भ्रम, चक्कर, प्रलाप, असम्बद्ध प्रलाप, मानसिक भ्रांति और उन्माद के सदृश स्थिति होना, कोई भी बात मन में आने पर उसका ध्यान होता रहता है उसका बार-बार विचार आकर उसके लिए विचारणार्थ प्रश्न या प्रलाप होने लगता है। इत्यादि लक्षण उन्माद या ज्वर में होने पर सूतशेखर रस का उत्तम उपयोग होता है। इसमें विशेषतः रक्त का दबाव और पित्त वृद्धि होकर उक्त लक्षण उपस्थित होते हैं। जिन स्थानों में ज्वरोष्मा अत्यन्त बढ़ने पर प्रलाप आदि लक्षण होते हैं उन स्थानों में ज्वरघ्न औषधि की योजना करनी पड़ती है। ज्वरोष्मा न्यून होने पर प्रलाप आदि लक्षण हों तो रक्त में हानिकर त्याज्य द्रव्यों का मिश्रण होता है। वह वातवह केन्द्र में पहुँचने पर ऐसे लक्षण उपस्थित होते हैं अर्थात् आन्त्रिक-श्वसनक, श्लैष्मिक आदि सन्निपातिक ज्वरों में या इस तरह के ज्वरों में प्रलाप आदि लक्षण उत्पन्न होने पर सूत शेखर रस अवश्य देना चाहिए।

आक्षेप के झटके बार-बार होने पर हाथ पैर मुड़ जाना, अंगुलियाँ टेढ़ी हो जाना, सेक करने पर कुछ अच्छा मालूम पड़ना, झटके का वेग अतित्वरित होना, परन्तु झटका अति जोरदार न होना, हाथ पैरों में ऐंठन आना अर्थात् हाथ पैरों के मांस कठिन और संकुचित होने एवं संक्रामक विशूचिका होने पर सर्वांग में होने वाले ऐंठन सब पर सूतशेखर रस तत्काल अच्छा लाभ दर्शाता है।

तीव्र अम्ल पित्त के योग से होने वाली कण्ठ की जलन, खट्टी डकार, उदर में दाह, दिन जैसे-जैसे बढ़ता है वैसे-वैसे उदर में दर्द बढ़ना, साथ-साथ कड़वी और खट्टी वमन होना, कै होने पर कण्ठ, तालु, मुख, जिह्वा आदि पर दाह होना, कण्ठ और मुंह में फोड़े होना, उदर की वेदना के साथ-साथ शिर दर्द का भी प्रारम्भ होना और भयंकर व्याकुलता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। रोगी की तीव्रावस्था में पहले स्वर्णमाक्षिक भस्म, प्रवालपिष्टी और अनार रस आदि तत्काल शामक गुण दर्शक औषधि देनी चाहिए। तीव्र लक्षण कम होने पर उदर में पित्त का अधिक स्राव और पित्त तीव्र होनेपर उसे कम करने के लिए सूतशेखर रस का उपयोग करना चाहिए।

आमाशय में पित्तोत्पादक ग्रन्थियां विविध कारणों से अधिक पित्त (आमाशय रस) उत्पन्न करने लग जाती हैं और पित्त में क्षीणता भी अधिक उत्पन्न होती है। इस हेतु से आमाशय की श्लैष्मिक कला में पहले संरम्भ होता है। पश्चात् शोथ और स्फोट के सदृश अवस्था होती है। अन्त में उन स्थानों में पतले और सूक्ष्म व्रण हो जाते हैं। फिर उन स्थानों में कठोर अन्न चुभते हैं। अन्न उसमें प्रवेशित होकर सड़ने गलने लगते हैं। उदरशूल उपस्थित होता है फिर वान्ति होकर अन्न बाहर निकल जाता है। जब चुभने वाले अन्न की वमन हो जाती है तब कुछ शान्ति हो जाती है। इसे आयुर्वेद में अन्नद्रवशूल संज्ञा दी है। इसमें सच्ची शूलग्राही चिकित्सा उसे कहेंगे जिससे आमाशय व्रण का रोपण हो। सूत शेखर रस के योग से पित्त का स्राव नियमित होता है और व्रण रोपण में सहायता पहुँचती है। इसी न्यायानुसार अग्न्याशय के आग्नेय रस के विकार जनित शूल पर भी इसका उपयोग होता है।

पित्ताशय में से निकलने वाले पित्त के गाढ़ा होने पर उसमें छोटे-छोटे पत्थर बन जाते हैं। फिर उससे एक प्रकार का तीव्र कोष्ठशूल उत्पन्न होता है। ग्रहणी में आने वाले पित्तवह स्रोतस में या पित्ताशय में ही यह शूल

चलने लगता है। पित्ताश्मरी के कण चुभने पर क्वचित पित्त के तीक्ष्ण ज्वर के हेतु से शूल प्रत्यक्षतः सूत शेखर के सेवन से कम नहीं होता। तो भी इससे पित्त मार्ग में अश्मरी उत्पन्न होने की आदत दूर हो सकती है। पित्त की अति तीक्ष्णता वृद्धि भी नियमित होती है। अनुपान रूप से धमासा, गिलोय, मुनक्का, मुलहठी और मिश्री का क्वाथ देवें। इसके पहले पित्तस्राव कराने वाली औषधि देनी चाहिए।

वातातिसार और पित्तातिसार दोनों पर सूतशेखर रस का अच्छा प्रयोग है। विदाही भोजन पर आम संचय से अतिसार की उत्पत्ति होती है। अन्न का पाचन सम्यक् नहीं होता। उसमें यकृत के पित्त का योग मिश्रण होने से जो अन्न आन्त्र में जाता है उस अन्न का विदाह होता है। उसका सम्यक विपाचन नहीं होता और पोषण भी यथोचित नहीं होता। इस हेतु आन्त्र में अन्न रस का संचय होकर धातु की वृद्धि होती है। फिर अतिसार होकर विदग्ध अन्न का स्राव होने लगता है। पित्तातिसार पित्त के सान्द्रत्व और द्रवत्व गुण की वृद्धि के हेतु से उत्पन्न हुआ हो तो सूतशेखर रस विशेष उपयोगी होता है। इससे उसका नियमन होता है। अर्थात् अत्यधिक पित्तोत्पत्ति तो वह रुक जाती है। फिर अतिसार स्वयंमेव दूर हो जाता है।

कदाचित पित्त का अतिरेक होने पर अतिसार होता है तब उसमें वैषम्य और वैगुण्य के हेतु से होता है। शरीर में धातु द्रव्य विशिष्ट प्रमाण में और विशिष्ट गुणवीर्ययुक्त होना स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक है। इससे विषमता होने पर व्याधि उत्पन्न होती है। कम परिमाण या गुणक्षय से एक प्रकार का विकार और अधिक परिमाण और गुण वृद्धि से दूसरे प्रकार का विकार होता है। तीक्ष्ण पित्त तथा सान्द्र और द्रव पित्त मर्यादा से अधिक अन्त्र में मिल जाने पर अन्त्र में विस्फोट और शोथ आकर आम धातु की वृद्धि होती है। फिर अतिसार हो जाता है। पित्त की अधिकता से होने वाले विरेचन बड़े-बड़े गरम गरम पीले रंग के होते है। दस्त होने के समय उदर में दाह, घबराहट, व्याकुलता, अतितृषा, क्वचित भ्रम और प्रलाप आदि लक्षण होते है। सूतशेखर रस से अतिसार तो कम होता है साथ-साथ प्रलाप, घबराहट, तृषा, भ्रम व्याकुलता आदि भी शमन हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में सूतशेखर रस अति कम मात्रा में आधा या एक-एक घंटे पर देते रहें।

विशूचिका में कीटाणुजन्य और अपचनजन्य ऐसे दो प्रकार हैं। कीटाणुजन्य विशूचिका बिलकुल प्रथमावस्था से तृतीयावस्था तक प्रत्येक स्थिति और अवस्थान्तर में सूतशेखर रस का अति उत्तम उपयोग होता है। विशूचिका में अति जुलाब लगने पर शरीर से अब्धातु कम होती है। अधिक वमन होने से यह स्थिति होती है। इसके पश्चात् उदर, पीठ, पैर और सर्वांग में ऐंठन होने लगती है। सब स्नायु निचोड़ने के समान मुड़ जाते हैं। भयङ्कर वेदना होने लगती है। रोगी अति व्याकुल हो जाता है। ऐसी त्रासदायक स्थिति में सूतशेखर रस देने से १५-२० मिनट में ऐंठन रुक जाती है। इस तरह बड़ी-बड़ी खट्टी जल के सदृश वमन होने पर उदर में तीव्र वेदना मरोड़ उदर में ऐंठन आदि लक्षण उपस्थित हों तो सूतशेखर रस अमृत है।

विसूचिका की प्रथमावस्था से बिलकुल अन्तिम अवस्था तक सूतशेखर रस का उत्तम उपयोग होता है। अन्न शक्ति कम पर कितनेक बार रोगियों को बिलकुल बड़े-बड़े जुलाब लगते रहते हैं। मल के डाट को हटाने के समान जल के सदृश दस्त होने लगता है। आन्त्र की स्तम्भन शक्ति क्षीण हो जाने से गुदा मार्ग से स्राव होता ही रहता है। सूतशेखर का इस अवस्था में अति उत्तम कार्य है।

आयुर्वेद में उदर के भीतर होने वाले गोले को गुल्म संज्ञा दी है। इनमें कितने गुल्म में मांस और मेद का संचय होता है। यह संचय धातु पोषण क्रम में कुछ विकृति होने पर सूत शेखर रस के योग से पित्तज गुल्म को यह विकृति नष्ट होती है। इस तरह गुल्म का कारण नष्ट होने से गुल्म की वृद्धि कम हो जाती है।

कास अनेक कारणों से उत्पन्न होती है। इनमें पित्तज कास में सूतशेखर रस का अति उपयोग होता है। अनुपान रूप से आम का मुरब्बा देना चाहिए।

संग्रहणी में तीव्र और जीर्ण ऐसे दो भेद हैं। नूतन संग्रहणी में भी सज्वर और विज्वर ऐसे दो विभाग होते हैं। सज्वर संग्रहणी में कुड़ा की छाल का कुछ भी उपयोग नहीं होता। उसमें ज्वर रक्त युक्त आम बिलक्षण प्रवाहण किछना दिन में १००-२०० दस्त होने प्रत्येक बार किछ-किछ कर आम या रक्त के एक दो बूंद गिरना मल

बिल्कुल न गिरना जल और रक्त मिश्रित लाल रंग की बूंदे गिरना साथ-साथ उदर और हाथ पैरों में ऐंठन, नेत्र की दृष्टि स्थिर न रहना, अधिक प्रलाप आना आदि लक्षण होने पर सूतशेखर रस अति उत्तम औषधि है। सूतशेखर रस और स्वर्ण माक्षिक को मिलाकर बेल के मुरब्बे के साथ देवें। ऐसी व्याधि में मल गिरने लगता है। रोगी की प्रकृति सुधरने लगती है। जीर्ण रोग हो तो पर्पटी कल्प उपयोगी होता है।

शुष्क कास के साथ श्वस में भी सूतशेखर रस का उत्तम उपयोग होता है। सूत शेखर रस शामक और हृद्य होने से हृदय के रोग में उत्पन्न कास श्वास पर अच्छा है।

हिक्का अनेक प्रकार के विकारों में एक लक्षण है। आमाशय में आगन्तुक द्रव्य संचय होकर हिक्का होती है। उसमें वमन कराकर उस द्रव को दूर करने पर हिक्का का हेतु नष्ट हो जाता है। परन्तु उदर और महा प्राचीरा पेशी को हिक्कहिक्क करने की आदत हो गई तो वह जल्दी दूर नहीं होती। उस समय सूत शेखर दें।

निज दोष कोष्ठ में संचित होकर हिक्का होती है। उसमें पित्त और वातदोष से उत्पन्न हिक्का में यह उत्तम कार्य करता है। हिक्का उग्र स्वरूप की होती है। विशूचिका की अन्तिम अवस्था या मध्यावस्था में भी हिक्का उत्पन्न हो जाती है। उस पर भी सूतशेखर रस उत्तम उपयोगी औषधि है। चंचल क्रोधी और स्वच्छन्दी विचार वाली स्त्रियों को अनेक बार हिक्का उत्पन्न होती है। वह किसी बाह्य उपचार या अन्य औषधि से नहीं रुकती। इस पर सूतशेखर रस प्रभावशाली औषधि है।

गंभीरा और महती हिक्का पर सूतशेखर उपयुक्त है। आध्मान, आनाहवृद्धिद्रोदर या वृद्धोदर इन रोगों में हिक्का उपद्रव रूप से होती है। उस पर भी कुछ अंश में सूतशेखर रस लाभ पहुँचा देता है।

हिक्का के साथ अति शुष्कता, शुष्क उवाक, प्रस्वेद आना, नेत्र बार-बार फिरा देना, कण्ठ में दाह, शीतल जल या शीतल पेय से किंचित् शान्ति लगना फिर बलपूर्वक हिक्का होने लगना उस पर सूतशेखर रस अति उत्तम कार्य करता है।

उदावर्त की उत्पत्ति वात विकृति से होती है। इस रोग में विशेषतः अपान और समान वायु की विकृति होती है। अपान के अवरोध से अन्त्र की क्रिया प्रतिलोम होती है। और अन्त्र की पुरःसरण क्रिया विलोम होकर अन्त्र फूलने लगती है। अफरा आने पर उदर में पीड़ा होने लगती है श्वासावरोध आभास होता है। व्याकुलता मलावरोध और कभी मूत्रारोध भी होते हैं। इस प्रकार से सूतशेखर इन पर विशिष्ट कार्य करता है। इससे वायु का अनुलोमन होता है। पुरःसरण क्रिया व्यवस्थित होती है और बेचैनी दूर होती है। फिर शौच शुद्ध होने लगती है। यह औषधि रेचक नहीं है किन्तु शामक होने से वायु का शमन करके उसे अनुलोमन करती है।

त्वचा के अन्तर्भाग में रहती हुई वात-वातहिनियाँ विशेषतः संज्ञावाहिनियों में क्षोभ होकर दाह उत्पन्न होता है। शराबियों को यह दाह अति उग्र होता है। अन्य कारणों से भी त्वचा में रही हुई संज्ञावाहिनियाँ दुष्ट होकर दाह उत्पन्न हो जाता है। रक्त की विकृति से दुष्ट होकर दाह होता है। इन सब पर सूतशेखर रस का उत्तम उपयोग होता है।

आंत्र में अन्न पाचन योग्य न होने पर अन्न सड़ने लगता है फिर उससे घोर आमविष की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार की स्वयं दुष्टि से उत्पन्न सेन्द्रिय विष में से विविध व्याधियों की सृष्टि होती है। इस विष को नष्ट करने में सूतशेखर रस अत्युत्तम औषधि है।

प्रभाव—सूतशेखर रस कीटाणु नाशक योग वातवाहिनी नाड़ियों पर शामक हृद्य और सेन्द्रिय विष नाशक है। इसका कार्य आमाशय, पक्वाशय, बृहदन्त्र, यकृत, अग्न्याशय, हरिद्रा और वात वाहिनियों पर होता है तथा वात और पित्तदोष का शामक है और गुणधर्म शास्त्र से इसके घटक त्रिदोष नाशक पाचक तथा उष्ण वीर्य वाले हैं।

—वैद्यराज श्री युधिष्ठिर सिंह सोमवंशी
बैबहाउर पो० भैंसवार (सतना) म.प्र.

सूतशेखर रस एवं अम्लपित्त

शुद्धं सूतं मृतं स्वर्णं टंकणं वत्सनाभकम् ।
व्योषमुन्मत्तबीजं च गन्धकं ताम्रभस्मकम् ॥
चातुर्जातं शंखभस्म बिल्वमज्जा कचूरकम् ।
सर्वं समं क्षिपेत्खल्वे मर्द्य भृङ्ग रसैर्दिनम् ॥
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा द्विगुंजे मधु सर्पिषा ।
भक्षयेदम्ल-पित्तघ्नी वान्ति शूलामयापहा ॥
—योग रत्नाकर

अर्थात्—शुद्ध पारद, स्वर्ण भस्म, सुहागे की खील, शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, मिर्च, पीपल, धतूरे का बीज, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, शंखभस्म, बेल की गिरी, कचूर ये सब समान भाग द्रव्य लेकर सबसे प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनाकर फिर अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलाकर एक दिन भृङ्गराज के स्वरस में खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेनी चाहिए।

मात्रा—एक-एक गोली प्रातः तथा सायंकाल।

अनुपान—शहद १ ग्राम या गोघृत ३ ग्राम तथा कम वेदना में दाड़िम का शर्बत या रस अथवा लाजमण्ड से।

गुण—

सूतशेखर रस अम्लपित्त, वमन, संग्रहणी, खाँसी, पेट का दर्द, गुल्म, मन्दाग्नि, पेट का फूलना, हिचकी, श्वास रोग तथा राजयक्ष्मा रोग को नष्ट करता है।

उपयोग—

यह पित्तज तथा वातजन्य विकार को शांत करता है, विशेषकर पित्त की विकृति-अम्लता या क्षीणता अथवा आमाशय या पित्त कमजोर होकर कार्य करने में असमर्थ हो गया हो, तो उसे सुधारता है। इसलिए अम्लपित्त, खट्टी डकार या वमन, कोष्ठ में वेदना होना, उदावर्त आदि रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। इस रस में स्वर्ण भस्म होने के कारण हृदय को भी बल देता है। इस कारण राजयक्ष्मा को प्रथम तथा द्वितीयावस्था में इसके उपयोग से लाभ होता है। सूखी खाँसी जिसमें कफ सूख कर छाती में बैठ गया हो, निकलता न हो तो ऐसी खाँसी में इसका प्रयोग किया जाता है।

पाचक पित्त की कमजोरी को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त कर आमाशय में होने वाले दर्द को भी नाश करता है क्योंकि यह वेदनाशामक है। अम्लपित्त में वात प्रकोप के कारण दर्द और पित्त प्रकोप के कारण खट्टी डकार या वमन प्रधान लक्षण होते हैं। सूतशेखर रस वायु तथा पित्त शामक गुण के कारण अम्लपित्त रोग को दूर करता है।

सूतशेखर रस का प्रभाव वातवाहिनी और रक्तवाहिनी शिराओं पर होता है। रक्त की गति में वृद्धि होने पर हृदय तथा नाड़ी की गति में भी वृद्धि हो जाती है जिससे हृदय की गति बढ़ जाती है जिससे हृदय की धड़कन बढ़कर कभी-कभी हार्टफेल होने की संभावना रहती है। इस कारण रोगी की बल तथा अवस्था को देखते हुए प्रयोग करना चाहिए।

आन्त्रिक सन्निपात में पित्त की वृद्धि होने पर शिर में दर्द, नींद का न आना, प्यास का लगना, सूखी खाँसी आना, मूत्र का पीला होना ऐसी अवस्था में सूतशेखर रस प्रवाल भस्म, गिलोय सत्व मिलाकर देने से पित्त की शांति होती है। रक्त की मात्रा बढ़ पित्तज उपद्रव नष्ट होते हैं।

वात पित्तजन्य शिर दर्द में वात प्रधान शिर दर्द, मुंह का सूखना, वमन आदि लक्षण होते है। ऐसी अवस्था में सूतशेखर रस का प्रयोग करना चाहिए। अम्ल पित्त रोग में आमाशय की श्लैष्मिक कला में सूजन के साथ छोटे-छोटे व्रण हो जाते हैं जिससे कठोर अन्न के संयोग होने पर दर्द होने लगता है तथा आमाशय कमजोर होने के कारण अन्न का पाचन न होकर अन्न अपरिपक्वावस्था में ही रह जाता है और वहां रुककर सड़ने लगता है जिससे आँतों में ऐंठन और दर्द तथा जी मिचलाना, वमन होना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी दशा में सूतशेखर रस के प्रयोग से उत्तम लाभ होता है। आक्षेपजन्य वात रोग जैसे धनुष्टंकार (बच्चों के रोग), अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), अपतानक, धनुर्वात आदि रोगों में सूतशेखर रस के उपयोग से लाभ होता है।

—आयुर्वेदाचार्य डा. श्री सी.पी. त्रिपाठी बी ए.एम.एस
लेखक—संक्षिप्त द्रव्य गुण परिचय
अध्यापक—ललित हरि राजकीय आयु० कालेज
पीलीभीत (उ० प्र०)

कवि० श्री बी. एस. प्रेमी एम०ए०एस०एस०

परिचय—यह आयुर्वेद जगत् का एक महान दिव्य गुण सम्पन्न महौषधि है। रस शास्त्रों में यह प्रयोग चार तरह का उपलब्ध है। (क) प्रथम ज्वर प्रकरण में (ख) द्वितीय वाताधिकार में। (ग) तृतीय -ज्वराधिकार में। (घ) चतुर्थ—रसायन एवं क्षयाधिकार में वर्णन किया गया है।

विशेष गुण—यह रस असाध्य रोगों की अव्यर्थ सफल चिकित्सा है। अनेक औषधियाँ तथा चिकित्सा जहाँ असफल हो जाती हैं वहीं यह रस पूर्ण सफल है। यह शास्त्रीय योग है और बहुमूल्य प्रयोग है। खूबी यह है कि यह सभी रोगों पर समानरूप से प्रभावी है और स्त्री-पुरुष युवक वृद्ध, बालक तथा नये-पुराने सभी रोगों पर समान रूप से प्रयुक्त होता है और पूर्णरूपेण स्थायी लाभ पहुँचाता है। इस रस की प्रथम मात्रा ही रोगी में आशा का संचार करके अपनी विशेष उपादेयता सिद्ध कर देती है।

यदि यह रस विधानपूर्वक सही बना हो—धन्वन्तरि के सुहृदय पाठकों को मैं यह नम्र निवेदन कर देना चाहता हूं कि ऊपर जिस त्रैलोक्य चिन्तामणि रस के गुणों का निरूपण मैंने किया है वह वस्तुतः पूर्ण विधान से सम्पूर्ण द्रव्यों को सम्मिलित करके सही प्रकार से बना होना चाहिए। वर्तमान युग में महर्घता के कारण आयुर्वेद की बहुमूल्य दवाओं में कई लोग बड़ी हेरा-फेरी करने लग गए हैं।

१. प्रथम त्रैलोक्य चिन्तामणि रस का योग

ज्वर के लिए प्रयुक्त होने वाला प्रथम त्रैलोक्य चिन्तामणि रस निम्नलिखित विशिष्ट द्रव्यों से बनाया जाता है—

सुवर्ण भस्म २ भाग, रजत भस्म २ भाग, अभ्रकभस्म २ भाग, लोहभस्म ५ भाग, प्रवाल भस्म ३ भाग, मोतीपिष्टी ३ भाग, पारद भस्म ७ भाग। इन सबको खरल में एकत्र करके ग्वारपाठा के द्विगुण स्वरस के साथ दृढ़ मर्दन करें। यह मर्दन अथवा भावना का कार्य पूरे दो दिन पर्यन्त होना चाहिए। तदनन्तर एक-एक रत्ती की वटिकायें बना कर छाया में सुखा लें और किसी कांच पात्र में रख लें। प्लास्टिक की शीशी में नहीं रखनी चाहिए।

मात्रा और गुण—इस रस की मात्रा एक रत्ती की है और अनुपान के लिए बकरी का दूध परमावश्यक है, सर्वथा अभाव में गोदुग्ध से भी काम चलाया जा सकता है। दुग्ध के अतिरिक्त अन्य किसी अनुपान से यह रस कथित गुणों का आधान नहीं कर पाता, यह हमारा विशेष रूप से अनुभव है।

यह रस सभी प्रकार के क्षय, राजयक्ष्मा सभी प्रकार की खाँसी, गुल्मरोग, प्रमेह, जीर्ण ज्वर, उन्माद को समूल नष्ट करता है।

विशेष टिप्पणी—इस रस के निर्माण में प्रायः लोग पारद भस्म के स्थान पर रससिंदूर सम्मिलित कर देते हैं। अतः यह गलत कार्य इस रस के महत्वपूर्ण कार्यों को नष्ट कर देता है और कई बार विपरीत कार्य करता भी पाया गया है और कई बार असफल होते भी देखा गया है। अतः हम यहाँ पर पारद भस्म बनाने का सरलतम विधान दे रहे हैं—

पारद भस्म विधि—सर्व प्रथम पारद के अष्ट संस्कार पूर्ण करलें। फिर उस पारद को तुलसी के चौगुने स्वरस में घोटकर एक गोली बनालें। प्रथम दो दिन छाया में

सुखावें, फिर दो दिन धूप में सुखा लें। अन्त में एक सूरणकन्द न्यूनातिन्यून दो सेर का हो, उसके मध्य में गर्त बनाकर उस गोली को रख दें और नमक के पानी में भिगोकर लट्ठे के कपड़े की कपरौटी करें। सुखाकर सात कपरौटी करें। अन्त में एक गजपुट वाले गढ़े में रखकर एक मन सूखे पत्तों की आँच दे देवें। स्वांगशीतल होने पर निकालें। गोली अतिश्वेत कपूर के वर्ण के समान निकलेगी। धीरे से संभालकर उठावें और पीसकर कांच शीशी में रखलें। इसकी चिकनाहट की तुलना नहीं मिलेगी। यह भस्म ऊपर वाले नुस्खे में डालें। यदि स्वतंत्र रूप से यह भस्म सेवन करनी हो तो मात्रा एक चावल की है। प्रचुर मात्रा में माखन, मिश्री, मलाई, बादाम का हलुवा, शीतल मधुर पदार्थों का सेवन करना अतिहितकर होता है। गरम पदार्थों का त्याग आवश्यक है।

रोगों पर विशेष अनुभव

(क) मधुमेह पर—यह रस मधुमेह पर पूर्ण सफल है। अनुपान दूध है। विशेष व्यवस्था यही करनी है कि मधुमेह में रात्रि को सोते समय सप्ताह में पाँच दिन सिद्ध चन्द्रोदय रसायन वटी आंवले के मुरब्बे के साथ (पहले मुरब्बे के आँवले को धो लेवें) खाकर थोड़ा दूध फीका ऊपर से पी लेवें। प्रातःकाल उठते ही दूध के साथ ऊपर कहा त्रैलोक्य चिन्तामणि रस एक गोली दूध से लेवें। दिनभर और कुछ भी खाना-पीना न करें। जब भी भूख या प्यास अथवा गर्मी या खुश्की या दुर्बलता अनुभव हो तभी दूध में २ रत्ती आँवले का चूर्ण मिलाकर पी लेवें। इस प्रकार से सेवन करते हुए सातवें दिन भरपेट भोजन करें। भोजन में आंवले की फीकी चटनी, करेला की सब्जी, गेहूं के फुलके, मूंग, मसूर और चना तीनों समभाग की दाल, जिसको गोघृत में भूनकर बनाया गया हो, खावें। दिन में सोना और रात को जागना वर्जित है। पन्द्रहवें दिन अत्यन्त हलका भोजन मृदुरेचन करते रहें। तीन वर्ष तक का मधुमेह साठ दिन में और अधिक पुराना सौ दिन में सदा के लिए चला जाता है।

दुर्बलता-क्षीणता नाशक—यह त्रैलोक्य चिन्तामणि रस यदि खटाई, तेल, लालमिर्च का त्याग कर सेवन किया जाये तो निश्चय ही पूर्ण सफलता मिलती है। सेवन विधान पूर्णरूप से मधुमेह के प्रकरण में कहे अनुसार ही है। अन्तर केवल इतना है कि प्रतिदिन पौष्टिक भोजन करें और संयम से रहें। सभी प्रकार की दुर्बलताओं को नष्ट करने का यह एक पूर्ण सफल उपाय है।

रक्तज गुल्म—नारियों के रक्तज गुल्म में भी यह रस विशेष सफल है। यदि नारी गाजर को प्रमुखता से खावे तो थोड़े ही समय में रक्तज गुल्म तथा अन्य सभी गुल्मों से पीछा छूट जाता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस विधि से श्वेत प्रदर और रक्त प्रदर जैसी बीमारियां समूल नष्ट होती हैं।

२. द्वितीय त्रैलोक्य चिन्तामणि रस

यह रस शास्त्रों में ऋषियों ने वाताधिकार में कहा है। बहुत ही उत्तम और सफल योग है। निश्चय ही असाध्य से भी असाध्य वातज रोगों को समूल नष्ट करता है। यह ध्रुव सत्य है। आचार्य ने स्पष्ट किया है कि —

हन्त्यामयान् योग शतैर्विवर्ज्या-
नथ प्रणाशायमुनि प्रणीतः।

अर्थात् जो रोग हजारों दवाओं के देने से भी शान्त न हुआ हो उसको भी यह रस निश्चय दूर करता है।

घटक द्रव्य—इस द्वितीय त्रैलोक्य चिन्तामणि रस के निर्माण के लिए निम्नलिखित द्रव्य प्रयोग में आते हैं—

हीरे की भस्म १ भाग, सुवर्ण भस्म १ भाग, तार भस्म १ भाग, तीक्ष्ण लोह भस्म ४ भाग, अभ्रक भस्म ७ भाग, पारद भस्म ७ भाग।

विधि—इन सब को खरल में, ग्वारपाठे के दुगुने स्वरस में दो दिन पर्यन्त दृढ़ मर्दन करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनालें और छाया में सुखालें।

सेवन विधि और गुण—

१. पतला-पतला कफ अधिक आता हो तो यह रस अदरख के रस के साथ प्रातः और रात्रि को सेवन करें। कफकारक पदार्थों का सेवन वर्जित है।

२. यदि कफ सूख गया हो और निकलने का नाम ही न लेता हो तो यह रस मधु के साथ प्रातः और रात को सेवन करें। अवश्य तत्काल कफ उखड़-उखड़ कर बाहर आने लगता है। कई बार तो सो जाने के पश्चात् निद्रावस्था में नाक और मुख से चिकना कफ स्वतः ही बाहर निकलते देखा गया है। श्वास रोगी के लिए यह

परम हितकारी है। तुरन्त कफ निकालकर दम फूलने की स्थिति को रोक देता है।

३. पित्त की प्रधानता में या पित्तज रोगों में घृत और शक्कर के साथ सेवन करने से अवश्य लाभ होता है।

४. कफ वातज रोगों में यह रस पीपल के चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से तत्काल लाभ करता है।

५. प्रमेह रोगों में दूध के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

६. स्वप्नदोष में (अनुभूत) दूध में हल्दी के साथ सेवन से निश्चय ही स्थायी और पूर्ण लाभ के साथ-साथ शक्ति भी प्राप्त होती है और मुख कान्तिमान होता है।

७. बल, वर्ण, पुष्टि और अग्नि की दीप्ति के लिए घृत, मिश्री और दूध के साथ सेवन करें। महत्वपूर्ण है।

८. पुराना नजला, पुरानी खांसी में यह रस कटेरी के स्वरस और दूध के साथ लेने से शीघ्र लाभ करता है। काली खाँसी में शतप्रतिशत सफल है।

३. तृतीय त्रैलोक्य चिन्तामणि रस

यह शास्त्रीय सिद्ध प्रयोग है। इसका उल्लेख भैषज्य रत्नावली आदि ग्रंथों में मिलता है। इसका विधान ज्वराधिकार में किया गया है। यह प्रथम कहे गये दोनों योगों से विशेष योग है और अधिक महत्वपूर्ण है।

घटक द्रव्य—इस तृतीय त्रैलोक्य चिन्तामणि रस के निर्माण के लिए निम्नलिखित द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है।

पारद भस्म ३ भाग, नागभस्म २ भाग, विष ६ भाग, हरताल वर्की, गोदन्ती भस्म, अभ्रक भस्म, तूतिया भस्म, मनशिला भस्म, गंधक शुद्ध, सुहागा शुद्ध १-१ भाग।

विधि—इन सब द्रव्यों को खरल में घोटकर एकरूप बनाकर बाद में जमालगोटा, धतूरा, दन्ती, सफेद कन्नेर, कलिहारी, पलाश की जड़ इनके प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ में सात-सात दिन तक भावना देकर चित्रकमूल क्वाथ, आर्द्रक स्वरस, मछली, भैंसा, मोर, बकरा, वराह, दुमुही-सांप इनके पित्त के साथ १०-१० दिन तक मर्दन करके २-२ चावल प्रमाण की वटियाँ बनालें और छाया में सुखाकर शीशी में रख लें।

सेवन विधि—

इस रस की एक-एक गोली नारियल के पानी के साथ खाकर ऊपर से पान चबाना चाहिए। सेवन करने वाले को चाहिए कि वह शीतल पदार्थों का ही प्रयोग करे। तिल के तैल की मालिश करके उसे स्नान करना चाहिए। भोजन में उसे घृत, मछली, खट्टी दही, पुराने चावल यथाशक्ति खाने चाहिए।

विशेष वक्तव्य—इस तृतीय त्रैलोक्य चिन्तामणि रस के निर्माण में कुछ दिक्कतें आ सकती हैं, किन्तु प्रयास करने से सब कार्य सिद्ध होते हैं। ऐसा अनुभव किया जा चुका है।

सभी प्रकार के ज्वरों में इसका सफल प्रयोग होता है।

४. चतुर्थ त्रैलोक्य चिंतामणि रस

यह रस अब तक कहे गये तीनों प्रकार के प्रयोगों से भी अति श्रेष्ठ है। यह शास्त्रीय प्रयोग है। अनेक रस ग्रंथों में यह रसायन के प्रकरण में पठित है और अनेक ग्रन्थों में यह प्रयोग क्षयाधिकार में पठित है। परिश्रम साध्य योग है, किन्तु इन गुणों पर कोई सन्देह करना एक प्रकार से पाप कर्म ही होगा। यह प्रयोग रस शास्त्रों में सर्वाधिक संख्या में पठित है। लगभग सोलह ग्रन्थों में यह नुस्खा इस लेख के लेखक ने भली प्रकार पढ़ा है और गम्भीरता से मनन भी किया है। अधिक समय एवं धनव्यय करके इस प्रयोग के सत्यासत्य का निर्णय भी किया गया है। निःसंदेह इस प्रयोग के रहने से रस शास्त्र पृथ्वी पर सर्वाधिक प्रतिष्ठा सम्पन्न है।

घटक द्रव्य—इस चतुर्थ त्रैलोक्य चिन्तामणि रस के निर्माण में निम्नलिखित प्रयोग द्रव्य पड़ते हैं। यह प्रयोग रस योग सागर में वर्णित है—

पारद भस्म, अभ्रक भस्म, सुवर्ण भस्म, रजत भस्म, ताम्रभस्म, हरिद्रा भस्म, मनःशिला भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, शुद्ध गंधक, प्रवाल पिष्टी, लोहभस्म, मोती पिष्टी, शंख भस्म, हरताल वर्की भस्म प्रत्येक समान भाग लें।

विधि—सब द्रव्यों को खरल में डाल कर द्विगुण चित्रक के क्वाथ से सात दिन तक दृढ़ मर्दन करें। तदनन्तर तीन-तीन दिन तक संभालू के रस, सूरण स्वरस, थूहर

स्वरस की भावना देकर इस सारे कल्क को पीली कौड़ियों में भरकर अर्क दुग्ध में सुहागा को खरल करके उससे इन पीली कौड़ियों का मुख बन्द करके इनको एक दृढ़ मिट्टी के पात्र में भरकर, मजबूत ढक्कन लगाकर फिर अर्क दुग्ध में घुटे हुए सुहागे से ही इस पात्र के मुख की दृढ संधिबन्ध करके, क्रमशः सुखा-सुखा कर सात बार कपरौटी करें। तदनन्तर गजपुट की आँच देवें। तदनन्तर स्वांगशीत होने पर निकाल कर सारे द्रव्य को पुनः खरल में डालें और इसके बराबर तोल में पारद भस्म तथा उसकी भी आधी वैक्रान्त भस्म मिलाकर सहिजने की जड की तथा चित्रक मूल स्वरस की २१-२१ भावनायें दे डालें। पुनः अदरख के रस, जम्मीरी रस, भांग स्वरस, बिजौरा स्वरस इनकी प्रत्येक की ७-७ भावनायें दे डालें। फिर सुखा लें, तत्पश्चात् इसको तोलें। इस तोल का चतुर्थांश भुना सुहागा, इसका भी चतुर्थांश शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण, काली मिर्च, सौंठ, हींग, हरड़ और जायफल का चूर्ण मिला दें, फिर इस सम्पूर्ण मात्रा का भी चतुर्थांश शुद्ध वत्सनाभ पुनः मिलावें और फिर कस्तूरी जल, बिजौरा रस और अदरख रस की १-१ भावना देकर साढ़े चार रत्ती की गोलियां बनाकर छाया-शुष्क कर लें और शीशी में रखलें।

सेवन विधि—इस चतुर्थ त्रैलोक्य चिन्तामणि रस की एक-एक गोली रोगानुसार अनुपान के साथ देने से समस्त वात रोग, आमवात, ज्वर, मन्दाग्नि, कृमिरोग, श्वास नया पुराना, शूल रोग, वातरक्त, रक्तपित्त, क्षीणता, कास, क्षयरोग, कफरोग, उरःक्षत, अजीर्ण, प्रमेह, कुष्ठ, अतिसार, पाण्डुरोग, ग्रहणी रोग, मुखरोग, ओष्ठरोग, बवासीर दोनों ही प्रकार की, खञ्जता (लंगड़ापन), उरुस्तम्भ, कर्णरोग, शिरोरोगों को समूल नष्ट करता है।

हमारा विशेष अनुभव—हमने इस चतुर्थ त्रैलोक्य चिन्तामणि रस के निर्माण में पर्याप्त कठिनता का स्वयं अनुभव किया था। इस योग में पड़ने वाले द्रव्यों में भी बहुत कुछ जटिलता सी अनुभव की गई थी। भावना आदि की इस योग की प्रक्रिया ने भी हमें पर्याप्त परेशान किया था। इसलिए हमने कई विद्वज्जनों एवं वैद्यक विद्या के अनुभवी चिकित्सकों के साथ परामर्श करके इस योग में कुछ परिवर्तन किया और वह परिवर्तन भगवान धन्वन्तरि की असीम कृपा से पूर्ण सफल रहा है। ज्यों का त्यों परिवर्तन के साथ योग निम्न प्रकार से है—

पारद भस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्ण भस्म, रजत भस्म, ताम्र भस्म, वैक्रान्त भस्म, मनःशिला, स्वर्ण माक्षिक भस्म, शुद्ध गंधक, प्रवालपिष्टी, लोह भस्म, मोतीपिष्टी, शंखभस्म, हरताल पत्र भस्म प्रत्येक समान भाग।

सबको खरल में डालकर एक जान करलें फिर कुल नुस्खे का सातवां भाग शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण मिलादें और चित्रक के द्विगुण काढ़े से मर्दन करके पतली-पतली पांच के सिक्के के तुल्य टिकिया बनालें और सुखाकर सम्पुट में बन्द करके उसको भी लवण यंत्र में स्थापित करके तीन दिन व रात प्रखर अग्नि देवें। स्वांगशीत होने पर निकाल कर खरल में डालें और उसमें सौंठ, हींग, हरड़, जायफल का सोलहवां भाग (कुल नुस्खे का) मिलाकर खूब घोटें और फिर एक भावना अदरख के रस की दूसरी भावना कस्तूरी के पानी की देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें। छाया में सुखालें। अब इन गोलियों को प्रत्येक रोग के आयुर्वेद में कथित अनुपान के साथ सेवन कराने से निश्चय ही लाभ होता है यह ध्रुवसत्य है।

—कवि० श्री बी. एस. प्रेमी एम.ए.एम.एस.
ए२/८ तिब्बिया कालेज, करौल बाग, नई दिल्ली-५

कासकर्तरी गुटिका

ग्रंथ सन्दर्भ—भा. भै. र., भै. र. कासरोगाधिकम्

रंगं कृष्णाऽभया क्षारं रूपभार्गी क्रमोत्तरा।
तत्सम खदिरं सारं बबूल क्वाथ भावितम्॥
एक विंशति वारांश्च मधुनाऽक्ष मिति गुटी।
कासं श्वास क्षय हिक्कां हन्त्येषा कासकर्त्तरी॥

अर्थात्—बंग भस्म १ भाग, पीपल छोटी २ भाग, हरड़ छिल्का ३ भाग, यवक्षार ४ भाग, अडूसा ५ भाग, भारंगी ६ भाग, खैरसार (कत्था उत्तम) २१ भाग इनका चूर्ण कर २१ भावना बबूल की छाल के क्वाथ की देकर उसमें किंचित् मधु मिलाकर वटी करें। श्वास, कास, हिक्का में चूसने से गले के विकार दूर होकर उक्त रोग भी नष्ट होंगे। हमारी सम्मति है कि इसमें १ भाग पिपरमेंट भी मिला लिया जाय तो अधिक उत्तम कार्य करती है।

—वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त बी. आई. एम.
५८/६८, नीलवाली गली, कानपुर-१

कफ कर्तरी

वैद्य श्री मोहनलाल गुप्त बी.ए., आयु. रत्न

ग्रन्थ निर्देश—आरोग्य प्रकाश।

योग—जावित्री २ तोला, छोटी इलायची २ तोला, पुराना बांस ४ तोला, पुनर्नवा मूल ४ तोला, कण्टकारी फल २ तोला, गांजे की भस्म २ तोला (गांजे को पीकर जो राख डाल देते हैं वह)।

निर्माण विधि—लोहे की कढ़ाई में एक किलो सूखा अपामार्ग (आधाझाड़ा) विछाकर उस पर योग में लिखी ६ दवाइयाँ डालकर १ किलो सूखा अपामार्ग और डालकर अग्नि लगा दें तथा बांस के डण्डे से आग को इधर-उधर करके अच्छी तरह जला दें ताकि कोई कोयला न रहने पावे। यदि कोई दवा ठीक तरह से न जली हो तो और अपामार्ग देकर अच्छी तरह भस्म कर लें। फिर सब चीजों को महीन पीस लो और शीशी में भर दो। बस कफ कर्तरी औषधि तैयार है।

योग के गुण—

जिस प्रकार कैंची कपड़े को काटती है उसी प्रकार यह दवा कफ को काटती है। कफ निष्कासन करने का योग का मुख्य गुण है।

मात्रा—२ रत्ती दवा १/२ या १ नागरवेल के लगे पान में डालकर दिन में दो वार।

उपयोग—इसका प्रयोग खास करके दमा, श्वास के रोगी पर किया जाता है। जिसका कफ कष्ट के साथ निकलता है तथा सांस लेने में दर्द होता है। दमा की तीव्र अवस्था में जव रोगी बैठा ही रहता है, बोलना, चलना, सोना और नींद आना कठिन होता है। ऐसे रोगी को दो-तीन खुराक खाते-खाते दमा का दौरा शान्त हो जायगा तथा दवा के प्रभाव से दमा का दौरा कई वर्ष तक बन्द हो जाता है।

कफ निकलने से रोगी कमजोर और दुर्बल अवश्य हो जाता है। ऐसे समय में रोगी को ताकत की दवा (विटामिन्स) जरूर देनी चाहिए।

सावधानी—पान को चवाकर रस निगलना चाहिए वाहर न थूकें तथा शीतल हवा से वचना चाहिए।

पथ्यापथ्य—शीतल, गरिष्ठ, चिकने पदार्थ (घृत तेल-युक्त), चावल, आलू, खटाई आदि नहीं खायें।

—वैद्य श्री मोहनलाल गुप्त बी.ए.,बी.टी. आयुर्वेद रत्न
झाड़मद्दू, जि. राजगढ़ (व्यावरा) म. प्र.

चिंचाभल्लातक वटी

श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव वैद्य

ग्रन्थ—र. तं. सा. द्वि. खं.।

शुद्ध भिलावा, पकी इमली बीज रहित दोनों समान भाग लेकर खूब खरल करें। गोलियां बनाने लायक गीलापन आ जाता है। यदि न वन सकें तो संभालू स्वरस या इमली पत्र स्वरस कुछ खरलकर ४-४ रत्ती की गोलियां वना रखें।

मात्रादि—१-१ गोली प्याज का रस, मठा, दूध, संभालू स्वरस या जल से निगलवा दें, दांतों से चवावें नहीं। दिन में २-३ वार, विषूची में ५-५ मिनट पर दें।

उपयोग—

इसके प्रयोग से सर्व कफज विकार शूल, स्थूलता, कीटाणु प्रकोप, विषूची, अजीर्ण, आध्यमान, आनाह, अधोवायु रोध, अर्दित, अर्बुद, अतिसार, संग्रहणी, फिरंग रोग, उपदंशज सन्धिवात, आमवात, चर्मरोग, मन्यास्तम्भ (गर्दन जकड़ जाना), कटिग्रह (कमर जकड़ जाना), गृध्रसी, पक्षाघात, वातनाड़ीशूल, शिरागतवायु आदि रोग दूर हो जाते हैं। कठिन रोगों में वर्धनक्रम से भी दिया जाता है। अर्थात् १-१ गोली वढ़ाते हुए ५-६ दिनों तक ले जाय फिर ३-४ दिन उतनी ही देते रहें फिर १-१ कर घटा दें। इस प्रकार रोग को उग्रता के अनुसार ५० या १०० गोलियां तक खिलादें। विसूचिका में यदि प्रथम दिन ही

—शेषांश पृष्ठ ३९६ पर देखें।
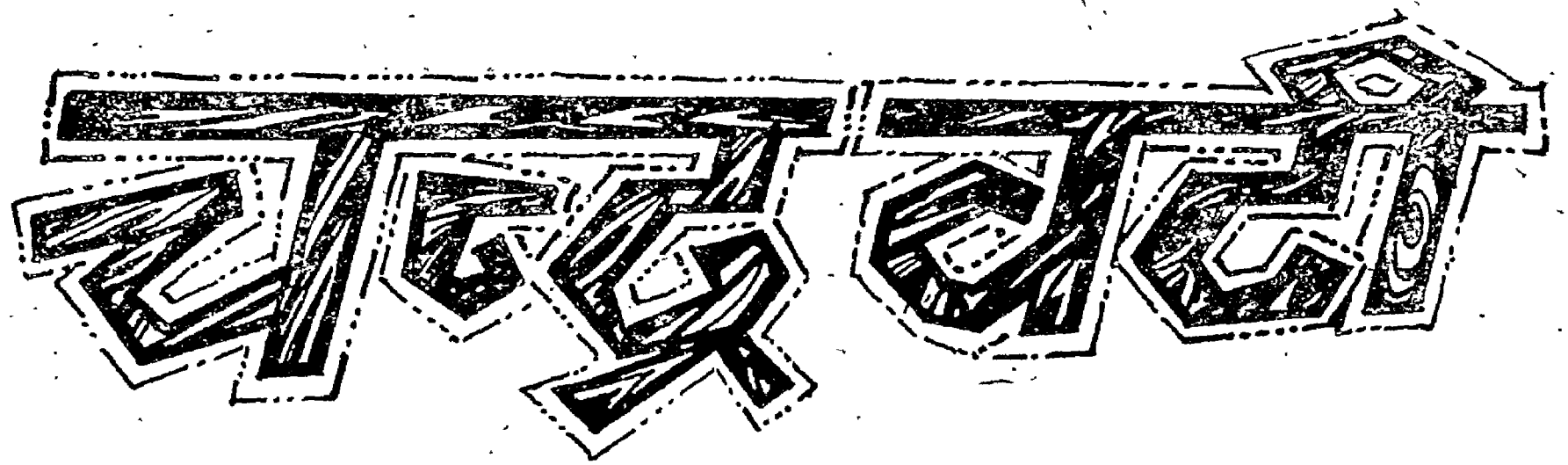
वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त (विशेष सम्पादक)

ग्रंथ—सिद्ध भैषज्य मंजूषा ।

चन्द्रश्चन्दन मैलेयं रक्तमर्काङ्घ्रिवल्कम् ।
मखतूम-मुरेमकी-पपीता जदवारकम् ॥
दरूनज अकरबी तता जहरमोहरा ।
नादेयं नारिकेलश्च सर्वमेतद्विचूर्णितम् ॥
विभाव्य तरुणी तोयैः कृता माषमितावटी ।
तैरेव भक्षित पोढा मन्थ्याङ्घ्रिकमुल्वणम् ॥

घटक—(१) भीमसेनी कपूर (Camphor) (२) सफेद चन्दन, (३) छोटी इलायची के बीच, (४) केशर (Crocus Sativa), (५) अर्कमूल छाल, (६) मखतूम, (७) मुरेमकी, (८) जदवार (निर्विसी), (९) दरुजन अकरवी (१०) जहरमोहरा खताई पिष्टी; (११) पपीता, (१२) दरयायी नारियल की गिरी ।

निर्माण विधि—चन्दन को गुलाव जलाव जल में घिसे फिर कासे की १ कटोरी में संचित करें और धूप में सुखा लें। इसमें से १ तोला रज लेलें। इसी प्रकार दरयायी नारियल की भी रज बना लें। केशर को गुलाव जल में प्रथम घोटें। शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण कर फिर सबको गुलाव जल में डालकर ४-५ घण्टे घुटाई करें। फिर ४-४ रत्ती की वटियां बना रखें।

मात्रादि—२-२ गोलियां अर्क गुलाव, अर्क गावजवां २-२ तोला से निगलवाते रहें ।

द्रव्यों का विशेष वर्णन

इसे यूनानी ग्रन्थकारों ने तो व्यवहृत किया ही था सर्व प्रथम हमने धन्वन्तरि अङ्क १/२ वर्ष १६ अनुभवाङ्क में प्लेग के विषय में श्री गुणप्रकाश जी वैद्य शास्त्री ने इस पर प्रकाश डाला। उन दिनों कानपुर में भी वड़ी जोरों की प्लेग फैली थी। इस रोग की चिकित्सकों के पास कोई कारगर औषधि न थी। एलोपैथिक वालों के लिए उसी समय पेनासिलिन चली थी उसका उपयोग किया जाता था २-४ घण्टे में ८ इन्जेक्शन लगते थे प्रत्येक जिसे पेनसिलिन का इन्जेक्शन १०) रु० में उपलब्ध हो जाय, वह भाग्यशाली समझा जाता था। चूंकि उस समय यह इंगलैण्ड से आती थी। पीले द्रव रूप में वह भी शीशी वर्फ में रहती थी। उस समय हमने उक्त चन्दनादि वटी वनाकर उपयोग में लेना उपयुक्त समझा। इस वटी का यह प्रभाव देखा कि २-४ गोली में ज्वर और गिली ग्रन्थि दूर होकर रोग दूर हो जाता है। उस समय उसके प्रभाव को देखकर वहुत बड़ा आश्चर्य हुआ। भगवान की दया से उस समय अच्छी ख्याति मिली।

उक्त द्रव्यों के सम्बन्ध में हमने खोज की, उस समय यूनानी द्रव्य किराने वाले-पंसारी से उपलब्ध हो जाती थी। उनके कई द्रव्य इतने सख्त थे, कि उनका चूर्ण वनना कठिन ही नही, सम्भव न था, अतः उन्हें गुलाव जल के साथ हर्षा-(चन्दन घिसने का पत्थर व चकला पत्थर का) पर घिस कर चूर्ण व पिष्टी वनाई गई।

द्रव्य, उनकी पहिचान तथा गुण

कपूर—यह सुप्रसिद्ध द्रव्य है। इस योग में भीमसेनी कपूर लिया जाय तो अधिक उत्तम रहता है। यह हृदो-

रोजक, विषनाशक तथा सभी क्रियाओं पर अपना प्रभाव पहले रखता है। और पूर्व क्रिया को दबा देता है।

अर्क मूलत्वक—पुराने अकोड़ा (आक) की जड़ है। बालू या रेत दूर कर, पुराने वृक्ष की जड़ चैत व वैसाख मास खोदकर निकाल लें, भली प्रकार धोकर छाया में सुखाकर रखें, बाद में चाकू से खुरचकर ऊपर का गूदा छाल हटा दें और अन्तरछाल को उतारकर छाया शुष्क महीन चूर्ण कर लें। यह अत्यन्त उपयोगी वस्तु है। इसके गुण धर्म का विस्तार से यहाँ प्रकाश हमें अभीष्ट नहीं है। यही बताना है कि यह प्लेग में अति उत्तम उपयोगी है।

मखतून—यह यूनानी वैद्यक का एक द्रव्य है जो प्लेग में भी अत्यन्त उपयोगी है।

मुरमकी—यह भी यूनानी वैद्यक का ही एक द्रव्य है।

पपीता—यह भी यूनानी द्रव्य है, आयुर्वेद में इसका उपयोग नहीं है। होम्योपैथिक में इसका उत्तम उपयोग है इसे अंग्रेजी में इग्नेशियसबीन (Ignatius been) तथा लेटिन में (Ignatia Amara) व स्टिक्नोस इग्नेश-आई कहते हैं। होम्योपैथिक में Ignatia इग्नेशिया के नाम से प्रसिद्ध है। यूनानी तथा होम्योपैथिक में इसका सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। यूनानी हकीम हवा, पानी में जहरीला असर दूर करने के लिए इसका उपयोग करते हैं। प्लेग की उत्तम दवा मानी जाती है। इसी प्रकार सर्प विष पर भी इसका उपयोग किया जाता है। हैजा, चेचक, सूजन, आतशक, रक्तविकार, मूर्च्छा, विष तथा अनेक प्रकार के वात विकारों में भी उपयोगी है। आयुर्वेदज्ञों को भी इसका उपयोग करना चाहिए।

यह द्रव्य कुचला कुल का है। यह एक वृक्ष के फल का बीज है, बहुत रक्त भूसर वर्ण का बड़े बेर के बराबर होता है, तोड़ने से सहज टूटता नहीं, इसे गुलाब जल के साथ घिसकर चूर्ण बना लेना चाहिए। इसे प्लेग के दिनों में शरीर पर धारण करते थे। डा० महीन्द्रीलाल ने इसकी अत्यन्त प्रशंसा अपनी पुस्तक में की है। इस बीज का तोल प्रमाण ६ मासे, वर्ण स्याही मायल होता है। यह अत्यन्त कटु स्वाद वाला होता है। ऊष्मा, रूक्ष, उष्णवीर्य, सब प्रकार के विषों का निवारक, शोथहर, कफहर, वातानुलोमक, शूलहर, आर्तवजनक, वाजीकर तथा अतिसार, वमन, विसूचिका, प्लेग, कफजकास, श्वास, जलोदर, वातवेदना, आमवात, अर्श, मूर्च्छा आदि में प्रयुक्त होता है। मात्रा—½ रत्ती।

सिद्ध भैषज्य मंजूषाकार और उसके टीकाकार जिन दो विद्वानों ने, पपीता से "एरण्ड खरबूजा के बीज" को ग्रहण किया है। उसी के अनुसार हमारे चिर परिचित मित्र श्री गुण प्रकाश जी शर्मा वैद्य शास्त्री, नहटौर (बिजनौर) निवासी ने भी किया था, और अपने अनुभव की लम्बी चौड़ी और यथार्थ व्याख्या धन्वन्तरि के अनुभवाङ्क भाग १ अङ्क १/२ सन् १९४१, पृ० ६९ पर की है। पपीते को व्रजमोगरा भी कहते हैं। उसी का प्रयोग करना चाहिए था किन्तु इसकी जानकारी उन्हें न होने से "एरण्ड खरबूजा" जिसे "पपीता" कहते हैं उसी के बीज लेकर प्रयोग में लाये।

जदवार—निर्विषी को कहते हैं असली निर्विषी नैपाल से आती थी, यह वत्सनाभ कुल की, अनेक शाखा युक्त, वर्षायु या वर्षाप्रक्षुप के रूप में वसन्त के बाद सूखकर पुनः वर्षा में उगती है। खड़े, कोमल, चिकने ऊपर की ओर रोमश दो तीन फुट ऊँचे, नागरमोथा के क्षुप जैसे होते हैं पत्र धनियां के पत्र जैसे संख्या में ५ से ९ तक पक्षाकार भागों में विभक्त तथा मूलोद्भव पत्र या पत्रक का ऊपरी भाग हरित पीत वर्ण का, पृष्ठ भाग पीताभ एवं छोटे-छोटे तिल जैसे चिह्नों से युक्त बहुत लम्बे चौड़े होते हैं।

पुष्प—वसन्त ऋतु में अल्प संख्या में नीलाभ रोमश इसका कन्द ही काम में लाया जाता है जो मटमैले या श्यामवर्ण के, भीतर से लालिमा युक्त, नीले गुच्छाकार, स्वाद में प्रथम मधुर बाद में तिक्त होता है। उसे जदवार खताई कहते हैं। यह खत (रकेताक) की पर्वत माला में तिब्बत में बहुतायत से पैदा होता है।

बाजार में मिलने वाली में बहुत मिलावट होती है। जो लाभ के बदले हानिकर वस्तु होती है। इसकी परीक्षा के लिए इसे पानी में भिगोकर कपड़े पर रगड़ने से यदि कपड़े पर काला दाग पड़े तथा तोड़ने पर भीतर श्वेत निकले उसे नकली समझें।

इसके गुण धर्म—लघु, रूक्ष, विपाक में कटु, उष्णवीर्य, त्रिदोषनाशक, दीपन, पाचन, पित्तासारक, अनुलोमन, लेखन, मूत्रल, विषघ्न, वेदनास्थापक, हृदय, कफघ्न, उत्तेजक, कटु, पौष्टिक, आर्त्तवजनक, नाड़ियों को बलप्रद, वातहर, ज्वरघ्न,

शोथहर व रक्त शोधक है। इसके विस्तृत गुणों को वनौषधि विशेषांक तीसरे भाग में पृ० १६५-१६६ पर देखें।

दरुनज अकरबी (Doronicum Roylie)—यह भृङ्गराज कुल का पौधा होता है। रूमी और फारसी भेद से दो प्रकार की होती है। रूमी जो कड़वी और सुगन्धित होती है वह उत्तम मानी जाती है।

भारत में इसके पौधे पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से गढ़वाल तक १० हजार फीट की ऊंचाई पर पैदा होते हैं। तथापि दूसरी जड़ें एशिया से यहाँ आकर बाजारों में बिकती हैं और भी कई स्थानों में पैदा होती है।

इसके गुणधर्म तिक्त, उष्ण, रूक्ष, पौष्टिक, हृद्य, दीपन, कफवात शमन प्लेगनाशक, बुद्धि शक्तिवर्द्धक, गर्भाशय एवं गर्भ रक्षक, उदर वातहर, वेदना नियामक, विषनाशक है। इसके अतिरिक्त बहुत से रोगों में भी उपयोगी है। प्लेग के निवारण की इसमें अद्भुत शक्ति है। इसके सेवन करने पर प्लेग का आक्रमण नहीं होता। स्वामी भागीरथ जी इसे प्लेगनाशनी बूटी कहते थे।

जहरमोहरा खताई—यह एक स्निग्ध (चिकना), हलका, पीतहरित+श्वेत पत्थर है। यह चीन, तिब्बत, खेतान, नेपाल आदि पहाड़ी स्थानों में मिलता है।

रासायनिक संगठन—यह मैग्नीशियम और सिलिका का यौगिक है।

शोधन—जहरमोहरा को तपा-तपाकर २० बार गोदूध में बुझा लेते हैं।

पहचान—यदि इस पर हल्दी का घर्षण किया जाता है तो चूर्ण सुर्ख रंग का हो जाता है और यदि इसे धागे से बांधकर आग से स्पर्श कराया जाय तो धागा नहीं जलता। इसे गुलाब जल के साथ पीसकर पिष्टी बनाकर उपयोग में लाया जाता है।

गुणधर्म—यह रूक्ष, शीतल, मेध्य, हृद्य और विषघ्न है। हृदय, मस्तिष्क, यकृत आदि उत्तमांगों को बल प्रदान करता है तथा ओजवर्धक है। हृदय व विष विकार, वमन, बालातिसार, अजीर्ण, विशूचिका, आन्त्रिक ज्वर, दाह इत्यादि रोगों में उपयोगी है।

दरयायी नारियल (Lodoicea Secheuarum)—इसके वृक्ष नारियल के वृक्ष जैसे किन्तु उनसे बहुत ऊँचे, सीधे, ताड़ वृक्ष जैसे ५५-१०० फुट ऊँचे, पत्र नारियल वृक्षपत्र जैसे खूब बड़े-बड़े होते हैं। इसके फल आकृति में नारियल फल जैसे किन्तु उससे अत्यधिक बड़े, लम्बे, जुड़वा या दो खंड वाले, बहुत बड़े, स्थूल, भारी लगभग २०-२५ सेर वजन तक के होते हैं। फलों का ऊपरी कवच भी बहुत कड़ा होता है। इसे तोड़ने पर भीतर जो गोला, गिरी निकलती है वह स्निग्ध या तैल का अंश इसमें नहीं होता। यह गोला गिरी सूखने पर पत्थर जैसा कठोर कड़ा हो जाता है। इसके कटे हुए श्वेत रंग के बेडौल टुकड़े बाजार में मिलते हैं। गिरी के यह टुकड़े भी बहुत कड़े तथा २ अंगुल तक मुटाई लिए होते हैं। इसे औषधि कार्य हेतु रेती से रेत कर या घिसकर चूर्ण बनाया जाता है। इमामदस्ते में इसका चूर्ण बनाना सरल नहीं होता। फल के ऊपरी कवच के कमण्डल बनाये जाते हैं। उस कमण्डल को साधु लोगों के पास देखा होगा। दरियाई नारियल की गिरी ही उपयोग में लाई जाती है।

गुणधर्म—लघु, रूक्ष, कटु, मधुर, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, कफवात नाशक, तृष्णा निग्रहण, वामक, हृदयोत्तेजक, शोथहर, वेदना स्थापक, विषघ्न, मूत्रगत शर्करा को कम करता है। शीत शमन तथा प्राकृत देहाग्नि संरक्षक है। अजीर्ण, अतिसार, विशूचिका, मधुमेह, शीतज्वर आदि में उपयोगी है। इसकी पुरानी गिरी का उपयोग हितकर नहीं है।

चन्द्रवटी के उपयोग—

इस वटी के प्रयोग से हृदय को बल मिलता है। घबराहट और भय का नाम मिट जाता है। कुछ पसीना आकर ज्वर १-२ दिनों के सेवन मात्र से दूर हो जाता है। यह वात पित्त कफ तीनों के प्रकोप में लाभ करती है। प्लेग के दिनों में इसका प्रयोग करके देखा है और प्लेग की भयंकरता में भी इससे शतप्रतिशत लाभ प्राप्त हुआ है और हमने इसका उपयोग प्लेग रोग में ही किया है। १-२ गोलियों से ही ज्वर निवारण हो जाता है और १-२ दिनों में गिल्टियाँ भी दूर हो गई हैं। हमारी सम्मति है कि संक्रामक ज्वर एवं अन्य रोग जैसे-हैजा, प्लेग, फ्लू तथा अन्य विषैले रोगों में इसका उपयोग कर देखना चाहिए।

—वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त (विशेष सम्पादक)
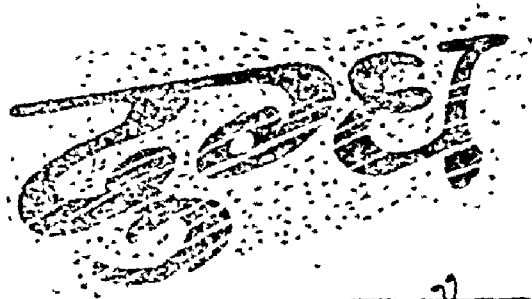
डा० दौलत राम शास्त्री

अमृतं भानुभागं च तत्सममहिफेनकम् ।
तदर्धं कान्तालौहं च सर्वाद्द्विगुणमभ्रकम् ॥
दुग्धेन वटिकां कृत्वा द्विगुंजां च प्रमाणतः
दुग्धेन च सदा भक्ष्या प्रातःकाले विशेषतः ॥
ग्रहणीं चिरजां हन्ति सशोथं विषमज्वरम् ।
अग्निं च कुरुते दीप्तमम्लपित्तं नियच्छत्यलम् ॥
—भैषज्य रत्नावली ग्रहणीरोगाधिकार ५८१-५८३

अर्थ—शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध अफीम १२-१२ भाग, उत्तम कान्तालौह भस्म ६ भाग और इन सबसे दूनी अर्थात् ६० भाग उत्तम अभ्रक भस्म को दूध के साथ घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। इसे प्रातःकाल दूध के साथ लेना चाहिए । यह शोथयुक्त पुराने ग्रहणी रोग, विषम ज्वर और अम्लपित्त को नष्ट करती तथा अग्नि को प्रदीप्त करती है।

संग्रहणी में तक्रकल्प आयुर्वेद की श्रेष्ठतम चिकित्सा है जिसकी श्रेष्ठता को बड़े-बड़े ऐलोपैथ तक स्वीकार करते हैं। किन्तु जिन रोगियों को संग्रहणी के साथ-साथ शोथ और ज्वर भी हो उन्हें मठा नुकसान करता है। शीत ऋतु में तथा कफ प्रकृति वाले रोगियों को भी मठा अनुकूल नहीं रहता । ऐसी हालत में यह दुग्ध वटी ही काम देती है। इसकी १ गोली सुबह और १ गोली शाम को उबालकर शीतल किये हुए तथा शक्कर मिश्रित दूध के साथ दी जाती है। आहार में केवल दूध देना सर्वोत्तम रहता है। आवश्यक होने पर दूध के साथ पुराने चावल या कोदों का भात दिया जा सकता है। दूध ऊँटनी का सर्वोत्तम है। वह न मिले तो बकरी का और वह भी न मिले तो गाय का देना चाहिए। भैंस का दूध देना ठीक नहीं है। नमक, जल और अन्य खाद्य पदार्थ एकदम बन्द रखना चाहिए। प्यास लगने पर दूध ही देना चाहिए। जिन्हें चाय की आदत है उन्हें बिना पानी पिलाये सिर्फ दूध से चाय बनाकर दी जा सकती है। इस प्रकार चिकित्सा करने पर कुछ ही दिनों में लाभ होने लगता है।

जब शोथ और ज्वर बिलकुल न रह जावे, समय पर अच्छी तरह पचा हुआ, कफ फेनादि रहित, बंधा मल आने लगे, पेट में गुड़गुड़ाहट न रहे, खूब भूख लगने लगे अच्छी नींद आने लगे, अपानवायु शुद्ध निकलने लगे, चेहरे पर रौनक और शरीर में बल प्रतीत होने तब रोगी को रोगमुक्त समझें। इस समय थोड़ा-थोड़ा अन्य आहार देना और दूध कम करना शुरू करें। धीरे-धीरे केवल सुबह शाम दूध पर ले आवें और भोजन में सबकुछ खाने की इजाजत दें। जब रोगी सब कुछ पचाने लगे तब धीरे-धीरे औषधि कम करते हुए अन्त में बन्द कर दें।

इस रीति से मैंने कई असाध्य रोगियों को जीवनदान दिया है।

कुछ रोगियों को कब्ज और अतिसार के आक्रमण पारी-पारी से होते हैं। उन्हें एरण्ड तैल से अच्छी तरह विरेचन कराने के बाद चिकित्सा शुरू करनी चाहिए।

कुछ वैद्य अतिसार और प्रवाहिका में भी इसका प्रयोग करते हैं। २-४ बार मैंने भी किया है और अच्छे परिणाम पाये हैं।

कुछ रोगी ऐसे भी मिलते हैं जिनके पेट में कोई खास गड़बड़ी न होकर, केवल इतना विकार रहता है कि खाया हुआ पदार्थ बहुत तेजी से यात्रा करके जल्द ही गुदमार्ग से निकल जाता है—पुरस्सरणाधिक्य। ऐसे लोगों का आहार पूर्णरूप से पाचित नहीं हो पाता जिससे उन्हें उतनी शक्ति नहीं मिल पाती जितनी वास्तव में मिलनी चाहिये। ऐसे लोग बीमार जैसे न होकर साधारण स्वस्थ और किंचित कमजोर दिखते हैं। ऐसे लोगों के लिये दुग्धवटी अमृत तुल्य है; हमेशा के लिये जीवन सुधर जाता है।

अमृतं सूर्यगुंजं स्यादहिफेनं तथैव च ।
पंचरत्तिक लौहं च षष्ठिरत्तिकमभ्रकम् ॥
दुग्धे गुंजाप्रमाणा हि वटी कार्या भिषग्विदा ।

दुग्धानुपानं दुग्धंश्च भोजनं सर्वथा हितम् ॥
मन्दाग्नि पाण्डुरोगं च नाम्ना दुग्धवटी परा ।
वर्जयेल्लवणं वारि व्याधितःशेषतावधि ॥

(भैषज्य रत्नावली शोथाधिकार ११८-१२० और रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह)

अर्थ—शुद्ध बच्छनाग १२ रत्ती, शुद्ध अफीम १२ रत्ती, उत्तम लोह भस्म ५ रत्ती और उत्तम अभ्रक भस्म ६० रत्ती को दूध के साथ घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियां विद्वान् वैद्य बनावे। इस गोली का अनुपान दूध है और भोजन में केवल दूध या दूध-भात लेना हितकारक है। यह श्रेष्ठ दुग्धवटी मन्दाग्नि और पाण्डु रोग को नष्ट करती है। जब तक रोग पूरी तरह नष्ट न हो जावे, तब तक नमक और पानी वर्जित है।

यह दुग्धवटी लगभग पहली के समान ही है, अन्तर यही है कि इसमें ६ भाग के बदले ५ भाग लोह भस्म है और २ रत्ती के बदले १ रत्ती की गोली बनानी है। गुण लगभग समान हैं।

रसं गन्धं विषं ताम्रं गगनं लौह तालकम् ।
हिंगुलं मोचरसम्हिफेनं समांशकम् ॥
यवार्द्धवटिका कार्या दुग्धेन सह वापयेत् ।
गोदुग्धं सर्वदा पथ्यं शोधितं सैन्धवं जलम् ॥
हन्ति शोथं तथात्युग्रं ग्रहणीं च सुदारुणम् ।
ज्वरअष्टविधं हन्ति सद्य एव न संशयः ॥

—भै०र० ग्रहणीरोगाधिकार ५८४—५८६

अर्थ—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, उत्तम ताम्र भस्म, उत्तम अभ्रक भस्म, उत्तम लोह भस्म, शुद्ध वर्की हरताल, शुद्ध हिंगुल, मोचरस और शुद्ध अफीम बराबर बराबर लेकर (दूध के साथ घोंटकर) आधे जौ (१/६ रत्ती) के वजन की गोलियां बनावें और दूध के साथ दें। गोदुग्ध, शोधित जल और शोधित सैंधा नमक पथ्य हैं। यह दुग्धवटी अत्यन्त उग्र शोथ, अत्यन्त दारुण ग्रहणी रोग और आठ प्रकार के ज्वर को शीघ्र नष्ट करती है।

निर्माण विधि—हरताल को घोंटकर सूक्ष्म चूर्ण करके रखें। मोचरस और बच्छनाग का कपड़छन चूर्ण अलग अलग करके रखें।

पारद और गन्धक को घोंटकर निश्चन्द्र कज्जली करें। फिर उसमें थोड़ा-थोड़ा बच्छनाग डालते जावें और घोंटते जावें। बच्छनाग मिल चुकने पर थोड़ी-थोड़ी ताम्र-भस्म डालकर घोटें। इस प्रकार क्रम से १-१ द्रव्य डालें। अन्त में शुद्ध अफीम को दूध में घोलकर मिलाकर अच्छी तरह घोंटकर गोलियां बनावें।

ऐलोपैथिक मत से संग्रहणी जीवाणु-रहित होती है। चिरकारी अतिसार और प्रवाहिका जीवाणुजन्य होते हैं और इनके लक्षण भी संग्रहणी के समान होते हैं। आयुर्वेदिक पद्धति से निदान करने पर ये सब संग्रहणी ही माने जाते हैं।

इस दुग्धवटी में पारद, गन्धक, ताम्र, हरताल और हिंगुल जीवाणु नाशक द्रव्य हैं अतः यह अधिक उपयोगी हैं। जहां अन्य दुग्धवटी से लाभ न हो, वहां इसका प्रयोग करने से लाभ होता है। अन्य दुग्धवटियों के सेवन काल में जल और नमक का निषेध है किन्तु इसके सेवन काल में बहुत आवश्यक होने पर दे भी सकते हैं। जलको छानने के बाद उबालने से अथवा स्वर्ण आदि को तपाकर लाल करके बुझाने से शुद्ध होता है। सैंधव नमक को पीसकर पानी में घोलकर रख दें। मैल-कचरा नीचे बैठने पर सावधानी से ऊपर का स्वच्छ जल निथार लें। इसे औटाकर शुद्ध सैंधा-नमक प्राप्त करें।

अमृतं धूर्तबीजं च हिंगुलं च समं समम् ।
धूर्त्तपत्ररसेनैव मर्दयेद्याममात्रकम् ॥
मुद्गोपमां वटीं कृत्वा दुग्धेन सह पाययेत् ।
दुग्धेन भोजयेदन्नं वर्जयेल्लवणं जलम् ॥
शोथं नानाविधं हन्ति पाण्डुरोगं सकामलाम् ।
सेयं दुग्धवटीना ना गोपनीया प्रयत्नतः ॥

(भैषज्य रत्नावली शोथाधिकार १२१-१२३)

अर्थ—शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध धतूरे के बीज और शुद्ध हिंगुल समभाग लेकर धतूरे के पत्तों के स्वरस के साथ ३ घन्टे घटाई करके मूंग के बराबर गोलियां बनावें और दूध के साथ सेवन करावें। भोजन में दूध-भात दें। नमक और जल बन्द रखें। यह दुग्धवटी नाना प्रकार के शोथ, पाण्डु रोग और कामला को नष्ट करती है। इसे यत्न पूर्वक गुप्त रखना चाहिए। इस दुग्धवटी में अफीम नहीं हैं।

जिन्हें अफीम सुलभ नहीं है, वे इससे काम ले सकते हैं। इसमें अफीम के स्थान पर धतूरा लिया गया है। अफीम पाचित-अपाचित, सभी प्रकार के मल को रोक देती है और वायु को भी रोककर पेट फुला सकती है। यह दुर्गुण धतूरे में नहीं है, वह दीपन-पाचन करके ही मलको बांधता है। इस दृष्टि से यह दुग्धवटी विशेष गुणकारी है।

क्षीर वटी—

> गृहीत्वा दरदात्कर्षं तदर्द्धं देवपुष्पकम्।
> फणिफेनं विषं जातीफलं धुस्तूर बीजकम्॥
> सम्मर्द्य विजयाद्रावैर्मुद्गमात्रां वटीं चरेत्।
> अनुपानं प्रदातव्यं शोथे क्षीरं भिषग्वरैः॥
> ग्रहण्यां विजयाक्वाथः पथ्यं दुग्धान्नमेव हि।
> जलं च लवणं चापि वर्जनीयं विशेषत.॥
> प्रबलायामुदन्यायां सलिलं नारिकेलजम्।
> पातव्यं वटिका चैवा शोथं हन्ति न संशयः॥
> ग्रहणीऽतिसारं च ज्वरं जीर्णं निहन्ति च॥
>
> —भै. र शोथाधिकार १५०/१५३

अर्थ—शुद्ध हिंगुल २ भाग तथा लौंग, शुद्ध अफीम, शुद्ध वच्छनाग, जायफल और शुद्ध धतूरे के बीज १-१ भाग लेकर भाँग के स्वरस या अष्टमांश क्वाथ के साथ घोटकर मूँग के बराबर गोलियाँ बनावें। शोथ में दूध के अनुपान से और ग्रहणी रोग में भाँग के क्वाथ से योग्य वैद्य रोगी को यह गोली दें। पथ्य—दूध भात। जल और नमक विशेष रूप से वर्जित है। बहुत प्रबल प्यास लगने पर नारियल का पानी दिया जा सकता है। यह वटी शोथ, ग्रहणी, अतिसार और जीर्ण ज्वर को नष्ट करती है।

यह वटी भी बहुत जोरदार है। इसमें दस्त रोकने के लिए ४ महत्वपूर्ण औषधियाँ—अफीम, धतूरा, जायफल और भाँग एक साथ हैं। शेष औषधियाँ दीपन, पाचन एवं शोथ नाश के लिए हैं। यह असाध्य संग्रहणी को भी नष्ट करने वाली औषधि है। शोथ और ज्वर को भी नष्ट करती है तथा बल बढ़ाती है। जिस रोगी को ज्वर न रहकर, शरीर शीतल रहता हो उसके लिए भी हितकर है। मरणासन्न रोगी को भी जीवन देती है।

ग्रहणी में अनुपान हेतु भाँग का क्वाथ बनाते समय उतनी ही भाँग लेनी चाहिए, जितनी रोगी सह सके। पानी के बदले दूध में क्वाथ[1] बनाना अधिक अच्छा है या भांग को अच्छी तरह पीसकर दूध में घोलकर देना भी अच्छा है।

ग्रन्थकार ने इन सभी दुग्ध वटियों की मात्रा बहुत ही कम लिखी है। साथ ही दिन में एक बार ही देना काफी नहीं होता। १ से २ रत्ती और कुछ मामलों ३-४ रत्ती तक दिन में २-३ या ४ बार तक देना आवश्यक होता है। रोगी का बल, रोग का बल तथा ऋतु के अनुरूप वैद्य सोच समझकर सही मात्रा दें. तभी लाभ होता है। यह सार्वत्रिक नियम है।

—डा. श्री दौलतराम शास्त्री, १४५८ नेपियर टाउन,
मदन महल के पास, जबलपुर (म०प्र०)

पृष्ठ ३६० का शेषांश

लाभ २-३ घण्टों में न हो तो दूसरी दवा की व्यवस्था करनी चाहिए। स्थूलता में कुछ दिन ७-८ वटी तक निगलाने से २० दिनों में स्थूलता कम हो जाती है।

प्रयोग निषेध—उष्ण ऋतु अप्रेल, मई, जून, जुलाई, अगस्त सितम्बर-अक्टूबर में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए या कम करना चाहिए। शीत ऋतु में मात्रा अधिक ली जा सकती है। पित्तज रोग, आमाशयिक व्रण, अन्त्रव्रण रक्त, पित्त, रक्तातिसार प्रवाहिका, अन्त्रव्रण युक्त संग्रहणी, रक्तार्श, वृहदन्त्र शोथ, उपान्त्र शोथ आदि रोगों में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। शिशु और गर्भवती को नहीं लालमिर्च, तैल, नमक अपथ्य।

लशुन भल्लातक वटी

विधि—छिला हुआ लहसुन समभाग मिलाकर खरल करलें।

गुण—उपर्युक्त। यदि अशुद्ध भिलावा प्रयोग करें तो मात्रा आधी करके और कवच में भरकर दें। ध्यान रखें कि कवच मुख में खुले नहीं। यदि भिलावा के विकार से शरीर में शोथ या खाज होने लगे तो कुछ दिन प्रयोग बन्द कर, दूध घी या नारियल की गिरी खिलावें और नारियल के तेल की शरीर में मालिश करें। भिलावा की गोलियां बनाते समय हाथों में गिरी का तैल लगा लें। या चिमटी चम्मच से कवचों में भरें।

—श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव
पो. अरौल (कानपुर)

[1] दूध में बराबर पानी मिलाकर भांग डालकर पकावें। दूध-मात्र शेष रहने पर छानकर या बिना छाने पिलावें। चाहें तो भाँग की पोटली बनाकर इसी प्रकार पका सकते हैं।

प्रभाकर वटी

श्री डा० गजेन्द्रसिंह छौंकर ए.,एम.बी.एस.

ग्रन्थ का नाम—भैषज्य रत्नावली।

गुण—सम्पूर्ण हृदय रोगों को नष्ट करती है।

घटक—स्वर्ण माक्षिक भस्म, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, बंशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, समान भाग। अर्जुनक्वाथ की भावना।

निर्माण विधि—

सर्व प्रथम शिलाजीत को अग्नितापी या सूर्यतापी विधि से शुद्ध निर्माण कर लिया। तत्पश्चात् शिलाजीत में समभाग स्वर्ण माक्षिक, लौह भस्म, अभ्रक भस्म एवं वंशलोचन को एकत्र कर मिश्रण कर लिया।

इसके बाद अर्जुन के क्वाथ की भावना उपर्युक्त मिश्रण में लगाना प्रारम्भ किया और लगभग अर्जुन का क्वाथ इस मिश्रण में इस योग्य हो गया कि गोली बन जाये। तब १ र० से २ रत्ती या १२५ मिलीग्राम से २५० मिलीग्राम तक की गोली बनाकर धूप में सुखाकर सुरक्षित रख लें। अब प्रभाकर वटी निर्मित है।

विशेष गुण—

यह प्रभाकर वटी विशेषकर वृक्क विकार युक्त हृद् रोग में विशेष लाभ करती है।

अनुपान विशेष—प्रभाकर वटी अर्जुनत्वक क्वाथ से लेने पर हृदय पर विशेष लाभकर है तथा गोक्षुरादि क्वाथ से एवं पंचतृण क्वाथ से।

आमयिक प्रयोग—

१. वंशलोचन चूर्ण के साथ स्वर्ण माक्षिक भस्म की दो मास तक निरन्तर सेवन करने से शरीर में पर्याप्त बल एवं हृदय को शक्ति प्राप्त होती है।

२. लौहभस्म को समभाग शिलाजतु मिलाकर नूतन-कषाय के साथ सेवन करने से कुछ ही दिनों में अति तीव्र कारणों से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र रोग शान्त हो जाता है तथा वृक्क को लाभप्रद है।

३. कान्तलौह भस्म को अर्जुन त्वक चूर्ण के साथ सेवन करने से हृदय रोग में लाभप्रद है।

४. अभ्रक भस्म तथा वंशलोचन को समभाग मिला कर शहद के साथ सेवन करने से सभी हृदय वातिक रोग शान्त होते हैं।

५. राजयक्ष्मा में शिलाजतु, लोहभस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म में घी एवं शहद के साथ सेवन से लाभ होता है।

६. शिलाजीत, लोहभस्म और स्वर्ण माक्षिक भस्म के साथ मिलाकर अर्जुनत्वक क्वाथ अनुपान से सेवन करने पर शरीर में रक्त की वृद्धि होती है तथा हृदय रोग में विशेष लाभ होता है।

७. प्रभाकर वटी—गुड़हल के शर्बत से हृदय रोग में विशेष लाभ करती है। अतः विशेष गुण प्रभाकर वटी के हैं कि यह वटी वृक्क विकार के साथ-साथ सभी प्रकार के हृदय रोगों में लाभकर है। मैंने अपने चिकित्सा कार्य में हृदय रोग के अनेक रोगियों पर विशेष लाभयुक्त पाया है।

—श्री डा० गजेन्द्रसिंह छौंकर ए.,एम.बी.एस.
भूतपूर्व प्राचार्य—भारतीय आयु. संस्थान हाथरस
अध्यक्ष–ओम आयुरक्षक फार्मेसी, सादाबाद (मथुरा)

पुत्रजीवकादि वटी

वैद्यराज श्री मनुदत्त गौड़

संदर्भ ग्रंथ—व. च., जङ्गली जड़ीबूटी।

घटक—पुत्रजीवक फल मज्जा, शिवलिङ्गी बीज, पीपल वृक्ष जटा, नागकेशर असली, असगन्ध, शरपुंखा की जड़, देवदारु, उलट कम्बल की जड़, कमलगट्टा की गिरी, वला (खरैटी) की जड़, श्वेत चन्दन, लालचन्दन, वंशलोचन असली, वड़ी हरड़ का छिलका, वहेड़ा का छिलका, आंवला वीज रहित प्रत्येक १-१ तोला लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। वाद मे निम्न वस्तु की भावना दें—

भावना की वस्तु—१. छोटी कटेरी का क्वाथ। २. अशोक की छाल का क्वाथ। ३. पुत्र जीवक की मज्जा का क्वाथ, शतावरी के रस या क्वाथ की भावना देने के वाद गोली वनने योग्य हो जाय तव ६-६ रत्ती की गोली वनालें।

मात्रा – ३ से ४ गोली एक वार में दें। ऊपर से अनुपान रूप में प्रातः सायंकाल दोनों समय दूध गरम कर पीवें।

गुण—जिन स्त्रियों को वार-वार गर्भस्राव व गर्भपात होता है, रजोधर्म समय पर नहीं होता, गर्भधारण नहीं होता इत्यादि विकारों पर यह निश्चित लाभकारी योग है।

इसके प्रत्येक घटक ही इतने उत्कृष्ट गुण रखते हैं जिनकी प्रसंसा ग्रन्थों में भरी पड़ी हैं। संक्षिप्त वर्णन यहां दिया जा रहा है। नित्यनाथ कृत रस रत्नाकर ग्रन्थ में पुत्रजीवक के वीजों की गिरी के सम्बन्ध में लिखा है कि दूध के साथ मात्र पुत्रजीवक गिरी का सेवन किया जाय तो मृतवत्सा (जिनके वच्चे होकर मर जाते हैं) रोग नष्ट हो जाता है और दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न होता है। इसका नाम सार्थक सिद्ध होता है।

पुत्रजीवक की वीज गिरी का उपयोग ग्रन्थि, गलगण्ड, कांख ग्रन्थि, कर्ण ग्रन्थि, वद को नष्ट करने के लिये लेपरूप में किया जाता है। (रसरत्न समुच्चय)

वैद्य रहस्यकार ने इसकी मज्जा के लेप से कालविस्फोट, ताम्र विस्फोट रोग नष्ट होते हैं। कांख की गाँठ, गले की गांठ, कान के धान की गाँठ भी इस लेप से नष्ट होती हैं। मेरी सम्मति से इसका उपयोग कैंसर पर भी करके देखना चाहिए।

गर्भ धारणार्थ शिवलिङ्गी का भी अनेक बार उपयोग करके देखा गया है। यह भी निश्चित फलप्रद है। इसी प्रकार पीपल वृक्ष जटा से भी गर्भधारण में अनेक बार सफलता मिली है।

नागकेशर रक्तस्राव को रोकने में अत्यन्त उपयोगी है। साथ ही सन्तानदाता भी है। इसी प्रकार इस योग के सम्पूर्ण घटक ही इस कार्य में पूर्ण लाभप्रद हैं। हमारा विश्वास ही नहीं, अनेक वार का अनुभव है कि जिनको गर्भपात होता है या गर्भस्राव होता है उन स्त्रियों को इस योग का सेवन अवश्य कराकर दीर्घजीवी सन्तान प्राप्त करें।

—वैद्यराज श्री मनुदत्त जी गौड़
महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)

लवंगादि वटी

वटी—चूर्ण कल्प को औषधि क्वाथ स्वरस के साथ खरल में खूब घोटकर गोलासक्त होने पर मात्रा आकार में गोल गोली (वटी) बनाया जाता है। उसे गोली वटी कहते है। वटी निर्माण की एक कला होती है। उसके बिना जानकारी कोई कार्य नहीं कर सकता है चाहे वे कितने वड़े विद्वान वैद्य हों। अतः वटी निर्माण कला जानकारी अवश्य प्राप्त करने पर ही निर्माण कार्य करें। रसायनशाला के मजदूर प्रायः निर्माण कला में दक्ष हो जाते हैं। कहना न होगा गोली (वटी) कल्प सर्वोत्तम औषधि कल्प है। रोगियों के लिए ग्राह्य सुलभ सेवन में सरल है। कितनी ही कड़वी गोली हो कैसी ही दशा में रोगी हो १ गोली तो उसे निगलवाया जा सकता है। उदर में जाते ही वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक क्रियायें होने लगी उस समय गोली धीरे-धीरे घुलेगी और धीरे-धीरे ही संकटकाल से रोगी को मुक्त करेगी।

मात्रा—एक तो मात्रा मात्रानुसार १-२ रत्ती, १-२ ग्राम के गोली का आकार वनायें। दूसरे फल बीज के आकार जैसे गुन्जा (करंज की) छोटी (वनवेर) चना, मूंग, मटर की वरावर गोलियों का निर्माण करें।

आधुनिक युग में मशीन से गोली बनती हैं। या उसी द्रव्य को गोल नहीं वनाकर टिकिया (टेवलेट) वनाई जाती हैं जो जल के साथ निगलवाया जाता है। वटी घिसकर भी वालक को दिये जाते हैं। आंखों में घिसकर लगाया

जाता है। जैसे चन्द्रोदय वटी और भी औषधि द्रव्य को यथा नियम भावित करके जिलेटिन के बने कैपसूल की प्रथा चली है। कैपसूल के अन्दर औषधि द्रव्य देकर बन्दकर कैपसूल जल के साथ रोगी को निगलवायें।

लवंगादि वटी (वैद्य जीवन का योग)

घटक—लौंग १ माशा, वहेड़ा फल के छिलका का १ भाग, गोल मिर्च १ भाग, खैरसार (कत्था) ३ भाग सब दवा को कूटकर कपड़े में छानकर वबूल वृक्ष के छाल का काढा बनाकर उसमें खरल में घोटकर वड़ी मटर के समान गोली बनाकर मुख में रस चूसें।

प्रभाव—प्रवल कास श्वास को तत्काल सम करती है। कहा है (कासं निहन्ति गुटिका घटिकाष्टकेन) ८ घन्टे में कास को यह वटी नष्ट करती है। प्रत्यक्ष देखा गया है कि जब तक मुख में गुटिका रहती है रस चूसे जाते कास नहीं हो पाता है।

विशेषत: यह वटी मुखपाक में भी आशातीत लाभ करती है। प्रतिश्याय सर्दी मुख दौर्गन्ध में भी उपयोगी है।

विशेष—कुछ लोग उक्त योग घटक में ववूल वृक्ष का गोंद गीला मुलहठी (यष्टी मधु) चूर्ण भूसी ईसवगोल पिपरमेंट, तेल, दालचीनी मिलाकर टेवलेट पेप्स नामक पेटेन्ट दवा का निर्माण करते हैं।

लवंगादि वटी (सिद्ध योग संग्रह का योग)

घटक—लौह ८, वहेड़ा ४, पिप्पली ४, शक्कर ३, काकड़ासिंगी २, अनार का छिल्का तथा दालचीनी २, कत्था १०, रक्तसूस (मुलेहठी का सत्व) २०, मुनक्का १८, अकवन (अर्क) फूल ५, नौसादर २, कपूर सुहागा खिला २ मुनक्का अकमन फूल के काढ़ा में खूब खरलकर वड़ी मटर के बराबर गोली बनाकर कफ निकालने के लिए निगले जायें।

प्रभाव—शुष्क कास में १ गोली गर्म जल के साथ निगल जांय। कास वेग में मुख में रखकर रस चूसें।

—वैद्य श्री द्वारका मिश्र आयुर्वेदाचार्य
पो० ओड़ो (नवादा) विहार

वृक्क शूलान्तक वटी

श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव

ग्रंथ—र.तं. सा. द्वि. खं.।

घटक—कालानमक, सज्जीखार, नौसादर, जवाखार, सोहागा का फूला, हींग, अकरकरा, पिपरमेण्ट।

ये आठ औषधियां समभाग लें। पिपरमेण्ट को छोड़ कर सब औषधियों का महीन चूर्ण करें। फिर घृतकुमारी के छने हुए स्वरस में १२ घण्टे खरल करें। फिर पिपरमेंट मिला ५ मिनट खरल कर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना बोतल में सोडा बाईकार्व के भीतर डालते जांय। बोतल में सोड़ा लगने से गोलियां सूख जायेंगी। चौड़े मुख की शीशी में सोड़ा पहले से डाल लें।

मात्रा—२-२ वटियां जल से दिन में ३-४ वार सेवन करावें।

उपयोग

यह वटी वृक्क-शूल उदर कफज शूल को तुरन्त शमन करती है। वृक्क में फँसी हुई अश्मरी (पथरी) को तोड़-तोड़ कर एक सप्ताह में निकाल देती है। शस्त्र क्रिया होने वाले अनेक रोगी इस प्रयोग से ठीक हो गए हैं। यह मूत्रल, प्रस्वेद कर और मूत्र मार्ग अवरोध हर है। यकृत शूल शोथ को दूर करती हैं। कुलथी क्वाथ, गोखरू क्वाथ, वरुण क्वाथ से भी प्रयोग किया जाता है। यह अष्ठीला ग्रन्थि शोथ, लिंग शूल, वस्ति शूल और तज्जन्य वमन को भी दूर करती है। यदि शूल पूर्णरूप से शमन न हो तो गोखरू और पोस्त डोडे के क्वाथ २ तोला से देना चाहिए। इस प्रकार क्षार पर्पटी, छोटी इलायची और शिलाजतु की सह-योग या अनुयोग रूप से प्रयोग कर सकते हैं। उक्त रोगों से शस्त्र क्रिया के पूर्व इसका प्रयोग अवश्य कर लेना चाहिए। वृक्कशूल जब अनेक औषधियों से शमन नहीं हुआ तब इससे शमन हुआ है। शूल शमन के लिए धतूर स्वरस भी सहयोग रूप से दिया जा सकता है। प्राणान्तक पीड़ा में यह अमृत के समान लाभ करती है और चिकित्सक का कीर्तिमान स्थापित करती है।

—श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव
पो० अरौल, कानपु

व्योषादि गुटिका

ग्रन्थ का नाम—रसरत्न समुच्चय।

घटक—सौंठ, काली मिर्च, पीपल का चूर्ण, शुद्ध पारद, चित्रक की जड़, शुद्ध गन्धक एवं त्रिफला चूर्ण प्रत्येक ३ माशा।

निर्माण विधि—सर्व प्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बना लेनी चाहिए। तत्पश्चात् सौंठ, काली मिर्च, पीपल का चूर्ण, चित्रक की जड़ तथा त्रिफला का चूर्ण प्रत्येक तीन माशा लेकर कज्जली के साथ मिलाकर छोटी गूलर के दूध के साथ खरल में कूटकर १-१ माशे की गोलियां बनाकर सुखा लेना चाहिए। इस प्रकार बनी यह वटी अनेक व्याधियों का शमन करती है।

उपयोग—श्वास, कास, अर्श, कुष्ठ, स्वर भङ्ग, प्रतिश्याय, अरुचि आदि रोगों पर इस वटी की १-१ गोली दिन में तीन बार शहद के साथ सेवन करने से रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है। इस वटी को मुँह में डालकर भी चूसते है।

पथ्य—दाल, रोटी, पपीता, मैंथी, बथुआ, लौकी, गाजर, गर्म दूध, सुपाच्य तथा हल्का आहार लेने से औषधि जल्दी लाभ करती है।

अपथ्य—खटाई, मिर्च, गुड़, तैल, बासा भोजन, तले हुए पदार्थ, रात्रि में जागरण, ठण्डा जल, स्नान आदि अपथ्य है।

विशेष—गर्म जल पीना चाहिए, भोजन करना बन्द कर देना चाहिए, रात्रि में सोते वक्त दूध में हल्दी डालकर गर्म कर पीना चाहिये।

इस प्रकार उपरोक्त गुटिका के द्वारा मैंने अनेक रोगियों को स्वस्थ किया है।

—वैद्य श्री मनमोहन चिहार आयुर्वेद रत्न
श्री नर्मदा विद्या मन्दिर
खिड़िया पो० भटगांव, तह० सोहागपुर
जि. होशंगाबाद (म. प्र.)

शम्बुकादि गुटिका

श्री पुण्यनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य

संदर्भ—योगरत्नाकर प्रकरण—अग्निमांद्य घटक द्रव्य—

क्र. सं.	द्रव्य नाम	रस	गुण	वीर्य	विपाक	प्रभाव
१	क्षुद्र शंख (घोंघा)	कटु	लघु तीक्ष्ण	उष्ण	कटु	क्षारीय प्रभाव
२	काली मिर्च	कटु	,,	उष्ण	,,	अग्नि प्रदीपक
३	सैन्धव नमक	लवण	लघु सूक्ष्म तीक्ष्ण	शीत	,,	त्रिदोषनाशक, दीपक, पाचन
४	विड़ नमक	,,	लघु विशद सूक्ष्म स्निग्ध	उष्ण	मधुर	,, ,,
५	सौंचर नमक	,,	,, ,,	,,	,,	,, ,,
६	सामुद्र नमक	,,	तिक्त मधुर	,,	,,	,, ,,
७	साभर नमक	,,	तीक्ष्ण पिच्छिल स्निग्ध	,,	,,	,, ,,

परिमाण–सममाग। महीन चूर्णकर कपड़े से छान खरल में डाल दें। कलम्बी शाक (Impomia Aquatica) का स्वरस निकालकर उक्त औषध चूर्ण खरल में डाल भावित कर दें। कलम्बीशाक विशेष जलाशय के पास या जलाशय में होने वाला द्रव्य है।

यह गुण में —लघु, शीतवीर्य, विपाक में कटु, तथा रस में–मधुर होता है। इसका प्रभाव–प्रसूता का दुग्धवर्धक तथा पुरुष का शुक्रजनक होता है।

इसका स्वरस क्षुद्रशंख की दाहक क्षारीय तथा लवणों की तीव्र प्रक्रिया को शमन कर अधिक गुणग्राही बनाने में

सहायक होती है, क्योंकि इस गुटिका के द्रव्य गुण आग्नेय, क्षारीय और उत्तेजक तथा कर्षण करने वाला है। अतएव आयुर्वेद विज्ञान वेत्ता ने सौम्य द्रव्य कलम्बीशाक स्वरस ही चयनकर भावना देना स्वीकार किया होगा यह मेरा विश्वास है।

स्वरस सूख जाने पर अच्छी तरह खरल कर गोली बनाने योग्य होने पर ३ से ४ रत्ती तक की गोली बना सुखा शीशी में रख लें।

मात्रा—१ से २ गोली (पूर्ण मात्रा) साधारण अनुपान गरम जल है। यह औषध आमाशयगत अधिक बनते हुए लसीका को शमन करती हुई पाचन संस्थान को तीव्र करती है। अजीर्ण अपच तथा मन्दाग्नि मूलक रोग को समूल नष्ट करता है।

यह गुटिका क्षारीयतत्व से निर्मित होने के कारण अधिक परिमाण में अधिक बार सुकुमार, गर्भवती तथा शिशु अवस्था वाले रोगी को न सेवन करना चाहिए। क्योंकि प्रचुर मात्रा आमाशय यकृत् क्लोम तथा आँत का अति योग जनित अपक्षरण होकर कमजोर बना सकती है। अतएव चिकित्साकालिक प्रयोग में इस दवा की उल्लिखित मात्रा ही लाभकारक सिद्ध होगी।

यह आम को पचाकर अजीर्ण, मन्दाग्नि, पेटदर्द, परिणामशूल, पित्तजशूल, कब्ज आदि की श्रेष्ठ दवा है।

अजीर्ण (Dispepsia) में चुक्र, जामुन के शिरका १ औंस या मारू जल १ औंस के साथ देना लाभदायक है।

अतिसार (Diarrhoea) में सौंफ अर्क, कुटजारिष्ट के १ से २ औंस को समान जल के साथ देना शीघ्र रोग शामक होता है।

उर्ध्ववायु की अवस्था में बार-बार उद्गार या वमन की स्थिति उत्पन्न होने के साथ ही इसकी १ गोली लवंगादि चूर्ण चार आनाभर या पांच लवंग को भर्जितकर उसके अनुपान से या केवल अर्क पुदीना से २० बूंद १ औंस जल में मिलाकर देने से तीन से चार खुराक में ही आराम हो जाता है। रोगी को कब्ज की शिकायत देखते ही गुटिका की दो गोली भोजन के बाद दो बार गरम जल से दें।

किसी प्रकार के उदरशूल में २ गोली की मात्रा दो बार से तीन बार गरम जल से, अर्क अजवायन, जामुन का शिरका के अनुपान के साथ देते रहें।

पेट में वायु भर जाने पर गुटिका की दो गोली मट्ठे के साथ दो तीन बार लेने से ही अपानवायु का निस्सरण होकर पेट हल्का होकर भूख लगती है।

इसके नियमित सेवन से तीव्र उदर विकार, संग्रहणी (Chronic Dysentry) कोष्ठशूल, परिणामशूल तथा आंत्र पुच्छ प्रदाहशूल (Apendicitis) की शिकायतें तक्र, मठ्ठा, जामुन का सिरका, कुमारी आसव से शंखद्राव को प्रमाण से डालकर समान जल के साथ देने पर दीर्घकाल में रोगी रोगमुक्त हो सकता है।

बच्चे को अपच की शिकायत होने पर वयस्कों को दी गयी मात्रा का चौथाई मात्रा सुबह शाम कुमारी आसव धान्यपंचक काढ़ा या मुस्तकारिष्ट का १ चम्मच दवा समान जल के साथ अनुपान से देते रहने पर अग्नि तीव्र होती, कफ का शमन होता और खुलकर भूख लगती है।

—श्री पुण्यनाथ मिश्र, आयुर्वेदाचार्य
चिकित्सक—अरियादह रामानन्द चैरिटो औषधालय
५—एम एम फीडर रोड, कलकत्ता—५८

डा॰ राजेन्द्र प्रकाश भटनागर एम. ए., पी. एच. डी., भिषगाचार्य

सन्दर्भ ग्रन्थ --चक्रदत्त के अनुसार (अष्टांग संग्रह और चिकित्सा कलिका के पाठ की विशेषता सहित)।

निर्माण काल--ग्रीष्म (रवितापाढ्यकाल) कुछ विद्वान 'शरद्' काल को भी इस योग के निर्माण हेतु उपयोगी मानते हैं।

घटक--

मुख्य घटक--काले लोहे का शुद्ध शिलाजीत।

मात्रा--१६ पल (६४ तोले)।

भावना--१. त्रिफला क्वाथ से ३ वार। एक भावना सूखने पर दूसरी भावना देनी चाहिए। एतदर्थ त्रिफला द्रव्य की मिलित मात्रा शिलाजतु के समान १६ पल लेकर चतुर्गुण जल में पकाकर, चतुर्थांश शेष रहने पर, क्वाथ को छानकर, उससे भावना देनी चाहिये। ऐसी ३ वार (३ दिन) भावनायें देनी चाहिये।[1]

२. दशमूल क्वाथ से--३ वार (३ दिन)।

३. गुडूची (गिलोय) के रस या क्वाथ से ३ वार। (३ दिन)।

४. बला (खरैंटी) के क्वाथ से ३ वार (३ दिन)।

५. पटोल के पंचांग[2] या (काकड़ासिंगी-अष्टांग संग्रह) के क्वाथ से ३ वार (३ दिन)।

६. मुलेठी के क्वाथ से--३ वार। (३ दिन)।

७. गोमूत्र से--३ वार (३ दिन)।

८. दूध से--१ वार (१ दिन)।

९. निम्न २७ द्रव्यों में से यथा-लभ्य या सब द्रव्य १-१ पल मात्रा में लेकर, एक द्रोण जल में उबालकर, चतुर्थांश रहने पर, छानकर उससे ७ दिन तक (७ वार) भावना देनी चाहिए।

क्वाथ्य द्रव्य--१. काकोली, २. क्षीरकाकोली, ३. मेदा ४. महामेदा, ५. विदारी, ६. क्षीरविदारी[3], ७. शतावरी, ८. द्राक्षा, ९. ऋद्धि, १०. वृद्धि, ११. ऋषभक, १२. वीरा[4] (जटामांसी या जलशाक), १३. जीरा, १४. स्याह जीरा, १५. शालपर्णी, १६. पृश्निपर्णी, १७. रास्ना, १८. पुष्कर-मूल, १९. चित्रक, २०. दंती, २१. इभकणा (गजपिप्पली), २२. कलिंग (इन्द्र जो), २३. चव्य, २४. नागरमोथा,

---

[1] शिलाजतुनोऽत्र षोडशपलमात्रा, वक्ष्यति च 'पलानि दश षट् च' इति, तेन तन्मानसम मिलित त्रिफलाद्रव्यं गृहीत्वा क्वाथयित्वा त्र्यहं भावना कर्तव्येत्याह।
--शिवदास सेन कृत टीका

[2] अष्टांग संग्रह में पटोल क्वाथ के स्थान पर कर्कट (काकड़ासिंगी) के क्वाथ का उल्लेख है। चिकित्सा कलिका में 'पटोल क्वाथ' ही लिखा है।

[3] 'क्षीरविदार्याश्च लक्षणम्-'क्षीरशुक्ला दीर्घकन्दा चातिमधुरा क्षीरविदारी' इति भग्नचिकित्सोक्त. गन्धतैलव्याख्यायां गदाधरेणोक्तम् सा हि सुगन्धा, दुर्गन्धा च।
--शिवदास सेन

[4] वीरा मांसीति त्रिविक्रमः, जलजशाकमिति रत्नप्रभा।
--शिवदास सेन

२५. कटुका (कुटकी), २६. काकड़ासिंगी, २७. पाठा ।[1]

नोट—इस योग में २७ द्रव्य दिये हैं जिसमें मुण्डी और होना चाहिए। २८ द्रव्य हैं। —विशेष सम्पादक

विशेष—शिवदाससेन ने स्पष्ट किया है-ये द्रव्य प्रत्येक १-१ पल मात्रा में लेकर, १ द्रोण जल में पकावें। शेष क्वाथ (चतुर्थांश) १६ शराव रहने पर, उसे ७ भागों में बांटकर, प्रत्येक भाग से एक-एक भावना देवें। ऐसी सात दिन तक सात भावना दी जायें।

परन्तु सात दिन में क्वाथ अम्ल हो जाता है। अतः २८ (अथवा २७) द्रव्यों[2] को प्रत्येक पलमान में लेकर सबको मिलाकर उसके ७ दिन के ७ भाग बनालें, प्रत्येक भाग ४ पल का होगा।

४ पल विभाग में काकोल्यादि प्रत्येक द्रव्य ९ माशा २ रत्ती का होगा। इसी प्रकार एक द्रोण जल के भी ७ भाग करें (सात दिन के लिए) प्रत्येक जल भाग ९ शराव, १ पल, ९ माशा, ९ रत्ती का होगा।

प्रतिदिन एक जलभाग में क्वाथ्य द्रव्य ४ पल डालकर पकावें। चतुर्थांश रहने पर, उतारकर, छानकर कवोष्ण क्वाथ से शिलाजीत की भावना देवें।

इस प्रकार ७ दिन तक करें।[3]

---

१ (अ) शिवदाससेन ने २८ द्रव्य माने हैं 'एतानि अष्टाविंशति द्रव्याणि लिखितानि'। परन्तु गणना करने पर २७ द्रव्य ही मिलते हैं। ऋद्धि युगर्षभवीरा मुण्डितिका जीरकेऽशु मत्यों च। यहां मुण्डी की भी गणना है। अतः २८ द्रव्य हो जाते हैं। —विशेष सम्पादक

(आ) शिवदाससेन ने वाग्भट में रसायनतंत्र पठित शिवागुटिका पाठ में ऋद्धि, ऋषभक् आदि ६ द्रव्यों को पढ़ा है और दोनों आचार्यो (वाग्भट्ट और चक्रपाणि दत्त) को प्रमाण रूप स्वीकार किया है। ये छः द्रव्य हैं—ऋषि, ऋषभक, मुण्डी, इन्द्रजौ, कुटकी और काकड़ासिंगी।

वाग्भट्टे तु रसायनतंत्रपठितशिवागुटिकायो ऋद्धिऋषभकादि षड्द्रव्याणि पठ्यन्ते, तद् यथा—'ऋद्धिऋषभकौ मुण्डिरिन्द्रयवौ कटुरोहिणी कर्कटश्रृंगी च इति। तदुभयाचार्यप्रामाण्यादुभयथैव प्रयोगसंगतिरभ्युपेया।

—शिवदाससेन

परन्तु अष्टांगसंग्रह के उपलब्ध पाठ में तथा अरुणदत्त घृतपाठ'(अ.हृ.- उ.अ. ३९/१४३ की टीका) में निम्न २२ क्वाथ्य द्रव्यों का उल्लेख है—

१. काकोली, २. क्षीर काकोली, ३. नागरमोथा, ४. पुष्करमूल, ५. चित्रक ६. रास्ना, ७. मेदा, ८. महामेदा, ९. ऋद्धि, १०. चविका, ११. गजपिप्पली, १२. पाठा, १३. जीरक, १४. स्याहजीरा, १५. निकुम्भ, १६. विदारी, १७. क्षीरविदारी, १८. वीरा (जटामांसी), १९. वरी (शतावरी), २०. शालपर्णी, २१. पृश्निपर्णी। इन द्रव्यों को प्रत्येक १-१ पल लेकर जल १ द्रोण में पकाकर चौथाई रखने का विधान वाग्भट्ट ने दिया है। इसकी ७ वार भावना दें।

२ चिकित्साकलिका में निम्न क्वाथ द्रव्य बताये हैं—
द्राक्षा, भीरू, विदारिका, क्षीरविदारी, पृथक्पर्णी, स्थिरा, पुष्करमूल, पाठा, इन्द्रजौ, काकड़ासिंगी, अक्ष- कुटकी, रास्ना, नागरमोथा, अलम्बुषा, दन्ती, चित्रक, चव्य, रासा, पिप्पली, जीरा, अष्टवर्ग के आठ द्रव्य (जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा)।

३ एषाञ्चाष्टाविंशतिद्रव्याणां प्रत्येकं पलिकानां क्वथनार्थदेयजलद्रोणसाधितशेषक्वाथषोडशशरावैः सप्तधा विभक्तैः सप्त दिनानि भावनाः सप्त कर्तव्याः; किन्तु सप्तदिनैः क्वाथस्य अम्लता भवति, ततश्चैषाम् अष्टाविंशतिद्रव्याणां प्रत्येकं पलिकानां सप्तदिनविभागेन पलचतुष्टयं मिलित्वा ग्राह्यम् तेन प्रतिदिनं पलचतुष्टयविभागेन काकोल्यादीनां प्रत्येकं माषा ९, रक्तिका २ ग्राह्यम्, एवं जलद्रोणस्यापि सप्तदिनविभागेन देयजलशराव ९, पल १, माशा ९, रत्ती १, अस्य पादावशिष्टतया स्याप्य जल शराव २, पल २, कर्ष १, माशा २, अस्मिन् क्वाथे पूतोष्णे प्रतिदिनं शिलाजतुभावना, एवं सप्ताहं कर्तव्यम्।

मिश्रणार्थ द्रव्य—

(अ) उक्त विधि से भावित शुद्ध शिलाजीत—१६ पल।

(आ)—१. सौंठ, पिप्पली, काली मिर्च, काकड़ासींगी और आंवला[1] इन पांच द्रव्यों का चूर्ण प्रत्येक २-२ पल।

२. विदारीकंद का चूर्ण— १ पल (४ तोले)।

३. तालीशपत्र का चूर्ण—४ पल (१ कुडव)।

४. मिश्री का चूर्ण—१६ पल।

५. घृत—४ पल।

६. मधु (शहद)—८ पल।

७. तिल का तैल—२ पल।

८. वंशलोचन (त्वकक्षीरी), तेजपात, दालचीनी, नागकेशर व इलायची के प्रत्येक के आधी-आधी पल (२-२तो.)।

निर्माण विधि—शुद्ध शिलाजीत को सर्व प्रथम क्रमशः उपर्युक्त द्रव्यों के क्वाथों और रसों में निर्दिष्ट दिनों तक भावना देवें। प्रत्येक भावना के बाद द्रव सूख जाय तब दूसरी भावना देनी चाहिए। फिर इस भावित शिलाजीत में उपर्युक्त मिश्रण किये जाने वाले द्रव्य मिलाकर भलीभांति घोटकर, १-१ अक्ष (तोले) की गोलियां बना लेवें।

इन्हें सुखाकर, चमेली के पुष्पों से सुवासित नवीन घड़े में रख देवें।

मात्रा—इसकी शास्त्र निर्देशानुसार १ तोला (अक्ष) प्रमाण में मात्रा बनायी गयी है। यह उत्तम मात्रा है। इसीके अनुसार आधी तोले की मध्यम मात्रा, और ¼ तोले की अधम मात्रा होती है।

यह गुटिका उक्त मात्रा में भक्षण की जाती है, अथवा विशिष्ट अनुपानों में मिलाकर घोलकर पिलायी जाती है।

अनुपान द्रव—दूध, मांसरस, दाडिम का रस, मार्द्विक सुरा, आसव, मधु, शीतलपेय। या जल तथा शृत जल।

ये द्रव गुटिका के आलोडनार्थ या अनुपानार्थ प्रशस्त हैं।

पथ्य—औषधि जीर्ण होने पर (पच जाने पर) लघु आहार, दूध, जांगल मांसरस, यूष (मूंग की दाल) का भोजन करें।

सात दिन तक इस प्रकार पथ्य सेवन करें; इसके बाद सामान्य भोजन करें।

सेवनकाल—इसे पुरुषों को प्रातः भोजन से पहले सेवन करना चाहिए[2]। इसको भोजन के बाद सेवन करने से भी किसी हानि का भय नहीं होता।

सुकुमार व्यक्तियों और कामी पुरुषों द्वारा प्रयुक्त होने पर कोई उपद्रव नहीं होता।[3]

विशेष—शिवदाससेन ने[4] स्पष्ट किया है कि सब प्रकार के

---

१ वाग्भट्ट ने, 'आंवला' (धात्री) दिया है, परन्तु चक्रदत्त में 'मरिच' पाठ है। सौंठ, कालीमिर्च, पीपल के साथ पुनः मरिच (कालीमिर्च) का पाठ अनुपयुक्त है। उसके स्थान पर आंवला ठीक है।

२ तासामेकतमां प्रयुज्य विधिवत् प्रातः पुमान् भोजनात् प्राग्वा मुद्गदलाम्बुजांगलरसं शीतं शृतं वा जलम्।
मार्द्वीकं मदिरामगुर्वशनभुक् पीत्वा पयो वा गवां प्राप्नोति अगमनंगवत् सुभगतासम्पन्नभावन्दकृत्॥
(चिकित्सा कलिका २७८)

तासामेका काले भक्ष्या पेयाऽपि वा सततम्। क्षीररसदाडिमरसाः सुरासवं मधु च शिशिरतोयानि।
आलोडनानि तासामनुपाने वा प्रशस्यन्ते॥
जीर्णे रध्वन्नपयोजाङ्गलनिर्यूहयूषभोजी स्यात्। सप्ताहं यावततः परं भवेत् सर्वसामान्यम्॥ (चक्रदत्त)
पयांसि तक्राणि रसाः सयूषास्तोयं समूत्रा विविधाः कषायाः।
आलोडनार्थं गिरिजस्य शस्तास्ते ते प्रयोज्याः प्रसमीक्ष्य कार्यम्॥ (च. चि. १।३।६४

३ भुक्त्वाऽपि भक्षितेयं यदृच्छया नावहत्यियं किंचित्। निरुपद्रवा प्रयुक्ता सुकुमारकैः कामिभिश्चैव॥ (चक्रदत्त)

४ इह सर्वेषां शिलाजितुप्रयोगेषु कर्तव्येषु प्रथमं शोधनं विधाय तिक्तकघृतं द्वयहं त्र्यहं वाऽपि बलानुरूपप्रमाणं दातव्यं, यथा स्निग्धो भवति, तदुक्तं तन्त्रप्रदीपे—
संशुद्धकायो विमलेन्द्रियश्च प्रशस्तनक्षत्रमुहूर्तयोगे। पिबेत् घृतं तिक्तकषायसिद्धं द्वयंत्र्यहं वाऽपिबलानुरूपम्॥
यथा हि शस्त्रं कवचावृताङ्गं मर्त्यं न हन्याद्बहुधा प्रयुक्तम्।
स्नेहाधिकञ्चापि शिलाजमेवं देहं न हन्याद् बलवर्णदापि च॥ इति।
(शिवदाससेन)

शिलाजीत प्रयोग में शोधन करके, तिक्तक घृत को दो या तीन दिन बलानुरूप प्रमाणमें पिलावें, इससे वह व्यक्ति स्निग्ध हो जाता है।

अतः शिवागुटिका के सेवन के पहले शोधन एवं स्नेहन कराना आवश्यक है।

वर्जनीय—शिलाजीत के प्रयोगों में विदाही, गुरु, और कुलत्थ का सेवन सब काल में नहीं करना चाहिए। क्योंकि कुलत्थ का प्रयोग पत्थर को तोड़ता है। अतः उसका निषेध है—

शिलाजतुप्रयोगेषु विदाहीनि गुरूणि च।
वर्जयेत् सर्वकालं तु कुलत्थान् परिवर्जयेत् ॥
ते ह्यत्यन्तविरुद्धत्वादश्मनो भेदनाः परम्।
लोके दृष्टास्ततस्तेषां प्रयोगः प्रतिषिध्यते ॥
—च. चि. १।३।६२-६३

ऐतिहासिक परिचय—

शिवा गुटिका नामक प्रसिद्ध योग चक्रदत्तोक्त है। इससे पूर्व यह 'अष्टांगसंग्रह' के रसायनाधिकार में तथा 'चिकित्साकलिका' के 'क्षय चिकित्सा' प्रकरण में मिलता है। परन्तु इन दोनों ग्रन्थों में इस योग के पाठ की प्राचीनता विचारणीय मानी जाती है। 'अष्टांग संग्रह' की रचना गुप्तकाल में ४-५ वीं शती में हुई थी। इसका रचियता वाग्भट आयुर्वेद का महान आचार्य था। परन्तु इसी के द्वारा प्रणीत 'अष्टांगहृदय' में यह योग नहीं मिलता। वाग्भट के पुत्र तीसट ने 'चिकित्सा कलिका' नामक योगसंग्रह की रचना की थी। इसके क्षय चिकित्सा नामक अध्याय में शिलाजतु के दो प्रयोग वर्णित हैं—१. शिव गुटिका, २. शुद्ध या भावित शिलाजतु (इसे 'लघु शिवगुटिका' नाम से भी जाना जाता है)।

अष्टांग हृदय में 'रसायनाध्याय' (उत्तरस्थान, अ० ३९) में 'शिलाजतु रसायन' के उपसंहार में टीका करते हुए शिवदास सेन (१४ वीं शती) में लिखा है—

"अत्रान्तरे बहव उच्चावचा योगाः शिवागुडिकादयः क्वचित् क्वचिद्दृश्यते। ते च तथाविधेष्वाकरपुस्तकेषु न दृश्यन्ते टीकाकृद्भिश्चोपेक्षिता इति कृत्वा मयापि उपेक्षिता इति।"

अर्थात्—इसके बाद शिवागुडिका आदि अनेक ऊँचे नीचे योग किसी-किसी ग्रन्थ (हस्तलिखित ग्रन्थ) में मिलते हैं। परन्तु वे उस प्रकार के योग ग्रन्थों में यह नहीं मिलता और टीकाकारों ने भी इसकी उपेक्षा की है. इसलिए मेरे द्वारा भी उपेक्षित (छोड़ दिया गया) किया गया है।'

परन्तु ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि शिवागुटिका का निर्माण गुप्तकाल में प्रचलित नहीं हो। यह योग शुद्ध शिलाजतु और काष्ठौषधियों के द्रव, क्वाथ, रस आदि की भावना एवं मिश्रण से बनाया जाता है। शिलाजतु की महत्ता और सर्वरोगहरत्व चरक संहिता के काल से बहुप्रचलित हो गया था। अतः वाग्भट के काल तक इस योग का निर्माण हो जाना सर्वथा संभव है और उस काल में इसका बहुत प्रचार-प्रसार हो गया हो, क्योंकि वाग्भट के परवर्ती तीसट ने अपने उपयोगी, किन्तु संक्षिप्त योग संग्रह में इसका समावेश किया है। अष्टांग संग्रह में देने के वावजूद इसे 'अष्टांग हृदय' में समाविष्ट नहीं करने का यही कारण लगता है कि हृदय में संक्षिप्त योगों को ही स्थान दिया गया, परन्तु इस योग की निर्माण विधि आदि बहुत विस्तृत है—

चक्रपाणि दत्त ने 'रसायनाधिकार' के अन्तर्गत शिवागुटिका नाम से इसके निर्माण, प्रयोग और गुणकार्यों पर विस्तार से लिखा है। चक्रदत्त में इसके सम्बन्ध में तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं—

प्रथम, चक्रपाणि दत्त ने अपने ग्रंथ 'चक्रदत्त' का निर्माण नवीन योगों के समावेश सहित, वृन्दकृत 'सिद्धयोग-संग्रह' के आधार पर किया था।

यः सिद्धयोगलिखिताधिक सिद्धयोगान्,
त्रैव निक्षिपति केवलमुद्धरेद्वा।
भट्टत्रयत्रिपथवेदविदा जनेन,
दत्तः पतेत् सपदि मूर्द्धनि तस्य शापः ॥
(चक्रदत्त ग्रन्थांत में)

परन्तु वृन्दकृत 'सिद्धयोग संग्रह' में 'शिवागुटिका' का पाठ नहीं मिलता।

द्वितीय—चक्रपाणि ने रसायनाधिकार में चरकोक्त शिलाजतु विधान को उपस्कार (परिष्कार) सहित लिखा है, क्योंकि चरक ने शिलाजतु परीक्षा आदि नहींदी है, परन्तु चक्रदत्त में 'लौहकिट्टायते' इत्यादि द्वारा वह परीक्षा दी गई है। अतः संशोधनपूर्वक इस विधान को समझना चाहिए।

चरकोक्त शिलाजतुविधानं सोपस्कारमेतत् ।

- चक्रदत्त १७१

इस शिलाजतुविधान के बाद ही शिलाजतु से निर्माण होने वाली शिवागुटिका का विधान दिया है ।

तृतीय—चक्रपाणि ने शिवागुटिका को 'शैवसिद्धान्त' से उद्धृत किया है । वहां किसी वैदिक आर्य परम्परा का उल्लेख नहीं किया गया है. वाग्भट का भी सन्दर्भ अंकित नहीं है ।

अतः ज्ञात होता है कि वाग्भटोक्त 'शिवगुटिका' को शैव तांत्रिकों को एवं रससिद्धों ने अपनी चिकित्साविधि में अपना कर पारम्परिक प्रणाली के आधार पर इस योग का सम्बन्ध शिव से बताया । इसे शिवागुटिका कहने का हेतु इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है—

शिवागुटिकेति रसायनमुक्तं गिरीशेन गणपतये ।
शिववदन विनिर्गता यस्मान्नाम्ना तस्माच्छिवा गुटिका ॥

- चक्रदत्त, १९५

योग के अन्त में लिखा है—

इति **शैवसिद्धान्तोक्ता शिवागुटिकेयम्** । इति **शिलाजतु विधानम्** । शिलाजतु के विधान को यहां समाप्त किया गया है ।

'शिवागुटिका' नामक यह रसायन 'गिरीश' (शिव) ने गणपति के लिए बताया था । शिव के मुख से निकलने के कारण इसे 'शिवागुटिका' कहते हैं ।

परन्तु, इस प्रकार का उल्लेख 'अष्टांग संग्रह' और 'चिकित्साकलिका' में नहीं मिलता । यह ज्ञातव्य है कि इन दोनों ग्रन्थों में इसका नाम 'शिवगुटिका' लिखा है ।

इससे ज्ञात होता है कि चक्रपाणि दत्त के काल में रसचिकित्सा के अनेक महत्वपूर्ण योगों का प्रचलन वैद्य परम्परा में हो चुका था । 'रस पर्पटी' 'ताम्रयोग' आदि का उल्लेख चक्रदत्त में इस दृष्टि से उल्लेखनीय है । शिवदाससेन ने भी चक्रदत्त की टीका में स्पष्ट किया है । "चरकोक्त शिलाजतु विधिमभिधाय शैवतंत्रोक्त प्रसिद्ध शिलाजतु प्रयोगं शिवागुटिकामाह" ।

प्रस्तुत निबन्ध में अष्टांगसंग्रह, चिकित्साकलिका एवं चक्रदत्त के आधार पर 'शिवागुटिका निर्माणविधि, प्रयोग विधि और अनुपान आदि का वर्णन किया जायेगा ।

शिलाजतु की उत्पत्ति—इस योग का मुख्य आधार द्रव्य 'शिलाजतु है । चक्रपाणि दत्त ने इसकी उत्पत्ति का वर्णन रस के शैव ग्रंथ के आधार पर इस प्रकार किया है—

पहले यह शिलाजतु समुद्र मन्थन के समय मन्दराचल पर्वत की शिलाओं से अमृत के समान स्वेदरूप में उत्पन्न हुआ था । ब्रह्मा ने (मानवों के) हित के लिए इस शिलाजरूपी (शिलोत्पन्न) को पर्वतों में रख दिया था ।

**समुद्रभूवामृतमन्थनोत्थः स्वेदः शिलाभ्योऽमृतवादगिरेः प्राक् ।
यो मन्दरस्यात्मभुवा हिताय न्यस्तः स शैलेषु शिलाजरूपी ॥**

आमयिक प्रयोग—

निम्न रोगों में शिवागुटिका का प्रयोग विहित है—

चक्रदत्त—प्रबल वातरक्त, बहुवार्षिक गाढ़ यक्ष्मा, आढ्यवात (उरुस्तम्भ), ज्वर, योनिरोग, शुक्रदोष, प्लीहा, अर्श, पाण्डु, हृद् रोग, ग्रहणी रोग, ब्रघ्न, वमन, गुल्म, पीनस हिक्का, कास, अरुचि, श्वास, जठर (उदर रोग), श्वित्र, कुष्ठ, षाण्ढ्य (सहज क्लैब्य), क्लैब्य (हेतुज क्लैब्य)[१] मद, क्षयशोष, उन्माद, अपस्मार, सब मुखरोग, सब नेत्र रोग, सब शिरोरोग, आनाह (कब्ज), अतिसार, असृग्दर (रक्तप्रदर) कामला, प्रमेह, यकृत रोग, अर्बुद, विद्रधि, भगन्दर, रक्तपित्त, अतिकार्श्य, अतिस्थौल्य, स्वेद (पसीना अधिक आना), श्लीपद, दंष्ट्राविष (जंगमा विष), मूली विष (स्थावर विष), अनेकविधगर विष, प्रयुक्त मंत्रौषधि प्रयोग, भौतिक भाव (भूतकृत पीड़ायें), पाप, अलक्ष्मी ।

अष्टांग संग्रह—प्रबल वातरक्त, आढ्यवात (ऊरुस्तंभ) ऊरुस्तंभ, ज्वर (जीर्णज्वर), योनिरोग (भगरोग), शुक्ररोग प्लीहा, अर्श (गुदकील), पाण्डु, हृद्रोग, ग्रहणीरोग, वर्ध्म, वमन, गुल्म, पीनस, हिक्का, कास, अरुचि, श्वास, जठर (उदररोग), श्वित्र, कुष्ठ, पाण्ढ्य (सहजक्लैब्य), मद, क्षयशोष, उन्माद, अपस्मार, सब मुखरोग, सब नेत्ररोग,

---

[१] आढ्यवातः ऊरुस्तम्भः । (शिवदाससेन)

[२] सहज हेतुज क्लैब्यद्वयपरिग्रहार्थं षाण्ढयं क्लैब्यमिति उभयपदोदानं बोध्यम् । यद्यपि बीजदोषोत्पन्नसहजक्लैब्यमशक्तित्वेनोक्तं, तथाऽपि प्रयोगमाहात्म्यसूचनार्थमिदमुक्तम् । (शिवदाससेन)

सत्र शिरोरोग, आनाह (कब्ज), अतिसार, कामला (कामला और हलीमक), यकृद्रोग, अर्बुद, विद्रधि, भगन्दर, अतिकार्श्य, अतिस्थौल्य, स्वेद (पसीना अधिक आना), श्लीपद, दंष्टाविष (जंगमविष), मूलविष (स्थावर विष), अनेकविध गरविष, प्रयुक्त मंत्रौषधि प्रयोग (अभिचार), भौतिक भाव (भूतकृत पीड़ायें) (भौतिकी बाधा), पाप, अलक्ष्मी, मूत्ररोग, रक्तरोग, मूर्च्छा, ग्रन्थि, हलीमक, पिड़का, गण्डमाला, दुःस्वप्न ।

चिकित्साकलिका—प्रबल वातरक्त, ऊरुस्तंभ, जीर्ण ज्वर, भगरोग, प्लीहा, गुदकील, पाण्डु, हृद्रोग, वमन, कास, श्वास, जठर (उदररोग), श्वित्र (किलास), कुष्ठ, मद, क्षयशोष, उन्माद, अपस्मार, यकृद्रोग, अर्बुद, विद्रधि, भगन्दर, रक्तपित्त, अतिकार्श्य, अतिस्थौल्य, श्लीपद, ग्रंथि, हलीमक, पिड़का (पिटका), शोफ, अवमंथ, वेपथु, प्रमेह, प्रदर, प्रमेहपिटका, अश्मरी, शर्करा, वृद्धि, वातव्याधियाँ, रुजायें, तूनी, प्रतितूनी, तृष्णा, कृमि, उरःक्षत, पानात्यय, आलस्य मूत्रकृच्छ्र ।

वक्तव्य—शिवागुटिका का प्रभाव उपर्युक्त सब रोगों में देखने से शिलाजतु के सम्बन्ध में निम्न उक्ति स्मरण हो आती है—

> न सोऽस्ति रोगो भुवि साध्यरूपः ।
> शिलाह्वयं यं न जयेत् प्रसह्य ॥
> तत् कालयोगैर्विधिभिः प्रयुक्तं ।
> स्वस्थस्य चोर्जा विपुलां दधाति ॥
>
> —च० चि० १/३,६५

संसार में ऐसा कोई साध्य रोग नहीं जिसे शिलाजतु बलात् न जीतता हो । इसे 'काल' और 'योग' की विधि से प्रयुक्त करने पर स्वस्थ व्यक्ति में विपुल ऊर्जा (ओज या बल) उत्पन्न होता है ।

संक्षेप में यह सर्व रोगहर और परम अद्भुत रसायन है । रोगनाशन व रसायन हेतु इसे दीर्घकाल सेवन करना चाहिये ।

चक्रदत्त—बलकारक, वृष्य, धन्य, कान्तिकर, यशःकर श्री (लक्ष्मी) कर, प्रजा (सन्तान) कर, नृपवल्लभता करने वाली, विवाद में विजय कराने वाली, उत्तम मेधा करने वाली, स्मृति करने वाली, बुद्धि करने वाली, अतुल (विशाल) शरीर करने वाली, पुष्टिकर, ओजस्कर, अतिविमलेन्द्रियत्व कर, तेजःसंयम कर, बल संयत् कर ।

अष्टांग संग्रह—आयुष्या, वृष्य, धन्य, कांतिकर, यशःकर, श्री (लक्ष्मी) कर, नृपवल्लभता करने वाली, विवाद में विजय कराने वाली, उत्तम मेधा करने वाली, विवोधन कर ।

विशेष कर्म—१. इसके एक वर्ष प्रयोग (सेवन) से दो सौ वर्षों तक तथा दो वर्ष प्रयोग करने से चार सौ वर्ष तक वाली (झुर्रियां), पलित (केशों का सफेद होना) और रोग रहित होकर पुरुष जीता है ।

२. इस अद्भुत रसायन के रहस्य को सर्व रोगों का नाश करने वाला और मुनिगण द्वारा भक्षणीय बताया गया है ।

> वलीपलितरोगरहितो जीवेच्छरदां शतद्वयं पुरुषः ।
> संवत्सरप्रयोगात् द्वाभ्यां शतानि चत्वारि ॥
> सर्वामयजित् कथितं मुनिगणभक्ष्यं रसायनरहस्यम् ॥
>
> —चक्रदत्त

> जितखालतिवलीपलितं जीवयति सुखं शतद्वयं शरदाम् ।
> वर्षद्वयप्रयोगाद् वर्षसतचतुष्टयं जीवेत् । —अष्टांग संग्रह

३. इसके सेवन से शरीर कामदेव के समान सौभाग्य सम्पन्न और आह्लादक हो जाता है ।

—चिकित्सा कलिका

> प्राप्नोति अंगमनंगवत् सुभगतासम्पन्नमानन्दकृत् ।

४. चिकित्सा कलिका में इसे जरानाशक, परम वाजीकरण, मति, ज्ञान कर, श्रुति स्मृति कर बताया गया है । इसके सेवन से योगी उक्त गुणों से सम्पन्न होकर शिव का सामीप्य प्राप्त करता है । इसी से इसे शिव गुटिका कहते हैं—

> झटिति जरया सर्वस्वेतैरकालजराकृतै—
> र्वृतमलिकुलाकारैरेभिः शिरश्च शिरोरुहैः ।
> बलिवदवलिव्यस्तातङ्कं वपुश्च समुद्वहन्
> प्रभवति शतं स्त्रीणां गन्तुं जना जनवल्लभः ॥
> स्तिमितमतिरप्यज्ञानान्धः सदस्यपटुः पुमान
> सकृदपि स तु ज्ञानोपेतः श्रुतिस्मृतिमान् भवेत् ।
> व्रजति च तयायुतो योगी शिवस्य समीपतां

शिवगुटिकया कस्तामेतां करोति न मानवः ॥

—चिकित्सा कलिका २८१-२८२

सेवन कालावधि—

दीर्घकाल तकसेवन करने से ही शिवगुटिका से उपर्युक्त रोग नाशक एवं रसायन वाजीकरण सम्बन्धी कार्य परिलक्षित होता है।

चरक ने शिलाजीत का सेवन ७ सप्ताह, ३ सप्ताह और १ सप्ताह तक बताया है। यह क्रमशः श्रेष्ठ, मध्य और अवर प्रयोग कहलाता है[1]।

शिवगुटिका प्रसंग में भी यह अवधि ही समझनी चाहिए।

वक्तव्य—'शिवगुटिका' शिलाजीत का प्रधान प्रयोग है। अपने चिकित्सानुभव में 'शिवगुटिका' की निम्न प्रयोग विधियां विशेष उपयोगी सिद्ध हुई हैं—

१. प्रमेह-मधुमेह-स्वप्नमेह (शुक्रतारल्य)—शिवगुटिका १ माशा × २ मात्रा प्रातः सायं। अनुपान—दुग्ध।

अश्वगन्धारिष्ट—२ तोला या लोध्रासव—२ तोला × २ मात्रा, समान जल मिलाकर भोजन के बाद।

२. अश्मरी-शर्करा-मूत्रकृच्छ्र, वृक्कशूल—शिवगुटिका-१ माशा × २ मात्रा, प्रातः सायं।

अनुपान—(१) पुनर्नवाष्टक क्वाथ १ तोला।

(२) तृणपंचमूल क्वाथ १ तोला।

(३) अश्मरीहर कषाय १ तोला।

अश्मरीहर कषाय—हरड़, बहेड़ा पाषाणभेद, धमासा, धनियां, गोखरू, ककड़ी के बीज का मगज, वरुण की छाल, सहिजने की छाल। समभाग। यवकुट। (अनुभूत)

३. विद्रधि-भगन्दर-अर्बुद-प्रमेहपिडिका—शिवागुटिका-१ माशा × ३ मात्रा।

अनुपान—वरुणादिक्वाथ १ तोला × ३ मात्रा।

४. उदररोग—शिवागुटिका १ माशा × ३ मात्रा।

अनुपान—पुनर्नवाष्टक क्वाथ १ तोला × ३ मात्रा।

५. षाण्ढ्य या क्लैब्य—शिवागुटिका—१ माशा स्वर्णवङ्ग २ रत्ती × २ मात्रा।

अनुपान—दुग्ध, मांसरस, अनार रस।

शिवागुटिका में शिलाजीत के साथ दीपन, पाचन द्रव्यों का मिश्रण है। अतः इसे दूध आदि के साथ सेवन करने से रस रक्त की उत्तम वृद्धि होती है। रक्तवह संस्थान, मूत्रवह संस्थान, नाड़ी संस्थान और श्वाससंस्थान पर शिवागुटिका का अच्छा कार्य परिलक्षित होता है।

—डा. श्री राजेन्द्रप्रकाश भटनागर एम. ए.,
पी. एच. डी., भिषगाचार्य, आयु०, पी-एच. डी.
प्राध्यापक—म. मो. मा. राज० आयु० महाविद्यालय
उदयपुर (राज०)

सर्पगन्धादि वटी

ग्रन्थ—वै० सं०।

घटक—सर्पगन्धा ५ तो०, पीपलामूल १ तो०, काली मिर्च ४ माशा। जल से खरल कर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनाकर रखें। मात्रा—२ वटियां दिन में ३ बार। अनुपान निम्बरस १ तो.+मधु १ तो०।

उपयोग—इसके सेवन से रक्त भार, तीव्र रक्तचाप (Hypertention) और मद Blood Pressure या हृदय पर रससम्भार कम हो जाता है। शिरःशूल दूर हो जाता है और निद्रा आ जाती। जागने पर रोगी अपने को पूर्ण स्वस्थ अनुभव करता है

रक्तचाप का परिचय और संक्षिप्त निदान—अधिक मांस मदिरा और गर्म मसालेदार वस्तु खाने से, अधिक चिन्ता करने से, अधिक मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य करने से फिरंग और सुजाक के कारण रक्त दुष्टि होने से हृदय में उग्रता होती है और रक्त निपीड़ बढ़ जाता है। यही रसभार रक्तभार या मद कहा जाता है।

लक्षण—शिरःशूल, काम करने में अनिच्छा, अरति, किसी कार्य में मन न लगना, वस्तु उठाने में असमर्थता या उठाने पर गिर जाना आदि लक्षण होते हैं।

विशेष—सर्पगन्धा हरा ताजा लें उसकी जड़ लाभ करती हैं। १-२ ग्राम शकर शर्बत या गुलाब जल से देने से उन्माद में लाभ होता है। १५ दिनों से अधिक दिन सर्पगन्धा का प्रयोग लगातार न करें। बीच बीच में नाग पाषाण पिष्टी, अकीक पिष्टी, मुक्ता पिष्टी मिलित १-२

---

1 प्रयोगः सप्तसप्ताहस्त्रयश्चैकश्च सप्तकः : निर्दिष्टास्त्रिविधस्तस्य परो मध्योऽवरस्तथा: ॥ —च. चि. १।३।५४

रत्ती मधु से दे दिया करें। यदि लाभ में देरी हो तो कुहनी के मोड़ की रक्त वाहिनी से पिचकारी द्वारा २-३ सी. सी. रक्त १-२ बार, कुछ अवकाश देकर निकाल लें। इससे उन्माद और रक्तभार में लाभ हो जाता है।

—वैद्य श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव
अरौल (कानपुर)

सारिवादि वटी

संदर्भ ग्रंथ—भै० र० कर्णरोगे।

घटक—सारिवा (अनन्त मूल), मुलैठी, कूठ, दालचीनी, इलायची छोटी बीज, तेजपत्ता, नागकेशर, प्रियंगु, नीलकमल, गिलोय सत्व, लौंग, हरड़, बहेड़ा और आंवला प्रत्येक एक-एक तोला लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। अभ्रक भस्म १४ तोला, लौहभस्म १४ तोला लेकर एकजीव करें। बाद में भृङ्गराज के रस की भावना दें। इसके बाद अर्जुनछाल के क्वाथ, मकोय स्वरस, गुँजा की जड़ के क्वाथ की पृथक-पृथक भावना देकर ३-३ रत्ती की गोली करें।

अनुपान—गोदुग्ध या शतावर रस, चन्दन के घृष्ट जल से।

गुण—कर्णरोग, प्रमेह, रक्तपित्त, जीर्णज्वर, अपस्मार उन्माद, रक्तातिसार, रक्तार्श, हृद्रोग, मदात्यय तथा रक्तप्रदरादि रोगों में अत्यन्त उपयोगी है।

इस वटी का उपयोग कर्ण रोग में अधिक किया जाता है। कान का बहना, कान में सांय-सांय की आवाज होना, ऊँचा सुनना आदि विकार दूर होते हैं।

किसी भी कारण से मस्तिष्क में ऊष्मा पहुँचकर अथवा वातवाहिनियों में विकृति होने से कान में बहरापन आ जाता है, कान में दर्द होता है तो इसके सेवन से लाभ मिलता है। इसी के साथ कान में डालने वाले तेलों को अवश्य ही डालना चाहिए।

विशेष विवेचन—मैं इसमें १५० ग्राम शिलाजतु का मिश्रण करता हूं जिससे संक्रमण रोकने में तथा कर्ण पूय में यह विशेष लाभप्रद हो जाती है।

—डा० श्री धर्मपाल मित्तल ए., एम. बी. एस.
जगराओं (पंजाब)

शोणितार्श निषूदिनी वटी

वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त (विशेष सम्पादक)

संदर्भ ग्रंथ—सिद्ध भैषज्य मंजूषा

पलंखूनखरावाख्यं मद्वद्काहरवाभिधः।
रसाञ्जनार्धं वीज कुडव तरुणी रसैः॥
प्रविष्य हरिमन्थाभा वटिका भक्षयेज्जलैः।
अनुभूता पायुजेषु "शोणितार्शोनिषूदिनीः"॥

अर्थात् १ पल (४ तोला) खून खरावा (दम्मुख अखवैन) १ पल (४ तोला) कहरवा समई। रसौत १ कुड़व नीम बीजगिरी १ कुड़व इन सबको एकत्रकर गुलाब जल के साथ पीसकर, चने के बराबर-२ वटी बनालेवें। यह रक्तार्श के गिरते हुए खून को बन्द करने में प्रसिद्ध एवं अनुभूत योग है।

२. बबूल वृक्ष के फूलों के समानभाग शक्कर मिलाकर या नागकेशर (असली) को घी-शक्कर या मिश्री के साथ सेवन से रक्तार्श से गिरता खून बन्द होता है। यथा—

बब्बूल पुष्पाणि सशर्कराणि रक्तस्रुतेराशु निवारकाणि।
तथैव लीढानि सिताघृताभ्यां चूर्णानि दन्तावल केसरस्य॥
दन्तावलकेसर=नागकेशरः॥

३. रसाञ्जनंरसैः पिष्ट सहस्त्रसुमपत्रजैः।
स्रावच्छोणितधाराणां दुर्नाम्नां वर्षहारकम्॥

अर्थात्—रसौत को गैंदा (गुल हजारा) के पत्तों के रस से मर्दन कर चणे समान वटी करें। इसके बार-बार जलसे प्रयोग करने से निश्चय ही बवासीर से गिरता हुआ खून बन्द होता है।

गुल हजारा—हजारी गैंदा—इतिप्रसिद्धः

गुलहजारा के फूल के बीज और उसी के समान काली मिर्च लेकर जल सहित पीस गोली करें और इसको मात्र ६ दिन सेवन करावें तो अर्श नष्ट होवें।

—वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त बी. आई. एम.
५८/६८, नीलवाली गली, कानपुर—१

अग्नि मुख मण्डूर

विशेष सम्पादक—शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगांक

ग्रंथ संदर्भ—भैषज्य रत्नावली. शोथ रोगाधिकारे।

घटक—उत्तम मण्डूर भस्म १२ भाग, गोमूत्र अष्टगुण अर्थात् ९६ भाग।

प्रक्षेप द्रव्य—छोटी पीपल और सौंठ २-२ भाग, पिपलामूल, चव्य, चित्रक, देवदारू, नागरमोथा, कालीमिर्च, बीज रहित हरड, बहेड़ा, आंवला ये प्रत्येक १ भाग। इन सबका कपड़छन चूर्ण लना लेवें।

निर्माण विधि—प्रथम कढ़ाही में गोमूत्र और मण्डूर भस्म डालकर, अग्नि पर रखकर, करछुले से तब तक चलाते रहें, जब तक मण्डूर शुष्क न हो जाय अर्थात् जलांश जल न जाय। तत्पश्चात् कढ़ाही को नीचे उतारकर उसमें उक्त कपड़छन चूर्ण मिलावें, और उसमें उतना घृत मिलावें कि समस्त द्रव्य ठीक प्रकार से स्निग्ध हो जाय। फिर गोली बनाने योग्य उसमें मधु और घृत मिलाकर अच्छी तरह से मर्दन करके २-२ रत्ती की गोलिया बनालें।

मात्रा—१ से २ गोली। अनुपान–तक्र या पुनर्नवादि क्वाथ। समय–प्रातः सायं।

गुण—

यह मण्डूर साध्य और असाध्य सभी प्रकार के शोथ को और चिरकालीन पाण्डुरोग को नष्ट करता है। जबकि रोगी शोथ से भी युक्त हो, इसको विशेषकर शोथ में प्रयोग किया जाता है।

मण्डूर स्वभावतः भयंकर सर्वांगीण शोथ और उसके कष्ट को दूर करने के लिए, पुनर्नवाष्टक क्वाथ के साथ उपयोग किया जाता है। यही नहीं कामला रोग में भी कुटकी, त्रिफला और हरिद्रा चूर्ण के साथ मिलाकर देने से शीघ्र लाभ होता है। उदरकृमि, शोथ, अर्श, ग्रहणी, प्लीहा और पाण्डु में मण्डूर भस्म को वायविडंग, त्रिफला, पंचकोल और नागरमोथा के चूर्ण के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाता है।

पुनर्नवाष्टक क्वाथ—पुनर्नवा, निम्बछाल, पटोलपत्र, सौठ, कुटकी, गुर्च, दारुहल्दी और हरीतकी।

पंचकोल—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक और सौंठ।

इस अग्निमुख मण्डूर का अनुपान पुनर्नवाष्टक या पुनर्नवादि क्वाथ है। जहां मण्डूर शोथघ्न है वहां पुनर्नवा भी शोथहर में किसी से कम नहीं। इसका नामही शोथघ्न है। यथा "पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नी दीर्घ पत्रिका।"

पुनर्नवा में मूत्रोत्पादक पोटेशियम-नाइट्रेट की मात्रा अधिक प्रमाण में ६.४१% तक होने से यह मूत्रल गुण विशिष्ट भी है। डा० देशाई का कहना है कि पुनर्नवा का मूत्रल गुण उत्तम और उच्चकोटि का है। प्रत्यक्ष अनुभव में भी ऐसा ही पाया जाता है। इस अग्निमुख मण्डूर में पंचकोल, त्रिफला, नागरमोथा, कालीमिर्च और देवदारू का भी योग है जोकि पाचन, वातकफ नाशक होने के साथ-साथ प्लीहाहर अनाह व गुल्म रोग को नष्ट करता है। रक्तवर्द्धक मण्डूर के साथ होने से इसका शीघ्र पाचन कर सीधा रक्त के कोषाणुओं को बढ़ाने में यह प्रयोग अद्वितीय है। इससे पाण्डु रोग का तो नाश होगा भी तज्जन्य शोथ भी निःसंदेह नष्ट होता है।

अग्निमुख लौह

डा० श्री सिद्धगोपाल शुक्ल 'पुरोहित' एम. ए., बी. ए. एम. एस., डी. एस. सी. (ए.)

अग्निमुख लौह का पाठ भैषज्य रत्नावली तथा चक्रदत्त में आया है।

मुख्य घटक—

नाम	हिन्दी नाम	प्राचीन प्रमाण	आधुनिक प्रमाण
१. त्रिवृत जड़ छाल	निशोत	६४ तोला	६४० ग्राम
२. चित्रक जड़ छाल	चीता की छाल	,,	,,
३. निर्गुण्डी जड़ छाल	सम्हालू	,,	,,
४. स्नुही जड़ छाल	थूहर	,,	,,
५. मुण्डी जड़ छाल	गोरखमुण्डी	,,	,,
६. जल	पानी	४०९६ तोला	४०९६० ग्राम
७. मैंनसिल से बना लौहभस्म	लौह भस्म	९६ तोला	९६० ग्राम
प्रक्षेप द्रव्य			
१. वायविडङ्ग	वायविडङ्ग	२४ तोला	२४० ग्राम
२. शिलाजीत	शिलाजीत	४ तोला	४० ग्राम
३. त्रिकटु	त्रिकटु	६ तोला	६० ग्राम
४. त्रिफला	त्रिफला	४० तोला	४०० ग्राम
अन्य द्रव्य			
१. गोघृत	गोघृत	१९२ तोला	१९२० ग्राम
२. मधु	शहद	९६ तोला	९६० ग्राम
३. शक्कर	शक्कर	९६ तोला	९६० ग्राम

निर्माण विधि—उपरोक्त मात्रानुसार मुख्य घटक की पाँच वनौषधियों की जड़ की छाल का जवकुट चूर्ण जल में डालकर पाक करें। जब क्वाथ १/४ भाग अर्थात् १०२४० ग्राम अवशिष्ट रहे, तब गोघृत लेकर उसमें लौह-भस्म भून डालें और अवशिष्ट क्वाथ उसमें मिला दें और पाक करें। जब गाढ़ा हो जावे तब उसमें प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण डाल देवें। शीतल होने पर मधु व शक्कर मिलावें।

नोट—१. इसमें पाठ भेद से भैषज्य रत्नावली में अजंझटा भी लेते हैं। परन्तु अजंझटा याने भूआवला और यह वीर्य विरोधी हो जाता है तथा अग्नि विरोधी भी हो जाता है और अग्निमुख लौह को सार्थक नहीं करेगा अतः त्रिवृत, चित्रक, निर्गुण्डी, स्नुही एवं मुण्डी के साथ भूआंवला को नहीं लेते हैं। उपरोक्त पांचो वनौषधियां उष्ण वीर्य एवं कटु रस प्रधान हैं जबकि भूआंवला शीतवीर्य है।

२. मनःशिला से लोह भस्म विधि—लोह के ८० ग्रा. विशोधित चूर्ण को २० ग्राम मैंनसिल चूर्ण के साथ मिला कर घृतकुमारी के रस में घोटना चाहिए। फिर इसकी छोटी-छोटी टिकियां बनाकर सुखाकर एक सकोरे में रख दें। इसके ऊपर समान मुँह वाले सकोरे को रख दें। फिर ३ अंगुल चौड़े स्वच्छ वस्त्र को गीली मिट्टी से लिप्त करके दोनों सकोरों के संधिस्थल इस प्रकार लपेटें कि हवा जाने के लिए स्थान न रह जाय। फिर इसे धूप में रखकर फूंक देवें। इस प्रकार लौह कुछ ही पुटों में भस्म हो जावेगा।

उपयोग—

अग्निमुख लौह बवासीर को नष्ट करने में उत्तम औषधि है। इससे अग्नि अत्यन्त प्रदीप्त होती है। इसका नाम ही इसके गुण को प्रदर्शित करता है। अर्श प्रायः पाचन संस्थान की विकृति के कारण होने वाला रोग है। यह पुरीष निवृत्त करने के स्थान पर प्रदर्शित होता है। प्रायः जिनको विबन्ध या बद्धकोष्ठ रहता है उनको ही बाद में अर्श रोग हो जाता है। अग्निमुख लौह के सेवन से यकृत की क्रिया सुधरकर दीपन, पाचन हो जाता है। इससे यकृत उत्तेजित होकर भेदन और रेचन, लेखन

क्रिया द्वारा शोथहरण करके, कृमियों को नष्ट करके पित्त-सरण का कार्य ठीक करता है। जिससे भोजन हजम होकर शौच ठीक एवं ढीला जाने लगता है। साथ ही अर्श में होने वाली वेदना, शोथ, व्रण आदि को यह नष्ट कर नया रस, रक्त उत्पन्न कर नई रसायनी शक्ति प्रदान करता है।

विशेषता—इस अग्निमुख लौह की प्रशंसा में कहा गया यह वाक्य सत्य है कि "ऐसा कोई रोग नहीं जिसे यह नष्ट न कर सकता हो" इसका यह अर्थ है कि प्रायः अधिकांश रोग मन्दाग्नि के कारण होते है और यह मंदाग्नि को नष्ट करने के लिये अग्नि के समान है। इसके सेवन से सचमुच खूब भूख लगती है तथा गुरु एवं कठिन द्रव्य शीघ्र पचने लगने लगते हैं। अल्प मात्रा में अन्य रोगानुसार औषधि इसके साथ मिलाकर देने से अत्यन्त शीघ्र लाभ होता देखा गया है।

विशेष पथ्य—इसके प्रयोग काल में रोगी को करीर, कंजिक, कुम्हड़ा, ककड़ी, करेला, कांजी आदि ककारादि गण का प्रयोग नहीं कराना चाहिए। क्योंकि ये पदार्थ उदर में जाकर इस औषधि के साथ क्रिया करके लौहकिट्ट का निर्माण कर लेते हैं। और खाया हुआ अग्निमुख लौह किट्ट रूप में मलमार्ग से बाहर निकल जाता है तथा औषधि का प्रभाव नहीं मिल पाता है।

ककारादि गण में निम्न द्रव्य आते हैं—

कंटकारी फल, काञ्जी, कछुवे का तेल, राई तेल, नीबू रस, निर्मली फल, तरबूज फल, कूष्माण्ड, ककड़ी, मोर मांस, मुर्गामांस, करेला, कर्कोटकी फल, भंटा फल, कपित्थ (कैंथा) फल, काकुन, सुपारी, बेर, कलवन, वाराह मांस, कुलथी, कटु (सरसों तैल) तैल, गौरैया, मटर, काशीफल, गदहपुरना भाजी, काली निशोथ।

प्रयोग काल में हानि—मेरे दो रोगियों ने औषधि सेवन काल में ककरादि गण का सेवन किया परिणाम स्वरूप उन्हें मलकिट्ट के रूप में आया तथा भयंकर शीत पित्त का असर आया। जिसे अन्य औषधि देनी पड़ी।

इस औषधि से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ हूं और इसका उपयोग निम्न प्रकार के रोगियों पर करके यह लाभ कमाया है—

मात्रा—३७५ मिग्रा० से ७५० मिग्रा० तक दिन में ३ बार।

रोग नाम	रोगी संख्या	औषधि मात्रा	अनुपान	समयावधि	लाभ	
					पूर्ण लाभ	अल्प लाभ
वातज अर्श	७	७५० मिग्रा०	दूध से	१ माह	६	१
आमवात	५	,,	रास्ना सप्तक क्वाथ से	१ माह	३	२
उदररोग	५	३७५ मिग्रा०	दूध से	१५ दिन	५	×
मंदाग्नि	५	७५० मिग्रा०	गर्म जल से	१५ दिन	४	१
पित्तज अर्श	२	७५० मिग्रा०	घृत से	२ माह	१	१
कफज अर्श	२	,,	गर्म जल	१ माह	१	१
पांडुरोग	५	,,	तक्र के साथ	१ माह	४	१

टिप्पणी—अग्निमुख लौह के प्रयोग करने से अर्श, उदर रोग, आमवात, पांडुरोग एवं मन्दाग्नि में जल्द लाभ मिलने लगता है। क्योंकि इसके प्रयोग से अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। अर्श में तो मस्से सूखने लगते हैं। मन्दाग्नि से होने वाले रोगों में चिकित्सकों को यह अवश्य उपयोग में लाकर देखना चाहिए।

—श्री सिद्ध गोपाल शुक्ल 'पुरोहित' एम.ए., बी.ए.एम.एस., डी.एस.सी.(ए.),
२६, दक्षिण मिलौनीगंज, जबलपुर (म० प्र०)

अम्ल पित्तान्तकलौह, प्रयोग और सफलता

श्री पुण्यनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य

सन्दर्भ——भैषज्य रत्नावली. प्रकरण—अम्लपित्त, निर्माण घटक—

वस्तु या द्रव्य नाम	रस	गुण	वीर्य	विपाक	प्रभाव
शुद्ध पारद	षड् रस	गुरु, स्निग्ध, सर	उष्ण	मधुर	त्रिदोषहर (वायु पित्तकफ शामक)
शुद्ध गंधक	कटु-तिक्त	लघु, स्निग्ध	उष्ण	कटु	,, ,, ,,
मंडूर भस्म	कषाय-तिक्त	लघु, रूक्ष	शीत	मधुर	रक्त प्रसाधक, शोणितास्थापक
कान्तलौह भस्म	कषाय-तिक्त	गुरु, रूक्ष	शीत	मधुर	शोणितास्थापक, वल्य, वृष्य
अभ्रक भस्म (शतपुटी)	कषाय-मधुर	लघु स्निग्ध	उष्ण	मधुर	वात, पित्तकफ शामक

प्रमाण—समभाग, (उपर्युक्त पाँचों द्रव्य समान भाग में तौलकर)।

प्रथम—पारद और गन्धक को खरल में डालकर कज्जली बनालें। तत्पश्चात् अतिरिक्त द्रव्यों को मिलाकर खरल में एकजीव करलें। अब हरे आंवला का स्वरस या सूखे आंवलो को काढ़े के विधि से तैयार किया गया काढ़ा की भावना देकर सुखालें। गोली बनाने योग्य होने पर खूब खरल करके २-२ रत्ती की गोली बना सुखाकर शीशी में रखलें।

इस योग में आंवला स्वरस या काढ़ा घटक द्रव्यों के निम्न खनिज धातुओं की तीव्रता को शमन कर देती है, क्योंकि आंवला स्वयं ही गुण में रूक्ष स्निग्ध वीर्य में शीत विपाक में-मधुर, रस में-अम्लता स्वाभाविक हैं। इसका प्रभाव त्रिदोषहर, पित्तशामक और वीर्य शोधक रसायन है।

यह दवा आमाशयान्तर्गत पित्त विदग्धतामूलक अम्ल का उत्पादन होने में बाधक है तथा सौम्य है। यकृत प्लीहान्तर्गत रक्ताणु में पित्ताधिक्य से अधिक पीताभ को नष्ट कर क्षारीयतत्व को शमन करती है। आमाशयगत मोदन, श्लेष्मा का अम्ल के साथ निर्माणाधीन अम्लता को न बनने में पूर्ण सहायक होती है। प्लीहा का कार्य तेज कर रक्त निर्माणक होती है।

यह दवा अम्ल अधिकता को अपने गुणों से प्रभावित कर शमन करती है और पित्त की समता के कारण अधिक अम्ल बनना बन्द हो जाता है।

इसी क्षमता की आयुर्वेद में अनेक औषधियाँ प्रस्तुत हैं। धात्रीलौह, नवायसलौह आदि। लौह से रक्त का निर्माण स्वाभाविक है क्योंकि इसका प्रभाव यकृत् प्लीहा पर विशेष पड़ता है और उसकी क्षमता के साथ समता में भी सहायक होती है।

१. मक्खन के साथ प्रतिदिन सुबह शाम अम्ल पित्तान्तक लौह का ४ रत्ती मात्रा में गिलोयसत्व ८ रत्ती मात्रा में मिलाकर प्रयोग करने से अम्ल की अधिकता ठीक होकर पित्तविकार शान्त हो जाता है।

२. शंख भस्म २ रत्ती, कपर्द भस्म २ रत्ती, अम्ल पित्तान्तक लौह ४ रत्ती मिलाकर १ मात्रा के हिसाब से दिन में तीन से चार बार देते रहने से आमाशय और आंत्रगत अम्ल द्रव से संचित विदग्धताजन्य अम्लशूल समूल नष्ट हो जाता है, अनुपान शीतल जल के साथ दें।

३. आमाशयगत अम्लद्रव का उत्सेध होकर उर्द्ध वायु के द्वारा गले में आकर जलन पैदा करना, अम्लयुक्त वमन होना इन अवस्थाओं में अम्ल पित्तान्तक लौह ३ रत्ती (३७५ मिग्रा०), गिलोयसत्व ७५० मिग्रा० (६ रत्ती) और अविपत्तिकर चूर्ण ६ ग्राम ताजा जल से देते रहने से रोग शीघ्र नष्ट हो जाता हैं।

४. यकृत और पित्ताशय के पित्ताधिक्य से प्रेरित अम्लोत्पत्ति से हृदय में जलन, आमाशय और आंत में जलन होने के साथ अम्ल पित्तान्तक लौह ४ रत्ती, शंख भस्म ४ रत्ती, गिलोय सत्व ४ रत्ती, अविपत्तिकर चूर्ण ६ ग्राम मिलाकर एक मात्रा के हिसाब से सुबह शाम खाली पेट ५ विल्वपत्र के साथ २॥ तोला मिसरी पीसकर १ पाव जल के साथ शरवत के अनुपान से देते रहने पर उक्त रोग तीन रोज में निश्चय ही आराम होता है।

पित्त विशेषता के कारण हाथ-पैर के तल प्रदेश में, नेत्र और शिर में जलन होती है। इस अवस्था में अम्ल पित्तान्तक लौह १ माशा, गिलोयसत्व २ माशा मिलाकर दो तोला मक्खन, १ तोला मिसरी के साथ दो बार खाने से जलन शांत हो जाती है।

तृष्णा (पिपासाधिक्य) रोग में अम्ल पित्तान्तक लौह ३ रत्ती, स्वर्णमाक्षिक भस्म ३ रत्ती (३७५ मिग्रा०), मुक्तापंचामृत रस १ रत्ती मात्रा में मिश्रण कर मधु के साथ दिन में ४ से ५ बार देने से रोग शांत हो जाता है।

मूत्रवह स्रोतों में अम्ल विदग्धताजन्य जलन पैदा होकर मूत्र में जलन होती है। अवस्था प्रयुक्त इस लौह की ४ रत्ती मात्रा २ औंस अर्क गुलाब, १ औंस अर्क पुदीना, १ औंस मकोय अर्क, १५० मिग्रा० शुद्ध कलमी सोड़ा को अच्छी तरह शीशी में मिलाकर आठ औंस की शीशी में ८ खुराक लगाकर रोगी को दे दें। दिन में ४ बार देने से दो दिन में रोग समूल नष्ट हो जायगा।

पित्तजन्य अतिसार में अम्लयुक्त पीताभ दस्त होते रहने के समय अम्ल पित्तान्तक लौह २ रत्ती, कर्पूर रस २ रत्ती मिलाकर अर्क पुदीना ४ औंस, १ औंस जल के साथ देने से दो से तीन खुराक देने से रोग शान्त हो जाता है।

यकृत् दूषण की अवस्था में बालकों को उल्टी होती है जिससे कच्चा दूध भी निकल जाता है। इस अवस्था में इस लौह की ½ रत्ती, रससिन्दूर ½ रत्ती मात्रा मिलाकर मधु के साथ देते रहने से उल्टी शान्त हो जाती है।

स्त्री को गर्भ धारण के बाद प्रायः दो से तीन मास पर्यन्त पित्ताधिक्य से उल्टी होती हैं। इस अवस्था में अम्लपित्तान्तक लौह ३ रत्ती, गिलोयसत्व ६ रत्ती और लवंगादि चूर्ण चार आनाभर मिलाकर ताजा जल के साथ देने से उक्त अवस्था का शमन होजाता है।

ये सभी योग चिकित्साकालिक अपना अनुभवप्राप्त स्वानुभूत हैं।

—श्री पुण्यनाथमिश्र आयुर्वेदाचार्य
चि०—अरियादह रामानन्द चेरिटी औषधालय
५, एम. एम. फीडर रोड, कलकत्ता-७०००

तक्र मण्डूर का पांडु शोथ पर प्रभाव

डा० श्री सिद्धगोपाल शुक्ल 'पुरोहित'

तक्र मण्डूर का पाठ भैषज्य रत्नावली का है।

मुख्य घटक	अङ्ग	प्रमाण प्रा० मात्रा	प्रमाण आधुनिक मात्रा
शुद्ध मण्डूर	भस्म	३२ तोला	३२० ग्राम
गोमूत्र	—	६४ तोला	६४० ग्राम
बिल्व पत्र रस	पत्र	भावना योग्य	भावना योग्य
अरणीपत्र रस	,,	,,	,,
पुनर्नवा पत्र रस	,,	,,	,,
कोकिलाक्ष रस	,,	,,	,,
भृङ्गराज रस	,,	,,	,,

निर्माण विधि—उपरोक्त मात्रानुसार मण्डूर भस्म को गोमूत्र में डालकर घोटें, जब वह सूख जाय तब उसको ऊपर लिखित सभी वनस्पतियों के स्वरस से ३-३ बार भावित करें और घुटाई करें।

उपयोग—

यह पाण्डु के कारण होने वाली सूजन को नष्ट करने वाली उत्तम औषधि है। इससे यकृत की सूजन के कारण बिगड़ी तन्दुरुस्ती ठीक होकर, यकृत का नियमन होकर यथाविधि स्थिति स्थापित होती है। यह यकृत के कारण खून की कमी जिससे शरीर में सूजन हो जाती है को जल्दी नष्ट करती है। क्योंकि यह लीवर की ओवरहालिंग करने वाली औषधि है। इसके पथ्य के रूप में तक्र का सेवन करना इसकी उपयोगिता को बढ़ाता है।

पाण्डुशोथ में इसके प्रयोग से कोष्ठ शुद्ध होता है। लोहे के कारण ही हीमोग्लोबीन अधिक तैयार होकर रक्त की कमी की पूर्ति कर देता है। अग्निमांद्य नष्ट होता है। Toxic jaundice में यह औषधि शरीर की उष्णता और स्वेदावस्था में जल के प्रयोग से उष्ण हुआ यकृत तुरन्त शीतलता से सिकुड़ने लगता है और तब रक्त के स्थान पर पानी बनने लगता है, को नष्ट कर यकृत को प्रकृतिस्थ करती है। तक्र के कारण यकृत को पाचन सम्बन्धी कष्ट

नहीं उठाना पड़ता क्योंकि तक्र अपने गुण के कारण स्वतः शीघ्र पच जाता है।

यह औषधि तक्र के साथ पाक में हलकी, मधुर, अग्नि को दीप्त करती है। यह पुष्टिकारक और वातनाशक हो जाती है। विपाक में मधुर हो जाने के कारण यह पित्त को कुपित न कर उसका शमन करती है। कसैला एवं उष्ण विकासी होने के कारण यह कफ को दूर करती है। इस प्रकार यह त्रिदोष से उत्पन्न शोथ को भी दूर करती हैं।

सेवन विधि—तक्र मण्डूर १२५ मिग्रा. से २५० मिग्रा. तक दिन में तीन बार तक्र के साथ सेवन करना चाहिये। सौंठ चूर्ण पड़े प्रक्षेप के साथ तक्र का भोजन के रूप में प्रयोग करना अत्यन्त लाभदायक रहता है। कम से कम ७ दिन का लङ्घन अवश्य कराना चाहिए। लङ्घन के समय यथाविधि तक्र का ही सेवन हो।

स्वानुभव—मेरे द्वारा अभी तक ६ रोगियों पर यह प्रयोग किया गया है जिसका लाभ निम्नानुसार है।—

नाम रोग	कुल रोगी	तक्र मात्रा	लंघन अवधि	लाभ पूर्ण	लाभ अल्प
पित्तज पांडुशोथ	५	१० लिटर	७	५	×
वातज ,,	२	८ ,,	११	२	×
कफज ,,	२	७ ,,	७	१	१

अपथ्य—उपरोक्त लेखन क्रिया के साथ तक्र मण्डूर का सेवन करते समय निम्न अपथ्य से बचना चाहिये—

१. स्त्री संग, २. शारीरिक परिश्रम एवं मानसिक परिश्रम, ३. अधिक बोलना, ४. नमक, ५. जल।

पथ्य—एक मात्र तक्र सेवन और मौन रहने के साथ खाट पर आराम करना।

नोट—१. सौंठ चूर्ण स्वाद एवं मात्रानुसार प्रक्षेप द्रव्य के समान डालना चाहिये।

२. लङ्घन के समय सावधान रहना चाहिए क्योंकि रोगी की दीपन शक्ति के तीव्र होने से वह एकदम से खाना चाहता है जोकि अत्यन्त नुकसान पहुँचाता है।

३. प्रयोग काल में अन्य उपद्रव आ जाने पर उनकी चिकित्सा चिकित्सक स्वविवेक से करे।

—श्री सिद्धगोपाल 'पुरोहित'
एम.ए.,बी.ए.एम.एस.,डी.एस.सी.(ए)
२६, दक्षिण मिलौनीगंज, जबलपुर (म.प्र.)

तारा मण्डूर पर

सफल अनुभूत प्रयोग

डा० श्री कपूरचन्द जैन आयुर्वेद बृहस्पति

त्रिफला, त्रिकुटा, चाव, पीपरामूल, चीता, देवदारु, सोनामक्खि, हल्दी, नागरमोथा, विडंग ये कर्ष कर्ष भर मण्डूर शोध के सबसे दूना ले—फिर अष्ट गुने गौमूत्र में पकाय गोली बांध मठ्ठे के साथ खाय तो कामला, पांडु, प्रमेह, अर्श, शोथ, कुष्ठ, कफरोग, गठिया, अजीर्ण और प्लीहा इनको नाश करे।

१. परिणामशूल पर—भोजन के समय या बाद में पेट में अधिक मात्रा में दर्द होना उसे परिणाम शूल कहते हैं।

प्रयोग—तारा मण्डूर २ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती, शुद्ध कुचला १½ रत्ती—समस्त द्रव्यों को एकत्र करके शहद के साथ मात्रा १½ आना करीब सुबह+दोपहर+रात्रि १५ दिन सेवन करने से बहुत समय का दर्द गायब हो जाता है।

२. पीलिया (कामला) पर—लीवर (यकृत) के खराब होने से पित्त अधिक मात्रा में बनने लगता है।

प्रयोग—तारा मण्डूर २ रत्ती, पुनर्नवादि मण्डूर १ रत्ती, लोह भस्म १ रत्ती, प्रवाल चन्द्र बटी २ रत्ती, शंख भस्म १ रत्ती, मुक्ताशुक्ति १ रत्ती—समस्त द्रव्यों को एकत्र करके सुबह+दोपहर रात्रि १½ आना की मात्रा के करीब दूध के साथ १५ दिन तक सेवन करावें। तत्काल यह प्राण लेवा बीमारी ठीक हो जाती है।

३. मन्दाग्नि पर—धातु का आना, स्वप्नदोष होना आदि कारणों से लीवर (यकृत) कमजोर पड़ जाता है। जिससे मन्दाग्नि होकर गैस का बनना, पेट का फूलना, अपान वायु का बढ़ना आदि समस्त रोग दूर हो जाते हैं।

प्रयोग—तारा मण्डूर २ रत्ती, अग्नि कुमार रस १॥ रत्ती, आरोग्य वर्धनी १॥ रत्ती, नवायस लोह १॥ रत्ती, शंखभस्म २ रत्ती—समस्त द्रव्यों को एकत्र करके सुबह-दोपहर-रात्रि १५ दिन २ आना की मात्रा शहद के साथ सेवन करावें। परीक्षित है।

४. संग्रहणी पर—मन्दाग्नि के बाद अतिसार आमातिसार बिगड़ने पर ग्रहणी कमजोर हो जाती है। जिससे संग्रहणी का रूप हो जाता है।

प्रयोग—तारा मण्डूर २ रत्ती, कनक सुन्दर रस १॥ रत्ती, शंखभस्म २ रत्ती, स्वर्ण पर्पटी १ रत्ती—समस्त द्रव्यों को एकत्र करके सुबह+दोपहर+रात्रि मट्ठे के साथ १॥ आना भर की मात्रा एक बार सेवन करें। करीबन १ माह तक असाध्य से असाध्य संग्रहणी ठीक हो जाती है।

५. गुलमशूल पर—तारा मण्डूर २ रत्ती, शुद्ध कुचला २ रत्ती, शंख भस्म १ रत्ती, नवायस लौह १ रत्ती—समस्त द्रव्यों को एकत्र करके सुबह+दोपहर+रात्रि २ आना भर की मात्रा शहद के साथ लगातार १५ दिन सेवन करें शीघ्र लाभ होगा।

—डा. श्री कपूरचन्द जैन आयु. वृह.
सुभाष चिकित्सालय, हीरापुर (सागर) म० प्र०

ग्रन्थ का नाम—भैषज्य रत्नावली।

योग—कुड़ा की छाल ४ किलो, अशोक की छाल ३ किलो, मंजिठ, मोचरस, पाढ़, वेलगिरि, नागरमोथा, धाय के फूल, शीतलचीनी मांजूफल, अतीस, सोनागेरु, प्रवाल भस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म सभी ५०-५० ग्राम।

निर्माण विधि—कुड़ा छाल एवं अशोक छाल को ३५ किलो पानी में देकर चूल्हे पर चढ़ाकर क्वाथ बनायें, लगभग ६ किलो जब पानी शेष रहे तब छान लें और पुनः चूल्हे पर चढ़ाकर औटावें जब गाढ़ा होने लगे तब उपरोक्त

काष्ठ औषधियों का कपड़छन चूर्ण एवं भस्में मिला दें तथा जब गोली बनाने लायक हो जाय तब उतारकर ३-३ ग्राम की गोली बनाकर छाया में सुखालें। यह स्वाद में चरपरी, कषाय, तिक्त है।

नोट—भैषज्य रत्नावली में कुड़ाछाल समेत सभी १० औषधियाँ है। परन्तु मैं इसमें उपरोक्त इसके अतिरिक्त पाँच औषधियाँ अधिक मिलाकर बनाता हूं जिससे इसके गुण अत्यधिक शक्तिशाली हैं, और खासकर रक्तःस्राव में तो यह रामबाण औषधि है। रक्तःस्राव के लिए इससे शायद ही कोई अच्छी औषधि मिलें।

मात्रा एवं अनुपान—रक्त प्रदर एवं कुक्षिशूल में कुशामूल को पीसकर उसी जल के साथ दिन में तीन से चार वार तक १ गोली की मात्रा में, अथवा गर्म दुग्ध, अथवा गर्म जल के साथ, इसे दिन रात में आवश्यकता पड़ने पर ४-५ बार भी दिया जाता है। साधारणत. दिन में तीन वार तक। रक्तार्श तथा रक्तपित्त में मक्खन मिश्री के साथ। सभी तरह के प्रदरों में अशोक छाल क्वाथ से शीघ्र लाभ के लिए रक्तस्राव में २-२ गोली दिन में ४ बार तक।

रोग निर्देश—यह सभी तरह के प्रदरों में अमृत तुल्य है। इससे श्वेत प्रदर, रक्तप्रदर, नीले पीले रंग के कठिन से कठिन प्रदर रोग शीघ्र समूल नष्ट हो जाते हैं। कटिशूल, कुक्षिशूल नाशक और आयु; बल, वर्ण को बढ़ाने वाली यह अनमोल औषधि है। ऐसे तो केवल लौह ही रक्तप्रदर के स्राव को रोकने में पूर्णतः सक्षम है, और इस औषधि में अन्य रक्त स्तम्भक औषधियों के मिलने से इसकी शक्ति और भी अधिक बढ़ गई है, जिससे सभी प्रकार के प्रदर और शरीर के किसी भी अङ्ग से यदि रक्तस्राव हो तो इससे सफलतापूर्वक लाभ उठाया जा सकता है। रक्तस्राव के कारण आई निर्बलता, अरुचि आदि

विकार ठीक होकर रक्ताणुओं की इससे वृद्धि होती है। इससे प्रसवोत्तर रक्तस्राव, वृद्धावस्था का रक्तस्राव, घोर प्रदर रक्तस्राव, गर्भाशय में रक्तस्राव, गर्भाशय की कमजोरी, श्वेत प्रदर यथा शीघ्र आराम हो जाती है। स्त्रियों के रक्त स्राव की इससे कोई अच्छी औषधि आयुर्वेद में नहीं है। कितना ही अत्यधिक रक्तस्राव हो २ गोली की मात्रा में दिन में ३ से ४ बार प्रयोग करने पर २४ घण्टे में रक्तस्राव बन्द हो जाता है। गर्भस्राव की अवस्था में भी इसका कार्य अत्यन्त ही लाभप्रद साबित हुआ है। रक्ताल्पता, पांडु में भी इसका व्यवहार बहुत ही अच्छा रहता है। मैं इसे हमेशा बवासीर, रक्तपित्त, रक्तप्रदर तथा शरीर के किसी अङ्ग से यदि रक्तस्राव हो तो इस एक दवा के बल पर ही ठीक कर लेता हूं। इसके साथ यदि पत्रांगासव का व्यवहार स्त्रियों के रक्तप्रदर और रक्तस्राव में साथ-साथ भोजनोपरान्त किया जाता है तब और भी अत्यधिक लाभ मिलता है। इसमें पड़ने वाला अधिकांश द्रव्य रक्तस्राव रोधी हैं।

इससे दर्द के साथ यदि मासिक स्राव हो, काला अथवा थक्का-थक्का होता हो, रक्तस्राव के कारण शरीर पीला पड़ गया हो इन सभी शिकायतों के अतिरिक्त, पेड़ू का दर्द, सुस्ती, बदबूदार रक्तस्राव होना सभी दूर हो जाती हैं। लूप लगाने के पश्चात् रक्तस्राव होता हो अथवा गर्भस्राव के पश्चात् तथा गर्भ गिराने के बाद का रक्तस्राव हो इन सभी में यह औषधि आश्चर्यजनक कार्य करती है क्योंकि इसमें प्रवाल, गेरु, अशोक छाल, शीतलचीनी, मांजूफल का मिश्रण होने से इस औषधि की गुण ग्राहकता ६० प्रतिशत बढ़ गई है।

पथ्यापथ्य—दूध, घी, मिश्री, चावल, गेहूं, मूंग, अरहर की दाल, लौकी, नेनुआ, गोभी, टमाटर, पालक, बैंगन, तक्र (मठा), सेव आदि।

अपथ्य—पुरुष सहवास, तैल, खटाई, अधिक चाय, लालमिर्च, बासी एवं गरिष्ठ अन्न, बेसन के बने पदार्थ आदि।

—श्री डा० ब्रह्मानन्द गिरि ए., एम. बी. एस.
डंगरा (गया) बिहार

पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह

वैद्य श्री शोभालाल हीरालाल शास्त्री ए.एम.एस.

—०—

यह योग भैषज्य रत्नावली का है। इसमें घटक द्रव्य हिंगुलोत्थ शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक समान भाग, सुवर्ण-भस्म १/४ भाग, लौह भस्म, नागभस्म, अभ्रक भस्म इससे द्विगुण वङ्गभस्म, शुद्ध स्वर्ण गैरिक, प्रवाल भस्म ये तीनों पारद से अर्ध भाग लेकर तथा मुक्ता भस्म, शंखभस्म व मुक्ताशुक्ति भस्म पारद से चतुर्थांश भाग प्रत्येक का लेवें।

निर्माण विधि—सर्व प्रथम पारद गंधक को खरल में डाल खूब घोटकर कज्जली बनावें। कज्जली उत्तम बन जाय तब पर्पटीवत् पाक कर उपरोक्त सभी द्रव्य डालकर जल से मर्दन कर एक गोला बना लेवें। उस गोले के शुष्क होने पर मुक्ताशुक्ति के बीच में इस गोले को रख ऊपर मुक्ता सीप रख धागे से बाँध मृत्तिका का लेपन कर सुखा लेवें। इस गोले को पुटपाक रीति से पुट में फूंक देवें। पश्चात् खरल में खूब महीन पीस लेवें। यह योग तैयार हो गया। इसे कांच की शीशी या बरणी में भरकर रख लेवें।

अनुपान—देश काल मात्रानुसार भिन्न-भिन्न रहता है। मैं अधिकांश रोगियों को कदुष्ण नींबू रस आधी-आधी तोला मिलाकर २ गुंज इस रस को डालकर प्रायः दिन में दो बार प्रातः सायं क्वचित ३ बार भी देता हूं। प्रातः ८, मध्याह्न ४ बजे, रात को ८ बजे उक्त पान से देता हूं। इसके अतिरिक्त यथा प्रकृति पीपल चूर्ण शहद से कभी-कभी पीपल भर्जित हींग और सैंधानमक मिश्रित करके इसके शिवाय सितोपलादि चूर्ण २ माशे से २ रत्ती यह योग मिश्रित कर मधु से भी दिया जाता है इस। तरह यह योग दुष्ट विषम ज्वर में जहाँ क्वनाइन भी कार्य नहीं करता है बहुत दिनों से ज्वर नहीं उतर रहा है ठंडी देकर ज्वर प्रतिदिन आता है। रोगी की यकृत प्लीहा बढ़ी हुई है एवं रक्ताल्पता हो क्षीण हो गया है वहां यह योग उत्तम लाभ करता प्रतीत हुआ है। रोग को समूल दूर करने में कभी-कभी २१ से ३१ दिन भी लग जाते हैं पर आरोग्यता प्राप्त हो रही है इसका ४-५ दिन में ही पता चला जाता है। वैसे सभी रोगों की सदा निश्चित अवधि

नहीं रहती है कुछ ८-१० दिन में ही ठीक हो जाते हैं कुछ अधिक समय भी लेते हैं। यह योग जिन-जिन विषम ज्वर ग्रस्त रोगियों को दिया ८०% लाभ मिला है।

इस योग में कोई भी द्रव्य संदिग्ध नहीं है तथा सर्वत्र सुलभ हैं सभी काल में अनुपान भेद से यह सदा व्यवहृत होता है तथा सभी प्रकृत वालों को दिया जा सकता है। रसों की मात्रा अल्प होने से बाल, वृद्ध, युवा सभी सरलता से ले लेते हैं। हां जिनकी पित प्रकृति है उन्हें कम मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। इसके साथ-साथ ज्वर सौम्य होने पर या उतर जाने पर जिन रोगियों की तिल्ली ३ इंची बड़ी थी उन्हें भोजनोत्तर पुनर्नवारिष्ट और द्राक्षासव १५ मि. ली. समान जल मिलाकर देने से वह भी यथा स्थान मास भर की अवधि में आ गई तथा कब्ज नहीं रहनी चाहिए। यदि विबंध रहे तो मुनक्का १५ को १ कप पानी में औटाकर मसलकर थोड़ा सैंधव डाल कवोष्ण पिला देना चाहिए या रात्रि में त्रिफला चूर्ण देवें. इससे विबंध नहीं रहेगा शीघ्र आरोग्यता प्राप्त होवेगी।

इस प्रकार यह पुटपक्व, विषमज्वरान्तक लौह प्रधान रूप से तो जीर्ण ज्वर, दुष्ट विषमज्वर, पांडु, कामला, शोथ, ग्रहणी, कास, श्वास आदि रोगनाशक है।

—वैद्य श्री शोभालाल हीरालाल शास्त्री
मोहता औषधालय, हिंगणघाट (वर्धा)

यकृद् प्लीहोदरारि लोह

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु० केशरी

आयुर्वेद शास्त्र का यकृद प्लीहोदरारिलोह मेरी दृष्टि से आज तक निकले हुए सभी यकृद सम्बन्धी प्रयोगों में सर्वोत्तम है। यकृद सम्बन्धी जितने भी पेटेण्ट योग हैं और डाक्टर वैद्य जिनका उपयोग निरन्तर अपने रोगियों पर करते रहे हैं उन सब में यकृद प्लीहोदरारि लोह सर्वोत्तम योग है जो आज भी उपेक्षित है। यह योग भैषज्य रत्नावली का है।

हमारे औषधालय में बनने वाले प्रयोग का विवरण इस प्रकार है—

योग—शुद्ध पारद (अष्ट संस्कारित), शुद्ध आंवलासार गंधक, कान्तलोह भस्म, अभ्रक भस्म (निश्चन्द्र) मनःशिला, हरिद्रा, टंकण भस्म, शिलाजतु (शुद्ध सूर्यतापी) दन्ती बीज सभी औषधियां १०-१० ग्राम ताम्रभस्म २० ग्राम।

निर्माण विधि—सर्व प्रथम पारद गन्धक की कज्जली निश्चंद्र बनालें। फिर इसमें सभी भस्म एक-एक कर डाल दें फिर मनःशिला मिलाकर खरल करें। फिर शिलाजतु मिलालें फिर शेष औषधियां मिला लें। फिर दन्तीमूल क्वाथ, निसोत क्वाथ, चित्रक क्वाथ, निर्गुण्डी क्वाथ, त्रिकटु क्वाथ, अर्द्रक स्वरस, भृंगराज स्वरस की १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोली बनालें।

मात्रा—१-२ गोली।

अनुपान—छाछ या आवश्यकतानुसार।

शास्त्रोक्त गुण—

यह लौह जीर्ण, एक दोषज, द्विदोषज तथा त्रिदोषज, प्लीहा और यकृद की वृद्धि को रोकता है तथा आठों प्रकार के उदर रोगों को ठीक करता है। ज्वर, पांडु, कामला, शोथ, हलीमक, अग्निमांद्य, अरुचि आदि व्याधियों को मिटाता है।

इस प्रयोग की संकल्पना जहाँ यकृत् तथा प्लीहागत रोगों के लिए ही की गई है परन्तु यह सर्व उदर रोगों में लाभ करता है। ताम्र, पारद तथा लोह के सम्मिश्रण से यह योग यकृद प्लीहा पर विशेष लाभकारी है। दन्तीमूल, जमालगोटा, निशोथ, यकृद निश्चंद है। मनःशिला कीटाणु नाशक, दोषघ्न, लेखन, रक्तविकार नाशक और सारक है। टंकण कीटाणु नाशक, दुर्गन्धहर तथा पाचक है। अभ्रक रक्तवर्द्धक, मांस पौष्टिक, वातवर्द्धिनी नाड़ियों को पुष्ट करने वाली है। शिलाजतु रसायन तथा योगवाही है। भृङ्गराज तथा दन्ती बीज ताम्र की उष्णता का शमन करती है। चित्रक दीपन तथा पाचक है। त्रिकटु, निर्गुण्डी, तथा अर्द्रक पाचक तथा अग्निदीपक है।

इस योग का संगठन ऐसे द्रव्यों से हुआ है जिससे यह एक ओर ज्वर में लाभ करता है, दैहिक आमविषों को नष्ट करता है आमाशय को शुद्ध करता है दूसरी ओर उदर रोगों का तथा सर्वांग शोथ का नाशकर अग्नि को प्रज्वलित करता है।

लोह तथा ताम्र के योग से यह पाण्डु, कामला तथा हलीमक रोगों में भी लाभ कर रक्त संशोधन तथा नवरक्त सृजन करता है।

जीर्ण विषम ज्वर तथा पुनरावर्तक ज्वर आदि रोगों के कारण रोगी के यकृत प्लीहा की वृद्धि होकर रक्ताल्पता, अग्निमांद्य, क्षीणता तथा मूत्रपीतता हो जाती है, देह में शिथिलता आ जाती है ऐसी स्थिति में यह लोह लाभ पहुँचाता है। उदर शोधन कर ज्वर को निःशेष करता है। यह रक्त का अवसेचन कर प्लीहा वृद्धि में सत्वर लाभ करता है। ऐसी स्थिति में यह औषधि त्रिकटु तथा मधु के साथ देनी चाहिए। साथ में रोहितकारिष्ट भी देना चाहिए।

अतिवृद्ध यकृत अथवा प्लीहा में जब यकृत नाभि तक चला जाता हैं तथा पाण्डु, कामला, ज्वर आदि के लक्षण दृष्टिगत होते हैं तब नाक, मुंह, तथा गुदा से रक्त स्राव होता है तब यकृत्प्लीहोदरारि लोह सावधानी से अति अल्पमात्रा में देनी चाहिए। तथा शक्कर त्याग करना चाहिए। ऐसी स्थिति में केवल फलों का रस देना चाहिए।

मद्य के व्यसनी व्यक्तियों में यकृद्दाल्युदर रोग हो जाता है। ऐसी स्थिति में यकृत में भारीपन, खट्टी डकार, वमन, आध्मान, क्षुधानाश, कोष्ठबद्धता, मुख मण्डल पर निस्तेजता, हृदय की विकृति क्षीणता आदि लक्षण हो जाते हैं। तब यह योग त्रिफला कषाय के साथ देना चाहिए। इस समय मद्यपान बन्द करा देना चाहिए और हल्के पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिए।

इस प्रकार यह लोह उदर में संचित जल को कम कर रोगी को स्वस्थ कर देता है।

—वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयु. केशरी
मकराना मोहल्ला
जोधपुर।

रोहितक लौह

वैद्य श्री चन्द्रशेखर व्यास

ग्रंथ—भै० र० (प्लीहा यकृदाधिकार)

योग—रोहितक छाल का चूर्ण १० ग्राम, त्रिफला चूर्ण, त्रिकटु चूर्ण, त्रिमद चूर्ण-प्रत्येक ३०-३० ग्राम, लोहभस्म १०० ग्राम, इन्हें मिलाकर खरल करें।

मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—मधु।

सहपान—रोहितक छाल ६० ग्राम, बड़ी हर्र की छाल ६० ग्राम।

इन दोनों को मिलाकर ओखली में कूटकर १० पुड़िया बनालें। क्वाथ विधि से क्वाथ बनाकर क्वाथ जल में २ ग्राम यवक्षार तथा १ छोटी पीपल का चूर्ण मिलाकर रोहितक लोह की १ पुड़िया मधु में चाटकर क्वाथ पीलें।

मेरा अनुभव

१. सन् १६४३ के सितम्बर मास में प्रभाती नाम के १५ वर्षीय कुमार को यह प्रयोग करवाया। १०० दिन में पूर्ण लाभ हुआ। अन्न जल बन्द करके केवल दूध दिया।

२. सन् १६५० में कलकत्ते में राजवली सिंह ५० वर्षीय को यही प्रयोग १०० दिन तक करवाया गया पूर्णरूप से लाभान्वित हुआ। दोनों बीमारों के पेट से ३-३ दफें जल डाक्टर ने निकाला था तथा जबाब दे दिया था।

—वैद्य श्री चन्द्रशेखर व्यास
चूरू

रोहितक लौह

श्री पुण्यनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य

संदर्भ—सिद्ध योग संग्रह।

योग—हर्र, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल चित्रकमूलत्वक, मुस्तक (नागरमोथा), वाय विडंग १२-१२ ग्राम, रोहितक त्वक सार १०८ ग्राम, लोह भस्म १०८ ग्राम। उपरोक्त सभी द्रव्यों का मापतौल के अनुरूप सूक्ष्म चूर्ण कर अच्छी तरह मिलाकर शीशी में रख लें। यह संदर्भ सिद्ध योगसंग्रह यकृत प्लीहाधिकार से उद्धत लोह रसायन रूप में प्रयुक्त होता है। पृथक-पृथक रूप में गुण धर्म का विवेचन कर दिया गया है, किन्तु औषध समूहों

के मिश्रित शक्ति का संघठित प्रयोग —रोहितक लौह नामक औषध का गुण इस प्रकार है—

मात्रा—३-३ रत्ती ३७५ मि ग्राम। सेवनकाल–सुबह शाम, अनुपान—दूध अथवा छाछ, किम्वा मधु से चाटकर ऊपर से ४ औंस (११४ मी.) गोमूत्र के साथ पूर्ण मात्र है। वयसानुसार मात्रा का घट-बढ़ हो सकता है।

उपयोग—

यकृत और प्लीहा वृद्धि, शोथ, पाण्डु, चिर नवीन विषम ज्वर रक्ताल्पता (Anaemia) आदि विकार में की जाती है।

यकृत प्लीहा वृद्धि जन्य मन्दाग्नि से अरुचि में, शीतानुकूलीत कम्प होकर ज्वर चढ़ना। रक्ताल्पता के कारण दौर्बल्यावस्था में। रक्तहीनता जन्य शोथ, पाण्डु, कामला, हलीमकता, रोग में रोहितक लौह का प्रयोग होता है।

लौह और रुहेड़ा वृक्ष की अन्तर्छाल ये दोनों द्रव्य मुख्यरूप में प्रयुक्त होकर यकृतप्लीहान्तर्गत रक्त का उत्पादन बढ़ाकर, अग्नितीव्र करते हैं और तज्जन्य उदर विकार शीघ्र नष्ट हो जाता है। उदरगत-मन्दाग्नि मूलक, अजीर्ण-शोथ-आध्मान सभी शिकायतें निरन्तर सेवन से नष्ट हो जाता है।

गोमूत्र का अनुपान प्लीहा वृद्धिकाल में ज्वर में यदि मलावरोध हो तो अत्यन्त लाभजनक होगा।

टिप्पणी—१. उपरोक्त लौह के सभी घटक द्रव्य मिला लेने के बाद, रोहेड़ा (रोहितक वृक्ष की अन्तर्छाल) से बने काढ़े की सात भावना देकर सुखा लेने के बाद औषध तैयार हो जायेगी। (सि. यो. सं.)

२. रोहेड़ा वृक्ष की छाल यदि अधिक मात्रा में उपलब्ध न हो तो गोमूत्र की भावना भी गुणदायक होगी— (स्वानुभूत है)

लौह सेवनकाल में भोजनोपरान्त रोहितकारिष्ट का भी प्रयोग करना अत्यधिक जरूरी है। लवण वर्जित है।

—श्री पुण्यनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य
चि०—अरियादह रामानन्द चैरिटी औषधालय
५-एम. एम. फीडर रोड, कलकत्ता-७०००५७

शोथारि लौह

ग्रन्थ संदर्भ —भै. र. शोथरोगे

अयोरजस्त्र्यूषण यावशूकं
चूर्णञ्च पीतं त्रिफला रसेन्द्र।
शोथं निहन्त्यात्सहसा नरस्य,
यथाऽशिनि वृक्षमुदप्रवेगः॥

अर्थात्–उत्तम लौह भस्म ४ तोला। सोंठ, मिर्च, पीपल और यवक्षार ये प्रत्येक १-१ तोला लेकर परस्पर मिलाकर शीशी में रखें।

मात्रा—२ रत्ती। अनुपान—त्रिफला क्वाथ, पुनर्नवा क्वाथ। प्रतिदिन दिन में २ बार सेवन करने से शोथ रोग निश्चय ही नष्ट हो जाता है। वह शोथ चाहे जहाँ का शरीर पर हो चाहे जिस किसी भी कारण से उत्पन्न हुआ हो। पथ्य में अम्ल रस वाले द्रव्य न दें। अनुपान में निम्न पुनर्नवादि क्वाथ उपयोगी है—

पुनर्नवा, देवदारू और गुर्च बराबर-बराबर लें। मात्रा २ तोला जल एक पाव शेष २ छटांक इसी में २ तोला गोमूत्र भी मिला सकते हैं।

विशेष—मैं इसको गोखरू क्वाथ, पुनर्नवामूल क्वाथ, तथा मूली स्वरस की ७-७ भावना देता हूं तथा समभाग इस में शिलाजीत शुद्ध भी मिलाता हूं।

उपयोग—

यह रस सर्व प्रकार के शोथ रोग विशेषतया वृक्कशोथ में विशेष लाभप्रद है। इसमें शिलाजीत वृक्कप्रदाह को शीघ्र ठीक करता है तथा लौह भस्म वृक्कशोथजन्य पाण्डु रोग को ठीक करता है। यवक्षार मूत्रल होने से शोथ को हरता है। इसी हेतु से मैं इसे पुनर्नवा एवं गोखरू क्वाथ की भावना देता हूं। यदि मूत्र परीक्षा करने पर रक्त पूय (Puscells+R. B. C.) कीटाणु तथा Albumin आता हो तो साथ में यदि Penicillin का सूचीवेध दिया जाय तो शीघ्र लाभ करता है। तथा जीर्ण वृक्कशोथ (Nephrotic Syndrom) में इस योग के साथ यदि Prednisolon 60 mg. प्रतिदिन के हिसाब से दिया जाता है तो आशातीत लाभ मिलता है।

—डा. श्री धर्मपाल मित्तल ए., एम. बी. एस.
जगराओं (पंजाब)

लौह सप्तामृत

आयुर्वेद मार्तंड श्री गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'

इसका नाम "लौह सप्तामृत" इसलिए है कि इसमें लौह भस्म प्रधान है, शेष छः तोला लौह भस्म में मिलकर रसायन का रूप ले लेते हैं। आयुर्वेद में वर्णन है—

त्रिफला लौह चूर्णं च माक्षिकंमधुयष्टिका।
सायंमाज्यान्वितं माषं सद्यस्तिमिरनाशनं ॥

—योगचिन्तामणि

अर्थात् लौह भस्म, हर्र, बहेड़ा, आंवला, मुलहठी, गोघृत और शहद से सिद्ध करें। मधु और घृत को छोड़कर लौह भस्म सहित शेष पांचों को खरल में डालकर इतना घोटें कि अत्यन्त महीन हो जावे। कपड़छन से भी महीन होना जरूरी है। जितना घोटा जायेगा उतना ही यह योग लाभकर होगा। जब खूब घुट जावे तब इसे किसी कांच के बर्तन में भरकर उसका मुंह बन्द करके रख लें।

सेवन विधि इस प्रकार है कि दिन में अर्थात् २४ घंटों में नित्य ३ बार एक-एक माशा यह दवा लेकर इसे गोघृत से सिंचित कर दुगुना शहद मिलाकर खा लें या चाटलें। शहद अधिक डालने से यह चाटने योग्य अवलेह जैसा बन जायेगा। स्मरणीय है कि घृत गोघृत ही हो यदि अप्राप्य हो तो अन्य शुद्धघृत ले सकते हैं। गौ का घी अधिक लाभप्रद होगा। इसी प्रकार शहद का भी ध्यान रखना आवश्यक है। नकली न हो। इसका विशेष ध्यान रखा जाय। घी और शहद की विशुद्धता की ओर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। मुलहठी, आंवला, हर्र, और बहेड़ा ये चारों ताजा हों। वर्षों पड़े सड़े-गले घुने हुए न हों। लौह सप्तामृत नेत्र के समस्त दोषों को दूर करने में अपना अद्भुत चमत्कार दिखाता है। इसके सेवन से मोतियाबिन्दु के होने का भय ही नहीं होता। आंखों का जलना, दर्द होना, खुजली, लाली, सूजन रहना आदि विकार पास नहीं फटकते और हो गये हों तो नष्ट हो जाते हैं।

इसके सेवन के साथ ही दो गिरी बादाम की अच्छी बढ़िया शुद्ध सौंफ और आवश्यकतानुसार मिश्री मिलाकर सोते वक्त चबालिया करें। जो चबा नहीं स कें तो वे बारीक पीसकर ले लिया करें तो यह योग सोना और सुगन्ध बन जायेगा। लौह सप्तामृत लेने वाले व्यक्ति को अनेक रोगों से मुक्ति मिल जाती है। जैसे—

तिमिर, शूल, वमन, मूत्राघात, आनाह, ग्लानि, ज्वर, अम्लपित्त, और शोथ आदि विकार दूर करता और नेत्र रोगों का नाश होता है वा वात पित्त और कफ तीनों प्रकृति वालों के लिए हितावह है। इससे पाचनक्रिया सुधरती है। मस्तिष्क, नेत्र, कान, नाक, कण्ठ आदि इन्द्रियों की शक्ति बढ़ाता है। इससे मलावरोध, अग्निमांद्य, रक्त-विकृति, श्वास, कास, आम प्रकोप, कफवृद्धि, उदरकृमि, वात-विकार, और शारीरिक निर्बलता दूर होती है और शनैः-शनैः देह सबल और तेजस्वी बन जाती है।

लौह सप्तामृत सेवन करने वालों को तम्बाकू, सिगरेट, बीड़ी, आदि से बहुत दूर रहना चाहिए। धूल, धूप और धुंआ से भी बचना चाहिए।

इस लौह सप्तामृत का विशेष चमत्कार एक वर्ष तक निरन्तर सेवन करने पर देखने को मिलता है। परहेज की बहुत कम आवश्यकता है। केवल तीव्र खटाई, लालमिर्च, आदि स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाले पदार्थों से बचना चाहिए। इन वस्तुओं का अधिक सेवन वर्जित है। सात्विक भोजन और रक्त में उत्तेजना पैदा न करने वाले पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

—आयुर्वेद मार्तण्ड श्री गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'
शान्ति कुटीर, आगर (मालवा) म. प्र.

सर्वज्वरहर लौह

डा० श्री ब्रह्मानन्द गिरि

संदर्भ ग्रन्थ—रसेन्द्र सार संग्रह

योग—चित्रक मूल, बीज निकाला हुआ त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, नागरमोथा, गजपिप्पल, पिप्पलीमूल, खस, देवदारु, चिरायता, पाढ़ल, कुटकी, छोटी कटेरी मूल, सहजने के बीज, मुलैठी, इन्द्र जव प्रत्येक १० ग्रा. की मात्रा में (सभी समान भाग) लौह भस्म १६० ग्रा. (सबके बराबर लौह भस्म) भावना तुलसी स्वरस आवश्यकतानुसार।

निर्माण विधि—सभी काष्ठ औषधियों के उक्त वजन में कपड़छान चूर्ण बना लें और खरल में लौह भस्म के साथ तुलसी स्वरस देकर दो या तीन दिन तक खरल कर पश्चात् २५० मिग्रा० की गोली बनालें। रसेन्द्र सार संग्रह में बिना तुलसी स्वरस के बनाने की विधि है, परन्तु मैं तुलसी स्वरस की भावना देकर बनाता हूं।

पहचान—बिना किसी भावना के यदि बनाया जाय तो योग लाल रंग की होगी। परन्तु भावना देकर यदि बनाया जाता है तब काला रंग की होगी। स्वाद में कटु, तिक्त, कषाय होता है। रासायनिक विश्लेषण के द्वारा लौह का पता चलता है।

मात्रा एवं अनुपान—बच्चों को एक गोली तथा जवानों को १ से २ गोली तक दिन में तीन बार एक सप्ताह तक पश्चात् ३ दिन छोड़कर पुनः आवश्यकतानुसार साम सुबह दिन में दो बार तक। अनुपान गर्म जल अथवा तुलसी स्वरस और मधु या केवल मधु के साथ।

रोग निर्देश—

इसका प्रयोग पित्त श्लेष्मा और वातपित्त कुपित होता है तब लाभ के साथ प्रयोग किया जाता है। ज्वर का तापमान १००–१०२° शतांश तक नित्य घण्टे दो घण्टे के लिए मिले और मन्द ज्वर हमेशा बना रहे अथवा दिन-रात में कभी भी १ या २ घण्टे के लिए बुखार आ जाय, दाह, वमन, तृष्णा, प्यास और स्वेद (पसीना) आवे, प्लीहा, यकृत दोनों बढ़ जाय वैसे हालत में इसका कार्य बहुत ही प्रशंसनीय और लाभदायक रहता है। अतिसार, पाण्डु, कामला अथवा शीत ज्वर पुराना पड़ गया हो तो इसका सेवन से अत्यधिक लाभ होता है। यह विशेषकर विषमज्वर (Malaria) के लिए तो रामबाण अमृत तुल्य औषधि है। यह अपने प्रभाव के कारण कटु होने से कफ का, तिक्त होने से पित्त का और उष्ण होने से एवं कषाय होने से वात का नाश करती है। इसलिए वात ज्वर, पित्तज्वर श्लैष्मिक ज्वर, सन्निपात ज्वर, विषम ज्वर नवीन हो अथवा जीर्ण विषम ज्वर, धातुगतज्वर, शीत कम्पज्वर को समूल नष्ट कर देता है। विषम ज्वर मलेरिया में आज तक कुनाइन का प्रयोग नहीं किया है। यहाँ तक कि कुनाइन के अत्यधिक सेवन से बिगड़ा हुआ ज्वर तथा अटका हुआ ज्वर को भी इस औषधि के द्वारा हजारों रोगियों को विषम ज्वर से मुक्त किया है। इसे मैं दिन में तीन बार प्रयोग करता हूं और भोजनोपरान्त अमृतारिष्ट का प्रयोग साथ-साथ करता हूं जिससे शतप्रतिशत लाभ होता है। इसके अतिरिक्त यह अतिसार, भ्रम, रक्तपित्त, मंदाग्नि, खाँसी, प्लीहा, यकृत वृद्धि, दारुण आमवात, उदर रोग, मूर्च्छा, ग्रहणी, शोथ रोग, रक्ताल्पता को समूल नष्ट कर देता है। यह अत्यन्त बलकारक, शुक्रवर्धक के कारण सर्व रोग नाश करने की शक्ति रखता है।

कुनाइन जो आधुनिक औषधियों में विषमज्वर मलेरिया के लिए रामबाण औषधि मानी जाती है उसमें भी रस में तिक्त, गुण में रूक्ष, वीर्य में उष्ण, विपाक में कटु, कषाय, ग्राही आदि गुण पाया जाता है। साथ ही कुनाइन में अवगुण अधिक है। जबकि इसमें अवगुण नाम की कोई चीज नहीं है। इसे निःसंकोच और निर्भय होकर प्रयोग किया जाता है और लाभ ही लाभ मिलता है।

पथ्यापथ्य—ज्वर ग्रस्त रोगी को जब तक ज्वर बना रहे तब तक प्रतिदिन दूध का छेना या पानी (दूध फाड़कर जो जल बन जाता है उसे छान कर) चीनी अथवा नमक मिलाकर दें। साथ में सेब, बीज दाना, अंगूर आदि। धान का लावा तथा सहजने के फलों का पकाया रस दें। ज्वर मुक्त होने पर गेहूं, पुराना चावल, मुंग, राहड़, दूध, बैंगन, करेला, परवल, ककोड़ा मूली, पोई साग, अण्डा, मांस पकाया हुआ यूप इत्यादि दें। अपथ्य में वासी एवं गरिष्ठ भोजन, तैल, खटाई, पिट्ठी के बने पदार्थ, दही और भारी पदार्थों का सेवन अपथ्य है।

विशेष मन्तव्य—३१ वर्षों के चिकित्सा काल में इस सर्वज्वरहर लौह को विषम ज्वर नित्यकालिक ज्वर और मन्द ज्वरों पर तथा हताश और निराश रोगियों पर सफलता पूर्वक शत-प्रतिशत सफल पाया है। उपरोक्त सभी घटक द्रव्य जो इसमें पड़ता है। अधिकांश कटु, तिक्त, कषाय है। इसलिए यह विषम ज्वर, जीर्ण ज्वर ही नहीं सम्पूर्ण ज्वरों पर अनुभूत है। एक सप्ताह के सेवन से ही आश्चर्य जनक लाभ होने लगता है।

—डा० श्री ब्रह्मानन्द गिरि ए. एम. बी. एस.
डंगरा (गया) विहार
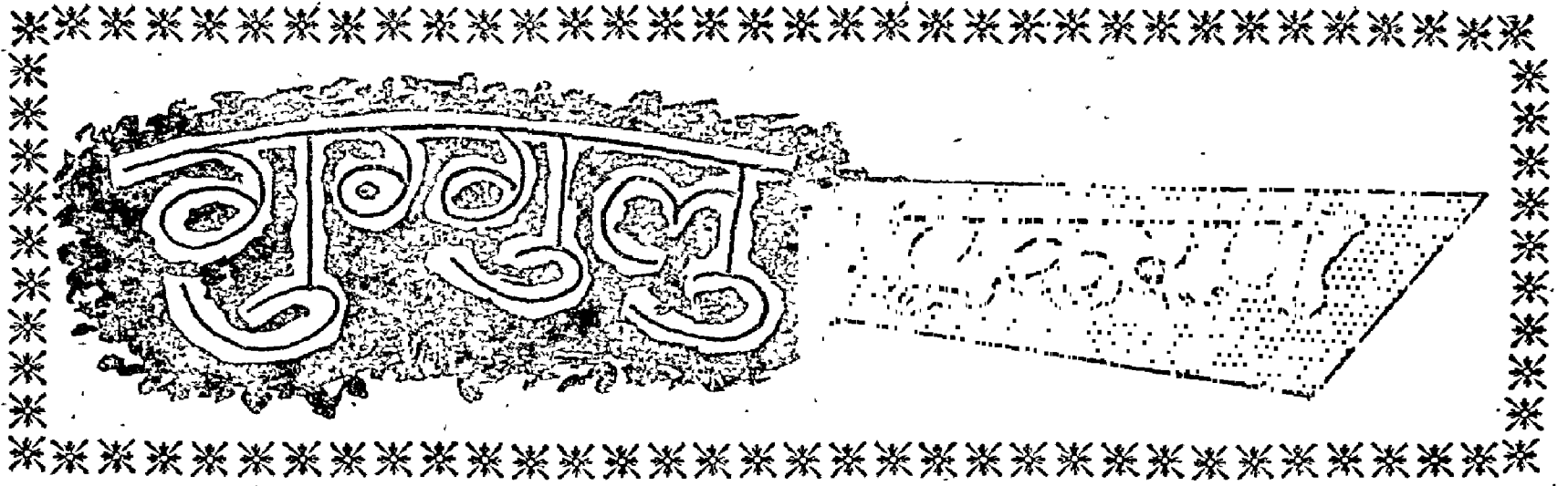
अमृता गूगल

गिलोय ३ प्रस्थ, हरड़ १ प्रस्थ, आंवला १ प्रस्थ, गूगल १ प्रस्थ, बहेड़ा १ प्रस्थ, पुनर्नवा १ प्रस्थ—गूगल को पोटली में बांध शेष जौ कुटकर लगभग ३० प्रस्थ पानी में पकायें। लगभग ७-८ प्रस्थ पानी शेष रहने पर छान लें, छानकर पुनः पकायें गाढ़ा होने पर निम्न चीजें पृथक-पृथक २ तोले लेकर खूब पीसकर डाल दें। जमालगोटे की जड़ (दन्ती), चीते की जड़ सौंठ, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गिलोय, तज, वायविडंग तथा निसोत १ तोला कूटकर डालदें। मेरा अनुभव है इसे (बने बनाये अमृता गूगल को) एरण्ड तैल और गोघृत (समान भाग) में चुपड़ कूट-कूटकर ½-½ माशे के प्रमाण की गोली बनाकर प्रयोग करें। यह योग भावप्रकाश का है। पर कुछ स्वानुभूति के कारण घृत तैल का कूटना बढ़ाया है। इसकी २ गोली सुबह और २ गोली शाम को गुड़ची फाण्ट या क्वाथ से लें। गुडूच्यादि तैल चकत्तों शोथ, दागों पर लगायें।

पथ्य—लवण विहीन भोजन, बिना खटाई, तली गरिष्ठ चीजों से रहित विशेष रूप से गिलोय के पत्तों का शाक अरहर की दाल से गेहूँ के फुल्के।

अपथ्य—धूप, अग्नि, स्त्री का सेवन एवं प्रयोग तथा दिशा स्वप्न।

मेरी अनुभूति का विवरण

मेरे एक मित्र आयु लगभग ३० वर्ष सब ओर से निराश होकर धन की समाप्ति की विवशता पर सन् ५६ में मेरे पास आये। उक्त योग सेवन कराया तीन माह के निरन्तर सेवन से लाभ प्रतीत हुआ। लगभग एक वर्ष तक नियमित पथ्य के साथ विश्वास एवं धैर्य से सेवन किया आज भी वे पूर्ण स्वस्थ हैं।

—श्री ओमप्रकाश शर्मा
चिकित्साधिकारी-पंवासा, (मुरादाबाद). उ०प्र०

वैद्य चैतन्य स्वरूप 'दाधीच'

ग्रन्थ निर्देश – शार्ङ्गधर संहिता (खण्ड २, अ. ७)
अधिकार— प्रमेहादि रोगों पर

क्र. सं.	घटक द्रव्य	शास्त्रीय तोल	प्राचीन तोल	नव्य तोल
१	गोक्षुर	२८ पल	११२ तो.	१ कि. १२० ग्रा.
२	शुद्ध गुग्गुल	७ पल	२८ तो.	२८० ग्राम
३	शुण्ठी	१ पल	४ तो.	४० ग्राम
४	काली मिर्च	,,	,,	,,
५	पिप्पली	,,	,,	,,
६	हरीतकी	,,	,,	,,
७	बहेड़ा	,,	,,	,,
८	आंवला	,,	,,	,,
९	मुस्तक	,,	,,	,,

निर्माण-प्रक्रिया—सर्वप्रथम गोखरू का ६ गुने पानी में क्वाथ करें। आधा जल शेष रहने पर उतार लें। फिर छानकर पुनः उबालें, लगभग आधा जल शेष रहने पर शुद्ध किया हुआ गुग्गुल उपर्युक्त प्रमाण में मिलाकर पकावें। जब गुड़ पाक के समान गाढ़ा हो जाय, तब सौंठ, मिर्च, पीपल, हरीतकी, बहेड़ा, आंवला, मुस्तक सब उपर्युक्त प्रमाण में लेकर कूट महीन चूर्ण बना उपर्युक्त गुग्गुल की चाशनी में मिला लें, तदन्तर २५० मिग्रा० (२-२ रत्ती) की गोलियां बनालें।

शास्त्रीय दृष्टि से गुण प्रभाव—शास्त्रीय दृष्टि से इसमें निम्न गुण प्रभाव दृष्टिगत होते हैं—

रस—कटु, तिक्त, अम्ल। वीर्य—ईषदुष्ण। विपाक—कटु तथा मधुर।

गुण—१. दीपन, २. बल्य, ३. हृद्य, ४. रसायन, ५. त्रिदोषनाशक, ६. मूत्रवर्द्धक, ७. मूत्र प्रजनन संस्थान, बलवर्द्धक, ८. रक्तप्रसादन, ९. स्रंसन, १०. मेध्य, ११. अनुलोमन, १२. चक्षुष्य, १३. केश्य, १४. अश्मरीहर, १५. एवं संतापहर।

रोगोपयोग—हन्यात् प्रमेहं कृच्छ्रं च प्रदरं मूत्राघातकम्।
वातास्रं वातरोगांश्च शुक्रदोषं तथाऽश्मरीम्॥
—७/८८

गोक्षुरादि, गुग्गुल, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रदर, वातरोग, वातरक्त, शुक्रदोष और अश्मरी नाशक है।

मात्रा—१ से ३ गोली तक।

सेवनकाल—प्रातः सायं अथवा रोग की तीव्रतानुसार।

अनुपान— साधारणतया दूध या जल।

विशेष अनुभव—रोगानुसार, गोक्षुर, कषाय, तृणपञ्च मूल कषाय, चन्दनासव, दशमूलारिष्ट, दाडिमावलेह इत्यादि।

गोक्षुरादि-गुग्गुल के अनुभवजन्य गुण धर्म —

गोक्षुरादि-गुग्गुल का शरीर पर प्रभाव —

१. मूत्रकृच्छ्र या मूत्रकष्ट—"मूत्रकृच्छ्रः सद्यः कृच्छ्रा-मूत्रपेद वस्तिरोधकृत॥ अर्थात् वह रोग जिसमें रुग्ण कष्ट पूर्वक मूत्रविसर्जन करता है तथा वस्तिरोध होता है। यह विकार मूत्र-मार्ग का है इसमें मूत्रोत्पत्ति योग्य होती है, परन्तु गवीनी, मूत्राशय, पौरुषग्रंथि या मूत्र प्रसेक नलिका में जीर्ण व्रण, व्रण शोथ या मूत्रप्रसेक नलिका का सकोच आदि इन्द्रिय विकृति रूप कारणों में से कोई भी एक होने पर मूत्रदाह युक्त, पीला, लाल और दुर्गन्धयुक्त आता है, कभी-कभी अश्मरी, सिकता या शर्करा हेतु से मूत्रोत्सर्ग में कष्ट होता है, आदि पर गोक्षुरादि गुग्गुल का उपयोग लाभदायक सिद्ध होता।

विशेष—मूत्रकृच्छ्र में गोक्षुरादि गुग्गुल के साथ चन्दनासव या गोक्षुर कषाय की योजना शीघ्र लाभदायक सिद्ध होती है।

२. मूत्राघात—मूत्राघात में कितने ही प्रकार के मूत्रकृच्छ्र के समान इन्द्रियजन्य विकृति के हेतु होते हैं, परन्तु मुख्यतः इस विकार में मूत्रोत्पत्ति क्रम होती है। वृक्क की भिन्न-भिन्न कारणों से होने वाली विकृति ही मूत्राघात का हेतु है और इस विकृति का परिणाम समस्त शरीर पर होकर मूत्राघात के कष्ट साध्य प्रकार उत्पन्न होते हैं। इन सब के मूल में अवस्थित वस्तुस्थिति यह है कि मूत्र कम उत्पन्न होना और मूत्र द्वारा शरीर से बाहर जाने वाला क्षार और विष शरीर में ही रह जाना। इस परिस्थिति पर गोक्षुरादि गुग्गुल का उत्तम उपयोग होता

। यह मूत्रल होने से इसका असर मूत्रपिण्डों पर होकर त्र पिण्ड के दाह, शोथ आदि विकार कम हो जाते है।

विशेष—गोक्षुरादि गुग्गुल ४ रत्ती+श्वेत पर्पटी रत्ती, गोक्षुर युक्त तृण पञ्चमूल कषाय से देना, साथ ही जिनोत्तर चन्दनासव की व्यवस्था विशेष फलप्रद सिद्ध ई।

३. अश्मरी—"तरुणो भेषजैः साध्यः प्रवृद्धश्छेद-हेति" अर्थात् अश्मरी रोग नया औषधि से ठीक होता किन्तु जीर्ण होने पर शस्त्रकर्म करना ही इष्ट है। वीन रोग में, मूत्राशय में अश्मरी का (शर्करा और रकता) उपस्थित होने पर मानसिक अस्वस्थता, संधि-संधि ीड़ा, अपान वायु की शुद्धि न होने पर उदर में अफरा ाना, कम्प आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। उस पर यह गोक्षुरादि गुग्गुल गोक्षुर कषाय और दशमूलारिष्ट के साथ दिन में तीन समय देते रहने और भोजन के प्रारम्भ में हिंग्वाष्टक चूर्ण सेवन कराने से छोटे-छोटे पत्थर और निकलकर रोग दूर हो जाता है। ऐसा रस तंत्रसार र्ता का कथन है अथवा तृणपञ्चमूल- कषाय या यवक्षार युक्त कुलथी के क्वाथ के साथ गोक्षुरादि गुग्गुल का उपयोग करना लाभप्रद होता है।

३. सुजाक—सुजाक (शुक्रमेह) जिसमें मूल के साथ पूय जाता है और मूत्र त्याग के समय जलन होती है लिंग पर शोथ आ गया एवं खुजली चलती हो, आदि लक्षणों के प्रारम्भ होते ही गोक्षुरादि गुग्गुल की २-२ गोली दिन में तीन बार चन्दनासव के साथ देने से तीन या चार दिन में ही सत्वर लाभ हो जाता हैं एवं रोग बढ़ नहीं पाता। ऐसा अनुभव है कि जीर्णावस्था में पथ्यपालन सह दीर्घकाल तक सेवन करने पर लाभ अवश्य होता है। गोक्षुरादि गुग्गुल सुजाक के विष को नष्ट करने में विशेष यवहृत होती है।

५. प्रमेह-शुक्रदोष—अन्नरस का पूर्ण परिपाक न होने पर जीर्ण आमदोष के संचय के कारण, अधिक शर्करा, द्विदल अन्न एवं पिष्टमय पदार्थों के अतिसेवन से शरीर में क्लेद बहुलता होने पर प्रमेह की उत्पत्ति हो जाती है। अधिक समय तक प्रमेह रहने के कारण बहुत से रोगियों के शरीर में दर्द रहने लगता है या बहुत अधिक हड़कल होती है, ऐसी अवस्थाओं तथा विशेषतः वातज प्रमेह में इसका प्रयोग विशेष लाभदायक है। शुक्रदोष जैसाकि शुक्रस्राव, मूत्र में शुक्र जाना अथवा अल्ब्युमिन जाना, आदि पर यह प्रभावशाली है। स्वप्नदोष के ऐसे रोगी जो साथ में पेशाब में जलन की शिकायत लेकर आते हैं ऐसे रोगियों को हम गोक्षुरादि गुग्गुल चन्दनासव के साथ लेने की सलाह दे देते हैं, जिससे मूत्र में जलन तो समाप्त होती है, साथ ही धातुगत ऊष्मा भी शान्त होकर मूत्र रोग शमन होने में विशेष सहायता मिलती है।

६. प्रदर—कभी-कभी रक्तप्रदर का योग्य उपचार न करने पर और दुर्लक्ष्य करने पर बहुत बढ़ जाता है। भारतीय नारी समाज में इस रोग को लज्जावश छिपाया जाता है जिससे रक्तप्रदर और रक्तगुल्म दोनों बढ़ जाते है। फिर अशक्ति अधिक आ जाती है। ऐसी स्थिति में गोक्षुरादि गुग्गुल वंग भस्म, मूत्रदाहान्तक चूर्ण* और अमृतासव मिलाकर दिन में चार बार दाडिमावलेह के साथ देते रहने और अशोकारिष्ट प्रातः सायं देते रहने से दोनों विकार नष्ट हो जाते हैं। चिकित्सा विधि—दो मास तक ऐसा रस तन्त्रसार कर्ता का अनुभव है। श्वेत प्रदर पर इसकी अपेक्षा चन्द्रप्रभा विशेष लाभदायक रहती है।

७ वातरोग—वातरक्त—बहुत से सुजाक के रोगियों को वायु विकार हो जाता है। सुजाकजन्य वात व्याधि की अवस्था में इसका प्रयोग हितावह होता है। आमवात एवं वातरक्त समान दोष दूष्यजन्य होने के कारण सहोदर कहे जाते हैं। वातरक्त का प्रारम्भ प्रायः पैर के दाहिने अंगूठे से होता है। उसमें शोथ उत्पन्न होकर सूचीभेद के सदृश वेदना होती है। आगे चलकर यह कष्ट अन्य संधियों में भी व्याप्त हो जाता है। ऐसी अवस्था में भी गोक्षुरादि गुग्गुलु का उपयोग लाभदायक कहा गया है। किन्तु अनुभव से इसकी अपेक्षा कैशोर गुग्गुल का प्रयोग विशेष हितावह सिद्ध हुआ है।

विशिष्ट लक्षण—रुक-रुककर जलन के साथ मूत्र होना।

अनुभव जन्य अन्य ज्ञातव्य तथ्य—

१. इसका प्रभाव मूत्र, प्रजनन एवं वातसंस्थान पर ही विशेष दृष्टिगोचर होता है।

* देखें-रस तंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह (द्वितीय खंड)

२. यह एक उत्तम वातानुलोमक योग भी है।

३. इसका कार्यक्षेत्र अधोगत रोगों पर ही विशेष सीमित है।

४. मूत्राशय और मूत्रनली की वायु शान्त करने हेतु इसका उपयोग अवश्य करना चाहिए।

५. गुण वृद्धि के लिए इसके साथ तत्तद रोग नाशक अविपरीत गुण वाली औषधि का मिश्रण इसकी प्रभावशीलता बढ़ा देता है।

६. निर्माण के समय इस योग में गोखरू, पुनर्नवा, खस, चन्दन, रसवंती, पित्तपापड़ा जैसे मूत्रल एवं शामक द्रव्यों की भावना देने से यह योग अधिक कार्यकारी हो जाता है।

गुग्गुल योग होने के कारण, इसकी गोली निगलने से पहले चबा लेनी चाहिए। क्योंकि गुग्गुलु अति गाढ़ा चिपचिपा होता है। अतः इसका पृथक होना, शोषण होना तथा पाचन सरल नहीं है। गुग्गुल के योग पेट में जाकर टूटते नहीं हैं। अतः निगलने से पहले चबा लेने से पाचन में सरलता रहती है।

प्रयोग प्रतिषेध—यह गुग्गुल योग है जिसका प्रभाव गर्भाशयादि स्त्री प्रजननांगों पर पड़ता है। अतः गर्भावस्था में इसका प्रयोग निषिद्ध है।

पथ्य—वमन, विरेचन, लङ्घन, मूत्रल एवं मूत्रदाह करने वाले द्रव्यों का सेवन जैसे—यवमण्ड या जौ, कच्चे नारियल का पानी, गन्ने का रस, लौकी, पेठा, सहिजन, कुलथी, पुराना गेहूं, मूंग, तिल, धान का लावा, मधु, मट्ठा, परवल, करेला, उदुम्बर फल, गुडूची, त्रिफला, जामुन, कसेरू, खजूर, तरबूज, गोदुग्ध आदि।

अपथ्य—उपस्थित मूत्र के वेग को रोकना, धूम्रपान, रक्तमोक्षण, नया अन्न, दही, पिष्टी तथा बेसन के बने पदार्थ, सहवास, तेज मसाले, अम्ल, लवणयुक्त, तले हुए पदार्थ एवं अभिष्यन्दि पदार्थ आदि।

—वैद्य श्री चैतन्य स्वरूप दाधीच
आयुर्वेदरत्न, आयुर्वेद बृहस्पति
सहा० चिकित्सक—श्री दधिमती आयुर्वेदिक चिकित्सालय
चेचट (कोटा) राज०

लाक्षादि गुग्गुल

कवि० श्री देशराज आयुर्वेदाचार्य

लाक्षादि गुग्गुल के दो प्रधान घटक हैं—लाक्षा तथा गुग्गुल। लाक्षा शीतल, स्निग्ध, कषैली, पचने में हल्की, कड़वी, शरीर की कान्ति और बल बढ़ाती है, टूटी हुई हड्डी को जोड़ती है। यह अपने शीत और कषैले गुण के कारण रक्तस्राव को रोकती है। स्निग्ध गुण के कारण अस्थियों को जोड़ती है। गुग्गुल वातनाशक गुण के कारण दर्द, शोथ और रक्त के दूर करता है। चोटादि दुर्घटना के बाद वातदोष का प्रकोप होता है और गुग्गुल इस दोष की एकमात्र औषधि है। अन्य गुणों के अतिरिक्त लाक्षादि गुग्गुल मुख्यतः दुर्घटना के उपद्रवों यथा शोथ, दर्द, रक्त का जमाव और हड्डी टूटनादि के लिए प्रयोग किया जाता है। दुर्घटना ग्रसित होने पर रोगी डाक्टरों की सेवायें ही जुटाते हैं। वैद्यों के पास कभी-कभी ही पहुँचते है। हमें कई रोगियों की चिकित्सा का अवसर मिला है जो डाक्टरी चिकित्सा से स्वस्थ नहीं हो पाये। १-२-३ का ब्यौरा निम्न दिया जाता है—

एक पुराने कांग्रेसी नेता की स्त्री के पावों पर दीवाल की ईंट गिर गई थी। पावों की शोथ और दर्द कई वर्ष बना रहा, रुग्णा बड़ी कठिनाई से चल फिर सकती थी। लाक्षादि गुग्गुल की दो गोली प्रातः सायं दुग्ध अनुपान से सेवन करने से वह स्त्री पूर्ण स्वस्थ हो गई। चिकित्सा केवल एक मास ही चालू रही। बड़ी आसानी से डोलने लगी, शोथ और दर्द सब लुप्त। एक दूसरा रोगी दिल्ली म्यूनिसपल कारपोरेशन का मध्यम श्रेणी का अधिकारी था। वह अपने स्कूटर पर जा रहा था कि वह दुर्घटना ग्रसित हो गया। इसकी एक जंघा पर प्लास्टर कवच चढ़ा दिया गया। वह दो-तीन मास के अवकाश के बाद भी स्वस्थ नहीं हो पाया। जंघा की शोथ वैसे ही बनी रही।

चलने पर शोथ और अधिक बढ़ जाती। उसको लाठी के सहारे चलना भी बड़ा कठिन था। पन्द्रह बीस दिन लाक्षादि गुग्गुल के प्रयोग से वह अधिकारी अपनी ड्यूटी पर जाने में समर्थ हो गया। शोथ दर्दादि सब मिट गये। एक तीसरे रोगी का किस्सा सुनिए। पुनर्वास मन्त्रालय का एक मनचले गजटेड अफसर ने अपनी मोटर साईकिल पर दिल्ली से जबलपुर के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में जबलपुर के निकट ही वह दुर्घटना ग्रसित हो गया और सारे शरीर में बड़ी चोटें आई। जबलपुर अस्पताल में रह दिल्ली वापस लाया गया। सारे शरीर में रोगी का असहनीय दर्द था, न वह सो सकता था और न लेट सकता था। उसके शरीर के कई स्थानों पर शोथ भी था। एक मास तक शल्य विशेषज्ञ का चिकित्सा उपक्रम चलता रहा। जो नोवलजीन की कई शतक गोलियां रोगी के पेट में चली गई पर दर्द लेशमात्र भी नहीं घटा। आयुर्वेद की शरण में महाशय जी आये। लाक्षादि गुग्गुल का चमत्कार देखिये। रोगी एक सप्ताह में पूर्ण स्वस्थ होकर निद्रा लेने लगा।

—कवि० श्री देशराज आयुर्वेदाचार्य
भू० पू० प्रधान चिकित्सक
४ बी/६३, राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली-६०

पंचतिक्त घृत गुग्गुल (कुष्ठरोगाधिकारे)

विशेष सम्पादक वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त

ग्रंथ—भैषज्य रत्नावली।

घटक—नीमछाल, गिलोय, अडूसा पंचांग, पटोलपत्र, और कण्टकारी की जड़—ये प्रत्येक ४० तोला लेकर, जवकुट करके ४० सेर जलमें चतुर्थांश क्वाथ करें, और कपड़छन करलें। उसमें २० तोला शुद्ध गुग्गुल का चूर्ण बनाकर क्वाथ में मिला दें। उसीमें घृत मिलाकर पकावें और बराबर करछुल से चलाते रहे। जब वह गाढ़ा हो जाय और गुड़पाक के समान उसकी आकृति हो जाय, तब अग्नि से नीचे उतार कर उसमें निम्न प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर, उसकी इतनी कुटाई करावें कि उसमें चिकनापन आजाय, तब १-१ मासे की गोलियां करें—

प्रक्षेप द्रव्य—वायविडंग, देवदारू, गजपीपल, सज्जीखार, जवाखार, सौंठ, हल्दी, सौंफ, चाम, कूठ तेजवल या मालकांगनी, कालीमिर्च, इन्द्रजौ, सफेद जीरा, चित्रक मूलछाल, कुटकी, शुद्ध भिलावा, वच, पिपरा मूल, मंजिष्ठ, अतीस, हरड़, बहेड़ा, आमला और अजवाइन ये प्रत्येक २ तोला। इनको कूट कपड़ छन चूर्ण बनालेवें।

इसके शास्त्रीय गुण—

तन्नाशयेद् विषमति प्रबलंसमीरं,
सन्ध्यस्थि मज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक्।
नाड़ी व्रणार्बुद भगन्दरगण्डमाला,
जत्रुर्ध्वं सर्व गद गुल्म गुदोत्थ मेहान्॥
यक्ष्मारुचि श्वसन पीनस कास शोष।
हृत्पाण्डुरोग गल विद्रधि वातरक्तम्॥

अनुपान—

वातरोग में—दशमूल क्वाथ, एरण्ड तेल, दूध।
कुष्ठ में—गोमूत्र अथवा मधु।
अर्बुद में—दशमूल क्वाथ।
नाड़ी व्रण में—मधु।
भगन्दर में—खैरसार का क्वाथ और मधु।
गण्डमाला में—वरुण मूलत्वक् क्वाथ और मधु।
जत्रु के ऊपर के रोगों में—मधु।
गुल्म में—एरण्ड तेल एवं गर्म दूध।
गुदा के रोगों में—तक्र (अर्श में)।
प्रमेह में- गुर्च का रस और मधु।
यक्ष्मा में—नागबला की जड़ का क्वाथ और मधु।
अरुचि में—अनार का रस और मधु।
श्वास रोग में—अद्रक का रस और मधु।
कास में—छोटी पीपल और छोटी कटेली का क्वाथ।
पीनस में—कालीमिर्च और गुड़ युक्त दही की लस्सी।
शोष में खरैटी क्वाथ और मधु।
हृद्रोग में—अर्जुन छाल का क्वाथ।
पाण्डुरोग में—गौ मूत्र या मधु।
गल विद्रधि में—सहेंजन या श्वेत पुनर्नवा या वरुणा की छाल का क्वाथ।
वातरक्त में—गुर्चरस और मधु।

प्रातः सायं व दिन में ३ बार प्रयोग करने से कैंसर रोग में भी लाभ दिखाता है।

पंचामृत लौह गुग्गुल

श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त (विशेष सम्पादक)

ग्रंथ सन्दर्भ—भैष० रत्नावली, मस्तिष्करोगे।

घटक—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, रजत भस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म प्रत्येक ४ तोला। लौह भस्म ८ तोला, शुद्ध गुग्गुल २८ तोला।

निर्माण विधि—प्रथम पारद, गन्धक की कज्जली कर भस्में मिलाकर खूब खरल करें।

दशमूल और त्रिफला क्वाथ में शुद्ध गुग्गुल को खूब घोलकर एकजीव करलें, और उसे एक कढ़ाई में पकावें। जब वह गाढ़ा होने लगे, तब नीचे उतार उक्त पारदादि का मिश्रण उसमें मिलादें। साथ ही उसमें थोड़ा-थोड़ा कडुवा (सरसों का) तेल डालकर लोहे की मूसली से उसकी खूब कुटाई करें। सहस्त्रों चोटों के पश्चात् जब खूब मुलायम चकना गोली बनाने योग, हाथ के चिकनावाल हो जाय तब उसकी १-१ मासे की गोलियां बनालेवें, और सुखा कर शीशी में रखें। दिनमें ४ वार २, ४-४ घण्टे में मन्दोष्ण दूध से सेवन करावें।

यह प्रयोग—मस्तिष्क रोग स्नायु रोग और वातज रोगों को नष्ट करने को शास्त्रकारों ने लिखा है। अनुपान भेद से सभी रोगों में उपयोग किया जा सकता है।

> भावमात्र प्रयोगेण गदा मस्तिष्क सम्भवाः।
> स्नायुजा वातजाश्चापि विनश्यन्ति न संशयः॥
> यं पंचामृत लौहाख्यो गुग्गुलर्न हरेद्गदम्।
> नासौ संजायते देहे मनुष्याणां कदाचना॥

पारद, गन्धक, रजत, अभ्रक और स्वर्ण माक्षिक के गुण प्रथम भाग में विस्तार पूर्वक बताये जाते हैं। ये सभी स्नायु मण्डल मस्तिष्क और वातज रोग नाशक है। विशेषकर गुग्गुल तो वात नाशक परम प्रसिद्ध है। इसके सम्बन्ध में बताया गया है कि गुग्गुल स्वमेव—दीपन, अनुलोमक, यकृदुत्तेजक वेदना स्थावर हृदय, रक्त प्रसादक, कफ निस्सारक, संधानीय, मूत्रल, कामोत्तेजक, आर्तव-जनन, रसायन, वर्ण्य, शीतप्रशमन, शोथ, मेद रोग, व्रण, (शोधन, रोपण, जन्तुघ्न) अर्श, कृमि, गण्डमाला, अश्मरी, संधिवात, वातविकार एवं रक्त विकार नष्ट करता है।

यही नहीं जीर्ण कफरोग, नाड़ी की अवसन्नता, गृध्रसी, अग्निमान्द्य, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रन्थि विद्रधि, कुष्ठ, फिरंग, सुजाक, उदररोग, चर्मरोग, भगन्दर, पाण्डु रोग, अर्श, प्रमेह, मेद वृद्धि, गर्भाशय के विकार आदि-आदि प्रायः सभी अवयवों पर कार्यकारी प्रभाव गुग्गुल का है।

आवश्यकतानुसार इसके साथ महायोगराज, चन्द्रप्रभावटी विशिष्ट लौह योग, आरोग्यवर्द्धिनी यथा, घृत या क्वाथ का उपयोग बहुत ही उपादेय सिद्ध होता।

चन्दनादि क्वाथ इसके साथ प्रयोग किया जाय मस्तिष्क रोगों पर विशेषकर मस्तिष्क अपचय (क्षय) या मृगीरोगों में लाभदायक सिद्ध होगा।

चन्दनादि क्वाथ का योग

श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, मूर्वा, अनन्त मूल, लता, हरिद्रा, दारुहल्दी, वंसलोचन, शुद्ध लाख, शुद्ध स्वर्ण गैरिक, जीवन्ती, मुलेठी, असगन्ध, बच, छोटी, काकोली, जीवक और ऋषभक—प्रत्येक २४ लेकर २४ ग्राम की एक मात्रा लेकर १०० ग्राम जल चतुर्थांश क्वाथ करें, और उक्त पंचामृत लौह गुग्गुल के साथ सेवन करें।

व्रणारि गुग्गुल

ग्रंथ संदर्भ—भै. र विस्फोट रोग अधिकार।

योग—रससिन्दूर, पीपल ४-४ तोला, शुद्ध गुग्गुल तोला, हरीतकी, बहेड़ा और आंवला ये प्रत्येक १२-१ तोला। पीपल मिला सूक्ष्म चूर्ण कर, रस सिन्दूर के घोटकर सुरक्षित रखें।

मात्रा—१ से ३ माशे तक।

इसके सेवन से करते रहने से व्रण (घाव) स्वयं लगते हैं धीरे-धीरे सभी व्रण भर जाते हैं। यदि साथ-साथ जंगली केले के बीज का भीतरी सत्व २-२ की मात्रा में सेवन किया जाय तो बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। विस्फोटक (चेचक) पर विशेष हितकर है।

—वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त बी. आई. एम.
५८/६८ नीलवाली गली, कानपुर

त्रयोदशाङ्ग गुग्गुल

आयुर्वेद वृहस्पति डा. श्री महेश्वर प्रसाद उमाशंकर

सन्दर्भ ग्रन्थ—वङ्गसेन।

घटक—लहसुन, असगन्ध, हाऊवेर, गिलोय, शतावरी, गोखरू, विधारा, रास्ना, सौंफ, कचूर, अजवायन, सौंठ, ४-४ तोले, शुद्ध गुग्गुल ४८ तोले, गाय का घी २४ तोले।

निर्माण विधि—सर्व प्रथम समस्त काष्ठौषधियों को एकत्र कूट पीसकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर गुग्गुल को थोड़ा-थोड़ा गाय के घी में कूटकर और उपर्युक्त समस्त चूर्ण मिलाकर पुनः भलीभांति कूटकर समसर्वत्र बना लेवें। इसके बाद २-२ रत्ती (२५०-२५० मि. ग्रा.) की गोलियां निर्माण कर लें।

मात्रा—आवश्यकतानुसार २ से ४ गोली।

अनुपान—रास्नादि क्वाथ अथवा रास्नादि अर्क।

सेवन विधि—प्रतिदिन तीन बार सेवन करायें।

गुणावगुण—

यह औषधि कटिवेदना, कटिग्रह गृध्रसी, बाहु पृष्ठ, जानु, पैर, सक्थि, अस्थि, मज्जा एवं स्नायुगत वात, हनुग्रह (Lock jaw), अत्यधिक स्वप्नदोष से उत्पन्न सर्वाङ्ग वेदना, कटिशूल एवं मेरूदण्ड शूल, त्रिकशूल तथा कुष्ठ आदि व्याधियों को नष्ट करने में परम लाभप्रद है। इतना ही नहीं यह उचित अनुपान एवं नियमित प्रयोग से वातज और श्लैष्मिक व्याधि, हृदय रोग, योनिदोष, खञ्जवात और अस्थि मज्जा आदि विकृतियों को दूर करता है।

यदि पक्षाघात की शुरू वाली अवस्था में इस औषधि का प्रयोग दशमूल क्वाथ के साथ धैर्यपूर्वक किया जाय तो कुछ ही दिनों में रोग विनष्ट हो जाता है।

ध्यान रहे! गृध्रसी, स्नायुगत वात, कुष्ठ आदि जीर्ण रोगों में इस औषधि को धैर्यपूर्वक निरन्तर नित्य नियमित रूप से ६-७ महीनों तक सेवन कराना चाहिए तब ही इच्छित लाभ प्राप्त हो सकती है।

उपर्युक्त व्याधियों के अतिरिक्त अन्य व्याधि में यह प्रायः गुणकारी नहीं है वरन् हानि ही पहुँचाता है। पित्त प्रकृति वालों को यह पर्याप्त हानि पहुँचाता है।

पथ्यापथ्य—पथ्य में पुराने गेहूं तीन भाग और चना एक भाग मिश्रित आटे की रोटी, चने की दाल, मूँग की दाल, चने के पतले घोले हुए (पीने योग्य) सत्तू, परवल, पर्याप्त विशुद्ध देशी घी (गाय या भैंस का), चने के वेसन की कढ़ी, पकौड़े आदि नारंगी, सेव, पका पपीता, गाय का उबाला दूध, मुनक्का भुना हुआ आदि। अपथ्य में खेसाड़ी की दाल, अंचार कलौना, खट्टी चीजें, लालमिर्च, वातवर्धक द्रव्य, दिवा स्वप्न मैथुन, भ्रमण, शारीरिक कठोर श्रम आदि पूर्णतया वर्जित है।

उपर्युक्त योग में प्रायः सभी द्रव्य असन्दिग्ध हैं। यह योग वङ्गसेन ग्रन्थ का है, मेरे द्वारा रूग्णालय के अनेकानेक रोगियों पर परीक्षित है। इस योग का दूसरे-दूसरे योगों के साथ प्रयोग किया था। यह कटिवेदना, कटिग्रह, गृध्रसी, अत्यधिक धातुक्षीणता से उत्पन्न वात व्याधि में आशातीत सफल रहा। प्रत्यक्ष परीक्षणों के अनुभव के आधार पर मैंने इसमें लहसुन और सौंठ की मात्रा डेढ़ गुणा बढ़ा दिया तथा प्रयोग किया तो पहले से अधिक गुणकारी सिद्ध हुआ। यह उष्ण और शीत दोनों प्रकार के कटिबन्ध देशों के लोगों के लिए लाभप्रद है।

रोगी की प्रकृति, शारीरिक शक्ति तथा रोग की तीव्र या जीर्ण दशा के अनुसार औषधि की मात्रा न्यूनाधिक करनी चाहिए।

अतिसार के रोगी, गर्भवती, क्षयरोग से ग्रस्त, पित्त प्रकृति अधिक ताप वाले तथा शरीर से क्षीण एवं दुर्बल व्यक्तियों को इसका सेवन प्रायः वर्जित है।

इसका नये रोग में निरन्तर एक मास तक तथा पुराने रोग में ३-४ मास तक तथा किसी-किसी को ६ मास तक सेवन कराने से पर्याप्त लाभ मिलता है।

यह औषधि सेवन काल में थोड़ी उष्णता अनुभूत होती है अतएव इसके साथ पर्याप्त मात्रा में गाय का दूध तथा भोजन के साथ थोड़ा-थोड़ा विशुद्ध घृत खूब ठाँसकर खिलाना चाहिए।

मध्यावधि में कब्ज को दूर करने के लिए 'इच्छाभेदी रस" १ से २ गोली चुल्लू-चुल्लू जल के साथ सेवन कराकर कोष्ठ की शुद्धि कर लेना जरूरी हैं।

—प्राणाचार्य डा० महेश्वर प्रसाद 'उमाशंकर'
जी.ए.एम.एस., एम.एस्-सी.ए., डी.लिट्.ए.
महेश्वर विज्ञान भवन, मंगलगढ़ (समस्तीपुर)

खाली कैपसूल

मूल्य में विशेष कमी

सबसे बड़ा साइज (नं. ००) ४.७५ प्रति सैकड़ा, ४५.०० प्रति हजार
बड़ा साइज (नं. ०) ४.०० प्रति सैकड़ा, ३७.५० प्रति हजार
छोटा साइज (नं. १) ३.७५ प्रति सैकड़ा, ३५.०० प्रति हजार
सबसे छोटा साइज (नं. २) ३.६० प्रति सैकड़ा, ३४.०० प्रति हजार

सैल-टैक्स तथा पोस्ट व्यय आदि पृथक ।

नोट—(१) १००० कैपसूल से कम मंगाने पर प्रति सैकड़ा वाला मूल्य लगेगा ।
(२) एक साथ ४००० कैपसूल या उससे अधिक मंगाने पर पोस्ट पैकिंग व्यय हम देंगे ।

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, मामू भांजा रोड, अलीगढ़-३६

पत्थर के खरल

मूल्य तथा साइज का विवरण

	हंसराज	तामड़ा	मोतिया	कसौटी
४ इंची	×	×	×	६.५०
५ इंची	×	×	×	१६.००
६ इंची	१५१.००	×	५२.५०	२६.५०
७ इंची	१८७.००	×	७०.००	३४.५०
८ इंची	२४६.००	१७६.००	८७.००	४६.००
९ इंची	२८६.००	२२०.००	११०.००	६२.००

	हंसराज	तामड़ा	मोतिया	कसौटी
१० इंची	३४१.००	२५३.००	१३०.००	८०.००
११ इंची	४१०.००	२८६.००	१६५.००	१२०.००
१२ इंची	४८२.००	३४१.००	२१०.००	१६०.००
१३ इंची	५१०.००	४२८.००	२५५.००	×
१४ इंची	६५०.००	४६५.००	३६५.००	×
१५ इंची	७३५.००	५७५.००	×	×

नोट—आर्डर देते समय अपने पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखें तथा चौथाई रकम पेशगी भेजें ।

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स,
मामू भांजा रोड, अलीगढ़ ।

के ग्राहक बनने के नियम

१. 'धन्वन्तरि' का वार्षिक मूल्य पोस्ट व्यय सहित १४) अग्रिम है। १४) मनियार्डर से भेजकर ग्राहक बन जावें। वी. पी. १५) की भेजी जाती है।

२. 'धन्वन्तरि' का वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक है तथा पूरे वर्ष के लिए ही ग्राहक बनाये जाते हैं।

३. 'धन्वन्तरि' के ग्राहकों को हर वर्ष एक विशाल विशेषाङ्क इसी मूल्य में दिया जाता है। वर्ष १९७९ का विशाल विशेषाङ्क (फरवरी+मार्च २ माह का) आपके हाथ में है। केवल इस विशेषाङ्क का मूल्य १६) है लेकिन ग्राहक से विशेषाङ्क का मूल्य अलग से नहीं लिया जाता। १४) भेजकर ग्राहक बन जाने पर अन्य १० माह के १० अंकों के साथ यह विशेषांक भी मिल जाता है।

४. विशाल विशेषांक के अतिरिक्त ३ लघु विशेषांक भी वर्ष १९७९ में प्रकाशित किये जायेंगे। ये तीनों लघु विशेषांक भी इसी मूल्य में ग्राहकों को मिल जायेंगे। उनका मूल्य अलग से नहीं देना होगा। ये लघु विशेषांक होंगे—
(१) काम विज्ञानांक (तृतीय भाग) (२) मानसरोग चिकित्सांक (३) पथ्यापथ्य विशेषांक

५. वार्षिक मूल्य मनियार्डर से भेजना सुविधाजनक होता है किन्तु यदि आप चाहें तो इस समय तक के प्रकाशित अंक तथा विशेषांक वार्षिक मूल्य १५) की वी० पी० से भेजकर जनवरी ७९ से दिसम्बर ७९ तक के लिए आपको ग्राहक बना लेंगे।

६. ग्राहक किसी भी समय बनाये जा सकते हैं लेकिन ग्राहक को वर्ष के प्रारम्भ अर्थात् जनवरी से उस समय तक प्रकाशित अंक-विशेषांक भेजकर जनवरी से दिसम्बर तक के लिए ग्राहक बनाते हैं।

प्रकाशक

निर्मल आयुर्वेद संस्थान, अलीगढ़

—ग्राहकों से निवेदन—

हम 'धन्वन्तरि' को अधिकाधिक उपयोगी तथा सुन्दर बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। आपका भी कर्त्तव्य है कि आप 'धन्वन्तरि' के २-४ नवीन ग्राहक बनाकर हमको सहयोग दें। 'धन्वन्तरि' के जितने अधिक ग्राहक हो जायेंगे हम उतना ही अधिक उसे उपयोगी बना सकेंगे। आप भी हमको अपना सहयोग अवश्य दें।

पत्र द्वारा चिकित्सा

यदि आप या आपके मित्र रोगी हैं, या आपकी चिकित्सा में कोई रोगी ऐसा आता है जिसकी अनेक चिकित्सा करने पर भी आप असफल रहते हैं तो रोग का पूरा हाल लिखकर पत्र द्वारा आप मेरे पास निम्नलिखित मेरे पते पर भेज दीजियेगा। गत ७ वर्षों से मैं पत्र द्वारा चिकित्सा कार्य कर रहा था तथा अनेक बन्धुओं ने मेरी इस सेवा से लाभ उठाया है लेकिन इस कार्य में समयाभाव के कारण व्यवधान पड़ा है। पत्र प्राप्त होने पर उनके उत्तर देने में, या औषधियां प्रेषित करने में प्रायः विलम्ब हो जाता रहा जिसके लिए सम्भवतः कुछ बन्धु कुपित भी होंगे। अतः उनसे क्षमायाचना करते हुए निवेदन है कि आप पत्र लिखें। मैं यथा सम्भव प्रयास करूंगा कि आपका पत्र मिलने पर तुरन्त चिकित्सा परामर्श प्रेषित कर दिया जाय। आशा है कि आप मेरी सेवाओं से लाभान्वित होंगे तथा मुझे सेवा का अवसर प्रदान करेंगे।

पत्र द्वारा चिकित्सा के नियम

१. पत्र एवं शुल्क निम्नलिखित पते पर ही भेजें।
२. पत्रोत्तरार्थ पता लिखा टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
३. पत्र में रोगी के विवरण के अतिरिक्त कुछ न लिखें।
४. रोगी का पूरा विवरण लिखें लेकिन अनावश्यक विस्तार भी न करें।
५. रोगी की यदि इससे पूर्व कोई चिकित्सा की गई है एवं आपको औषधियों के नाम ज्ञात हैं तो उन्हें लिख दें। उनसे लाभ हुआ या नहीं यह भी लिख दें। इससे औषधियां निश्चित करने में सुगमता रहेगी।
६. यदि रोगी के रक्त, मल, मूत्र, थूक, एक्सरे आदि की कोई परीक्षा की गई है तो रिपोर्ट की नकल करके भेजें। असली रिपोर्ट न भेजें।
७. चिकित्सा परामर्श शुल्क पांच रुपये हैं। फाइल बनाने का शुल्क ५ रुपये है। फाइल प्रत्येक रोगी की रखी जायेगी। इस प्रकार १०) नीचे छपे पते पर ही प्रेषित करें।
८. यदि रोगी के लिए औषधियां भी मंगाना चाहें तो पत्र में स्पष्ट लिखें तथा एडवांस १०) अधिक भेजें। इस प्रकार १०) चिकित्सा परामर्श शुल्क एवं फायल का शुल्क तथा १०) एडवांस कुल २०) भेजें। एडवांस बिल में कम हो जायेगा। चिकित्सा परामर्श शुल्क एवं फायल बनाने का शुल्क बिल में कम नहीं होगा।

भवदीय :

आयुर्वेदाचार्य डा० दाऊदयाल गर्ग आयु. वृह.,ए.एम.बी.एस.
सम्पादक–'धन्वन्तरि'
अध्यक्ष–निर्मल आयुर्वेद संस्थान
मामू भांजा रोड, अलीगढ़–२०२००१